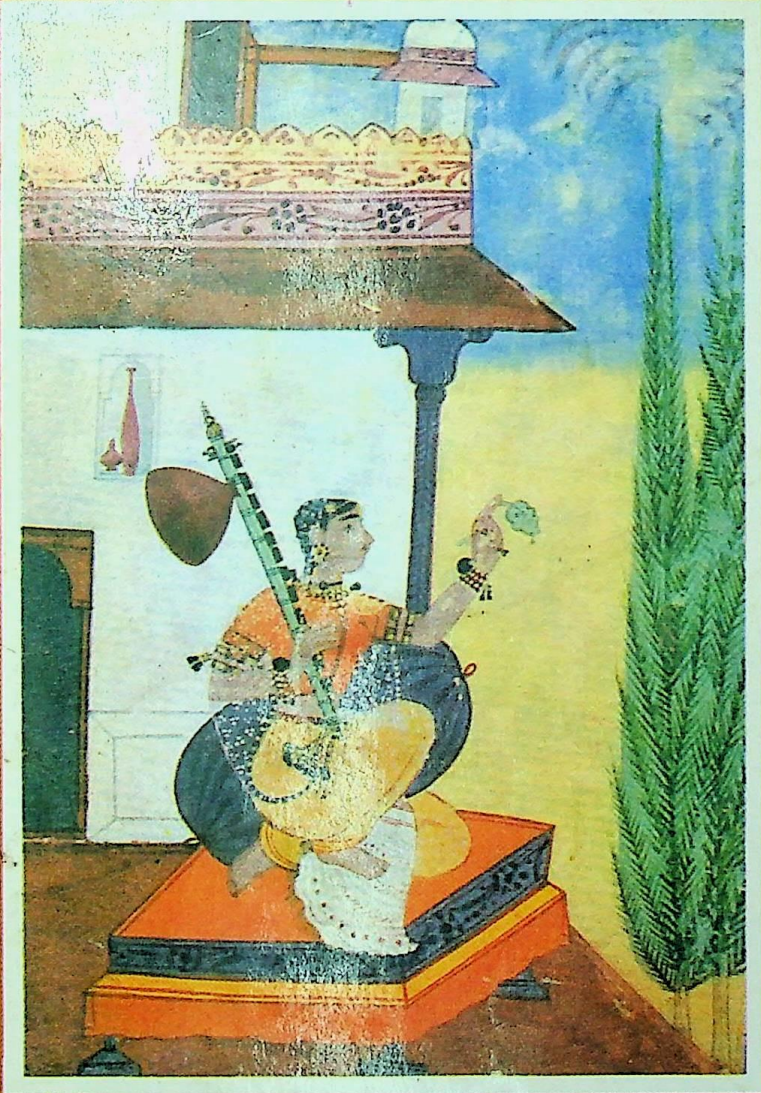


# संगीत विशारद



वसन्त

१००९३



2107

~~10093~~



तिथि-परची

## महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

केन्द्रीय ग्रंथालय, जबलपुर

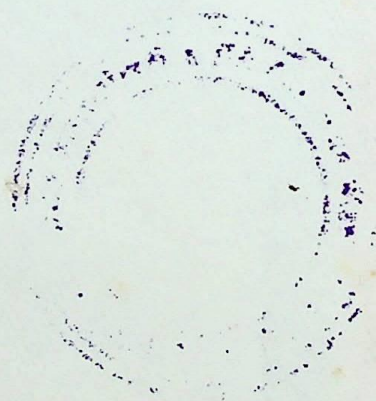
पुस्तक निश्चित तिथि तक वापस आ जानी चाहिए अन्यथा एक रुपया प्रति दिन प्रति पुस्तक के हिसाब से विलम्ब शुल्क देना होगा।

लौटाने की तिथि	लौटाने की तिथि



\* 2 1 0 7 \*







# संगीत विशारद

[ प्रथम वर्ष से अष्टम वर्ष तक का संपूर्ण कोर्स ]

प्रयाग संगीत समिति तथा राजस्थान बोर्ड ऑफ़ सैकेंड्री एज्यूकेशन के  
कोर्स में स्वीकृत तथा निम्नलिखित संस्थाओं के पाठ्यक्रमानुसार

- |  |  |
|--|--|
| <input type="checkbox"/> भातखंडे संगीत महाविद्यालय       | <input type="checkbox"/> गांधर्व महाविद्यालय मंडल  |
| <input type="checkbox"/> प्रयाग संगीत समिति              | <input type="checkbox"/> प्राचीन कलाकेन्द्र        |
| <input type="checkbox"/> इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय | <input type="checkbox"/> विश्वविद्यालय अनुदान आयोग |

एवं

अम्बेदकर, इलाहाबाद, रुहेलखंड, श्रीनगर, जम्मू, अमृतसर, पंजाब, पंजाबी, हिमाचल प्रदेश, कुरुक्षेत्र, रोहतक, गढ़वाल, अमरावती, गुरुकुल काँगड़ी, कुमाऊँ, मेरठ, दिल्ली, कानपुर, अवध, गोरखपुर, झाँसी, बनारस, मिथिला, बिहार, पटना, भागलपुर, मगध, राँची, वर्द्धमान, कलकत्ता, मणिपुर, उत्कल, रीवाँ, रायपुर, जबलपुर, बिलासपुर, सागर, भोपाल, इन्दौर, ग्वालियर, उज्जैन, जोधपुर, जयपुर, कोलहापुर, वनस्थली, सौराष्ट्र, बड़ौदा, नागपुर, मराठवाड़ा, पूना और मुम्बई विश्वविद्यालय।

☐

लेखक

वसंत

संपादक

डॉ० लक्ष्मीनारायण गर्ग



© प्रकाशक

संगीत कार्यालय, हाथरस-204 101 (उ० प्र०)

तेईसवाँ संस्करण

अक्टूबर, 1999

316436  
NEERUNDA BOOK DEPOT मूल्य  
ANDHERDEO, JABALPUR 200/-





Publication No. 83

# संगीत विहार

ISBN. 81-85057-00-1

SANGEET VISHAARAD

Written by

'VASANT'

Edited by

Dr. LAXMI NARAYAN GARG

23rd Edition

October, 1999

Published by

SANGEET KARYALAYA,  
HATHRAS - 204 101 (India)

Printed by

SANGEET PRESS,  
HATHRAS - 204 101 (India)





## प्राक्कथन

‘संगीत-विशारद’ का नया संस्करण संगीत-जगत् की सेवा में प्रस्तुत है। विद्यार्थियों तथा शिक्षकों की मांग और कठिनाई को ध्यान में रखकर, इसे प्रथम वर्ष से एम० ए० स्तर तक के पाठ्यक्रमानुसार कर दिया गया है, अतः संगीत-परीक्षाओं में आनेवाले प्रायः हर प्रश्न का उत्तर इसमें प्राप्त हो जाएगा। बी० ए० तथा एम० ए० स्तर के पाठ्यक्रम में जो भी नया बदलाव हुआ है और नए विषय बढ़ाए गए हैं, उन सभी के बारे में विस्तार से सामग्री दे दी गई है।

‘संगीत-विशारद’ एक ही ऐसा ग्रन्थ है, जिसे पढ़ लेने के बाद अन्य ग्रन्थों के अध्ययन की आवश्यकता नहीं रह जाती। फिर भी यदि किसी प्रश्न का उत्तर ‘संगीत-विशारद’ न दे सके तो पाठक हमें इसकी सूचना दे सकते हैं, ताकि आगामी संस्करण में उस कमी को पूरा किया जा सके। परिवर्तन और संशोधन कभी समाप्त नहीं होते, काल-चक्र की तरह उनका पहिया निरन्तर विकासोन्मुख रहकर गतिशील रहता है, यही कला और संस्कृति के उत्थान का रहस्य है। अनेक बार पाठ्यक्रम में कुछ ऐसे परिवर्धन या परिवर्तन कर दिए जाते हैं, जिनका मूल-विषय तो एक ही रहता है; परन्तु उसे प्रस्तुत करने का तरीका शब्दों के हेर-फेर से ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वह कोई नया विषय हो। ऐसी प्रतीति होने पर विद्यार्थी योग्य शिक्षक से सम्पर्क स्थापित करके इस पुस्तक में उसके समाधान की खोज भी कर सकते हैं। हम चाहेंगे कि ‘संगीत-विशारद’ का पाठक अपने लक्ष्य में अग्रसर होते हुए कला के उच्चतम शिखर की ओर बढ़ता जाए, तभी हमारा परिश्रम सार्थक होगा।

इस पुस्तक को भाषा, विषय-वस्तु और सामग्री की दृष्टि से काफ़ी समृद्ध कर दिया गया है, जिसमें श्री भगवतशरण शर्मा और ‘संगीत’ मासिक पत्र के प्रधान सम्पादक डॉ० लक्ष्मीनारायण गर्ग का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है। उनके प्रति कृतज्ञताज्ञापन करना मेरे लिए समीचीन नहीं होगा और स्नेह की अभिव्यक्ति राग का प्रतीक कहलाएगी, अतः यही कहा जा सकता है कि संगीत की आराधना के निमित्त भगवती सरस्वती के मन्दिर में मेरे पुष्पार्चन के साथ मेरे दो प्रियजन का नैवेद्य भी समर्पित है। वास्तव में संगीत एक यज्ञ है और हम सब यज्ञी।

□ प्रभूलाल गर्ग ‘वसंत’



# अनुक्रम

## संगीत की धरोहर ६

पुस्तकालय और संगीत ६, स्वर विज्ञान और संगीत १०, गोष्ठियाँ और संगीत ११

## भारतीय संगीत की उत्पत्ति १२

संगीत के इतिहास-काल का विभाजन १३

## उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त

### इतिहास १४

हिन्दू काल १४, वैदिक युग १५, बौद्ध युग १७, पौराणिक काल १८, स्मृति ग्रन्थों में संगीत, मौर्य काल १८, कनिष्क काल, गुप्त काल १९, हर्षवर्धन काल, यवन काल २०, खिलजी युग, अमीर खुसरो २१, तुगलक युग, लोधी काल, मुगल काल २२, अकबर, तानसेन और बंजू बाबरा २३, स्वामी हरिदास, सूर, कबीर, तुलसी और मीरा २४, अंग्रेज काल २६, संगीत-प्रचार का आधुनिक काल स्वतन्त्र भारत में संगीत २७

## सौंदर्य-शास्त्र (Aesthetics) २६

ललित कलाओं का तालिक अंतः संबंध, काव्य और चित्रकला ३०, चित्रकला और मूर्तिकला, संगीत कला और मूर्ति कला, संगीत कला और स्थापत्य कला ३१, अन्य कलाओं में संगीत का स्थान, संगीत का प्रभाव ३२

## संगीत का स्वर-पक्ष ३३

संगीत, स्वर ३३, शुद्ध स्वर, शुद्ध, तीव्र और विकृत (कोमल) स्वर ३४, श्रुति और स्वर का विवेचन ३५, स्वरों में श्रुतियाँ बाँटने का नियम ३६, श्रुति और स्वर-तुलना ३७, श्रुति स्वरूप ३८, प्राचीन तथा मध्य कालीन ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ ३९, आधुनिक ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ, प्राचीन व आधुनिक श्रुति-स्वर-विभाजन ४०, तुलनात्मक विवेचन ४३, विविध गुणोत्तरों का नक्शा ४५

## सारणा चतुष्टयी ४८

प्रमाण श्रुति और श्रुति परिमाण, मूल सप्तक ४८, प्रथम सारणा, द्वितीय

सारणा, तृतीय सारणा, चतुर्थ सारणा ४९, श्रुतियाँ के परिमाण ५०

## दक्षिणी (कर्नाटकी) और उत्तरी

### (हिन्दुस्तानी) संगीत-पद्धतियाँ ५२

हिन्दुस्तानी संगीत ५२, कर्नाटिक संगीत, समानता, भिन्नता ५३, उत्तरी और दक्षिणी स्वरों की तुलना ५४

## उत्तर और दक्षिण भारत का संगीत ५५

### दक्षिणी ताल-पद्धति ६४

७ कर्नाटक-तालों के पंच जाति भेदानुसार ३५ प्रकार ६५, अठ ताल के पच्चीस प्रकार ६७, कर्नाटक-पद्धति की सात तालों की हिन्दुस्तानी पद्धति में लिखने कायदा ६६

## ध्वनि-विज्ञान ७१

नाद ७१, सांगीतिक और असांगीतिक ध्वनि ७२, तारता ७३, तीव्रता, प्रबलता या नाद का छोटा बड़ापन, नाद की जाति या गुण ७५, ध्वनि से संबंधित कुछ अन्य बातें, ध्वनि का अनुरणन ७६, ध्वनि का परावर्तन, ध्वनि आवर्तक ७७, ध्वनि विवर्तन, ध्वनि का व्यतीकरण ७८, अनुनाद ७९, प्रतिध्वनि, ध्वनि का दोलन और वहन ८०, वायु का स्प्रिंग ८१, अनुदैर्घ्य तरंग, ध्वनि के शक्ति श्रोत ८२, ध्वनि वेग ८३, सारणी ८४, अति ध्वनि या पराश्रव्य ८६, कर्णातीत ध्वनि का उपयोग ८७, ध्वनि विज्ञान से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्द ८८

## ध्वनि तरंग और उपकरण

### (Sound-Waves and Apparatus) ९०

ध्वनि उत्पादन और तरंग ९०, आवर्त गति, सरल आवर्त गति, रेखिक सरल आवर्त गति की विशेषताएँ, कोणीय सरल आवर्त गति की विशेषताएँ ९१, ध्वनि-संचार, माइक्रोफोन और लाउडस्पीकर की कार्यप्रणाली ९२, उत्पादक वस्तु का कम्पन आयाम, माध्यम का घनत्व, रिकार्डिंग पद्धति ९३



## संगीत वाद्य और ध्वनि तरंग ६४

तार वाद्यों का कम्पन ६४, वायलिन (वेला) तथा सारंगी की ध्वनि-तरंगें ६६, वीणा, सितार, या तानपूरा की ध्वनि-तरंगें ६७, सुपिर वाद्ययन्त्र ६६

## वाद्य-यन्त्रों की कंपन संख्या १०१

डोल (थरथराहट) की उत्पत्ति और स्वरों पर उनका प्रभाव १०३

## ध्वनि अभिलेखन तथा पुनरुत्पादन १०६

ध्वनि अभिलेखन या रिकार्डिंग की आवश्यकता और आविष्कार, वैक्स-रिकार्डिंग १०६, विद्युत ध्वन्यांकन, विद्युत से ध्वनि का पुनरुत्पादन १०८, मैग्नेटिक रिकार्डिंग १०६, मैग्नेटिक रिकार्डिंग की पद्धति ११०, सैल्यूलाइट फिल्म-ध्वन्यांकन १११, फ़िल्म की ध्वन्यांकन पद्धति, फ़िल्म से ध्वनि का पुनरुत्पादन ११२, अल्ट्रावाइलेट ध्वन्यांकन, स्टीरियो फोनिक यन्त्र ११३, कॉम्पैक्ट डिस्क (सीडी), चिप्स ११४

## भवन ध्वनिकी (Architectural

### Acoustics) ११५

प्राचीन काल के सभा गृह ११५, संगीत सभा गृह ११७, आवश्यक गुण, ध्वनि की वृद्धि तथा क्षेत्र ११८, अनुरणन काल, शब्दोच्चार परीक्षा, भवन ध्वनिकी के आकार प्रकार (डिजायन) सिद्धान्त, ११६, ध्वनि प्रवेश १२१

## स्वर-शास्त्र (Tonality) १२२

स्वर स्थान और आंदोलन संख्या, स्वरों की आंदोलन संख्या निकालना १२२, स्वरों का गुणान्तर, आंदोलन संख्या से लम्बाई निकालना १२३, पंडित भातखंडे वर्णित शुद्ध तथा विकृतस्वरों की सारणी १२८, श्रीनिवास के शुद्ध स्वर, श्रीनिवास के विकृत स्वर १२६, तीव्र ग, तीव्रतर मध्यम, कोमल धैवत १३०, तीव्र निषाद, श्रीनिवास के पाँच विकृत स्वर १३१, कोमल ऋषभ, कोमल धैवत, मंजरीकार (भातखण्डे) के बारह स्वर स्थान, वीणा के तार पर १३३, मतैक्य (समानता), मतभेद (असमानता) १३४, स्वरों की इष्टता, अनिष्टता और संवाद सम्बन्ध १३५, स्वर संवाद और संघात १३६, यूरोपीय स्वर संवाद १३६, भारतीय

तथा यूरोपीय स्वर संवाद १४०, स्वरांतर १४२, स्वरों की गणना से सम्बन्धित चार्ट १४३

## संगीत के सप्तक का विकास १४५

पायथागोरस का स्वर सप्तक १४५, षड्ज-पंचम-भाव से सप्तक का निर्माण, षड्ज-मध्यम-भाव के आधार पर सप्तक की रचना, डायटॉनिक स्केल की रचना १४६, इस सप्तक की बड़ी अड़चन, औसत स्वरांतर सप्तक, समानांतरालीय स्वर सप्तक १४७, स्केल, मेजर स्केल, टैट्राकोर्ड १४८, माइनर स्केल १४६, क्रोमाइटिक स्केल १५१, भारतीय स्वर सप्तक का विकास, भारत के षड्ज ग्राम के स्वरों का विकास १५२, बिलावल ठाठ की मान्यता १५३

## संगीत में ठाठ (थाट) पद्धति का

### विकास १५५

ठाठ व्याख्या, ठाठ के विषय में कुछ महत्वपूर्ण बातें १५७, दस ठाठों के सांकेतिक चिह्न, बहत्तर ठाठों की रचना का सिद्धान्त १५८

## उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति के बारह

### स्वरों से बत्तीस ठाठ १६१

शुद्ध मध्यम वाले सोलह मेल १६१, तीव्र मध्यम वाले सोलह मेल १६२

## उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति के दस

### ठाठों से उत्पन्न कुछ राग १६४

## वैकटमखी पंडित के बहत्तर मेल

### (ठाठ) १६६

वैकटमखी पंडित के उन्नीस मेल और उनके स्वर १६७, पंडित वैकटमखी के जनक-मेल तथा जन्य राग १६८, राग लक्षणम् के बहत्तर कर्नाटिकी मेल १६६, राग-लक्षणम् (कर्नाटिकी पद्धति) के बहत्तर मेल और उनके स्वर १७०, प्रति मध्यम वाले छत्तीस मेल १७२

## नाद-स्थान, सप्तक, वर्ण, अलंकार,

### राग और ग्राम मूर्च्छना १७५

नाद-स्थान, सप्तक १७५, वर्ण १७६, अलंकार १७७, राग, रागों की जाति १७८, ग्राम-मूर्च्छना १८१, मूर्च्छना,



सांतरा मूर्च्छनाएँ १८२, सकाकलि मूर्च्छनाएँ, साधारणी कृता, आधुनिक संगीत में मूर्च्छनाओं का उपयोग १८३

### जाति-गायन १८५

अंश, ग्रह १८५, तार-मन्द्र, न्यास, अपन्यास, सन्यास, विन्यास १८६, अल्पत्व-बहुत्व, ओडव-षाडव १८७, रागों के आधुनिक दस लक्षण १८८

### रागों के लक्षण १८९

राग-भेद, वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी १८९, आश्रय-राग १९०, रागों का समय-विभाजन १९१, पूर्वांगवादी राग, उत्तरांगवादी राग १९२, स्वर और समय की दृष्टि से रागों के तीन भाग १९३, सन्धि प्रकाश राग, शुद्ध 'रे-ध' वाले राग १९४, कोमल 'ग-नि' वाले राग, तीव्र मध्यम वाले राग १९५, तीव्र 'ग' तथा कोमल 'नि' वाले राग, कोमल 'ग' तथा कोमल 'नि' वाले राग, प्रातः कालीन सन्धि प्रकाश रागों से सायं कालीन सन्धि प्रकाश रागों तक का क्रम १९६, संगीत के दिन-रात १९७

### अध्वदर्शक स्वर 'मध्यम' का महत्त्व १९८

परमेल प्रवेशक राग १९९

### हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति के चालीस

सिद्धांत २००

### राग में वादी स्वर का महत्त्व २०४

राग में विवादी स्वर का प्रयोग २०५

### राग-रागिनी-पद्धति २०७

राग रागिनी-वर्गीकरण, नाट्य शास्त्र, बृहद्देशी २०७, संगीत मकरंद, संगीत-रत्नाकर २०८, शिव-मत (सोमेश्वर मत) के छह राग और छत्तीस रागिनियाँ, भरत मत के छह राग और तीस रागिनियाँ २०९, कल्लिनाथ के छह राग छत्तीस रागिनियाँ, हनुमन्मत के छह राग और तीस रागिनियाँ २१०

### गायकों के गुण-अवगुण २१२

गायक के गुण २१३, गायक के अवगुण २१५

### यंत्र-वादकों के गुण-दोष २१७

वादक के गुण, वादक के दोष २१७

### नायक व गायक आदि के भेद २१८

वाग्गेयकार के गुण व दोष २१९, मध्यम और अधम वाग्गेयकार २२१

### गीत, गांधर्व, गान, मार्ग संगीत,

देशी संगीत, ग्रह, अंश और न्यास २२२

### चतुर्दण्डी और उसकी अवधारणा २२५

ठाय, गीत २२५, प्रबन्ध, आलाप २२६

### प्राचीन प्रबन्ध-गायन अथवा शैलियाँ २२७

स्वर, विरुद, पद, तेनक, पाट, ताल, मेदिनी जाति, आनन्दिनी जाति २२८, दीपिनी जाति, भाविनी जाति, तारावली जाति, उद्ग्राह, ध्रुव, मेलापक, आभोग, राग कदम्ब २२९, मातृ का प्रबन्ध, पंचतालेश्वर प्रबन्ध, कैवाड़ प्रबन्ध, द्विपदी प्रबन्ध, द्विपथक प्रबन्ध २३०, रूपक और वस्तु, निर्युक्त प्रबन्ध, अनिर्युक्त प्रबन्ध २३१

### आधुनिक प्रबन्ध-गायन या संगीत

शैलियाँ २३२

ध्रुवपद २३२, ध्रुवपद की चार वाणियाँ, चार वाणियों के प्रधान लक्षण २३३, खयाल, टप्पा २३५, ठुमरी, तराना २३६, तिरवट या त्रिवट, होरी-धमार, गजल, कव्वाली, दादरा २३७, सादरा, खमसा, लावनी, चतुरंग, सरगम, रागमाला, लक्षण-गीत २३८, भजन-गीत, कीर्तन, गीत, कजली (कजरी) चौती, लोक-गीत २३९

### प्राचीन आलाप-तान तथा अन्य

परिभाषाएँ २४१

स्वस्थान २४१, रूपकालाप, आलप्ति-गान, आविर्भाव-तिरोभाव २४२, स्थाय, मुखचालन, आधिपतिका, निबद्ध-अनिबद्ध गान, विदारी, अल्पत्व २४३, बहुत्व, पकड़ २४४, मीड़, सूत, आंदोलन, गमक, कण, तान, शुद्ध तान २४५, कूटतान, मिश्रतान, खटके की तान, झटके की तान, वक्रतान, अचरक तान, सरोक तान, लड़त तान, सपाट तान २४६, गिटकरी तान, जबड़े की तान, हलक तान, पलट-तान, बोल-तान, आलाप, बढ़त २४७

### सामवेदकालीन संगीत २४८

आधुनिक आलाप-तान २५५



आलाप में लय की गति, गमक-प्रकार २५७  
रागों का दस विभागों में वर्गीकरण

करने का प्राचीन सिद्धांत २६०

ग्राम-राग २६०

आदत-जिगर-हिसाब २६३

भारतीय स्वरलिपि पद्धति २६५

१४४ रागों का वर्णन (प्रथम वर्ष से

अष्टम वर्ष तक) २६६-३३६

अड़ाना, अल्हैया बिलावल, अहीर भैरव, आनन्द भैरव २७१, आभोगी, आरभी या आरभटी २७२, आसावरी, आभोगी-कानड़ा, कलावती, कामोद २७३, काफी, काफीकानड़ा २७४, कालिगड़ा, कीर-वाणी, कुकुभ, केदार २७५, कोमल ऋषभ आसावरी, कौशिक कानड़ा अथवा कौंसी २७६, खट, खमाजी, दुर्गा २७७, खंवावती, गांधारी, गारा २७८, गूजरी या गूर्जरी तोड़ी, गुणकरी या गुणक्री २७९, गुणकली, गोरख कल्याण, गौड़-मल्हार २८०, गौड़-सारंग, गौरी (भैरव थाट), गौरी (पूर्वी थाट) २८१, चन्द्रकांत, चन्द्रकौंस, चारुकेशी, चांदनीकेदार २८२, छायानट, जयंतमल्हार २८३, जलधर-केदार, जयजयवती, जैतश्री या जैताश्री २८४, जैत या जेत, जैतकल्याण २८५, जोग, जोगिया २८६, जोगकौंस, जौन-पुरी २८७, शिक्षोटी, तिलककामोद, तिलंग २८८, तोड़ी, दरबारी, दरबारी-कानड़ा २८९, दुर्गा, देवगिरी बिलावल, देवगांधार २९०, देशकार, देस, देसी २९१, धनाश्री, नंद, नट बिलावल, नट बिहाग २९३, नटमल्लार, नायकीकानड़ा २९४, नारायणी, पटदीप, पटमंजरी २९५, पंचम, प्रदीपकी या पटदीपकी २९६, परज, पहाड़ी, पीलू २९७, पूरिया, पूरिया धनाश्री २९८, पूर्वी, पूर्वाकल्याण या पूरिया कल्याण, वृन्दावनी सारंग २९९, बरवा, वसंत ३००, वसंत बहार, बहार ३०१, बागेश्री, बिलासखानी तोड़ी, बिलावल ३०२, बिहाग, बिहागड़ा, बंगाल भैरव ३०३, भटियार या भटिहार, भीम, भीमपलासी ३०४, भंखार, भूपाल तोड़ी, भूपाली, भैरव ३०५, भैरव-बहार,

भैरवी ३०६, मधुमाद सारंग, मधुवन्ती, मल्लार या मल्हार ३०७, मलुहाकेदार, मारवा ३०८, मारू बिहाग, मालगुंजी, मालश्री ३०९, मालीगौरा, मालकोश ३१०, मियाँ मल्लार, मियाँ की सारंग ३११, मुल्तानी, मेघ, मेघमल्लार ३१२, माँड, यमन ३१३, यमनकल्याण, यमनी बिलावल ३१४, रागेश्री, रामकली, रामदासी मल्लार ३१५, रेवा, ललित, ललितपंचम ३१६, ललितागौरी, विभास (भैरव थाट), शंकरा ३१७, श्याम-कल्याण, शहाना ३१८, शुद्ध सारंग, शुक्ल बिलावल, शुद्ध कल्याण ३१९, शिवमत भैरव, सरपरदा, साजगिरी ३२०, सिंदूरा, सुघराई, सूरमल्लार ३२१, सूहा, सोहनी, श्री ३२२, हंसकंकणी, हंसध्वनि, हमीर ३२३, हिडोल, हेमन्त ३२४ ।

ताल-मात्रा-लय-विवरण ३२५

लय विवरण, लय की व्याख्या और उसे लिपिबद्ध करने का तरीका ३३१

उत्तर भारतीय संगीत-पद्धति की

कुछ मुख्य तालें ३३७

तबला एवं पखावज पर दोनों हाथों के

अलग-अलग तथा संयुक्त आघात

का वर्णन ३४३

ताल वाद्य-वादकों के गुण-दोष ३४८

वाद्ययंत्र परिचय, वाद्यों के प्रकार ३४९

तत वाद्य या तंतु वाद्य, सुषिरवाद्य, अव-नद्ध वाद्य, घन वाद्य ३४९, सितार ३५०, सितार के अंग ३५३, सितार मिलाना ३५५, चल ठाठ और अचल ठाठ, सितार के बोल ३५६, तबला ३५७, तबला के घराने ३५८, तबला मिलाना, तबला के दस वर्ण ३६१, मृदंग खोल या पखावज ३६२, पखावज की बनावट, पखावज के बोल ३६३, तानपूरा या तम्बूरा ३६५, तानपूरा के अंग ३६६, तानपूरा के तार मिलाना ३६६, तानपूरा के स्वरों की कम्पन संख्या ३७०, वाँयलिन (बेला) ३७३, वाँयलिन के अंग ३७४, वीणा ३७५, इसराज, इसराज के मुख्य अंग, इसराज के चार तार ३७७, इसराज के परदा,



बाँसुरी, बाँसुरी में सरगम निकालने की विधि ३७६

### गायकों के प्रमुख घराने ३८०

ग्वालियर-घराना ३८०, जयपुर-घराना (अलिया फ़तू) ३८१, दिल्ली घराना, पटियाला या पंजाब घराना ३८२, पंजाब घराना (अलिया फ़तू), पंजाब या पटियाला घराना, किराना घराना, आगरा घराना ३८४, दिल्ली घराना ३८५

### संगीत के विभिन्न घरानों की

#### परम्परा ३८६

१-तानसेन वंशावली ३८६, २-तानसेन के कन्यावंश के शिष्य ३८६, ३-ग्वालियर-घराना (प्रथम) ३८०, ४-ग्वालियर-घराना (द्वितीय), ५-सहस्रवान-घराना ३८१, ६-उदयपुर-घराना ३८२, ७-जयपुर-घराना, ८-आगरा-घराना ३८३, ९-किराना-घराना (प्रथम) ३८४, १०-किराना-घराना (द्वितीय), ११-किराना-घराना (तृतीय) ३८५, १२-अतरोली-घराना ३८६, १३-विष्णुपुर-घराना ३८७, १४-वाराणसी घराना ३८८, १५-पंजाब-घराना (अलिया-फ़तू) ३८६, १६-विष्णु दिगंबर, १७-विष्णु नारायण ४००, १८-इमदाद-खानी-घराना ४०१, १९-मुश्ताक अली खाँ (सितार), २०-सरोदिया गुलाम अली खाँ का घराना ४०३, २१-सरोदिया अलाउद्दीन खाँ का घराना ४०४, २२-कुदीसिंहपखावज-घराना २३-ग्वालियर का मृदंग-घराना, २४-नाना साहबपानसे पखावज-घराना, २५-लखनऊ का तबला घराना ४०५, २६-वाराणसी तबला-घराना (प्रथम) ३८६, २७-वाराणसी तबला-घराना (द्वितीय), २८-वाराणसी तबला-घराना (तृतीय), २९-वाराणसी तबला-घराना (चतुर्थ), ३०-फ़र्रुखाबाद तबला-घराना (प्रथम) ४०७, ३१-फ़र्रुखाबाद तबला-घराना (द्वितीय), ३२-मौलाबख्श तबला-घराना, ३३-पंजाब तबला-घराना ४०८, ३४-दिल्ली तबला-घराना, ३५-मेवाती घराना ४०६

### कथक नृत्य के घराने ४१०

लखनऊ घराना, जयपुर घराना ४१०, बनारस घराना ४१२

### ताल-वाद्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

#### और पखावज के घराने ४१३

पंजाब-घराना, कोदऊसिंह (दतिया) घराना, नाना-पानसे घराना, रामपुर-घराना ४१४, बाँदा-घराना, बंगाल-घराना, दरभंगा-घराना, गया-घराना, बनारस-घराना, अवधी (अयोध्या)-घराना, श्रीनाथद्वारा-घराना, मथुरा-घराना ४१५

### छह राष्ट्रों का संगीत (चीन, जापान,

#### ग्रीस, मिश्र, अरब, ईरान) ४१६

चीन का संगीत ४१६, जापान का संगीत ४२१, ग्रीस का संगीत ४२४/१, मिश्र का संगीत ४२४/३, अरब का संगीत ४२४/५, ईरान का संगीत ४२६

### पाश्चात्य स्वरलिपि-पद्धति ४३२

सोलफ़ा स्वरलिपि-पद्धति ४३२, न्यूम्स स्वरलिपि पद्धति, चीव स्वरलिपि पद्धति, स्टाफ़ स्वरलिपि पद्धति ४३३, सरल ताल-चिह्न ४४१, 'कम्पाउण्ड टाइम' अर्थात् योगिक काल ४४४

### पाश्चात्य संगीत में रिदम

#### (Rhythm) ४४७

### पाश्चात्य संगीत में हारमोनी और

#### मेलॉडी ४४८

कण-स्वर और उनके प्रकार ४५५,

### पाश्चात्य संगीत-पद्धति में ठाठ व

#### रागों का स्वरांकन ४५६

बिलावल ठाठ, खमाज ठाठ, काफ़ी ठाठ ४५६, आसावरी ठाठ, भैरवी ठाठ ४६०, भैरव ठाठ, पूर्वी ठाठ, तोड़ी ठाठ ४६१, कल्याण ठाठ, मारवा ठाठ ४६२

### पाश्चात्य स्वरलिपि-लेखन ४६३

### भारतीय वृन्दवादन का ऐतिहासिक

#### विवेचन ४६५

### संगीत के कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थ ४७०

नाट्य शास्त्र ४७०, मतंगकृत 'बृहद्देशी'



४७१, नारदकृत 'नारदीय शिक्षा', नारद-कृत 'संगीत मकरन्द', जयदेव-कृत 'गीत गोविन्द' ४७२, शाङ्गदेव-कृत 'संगीत-रत्नाकर' ४७३, 'स्वरमेल कला-निधि' ४७४, 'मानकुतूहल', राग-तरंगिणी ४७५, पुण्डरीक विट्ठल के ग्रन्थ ४७५, सोमनाथ-कृत 'राग-विवोध', दामोदर-कृत 'संगीत दर्पण' ४७६, अहोबल-कृत 'संगीत पारिजात', हृदयनारायणदेव-कृत 'हृदय कौतुक' और 'हृदय प्रकाश' ४७७, अनूपसिंहकृत 'अनूप संगीत-विलास', 'अनूप संगीत-रत्नाकर', 'अनूपाकुश', 'वैकटमखी-कृत 'चतुर्दण्डप्रकाशिका' ४७८, श्रीनिवास-कृत 'रागतरंग विवोध', मुहम्मद रजा-कृत 'नगमाते-आसफ़ी', सवाई प्रतापसिंह-कृत 'संगीत-सार', कृष्णानन्द व्यास-कृत 'संगीत-राग कल्प-द्रुम' ४७९

### संगीतकारों का संक्षिप्त परिचय ४८०

जयदेव ४८०, शाङ्गदेव ४८१, अमीर खुसरो, गोपाल नायक ४८२, स्वामी हरिदास ४८३, तानसेन ४८४, वैजूबावरा, सदारंग-अदारंग ४८७, बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर ४८८, पं० रामकृष्ण वझे ४८९, अब्दुल करीम खाँ ४९०, अल्लादियाखाँ, बड़े गुलाम अलीखाँ ४९१, विनायकराव पटवर्धन, श्री कृष्णनारायण रातांजन्कर ४९२, भास्कर बुवा वखले ४९३, ओम्कारनाथ ठाकुर ४९४, फ़ैयाज खाँ, नारायण मोरेश्वर खरे ४९५, डी० वी० पलुस्कर, अमीर खाँ ४९६, गिरिजा-देवी, कृष्णराव शंकर पंडित ४९७, कुमार गन्धर्व ४९८, किशोरी अमोणकर, पंडित भीमसेन जोशी ५००, हदू खाँ ५०१, हस्सू खाँ ५०२, शिवकुमार शर्मा ५०३, अल्लारखा खाँ ५०४, अहमदजान थिर-कुवा, नाना पानसे ५०५, अयोध्या प्रसाद ५०६, स्वामी पागलदास ५०७, अला-उद्दीन खाँ ५०८, अलीअकबर खाँ, रवि-शंकर ५०९, विलायत खाँ ५१०, अब्दुल हलीम जाफ़र खाँ, निखिल बनर्जी ५११, मुश्ताक अली खाँ, इलियास खाँ ५१२, ममीत खाँ, रजा खाँ, अन्नपूर्णा देवी ५१३, एन० राजम्, शरन रानी, जरीन दारूवाला (शर्मा) ५१४, विस्मिल्लाह

खाँ, किशन महाराज, जाकिर हुसैन, करामतुल्ला खाँ ५१५, अनोखेलाल, अमीर हुसैन खाँ, बीरू मिश्र, पं० बाचा मिश्र ५१६, पं० रामसहाय, इनाम अली, नत्थू खाँ, रवीन्द्रनाथ टैगोर ५१७, इनायत खाँ ५१८, पं० विष्णुनारायण भातखण्डे ५२०, पं० विष्णुदिगंबर पलुस्कर ५२१

### पाश्चात्य संगीतकार ५२२

बाख़, मोज़ार्ट, बीथोविन ५२२, शूवर्ट ५२३

### संगीत और जीवन ५२४

### संगीत की शक्ति ५२७

### संगीत और छन्दशास्त्र ५३१

पिगल शास्त्र (छंद-शास्त्र) और ताल ५३६

### रागों का रस एवं भावों से सम्बन्ध ५४३

### राग और ऋतुएँ ५४६

### संगीत और रस ५४८

### ताल और रस ५५१

### ललित कलाओं में संगीत का स्थान ५५८

### विभिन्न प्रदेशों की लोकप्रिय

गीत-शैली (धुनें) व नृत्य ५६२

### लोक संगीत का भाव पक्ष ५६६

### भारतीय वाद्य-परम्परा ५६८

### लोक-संगीत के वाद्ययंत्र ५७५

तत लोक-वाद्य ५७६, सुषिर वाद्य ५७७, अवनद्ध वाद्य ५७८, घन वाद्य ५८१, वाद्य वर्गीकरण ५८४

### पाश्चात्य संगीत के वाद्ययंत्र ५८५

### संगीत में काकु ५८१

### भारतीय संगीत में सौंदर्य-बोध ५८४

### काव्य और संगीत ५८८

### शास्त्रीय संगीत और लोक-संगीत ५८९

### कंठ संस्कार (Voice Culture) ६००

ग्लोटिस की विभिन्न अवस्थाएँ ६०६, स्वर-यंत्र की रचना ६०७, स्वर-यंत्र का ऊपरी दृश्य ६०८

### कंठ-साधना और पार्श्व-गायन ६१२

### राग, निर्माण और स्वर-रचना के

सिद्धांत ६१७



संगीत निर्देशन और उसकी कला ६२१

फिल्म संगीत की ऐतिहासिक परम्परा  
और उसके घराने ६३०

नटराज-उपाधि का रहस्य ६४६

तांडव और लास्य की उत्पत्ति ६५०

नृत्य-निर्देशन (Choreography)

की कला ६५१

मंच का नृत्य ६५२, फ़िल्म का नृत्य ६५३,

फ़िल्म के नृत्य का शॉट डिवीजन ६५४

सरल एवं शास्त्रीय संगीत की

तुलना ६५८

संगीत का मनोविज्ञान ६५६

वृन्दगान, वाद्यवृन्द, गीत-नाट्य और

नृत्य-नाट्य ६६२

गाथागान, नृत्यगीत और गीतकाव्य ६६८

भारतीय नृत्य-कला ६७१

भरतनाट्यम्, कथकलि ६७२, मणिपुरी,

कथक ६७३, कुचिपुडी ६७४, ओडिसी,

मोहनी अट्टम् ६७५

नृत्याचार्य, नर्तक तथा नर्तकी के

गुण दोष ६७७

वैणिक (वीणावादक), वांशिक

(बांसुरी वादक), कविताकार,

नर्तक, नर्तकी के गुण-दोष एवं

कलाकारों के भेद ६७६

रवीन्द्र संगीत ६८०

कवि गुरु रवीन्द्रनाथ की वंशावली ६८१,

रवीन्द्र संगीत का विश्लेषण ६८४, रवीन्द्र

संगीत का आधार, रवीन्द्र संगीत का

हिन्दी रूपान्तरण ६८५, रवीन्द्र संगीत के

प्रकार ६८६, रवीन्द्र संगीत में ताल या

छंद ६८८, रवीन्द्र संगीत की विशेषताएँ

६९०

नज़रुल संगीत ६९५

बंगाल का लोक संगीत (भवइया,

गंभीरा, बाउल, भटियाली,

चटका और कीर्तन) ७०६

भवइया ७०६, गंभीरा ७०७, बाउल

७०६, भटियाली, चटका ७१०, कीर्तन

७११

मंच-प्रदर्शन और संगीत-समारोह ७१३

चित्रपट-संगीत, नाट्य-संगीत और

ऑडियो-विजुअल-विधा ७२०

नाट्य और संगीत ७२६

शोध प्रबन्ध और उनकी रूपरेखा ७३४

कर्नाटक संगीत की स्वरलिपि

यद्धति ७३८

पाश्चात्य देशों में अवनद्ध वाद्यों

का विकास ७४७

स्नेअर ड्रम ७५१, बेस ड्रम ७५२, टिम्पनी,

टेनर ड्रम ७५३

पंजाब का गुरमति संगीत ७५४

संगीत-वाद्यों में ध्वनि तरंगें ७६२

संगीत वाद्यों में तरंगें ७६३

ध्वनि विज्ञान से सम्बन्धित

महत्त्वपूर्ण तथ्य ७६८

विभिन्न माध्यमों में ध्वनि का वेग

तथा प्रसारण ७७१

०°C पर गैसों में ध्वनि का वेग, द्रवों

द्वारा ध्वनि का प्रसारण ७७१, लकड़ी में

ध्वनि का वेग, धातुओं के द्वारा ध्वनि

का वेग ७७२

पाश्चात्य संगीत के कुछ शब्दों का

स्पष्टीकरण ७७३

स्वरलिपि चिन्ह परिचय ७८५

□ □ □



## संगीत की धरोहर

भारतीय संगीत तो हमारी धरोहर है ही, लेकिन एक संगीतकार की धरोहर है संगीत-शास्त्र, स्वरविज्ञान और संगीत-प्रदर्शन। इन सबका महत्त्व जाने बिना संगीत के क्षेत्र में उन्नति करना कठिन है। इनमें से किसी एक का अभाव होने पर संगीत-जीवन में एक अधूरापन बना रहता है जो संगीतकार को जीवन पर्यन्त कचोटता रहता है, भले ही वह किसी भी ऊँचाई पर क्यों न पहुँच जाए।

### पुस्तकालय और संगीत

संगीतकार के लिए पुस्तकालय रखना नितांत आवश्यक है।

अध्ययन करते समय वह अपना दृष्टिकोण संकीर्ण न बनाए। प्रत्येक पुस्तक का, चाहे वह भारतीय लेखक की हो अथवा विदेशी लेखक की, मनन अवश्य करना चाहिए। इस तथ्य को हमेशा याद रखें कि प्रत्येक भाषा में अच्छे लेखक हुए हैं, अतः अपने दृष्टिकोण को उदार बनाते हुए आप जो अध्ययन करेंगे, उससे आपका ज्ञान सर्वतोन्मुखी होगा। आपके संगीत की पृष्ठभूमि उदार और गंभीर बनेगी।

यदि आर्थिक स्थिति आपको पुस्तक खरीदने की अनुमति नहीं देती, तो किसी सार्वजनिक पुस्तकालय में जाकर अपनी इच्छित पुस्तकों की खोज करिए और उनका अध्ययन कीजिए। जो व्यक्ति सफल संगीतज्ञ बनने का दृढ़ संकल्प कर लेगा, उसे आर्थिक बाधाएँ कभी नहीं रोक सकेंगी। उसके जीवन में एक दिन ऐसा अवश्य आएगा, जबकि सफलता उसके चरण चूमेगी।

संगीत का आदर्श है, ज्ञान के सुनहले रत्नों को एकत्रित करके जाज्वल्यमान प्रासाद का निर्माण करना तथा सार्वभौमिक मानव-जीवन का ऐक्य व संगठन। संगीतज्ञ को ऐसी सांगीतिक रचना का सृजन करना चाहिए, जो प्रांत व देश की सीमाओं की विभिन्नताओं में रहते हुए भी एक अव्यक्त सूत्र में मानव-हित तथा



सहयोग के बिखरे हुए पल्लवों का वंदनवार कलामंदिर के चारों ओर बाँध सकने योग्य हो। इस आदर्श की पूर्ति तभी हो सकती है, जबकि आप अपने शास्त्रीय (थ्योरिटिकल) ज्ञान की अभिवृद्धि करेंगे।

जीवन में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है, अतएव आपको अपना सांगीतिक ज्ञान अधिक-से-अधिक मात्रा में बढ़ाना चाहिए और यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि आपको विश्व में भारत की सांस्कृतिक धरोहर का प्रतिनिधित्व करना है। आजकल अन्य राष्ट्रों के सांस्कृतिक मंडल भारत में नियमित रूप से आते रहते हैं और अपने देश के दूसरे राष्ट्रों में जाते हैं। इन शिष्ट-मंडलों का ध्येय तभी पूरा हो सकता है, जबकि इनके सदस्यगण उच्च कोटि के विद्वान्-कलाकार हों और वे अपनी प्रतिभा से अन्य राष्ट्रीय नेताओं एवं जनसमुदाय को प्रभावित कर सकें। सांस्कृतिक आदान-प्रदान से ही एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से प्रगाढ़ मैत्री स्थापित करता है। इसलिए जिस देश की सांस्कृतिक थाती जितनी उच्च कोटि की होगी, वह देश उतना ही अधिक दूसरे देशों को प्रभावित कर सकेगा। अपने देश के मान, मर्यादा और संस्कृति की रक्षा का उत्तरदायित्व संगीतकार पर भी है। इसी लिए पुस्तकों के पठन-पाठन की आदत पर हमारे विद्वान् जोर देते आए हैं।

### स्वर-विज्ञान और संगीत

स्वर की विभिन्न धाराओं को सांगीतिक रूप देने के लिए स्वर की पूर्ण फिलॉसफी (तत्त्व-ज्ञान) को समझ लेना आवश्यक है।

स्वर के उच्चारण में दस प्रकार के मोड़ या हिस्सों पर ध्यान रखना चाहिए। पहले मोड़ पर, स्वर को शनैः शनैः प्रसारित करना चाहिए। दूसरे मोड़ पर प्रसारित किए हुए स्वर में गूँज भरनी चाहिए। तीसरे मोड़ पर, गुंजित वायुमंडल में गीतों के भावों का इस प्रकार सम्पादन करना चाहिए कि प्रत्येक भाव स्वर की गहराई में समाविष्ट हो जाए। चौथे मोड़ पर, स्वर से घनत्व शक्ति स्थिर करनी चाहिए। पाँचवें मोड़ पर, स्वर को अधिक-से-अधिक फैलाइए, जिससे संपूर्ण आरोह का दबाव पूर्णरूपेण बैठ जाए। छठे मोड़ पर, स्वर-संधान करके गीत की प्रथम सीढ़ी बनाइए, जिससे आप गीत-सौंदर्य को स्थित कर सकें। सातवें मोड़ पर अवरोह का प्रस्तुतीकरण करके थोड़े-से झटके के साथ स्वर को अधिक व्यापक बनाकर पुनः गूँज पैदा कीजिए। आठवें मोड़ पर, गीत के दूसरे क्लाइमेक्स का निर्माण कीजिए, जहाँ आपको स्वर का घनत्व इतना अल्प कर देना होगा, जिससे उसका सांगीतिक रूप सुन्दर बन सके। नवें मोड़ पर, स्वर में इतने प्रभाव का आविर्भाव कीजिए कि उसकी गतिशीलता में गीत के भावों को स्वाभाविक रूप में आगे बढ़ने के लिए स्वस्थ वातावरण मिल जाए। अंतिम दसवें मोड़ पर, स्वर का तीसरा क्लाइमेक्स बनाते हुए आरोह-अवरोह की दोनों गतियों के 'प्रलपित बिन्दु' पर ध्यान केन्द्रित कीजिए।

स्वरविज्ञान की इस थ्योरी से गाए गीत पर गायक को अधिक परिश्रम के साथ सावधानी बरतनी होगी। प्रारंभ में कुछ बाधाएँ आ सकती हैं, किंतु जब



वह परिस्थिति का अभ्यस्त हो जाएगा, तब उसके लिए यही कार्य सरल हो जाएगा। वास्तव में स्वर की अनेक प्रक्रियाएँ हैं। इन प्रक्रियाओं की अनेक उप-प्रक्रियाएँ भी हैं, जिनमें से मुख्य हैं—‘कीवल्य’, ‘जीणेल्य’ और ‘माणील्य’। ‘कीवल्य’ में स्वर का अर्द्ध घनत्व होता है, ‘जीणेल्य’ में स्वर का पूर्ण घनत्व बनकर स्पष्ट-जैसी टंकार होने लगती है, जिससे स्वर में स्पष्टता व स्वच्छंदता पूर्णरूपेण आ जाती है और ‘माणील्य’ में स्वर के तीन संयुक्त घुमाव होते हैं, जिनको आप अनेक रागों में सुगमता से अभिव्यक्त कर सकते हैं। ‘माणील्य’ का प्रयोग विशेष रागों में ही होता है, हर स्थान पर लागू नहीं हो सकता।

### गोष्ठियाँ और संगीत

गोष्ठियाँ संगीतकारों के लिए विशेष उपयोगी हैं; क्योंकि गोष्ठियों के अवसर पर अनेक कलाकारों का मिलन होता है, विचार-विमर्श होता है और होता है कला का परस्पर आदान-प्रदान। इससे संगीत के वातावरण में एक नूतन चेतना का सृजन हो जाता है, जो कलाकार के विकास का प्रतीक बनती है। संगीतकारों को गोष्ठियों में भाग लेने में बिल्कुल संकोच नहीं करना चाहिए। संकोचवश उनमें शामिल नहीं होंगे, तो उनके सांगीतिक ज्ञान की परिधि सीमित रह जाएगी। सफल संगीतज्ञ के लिए समय-समय पर गोष्ठियों में भाग लेते रहना उसके विकास का एक चरण है। ब्रिटेन के विख्यात संगीतज्ञ मिस्टर एलविन उल्फ ने सफल संगीतज्ञ बनने के उपकरणों में लिखा है—“वे व्यक्ति सौभाग्यशाली हैं, जिनको अधिक-से-अधिक गोष्ठियों में शामिल होने का सुअवसर प्राप्त होता रहता है, इससे उनके जीवन का विकास कला की सही दिशा की ओर होगा। वे कला के शाश्वत स्वरूप का निर्माण करने में पूर्ण सफल होंगे। वास्तव में गोष्ठियाँ संगीतज्ञों के लिए संजीवनी शक्ति वही जाएँ, जो अतिशयोक्ति नहीं होगी।” विश्व के अनेक संगीतज्ञों ने सिर्फ गोष्ठियों में शामिल होने के बल पर ही संगीत के क्षेत्र में सफलता उपलब्ध की है।

गोष्ठियों से कलाकारों का परिष्कार तथा सुन्दरतम रूप निर्मित होता रहता है। उनमें भाग लिए बिना आपको यह नहीं मालूम पड़ सकता कि आप कितने पानी में हैं, आपकी कला में क्या-क्या खामियाँ हैं और उनको कैसे ठीक किया जा सकता है। वहाँ आपको कुछ मौलिक सुझाव भी मिल सकते हैं। लोकप्रियता व कीर्ति का उपार्जन भी बिना गोष्ठियों के नहीं हो सकता। इसलिए संगीत की अभिवृद्धि में गोष्ठियों का बड़ा महत्त्व है, जिसका हम अनुमान नहीं लगा पाते।

संगीत सम्बन्धी ग्रंथों का अध्ययन, संगीत गोष्ठियों में नियमित रूप से भाग लेना और ध्वनि विज्ञान से परिचित होना ही सांगीतिक जीवन को उत्कर्ष की ओर ले जाता है और इन्हीं को संगीतकार की धरोहर समझना चाहिए।



## भारतीय संगीत की उत्पत्ति

संगीत-कला की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, इस विषय पर विद्वानों के विभिन्न मत हैं, जिनमें से कुछ का उल्लेख इस प्रकार है :—

१. संगीत की उत्पत्ति आरम्भ में वेदों के निर्माता ब्रह्मा द्वारा हुई। ब्रह्मा ने यह कला शिव को दी और शिव के द्वारा सरस्वती को प्राप्त हुई। सरस्वती को इसी लिए 'वीणा-पुस्तक-धारिणी' कहकर संगीत और साहित्य की अधिष्ठात्री माना गया है। सरस्वती से संगीत-कला का ज्ञान नारद को प्राप्त हुआ। नारद ने स्वर्ग के गंधर्व, किन्नर तथा अप्सराओं को संगीत-शिक्षा दी। वहाँ से ही भरत, नारद और हनुमान आदि ऋषि संगीत-कला में पारंगत होकर भू-लोक (पृथ्वी) पर संगीत कला के प्रचारार्थ अवतीर्ण हुए।

२. एक ग्रंथकार के मतानुसार, नारद ने अनेक वर्षों तक योग-साधना की, तब शिव ने उन्हें प्रसन्न होकर संगीत-कला प्रदान की। पार्वती की शयनमुद्रा को देखकर शिव ने उनके अंग-प्रत्यंगों के आधार पर रुद्रवीणा बनाई और अपने पाँच मुखों से पाँच रागों की उत्पत्ति की। तत्पश्चात् छठा राग पार्वती के मुख द्वारा उत्पन्न हुआ। शिव के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और आकाशोन्मुख होने से क्रमशः भैरव, हिंडोल, मेघ, दीपक और श्री राग प्रकट हुए तथा पार्वती द्वारा कौशिक राग की उत्पत्ति हुई। 'शिवप्रदोष' स्तोत्र में लिखा है कि त्रिजगत् की जननी गौरी को स्वर्ण-सिंहासन पर बैठाकर प्रदोष के समय शूलपाणि शिव ने नृत्य करने की इच्छा प्रकट की। इस अवसर पर सब देवता उन्हें घेरकर खड़े हो गए और उनका स्तुति-गान करने लगे। सरस्वती ने वीणा, इन्द्र तथा ब्रह्मा ने करताल बजाना आरंभ किया, लक्ष्मी गाने लगीं और विष्णु भगवान् मृदंग बजाने लगे। इस नृत्यमय संगीतोत्सव को देखने के लिए गंधर्व, यक्ष, पतंग, उरग, सिद्ध, साध्य, विद्याधर, देवता, अप्सराएँ आदि सब उपस्थित थे।

३. 'संगीत-दर्पण' के लेखक दामोदर पंडित (सन् १६२५ ई०) के मतानुसार, संगीत की उत्पत्ति ब्रह्मा से ही हुई। अपने मत की पुष्टि करते हुए उन्होंने लिखा है :—

**द्रुहिणेत यद्विष्टं प्रयुक्तं भरतेन च ।**

**महादेवस्य पुरतस्तन्मार्गाख्यं विमुक्तवम् ॥**

अर्थात्—ब्रह्मा (द्रुहिण) ने जिस संगीत को शोधकर निकाला, भरत मुनि ने महादेव के सामने जिसका प्रयोग किया तथा जो मुक्तिदायक है, वह 'मार्गी' संगीत कहलाता है।

इस विवेचन से प्रथम मत का कुछ अंशों में समर्थन होता है। आगे चलकर इसी पंडित ने सात स्वरों की उत्पत्ति पशु-पक्षियों द्वारा इस प्रकार बताई है :—



मोर से षड्ज, चातक से ऋषभ, बकरा से गांधार, कौआ से मध्यम, कोयल से पंचम, मेढक से धैवत और हाथी से निषाद स्वर की उत्पत्ति हुई।

४. फ़ारसी के एक विद्वान का मत है कि हज़रत मूसा जब पहाड़ों पर घूम-घूमकर वहाँ की छटा देख रहे थे, उसी वक्त ग़ैब से एक आवाज़ आई (आकाश-वाणी हुई) कि 'या मूसा हकीक़ी, तू अपना असा (एक प्रकार का डंडा, ज़ाफ़ीरों के पास होता है) इस पत्थर पर मार!' यह आवाज़ सुनकर हज़रत मूसा ने अपना असा जोर से उस पत्थर पर मारा, तो पत्थर के सात टुकड़े हो गए और हर-एक टुकड़े में से पानी की धारा अलग-अलग बहने लगी। उसी जल-धारा की आवाज़ से अस्सामलेक हज़रत मूसा ने सात स्वरों की रचना की, जिन्हें 'सा रे ग म प ध नि' कहते हैं।

५. एक अन्य फ़ारसी विद्वान का कथन है कि पहाड़ों पर 'मूसीकार' नाम का एक पक्षी होता है, जिसकी चोंच में बाँसुरी की भाँति सात सूराख होते हैं। उन्हीं सात सूराखों से सात स्वर ईजाद हुए।

६. पाश्चात्य विद्वान फ़्रायड के मतानुसार, संगीत की उत्पत्ति एक शिशु के समान, मनोविज्ञान के आधार पर हुई। जिस प्रकार बालक रोना, चिल्लाना, हँसना आदि क्रियाएँ आवश्यकतानुसार स्वयं सीख जाता है, उसी प्रकार मानव में संगीत का प्रादुर्भाव मनोविज्ञान के आधार पर स्वयं हुआ।

७. जेम्स लॉग के मतानुयायियों का भी यही कहना है कि पहले मनुष्य ने बोलना सीखा, चलना-फिरना सीखा और फिर शनैः-शनैः क्रियाशील हो जाने पर उसके अन्दर संगीत स्वतः उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार संगीत की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत पाए जाते हैं। इनमें कौनसा मत ठीक है, यह कहना कठिन है।

प्राचीन ग्रन्थों में संगीत के चार मुख्य मत पाए जाते हैं—१. शिव-मत या सोमेश्वर-मत, २. कृष्ण-मत या कल्लिनाथ-मत, ३. भरत-मत और ४. हनुमन्मत।

### संगीत के इतिहास-काल का विभाजन

भारतीय संगीत के इतिहास को निम्नांकित चार भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

१. अति प्राचीन काल (वैदिक काल)—२००० ईसा-पूर्व से १००० ईसा-पूर्व तक।

२. प्राचीन काल (वैदिक सांस्कृतिक परम्परा समाप्त हो जाने बाद)—१००० ईसा-पूर्व से सन् ८०० ई० तक।

३. मध्य-काल (मुस्लिम-काल) ८०० ई० से १८०० ई० तक।

४. आधुनिक काल—१८०० ई० से वर्तमान काल तक।



# उत्तर भारतीय संगीत

## का

## संक्षिप्त इतिहास

### १-हिन्दू काल

**संगीत का जन्म :** भारत में प्रायः समस्त विद्याओं के लिए कोई न कोई देवी या देवता निश्चित कर दिए गए हैं। इसी आधार पर सरस्वती को विद्या तथा संगीत की देवी माना गया है। माँ सरस्वती के हाथों में वीणा, शंकर के हाथों में डमरू तथा स्वर्ग में गंधर्व (गायन करने वाले), किन्नर (वादन करने वाले) और अप्सरा (नृत्य करने वाली स्त्रियाँ) आदि के उल्लेख से स्पष्ट है कि भारतीय संगीत अत्यन्त प्राचीन है।

एक पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं—‘मेरी राय में भारतीय संगीत का जन्म ईसा से लगभग पन्द्रह-बीस सहस्र वर्ष पूर्व हुआ होगा।’ परन्तु आधुनिक विद्वानों के मतानुसार और भारती पुरातत्त्व विभाग की खुदाई के द्वारा प्राप्त मूर्तियों तथा शिलालेखों से यह निश्चित हो चुका है कि भारतीय संगीत का जन्म ईसा से आठ-नौ हजार वर्ष पूर्व हो चुका था। एक इतिहासकार ने लिखा है कि ‘आज जब हम भारतीय संगीत की गहराई को देखते हैं तो उससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतीय संगीत का जन्म अवश्य ही ईसा से आठ-नौ सहस्र वर्ष पूर्व हुआ होगा। संगीत में इतनी गहराई आने के लिए इतना ही समय चाहिए, इससे कम नहीं।’ इतिहास के विद्वानों का मत है कि भारतीय संगीत की नींव द्रविड़ों के संगीत पर आधारित है। द्रविड़ों को संगीत के वैज्ञानिक रूप का ज्ञान था और चिकित्सा के क्षेत्र में भी उन्होंने संगीत का प्रयोग किया था।

पंजाब के मौन्टगोमरी ज़िले में सन् १९२४ ई० में मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई हुई थी, उसमें एक मूर्ति शिवाजी के ताण्डव नृत्य जैसी मुद्रा में प्राप्त हुई है तथा एक नृत्यरत मनुष्य की खंडित मूर्ति उपलब्ध हुई है। एक चित्र में एक पुरुष को व्याघ्र के समक्ष ढोल बजाते हुए अंकित किया गया है। इसे अनुमानतः ईसा से पाँच हजार वर्ष पूर्व का माना जाता है। खण्डहरों की दीवारों पर सांगीतिक चित्र भी मिले हैं, जिससे प्रकट होता है कि उस काल में हमारा संगीत मिश्र, यूनान और मेसोपोटामिया इत्यादि के संगीत से श्रेष्ठ था।



**वैदिक युग :** भारत में आर्यों के आगमन से वैदिक युग का प्रारम्भ माना जाता है। इस काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र नामक वर्ग स्थापित हो गए थे। ब्राह्मण ही अन्य तीन वर्गों को विद्या तथा संगीत का ज्ञान प्राप्त कराते थे। इस प्रकार संगीत की मुख्य बागडोर ब्राह्मणों के हाथों में थी। स्त्रियाँ भी इस युग में गायन, वादन तथा नृत्य तीनों में भाग लिया करती थीं। स्त्रियों द्वारा वीणा वादन इस युग की एक विशेषता है। वे संगीत के सार्वजनिक आयोजनों में बिना किसी हिचकिचाहट के भाग लिया करती थीं और समाज, संगीतज्ञों को आदर की दृष्टि से देखता था। एक विद्वान लिखते हैं—‘वैदिक युग के कलाकारों का चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल और उच्चकोटि का होता था। वे सामान्य प्रलोभनों में नहीं फँसते थे और कला की तपस्या बड़े संयम से किया करते थे।’

ऋग्वेद में एक कथा है कि किसी समय कण्व मुनि को अँधेरी कोठरी में बन्द कर दिया गया तथा उनके नेत्रों को भी बन्द कर यह आदेश दिया कि बिना नेत्रों के ही उषागमन की बात कहकर वे अपने ब्राह्मणत्व की प्रतिष्ठा प्रमाणित करें। कण्व के ब्राह्मणत्व के कारण अश्विन देवता ने अपने प्रातःकालीन वीणा वादन से उन्हें उषाकाल की सूचना दी, जिस पर असुरों ने उन्हें मुक्त कर दिया।

वैदिक काल में नृत्य का कार्यक्रम खुले प्रांगण तथा उन्मुक्त वातावरण में एकत्रित जनता के सम्मुख होता था, जिनमें नर तथा नारी दोनों ही भाग लेते थे। उस काल में समूह-नृत्यों का भी आयोजन किया जाता था। अश्वमेध यज्ञों में मनोरंजन के निमित्त गाथा-गान तथा वीणादि वाद्यों का वादन किया जाता था।

‘शतपथ ब्राह्मण’ से ज्ञात होता है कि यज्ञ में नियुक्त गायक, उत्तम गायक होने के साथ वादक और उत्कृष्ट प्रबन्धकार भी हुआ करते थे। उस काल में स्त्रियाँ उन्हीं पुरुषों से अनुराग करती थीं जो संगीत कला में प्रवीण हों। अभिजात कुल की महिलाओं को गायन तथा वादन की शिक्षा दी जाती थी जिससे वे सामगायकों की संगति सहज रूप से कर सकती थीं। निम्न कुल की महिलाओं द्वारा यज्ञादि समारोहों पर लोकनृत्य सम्पन्न होते थे।

आर्यों ने संगीत में पवित्रता लाने के लिए इसे धर्म के आवरण में लपेट दिया था। फलस्वरूप संगीत और धर्म का एकीकरण हो जाने से संगीत पवित्रतम बन गया। इसी लिए भारतीय संगीत ने मानव को कभी भी नैतिकता के उच्च स्तर से नीचे नहीं आने दिया। परंतु आगे चलकर संगीत जब धर्म से भी हटा, तभी उसने मानवता को नैतिकता से गिराना प्रारम्भ कर दिया। आर्यों के जीवन का सम्भवतः ऐसा कोई क्षेत्र नहीं बचा था जिसमें संगीत ने प्रवेश न कर लिया हो। इन लोगों ने देवताओं को प्रसन्न करने का एक मात्र साधन संगीतमय स्तुति एवं प्रार्थना को ही माना था।

‘रामायण’ में एक वर्णन के अनुसार जब लक्ष्मणजी सुग्रीव के अंतःपुर में प्रवेश करते हैं, तो वहाँ वीणा-वादन के साथ शुद्ध गायन सुनते हैं। रावण को भी संगीत शास्त्र का प्रकाण्ड विद्वान् बताया गया है। इसी प्रकार ‘महाभारत’ में भी सात स्वरो



तथा गांधार ग्राम का वर्णन मिलता है। इन दोनों ही ग्रंथों में संगीत तथा वाद्य-यन्त्रों का विशेष उल्लेख है। भेरी, दुन्दुभी, मृदंग, घट डिंडिम, मुद्दुक, आदंबर, वीणा आदि वाद्यों का उल्लेख हम 'रामायण' में देखते हैं। इससे विदित होता है कि महाभारत और रामायण-काल में भी संगीत-कला प्रचार में रही। वाल्मीकि ऋषि ने ईसा से लगभग ४०० वर्ष पूर्व 'रामायण' को लिखा था। विद्वानों का कथन है कि इस काल में संगीतज्ञों की प्रतिष्ठा वैदिक काल की भाँति ही थी। विवाहोत्सवों पर तथा युद्धों में विजय प्राप्त करके लौटने पर दुन्दुभि बजाकर स्वागत किया जाता था।

वाल्मीकि महर्षि लिखते हैं कि धनुष के तोड़े जाने पर आकाश में देवताओं की दुन्दुभि बज उठी। अप्सराएँ गायन तथा नृत्य करने लगीं। रंग-बिरंगे फूलों की वर्षा होने लगी। सुन्दरी और सयानी सखियाँ मंगलाचार के गीत गा रही थीं। जब सीताजी ने रामचन्द्र जी के गले में जयमाला पहनाई, तो उस समय भी संगीत का आयोजन किया गया था। सखियाँ मंगल गाने लगीं और मंगल-गान के साथ स्वयंवर सम्पन्न हुआ।

महाभारत-काल में भगवान् श्रीकृष्ण संगीत के महान् आचार्य हो गए हैं। इन्हीं दिनों रासलीला-नृत्य का निर्माण हुआ था। सामान्य लोग भी संगीत से उतना ही प्रेम रखते थे, जितना कि उच्चवर्गीय समाज। महिलाएँ पौराणिक काल से भी अधिक गाने और नाचने की अनुरागिनी हो गई थीं। इस समय लोगों को विश्वास हो गया था कि काम करते हुए संगीत का प्रयोग करने से काम की थकावट मानव के ऊपर अपना आधिपत्य नहीं जमा पाती। इसलिए इस काल के लोग प्रत्येक काम को गाते-बजाते हुए किया करते थे।

विद्वानों का कथन है कि महाभारत-काल का संगीत उत्तमता की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। श्रीकृष्ण (जिन्हें लोग भगवान् मानते हैं) की वंशी में विचित्र जादू था। श्रीकृष्ण-जैसा महान् वंशी-वादक आज तक कहीं उत्पन्न नहीं हुआ।

श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अर्जुन भी संगीत के महान् विद्वान् थे। जब वे एक वर्ष तक अज्ञात अवस्था में रहे थे तो उन्होंने विराट् राजा के यहाँ 'वृहन्नलला' नाम रखकर, उनकी पुत्री उत्तरा को संगीत-शिक्षा दी थी। उन्हें कंठ-संगीत तथा वीणा-वादन पर पूर्ण अधिकार था। एक विद्वान का कहना है कि 'महाभारत काल के वीर अर्जुन को हम नहीं भूल सकते। महाभारतकालीन संगीत के विकास में इस महान् वीर का विशेष हाथ रहा।' कहते हैं कि जिस प्रकार श्रीकृष्ण वंशी बजाने में अपना कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं रखते थे, ठीक उसी प्रकार वीर अर्जुन भी वीणा-वादन में उस समय अपना कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं रखते थे। वे वीणा पर ही गाते थे।

**जैन काल :** (ई. पूर्व ५२८ वर्ष) इस काल में ब्राह्मणों के महत्त्व को कम करने तथा वर्गश्रमों के बन्धनों को तोड़ने का प्रयत्न किया जाने लगा। फलस्वरूप संगीत पर ब्राह्मणों का जो एक मात्र अधिकार था, वह सर्व-साधारण के हाथों में पहुँच गया। शूद्र



एवम् अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों में भी कलात्मक चेतना का आविर्भाव होने लगा। संगीत की नीव पुनः महावीर स्वामी के सिद्धांतों—सत्यता, पावनता, सुन्दरता, अहिंसा और अस्तेय पर रखी गई। इस प्रकार संगीत के आध्यात्मिक धरातल को पुनः ऊँचा उठाया गया।

संगीत-कुशल गणिकाओं का राजसभा में सम्मान किया जाता था। डाम्ब जाति के लोग संगीतप्रियता के लिए प्रसिद्ध थे। होली जैसे अवसरों पर निम्न जाति के व्यक्ति नगर-मार्गों पर समूहशः गान-नृत्यादि किया करते थे। अब संगीत विलास की सामग्री का एक अंग बन गया था।

एक इतिहासकार ने लिखा है कि 'जैन युग में संगीत ने अपने पुराने जातीय बन्धनों को तोड़ दिया था। वह सबके लिए साधना का मुख्य विषय बन गया था। उन पिछड़े वर्ग के लोगों ने तथा शूद्रों ने जो अब तक संगीत के ज्ञान से वञ्चित रखे जाते थे, पूरा-पूरा लाभ उठाना प्रारम्भ कर दिया था। इस युग में अनेक नवीन ध्वनियों तथा गायन-शैलियों ने जन्म लिया। वाद्यों में प्रायः मृदंग, वीणा, दुन्दुभि और ढप का प्रयोग होता था। जो कुमारियाँ सार्वजनिक रूप में नृत्य करती थीं, समाज में उनकी प्रतिष्ठा उच्च समझी जाती थी।

इस युग में वीणा का प्रचार प्रगतिपूर्ण था। वीणा के द्वारा धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार किया गया। परिवादिनी, विपंची, वल्लकी, महती, नकुली, कच्छपी आदि प्राचीन वीणाएँ प्रचार में थीं।

**बौद्ध युग :** ईसा के ५३३ वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था। इस काल के संगीत में जीवन की व्यापकता का समावेश अधिक हो गया अतः वही संगीतज्ञ सफल समझा जाता था जो कि अपने संगीत प्रदर्शन से मानव को समस्त विकारों से ऊपर उठा सके। भगवान् बुद्ध के सम्पूर्ण सिद्धांतों को गीतों की लड़ियों में पिरो दिया गया था जिनका सुन्दर ढंग से गायन करके गाँव-गाँव और नगर-नगर की सुप्त जनता को जागरण के भव्य पथ पर लाया गया। इस काल में वीणा पर ही गायन होता था। शास्त्रीय संगीत अपने पूर्ण यौवन पर था। वास्तव में यह युग प्रकाशपूर्ण संगीत का था। संगीत पर जो वासना की धुन्ध छाई हुई थी वह विनष्ट हो गई थी। इस युग में संगीत पर कुछ सुन्दर ग्रंथ भी लिखे गए थे।

बुद्ध के भावी श्वसुर ने विवाह से पूर्व यह शर्त रखी थी कि अपनी कला-संपन्न पुत्री के लिए उसके भावी वर को संगीतादि कलाओं में अपनी निपुणता को सिद्ध करना होगा। पितृपुत्र-समागम कथा में उल्लेख है कि बुद्ध के जन्मोत्सव पर पाँच सौ वाद्यों का वृन्दवादन हुआ था। नर्तकियों और गणिकाओं का संगीतज्ञों के रूप में विशेष सम्मान था। बौद्ध बिहारों में आराधना के लिए नियुक्त कलाकारों को शासन की ओर से द्रव्य दिया जाता था। इन कलाकारों पर शासन का पूर्ण नियंत्रण रहता था। जातक काल अर्थात् इन्हीं दिनों में वीणा वादकों की प्रतियोगिताएँ भी हुआ करती थीं, जिनमें विजेता को पुरस्कार तथा राज्याश्रय प्राप्त होता था। नालन्दा,



विक्रमशिला तथा तदन्तपुरी जैसे विश्वविद्यालयों में भी गान्धर्व का स्वतन्त्र निकाय (फैकल्टी) था। इनके अधिष्ठाताओं के रूप में भारत-विख्यात संगीतज्ञों की नियुक्ति की जाया करती थी। सम्पन्न परिवारों में बालक-बालिकाओं की संगीत-शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

**पौराणिक काल :** इसके उपरान्त पौराणिक काल आता है। इस युग में संगीतज्ञ चरित्र से गिरता जा रहा था। उसमें संयम का अभाव होता जा रहा था। उच्छृंखलता बढ़ती जा रही थी। फिर भी संगीतकारों का जीवन संतुलित रूप से चल रहा था। विद्वानों का कथन है कि वैदिक काल में संगीत की आन्तरिक सुषमा का जैसा उभार हमें प्राप्त होता है वैसा इस काल में नहीं होता। इस काल में संगीत का पुष्प प्रस्फुटित अवश्य हुआ है, किन्तु वह अपना सौरभ विस्तीर्ण क्षेत्र में न फैला सका। इस युग में संगीतकार, वैदिक युग के संगीतकारों की भाँति उदार दृष्टि वाले नहीं थे। संगीतज्ञों के मस्तिष्क संकीर्ण होते जा रहे थे। वैदिक युग में जो संगीत यज्ञों में फैल चुका था अब व्यक्तिगत कारा में बन्द हो गया। नाट्य, रास, हल्लीसक, जलक्रीड़ा आदि तत्कालीन जनता के लिए मनोविनोद के साधन थे। नाटकों में स्त्री तथा पुरुष, दोनों अभिनय करते थे। गायन का कार्य प्रायः स्त्री पात्रों द्वारा किया जाता था।

**स्मृति ग्रन्थों में संगीत :** संगीत की गिरती स्थिति को देखकर स्मृति ग्रन्थों में गृहस्थाश्रमी को संगीत द्वारा जीविकोपार्जन का निषेध किया गया। वेदाध्ययन करने वाले ब्रह्मचारी के लिए भी संगीत का सेवन सर्वथा निषिद्ध माना गया। मनुस्मृति में संगीत कला का स्थान कुछ निकृष्ट कोटि का रहा। अब संगीतकला का व्यवसाय करनेवाले लोगों को हीन दृष्टि से देखा जाने लगा। संगीत-व्यवसायी लोग पर्यटन करके अपने कला-प्रदर्शन से जीविकोपार्जन करते थे।

**मौर्य काल :** यद्यपि चन्द्रगुप्त मौर्य ने संगीत के विकास के लिए प्रयत्न किए, परन्तु इस युग में संगीत अपनी नैतिक मर्यादा से अलग हो रहा था। उसमें मनोरंजन का रूप इतना उभर आया था कि उसका आन्तरिक सौन्दर्य दब सा गया था। लोगों का विचार होने लगा कि यदि संगीत हमारी वासना को तृप्त नहीं करता तो वह संगीत की श्रेणी में नहीं आ सकता। इस प्रकार मौर्यकाल में संगीत नागरिक जीवन का अभिन्न अंग था। उन दिनों नागरिक कहलाने तथा सहृदय-गोष्ठियों में प्रवेश पाने के लिए व्यक्तियों को कला-मर्मज्ञ होना आवश्यक था। विवाह-योग्य वर-वधू के लिए कला-प्रावीण्य एक अभीष्ट गुण माना जाता था। महिलाओं की संगीत-शिक्षा विवाह के पश्चात् भी प्रचलित थी।

सन्ध्याकालीन कर्मों से निवृत्त होकर समस्त नागरिक किसी रसिक श्रीमान् के घर पर एकत्रित होकर संगीत के राग-रंग का आस्वादन करते थे। यदा-कदा ऐसी गोष्ठियाँ गणिकाओं के निवास स्थान पर भी आयोजित होती थीं, जिनमें नगर के सभ्य एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति निःसंकोच रूप से सम्मिलित होते। समय-समय पर



अन्य स्थानों से आए हुए अतिथि कलाकारों के कला-प्रदर्शन पर उनकी योग्यता-नुसार पुरस्कार प्रदान किया जाता था।

संगीत-शिक्षा का प्रबन्ध संगीतशालाओं द्वारा किया जाता था। ललित कलाओं की संस्थाओं में आचार्यों को उनकी योग्यतानुसार राज्य की ओर से वेतन दिया जाता था। संगीतकला का अध्ययन सांस्कृतिक उपलब्धि के रूप में किया जाता था और आवश्यकता के समय जीविका निर्वाह के लिए भी उसका उपयोग कर लिया जाता था।

संगीतकला का राजनैतिक दृष्टि से उपयोग मौर्यकाल की एक प्रधान विशेषता मानी जा सकती है। सैल्युकस की पुत्री जो एक उत्तम संगीतकार थी, का विवाह चन्द्रगुप्त मौर्य से हो जाने के कारण, यूनानी संगीत का आगमन भारत में प्रथम बार हुआ। फलस्वरूप भारत का संगीत भी प्रथम बार यूनान पहुँचा।

विन्दुसार के काल में संगीत में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ। परन्तु अशोक ने इसे पुनः उच्चस्तर पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने श्रृंगारिक गीतों का बहिष्कार किया। उनकी पत्नी तिष्यरक्षिता की परिचारिका चारुमित्रा उत्तम वीणा वादक थी। कोई भी संगीत असंयमी नहीं होता था। संगीतज्ञ बनने से पूर्व उसे जीवन के आध्यात्मिक स्वरूप का अध्ययन करना पड़ता था। धर्म के साथ-साथ भारतीय संगीत का उत्कृष्ट रूप भी विदेशों ने अपनाया। फलस्वरूप आज भी तिब्बत, चीन, जापान, मिश्र, यूनान, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, इन्डोनेशिया, ब्रह्मा और लंका का संगीत भारतीय संगीत के मौलिक तत्वों से समानता रखता है। अशोक के समय में भारतीय संगीत का रूप विश्वव्यापी बन गया था।

**कनिष्क काल :** अशोक के उपरान्त संगीत फिर अपने गौरवपूर्ण स्थान से च्युत होने लगा। ब्राह्मण पुनः संगीत पर अपना आधिपत्य-स्थापन करने का प्रयत्न करने लगे किन्तु कनिष्क स्वयं एक उत्तम संगीतज्ञ थे अतः उन्होंने पुनः संगीत का स्तर ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया। इस काल में देश के समस्त प्रान्तों में संगीतज्ञों का आपसी सम्बन्ध दृढ़ हो गया। उत्तर भारत, दक्षिण भारत, गुजरात, बिहार, बंगाल और काश्मीर के ही नहीं बरन् अफ़ग़ानिस्तान, चीन आदि के कलाकार भी इस काल में कनिष्क के दरबार में उपस्थित होते थे। उन्हें उचित रूप से पुरस्कृत किया जाता था। इस काल में साधारण जनता के लिए भी अनेक संगीत आयोजन किए गए। बौद्ध काल में जो संगीत भारतीय सीमाओं को पार कर चुका था पूर्ण रूप से विदेशों में संगठित हो गया था। इस प्रकार समस्त देश में संगीत का एक रूप स्थापित करने तथा एशिया में भारतीय संगीत का प्रचार करने में यह युग सबसे अधिक महत्त्व का है।

**गुप्त काल :** कनिष्क और गुप्तकाल के मध्य में कोई ऐसा सम्राट नहीं हुआ जिसने संगीत की ओर ध्यान दिया हो। अतः कनिष्क काल के संगीत का गौरव धूमिल हो गया था। चन्द्रगुप्त का अधिकांश समय युद्धों में व्यतीत हुआ अतएव वह



संगीत के लिए अधिक कार्य न कर सके। फिर भी भरत के पुत्र दत्तिल द्वारा संगीत का एक ग्रंथ 'दत्तिलम्' इस काल की विशेष देन है।

चन्द्रगुप्त के उपरान्त इनके पुत्र समुद्रगुप्त गद्दी पर बैठे। वे स्वयं एक उत्तम वीणा वादक थे। इस काल में शास्त्रीय संगीत का प्रचार अधिक हुआ। कहा जाता है कि इस युग में संगीत की चमत्कारिक शक्तियों का भी विकास हुआ था और नाटकों का भी बहुत प्रचार था। कुछ विद्वानों का कथन है कि सितार वाद्य का जन्म इसी काल में हुआ था। लोक गीत और लोक नृत्य भी खूब प्रगति कर रहे थे। समुद्रगुप्त के उपरान्त इनके पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य गद्दी पर बैठे। यद्यपि इस बात का कोई ठोस प्रमाण प्राप्त नहीं हो सका है कि वे स्वयं भी संगीतज्ञ थे। परन्तु यह सत्य है कि इस काल में भारतीय संगीत रोम, फ्रांस, इंग्लैंड, आयरलैंड और हंगरी आदि देशों में भी पहुँचा।

अनेक विद्वानों का कथन है कि भारतीय संगीत का विकास जितना गुप्त काल में हुआ उतना और किसी युग में नहीं हुआ। जितने विभिन्न विषयों के विद्वान इस काल में उत्पन्न हुए उतने अन्य किसी युग में नहीं हुए। इसी युग में भारतीय संगीत योरोपीय देशों में भी पहुँचा। इस समय के संगीत और साहित्य की अद्भुत उन्नति को देखकर ही अनेक विद्वानों ने इस युग को संगीत का स्वर्ण-काल कहा है।

**हर्षवर्द्धन का काल :** कुछ विद्वानों के मतानुसार यद्यपि हर्षवर्द्धन स्वयं चन्द्रगुप्त और समुद्रगुप्त के समान संगीतज्ञ नहीं थे, परन्तु उनकी बहिन राजश्री अपने भाई हर्ष से गाना सुना करती थी और उन गीतों का स्वयं भी अभ्यास किया करती थी।

## २-यवन काल

हर्ष के उपरान्त (६४७ ई० से १२५० ई० तक) देश छोटे-छोटे भागों में विभक्त हो गया था। ऐसे अनेक राज्य बन गये थे जो आपस में एक दूसरे से लड़ा करते थे। युद्ध ही इनकी प्रिय वस्तु बन गई थी। युद्ध-प्रिय होने के कारण इन्हें संगीत के आत्मिक सौन्दर्य को समझने का अवकाश नहीं मिला। फलस्वरूप इस काल में संगीत अनेक वर्गों में बँट गया। प्रत्येक वर्ग अपने दृष्टिकोण से संगीत का विकास करता रहा। इन्हीं संकीर्ण दृष्टिकोणों के परिणाम-स्वरूप संगीत के अनेक 'घराने' बन गये। एक कलाकार दूसरे कलाकार को नीचा दिखाने का प्रयत्न करने लगा। शास्त्रीय संगीत जनता से हटकर सामन्तशाही बन गया और उसमें सस्ता शृंगार भरा जाने लगा। इस प्रकार संगीत अपनी नैतिकता के पवित्र स्तर से गिरता गया।

यह सब कुछ होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि राजपूत संगीत-प्रिय नहीं थे। उनके दरबारों में अनेक संगीतज्ञों को आश्रय मिला हुआ था। वे संगीतज्ञों का सम्मान करते थे। इस काल के उपलब्ध राग-रागिनियों के चित्र यह बताते हैं कि राजपूतों में संगीत के प्रति गहरी रुचि थी। राजपूत रमणियाँ भी संगीत-प्रिय होती थीं।



अनेक अवसरों पर संगीत का आयोजन किया जाता था। जौहर में प्रवेश करते समय भी पूर्ण शृंगार करके संगीत के माध्यम से अग्नि-प्रवेश की प्रथा थी। विजयादशमी पर होने वाली दुर्गा-पूजा भव्य गायन-वादन के साथ सम्पन्न की जाती थी।

इसी काल में भारत पर यवनों के आक्रमण होते रहने के कारण लोगों का जीवन कुछ कष्टमय हो चला था। उनका आध्यात्मिक विकास एकदम अवरुद्ध हो गया था। विजातीय लोगों के प्रलोभनों में आकर लोग चरित्र से हटने लगे थे। संगीत में शृंगारिक और भोग-विलास प्रधान वातावरण प्रवेश करने लगा था। हिन्दू, मुसलमान होते जा रहे थे। इस प्रकार धर्म परिवर्तन करने वाले व्यक्ति यवन संस्कृति एवं यवन संगीत की प्रशंसा करने लगे थे। विजयी मुसलमान अपने साथ कुछ कलाकारों को लाये थे और वे उन्हीं का सम्मान करते थे। इस प्रकार इस काल में भारतीय संगीत को समूल नष्ट करने का प्रयत्न किया गया।

उत्तर भारत में संगीत जहाँ दयनीय दशा में चल रहा था, वहाँ दक्षिण भारत में आन्तरिक द्वन्द्व बहुत कम थे। अतः उत्तर भारतीय संगीत के शुद्ध रूप के लुप्त हो जाने के बाद भी दक्षिण भारत में उसकी रक्षा एवं उन्नति हो रही थी।

**खिलजी युग :** (१२६०-१३२० ई०) में अलाउद्दीन खिलजी सन् १२६६ ई० में गद्दी पर बैठे। इनके राज्य काल में अमीर खुसरो नामक एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। चूँकि सुलतान स्वयं संगीत-प्रेमी थे अतः खुसरो को नई ताल व राग रचने में बड़ा प्रोत्साहन मिला। कुछ लोगों का यह भ्रम है कि सितार व तबले के जन्मदाता खुसरो हैं जबकि यह बात बिल्कुल मिथ्या है।

**अमीर खुसरो :** खुसरो का जन्म १२५४ ई० में हुआ था। उन दिनों उत्तर भारत का मुसलिम शासित प्रदेश भारतीय संगीत शास्त्रियों से सर्वदा शून्य हो चुका था। अतः खुसरो को जलालुद्दीन अथवा अलाउद्दीन के राज्यकाल में जो हिन्दू गायक आस-पास दिखाई दिए, उन्हीं से उसने उस भ्रष्ट पद्धति का यथासम्भव परिचय प्राप्त किया। इसी परिचय को उसके भारतीय संगीत का ज्ञान कहा जा सकता है।

खुसरो योग्य, प्रतिभाशाली परन्तु राज-शक्ति के साथ रहने वाला कूटनीतिज्ञ और दरबारी व्यक्ति था। उसने अपने जीवन में दिल्ली की प्रायः ११ बादशाहों देखी थीं, जिनमें अनेक सुलतान उसके आश्रयदाता थे। वह उच्चकोटि का कवि और विद्वान था। परन्तु उसके ये गुण केवल दरबार की शोभा बने। उसने प्रत्येक सुलतान के आगे इस प्रकार सिर झुकाया मानो पूर्ववर्ती सुलतान से उसका कोई सम्बन्ध ही न रहा हो। जिस जलालुद्दीन खिलजी ने उसे बड़े से बड़ा सम्मान दिया था, उसके हत्यारे अलाउद्दीन खिलजी के प्रति खुसरो के मन में कोई घृणा उत्पन्न नहीं हुई, अपितु अलाउद्दीन के प्रति प्रजा की भक्ति उत्पन्न करने में वह उसका अस्त्र बना। उस समय के प्रसिद्ध सूफ़ी सत निजामुद्दीन, जिनका प्रभाव प्रजा पर बहुत



अधिक था। को गा-बजाकर खुसरो ने अलाउद्दीन के पक्ष में किया। खुसरो के चरित्र का यह पक्ष विशेष ध्यान देने योग्य है, क्योंकि भारतीय संगीत से संबंधित उसके व्यवहार को जानने के लिए इसका स्मरण रखना आवश्यक है।

गोपाल नायक को भी अमीर खुसरो तथा अलाउद्दीन का समकालीन बनाया जाता है। कहा जाता है कि उसने गोपाल नायक को पराजित किया था। यद्यपि खुसरो जैसे आत्म-प्रशंसक ने अपने ग्रंथों में गोपाल नायक के साथ साक्षात्कार तक का उल्लेख कहीं नहीं किया। यदि इन जनश्रुति को सत्य मान भी लिया जाय तो यह निश्चित हो जाता है कि खुसरो को गोपाल द्वारा गाये गये रागों की शिक्षा नहीं थी और न वे राग उस समय उत्तर भारत में प्रचलित थे। इस प्रकार गोपाल के रागों का आविष्कारक स्वयं को कह कर खुसरो की प्रतिभा में कूटिनीतिज्ञता तथा हठवादिता के प्रमाण मिलते हैं।

इस काल में मुसलमानों ने संगीत के शास्त्रीय पक्ष की अवहेलना करके केवल उसके क्रियात्मक रूप की ओर ही ध्यान दिया। फलस्वरूप गीतों के अनेक ढंग जैसे कव्वाली एवं तराना आदि प्रचलित हो गये।

**तुगलक युग :** (१३२०-१३२४ ई०) गयासुद्दीन तुगलक जो लगभग १३२० ई० में गद्दी पर बैठे थे, संगीत के प्रति उदासीन रहे। इनके उपरांत इनके पुत्र मुहम्मद तुगलक (१३२५-५१ ई० में) गद्दी पर बैठे। यह स्वयं संगीत के प्रेमी थे। इन्होंने हिंदू मुसलमानों को एकत्रित करके संगीत के विकास में योग दिया। यद्यपि दरबारों में संगीत के आयोजन होते रहे परन्तु इस काल में संगीत को राजाश्रय नहीं मिला।

**लोदी काल :** (१४१४-१५२५ ई०) इस काल में मुसलमान चाहते थे कि भारतीय संगीत को अरब संगीत का रूप दिया जाये और हिन्दुओं की इच्छा थी कि भारतीय संगीत की स्थिति और अधिक न बिगाड़ी जाये। सिकन्दर लोदी को यद्यपि संगीत का कुछ ज्ञान नहीं था परन्तु फिर भी वे संगीतज्ञों का आदर करते थे। इस काल में कव्वाली, गज़ल, खयाल, ठुमरी आदि खूब प्रचार में आ गये थे। भारतीय संगीत की आत्मा को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए ग्वालियर के मानसिंह तोंमर (१४८६-१५२५ ई०) ने ध्रुपद शैली को जन्म दिया। फलस्वरूप मुगलकाल में ध्रुपद की प्रधानता रही।

**मुगल काल :** (१४२५-१७४० ई०) इस काल में बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, और बहादुर शाह जैसे बादशाह हुए हैं जिनके काल में संगीत में अनेक परिवर्तन हुए अतएव संक्षेप में हम इस काल पर भी विचार करेंगे।

### ३-मुगल काल

[सन् १५२५ ई० से १७४० ई० तक]

मुगल काल में जब बाबर और हुमायूँ (१५२५ से १५५६ ई० तक) गद्दी पर बैठे तो इनमें बाबर स्वयं भी संगीतज्ञ था। वह संगीतज्ञों का सम्मान करता था और



श्रेष्ठ संगीतज्ञों को पुरस्कृत भी करता था। परन्तु उसकी दृष्टि में संगीत केवल मनोरंजन की वस्तु था। अतएव संगीत में शृंगारिकता प्रवेश करती चली गई लेकिन संगीत के अन्दर जो गिरावट और लड़खड़ाहट आनी प्रारम्भ हो गई थी वह इस काल में कुछ स्थिर होने लगी।

दैवयोग से उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन का जोर हो गया था। बंगाल में श्री चैतन्य महाप्रभु एवं अन्य भक्त, संकीर्तन का प्रचार कर रहे थे। साथ ही कुछ ऐसे संगीत-विद्वान भी हुए, जिन्होंने संगीत के शास्त्रीय पक्ष को सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया।

इन्हीं परिस्थितियों में बाबर के उपरांत जब हुमायूँ गद्दी पर बैठा तो उन दिनों सूफियों का बड़ा जोर था। ये लोग मानव जीवन की सुन्दर बातों को संगीत के माध्यम से जनता के समक्ष प्रस्तुत किया करते थे।

इस प्रकार इस काल में संगीत में दो प्रमुख परिवर्तन हुए। एक तो संकीर्तन और भजनों के द्वारा यह पुनः जनता के संपर्क में आने लगा और दूसरे मध्यकाल में जो संगीत पर अनैतिकता की धूल छा गई थी वह इस काल में हटने लगी। जौनपुर के बादशाह सुल्तान हुसैन शर्की (१५०० ई० के लगभग) ने कुछ नवीन रागों की रचना की और ख्याल-पद्धति को प्रतिष्ठित किया।

### अकबर

संगीत की इस डावाँडोल स्थिति में अकबर (१५६० से १६०५ ई० तक) गद्दी पर बैठा। यह वह काल था जिसमें अनेक कलाकार अपनी कला और धर्म को बेच चुके थे। मुस्लिम विजेता न तो विद्या के प्रेमी थे और न उसके संरक्षक ही। उन्होंने अपने सहधर्मियों को ही दरबार में संगीतज्ञों के पदों पर नियुक्त किया। 'आइने-अकबरी' में छत्तीस संगीतज्ञों की सूची में केवल चार या पाँच हिन्दू संगीतज्ञों के नाम दिखाई देते हैं। इच्छापूर्ति के बहाने प्रचलित मतावलम्बी संस्कृत-ग्रंथों पर मनमाना अत्याचार हो रहा था। फिर भी इस काल में तानसेन, बैजू, रामदास, मदन राय, ब्रजचन्द, श्रीचन्द जैसे अनेक संगीतज्ञ और स्वामी हरिदास सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास, गरीबदास, कबीर और वल्लभ सम्प्रदाय के अनेक संगीत शिरोमणि भक्त विशेष उल्लेखनीय हैं।

### तानसेन और बैजू बावरा

इससे पहले तानसेन रीवाँ के राजा रामचन्द्र के दरबार में रहते थे। इनके संगीत की प्रशंसा सुनकर अकबर ने इन्हें अपने दरबार में प्रधान गायक के रूप में रखा। किंवदन्ती है कि तानसेन और बैजू बावरा की संगीत-प्रतियोगिता भी एक बार हुई। तानसेन ने कुछ रागों का आविष्कार भी किया, जिनमें दरबारी कान्हड़ा, मियाँ की सारंग और मियाँ की मल्हार रागों के नाम उल्लेखनीय हैं। तानसेन के संगीत से प्रभावित होकर इनके अनेक शिष्य भी हो गये थे।



बाद में यह शिष्य समुदाय दो भागों में बँट गया—१. रबाविए, जो तानसेन द्वारा आविष्कृत रबाव वाद्य को बजाते थे और २. वीनकार, जो वीणा बजाते थे। वीनकारों के प्रतिनिधि रामपुर के वजीर खाँ तथा रबावियों के प्रतिनिधि मुहम्मदअली खाँ (रामपुर रियासत वाले) माने जाते थे।

### स्वामी हरिदास

अकबर के समय में ही स्वामी हरिदास वृन्दावन के एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ-महात्मा हुए हैं। इनका जन्म संवत् १५६६, भाद्रपद शुक्ला ८ (सन् १५१२ ई०) को हुआ। तानसेन इनके ही शिष्य थे। स्वामी जी के शिष्यों द्वारा संगीत का प्रचार अनेक नगरों में भली प्रकार हुआ। कहा जाता है कि स्वामी हरिदास जो अपने समय के सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ थे। इसके विषय में एक दंत-कथा इस प्रकार भी बताई जाती है कि एकदिन तानसेन से अकबर पूछ बैठे कि तानसेन, ऐसा भी कोई गायक है, जो तुमसे भी सुन्दर गाता हो? इस पर तानसेन ने अपने गुरु स्वामी हरिदास का नाम बताया। अकबर ने उनका गायन सुनने की इच्छा प्रकट की, किन्तु तानसेन ने कहा कि दरबार में तो वे नहीं आएँगे। तब एक नवीन युक्ति से काम लिया गया। अकबर ने अपना वेश बदलकर तानसेन का तानपूरा लिया और तानसेन के साथ स्वामी जी के पास जा पहुँचे। जब स्वामी जी से गाने का आग्रह किया गया, तो उन्होंने अपनी अनिच्छा प्रकट की। तब तानसेन ने एक चाल चली, उन्होंने जान-बूझकर स्वामी जी के सामने एक राग अशुद्ध रूप में गाया। स्वामी जी से न रहा गया, उन्होंने वह राग स्वयं गाकर तानसेन को बताया। इस प्रकार अकबर की इच्छा पूर्ण हुई। स्वामी जी के गाने से प्रभावित होकर अकबर ने तानसेन से पूछा कि तानसेन, तुम इतना सुन्दर क्यों नहीं गाते? तानसेन ने उत्तर दिया कि जहाँपनाह, मुझे जब दरबार की आज्ञा होती है, तभी गाना पड़ता है, किन्तु गुरु जी तो तभी गाते हैं जब उनकी अन्तरात्मा प्रेरित करती है, इसीलिए उनके संगीत में एक विशेष कशिश है।

### सूर, कबीर, तुलसी और मीरा

सोलहवीं शताब्दी संगीत और भक्ति-काव्य के समन्वय की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही, क्योंकि इसी शताब्दी में 'सूर-सागर' के रचयिता एवं गीत-काव्य के प्रकांड विद्वान् महात्मा सूरदास, 'रामचरितमानस' के यशस्वी लेखक गोस्वामी तुलसीदास, हिन्दू-मुस्लिम-एकता के प्रतीक संत कबीरदास तथा सुप्रसिद्ध कवयित्री और भजन-गायिका मीराबाई द्वारा भक्तिपूर्ण काव्य के प्रचार से संगीत-कला भगवत् प्राप्ति का साधन बनकर उच्चतम शिखर पर पहुँची।

उपर्युक्त चारों संतों का जीवन-काल इस प्रकार है :—

कबीरदास	जन्म	सन्	१३६६ ई०	मृत्यु	सन् १५१८ ई०
सूरदास	"	"	१४७८ "	"	१५८३ "
तुलसीदास	"	"	१४६७ "	"	१६२३ "
मीराबाई	"	"	१५०३ "	"	१५७३ "



ईसवी सन् की दृष्टि से उक्त चारों भक्तों का समय १४००-१६०० ई० के मध्य का माना जा सकता है। इनके भजन और पद अमर हो गए हैं और आज भी घर-घर में इनका प्रचार है।

अकबर के उपरांत जब अक्टूबर १६०५ ई० में जहाँगीर गद्दी पर बैठा तो वह स्वयं संगीत का प्रेमी था। उसके दरबार में एक-से-एक सुन्दर नर्तकियाँ और गायक रहते थे। अकबर के काल में उत्तर भारतीय संगीत में ईरानी और अरबी संगीत के मिश्रण से जो एक अद्भुत निखार और लावण्य प्रतिभासित होने लगा था, वह अब पूर्ण रूप से विकसित हो गया था। बादशाह और उनकी बेगम नूरजहाँ दोनों मिल कर दरबारी संगीत को सुनते थे। इस काल में भारतीय संगीत के मौलिक सिद्धांतों की पूरी तरह से रक्षा की गई। इनकी संगीतप्रियता के कारण ही जहाँगीरदाद, छत्तरखाँ, परवेजदाद, खुर्रमदाद, मक्खू और हमजान जैसे अनेक दरबारी संगीतज्ञ थे।

जहाँगीर की मृत्यु के उपरांत उनका पुत्र शाहजहाँ (सन् १६२८ ई०) गद्दी पर बैठा, वह भी संगीत प्रेमी था। वह संगीत सम्मेलन और संगीत प्रतियोगिताएँ भी कराया करता था। उस समय उत्तम कलाकारों को पुरस्कार दिया जाता था। दरबारी संगीत में हिन्दू कलाकारों की उपेक्षा न हो इसका ध्यान रखा जाया करता था। दिरंग खाँ और जगन्नाथ को उनके भार के बराबर चाँदी तोलकर पुरस्कार रूप में दी गई थी साथ ही 'गुणसमुद्र' की उपाधि से विभूषित किया गया था।

संगीतज्ञों का इतना सत्कार व सम्मान होते हुए भी, वे अपनी कला-साधना से हटकर विलासी बनते जा रहे थे। अनेक संगीतज्ञ ऐसे भी थे जिन्हें लिखना-पढ़ना बिल्कुल नहीं आता था फिर भी वे संगीत के महान् आचार्य समझे जाते थे। इस काल में एक ऐसा वर्ग भी बन गया था जो केवल संगीत के द्वारा अपना पेट पालन करता था। कथक नृत्य का खूब प्रचार हो चला था। गायन और नृत्य पूर्ण रूप से गणिकाओं के हाथों में चला गया था। इस प्रकार संगीतज्ञों के इन वर्गों को ही नहीं, वरन् समस्त संगीतज्ञों और संगीत कला को समाज उपेक्षणीय दृष्टि से देखने लगा था। इस प्रकार संगीत के पतन की नीवें रखी जा चुकी थी।

जिस समय में संगीत ऐसी गिरी हुई अवस्था में था तभी (१६५८ ई० में) औरंगजेब गद्दी पर बैठा। बादशाह ने इस प्रचलित रूप को ही संगीत का यथार्थ रूप समझा। हिन्दुओं को इस बात का अवसर ही नहीं मिला कि वे बादशाह के सम्मुख संगीत का उज्ज्वल रूप प्रस्तुत कर सकें। उस समय संगीत पूर्ण विलासमय हो चुका था और बादशाह स्वयं एक साधारण स्वभाव का व्यक्ति था। उसकी इच्छा थी कि मनुष्यों का चरित्र उत्तम बने, इसलिए वह संगीत का विरोधी बन गया।

खुशाल खाँ और हयात सरसनैन जैसे संगीतकारों पर औरंगजेब की विशेष कृपा थी। औरपा नामक पखावजी को औरंगजेब ने 'मृदंगराय' की उपाधि से सम्मानित किया था। उसके एक कर्मचारी रोशन जमीर ने 'संगीत पारिजात' का फ़ारसी अनुवाद किया था। फ़कीरुल्लाह ने 'मानकुतूहल' का अनुवाद औरंगजेब को



समर्पित करने के लिए ही किया था। १६५८ ई० में जब औरंगजेब के हाथ में वास्तविक सत्ता आई तब उसकी उम्र ४०-४१ वर्ष थी और उस समय जो उत्सव मनाया गया उसमें वेश्याओं का नाच गाना तथा औरंगजेब के साथ होली खेलना भी हुआ जिसका वर्णन ध्रुवपदों में प्राप्त होता है। लगभग ६-१० वर्षों तक यह राग-रंग चलता रहा।

१०७८ हिजरी (१६६७-६८ ई०) में औरंगजेब ने हुक्म दिया था कि गायक लोग दरबार में आएँ, परन्तु गएँ नहीं। इटालियन इतिहासकार मनुक्कि ने कहा है कि संगीत पर सब प्रकार के प्रतिबन्ध के बावजूद भी बेगमों और शहजादियों के मन-बहलाव के लिए गायिकाओं और नर्तकियों की नियुक्ति औरंगजेब खुद करता था और महल में गीत-नृत्य होने देता था।

सन् १७१६-४० ई० में मुहम्मदशाह रंगीले मुगल वंश के अंतिम बादशाह थे। ये स्वयं संगीत में निपुण थे। इनके दरबार में 'सदारंग', 'अदारंग' और 'महारंग' उत्तम संगीतज्ञ थे। इसी काल में टप्पे के साथ ही ठुमरी का भी प्रचलन बहुतायत से हो गया था। भारत और फ़ारस के संगीत का मिश्रण इस काल की सबसे प्रमुख विशेषता है।

## ४-अंग्रेज़ काल

सन् १७५० ई० से ही अंग्रेज़ों के काल का प्रवेश माना जा सकता है। अंग्रेज़ों ने भारतीय संगीत को केवल कोलाहल के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझा। वे इसे असभ्यों का संगीत मानते थे। अतः उन्होंने सदैव भारतीय संगीत की उपेक्षा की। वे न तो भारतीय संगीतज्ञों का सम्मान करते थे और न उन्हें कुछ प्रोत्साहन ही देते थे। वे अपनी संस्कृति के सामने भारतीय संस्कृति को हेय दृष्टि से देखते थे। जो भारतीय पाश्चात्य सभ्यता में रंग गये थे वे भी भारतीय संगीत की उपेक्षा करने लगे थे। परिणामस्वरूप भारतीय संगीत ऐसे लोगों के हाथों में चला गया जो समाज द्वारा घृणित दृष्टि से देखे जाते थे। वेश्याओं ने भारतीय संगीत पर पूर्ण रूप से अधिकार कर लिया था। अतः प्रतिभाशाली और कुलीन घराने के व्यक्ति संगीत के सम्पर्क में नहीं आना चाहते थे।

इस दशा में जो कुछ इने-गिने संगीतज्ञ बचे थे वे देशी राजाओं के आश्रय में रहने लगे। संगीत का आश्रय केवल देशी राजाओं का दरबार रह गया था। इन देशी राजाओं में जो पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में आ गए उन्होंने भी भारतीय संगीत को राज्याश्रय से निकाल दिया। संगीतज्ञों का सामूहिक रूप से मिलकर गायन-वादन न करने के कारण, यवन काल में 'घरानों' की जो नीव पड़ चुकी थी, वह टूट हो गई। संगीतज्ञों के अनेक 'घराने' बन गये जो संगीत के विकास में अभिशाप सिद्ध हुए।

उधर दक्षिण में तंजौर के महाराजा तुलाजी राव भोंसले (१७६३-१७८७ ई०) ने लगभग समस्त भारत के संगीत विद्वानों को बुलाकर पारितोषिक दिए



और भूमि आदि का दान किया। इन कारणों से तंजावूर उस समय भारतीय संगीत का प्रमुख केन्द्र बन गया। इसी समय (१७७१-१८०४ ई०) जयपुर नरेश महाराज प्रतापसिंह के प्रयास से भारतीय संगीत को शास्त्रोक्त व्यवस्था देने के उद्देश्य से संगीत-विद्वानों की सम्मति द्वारा 'संगीत सार' नामक एक ग्रन्थ रचा गया।

## ५-संगीत-प्रचार का आधुनिक काल

[ १९००-१९५० ई० ]

आधुनिक काल में संगीत के उद्धार और प्रचार का श्रेय महाराष्ट्र (भारत) की दो विभूतियों को है, जिनके नाम हैं—पं० विष्णुनारायण भातखंडे और पं० विष्णुदिगंबर पलुस्कर। दोनों ही महानुभावों ने देश में जगह-जगह पर्यटन करके संगीत-कला का प्रचार और प्रसार किया एवं अनेक संगीत-विद्यालयों की स्थापना की। संगीत सम्मेलनों द्वारा संगीत पर विचार-विनिमय भी हुआ; जिसके फलस्वरूप जनसाधारण में संगीत के प्रति विशेष रूप से रुचि उत्पन्न हुई। इस काल में शास्त्रीय साधना के साथ-साथ संगीत में नवीन प्रयोगों द्वारा एक विशेषता पैदा करने का श्रेय विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर को है। इन्होंने प्राचीन राग-रागिनियों के आकर्षक स्वर-समुदाय लेकर कलात्मक प्रयोगों द्वारा 'रवीन्द्र-संगीत' के रूप में एक नई गान-शैली को जन्म दिया।

### राजा नवाबअली-कृत (मुआरिफुन्नगमात)

१९११ ई० के लगभग लाहौर के रहनेवाले एक संगीत-विद्वान् राजा नवाब-अली खाँ भातखंडे जी के सम्पर्क में आए। राजा साहब ने अपने एक प्रसिद्ध गायक नजीर खाँ को आचार्य भातखंडे के पास संगीत के शास्त्रीय ज्ञान तथा लक्षण-गीतों को सीखने के लिए भेजा और फिर उर्दू में संगीत की एक सुन्दर पुस्तक 'मुआरिफुन्नगमात' लिखी। इस पुस्तक का यथेष्ट आदर हुआ।

## ६-स्वतन्त्र भारत में संगीत

सन् १९४७ में भारत की स्वतंत्रता के बाद जब से अपनी राष्ट्रीय सरकार स्थापित हुई है, तबसे देश में संगीत का प्रचार द्रुत गति से बढ़ रहा है। जगह-जगह स्कूल और कॉलेजों के पाठ्यक्रम में वह सम्मिलित होता जा रहा है तथा कुछ विश्वविद्यालयों की एम० ए० परीक्षाओं में भी एक विषय के रूप में रख दिया गया है और संगीत में पी-एच० डी० की उपाधियाँ भी मिलने लगी हैं। इधर आकाशवाणी एवं दूरदर्शन द्वारा भी संगीत का प्रचार दिनों-दिन बढ़ रहा है। कुछ चलचित्रों द्वारा भी हमें अच्छा संगीत मिल सका है। संगीत की अनेक शिक्षण-संस्थाएँ विभिन्न नगरों में सुचारु रूप से चल रही हैं। देश का शिक्षित वर्ग संगीत की ओर विशेष रूप से आकृष्ट होकर अब इस कला का महत्त्व समझने लगा है। कुलीन घराने के युवक-युवतियाँ तो संगीत-शिक्षा ग्रहण कर ही रहे हैं,



जनसाधारण में भी संगीत के प्रति आशातीत अभिरुचि उत्पन्न हुई है। विदेशों में जाकर भारतीय कलाकार संगीत का विश्वव्यापी प्रचार कर रहे हैं। इधर संगीत-सम्बन्धी पुस्तकें काफी संख्या में प्रकाशित होने लगी हैं। संगीत-कला के विकास के लिए ये सब शुभ लक्षण हैं। आशा है, निकट भविष्य में ही भारतीय संगीत उच्चतम शिखर पर आसीन होकर अपनी विशेषताओं से संसार को प्रभावित करेगा।

इतना सब कुछ होने के बावजूद भी हमारे प्रयासों में एक कमी खटकती है वह यह कि संगीत-संस्थाएँ श्रेष्ठ कलाकार उत्पन्न नहीं कर पा रहीं। उनके द्वारा अच्छे संगीत-शिक्षक तो पैदा हो रहे, किन्तु प्रभावशाली गायक, वादक और नृत्य-कार उत्पन्न नहीं हो रहे। गत दो दशाब्दियों में भारतीय संगीताकाश के अनेक जाज्वल्यमान नक्षत्र अस्त हुए हैं; किन्तु उनके रिक्त स्थान की संपूर्ति आंशिक रूप से भी नहीं हो पाई है। यह स्थिति भारतीय संगीत कला के लिए शोचनीय है। इसका निराकरण होना ही चाहिए। और, यह तभी संभव है, जब वर्तमान शीर्षस्थ कलाकार कुछ समय के लिए त्याग की भावना से काम करें। विदेश-भ्रमण, अर्थ संग्रह और ख्याति के प्रलोभनों से ऊपर उठकर, एकजुट होकर, परस्पर गंभीर-विमर्श करके कोई ऐसा मार्ग खोजें, जिस पर चलकर इस क्षति को पूरा किया जा सके।

भारत विकासशील देशों की पंक्ति में अग्रगण्य है। यहाँ आए दिन विकास की योजनाएँ बनती रहती हैं, संगीत के विकास के लिए भी शासन-तंत्र द्वारा अनेक प्रयास किए जा रहे हैं; किन्तु परिणाम निराशाजनक है। क्यों? इस प्रश्न का हल भी स्वच्छ हृदय और खुले मस्तिष्क से खोजना अनिवार्य है।



## सौंदर्य-शास्त्र (Aesthetics)

### सौंदर्य-शास्त्र

‘सौंदर्य-शास्त्र’ शब्द हिन्दी में ‘एस्थेटिक्स’ का पर्याय बनकर प्रचलित हुआ। कहा जाता है कि एस्थेटिक्स (Aesthetics) शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है, जिसका मूल रूप ग्रीक शब्द Aisthesis है, जो बाद में Asthesis बनकर उपस्थित हुआ। इस शब्द का अर्थ है ‘ऐंद्रिय सुख की चेतना’। यही शब्द बाद में ‘एस्थेटिक्स’ बन गया।

इसका प्रयोग सबसे पहले वाउमगार्टेन ने संवेदनशील ऐंद्रिय बोध के अर्थ में किया। इसके बाद हीगेल ने ललित कलाओं के दर्शन के अर्थ में किया। फिर इसका सामान्य प्रयोग, सौंदर्य (काव्य अथवा प्रकृति का सौंदर्य) के विश्लेषणात्मक रूप में होने लगा और फिर ललित कलाओं के तत्त्वों के सैद्धांतिक निरूपण और उसके आधार पर कलाकृतियों के मूल्यांकन के रूप में होने लगा। किन्तु बाद में ‘एस्थेटिक्स’ उस शास्त्र को कहा जाने लगा, जो ऐन्द्रिय-बोध से प्राप्त सौंदर्य-भावना के मनोमय आनन्द का विश्लेषण करता है। \*परन्तु अब ‘एस्थेटिक्स’ का विषय सौंदर्यानुभूति का सम्पूर्ण क्षेत्र बन गया है।

हीगेल ने ‘दी फिलॉसफी ऑफ़ फाइन आर्ट’ की भूमिका में सौंदर्य-शास्त्र पर विचार करते हुए यह कहा है कि सौंदर्य-शास्त्र का सम्बन्ध सौंदर्य के सम्पूर्ण क्षेत्र से माना जा सकता है, किन्तु सही अर्थों में सौंदर्य शास्त्र का सम्बन्ध ललित कलाओं के माध्यम से अभिव्यक्त सौंदर्य-शास्त्र के साथ है, अन्य माध्यमों से अभिव्यक्त सौंदर्य के साथ नहीं। उनकी दृष्टि से सौंदर्य-शास्त्र ललित कलाओं का दर्शन है।

लैंगर ने अपने ग्रन्थ ‘फिलिंग एण्ड फॉर्म’ के १९५३ ई० के संस्करण के बारहवें पृष्ठ पर एक प्रश्न उठाया है कि सौंदर्य-शास्त्र का सम्बन्ध कलाकार की अभिव्यक्ति (एक्सप्रेसन) से माना जाय अथवा उसके उत्पन्न होने वाले प्रभाव (इम्प्रेसन) से? कलाकार की दृष्टि से किसी कलाकृति का रचना-पक्ष ‘एक्सप्रेसन’ (अभिव्यक्ति) है और पाठक या सहृदय मनुष्य की दृष्टि से कला का अध्ययन ‘इम्प्रेसन’ (प्रभाव) का अध्ययन है। इनमें उन्होंने प्रभाववाले पक्ष को महत्त्व दिया है

\* एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका-११-वाँ संस्करण (१९१० ई०), पृष्ठ २१६



और प्रभाव-पक्ष के विवेचन-विश्लेषण को ही सौंदर्य-शास्त्र का प्रधान विषय माना है, न कि क्रोचे की तरह अभिव्यक्ति के विवेचन को।

अब यहाँ यह विचारणीय प्रश्न उत्पन्न होता है कि सौंदर्य-शास्त्र जिसकी उत्पत्ति ग्रीस (ग्रीक) से मानी जाती है, क्या भारत में नहीं था ? इसका उत्तर यह है कि भारत के विचारकों का एक वर्ग सौंदर्य-शास्त्र को काव्य-शास्त्र का पर्याय मानता है। किन्तु यह धारणा गलत है क्योंकि काव्य-शास्त्र के निष्कर्ष केवल काव्य को लक्ष्य करके निकाले जाते हैं, जबकि सौंदर्य-शास्त्र सभी ललित कलाओं के सर्वमान्य किन्तु प्रधान तत्त्वों का आलोचन और विश्लेषण करता है। इस प्रकार सौंदर्य-शास्त्र के अध्ययन से निम्नलिखित बातें प्रमुख संबंध रखती हैं—

१. सौंदर्य-शास्त्र ऐंद्रिय बोध से प्राप्त सौंदर्य-भाव के मनोमय आनन्द का विश्लेषण करता है।

२. सौंदर्य-शास्त्र का सम्बन्ध ललित कलाओं के माध्यम से अभिव्यक्त सौंदर्य-शास्त्र के साथ है। अन्य माध्यम से जो सौंदर्य अभिव्यक्त होता है, उसके साथ नहीं है।

३. सौंदर्य-शास्त्र के कुछ सूत्रों की विवेचना में मनोविज्ञान की सहायता की आवश्यकता हो सकती है या होती है, किन्तु मनोविज्ञान सौंदर्य-शास्त्र की सीमा नहीं है।

४. सौंदर्य-शास्त्र के निष्कर्ष प्रायः सभी ललित कलाओं को दृष्टि में रखकर निकाले जाते हैं, जबकि काव्य-शास्त्र के निष्कर्ष केवल काव्य को ध्यान में रखकर निकाले जाते हैं।

### ललित कलाओं का तात्त्विक अंतःसंबंध

यद्यपि स्थूल रूप से ललित कलाओं में भिन्नता स्पष्ट दिखाई देती है और है भी, परन्तु एक धरातल ऐसा भी है, जिस पर पहुँचकर सभी ललित कलाएँ तात्त्विक दृष्टि से अंतःसंबद्ध और समान सिद्ध होती हैं। उदाहरण के लिए अनेक ऐसी मूर्तियाँ हैं, जिनमें काव्य के विषय को उत्कीर्ण किया गया है। इस प्रकार किसी एक कला के भाव को स्पष्ट करने के लिए अन्य कलाओं का सहारा लेना अंतःसंबंध का सूचक है। भारतीय कला (चित्रकला) साहित्य के अंतर्गत 'रागमाला' चित्रों के द्वारा हमें संगीत की राग-रागिनियों का चित्रात्मक दर्शन मिलता है। 'रागमाला' के चित्रों में राग-रागिनियों से संबद्ध वातावरण, दृश्य, विषय, रस, काल और भाव आदि का ऐसा व्यंजक चित्र रहता है कि चित्र को देखने-मात्र से ही राग अथवा रागिनी के स्वरूप, प्रकृति, रस और समय आदि का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। यहाँ संगीत-कला जिन दृश्य-अदृश्य सूक्ष्मताओं का विवेचन ध्वनि तथा लय के द्वारा करती है, उन्हें चित्र-कला रंग-रेखाओं के द्वारा व्यक्त करती है।

### काव्य और चित्र-कला

भारतीय साहित्य के काव्य में वर्णित राधा-कृष्ण ने चित्र-कला के राधा-कृष्ण को प्रभावित किया है। लगभग १४५० ई० से तो कृष्ण-काव्य के उत्कृष्ट भावों को



चित्र-कला में उपस्थित करने की परिपाटी ही चल पड़ी। प्रसिद्ध ग्रंथ 'उमरखैयाम' का तो सारा काव्य ही चित्रमय हो गया है। इसीलिए कहा जाता है कि 'कविता' शब्दों के रूप में 'संगीत' है और 'संगीत' स्वर के रूप में 'कविता' है। रामचन्द्र शुक्ल 'चिन्तामणि' के प्रथम भाग के पृष्ठ-१७६-१८० पर लिखते हैं कि 'काव्य एक बहुत ही व्यापक कला है। जिस पर मूर्त विधान के लिए कविता चित्र-विद्या की प्रणाली का अनुसरण करती है, उसी प्रकार नाद-सौष्ठव के लिए वह संगीत का कुछ-कुछ सहारा लेती है। नाद-सौंदर्य कविता की आयु बढ़ाता है।... अतः नाद-सौंदर्य का योग भी कविता का पूर्ण रूप खड़ा करने के लिए कुछ-न-कुछ आवश्यक होता है।'

भारत में काव्य, अभिनय, नृत्य और संगीत का सह-अस्तित्व देखा जा सकता है। ये कलाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। इनका सह-अस्तित्व सौंदर्य-बोध को समृद्ध करता है। वह कलाजन्य आनन्द में बाधक नहीं होता। ललित-कलाओं के परस्पर सम्बन्धों पर विचार करते हुए हीगेल की अपेक्षा इस दृष्टिकोण को अपनाना अधिक युक्तिसंगत होगा।

### चित्र-कला और मूर्ति-कला

चित्र-कला भी मूर्ति-कला की भाँति एक दृश्य-कला है और यह आँखों द्वारा ग्रहण की जाकर प्रभाव उत्पन्न करती है। अतः दोनों का तात्त्विक अंतः-संबंध उतना ही स्पष्ट है, जितना कि काव्य और संगीत का।

### संगीत-कला और मूर्ति-कला

संगीत की अनेक नृत्य-मुद्राओं को दक्षिण के मंदिरों में, अनेक गुफाओं में उत्कीर्ण प्रतिमाओं के बीच तथा विभिन्न स्तूपों एवं धार्मिक प्रांगणों में स्पष्टतः देखा जा सकता है। इससे इन दोनों कलाओं का तात्त्विक अंतःसंबंध भी स्पष्ट दिखाई देता है।

### संगीत-कला और स्थापत्य-कला

इन दोनों कलाओं में जो अंतःसंबंध है, वह उपेक्षणीय नहीं है। यद्यपि संगीत श्रव्य कला है और वह कुछ विचारकों की दृष्टि से एक सूक्ष्म कला भी है तथा स्थापत्य-कला दृश्य-कला है और सर्वाधिक स्थूल कला है, फिर भी इन दोनों में तात्त्विक अंतःसंबंध अक्षुण्ण है। इसीलिए हीगेल ने स्थापत्य-कला को 'फ़ोर्ज़िन्न म्यूज़िक' (जमा हुआ संगीत) कहा है। इस आधार पर हम भी संगीत को 'फ़्लाइंग आर्किटेक्चर' (वहने वाली स्थापत्य-कला) कह सकते हैं।

स्थापत्य-कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें संबंध-संगति रहती है और इसमें संतुलन, परंपराश्रित संयोजन एवं विनियुक्त उपादानों का घनत्व अन्य ललित कलाओं की अपेक्षा अधिक मिलता है। संगीत-कला भी अपनी उत्कृष्टता के निमित्त स्थापत्य-कला के उक्त तत्त्वों को स्वीकार करती है। संगीत-कला के क्षेत्र में हमें स्वीकृत विधानों (रागों के शास्त्रीय विवरणों) के बीच स्वर-संतुलन, स्वरों का आरोह-अवरोह के रूप में परस्परश्रित संयोजन और स्वर-संवाद की घनता का सचेष्ट निर्वाह मिलता है। इस प्रकार जहाँ संगीत में यह सम्बन्ध-संगति स्वरों के



विधान पर निर्भर करती है, वहाँ स्थापत्य में यह सम्बन्ध-संगति स्थान-सम्बन्धी अंतराल, दीवारों की पंक्तिवद्धता और स्थूल द्रव्यों के भार या चाप पर कायम रहती है। अतः हीगेल का मत है कि संगीत और स्थापत्य में प्रभूत साम्य है।

इस सबसे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक कला अपने चरम विकास के अंशों में अन्य ललित कलाओं का आश्रय अधिकाधिक लेती है और चित्र-कला, संगीत-कला तथा काव्य-कला में तात्त्विक समागमन की क्षमता बढ़ती जाती है। साथ ही स्थापत्य-कला और मूर्ति-कला अपनी स्थूलता के कारण तात्त्विक समागम के उस उच्च धरातल पर पहुँचने में पीछे रह जाती है।

### अन्य कलाओं में संगीत का स्थान

गोपेनहावर शिल्प-कला, स्थापत्य-कला एवं चित्र-कला से काव्य-कला को उच्च कला मानते हैं, किंतु संगीत को वे कलाओं का सरताज मानते हैं। उनके अनुसार, किसी वस्तु का मानसिक बोध कराने में अन्य कलाएँ एक-एक क्षण को व्यक्त करती हैं, उसे संपूर्ण रूप में व्यक्त नहीं कर पातीं। संगीत-कला अन्य कलाओं की तरह मानसिक बोध कराने की अनुकृति नहीं करती, बल्कि वह स्वयं की इच्छा की अनुकृति है और यह बोध कराने की क्रिया इसी की छाया है। संगीत के गणक प्रभाव का यही कारण है वह स्वयं असली तत्त्व की अभिव्यक्ति करता है। संगीत-कला किसी विशेष सीमित आनन्द, दुःख, पीड़ा, भय, शांति या प्रसन्नता को व्यक्त नहीं करती, बल्कि वह इनके सामान्य और सार्वभौमिक स्वरूप को अभिव्यक्ति देती है। एक संगीतज्ञ, जगत् की आंतरिक प्रकृति का उद्घाटन करता है। वह अपनी भाषा में गहनतम ज्ञान की अभिव्यक्ति करता है, जिसे समझने में बुद्धि असफल रहती है। संगीत-तत्त्व सीमांसा और दर्शन से उत्पन्न होता है, जिसका स्रोत अचेतन मन है।

### संगीत का प्रभाव

संगीत से केवल आनंदानुभूति ही नहीं होती। ध्वनियाँ मानसिक स्थितियों को भी सूचक होती हैं। साथ ही ये हमारे मनोभावों को भी प्रभावित करती हैं। संगीत हमारी आत्मा में भक्तिमय अनुभूतियाँ भर देता है। भक्ति भी एक प्रकार का आवेग है; जो हमारी आत्मा को प्रभावित करता है।

संगीत में एक गति है और हमारी क्रियाएँ भी गत्यात्मक होती हैं। दोनों में सादृश्य होने के कारण ही मात्र ध्वनिमय राग-रागनियाँ हमारी आत्मा को प्रभावित कर लेती हैं। प्राकृतिक गति हमें आनंद देती है। बच्चे जन्म से ही इससे प्रभावित हो जाते हैं। राग और लय में प्रभावित करने की शक्ति उनकी नियमितता के कारण ही आती है, क्योंकि असंतुलन में संतुलन, अव्यवस्था में व्यवस्था और अनामंजस्य में सामंजस्य लाने की अपेक्षा नियमितता या संयम से हम अधिक प्रभावित होते हैं। स्वर और लय का संयम तथा सामंजस्य ही हमें प्रभावित करता है।



# संगीत का स्वर पक्ष

## संगीत

गीतं, वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते ॥

—संगीत-रत्नाकर (१।२१)

गीत वाद्य और नृत्य, ये तीनों मिलकर 'संगीत' कहलाते हैं। वास्तव में ये तीनों कलाएँ (गाना, बजाना और नाचना) एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं, किन्तु स्वतंत्र होते हुए भी गान के अधीन वादन तथा वादन के अधीन नर्तन है। प्राचीन काल में इन तीनों कलाओं का प्रयोग अधिकांशतः एकसाथ ही हुआ करता था।

'संगीत' शब्द 'गीत' शब्द में 'सम्' उपसर्ग लगाकर बना है। 'सम्' यानी 'सहित' और 'गीत' यानी 'गान'। 'गान के सहित' अर्थात् अंगभूत क्रियाओं (नृत्य) व वादन के साथ किया हुआ कार्य 'संगीत' कहलाता है।

नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवर्ति च ।

अतो गीतं प्रधानत्वादत्रादावभिधीयते ॥

—संगीत रत्नाकर (१/२४-२५)

अर्थात्—गान के अधीन वादन और वादन के अधीन नर्तन है, अतः इन तीनों कलाओं में 'गान' को ही प्रधानता दी गई है।

## १-स्वर

ध्वनियों में हम प्रायः दो भेद रखते हैं, जिनमें एक को 'स्वर' और दूसरे को 'कोलाहल' या 'रव' कहते हैं। कुछ लोग बातचीत की ध्वनि को भी एक भेद मानते हैं। साधारणतः जब कोई ध्वनि नियमित और आवर्त-कम्पनों से मिलकर उत्पन्न होती है, तो उसे 'स्वर' कहते हैं। इसके विपरीत जब कंपन अनियमित तथा पेचीदे या मिश्रित हों तो उस ध्वनि को 'कोलाहल' कहते हैं। बोलचाल की भाषा की ध्वनि को स्वर और कोलाहल के बीच की श्रेणी में रखा जाता है। संक्षेप में यह समझिए कि नियमित आन्दोलन-संख्यावली ध्वनि 'स्वर' कहलाती है। यही ध्वनि संगीत के काम में आती है, जो कानों को मधुर लगती है तथा चित्त को प्रसन्न करती है। इस ध्वनि को संगीत की भाषा में 'नाद' कहते हैं। इस आधार पर संगीतोपयोगी नाद 'स्वर' कहलाता है।

भारतीय संगीतज्ञों ने एक स्वर (ध्वनि) से उससे दुगुनी ध्वनि तक के क्षेत्र में ऐसे संगीतोपयोगी नाद बाईस माने हैं, जिन्हें 'श्रुतियाँ' कहा गया है। ध्वनि की प्रारम्भिक अवस्था 'श्रुति' और उसका अनुरणात्मक (गुंजित) स्वरूप ही 'स्वर' कहलाता है।



## २-शुद्ध स्वर

जब सा, रे, ग, म, प, ध, नि स्वरों में श्रुतियों का क्रम ४, ३, ४, ४, ३, २, रहता है तो उन स्वरों को 'शुद्ध स्वर' कहते हैं। इन शुद्ध स्वरों के पूरे नाम-१. षड्ज, २. ऋषभ, ३. गांधार, ४. मध्यम, ५. पंचम, ६. धैवत, ७. निषाद हैं। उच्चारण तथा गायन की सुविधा के लिए इनमें से प्रत्येक का प्रथम अक्षर ले लिया गया है और इस प्रकार इनके संक्षिप्त नाम 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि' रख लिए गए हैं।

## ३-शुद्ध तीव्र और विकृत (कोमल) स्वर

पहले बताए सात स्वर 'शुद्ध स्वर' कहे जाते हैं। इनमें 'सा' और 'प' तो 'अचल स्वर' माने गए हैं, क्योंकि ये अपनी जगह पर कायम रहते हैं। बाकी पाँच स्वरों के दो-दो रूप कर दिए गए हैं। क्योंकि ये अपनी जगह से हटते हैं, इसीलिए इन्हें 'कोमल' व 'तीव्र' नामों से पुकारते हैं। इन्हें 'विकृत स्वर' भी कहते हैं।

किसी स्वर की नियमित आवाज़ को नीचे उतारने पर 'वह' 'कोमल स्वर' कहलाता है और कोई स्वर अपनी नियत आवाज़ से ऊँचा जाने पर 'तीव्र स्वर' कहलाता है। रे, ग, ध, नि ये चारों स्वर जब अपनी जगह से नीचे हटते हैं, तो 'कोमल' बन जाते हैं और जब इन्हें फिर अपने नियत स्थान पर पहुँचा दिया जाता है तो इन्हें 'तीव्र' या 'शुद्ध' कहते हैं। किन्तु 'म' यानी मध्यम स्वर जब अपने नियत स्थान से हटता है तो वह नीचे नहीं जाता, क्योंकि उसका नियत स्थान पहले ही नीचा है; अतः 'म' स्वर जब हटेगा यानी विकृत होगा, तो ऊँचा जाकर 'तीव्र' कहलाएगा। गायकों की साधारण बोल-चाल में कोमल स्वरों को 'उतरे स्वर' और तीव्र स्वरों को 'चढ़े-स्वर' भी कहते हैं।

इस प्रकार दो अचल तथा पाँच शुद्ध और पाँच विकृत, सब मिलाकर बारह स्वर हुए :—

रे, ग, म, ध, नि (शुद्ध स्वर) : इन पर कोई चिन्ह नहीं होता।

रे, ग, ध, म, नि (विकृत स्वर) : इनमें रे, ग, ध, नि कोमल हैं और 'म' तीव्र है विष्णुदिगंबर-स्वरलिपि-पद्धति में बारह स्वर इस प्रकार लिखे जाते हैं :—

सा, प : अचल व शुद्ध स्वर।

रि, ग, म, ध, नि : शुद्ध स्वर।

रि, ग, म, ध, नि : विकृत स्वर (इनमें रि, ग, ध, नि कोमल और 'म' तीव्र है।)

इनके अतिरिक्त उत्तरी संगीत-पद्धति में कुछ अन्य चिन्ह-प्रणालियाँ भी चल रही हैं, किन्तु मुख्य रूप से उपर्युक्त दो चिन्ह प्रणालियाँ ही प्रचलित हैं। कोमल और तीव्र के अतिरिक्त सप्तक तथा मात्रा आदि के अन्य चिन्ह भी लगाए जाते हैं, जिनका विवरण इस पुस्तक में आगे चलकर 'स्वरलिपि-पद्धति' (Notation System) लेख में विस्तृत रूप से दिया गया है।



## श्रुति और स्वर का विवेचन

नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेयत्वमप्युत ।

लक्षे प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीतश्रुतिलक्षणम् ॥

—अभिनव रागमंजरी

अर्थात्—वह आवाज़, जो गीत में प्रयुक्त की जा सके और एक-दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके, 'श्रुति' कहलाती है। इसे अधिक स्पष्ट समझने के लिए मान लीजिए, हमने पहले एक नाद लिया, जिसकी आंदोलन-संख्या १०० कंपन प्रति सैकंड है। फिर हमने दूसरा नाद लिया, जिसकी आंदोलन-संख्या १०१ कंपन प्रति सैकंड है। वैज्ञानिक दृष्टि से तो ये दो भिन्न नाद हैं, परन्तु इनकी कंपन-संख्याओं में इतना कम अंतर है कि किसी कुशल संगीतज्ञ के कान भी इन दोनों नादों को पृथक्-पृथक् शायद ही पहचान सकेंगे। अब यदि हम दूसरे नाद में क्रमशः एक-एक कंपन प्रति सैकंड बढ़ाते जाएँ, तो एक स्थिति ऐसी आ जाएगी कि ये दोनों नाद अलग-अलग स्पष्ट पहचाने जा सकेंगे या इन दोनों नादों को पृथक्-पृथक् स्पष्ट सुना जा सकेगा। इसी आधार पर विद्वानों ने श्रुति की परिभाषा यह दी है कि जो नाद एक-दूसरे से पृथक् तथा स्पष्ट पहचाना जा सके, उसे 'श्रुति' कहते हैं।

एक विद्वान् एक सप्तक में ऐसे पृथक्-पृथक् सुने जा सकने वाले नादों की संख्या बाईस मानते हैं। उदाहरण के लिए निम्नांकित श्लोक देखिए:—

तस्य द्वाविंशतिर्भेद श्रवणात् श्रुतयो मताः ।

हृदयाभ्यन्तरसंलग्ना नाड्यो द्वाविंशतिर्मताः ॥

—स्वरमेलकलानिधि

अर्थात्—हृदय-स्थान में बाईस नाड़ियाँ हैं। उनके सभी नाद स्पष्ट सुने जा सकते हैं, अतः उन्हीं को 'श्रुति' कहते हैं। यही नाद के बाईस भेद माने गए हैं।

हमारे संगीत-शास्त्रकार प्राचीन समय से बाईस नाद मानते चले आ रहे हैं। ये नाद क्रमशः एक-दूसरे से ऊँचे चढ़ते चले गए हैं। इन्हीं बाईस नादों को 'श्रुति' कहते हैं। क्योंकि बाईस श्रुतियों पर गान करने में सर्वसाधारण को कठिनाई होती, अतः इन बाईस श्रुतियों में से बारह स्वर चुनकर गान में प्रयुक्त किए जाने लगे।



## स्वरों में श्रुतियाँ बाँटने का नियम

प्राचीन ग्रन्थकारों ने श्रुतियों को निम्नांकित क्रम से स्वरो से विभाजित किया है :—

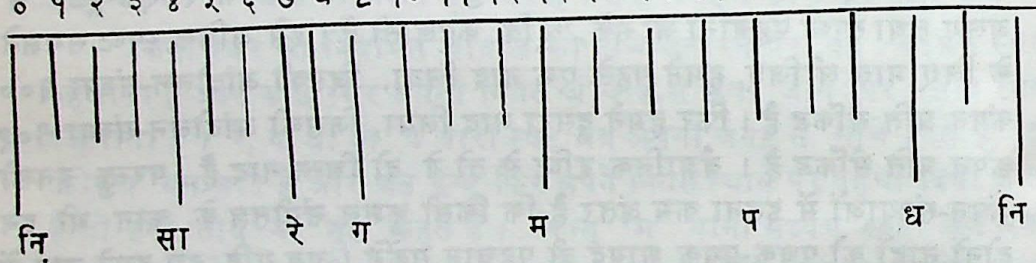
चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः ।

द्वे द्वे निषादगांधारौ त्रिस्त्रीकृषभधैवतौ ॥

—श्री मल्लक्ष्य संगीतम्

अर्थात्—षड्ज, मध्यम और पंचम स्वरों में चार-चार श्रुतियाँ, निषाद और गांधार में दो-दो श्रुतियाँ तथा ऋषभ और धैवत में तीन-तीन श्रुतियाँ हैं। इस प्रकार बाईस श्रुतियाँ सात स्वरों में बाँट दी गई हैं। नीचे दिया हुआ चित्र इसे अधिक स्पष्ट कर देगा :—

० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२



अर्थात्—चौथी श्रुति पर षड्ज, सातवीं पर ऋषभ, नवीं पर गांधार, तेरहवीं पर मध्यम, सत्रहवीं पर पंचम, बीसवीं पर धैवत और बाईसवीं पर निषाद है। ये प्राचीन तथा मध्यकालीन संगीत-विद्वानों के शुद्ध स्वर थे। इनमें आधुनिक दृष्टि से 'ग' व 'नि' कोमल थे अथवा यह कहना चाहिए कि आधुनिक काल तक के शुद्ध स्वर काफी ठाठ जैसे थे।

इसके विपरीत कुछ आधुनिक विद्वानों व ग्रन्थकारों ने पहले स्वरों को रखा, बाद में उनकी श्रुतियों को। ऐसा करने पर प्राचीन अथवा मध्यकालीन संगीत-विद्वानों के स्वर, आधुनिक संगीत-विद्वानों के स्वरों से भिन्न हो गए। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि प्राचीन काल के निषाद को आधुनिक काल का षड्ज मान लिया गया। इस आधार पर अब श्रुतियों का क्रम सप्तक में इस प्रकार हो गया :—

प्राचीन काल : नि --- स --- रे - गु --- म --- प --- ध - नि

आधुनिक काल : सा --- रे --- ग --- म --- प --- ध --- नि --- सा

श्रुति-व्यवस्था ४ ३ २ ४ ४ ३ २

ऐसा करने पर सबसे बड़ा अन्तर यह हुआ कि आधुनिक काल से पूर्व के स्वर हमारे काफी ठाठ-जैसे स्वर थे, जो अब बिलावल ठाठ-जैसे हो गए।



स्वरों को शुद्धावस्था आरम्भिक श्रुतियों पर मानने के दुष्परिणाम

इस आधार पर स्वरों की स्थिति निम्न-प्रकार होगी :—

सा	रे	ग	म	प	ध	नि
१ २ ३ ४, १ २ ३, १ २,	१ २ ३ ४, १ २ ३ ४, १ २ ३, १ २					

१. इन स्वरों में मध्यम से धैवत तक आठ श्रुतियों का अन्तर हो गया। यह अन्तर षड्ज-गांधार (सात श्रुतियों का) अन्तर होना चाहिए। क्योंकि मध्यम के बाद धैवत तक (पंचम की चार और धैवत की तीन ही) कुल सात श्रुतियाँ हैं। ऐसा न करने पर यदि मध्यम को षड्ज मानेंगे तो धैवत पर उसका गांधार नहीं बोलेगा।

२. तीव्र गांधार और धैवत में दस श्रुतियों का अन्तर हो गया, जो नौ का होना चाहिए। यहाँ इन स्वरों में षड्ज-मध्यम-भाव नष्ट हो गया।

३. यहाँ ऋषभ का पंचम से संवाद स्वतः हो जाता है। इस प्रकार मध्यम-ग्रामीण पंचम की प्राप्ति का उपाय नष्ट हो गया।

## श्रुति और स्वर तुलना

श्रुतयः स्युः स्वराभिन्नाः श्रावणत्वेन हेतुना ।

अहिकुण्डलवत्तत्र भेदोक्तिः शास्त्रसम्मता ॥

सर्वाश्च श्रुतयस्तत्तद्वागेषु स्वरतां गताः ।

रागाः हेतुत्व एतासां श्रुतिसंज्ञैव सम्मता ॥

—संगीत पारिजात

अर्थात्—जो सुनी जा सकती है, वह 'श्रुति' कहलाती है। स्वर और श्रुति में भेद इतना ही है, जितना सर्प और उसकी कुण्डली में। अर्थात् इन बाईस श्रुतियों में से जो श्रुतियाँ किसी राग-विशेष में प्रयुक्त होती हैं, वे 'स्वर' कहलाती हैं। जब किसी अन्य राग में इन स्वरों के अतिरिक्त अन्य श्रुतियाँ काम में ली जाती हैं, तो जो श्रुतियाँ अब काम में आईं, वे स्वर बन गईं, और जो स्वर छोड़ दिए गए, वे पुनः श्रुतियाँ बन गईं। उदाहरण के लिए, आपने मालकोश राग गाया, तो जिन श्रुतियों पर यह राग गाया-बजाया जाएगा, वे 'स्वर' कहलाएँगी। परन्तु फिर आपने हिंडोल राग गाया, तो जो श्रुतियाँ मालकोश में प्रयुक्त होते समय स्वर बन गई थीं, अब उन्हें छोड़ना पड़ा, अतः वे पुनः श्रुतियाँ बन गईं, और जो श्रुतियाँ हिंडोल में प्रयुक्त होंगी, वे 'स्वर' कहलाएँगी। इस प्रकार जब गायन-वादन में श्रुति का प्रयोग नहीं होता तो वह कुण्डली की भाँति सोई हुई रहती है और जब उसका प्रयोग किसी राग-विशेष में होता है, तो वही सर्प का भाँति क्रियाशील हो जाती है। इस आधार पर श्रुति को कुण्डली और स्वर को सर्प की उपमा दी गई है। यही भेद शास्त्र-सम्मत है और ये सब श्रुतियाँ ही रागों में स्वर का रूप धारण कर लेती हैं तथा इन श्रुतियों के कारण-रूप ही राग हैं।



इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों के श्रुति-विषयक विचार इस प्रकार हैं :—  
विश्वावसु ने लिखा है—‘कणस्पर्शाश्रुतिर्ज्ञेया स्थित्या सैव स्वरोच्यते ।’  
अर्थात्—कण, स्पर्श, मीड़, सूत से ‘श्रुति’ (कहलाती है) तथा उस पर ठहरने से  
वही ‘स्वर’ हो जाता है ।

संगीतदर्पणकार दामोदर पंडित ने श्रुति-स्वर का भेद इस प्रकार बताया है :—

श्रुत्यंतरमावित्वं यस्यानुरणनात्मकः ।

स्निग्धश्च रंजकश्चासौ स्वर इत्यभिधीयते ॥

स्वयं यो राजतेनादः स स्वरः परिकीर्तितः ।

भावार्थ—श्रुति उत्पन्न होने के पश्चात् जो नाद तुरन्त निकलता है तथा जो प्रतिध्वनित अथवा गूँज का रूप प्राप्त करके मधुर तथा रंजन करनेवाला होता है, उसे ‘स्वर’ कहते हैं । जो नाद स्वयं ही शोभित होता है (मधुर लगता है) तथा जिसे अन्य किसी नाद की अपेक्षा नहीं होती, उसे ‘स्वर’ समझना चाहिए ।

इस व्यवस्था से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि टंकोर-मात्र से जो क्षणिक ध्वनि (आवाज़) उत्पन्न हुई, वह ‘श्रुति’ है और तुरन्त ही आवाज़ स्थिर हो गई तो वह ‘स्वर’ है ।

## श्रुति-स्वरूप

स्वरूपमात्रश्रवणान्नादोऽनुरणनं बिना ।

श्रुतिपित्युच्यते भेदास्तस्या द्वाविंशतिर्मताः ॥

—संगीत-दर्पण

अर्थात्—प्रथमाघात से अनुरणन (प्रतिध्वनि या गूँज) हुए बिना जो ह्रस्व (टंकोर) नाद उत्पन्न होता है, उसे ‘श्रुति’ समझना चाहिए ।

श्रुति और स्वर देखने में दो नाम अवश्य हैं, किंतु ध्यानपूर्वक देखा जाए, तो श्रुति और स्वर में कोई विशेष अंतर नहीं है, क्योंकि दोनों ही संगीतोपयोगी आवाज़ें हैं, दोनों का ही प्रयोग गायन-वादन में होता है और दोनों की आवाज़ें स्पष्ट सुनी जा सकती हैं । अब श्रुति और स्वर का भेद सरलतापूर्वक समझाते हैं ।

**श्रुति**

गायन-वादन के लिए सप्तक में से संगीत के प्राचीन पंडितों ने बाईस स्थान ऐसे चुन लिए, जिनकी आवाज़ें परस्पर ऊँची-नीची हैं और जो संगीत में उपयोगी सिद्ध हुईं, इन्हें ही ‘श्रुति’ कहा है ।

**स्वर**

इसके बाद उन बाईस ध्वनियों में से कुछ ध्वनियाँ ऐसी चुन ली गईं; जिनकी आवाज़ें परस्पर ऊँची-नीची हैं । किंतु उन बाईस ध्वनियों में जो परस्पर अंतराल है, वह बहुत ही सूक्ष्म है, इस कारण श्रुतियों के अन्तर को साधारण संगीतज्ञ की अपेक्षा एक उत्तम संगीतज्ञ ही अनुभव कर सकता है, किन्तु स्वरों के अन्तर (फासला) को साधारण संगीत-प्रेमी भी पहचान लेते हैं ।



संभवतः आपने ध्यान दिया हो कि किसी राग में कोई स्वर लगाते समय कोई-कोई गायक यह कहते सुने जाते हैं कि इस राग का कोमल धैवत ऊँचा है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि वहाँ पर कोमल की बजाय तीव्र धैवत लगेगा। उदाहरणार्थ राग पूर्वी में भी कोमल धैवत लगता है और भैरव में भी, किंतु गुणी संगीतज्ञों का कहना है कि पूर्वी में लगने वाला कोमल धैवत भैरव राग के कोमल धैवत से एक श्रुति ऊँचा है। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि खमाज राग के अवरोह में लगनेवाले कोमल निषाद से खमाज के आरोह का कोमल निषाद एक श्रुति ऊँचा है। इसका अर्थ यह हुआ कि खमाज के आरोह में जो कोमल निषाद लगेगा, वह तीव्र निषाद की ओर कुछ खींचकर इस प्रकार ले जाया जाएगा कि तीव्र निषाद को तनिक छूकर शीघ्र ही अपने स्थान पर वापस आ जाए; क्योंकि यदि वहाँ अधिक देर लग गई तो श्रुति-प्रयोग न होकर वह स्वर-प्रयोग हो जाएगा। इस प्रकार दूसरे स्वर का तनिक स्पर्श करना या छूना 'कण-स्वर' लगाना कहलाता है। ऊपर कहा ही जा चुका है कि कण, मीड़, सूत द्वारा जबतक 'स्वर' दिखाया जाता है तबतक तो 'श्रुति' है और उसपर ठहरने से वही 'स्वर' कहलाता है। उपयुक्त विवेचन से श्रुति और स्वर की तुलना में निम्नलिखित चार सिद्धांत निश्चित हुए।

१. श्रुतियाँ बाईस होती हैं और स्वर सात।

२. श्रुतियों का परस्पर अन्तराल या फासला स्वरों की अपेक्षा कम होता है। स्वरों का परस्पर अन्तराल श्रुतियों की अपेक्षा अधिक होता है।

३. कण, मोड़ और सूत द्वारा जबतक किसी सुरीली ध्वनि को व्यक्त किया जाता है, तबतक तो वह 'श्रुति' है और जहाँ उसपर ठहराव हुआ कि वह स्वर कहलाई।

४. श्रुति और स्वर की तुलना में अहोबल पंडित ने 'संगीत-पारिजात' में सर्प और कुण्डली का जो उदाहरण दिया है, उसके अनुसार सर्प की कुण्डली तो श्रुति है और सर्प स्वर है। कुण्डली के अन्दर जिस प्रकार सर्प रहता है, उसी प्रकार श्रुतियों के अन्दर स्वर स्थित हैं।

### प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ

प्राचीन काल में संगीत के दो मुख्य ग्रन्थकार भरत और शाङ्गदेव हुए हैं। ईसा से काफी समय पूर्व भरत ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' लिखा और तेरहवीं शताब्दी में शाङ्गदेव ने 'संगीत रत्नाकर' नामक ग्रन्थ लिखा, जिसका प्रमाण आज भी बहुत-सी संगीत-पुस्तकों द्वारा मिलता है। इन पंडितों ने अपने-अपने ग्रन्थों में श्रुतियों का वर्णन भी किया है, जिनमें इन दोनों ने एकमत से कुल बाईस श्रुतियाँ ही मानी हैं; साथ ही उनका श्रुति-स्वर-विभाजन भी एक ही सिद्धांत पर हुआ है। अर्थात् कुछ विद्वानों के मतानुसार ये दोनों ही पंडित अपने स्वरों का परस्पर संबंध मालूम करने के लिए श्रुति का एक निश्चित नाद स्वीकार करते थे, यानी वे सब श्रुतियों को समान मानते थे। उनकी पहली श्रुति से दूसरी श्रुति जितने फासले पर है, उतना ही फासला उन्होंने समस्त श्रुतियों में रखा है, इसी फासले या अंतर को 'श्रुत्यंतर' कहते हैं।



यद्यपि मध्यकालीन विद्वान 'चतुश्चतुष्टयं.....' वाले श्लोक के अनुसार मान स्वरों का विभाजन बाईस श्रुतियों पर स्वीकार करते हैं तथा प्राचीन पंडितों के अनुसार ही उन्होंने भी प्रत्येक स्वर को उस स्वर की अन्तिम श्रुति पर स्थित किया है किन्तु प्राचीन और मध्यकालीन विद्वानों में श्रुति के समान अंतर पर मतभेद है।

## आधुनिक ग्रंथकारों की श्रुतियाँ

प्राचीन और मध्यकालीन ग्रंथकारों के विवेचन द्वारा यह प्रतीत होता है कि उन्होंने अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर अन्तिम श्रुति पर निश्चित किया है। इसके विरुद्ध हमारे आधुनिक ग्रंथकार अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर प्रथम श्रुति पर स्थापित करते हैं। आधुनिक ग्रंथकारों में 'अभिनव राग-मंजरी' के लेखक पं० विष्णुनारायण भातखंडे का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने श्रुतियों के विभाजन के बारे में इस प्रकार लिखा है :—

वेदाचलांश्रुतिषु त्रयोदश्यां श्रुतौ तथा ।

सप्तदश्यां च विश्यां च द्वाविश्यां च श्रुतौ क्रमात् ॥

षड्जादीनां स्थितिः प्रोक्ता शुद्धाख्या भरतादिभिः ।

हिन्दुस्थानीयसंगीते श्रुतिक्रमविपर्ययः ॥

एते शुद्धस्वराः सप्त स्वस्वाद्यश्रुतिसंस्थिताः ।

अर्थात्—भरत इत्यादि प्राचीन शास्त्रकारों ने श्रुतियाँ शुद्ध स्वरों में इस क्रम से बाँटी हैं कि षड्ज चौथी श्रुति पर, ऋषभ सातवीं श्रुति पर, गांधार नवीं पर, मध्यम तेरहवीं पर, पंचम सत्रहवीं पर, धैवत बीसवीं पर और निषाद बाईसवीं श्रुति पर स्थित है। किन्तु हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति में श्रुतियों को सात शुद्ध स्वरों पर बाँटने का क्रम इसके विपरीत रखकर प्रत्येक शुद्ध स्वर प्रथम श्रुति पर स्थापित किया गया है।

इस प्रकार आधुनिक ग्रंथकार पहली श्रुति पर षड्ज, पाँचवीं पर ऋषभ, आठवीं पर गांधार, दसवीं पर मध्यम, चौदहवीं पर पंचम, अठारहवीं पर धैवत और इक्कीसवीं पर निषाद कायम करते हैं।

## प्राचीन व आधुनिक श्रुति-स्वर-विभाजन

आगे दिए नक्शे में प्राचीन ग्रंथों द्वारा श्रुतियों का शुद्ध स्वरों पर विभाजन दिखाया गया है; साथ ही आधुनिक संगीत-ग्रंथकारों ने शुद्ध स्वर कौन-कौनसी श्रुतियों पर माने हैं, यह भी दिखाया है।



## बाईस श्रुतियों पर प्राचीन व आधुनिक शुद्ध स्वर-स्थापना

श्रुति सं०	श्रुति-नाम	प्राचीन ग्रंथों के शुद्ध स्वर-स्थान	आधुनिक संगीत-पद्धति के अनुसार शुद्ध स्वर-विभाजन
१	तीव्रा		षड्ज
२	कुमुद्वती		
३	मंदा		
४	छंदोवती	षड्ज	
५	दयावती		ऋषभ
६	रंजनी		
७	रतिका	ऋषभ	
८	रौद्री		गांधार
९	क्रोधा	गांधार	
१०	वज्रिका		मध्यम
११	प्रसारिणी		
१२	प्रीति		
१३	मार्जनी	मध्यम	
१४	क्षिति		पंचम
१५	रक्ता		
१६	संदीपिनी		
१७	आलापिनी	पंचम	
१८	मदन्ती		धैवत
१९	रोहिणी		
२०	रम्या	धैवत	
२१	उग्रा		निषाद
२२	क्षोभिणी	निषाद	

यह तो हुआ श्रुतियों का शुद्ध स्वर विभाजन। अब रहे पाँच विकृत स्वर। उनके लिए यह नियम है कि जिस श्रुति पर स्वर कायम हुआ है, उससे तीसरी श्रुति पर आगेवाला विकृत स्वर आएगा। इस प्रकार शुद्ध स्वरों से दो-दो श्रुति पर विकृत स्वरों की स्थापना करने पर आगे दी हुई तालिका बनेगी।



बाईस श्रुतियों पर आधुनिक पद्धति के बारह स्वरों की स्थापना

सं०	श्रुति-नाम	स्वर	स्वर-आंदोलन
१	तीव्रा	सा (अचल)	२४०
२	कुमुद्वती	रे (कोमल)	२५४ $\frac{२}{३}$
३	मंदा		
४	छंदोवत		
५	दयावती	रे (तीव्र)	२७०
६	रंजनी	ग (कोमल)	२८८
७	रतिका		
८	रौद्री		
९	क्रोधा		
१०	वज्रिका	म (कोमल)	३२०
११	प्रसारिणी	म (तीव्र)	३३८ $\frac{१}{४}$
१२	प्रीति	प (अचल)	३६०
१३	मार्जनी		
१४	क्षिति		
१५	रक्ता		
१६	संदीपिनी	ध (कोमल)	३८१ $\frac{३}{४}$
१७	आलापिनी		
१८	मदंती		
१९	रोहिणी		
२०	रम्या	नि (कोमल)	४३२
२१	उग्रा	नि (तीव्र)	४५२ $\frac{४}{३}$
२२	क्षोभिणी		

१। तीव्रा । सां (तार) । ४८०

अब हम प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक संगीत-ग्रंथकारों की एक तुलनात्मक तालिका देकर यह बताते हैं कि श्रुति-स्वर के बारे में उनके विचारों में कहीं-कहीं एकता और मतभेद हैं।



प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक ग्रन्थकारों का श्रुति-स्वर के सम्बन्ध में

## तुलनात्मक विवेचन

वे सिद्धांत, जिनपर तीनों ग्रन्थकार एकमत हैं :—

प्राचीन-ग्रन्थकार (भरत, शाङ्गदेव आदि)	मध्यकालीन ग्रन्थकार (अहोबल, श्रीनिवास, लोचन)	आधुनिक ग्रन्थकार (भातखण्डे आदि)
बाईस श्रुतियाँ एक सप्तक में मानते हैं।	बाईस श्रुतियाँ एक सप्तक में मानते हैं।	बाईस श्रुतियाँ एक सप्तक में मानते हैं।
शुद्ध तथा विकृत बारह स्वर इन्हीं बाईस श्रुतियों पर बाँटते हैं।	शुद्ध तथा विकृत बारह स्वर इन्हीं बाईस श्रुतियों पर बाँटते हैं।	शुद्ध तथा विकृत बारह स्वर इन्हीं बाईस श्रुतियों पर बाँटते हैं।
षड्ज, मध्यम, पंचम की चार-चार श्रुतियाँ, निषाद-गांधार की दो-दो श्रुतियाँ और ऋषभ-धैवत की तीन-तीन श्रुतियाँ मानकर स्वरों की स्थापना करते हैं।	प्राचीन ग्रन्थकारों की तरह ही इन्होंने भी उसी प्रकार के ये विभाजन स्वीकार करके प्राचीन सिद्धांत स्वीकार किया है।	प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों के अनुसार इन्होंने भी नियम का पालन करके उनका मत स्वीकार किया है।

वे सिद्धांत, जिन पर आपस में मतभेद रहा है :—

अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर उस स्वर की शास्त्रोक्त अंतिम श्रुति पर रखते हैं; अर्थात् सा रे ग म प ध नि ४-७-८-१३-१७-२०- २२ इन श्रुतियों पर रखते हैं।	इस विषय में ये भी प्राचीन ग्रन्थकारों का अनुकरण करते हैं और उसी प्रकार अपने सातों शुद्ध स्वर ४-७-८-१३-१७-२०-२२, इन श्रुतियों पर रखते हैं।	अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर पहली श्रुति पर कायम करके सा, रे, ग, म, प, ध, नि, क्रमशः १-५-८-१० १४-१८-२१, इन श्रुतियों पर स्थापित करते हैं।
इनके शुद्ध स्वर-सप्तक में आधुनिक दृष्टि से ग-नि कोमल हैं अर्थात् वह आज के काफ़ी थाट जैसा है।	इनके शुद्ध स्वर सप्तक में भी आधुनिक दृष्टि से ग-नि कोमल हैं।	अपने शुद्ध स्वर-सप्तक में आधुनिक बिलावल के स्वर निश्चित करते हैं।
वीणा के तार पर भिन्न-भिन्न स्वरों की स्थापना करने का इनके ग्रंथों में कोई उल्लेख नहीं मिलता।	वीणा के तार की लम्बाई पर शुद्ध व विकृत स्वरों की स्थापना करते हैं।	वीणा के तार की लम्बाई पर शुद्ध व विकृत स्वरों की स्थापना करते हैं, किंतु रे, म, ध, इन तीन विकृत स्वरों पर मतभेद है।
स्वरों की आन्दोलन संख्या का उल्लेख नहीं किया।	स्वरों की आन्दोलन संख्या का उल्लेख नहीं किया।	स्वरों की आन्दोलन संख्या का उल्लेख किया है।



# Natural Scale of 22 Tones of Indian Music.

## भारतीय संगीत के नैसर्गिक २२ श्रुतिस्वरों का नक्शा

श्रुति अनुक्रम	श्रुतिनाम	प्राचीन स्वरनाम	आधुनिक श्रुति संख्यावाचक स्वरनाम	लौकिक स्वरनाम	कम्पन संख्या
०	क्षोभिणी	शुद्ध नि	शुद्ध सा	शुद्ध	२४०
१	तीव्रा				(२५२ $\frac{१}{३}$ )
२	कुमुद्वती	काकली नि	लघु द्विश्रुतिक रि द्विश्रुतिक रि	अतिकोमल कोमल	२५३ $\frac{१}{३}$ २५६
३	मन्दा		त्रिश्रुतिक रि	तीव्र	२६६ $\frac{२}{३}$
४	छन्दोवती	शुद्ध सा	चतुःश्रुतिक रि	तीव्रतर	२७०
५	दयावती		संकीर्ण श्रुतिक ग द्विश्रुतिक ग	अतिकोमल कोमल	२८४ $\frac{१}{२}$ २८८
६	रजनी		तिश्रुतिक ग	तीव्र	३००
७	रतिका	शुद्ध रि	सं. त्रिश्रुतिक ग	तीव्रतर	३०३ $\frac{१}{३}$
८	रौद्री				(३०३ $\frac{२}{३}$ )
९	क्रोधा	शुद्ध ग	द्विश्रुतिक स	कोमल	३२०
१०	वज्रिका				(३२४)
११	प्रसारिणी	अंतर ग	चतुःश्रुतिक म संकीर्ण चतुःश्रु म	तीव्र तीव्रतर	३३७ $\frac{१}{३}$ ३४१ $\frac{२}{३}$
१२	प्रीति				(३५५ $\frac{१}{३}$ )
१३	मार्जनी	शुद्ध म	शुद्ध प	शुद्ध	३६०
१४	क्षिती				(३७८ $\frac{१}{३}$ )
१५	रक्ता		लघु द्विश्रुतिक ध द्विश्रुतिक ध	अतिकोमल कोमल	३७८ $\frac{२}{३}$ ३८४
१६	संदीपिनी	शुद्ध प	तिश्रुतिक ध	तीव्र	४००
१७	आलापिनी		चतुःश्रुतिक ध	तीव्रतर	४०५
१८	मदन्ती		संकीर्ण श्रुतिक नि द्विश्रुतिक नि	अतिकोमल कोमल	४२६ $\frac{२}{३}$ ४३२
१९	रोहिणी		त्रिश्रुतिक नि	तीव्र	४५०
२०	रम्या	शुद्ध ध	सं. त्रिश्रुतिक नि	तीव्रतर	४५५ $\frac{१}{३}$
२१	उग्रा				(४५५ $\frac{२}{३}$ )
२२	क्षोभिणी	शुद्ध नि	शुद्ध सां	शुद्ध	४८०



## विविध गुणोत्तरों का नक्शा

भावदर्शक नाम	श्रुत्यंतर	उदाहरण स्वरनाम	कंपनसंख्या	गुणोत्तर	सेन्ट
सप्तकांतर	२२	सा, सां	२४०:४८०	२	१२००
पंचमभाव } संवादांतर }	१३	सा, प	२४०:३६०	$\frac{३}{२}$	७०२
मध्यमभाव } संवादांतर }	८	सा, म	२४०:३२०	$\frac{४}{३}$	४८८
अनुवादांतर	७	सा, ग	२४०:३००	$\frac{४}{३}$	३८६
"	६	सा, ग्	२४०:२८८	$\frac{६}{५}$	३१६
चतुःश्रुत्यंतर	४	सा, रि	२४०:२७०	$\frac{६}{५}$	२०४
संकीर्ण } चतुःश्रुत्यंतर }	४	ध, नि	४००:४५५ $\frac{१}{६}$	$\frac{३५६}{३२५}$	२२४
त्रिश्रुत्यंतर	३	रि, ग	२७०:३००	$\frac{१०}{९}$	१८२
संकीर्ण } त्रिश्रुत्यंतर }	३	रि, ग	२७०:३०३ $\frac{१}{३}$	$\frac{४०६६५}{३३४५}$	२०२
द्विश्रुत्यंतर	२	सा, रि	२४०:२५६	$\frac{१६}{१५}$	११२
लघुद्विश्रुत्यंतर	२	सा, रि	२४०:२५३ $\frac{१}{३}$	$\frac{१३५}{१३६}$	६२
संकीर्ण } श्रुत्यंतर }	१	रि, ग्	२७०:२८४ $\frac{५}{६}$	$\frac{३५६}{३४५}$	८०
श्रुत्यंतर	१	रि, रि	२५६:२६६ $\frac{३}{४}$	$\frac{३५}{३४}$	७०
"	१	रि, रि	२६६:३:२७०	$\frac{६१}{६०}$	२२
"	१	रि, रि	२५३:३:२५६	$\frac{३०४५}{३०३५}$	२०



प्रचलित सितार, दिलरुबा, आदि वाद्यों के स्वरसप्तक का नक्शा

श्रुति नंबर	श्रुतिनाम	प्राचीन स्वरनाम	जोड़ी के तार स्वर नाम	कम्पन-संख्या	मध्यम के तार पर स्वरनाम	कम्पन संख्या
परदा नं. ७	१३ मार्जनी	म	प	३६०	सा	२४०
	१४ क्षिती					
	१५ रक्ता					
	१६ संदीपिनी					
	१७ आलापिनी	प	ध	४०५	रि	२७०
	१८ मदन्ती					
	१९ रोहिणी					
	२० रम्या	ध	नि	४५०	ग	३००
	२१ उग्रा					
	२२ क्षोभिणी	नि	सा	२४०	म	३२०
	५ तीव्रा					
	२ कुमुद्वती	का. नि	रि	२५६	म	३४१ $\frac{१}{३}$
	३ मन्दा					
	४ छन्दोवती	सा	रि	२७०	प	३६०
	५ दयावती					
	६ रञ्जनी					
	७ रतिका	रि	ग	३००	ध	४००
	८ रौद्री					
	९ क्रोधा	ग	म	३२०	नि	४२६ $\frac{२}{३}$
	१० वज्रिका					
	११ प्रसारिणी	अं. ग	म	३४१ $\frac{२}{३}$	नि	४५५ $\frac{१}{६}$
	१२ प्रीति					
	१३ मार्जनी	म	प	३६०	सां	४८०



## क्या भरत की श्रुतियों का अन्तराल समान था ?

इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व इस विषय पर विचार कर लेना अनुचित न होगा। आज के युग में यह निश्चय हो चुका है कि ये श्रुति-अन्तराल असमान हैं। आचार्य डा० कैलासचन्द्रदेव बृहस्पति का 'श्रुति-दर्पण' इसे अधिक स्पष्ट कर देगा।

आधुनिक युग में आचार्य बृहस्पति ने संगीत कार्यालय, हाथरस द्वारा प्रकाशित अपने ग्रंथ 'संगीत चिन्तामणि' में इसका विस्तृत विवेचन किया है। यदि आप भी इस श्रुति-दर्पण पर चतुःसारणा को करके देखें, तो आप यह स्पष्ट समझ जाएँगे कि भरत की श्रुतियाँ समान न होकर असमान थीं। संस्कृत भाषा का ठीक ज्ञान न होने से आधुनिककालीन अनेक विद्वानों को यही भ्रम बना रहा कि प्राचीन श्रुत्यन्तर समान थे। इस युग में आचार्य बृहस्पति के दीर्घ चिन्तन और मनन के फलस्वरूप इस सत्य का उद्घाटन संभव हो सका। प्राचीन पद्धति द्वारा श्रुति और स्वरों की स्थापना, विभिन्न ग्राम और मूर्च्छनाओं की सिद्धि तथा श्रुतियों के परिमाण पर उनकी व्याख्या अनेक संगीत शास्त्रियों के लिए आँखें खोल देने वाली हैं।



## सारणा चतुष्टयी

### प्रमाण श्रुति और श्रुति-परिमाण

सारिका का अर्थ है पर्दा (Fret) जिनके ऊपर जाने वाले सितार, वीणा आदि वाद्य के तारों को उंगली या अन्य किसी वस्तु से दबा कर स्वर निकाला जाता है। सारिकाओं को आगे पीछे सरकाना 'सारण' कहलाता है और जब सारिकाओं अथवा तारों को यथा स्थान मिलाकर बाईस श्रुतियों और उन पर स्थित भिन्न-भिन्न स्वरों तथा ग्रामों का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त किया जाता है तो यही सारणा क्रिया कहलाती है। सारणा क्रिया या सारणा पद्धति का प्रयोजन यही है।

भरत, शाङ्गदेव और मतंग आदि ने सारणा-चतुष्टयी का प्रयोजन सप्तक के अन्तर्गत श्रुतियों के परिमाणों और संख्याओं की प्राप्ति माना है।

सारणा चतुष्टयी क्रिया के लिए आप एक ऐसा तानपूरा लीजिए, जिसकी डांड सपाट हो, अर्थात् बीच से उठी हुई न हो। इस तानपूरे पर परदे भी सपाट वीणा की तरह हों, अर्थात् वे सितार के परदों की भाँति बीच में उठे हुए न हों। तानपूरे में पाँच खूंटियाँ हों। अब पाँच तार एक-जैसे चढ़ा लीजिए। घुड़च बिलकुल सीधी हो, तनिक भी आड़ी-तिरछी न हो। परदे भी बिलकुल सीधे रहें। बस, यही हमारा श्रुति-दर्पण होगा। इस पर नियम पूर्वक षड्ज ग्राम के परदे मिला लीजिए। इसके पाँच तारों को भी समान ध्वनि में मिला लीजिए। इस श्रुति-दर्पण में बायीं ओर वाले तार को हम पहला तार कहेंगे। अन्य तार क्रमशः दूसरा, तीसरा, चौथा और पाँचवाँ तार कहलाएँगे।

#### मूल सप्तक

पहले तार को षड्ज इत्यादि के परदों पर दबाकर छेड़ने से जो सप्तक बोलेगा उसे हम 'मूल सप्तक' कहेंगे। यह पूर्वोक्त पद्धति के 'अचल सप्तक' का काम देगा।



## प्रथम सारणा

दूसरे तार को इतना उतारिए कि 'मूल सप्तक' के ऋषभ के साथ उसके पंचम का संवाद षड्ज-मध्यम-भाव से होने लगे । इतना करने पर आप देखेंगे कि दूसरा तार 'मूल सप्तक के तार की अपेक्षा' कुछ उतरा हुआ है । यह कुछ अन्तर ही भरत की परिभाषा में 'प्रमाण श्रुति' का अन्तर है जिसे केशाग्र अन्तर बताया गया है ।

अब यदि किसी भी परदे पर पहले और दूसरे तार को दबाकर बजाया जाए, तो दोनों तारों की ध्वनियों में प्रमाण-श्रुति का अन्तर स्पष्ट सुनाई देगा । इसे यों भी कहा जा सकता है कि दूसरे तार पर ध्वनित होनेवाले स्वर, मूल सप्तक के तार पर ध्वनित होनेवाले स्वरों से 'प्रमाण-श्रुति' नीचे होंगे ।

## द्वितीय सारणा

अब तीसरे तार को इतना उतारिए कि उसके गांधार की ध्वनि, मूल सप्तक के ऋषभ की ध्वनि में मिल जाए । इतना करने पर आप देखेंगे कि तीसरे तार का निषाद मूल सप्तक के धैवत में स्वतः मिल गया । तीसरे तार पर बोलनेवाला षड्ज-ग्रामिक सप्तक अब भी मूल सप्तक की अपेक्षा दो श्रुति उतरा हुआ है ।

## तृतीय सारणा

चौथे तार को अब इतना उतारिए कि इसका ऋषभ, मूल सप्तक के षड्ज में मिल जाए । ऐसा करने से चौथे तार का धैवत मूल सप्तक के पंचम में स्वतः मिल जाएगा । चौथे तार पर मिला हुआ षड्जग्रामिक सप्तक अब मूल सप्तक की अपेक्षा तीन श्रुतियाँ उतरा हुआ है ।

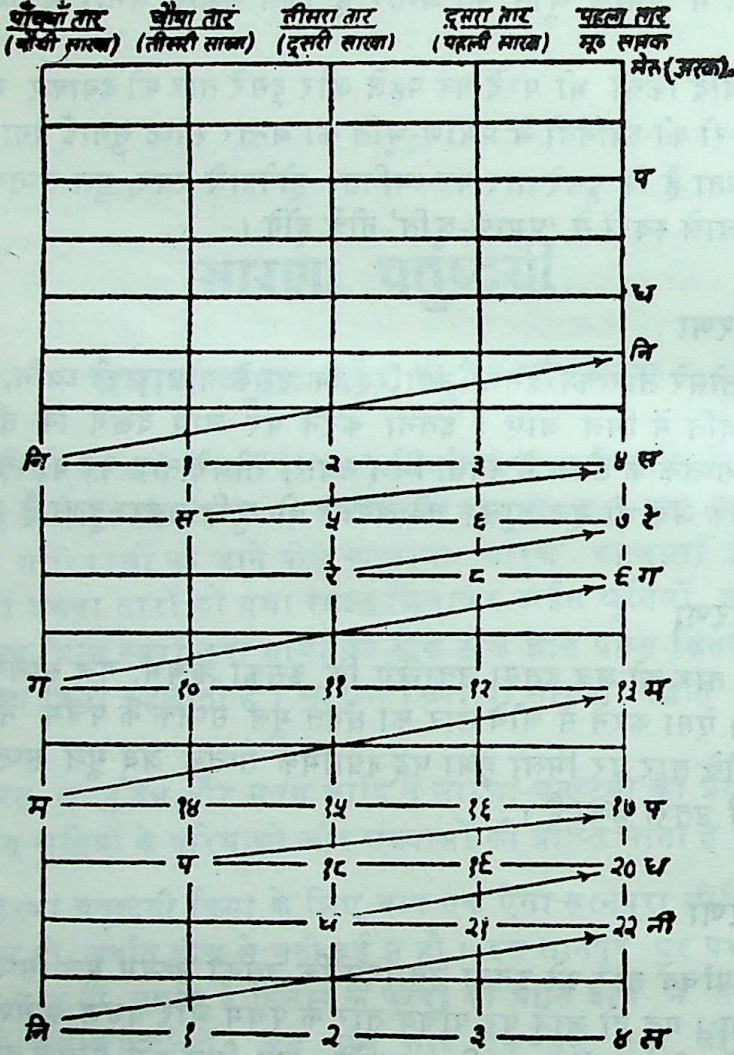
## चतुर्थ सारणा

अब पाँचवें तार को इतना उतारिए कि उसका मध्यम मूल सप्तक के गांधार में मिल जाए । यह हो जाने पर पाँचवें तार के पंचम और षड्ज क्रमशः मूल सप्तक के मध्यम और निषाद में स्वतः मिल जाएँगे । इस स्थिति में पाँचवें तार पर ध्वनित होने वाला सप्तक मूल सप्तक की अपेक्षा चार श्रुतियाँ उतरा हुआ है ।

इस प्रकार सारणा-चतुष्टयी या चतुःसारणा के अनुसार हमें ऋषभ की तीन, गान्धार की दो, मध्यम की चार, पंचम की चार, धैवत की तीन, निषाद की दो और षड्ज की चार श्रुतियाँ स्पष्ट रूप से मिल जाती हैं । अर्थात् ऋषभ सातवीं श्रुति पर, गान्धार नवीं पर, मध्यम तेरहवीं पर, पंचम सत्रहवीं पर, धैवत बीसवीं पर, निषाद बाईसवीं पर और षड्ज चौथी श्रुति पर स्थित है और यही इनकी सिद्धि का प्रकार व प्रमाण है जो आगे दिए हुए चित्र से स्पष्ट होता है—



## सारणायुक्त श्रुतिदर्पण श्रुति - प्रस्तार



### श्रुतियों के परिमाण

श्रुति-दर्पण के पहले और दूसरे तार की ध्वनि का अंतर 'प्रमाण-श्रुति' है। आचार्य बृहस्पति ने इसे 'ग' अन्तर कहा है। दूसरे और तीसरे तारों को क्रमशः धीरे-धीरे बजाने पर हमें 'ग' अन्तर से बड़ा दिखाई देगा। इसे आचार्य बृहस्पति ने 'ख' अन्तर कहा है। तीसरे और चौथे तार को छेड़ने पर हमें इनकी ध्वनियों में 'ख' अन्तर से बड़ा अंतर सुनाई देगा। इसे आचार्य बृहस्पति ने 'क' अन्तर कहा है। अब चौथे और



पाँचवे तारों की ध्वनियों में फिर 'ग' अंतर सुनाई देगा । (क्योंकि चौथे तार के ऋषभ के साथ पाँचवें तार के पंचम का षड्ज-मध्यम-भाव से उसी प्रकार संवाद है, जिस प्रकार पहले तार के ऋषभ का संवाद दूसरे तार के पंचम के साथ है । )

इस आधार पर यह निर्विवाद सिद्ध है कि महर्षि भरत की श्रुतियाँ असमान थीं । उनमें तीन परिमाण थे । जिनमें 'क' अंतर सबसे बड़ा था, 'ख' उससे छोटा और 'ग' सबसे छोटा ।

इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व एक बात समझ लेनी चाहिए कि जिन स्वरों में 'सा-ग' अंतर है, उनमें दो 'क', दो 'ख' और तीन 'ग' का अंतर होना चाहिए । जिनमें 'सा-म' का अंतर है, उनमें दो 'क', तीन 'ख' और चार 'ग' का अंतर होना चाहिए और जिनमें 'सा-प' का अंतर है, उनमें तीन 'क' चार 'ख' और छह 'ग' का अंतर आवश्यक है । एक सप्तक में पाँच 'क', सात 'ख' और दस श्रुतियाँ 'ग' अन्तर वाली होती हैं । इस प्राचीन वैज्ञानिक प्रणाली से ही हम भारतीय श्रुति और स्वरों की स्थापना को प्रामाणिक रूप से सिद्ध कर सकते हैं । इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है ।



## दक्षिणी (कर्नाटिकी) और उत्तरी (हिंदुस्तानी) संगीत-पद्धतियाँ

भारत में दो संगीत-पद्धतियाँ प्रसिद्ध हैं—१. कर्नाटिकी संगीत-पद्धति, २. हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति । 'कर्नाटिकी संगीत-पद्धति' को 'दक्षिणी संगीत-पद्धति' भी कहते हैं । यह तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल तथा आन्ध्र प्रदेश की ओर प्रचलित है । इसी प्रकार 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति' को 'उत्तरी' या 'उत्तर भारतीय संगीत-पद्धति' भी कहते हैं । यह दक्षिण भारत को छोड़कर शेष समस्त भारत में प्रचलित है । वास्तव में इन दोनों संगीत-पद्धतियों के मूल सिद्धान्तों में विशेष अंतर नहीं है । क्योंकि दोनों का आधार-ग्रन्थ शाङ्गदेव रचित 'संगीत रत्नाकर' है । इन दोनों पद्धतियों में वर्तमान काल में जो समानता और भिन्नता है, वह इस प्रकार है :—

### हिन्दुस्तानी संगीत

१. हिन्दुस्तानी संगीत में केवल गीत की बंदिश निबद्ध रूप में गायी जाती है और अन्य सम्पूर्ण विस्तार अनिबद्ध रूप से किया जाता है ।
२. हिन्दुस्तानी संगीत स्वर-प्रधान होता है ।
३. गीत गाते समय ही आलाप, बोल-तान, तथा तान इत्यादि प्रकारों को प्रयोग में लाया जाता है ।
४. विलंबित खयाल की लय, अति विलंबित होती है ।
५. हिन्दुस्तानी संगीत का स्वरूप अनिबद्ध होने के कारण नवले पत्र ताल के ठेके का अखंड रूप से बजते रहना अत्यन्त जरूरी होता है ।
६. त्रुपद, ध्रुपद, खयाल, भजन या ठुमरी इत्यादि शक्तियों के गायन का प्रदर्शन किया जाता है ।



## कर्नाटिक संगीत

१. कर्नाटिक संगीत मुख्यतः निबद्ध रूप से गाया जाता है।
२. कर्नाटिक संगीत लय-प्रधान अथवा ताल-प्रधान होता है।
३. गीत गाते समय केवल संगतियाँ, नेरावल और सरगम का प्रयोग होता है तथा आलाप या तान नहीं ली जाती।
४. सभी गीतों की लय मध्यलय में रहती है।
५. कर्नाटिक संगीत का स्वरूप निबद्ध होने के कारण मृदंगम् पर इसकी ताल का उपयोग संगीत का सौंदर्य बढ़ाने की दृष्टि से किया जाता है और ठेका बंद होने पर भी गायन को कोई नुकसान नहीं पहुँचता।
६. रागम्, तालम्, पल्लवी तथा कीर्तन या कृति का प्रदर्शन किया जाता है।

### समानता

१. दोनों ही पद्धतियों में शुद्ध और विकृत मिलाकर कुल बारह स्वर स्थान हैं।
२. दोनों ही पद्धतियों में बाहर स्वरों से ठाठ या मेल-पद्धति के आधार पर रागों की उत्पत्ति होकर संगीत में उनका प्रयोग किया जाता है।
३. दोनों पद्धतियों में आलाप-गान स्वीकार किया जाता है।
४. दोनों में ही आलाप एवं तानों के साथ चीजें गाई जाती हैं।
५. जन्य-जनक (ठाठ-राग) का सिद्धान्त दोनों में ही स्वीकार किया गया है।

### भिन्नता

१. उत्तरी संगीत-पद्धति और दक्षिणी संगीत-पद्धति में यद्यपि स्वर-स्थान बारह ही माने गए हैं, किन्तु दोनों के स्वर तथा नामों में अंतर है।
२. उत्तरी संगीत-पद्धति में केवल दस ठाठों से रागों की उत्पत्ति हुई है, किन्तु दक्षिणी-पद्धति में बहत्तर जनक ठाठों या मेलों का प्रमाण मिलता है।
३. दक्षिणी संगीत-पद्धति की चीजें कन्नड़, तेलगु, तमिल इत्यादि भाषाओं में रची हुई होती हैं और उत्तरी संगीत-पद्धति के गीत ब्रज-भाषा, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, मारवाड़ी तथा भोजपुरी इत्यादि भाषाओं में होते हैं।
४. दोनों पद्धतियों के ताल भिन्न-भिन्न होते हैं।
५. दोनों पद्धतियों में स्वरोच्चारण तथा आवाज़ निकालने की शैलियाँ भिन्न-भिन्न हैं।
६. दोनों पद्धतियों के प्रायः अपने-अपने स्वतन्त्र राग हैं; अर्थात् अधिकांश दक्षिणी राग उत्तरी रागों से समानता नहीं रखते। अपवाद स्वरूप कुछ ही राग दोनों पद्धतियों के समान हैं।
७. दक्षिणी संगीत-पद्धति के शुद्ध स्वर सप्तक को 'कनकांगी' अथवा 'मुखारी मेल' कहते हैं, किन्तु उत्तरी संगीत-पद्धति के शुद्ध स्वर-सप्तक को 'विलावल ठाठ' कहा जाता है।



## उत्तरी और दक्षिणी स्वरों की तुलना

दक्षिणी ( कर्नाटिकी ) तथा उत्तरी ( हिंदुस्तानी ), दोनों ही पद्धतियों में एक सप्तक में बारह स्वर माने गए हैं, किन्तु उनके नामों में कहीं-कहीं परिवर्तन हो गया है जैसे कर्नाटिकी शुद्ध रे तथा ध हमारी हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति के कोमल रे तथा ध के समान हैं और हमारे शुद्ध रे तथा ध उनके शुद्ध ग, तथा नि हैं ।

### हिंदुस्तानी (उत्तरी) स्वर

१. सा
२. कोमल रे
३. शुद्ध रे
४. कोमल ग
५. शुद्ध ग
६. शुद्ध म
७. तीव्र म
८. प
९. कोमल ध
१०. शुद्ध ध
११. कोमल नि
१२. शुद्ध नि

### कर्नाटिकी [दक्षिणी] स्वर

- सा
- शुद्ध रे
- पंचश्रुति रे अथवा शुद्ध ग
- षट्श्रुति रे, साधारण ग
- अंतर ग
- शुद्ध म
- प्रति म
- प
- शुद्ध ध
- पंचश्रुति ध अथवा शुद्ध नि
- षट्श्रुति ध अथवा कंशिक नि
- काकली नि

हमारे कोमल रे तथा ध उनके शुद्ध रे तथा ध हैं और हमारे शुद्ध रे और ध उनके शुद्ध ग और नि हैं, अतः उनके ( कर्नाटिकी ) स्वरों के अनुसार शुद्ध स्वर-सप्तक इस प्रकार होगा :—

सा रे ग म प ध नि—कर्नाटिकी

सा रे रे म प ध ध—हिंदुस्तानी

उपर्युक्त कर्नाटिकी शुद्ध सप्तक को दक्षिणी विद्वान् 'मुखारी मेल' कहते हैं । कर्नाटिकी स्वरों में किसी स्वर को कोमल अवस्था में नहीं माना गया है, अर्थात् उनके शुद्ध स्वर ही सबसे नीची अवस्था में हैं । जब उनका रूप बदलता है, अर्थात् वे विकृत होते हैं, तो और नीचे न हटकर ऊपर को जाते हैं, जैसे शुद्ध 'रे' के आगे उनका चतुःश्रुतिक 'रे' आता है, उसी को वे शुद्ध 'ग' कहते हैं और शुद्ध 'ग' के आगे साधारण 'ग', फिर अंतर 'ग' नाम उन्होंने दिए हैं ।



## उत्तर और दक्षिण-भारत का संगीत

भारतीय संगीत के विविध रागों की अभिव्यक्ति के लिए कई स्वरूपों का निर्माण हुआ। साम-गान से शुरू कर वृत्त, छंद, गीत और प्रबंध-जैसे कई स्वरूप बाद के वर्षों में लोकप्रिय हुए। प्रबंध-स्वरूप का प्रथम उल्लेख मतंग की 'बृहद्देशी' में मिलता है। संभवतः इसके पूर्व शुद्ध 'गीत' और 'ध्रुव' थे, क्योंकि 'भरत-नाट्य-शास्त्र' के ३१-वें अनुच्छेद में चौदह प्रकार के गीत बताए गए हैं और बाद की कृतियों में उन्हें मार्ग-गीत के अंतर्गत 'शुद्ध गीत' बताया गया है। ध्रुव प्रत्यक्ष रूप से नाट्य-कला से संबंधित थे और जब संगीत का नृत्य एवं नाटक से स्वतंत्र रूप से विकास होने लगा, तब ऐसा प्रतीत होता है कि ध्रुव के स्थान पर प्रबंध शुरू हुए; जैसा कि इस बात से प्रकट होता है कि बाद के सभी लेखकों ने मार्ग-गीत प्रबंध अथवा केवल प्रबंध पर ही प्रकाश डाला। केवल नान्यदेव ही अपवाद हैं, जिन्होंने अपने 'भरत-भाष्य' के प्रबंध के साथ-साथ ध्रुव का भी उल्लेख किया। शुद्ध गीतों का 'संगीत-रत्नाकर' के तालाध्याय में भी उल्लेख है। 'संगीतराज' के प्रबंध-अनुच्छेद में इन्हें लिया गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रबंध १३-वीं शताब्दी तक व्यापक रूप से लोकप्रिय थे। प्राचीन प्रबंध-स्वरूपों से बाद की प्रत्येक शैली के निर्माण में योग मिला। वास्तव में आधुनिक काल की हिंदुस्तानी (उत्तर-भारतीय) और कर्नाटिक (दक्षिण-भारतीय) संगीत-पद्धतियों की बंदिशों का मूल, प्राचीन काल के प्रबंधों में मिल सकता है।

प्रबंध, जो 'वस्तु' अथवा 'रूपक' के रूप में भी जाना जाता है, ऐसा स्वरूप है, जिसके अनुसार सांगीतिक बंदिश बनती है। इसके छह अंग हैं—(१) स्वर, (२) विरुद, (३) पद, (४) तेनक, (५) पाट और (६) ताल। सांगीतिक नाद सा, रे, ग, म, प, ध, नि 'स्वर' कहलाते थे। प्रबंध-नायक की प्रशंसा में कहे गए शब्द 'विरुद' हैं। विरुद अथवा तेनक के अलावा अन्य शब्द 'पद' हैं। 'ओम् तत्सत्' और 'तत्त्वमसि' के अनुरूप तेन-तेन-जैसे शुभ वाक्य 'तेनक' हैं। रुद्र-वीणा, शंख तथा अन्य आनंद वाद्यों से संबंधित बोल 'पाट' हैं और समय-माप 'ताल' है।



अंगों की संख्या के अनुसार प्रबन्धों का इस प्रकार वर्गीकरण किया गया—  
 (१) मेदिनी जाति (छह अंग), (२) आनन्दिनी (पाँच अंग), (३) दीपनी (चार अंग)  
 (४) भाविनी (तीन अंग), (५) तारावली (दो अंग)। प्रबन्धों के चार अंग थे—  
 (१) उद्ग्राह, (२) मेलापक, (३) ध्रुव और (४) आभोग। इन चार भागों में  
 मेलापक और आभोग वैकल्पिक थे। धातुओं की संख्या के अनुसार प्रबन्धों का द्विधातु,  
 त्रिधातु और चतुर्धातु प्रबन्धों में वर्गीकरण किया गया। प्राचीन विद्वानों ने प्रबन्धों के  
 वर्गीकरण की अन्य संहिता भी तैयार की; जैसे—(१) निरुक्त प्रबन्ध, जो छंद, ताल  
 अंग, धातु, राग-रस, तथा भाषा के नियमों के अनुकूल हों और (२) अनिरुक्त प्रबन्ध,  
 जिसमें इन नियमों का पालन नहीं किया जाता।

छह अंगों में पद और विरुद ये तीनों पद अथवा शब्दों के अन्तर्गत आते हैं,  
 जबकि ताल में पाट और ताल, दोनों आते हैं। स्वर पृथक् है। ये तीन अंग आधुनिक  
 बन्दिशों में भी मिलते हैं।

प्रबन्धों की तीन श्रेणियाँ थीं—सूड, आलिक्रम और विप्रकीर्ण।

सूड-प्रबन्ध को शुद्ध-सूड-प्रबन्ध और सालग अथवा छायालग-सूड-प्रबन्धों में  
 विभाजित किया गया।

शुद्ध सूड प्रबन्ध आठ थे—(१) एला, (२) करण, (३) ढेंकी, (४) वर्तनी,  
 (५) जौबड, (६) लंब, (७) रास और (८) एकताली।

सालग सूड प्रबन्ध सात थे—(१) ध्रुव, (२) मध्य, (३) प्रतिमध्य (४) निस्सारु,  
 (५) अड्ड, (६) रास और (७) एकताली। सालगसूड प्रबन्ध में ध्रुव और  
 आभोग के बीच 'अंतरा' नामक एक अतिरिक्त धातु था। कुल मिलाकर प्रबन्धों की  
 संख्या पचहत्तर थी और इनमें से प्रत्येक के कई प्रकार थे। 'संगीतराज' में सूड  
 प्रबन्ध का तीसरा भाग 'मिश्र सूड' लिया गया है, जबकि अन्य ग्रन्थों में दो भाग  
 ही लिए गए हैं।

प्राचीन प्रबन्धों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न श्रेणियों की  
 बन्दिशों में ताल, राग, छंद, वस्तु, निर्मिति की विचित्रता, विशेष अवसर और रस  
 का काफी प्रभाव था।

हिंदुस्तानी और कर्नाटक, दोनों संगीत प्रणालियों की आधुनिक बन्दिशों का  
 यदि ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए, तो यह पता चलेगा कि इनका प्राचीन प्रबन्धों  
 से कुछ-न-कुछ सम्बन्ध है।

प्राचीन प्रबन्धों के विश्लेषण से पता चलता है कि उद्ग्राह और ध्रुव किसी  
 सांगीतिक बन्दिश के अपरिहार्य अंग थे। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में गीत में  
 पाए जानेवाले दो भागों—स्थायी और अन्तरा का प्रबन्धों के दो भागों के साथ  
 संबंध है। उद्ग्राह को स्थायी के समान नहीं माना जा सकता, क्योंकि उद्ग्राह ध्रुव  
 के पूर्व पेश किया जाता है, जो गीत के प्रत्येक भाग के अन्त में पेश किया जाता है।  
 आरंभ को छोड़कर उद्ग्राह का गीत-प्रस्तुतीकरण में कोई स्थान नहीं। आधुनिक



स्थायी की ध्रुव के साथ तुलना की जा सकती है, क्योंकि प्रत्येक बन्दिश में वह बराबर कायम रहती है। अन्तरे को धातु (जो आभोग के रूप में जाना जाता है) के समान माना जा सकता है।

जहाँ तक ध्रुवपद का प्रश्न है उसमें स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग रहते हैं। संचारी और आभोग को एक इकाई माना जा सकता है, क्योंकि इन्हें एक स्थायी पर लौटे बिना एक-के-बाद-एक पेश किया जाता है। इस प्रकार ध्रुवपद के स्थायी और अन्तरे की, प्रबंध के ध्रुव और अन्तरे के साथ तुलना की जा सकती है तथा संचारी एवं आभोगों को दो आभोगों के समान माना जा सकता है। ध्रुव के पूर्व केवल एक बार गाया जानेवाला भाग उद्ग्राह, समय की गति के साथ समाप्त हो गया और आज हिन्दुस्तानी अथवा कर्नाटक-संगीत किसी में यह अंश नहीं मिलता।

दूसरी ओर कर्नाटक-संगीत में पल्लवि, अनुपल्लवि और चरणम् का संभवतः ध्रुव, अन्तरा और आभोग से विकास हुआ। ध्रुव को पल्लवि के और आभोग को चरणम् के समान माना जा सकता है। यद्यपि अनुपल्लवि बन्दिश का एक भाग है, किंतु 'पाहि रामचन्द्र' तथा त्यागराज के अन्य दिव्य नाम-कीर्तनों में अनुपल्लवि को छोड़ दिया गया है। कुछ कृतियों में पल्लवि और अनुपल्लवि है, चरणम् नहीं जैसे भुक्तुस्वामी दीक्षित की आरम्भी में कृति 'श्रीसरस्वती नमोस्तुते'। इस प्रकार के गीतों में पल्लवि के बाद का भाग 'समस्ति चरणम्'—अनुपल्लवि और चरणम्, दोनों के लिए पूर्ण-अंग कहलाता है।

शुद्ध सूड प्रबन्ध के एला प्रबन्ध में तीन पद थे, जो उसके उद्ग्राह के प्रथम दो पदों में 'पल्लवि' कहलाते थे। अतः यह संभव है कि पल्लवि, अनुपल्लवि और चरणम् का श्रीगणेश इसी के प्रभाव से हुआ हो। यह दिलचस्प है कि पद के नाम 'चरणम्' का बन्दिश के अन्तिम चरण के रूप में प्रयोग होने लगा।

हिन्दुस्तानी और कर्नाटक, दोनों प्रणालियों की वर्तमान बन्दिशों की प्राचीन प्रबन्धों के साथ तुलना करने से पता चलता है कि कई प्रकार से इनमें मेल नहीं है। इसका कारण संभवतः यह है कि कुछ प्रबन्धों में (मेदिनी-जाति-प्रबन्ध) एक को छोड़कर अन्य अंग, रचयिता अथवा गायक की मर्जी पर छोड़ दिए गए। कुछ प्रबन्धों (मेदिनी जाति) में कई खंडों के लिए विभिन्न राग और तालों का प्रयोग किया गया। संभवतः इसी से बाद में कर्नाटक-संगीत में 'रागमालिका' और 'तालमालिका' की सृष्टि हुई। हिन्दुस्तानी संगीत में भी रागमालिका है किंतु उसका नाम 'रागसागर' है। यद्यपि वह कर्नाटक-संगीत के समान अधिक प्रयोग में नहीं है। उस समय प्रबन्धों के कई प्रकार थे, किंतु आज दोनों संगीत-प्रणालियों में कुछ ही प्रकार उपलब्ध हैं।

कुछ प्रबन्धों में (जैसे आनंदिनी जाति का पंचतालस्वरा) आलाप का स्थान आरंभ में था। संभवतः इसी से बाद में कृति अथवा खयाल के पूर्व आलाप पेश करने की प्रणाली आई। पंचतालस्वरा ढंग के प्रबन्धों में द्रुत लय में आभोग था। ऐसा

संगीत-विशारद



प्रतीत होता है कि कर्नाटक-संगीत की कुछ कृतियों और वर्णम् में द्रुत लय के चरणम् पेश करने का मूल यही है। दक्षिणी प्रणाली में दुगुनी लय में बंदिश के चिट्ठे स्वर और साहित्य के कुछ अन्य अंश पेश करने का मूल कुछ प्रबंधों (भाविनी जाति के गद्य) में पाया जा सकता है।

जहाँ तक लय का संबंध है, कुछ प्रबंध विलंबित लय (वर्तनी) और कुछ द्रुत लय में बाँधे गए। संभवतः इन्हीं के आधार पर हिन्दुस्तानी और कर्नाटक, दोनों पद्धतियों में विलंबित, मध्य और द्रुत बंदिशें तैयार की गईं।

प्रबंधों में रचयिता, गायक और प्रबंधनायक के नाम शामिल थे। बाद की हिन्दुस्तानी और कर्नाटक-बंदिशों में भी यह प्रणाली अपनाई गई।

इन सामान्य विचारों के पश्चात् कुछ प्राचीन प्रबंध-प्रणालियों के लिए आधुनिक संगीत में समानांतर उदाहरण लिए जा सकते हैं। राग शंकराभरणम् में 'पाहि रामचंद्र' और 'श्रीरघुवर दशरथ'—जैसे दिव्यनाम-कीर्तन (त्यागराज), जिनमें केवल पल्लवि और चरणम् हैं, त्रिधातु-प्रबंधों के समान हैं। पुनश्च, 'श्रीराम जयराम'—जैसे दिव्यमान-कीर्तन एकधातु-प्रबंध हैं। जयदेव की अष्टपदियाँ त्रिधातु-प्रबंध हैं।

राग हंसध्वनि में 'वातापिगणपतिम् भजेहम्'—जैसी कृति, जिसमें पल्लवि, अनुपल्लवि और चरणम् हैं, त्रिधातु प्रबंधों के समानांतर है। रीतिगौल राग में 'जननि निन्नू वीणा'—जैसी कृति, जिसमें पल्लवि, अनुपल्लवि, चरणम् और चिट्ठे स्वर हैं चतुर्धातु-प्रबंध का उदाहरण है।

सांगीतिक रचनाओं में अंगों के विकास में चरणम् सबसे पहले प्रतीत होता है फिर पल्लवि तथा अनुपल्लवि, मध्य काल का साहित्य, चिट्ठे स्वर-साहित्य, जति और सोलकट्टू स्वर प्रयोग में आए।

दीपनी-जाति-प्रबंध का प्रायः वही रूप भैरवी राग में 'दिरवोनी वरणम्' में मिलता है। भाविनी-जाति-प्रबंध का रूप हुधैनी राग में 'श्रीरघुकुल निधिम् चितया-म्यहम्'—जैसी कृति में मिलता है।

उपर्युक्त विवरण से कर्नाटक-संगीत के आधुनिक स्वरूपों की प्राचीन प्रबंधों से तुलना प्रकट होती है और यह मानना युक्तिसंगत है कि इन स्वरूपों के निर्माण में प्रबंधों से मार्ग-दर्शन मिला।

जहाँ तक हिन्दुस्तानी संगीत का प्रश्न है, उसमें खयाल की ऐसी कई बंदिशें मिलती हैं, जिनमें स्थायी के अलावा एक या दो अंतरे हैं और इन्हें त्रिधातु एवं चतुर्धातु-प्रबंधों के समान माना जा सकता है। ध्रुवपद, जिसमें चार अंग स्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग होते हैं, प्रायः चतुर्धातु-प्रबंधों के समान हैं।

हिन्दुस्तानी संगीत की बंदिशों के आधुनिक स्वरूपों के विश्लेषण से पता चलेगा कि वे सभी मेदिनी, आनंदिनी, दीपनी, भाविनी एवं तारावली जाति-प्रबंध-बंदिशों के ध्वन्यंगत आती हैं। जहाँ तक अंग, पद एवं ताल का संबंध है, प्रत्येक आधुनिक स्वरूप में वे सब लिए गए हैं। शेष चार अंगों—स्वर, विरुद, तेनक और पाट—को शामिल



करने के भी कई उदाहरण आधुनिक बंदिशों में मिल सकते हैं ।

आधुनिक 'त्रिवट', 'कैवाड़' प्रबंध के ही समान है, विशेष रूप से उनका मिश्र स्वरूप । आधुनिक तराना भी कैवाड़ प्रबंधों के बाद की श्रेणी का स्पष्ट उदाहरण है । आधुनिक चतुरंग-बंदिश, चतुरंग-प्रबंध की बिल्कुल प्रतिलिपि है । मालगसूद-प्रबंध-श्रेणी के ध्रुव-प्रबंध का ही रूप आधुनिक ध्रुवपद है । ध्रुव-प्रबंध में उद्ग्रह, अंतरा और आभोग थे । आधुनिक ध्रुवपद में स्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग हैं । संभवतः संचारी बाद में आया ।

जहाँ तक खयाल का संबंध है, ऐसा माना जाता है कि यह विदेशी प्रभाव से उद्भूत है । यह विचार सही आधार पर नहीं प्रतीत होता । यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि खयाल-रचनाओं का देश में अस्तित्व था । हो सकता है कि 'खयाल' नाम बाद में आया । आलाप, बोल-तान और तान के रूप में तालमय विस्तार के साथ बंदिश पेश करने की प्रणाली का अस्तित्व था, जो आधुनिक खयाल के समान था । इस प्रणाली को प्राचीन ग्रंथों में 'रूपकालप्ति' कहा गया है । 'रूपक' 'प्रबंध' अथवा गीत का दूसरा नाम है । रूपक में निरा गया आलाप 'रूपकालप्ति' है । इसके दो भाग थे—प्रतिग्रहणिका और भंजनी । प्रतिग्रहणिका आधुनिक खयाल के विकास का मूल था । भंजनी के दो भाग थे—स्थाय-भंजनी और रूपक-भंजनी । ये कर्नाटिक-संगीत के निरवल और संगति के समान थे ।

प्राचीन प्रबंधों की भाषा संस्कृत थी और सामान्य संचार एवं संवाद की भाषा भी यही रही । दमवीं अर चौदहवीं शताब्दी के बीच स्थिति बिगड़ गई और संगीत मुगल बादशाहों के संरक्षण में चला गया । मुगल-दरबारों में संस्कृत के लिए स्थान नहीं था, अतः अन्य भाषा में बंदिशें बनने लगीं । इस प्रकार 'रूपकालप्ति' का स्थान फारसी शब्द 'खयाल' ने लिया । यही बात अन्य प्रकार के प्रबंधों के सम्बन्ध में हुई । इसके बाद धीरे-धीरे समयानुसार बंदिशों की विषयवस्तु भी बदल गई । ब्रिटिश शासन-काल में संगीत की उपेक्षा हुई । किंतु १८४८ ई० की स्वतन्त्रता के पश्चात् जन समर्थन से खयाल गायकी सामने आई, ध्रुवपद-अली मंद होती गई और इस प्रकार उत्तर में प्रबन्ध-प्रणाली समाप्त हो गई ।

जहाँ तक दक्षिण का सम्बन्ध है, सत्रहवीं शताब्दी तक प्रबन्धों का प्रचलन था । यह आश्चर्यजनक लगता है कि पं० व्यंकटमखी के समय तक प्रबन्धों का अस्तित्व रहने के बावजूद वे यकायक अप्रचलित हो गए ।

धार्मिक क्षेत्र में हुए पुनर्जागरण और भक्तिपूर्ण गतिविधियों के साथ भजन, दिव्यनाम-संकीर्तन, उत्सव-संप्रदाय-कीर्तन तथा नामावली आदि की रचना होने लगी । जयदेव का 'गीत-गोविंद' और 'तत्त्वप्रकम्' की रचनाएँ पवित्र संगीत की श्रेणी में आती हैं । चित्रमैया ने कीर्तन के अलावा उत्सव-पदाति, तोडायम्, हेच्छारिका, धूप-दीप-नेत्रेय, वसन्तोत्सव, दोनोत्सव आदि के गीत लिखे । त्यागराज ने 'तोडया मंगलम्' के साथ ये भजन आरंभ किए । बाद में इन भजनों का कीर्तन-स्वरूप विकसित हुआ

संगीत-विशारद



और उनकी परिणति आधुनिक कृति-प्रणाली में हुई। महान् संत पुरंदरदास ने भी कीर्तनों और कृतियों की रचना में भारी योगदान किया। त्यागराज, मुत्तुस्वामी दीक्षित और श्यामा शास्त्री ने दक्षिण की रचनाओं को बहुत समृद्ध किया। एक ओर प्रबन्धों का प्रचलन था तो दूसरी ओर भक्ति-कार्यों के लिए कीर्तन-रचना की परम्परा शुरू हो गई थी। समय के साथ अगणित कीर्तनों और कृतियों की रचनाओं ने प्रबन्धों का स्थान ले लिया। इसमें संदेह नहीं कि संगीतज्ञों में प्रबन्धों का प्रचार रहा, किंतु वह कीर्तनों का मुकाबला नहीं कर सका।

हिंदुस्तानी और कर्नाटिक-शैलियों के आधुनिक स्वरूप के विकास के विश्लेषण के बाद इन दोनों प्रणालियों में समानता और असमानता पर दृष्टिपात करना संभव हो सकेगा।

उत्तर और दक्षिण दोनों में आधुनिक काल में उपलब्ध महत्वपूर्ण स्वरूप इस प्रकार हैं :—

हिंदुस्तानी-संगीत	कर्नाटिक-संगीत
(१) अलंकार	(१) अलंकारम्
(२) लक्षण-गीत	(२) लक्षण-गीत
(३) सरगम	(३) स्वरजति
(४) आलाप	(४) आलापनम्
(५) द्रुत खयाल	(५) द्रुत कलाकृति
(६) मध्य जय खयाल	(६) मध्यम कलाकृति
(७) विलंबित खयाल	
(८) ध्रुवपद	(७) रागम् तानम् पल्लवि
(९) धमा	
(१०) तराना	(८) तिल्लाना
(११) ठुमरी	(९) पदम् और जावलि
(१२) भजन	(१०) भजन

(१) अलंकार हिंदुस्तानी संगीत के आरम्भिक चरणों में बहुत महत्वपूर्ण चरण हैं। वे स्वरों के निश्चित 'फ्रेज' हैं, जो पूरे सप्तक को ले लेते हैं। इसका उद्देश्य स्वर-ज्ञान की दृढ़ पृष्ठभूमि तैयार करना है। इसी प्रकार कर्नाटिक-संगीत में भी आरम्भिक चरणों में अलंकार को प्रमुख-स्थान दिया गया है। वे ठीक हिंदुस्तानी संगीत के समान हैं। इस प्रकार यह दोनों में समान हैं।

(२) हिंदुस्तानी संगीत में लक्षण-गीत वे सरल रचनाएँ हैं, जिनसे राग का विशेष स्वरूप प्रकट होता है। उनका आरोह-अवरोह, गायन का समय, वादी, संवादी, वज्र्यावज्र्य स्वर तथा अन्य विवरण सामने आता है। यह सरल ताल में होता है और आरम्भिक शिक्षण का अनिवार्य अंग है। दक्षिण-भारतीय संगीत में भी प्रत्येक राग में लक्षण-गीत हैं, जिनकी रचना पुरंदरदास तथा अन्य विद्वानों ने की है। विभिन्न तालों में निबद्ध सरल चीजों द्वारा राग का सौंदर्य प्रकट होता है।



(३) हिंदुस्तानी संगीत में सरगम सरल 'सोलफा' स्वरलिपि-रचना है, जो विभिन्न रागों और तालों में होती है। यह भी प्रारम्भिक शिक्षण का अंग है। इसका उद्देश्य स्वर-ज्ञान कराना है। दक्षिण में स्वरजति, जो विभिन्न रागों एवं तालों में रहती है, अध्ययन के आरम्भिक चरण का अंग है। वैकल्पिक रूप से इसमें स्वर 'फ्रेज' के रूप में साहित्य भी रहता है।

(४) हिंदुस्तानी संगीत के कार्य में आलाप महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से जब ध्रुवपद-गायन हो अथवा ततवाद्य-वादन। इसमें राग का आलाप तथा गमक एवं विशिष्टता के साथ विलंबित, मध्य व द्रुत में प्रस्तुति रहती है, जिसमें संगतिकार नहीं बजाता। दक्षिणी प्रणाली में आलापना प्रायः हिंदुस्तानी संगीत के समान है। इसमें कृति के स्वरूप का परिचय रहता है और आनन्द वाद्य की संगति नहीं रहती।

(५)-(१०) आधुनिक हिंदुस्तानी संगीत-कार्यक्रम का आवश्यक अंश विलंबित खयाल है जिसके बाद मध्य लय का खयाल और अन्त में तीव्र गति में द्रुत खयाल उसी राग में मिलता है। आरम्भ में आलाप संक्षिप्त रहता है। विलंबित में राग व ताल के स्वरूप को कायम रखते हुए अलंकरण का अवसर मिलता है। बोल-तान तथा लयकारी का कार्य किया जाता है। इसके बाद मध्य लय-खयाल में भी बोल-तानों, एवं द्रुत तानों का अवसर मिलता है। द्रुत लय की तानें आकार में रहती हैं।

ध्रुवपद में आरंभिक आलाप में ही राग का व्यापक विस्तार करना पड़ता है। इसके नियम कठोर हैं और इसकी जान ही विलम्बित में है। इसमें बहुत कम तालों का प्रयोग किया जाता है। ध्रुवपद लयप्रधान है और इसमें साहित्य का भी प्राधान्य है। इसकी संगति मृदंग पर होती है। धमार आवश्यक रूप से ध्रुवपद के बाद पेश किया जाता है।

तराना विशुद्ध सांगीतिक अभिव्यक्ति है, जिसमें 'नोम्', 'ना', 'तोम्' आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिनका कम महत्व है। लयप्रधान इस गायन के अन्त में चमत्कारिक लयकारी मिलती है।

(११) ठुमरी सुगम शास्त्रीय गायत्त है। यह अधिकांशतः धीमी गति में रहती है जो शृंगाररस-प्रधान है। यह खयाल के बाद गाई जाती है। टप्पा सुगम संगीत का दूसरा प्रकार है, जिसमें अलंकारिक चमत्कार आरम्भ से ही मिलते हैं। भजन भी सुगम संगीत है, जिसका साहित्य भक्तिपूर्ण रहता है।

(५)-(१०) कर्नाटिक-संगीत (दक्षिण-भारतीय संगीत) में कृति महत्वपूर्ण अंश है। इसमें गायन एवं रचनाकार को अपनी रचनात्मक प्रतिभा के प्रदर्शन का असीमित क्षेत्र मिलता है। इसके मुख्य अंग पल्लवि, अनुपल्लवि और चरणम् हैं। ताल अथवा राग के बारे में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। दक्षिण की द्रुत एवं मध्यम-काल कृति उत्तर के छोटे और बड़े खयाल के समान है, और रागालापना, जो कृति में अल्प प्रयुक्त होता है, उत्तर के आलाप के समान है। खयाल में साहित्य कम रहता है,



जबकि दक्षिण की कृतियों में शब्दों का भंडार रहता है और निरवल तथा कल्पना-स्वर सीमित रहते हैं। निरवल एक काव्य की पंक्ति से शुरू किया जाता है और उसी को विभिन्न प्रकार से स्वर-विस्तार एवं सप्तक के चरणों में गाकर गायक पुनः आरम्भिक स्वर पर लौट आता है। कल्पना-स्वर का प्रस्तुतीकरण तीनों लयों में होता है। कल्पना-स्वर भाग पूर्ण तथा लयप्रधान है। हिन्दुस्तानी संगीत की बोल-तानों में समान स्वरूप दक्षिण के निरवल से मिलता है, पर कल्पना-स्वर कर्नाटिक संगीत का अलग अंग है।

कर्नाटिक-संगीत में रागम्-तानम्-पल्लवि एक आवश्यक सर्जनात्मक संगीत है। इसमें संगीतकार को अपने सांगीतिक कौशल, कल्पना-शक्ति और व्यक्तिगत योगदान के प्रदर्शन का अवसर मिलता है। इस विस्तृत राग-प्रस्तुतीकरण के बाद तानम् शुरू होता है, जो ध्रुवपद के नोम्-तोम् के समान है। तानम्, आलापनम् लयबद्ध न होते हुए भी लय का प्रदर्शन करते हैं।

पल्लवि कर्नाटिक-संगीत का सबसे बड़ा अंश है, जिसमें संगीतज्ञ की योग्यता एवं स्तर का पता चलता है। इससे कार्यक्रम की प्रतिष्ठा स्थापित होती है। एकदम विलंबित में शुरू कर यह हिन्दुस्तानी संगीत के बड़े खयाल की सभी विशिष्टताएँ पूरी करती है। पल्लवि की महत्वपूर्ण बात यह है कि कलाकार को इसमें 'उपज' का परिचय देना पड़ता है।

दक्षिण का तिल्लाना विशुद्ध सांगीतिक अभिव्यक्ति है, जिसमें उत्तर-भारतीय संगीत के तराने के समान निरर्थक शब्द रहते हैं। पदम् और जावलि दक्षिण का सुगम-शास्त्रीय संगीत है, जो ठुमरी और टप्पा के समान है। दक्षिण में संतों के ऐसे कई भजन मिलते हैं, जो मीरा, सूरदास तथा उत्तर के अन्य संतों के भजनों के समान हैं।

इस प्रकार यह प्रकट होता है कि दक्षिण और उत्तर के संगीत की आधुनिक रचनाओं में प्रायः समानता मिलती है और इनके निर्माण में मध्य-युग के प्रबंध काफी हद तक आदर्श रहे हैं।

इन परिस्थितियों में यह आशा करना स्वाभाविक है कि व्यावहारिक पहलुओं में भी दोनों प्रणालियों में एकरूपता पाई जाए। किंतु जैसा कि आज दिखाई देता है, तथ्य बिल्कुल विपरीत हैं। उत्तर-भारतीय संगीतज्ञ कर्नाटिक-संगीत-कार्यक्रम को पूर्णतः अरुचिकर मानता है और दक्षिणी संगीतज्ञ हिन्दुस्तानी संगीत की धीमी गति को सहन नहीं कर सकता। किन्तु अजीब बात है कि दोनों एक ही भण्डार से निःसृत होते हुए तथा समान सिद्धांत की स्वीकृति और अनेक बातें समान मानते हुए भी प्रस्तुतीकरण के कारण पृथक् प्रणालियों में विभाजित हो गए हैं जिस खाई को आसानी से नहीं पाटा जा सकता।

व्यावहारिक पहलू से इस स्पष्ट विलगाव का कारण स्थानीय आदतें तथा प्रणालियाँ ही हैं, जिनके कारण विविधता प्रतिभासित होती है। दूसरा कारण उत्तर और दक्षिण की भाषाएँ हैं, जिनमें कोई समानता नहीं है। तीसरा कारण श्रुति तथा स्वर मेन में हेर-फेर के फलस्वरूप विकसित प्रवृत्तियाँ हैं। सामान्यतः समान



भण्डार से निःसृत होने के कारण एकरूपता प्रकट होनी चाहिए थी।

पहली बात तो यह है कि समान राग के प्रस्तुतीकरण में विभिन्न प्रकार के 'फ़ेज' बने। उदाहरण के लिए हिन्दुस्तानी संगीत का 'यमन' और कर्नाटक-संगीत का 'कल्याणी' राग लिया जा सकता है। रागों के प्रस्तुतीकरण में अलग-अलग विशिष्ट स्वरूप प्रकट होते हैं।

दोनों पद्धतियों की पृथक्ता का एक कारण ताल-गति है। हिन्दुस्तानी संगीत के अति विलंबित आरंभ में दक्षिणी श्रोता की दिलचस्पी नहीं रहती, जबकि कर्नाटक-संगीत के आरंभ में द्रुत लय के कारण दोनों में समान आधार नहीं मिलता। हिन्दुस्तानी संगीत में एक पंक्ति का साहित्य रहता है और उसी पर गायक को काफी समय तक राग-विस्तार करना पड़ता है। यह बात बड़े और छोटे खयाल पर भी लागू होती है। दक्षिणी पद्धति की कृतियों में पल्लवि, अनुपल्लवि तथा एक अथवा दो चरणम् में अपेक्षाकृत काफी साहित्य रहता है और इनके प्रस्तुतीकरण का समय कम रहता है। कर्नाटक-संगीत-कार्यक्रम में सामान्यतया दस कृतियाँ पेश की जाती हैं।

हिन्दुस्तानी संगीत में संगतिकार को, विशेष परिस्थिति को छोड़कर, एकाकी प्रदर्शन का कम अवसर मिलता है, जबकि दक्षिणी संगीत में संगतिकार को कला-प्रदर्शन का काफी अवसर मिलता है।



## दक्षिणी ताल-पद्धति

उत्तरी ताल-पद्धति और दक्षिणी (कर्नाटकीय) ताल-पद्धति में विशेष रूप से भिन्नता पाई जाती है। कर्नाटक-ताल-पद्धति में मुख्यतः सात तालें मानी गई हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—१. ध्रुव ताल, २. मठ ताल, ३. रूपक ताल, ४. झप ताल, ५. त्रिपुट ताल, ६. अंठ ताल और ७. एकताल।

दक्षिणी पद्धति में तालों को लिखने के लिए छह चिह्न नियत किए गए हैं, जिनकी सहायता से इन तालों को लिखा जाता है। वे छह चिह्न इस प्रकार हैं :—

— अणुद्रुत अथवा विराम,	मात्रा १
० द्रुत	मात्राएँ २
। लघु	मात्राएँ ४
S गुरु	मात्राएँ ८
३ प्लुत	मात्राएँ १२
X काकपद	मात्राएँ १६

उपर्युक्त छह चिह्नों में 'लघु' नामक चिह्न विशेष महत्वपूर्ण है और इसी एक चिह्न के कारण तालों की विभिन्न जातियाँ पैदा हुई हैं। ऊपर लघु चिह्न की मात्राएँ यद्यपि चार बताई गई हैं, किंतु 'पंचजाति-भेद' के अनुसार लघु की मात्राएँ परिवर्तित होती रहती हैं और इसी परिवर्तन से पाँच जातियाँ पैदा हुई हैं—१. चतुरश्र जाति, २. त्र्यश्र जाति, ३. खंड जाति, ४. मिश्र जाति और ५. संकीर्ण जाति।

**चतुरश्र जाति :** इसमें 'लघु' की चार मात्राएँ मानी गई हैं।

**त्र्यश्र जाति :** इसमें 'लघु' की तीन मात्राएँ मानी गई हैं।

**खंड जाति :** इसमें 'लघु' की पाँच मात्राएँ मानी गई हैं।

**मिश्र जाति :** इसमें 'लघु' की सात मात्राएँ मानी गई हैं।

**संकीर्ण जाति :** इसमें लघु की नौ मात्राएँ मानी गई हैं।



कर्नाटिक-ताल-पद्धति की जिन सात तालों के नाम ऊपर दिए गए हैं, उनमें केवल अणुद्रुत और लघु, इन्हीं तीन चिह्नों का प्रयोग होता है। शेष तीन चिह्नों (गुरु, प्लुत और काकपद) का प्रयोग इनमें नहीं होता। इन तीन चिह्नों का प्रयोग दक्षिण की उन १०८ तालों में होता है, जो कि उनके नृत्य में प्रयुक्त होती हैं।

‘पंचजाति-भेद’ के अनुसार इन सात तालों से पैंतीस प्रकार की तालें बन जाती हैं। इस जाति-भेद के अनुसार, नई तालों के बनने में केवल लघु की मात्राएँ ही बदलती हैं। शेष अंगों का काल ज्यों-का-त्यों रहता है। इसे निम्नांकित तालिका अधिक स्पष्ट कर देगी :—

## ७ कर्नाटिक-तालों के पंचजातिभेदानुसार ३५ प्रकार

ताल	जाति-भेद	ताल-चिह्न	जाति-भेद से मात्रा विभाग	कुल मात्राएँ
ध्रुव ताल	चतुरश्र	१४०।४।४	४+२+४+४	१४
	त्र्यश्र	१३०।३।३	३+२+३+३	११
	मिश्र	१७०।७।७	७+२+७+७	२३
	खंड	१५०।५।५	५+२+५+५	१७
	संकीर्ण	१६०।६।६	६+२+६+६	२६
मठ ताल	चतुरश्र	१४०।४	४+२+४	१०
	त्र्यश्र	१३०।३	३+२+३	८
	मिश्र	१७०।७	७+२+७	१६
	खंड	१५०।५	५+२+५	१२
	संकीर्ण	१६०।६	६+२+६	२०
रूपक ताल	चतुरश्र	१४०	४+२	६
	त्र्यश्र	१३०	३+२	५
	मिश्र	१७०	७+२	९
	खंड	१५०	५+२	७
	संकीर्ण	१६०	६+२	११



झप ताल	चतुरश्र	१ ४—०	४+१+२	७
	त्र्यश्र	१ ३—०	३+१+२	६
	मिश्र	१ ७—०	७+१+२	१०
	खंड	१ ५—०	५+१+२	८
	संकीर्ण	१ ६—०	६+१+२	१२
त्रिपुट ताल	चतुरश्र	१ ४ ० ०	४+२+२	८
	त्र्यश्र	१ ३ ० ०	३+२+२	७
	मिश्र	१ ७ ० ०	७+२+२	११
	खंड	१ ५ ० ०	५+२+२	९
	संकीर्ण	१ ६ ० ०	६+२+२	१३
अठ ताल	चतुरश्र	१ ४ १ ४ ० ०	४+४+२+२	१२
	त्र्यश्र	१ ३ १ ३ ० ०	३+३+२+२	१०
	मिश्र	१ ७ १ ७ ० ०	७+७+२+२	१८
	खंड	१ ५ १ ५ ० ०	५+५+२+२	१४
	संकीर्ण	१ ६ १ ६ ० ०	६+६+२+२	२२
एकताल	चतुरश्र	१ ४	४	४
	त्र्यश्र	१ ३	३	३
	मिश्र	१ ७	७	७
	खंड	१ ५	५	५
	संकीर्ण	१ ६	६	६

ये तो हुए जाति-भेद के अनुसार सात तालों के पैंतीस प्रकार । अब पंचगति-भेद के अनुसार इनमें से प्रत्येक प्रकार के पाँच-पाँच भेद और होते हैं । इससे  $35 \times 5 = 175$  तालों के प्रकार इस पद्धति से उत्पन्न होते हैं । आगामी पृष्ठ पर उदाहरण के लिए केवल 'अठ ताल' के पच्चीस प्रकार पंचगति-भेदानुसार कैसे हो सकते हैं, यह दिखाया जाएगा ।



## अठ ताल के पच्चीस प्रकार

जाति	चिह्न	मात्राएँ	गति-भेद	गति-भेद के प्रकार से कुल मात्राएँ
चतुरश्र	१४।४००	१२	चतुरश्र	$१२ \times ४ = ४८$
			त्र्यश्र	$१२ \times ३ = ३६$
			मिश्र	$१२ \times ७ = ८४$
			खंड	$१२ \times ५ = ६०$
			संकीर्ण	$१२ \times ६ = ७२$
त्र्यश्र	१३।३००	१०	चतुरश्र	$१० \times ४ = ४०$
			त्र्यश्र	$१० \times ३ = ३०$
			मिश्र	$१० \times ७ = ७०$
			खंड	$१० \times ५ = ५०$
			संकीर्ण	$१० \times ६ = ६०$
मिश्र	१७।७००	१८	चतुरश्र	$१८ \times ४ = ७२$
			त्र्यश्र	$१८ \times ३ = ५४$
			मिश्र	$१८ \times ७ = १२६$
			खंड	$१८ \times ५ = ९०$
			संकीर्ण	$१८ \times ६ = १०८$



खण्ड	१५१५००	१४	चतुरश्र	$१४ \times ४ = ५६$
			त्र्यश्र	$१४ \times ३ = ४२$
			मिश्र	$१४ \times ७ = ९८$
			खंड	$१४ \times ५ = ७०$
			संकीर्ण	$१४ \times ८ = ११२$
संकीर्ण	१८१८००	२२	चतुरश्र	$२२ \times ४ = ८८$
			त्र्यश्र	$२२ \times ३ = ६६$
			मिश्र	$२२ \times ७ = १५४$
			खंड	$२२ \times ५ = ११०$
			संकीर्ण	$२२ \times ८ = १७६$

**ज्ञातव्य :** इसी प्रकार शेष छह तालों से भी पच्चीस-पच्चीस प्रकार पैदा होकर कुल १७५ हो जाएंगे।

ऊपर के नक्शे में चिह्न वाले खाने में ताल-चिह्न लघु के आगे जो अंक लिखे गए हैं, उनका अर्थ यह है कि लघु यहाँ पर इतनी मात्रा का माना गया है; जैसे लघु का चिह्न '१' यह है, तो जहाँ पर चतुरश्र जाति में लघु दिखाया जाएगा, वहाँ '१४' इस प्रकार लिखेंगे। त्र्यश्र जाति में '१६' इस प्रकार लिखेंगे। मिश्र जाति में लघु को '१७' इस प्रकार लिखेंगे। खंड जाति में लघु को '५' इस प्रकार लिखेंगे और संकीर्ण जाति में लघु को '८' इस प्रकार लिखेंगे। लघु के चिह्न के आगे दिए हुए विभिन्न अंकों द्वारा आसानी से यह मालूम हो जाता है कि यहाँ पर लघु की कितनी मात्राएँ मानी गई हैं; क्योंकि लघु का मात्रा-काल बदलने से ही पाँच जाति-भेदों से ये तालें बदलती हैं। यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि 'पंचजाति-भेद' में तो केवल 'लघु' की मात्राएँ ही बदलती हैं, जबकि 'पंचजातिगति-भेद' में सारे अंगों की मात्राएँ बदल जाती हैं।

**कर्नाटक-ताल-पद्धति की बावत निम्नलिखित बातें विद्यार्थी याद रखें :—**

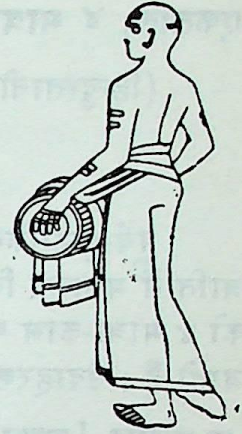
१. कर्नाटक-ताल-पद्धति में लघु की मात्राएँ जाति-भेद के अनुसार बदलती रहती हैं।
२. जिस ताल में जितने चिह्न होंगे, उसमें उतनी ही ताली (थाप) या भरी तालें होंगी।
३. कर्नाटक-ताल-पद्धति में 'खाली' नहीं होती।
४. सभी तालें 'सम' से आरंभ होती हैं।
५. कर्नाटक-ताल-पद्धति में ७ तालें प्रमुख होती हैं।
६. प्रत्येक ताल की पाँच-पाँच जातियाँ होती हैं, जिनसे ३५ प्रकार उत्पन्न होते हैं।
७. पाँच-पाँच जातियों के पाँच-पाँच भेद होते हैं, जिनसे १७५ प्रकार उत्पन्न हो जाते हैं।



# कर्नाटिक-पद्धति की सात तालों को

## हिंदुस्तानी पद्धति में लिखने

### का कायदा



ज्ञातव्य : ये सातों तालें चतुरश्र जाति में दी जा रही हैं ।

ध्रुव ताल, १४ मात्राएँ [१०॥], चतुरश्र जाति

मात्राएँ : १ २ ३ ४ | ५ ६ | ७ ८ ९ १० | ११ १२ १३ १४  
चिह्न : x | २ | ३ | ४

मठ ताल, १० मात्राएँ [१०।], चतुरश्र जाति

१ २ ३ ४ | ५ ६ | ७ ८ ९ १०  
x | २

रूपक ताल, ६ मात्राएँ [१०], चतुरश्र जाति

(इस ताल को हिंदुस्तानी पद्धति में ७ मात्राओं की मानते हैं ।)

१ २ ३ ४ | ५ ६  
x | २

झंपा ताल, ७ मात्राएँ, [१—०], चतुरश्र जाति

१ २ ३ ४ | ५ ६ ७  
x | २ ३

त्रिपुट ताल, ८ मात्राएँ ( १०० ), चतुरश्र जाति

१ २ ३ ४ | ५ ६ | ७ ८  
x | २ ३

अठताल, १२ मात्राएँ ( ११०० ), चतुरश्र जाति

१ २ ३ ४ | ५ ६ ७ ८ | ९ १० | ११ १२  
x | २ ३ ४



## एकताल, ४ मात्राएँ [ १ ] चतुरश्र जाति

(हिन्दुस्तानी पद्धति में 'एकताल' १२ मात्राओं की मानी गई है।)

१ २ ३ ४

X

पूर्व-वृष्ठांकित ७ तालें चतुरश्र जाति में दी गई हैं। यदि इन्हीं तालों को त्र्यश्र जाति में मानकर लिखें, तो इनका रूप बदल जाएगा; क्योंकि चतुरश्र जाति में लघु को ४ मात्रा-काल का माना गया है और त्र्यश्र जाति में 'लघु' की मात्राएँ ३ मानी जाती हैं। उदाहरणार्थ ध्रुव ताल को अब त्र्यश्र जाति में इस प्रकार लिखेंगे :—

### ध्रुवताल [त्र्यश्र जाति], मात्राएँ ११

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११  
X २ ३ ४

इसी ध्रुव ताल को खंड जाति में लिखना हो तो निम्नांकित प्रकार से लिखेंगे; क्योंकि खंड जाति में 'लघु' की पाँच मात्राएँ मानी गई हैं :—

### ध्रुवताल (खंड जाति), मात्राएँ १७

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७  
X २ ३ ४

मिश्र जाति में लघु की मात्राएँ ७ मानी गई हैं, अतः यही ध्रुव ताल यदि मिश्र जाति में लिखी जाएगी, तो इसका रूप यह होगा :—

### ध्रुवताल (मिश्र जाति), मात्राएँ २३

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६  
X २ ३

१७ १८ १९ २० २१ २२ २३  
४

अब इसी ताल को संकीर्ण जाति में लिखें, तो इस ताल की मात्राएँ २६ हो जाएँगी, क्योंकि संकीर्ण जाति में गुरु की मात्राएँ ६ मानी गई हैं :—

### ध्रुवताल (संकीर्ण जाति), मात्राएँ २६

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०  
X २ ३

२१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०  
४



# ध्वनि-विज्ञान

## नाद

नकारं प्राणमामानं दकारमनलं विदुः ।

जातः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते ॥

—संगीत रत्नाकर (१।३५६)

अर्थात्—‘नकार’ प्राण-वाचक (वायु-वाचक) तथा ‘दकार’ अग्नि-वाचक है, अतः जो वायु और अग्नि के योग (सम्बन्ध) से उत्पन्न होता है, उसी को ‘नाद’ कहते हैं ।

आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते ।

सोऽयं प्रकाशते पिंडे तस्मात्पिंडोऽभिधीयते ॥

—संगीत रत्नाकर (१।२।३)

अर्थात्—“नाद के दो प्रकार जाने जाते हैं—‘आहत’ तथा ‘अनाहत’ । ये दोनों पिंड (देह) में प्रकट होते हैं, इसलिए पिंड का वर्णन किया जाता है ।”

### अनाहत नाद

जो नाद केवल अनुभव से जाना जाता है और जिसके उत्पन्न होने का कोई खास कारण न हो, यानी जो बिना संघर्ष के स्वयंभू रूप से उत्पन्न होता है, उसे ‘अनाहत नाद’ कहते हैं; जैसे दोनों कान जोर से बंद करने पर अनुभव करके देखा जाए, तो ‘घन्न-घन्न’ या ‘साँय-साँय’ की आवाज़ सुनाई देती है । इसके बाद नादोपासना की विधि से गहरे ध्यान की अवस्था में पहुँचने पर सूक्ष्म नाद सुनाई पड़ने लगता है जो मेघ गर्जन या वंशीस्वर आदि के सदृश होता है । इसी अनाहत नाद की उपासना हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि करते थे । यह नाद मुक्ति-दायक तो है किन्तु रक्ति-दायक नहीं । इसलिए यह संगीतोपयोगी भी नहीं है, अर्थात् संगीत से अनाहत नाद का कोई सम्बन्ध नहीं है ।

### संगीत-विशारद



# एकताल, ४ मात्राएँ [ १ ] चतुरश्र जाति

(हिन्दुस्तानी पद्धति में 'एकताल' १२ मात्राओं की मानी गई है।)

१ २ ३ ४

X

पूर्व-वृष्ठांकित ७ तालों चतुरश्र जाति में दी गई हैं। यदि इन्हीं तालों को त्र्यश्र जाति में मानकर लिखें, तो इनका रूप बदल जाएगा; क्योंकि चतुरश्र जाति में लघु को ४ मात्रा-काल का माना गया है और त्र्यश्र जाति में 'लघु' की मात्राएँ ३ मानी जाती हैं। उदाहरणार्थ ध्रुव ताल को अब त्र्यश्र जाति में इस प्रकार लिखेंगे :-

## ध्रुवताल [त्र्यश्र जाति], मात्राएँ ११

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११  
X २ ३ ४

इसी ध्रुव ताल को खंड जाति में लिखना हो तो निम्नांकित प्रकार से लिखेंगे, क्योंकि खंड जाति में 'लघु' की पाँच मात्राएँ मानी गई हैं :-

## ध्रुवताल (खंड जाति), मात्राएँ १७

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७  
X २ ३ ४

मिश्र जाति में लघु की मात्राएँ ७ मानी गई हैं, अतः यही ध्रुव ताल यदि मिश्र जाति में लिखी जाएगी, तो इसका रूप यह होगा :-

## ध्रुवताल (मिश्र जाति), मात्राएँ २३

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६  
X २ ३ ४

१७ १८ १९ २० २१ २२ २३  
X

अब इसी ताल को संकीर्ण जाति में लिखें, तो इस ताल की मात्राएँ २६ हो जाएँगी, क्योंकि संकीर्ण जाति में गुरु की मात्राएँ ६ मानी गई हैं :-

## ध्रुवताल (संकीर्ण जाति), मात्राएँ २६

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०  
X २ ३ ४

२१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९  
X



# ध्वनि-विज्ञान

## नाद

नकारं प्राणमामातं दकारमनलं विदुः ।

जातः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते ॥

—संगीत रत्नाकर (१।३५६)

अर्थात् — 'नकार' प्राण-वाचक (वायु-वाचक) तथा 'दकार' अग्नि-वाचक है, अतः जो वायु और अग्नि के योग (सम्बन्ध) से उत्पन्न होता है, उसी को 'नाद' कहते हैं ।

आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते ।

सोऽयं प्रकाशते पिंडे तस्मात्पिंडोऽभिधीयते ॥

—संगीत रत्नाकर (१।२।३)

अर्थात् — "नाद के दो प्रकार जाने जाते हैं — 'आहत' तथा 'अनाहत' । ये दोनों पिंड (देह) में प्रकट होते हैं, इसलिए पिंड का वर्णन किया जाता है ।"

### अनाहत नाद

जो नाद केवल अनुभव से जाना जाता है और जिसके उत्पन्न होने का कोई खास कारण न हो, यानी जो बिना संघर्ष के स्वयंभू रूप से उत्पन्न होता है, उसे 'अनाहत नाद' कहते हैं; जैसे दोनों कान जोर से बंद करने पर अनुभव करके देखा जाए, तो 'घन्न-घन्न' या 'साँय-साँय' की आवाज़ सुनाई देती है । इसके बाद नादोपासना की विधि से गहरे ध्यान की अवस्था में पहुँचने पर सूक्ष्म नाद सुनाई पड़ने लगता है जो मेघ गर्जन या वंशीस्वर आदि के सदृश होता है । इसी अनाहत नाद की उपासना हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि करते थे । यह नाद मुक्ति-दायक तो है किन्तु रक्ति-दायक नहीं । इसलिए यह संगीतोपयोगी भी नहीं है, अर्थात् संगीत से अनाहत नाद का कोई सम्बन्ध नहीं है ।



## आहत नाद

जो कानों से सुनाई देता है और जो दो वस्तुओं के संघर्ष या रगड़ से पैदा होता है, उसे 'आहत नाद' कहते हैं। इस नाद का संगीत से विशेष सम्बन्ध है। यद्यपि अनाहत नाद को मुक्तिदाता माना गया है, किंतु आहत नाद को भी भव-सागर से पार लगानेवाला बताकर 'संगीत-दर्पण' में दामोदर पंडित ने लिखा है :—

स नादस्त्वाहतो लोके रंजको भवभंजकः ।

श्रुत्यादि द्वारतस्तस्मात्तदुत्पत्तिनिरूप्यते ॥

अर्थात्—“आहत नाद व्यवहार में श्रुति इत्यादि (स्वर, ग्राह्य, मूर्च्छना) से रंजक बनकर भव-भंजक भी बन जाता है, इस कारण इसकी उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ।”

उपर्युक्त उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि आहत नाद ही संगीत के लिए उपयोगी है। इसी नाद के द्वारा सूर, मीरा इत्यादि ने प्रभु-सान्निध्य प्राप्त किया था और फिर अनाहत की उपासना से मुक्ति प्राप्त की थी।

## संगीतिक और असंगीतिक ध्वनि

(Musical Nonmusical Sound)

सामान्य ध्वनि को दो भागों में बाँटा जा सकता है—१. संगीतिक और २. असंगीतिक। इन्हें सुरीली और बेसुरी ध्वनियाँ भी कह सकते हैं। जब ध्वनि में अर्थात् उसके कंपनों में नियमितता तथा व्यवस्था आ जाती है तो ध्वनि मृदुल होकर कानों को प्रिय लगने लगती है। इसी ध्वनि को 'स्वर' कहा जाता है, जिसका उपयोग संगीत के क्षेत्र में किया जाता है। इसी को संगीतिक ध्वनि (Musical Sound) कहा जाता है।

जब ध्वनि के कंपन व्यवस्थित नहीं होते तो ऐसी ध्वनि 'शोर' कहलाती है जो कानों को प्रिय तो नहीं लगती लेकिन मनुष्य के अनेक भावों और विभिन्न पदार्थों का बोध कराती है। यह ध्वनि संगीत के लिए उपयोगी नहीं होती इसलिए 'भाषा' के निर्माण में काम आती है। इसी को असंगीतिक ध्वनि (Nonmusical Sound) कहा जाता है।

एक समस्या यह है कि कुछ ध्वनियाँ या शोर न तो संगीत के स्वर क्षेत्र में आते हैं और न मात्र शोर ही कहे जा सकते हैं, जैसे बाल्टी को डंडे से पीटना या रुई का धुनना आदि। लेकिन संगीत की जानकारी रखने वाला इनसे जलतरंग या वीणा के स्वरों का निर्माण कर सकता है और इनकी ध्वनियों को विविध उपकरणों के माध्यम से संगीतोपयोगी बना सकता है। सड़क पर खिलौना-सारंगी बेचने वाला उस पर मधुर ध्वनि निकालता है। लेकिन जब कोई नौसिखिया उसे खरीद कर बजाता है तो वैसी ध्वनि नहीं निकलती और एक कर्कश ध्वनि सुनाई पड़ती है जो कानों को अप्रिय लगती है।



वास्तव में ध्वनि का वर्गीकरण वैज्ञानिक ढंग से तीन गुणों के आधार पर किया जा सकता है-१. तारता या तारत्व अर्थात् नाद का ऊँचा-नीचापन (Pitch) २. तीव्रता या प्रबलता अथवा नाद का छोटा-बड़ापन (Loudness) ३. गुण या प्रकार (Timbre) ।

**तारता (Pitch)** स्त्री और बच्चे चाहे धीमे बोलें या चिल्लाकर, परन्तु उनकी आवाज़ का महीनपन (बारीकी) नहीं जाता । इसी प्रकार पुरुष धीमे बोले या चिल्लाए तो उसकी आवाज़ का मोटापन भी बना रहता है । जिस आवाज़ को लोग महीन कहते हैं, संगीत की भाषा में उसे 'ऊँचा स्वर' कहा जाता है और मोटी आवाज़ को 'नीचा स्वर' कहते हैं । नाद की यह ऊँची-नीची स्थिति ही 'तारता' कहलाती है । तारता के आधार पर ही हम आवाज़ या स्वर को पहचान पाते हैं । घोड़े की हिनहिनाहट, चिड़ियों की चहचहाहट, रेल की सीटी या बम का धमाका इत्यादि को ध्वनि के इसी तारत्व-गुण से पहचाना जाता है । तारत्व का बोध न होने पर किसी व्यक्ति से मरगम बुलवाई जाए तो वह एक ही स्वर पर सातों स्वरों को बोल देता है । उसे नीचे स्वर और ऊँचे स्वर में कोई भेद प्रतीत नहीं होता । लेकिन जैसे-जैसे तारता का ज्ञान बढ़ता जाता है तो उसके गले से अलग-अलग सप्तकों के नीचे और ऊँचे स्वर निकलने लगते हैं । तारता केवल कानों के अनुभव की ही चीज़ नहीं बल्कि जिस वस्तु के कंपन से स्वर निकलता है, तारता उसका मौलिक धर्म है जो स्वरोत्पादक वस्तु की आवृत्ति पर निर्भर करती है । आवृत्ति के अधिक होने पर ऊँचा स्वर और आवृत्ति कम होने पर नीचा स्वर निकलता है । बिजली के पंखे को धीमी या एकदम ज्यादा स्पीड पर चलाने से यह बात स्पष्ट हो जाएगी ।

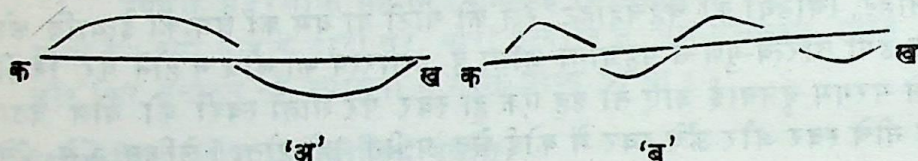
नाद की ऊँचाई-नीचाई से ही यह स्पष्ट होता है कि जो आवाज़ आ रही है, वह ऊँची है या नीची । मान लीजिए, हमने 'सा' स्वर सुना, इसके बाद 'रे' स्वर सुनाई दिया और फिर 'ग' सुनाई दिया; इस प्रकार नियमित ऊँचे स्वर सुनने पर हम उसे 'उच्च नाद' कहेंगे ।

हम चाहते हैं कि आप इसका वैज्ञानिक कारण भी जान लें । इसके लिए आपको यह जानना होगा कि ध्वनि की उत्पत्ति किस प्रकार होती है । ध्वनि की उत्पत्ति का कारण जानने के लिए 'आन्दोलन' शब्द को समझना होगा । जब किसी वस्तु से ध्वनि उत्पन्न होती है तो वह वस्तु झूले की भाँति इधर-उधर बड़ी तीव्र गति से हिलने लगती है । झूले के स्थान पर आप एक दीवार-घड़ी के लटकन का उदाहरण भी ले सकते हैं । जब घड़ी का लटकन हिलता है तो वह अपने लटकने के स्थान से पहले एक ओर जाता है, कुछ दूर जाकर पुनः अपने मूल स्थान पर लौटकर आता है और फिर दूसरी ओर किसी निश्चित दूरी तक जाकर पुनः पहली ओर जाने के लिए अपने मूल स्थान पर लौटता है । इस सम्पूर्ण क्रिया को एक 'आन्दोलन' कहते हैं । इन आन्दोलनों की गति से वायु में लहरें उत्पन्न होती हैं । अब यदि इन लहरों की आन्दोलन-संख्या (जिसे 'कंपन-संख्या' या 'कंपनांक' भी कहते हैं) एक सैकंड में सोलह



है अर्थात् एक सैकड़ में सोलह कंपन हैं, तो हम इस ध्वनि को सुन सकते हैं, अन्यथा नहीं।

जब इन ध्वनि उत्पन्न करनेवाले आन्दोलनों की गति में नियमितता होती है अर्थात् घटा-बढ़ी नहीं होती, तब 'संगीतोपयोगी नाद' या 'स्वर' का जन्म होता है। उदाहरण के लिए, जब हम कहते हैं कि षड्ज की आन्दोलन-संख्या २४० कंपन प्रति सैकड़ है, तो हमारा तात्पर्य यह होता है कि वस्तु आन्दोलित हो रही है, उससे प्रति सैकड़ २४० आन्दोलन उत्पन्न हो रहे हैं। यहाँ यह बात और ध्यान में रखनी चाहिए कि जो लहरें (तरंगें) इस कंपन के फलस्वरूप वायु में उत्पन्न होती हैं, उनका साधारण रूप इस प्रकार का होता है :—



ऊपर 'अ' और 'ब' दो चित्र दिए हैं। दोनों में 'क—ख' रेखा बराबर है किंतु 'अ' चित्र में केवल एक सम्पूर्ण तरंग है, जबकि 'ब' चित्र में उतनी ही दूरी में दो तरंगें हैं।

इसका अर्थ यह समझना चाहिए कि जितनी देर में 'अ' चित्र की एक तरंग उत्पन्न होती है, उतनी ही देर में 'ब' चित्र की दो तरंगें उत्पन्न होती हैं। अथवा यों कहिए कि 'ब' चित्र की कंपन-संख्या 'अ' चित्र की कंपन-संख्या से दुगुनी है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि 'ब' चित्र में अंकित नाद 'अ' चित्र में अंकित नाद से दुगुना ऊँचा है। अब यदि 'अ' चित्र में दर्शाई हुई ध्वनि को हम मध्य-सप्तक का षड्ज मान लें, तो 'ब' चित्र में दर्शाई हुई ध्वनि तार-सप्तक का षड्ज अर्थात् 'सा' होगी।

इस आधार पर यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों आन्दोलन-संख्या बढ़ती है, नाद ऊँचा होता जाता है। अतः जब हम यह कहते हैं कि 'सा' स्वर से 'रे' स्वर का नाद ऊँचा है, तो इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि 'रे' की कंपन-संख्या 'सा' की कंपन-संख्या से अधिक है।

इसी बात को विज्ञान की भाषा में हम यों भी कह सकते हैं कि किसी ध्वनि-तरंग की लम्बाई (Wavelength) बढ़ते जाने पर नाद नीचा और कम होते जाने पर नाद ऊँचा होता जाता है।

यहाँ दूसरी बात यह ध्यान में रखने की है कि ज्यों-ज्यों ध्वनि उत्पन्न करने वाले तार की लम्बाई को हम कम करते जाएँगे, त्यों-त्यों नाद ऊँचा होता जाएगा और ज्यों-ज्यों लम्बाई को बढ़ाते जाएँगे, नाद क्रमशः नीचा होता जाएगा।

स्मरण रहे कि यहाँ जो कंपन-संख्या होगी, नियमित ही होगी। अनियमित

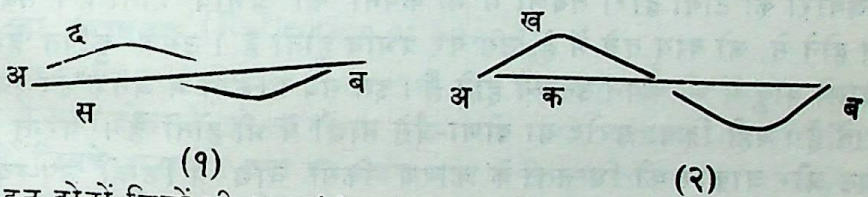


कंपन से तो शोर-गुज ही उत्पन्न होता है। किसी बाजार की भीड़ में या मेले में यदि कोई जोर से चिल्ला रहा हो, कोई धीरे-से बोल रहा हो, किसी ओर बच्चे रो रहे हों या कोई हँस रहा हो, तो इन क्रियाओं के द्वारा वायु में जो कंपन होंगे, वे अनियमित ही तो होंगे। और, ये अनियमित कंपन 'शोरगुज' ही कहलाएँगे। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति कुछ गा रहा है या वाद्य बजा रहा है, तो उसकी आवाज़ के कंपन हवा में नियमित रूप से होंगे और वे अच्छे भी मालूम होंगे। बस, उसे ही हम 'संगीतो-पयोगी नाद' या 'स्वर' कहेंगे।

### तीव्रता, प्रबलता या नाद का छोटा-बड़ापन (Loudness या Magnitude)

जो आवाज़ धीरे-धीरे सुनाई पड़े, उसे 'छोटा नाद' कहेंगे और जो आवाज़ जोर-से सुनाई पड़े, उसे 'बड़ा नाद' कहेंगे। उदाहरण के लिए यदि किसी घंटे पर आपने नाखून से प्रहार किया, तो ध्वनि बहुत हल्की उत्पन्न होगी और वह थोड़ी दूर तक ही सुनाई देगी। इसके विपरीत यदि हथौड़े से प्रहार किया तो ध्वनि जोर की उत्पन्न होगी और वह अधिक दूर तक सुनाई देगी। यहाँ धीरे से उत्पन्न होने वाली ध्वनि को 'छोटा नाद' और जोर से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि को 'बड़ा नाद' कहेंगे।

इसका वैज्ञानिक कारण जानने के लिए निम्नलिखित चित्रों को देखिए :—



इन दोनों चित्रों की 'अ-ब' रेखाएँ बराबर हैं। परन्तु जो तरंग चित्र सं० १ में है, उसमें जो 'स-द' तरंग की चौड़ाई है, वह चित्र सं० २ की 'क-ख' तरंग की चौड़ाई से कम है।

इसका अर्थ यह समझना चाहिए कि दोनों चित्रों में दर्शाई हुई ध्वनियाँ नाद के ऊँचे-नीचेपन में समान होंगी, क्योंकि तरंग की लम्बाई अर्थात् 'अ-ब' समान हैं; परन्तु चित्र सं० १ की ध्वनि पास तक ही सुनाई देगी और चित्र सं० २ की ध्वनि दूर तक। विज्ञान की भाषा में इसे यों कह सकते हैं कि जब ध्वनि-तरंग की चौड़ाई कम होती है तो नाद छोटा होता है, किंतु जब ध्वनि-तरंग की चौड़ाई अधिक होती है तो वह नाद बड़ा हो जाता है। जैसे तारता नादोत्पादक वस्तु की आवृत्ति पर निर्भर है वैसे ही तीव्रता उसके कंपन-विस्तार पर निर्भर होती है।

### नाद की जाति या गुण (Timbre)

नाद की जाति से यह मालूम होता है कि जो आवाज़ आ रही है, वह किसी मनुष्य की है या किसी वाद्य से निकल रही है; उदाहरणार्थ—एक नाद-हारमोनियम, सारंगी, सितार या बेजा से प्रकट हो रहा है और दूसरा नाद-किसी गायक के गले से,



तो हम नाद प्रकट होने की क्रिया को देखे बिना ही यह बता देंगे कि उनमें से कौनसा नाद वाद्य का है और कौनसा गायक का।

नाद-जाति के भिन्न होने का वैज्ञानिक कारण किसी वस्तु से उत्पन्न 'उप-स्वरों' की तीव्रता का तारतम्य है। प्रत्येक नाद में अन्य अनेक नादों का मिश्रण होता है, जिनकी आवृत्तियाँ मौलिक या मूल आवृत्ति से क्रमशः दुगुनी, तिगुनी, चौगुनी, पंचगुनी, छहगुनी इत्यादि उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हैं। मौलिक ध्वनि को छोड़कर, जिससे तारता निश्चित होती है, शेष नाद 'उप-स्वर' (Overtones) कहे जाते हैं। इन्हीं उप-स्वरों की तीव्रता के तारतम्य से नाद में जाति या गुण-भेद की उत्पत्ति होती है। अर्थात् किस नाद में किन उप-स्वरों की तीव्रता कितनी है, उसी आधार पर एक नाद दूसरे से भिन्न हो जाता है। किसी एक वाद्य या कंठ से उत्पन्न होने वाले उप-स्वर दूसरे वाद्य या कंठ से उत्पन्न उप-स्वरों से भिन्न होते हैं। इसी कारण, हम एक वाद्य की ध्वनि को दूसरे वाद्य की ध्वनि से पृथक् पहचान लेते हैं। यदि उप-स्वरों की आवृत्तियों का मौलिक आवृत्ति से सरल गुणक का सम्बन्ध नहीं होगा तो ध्वनि से शोर का आभास होने लगेगा; जैसे-किसी धातु की चादर पर प्रहार करने की ध्वनि।

परन्तु जब हम किसी सितार के तार को छेड़ते हैं तो वह कंपित होता है। उस कंपन का जवारी पर प्रभाव होता है। जवारी की टाँगें तबली पर रखी होती हैं अतः जवारी की टाँगों द्वारा तबली में भी कंपनों का प्रभाव होता है। तबली के कंपित होने से, जो वायु तूँबे में है, उस पर प्रभाव होता है। उसके कुपित होने पर डाँडवाली वायु में भी कंपन उत्पन्न होते हैं। इस सब प्रक्रिया में अनेक उप-स्वर तीव्र हो जाते हैं। यही क्रिया सरोद या वीणा-जैसे वाद्यों में भी होती है। परन्तु उनकी बनावट और आकार की भिन्नता के कारण किसी वाद्य में किन्हीं उप-स्वरों की तीव्रता हो जाती है। यही उनकी 'नाद-जाति' या 'गुण-भेद' का वैज्ञानिक कारण है। इसी प्रकार जब हम कुछ बोलते या गाते हैं, तो जो वायु कंठपिटक से मुख में आती है, उस पर हमारे कंठ, गालों, दाँतों व जिह्वा की बनावट इत्यादि का प्रभाव उत्पन्न उप-स्वरों की तीव्रता के तारतम्य पर पड़ता है। अतः हमारी वह आवाज़ किसी भी अन्य मनुष्य की आवाज़ से भिन्न होगी; क्योंकि उसके मुख के भागों की रचना हमारे मुख की रचना से भिन्न है। यही नाद-जाति के भिन्न होने का कारण है। स्थल या स्थान भेद से स्वर का गुण बदल जाता है।

## ध्वनि से संबंधित कुछ अन्य बातें

### ध्वनि का अनुरणन (Reverberation)


किसी बड़े कमरे में जब कोई ध्वनि या नाद उत्पन्न होता है तो नाद के बन्द हो जाने के पश्चात् एक गूँजसी उत्पन्न होती है। वह नाद के संक्षिप्त परावर्तन के कारण वास्तविक गूँज (Echo) अर्थात् गुणज प्रतिध्वनि से कम होती है। ऐसा लगता है जैसे उच्चरित नाद खिचकर कुछ लम्बा सा हो गया है। नाद के वास्तविक उच्चारण के तत्काल बंद होने के बाद भी वह ध्वनि सुनाई पड़ती है। अनेक गायक कान पर



हाथ रख कर गाते हैं क्योंकि 'अनुरणन' या 'रिवरबरेशन' के कारण उन्हें अपना उच्चरित स्वर स्वयं भी सुनाई पड़ता रहता है और इस प्रकार वे बेसुरा होने से बच जाते हैं तथा वाद्य की ध्वनि के साथ एकरूपता बनी रहती है। दीपावली पर घर का रंग-रोगन करने के लिए जब कमरे के अन्दर से सामान बाहर निकाल दिया जाता है तो बातचीत करते समय इस नाद को हम स्पष्ट रूप से सुन सकते हैं। वास्तव में इसे प्रतिध्वनि न कहकर प्रतिध्वनि का प्रारंभिक स्वरूप कह सकते हैं जो इस स्थान पर अधिक गूँज वाले अवयव न होने से थोड़ा सा ही प्रतिध्वनित होकर जल्दी समाप्त हो जाता है। अर्थात् गूँज पैदा करने वाली गुणज ध्वनि तरंगें नहीं पैदा हो पातीं। इसे नाद गुंजन की प्राथमिक सत्ता कहा जा सकता है। अंग्रेजी में इसी को 'रिवरबरेशन' (Reverberation) कहते हैं।

'रिवरबरेशन' कम करने के लिए कमरे की दीवारों पर गत्ता, लकड़ी, मोटा कपड़ा, जटाजूट लगा दिया जाता है और छत को सर्पाकार बनाया जाता है जैसा कि सिनेमाघरों में होता है। जितनी देर तक नाद सुनाई पड़ता है, उतने समय को 'टाइम आव रिवरबरेशन' (Time of reverberation) अर्थात् अनुरणन-काल कहते हैं। गायकों को नाद के 'रिवरबरेशन' तत्त्व का सुनाई पड़ना जरूरी होता है ताकि वे अपने नाद को सुनकर उसे संयमित कर सकें। इसीलिए खुले मैदान की अपेक्षा किसी बन्द स्थान में गायक को गाने में सहूलियत और संतोष प्राप्त होता है।

### ध्वनि का परावर्तन (Reflection of Sound)

जब ध्वनि-तरंगें दीवारों से टकराती हैं, जिनका आकार ध्वनि-तरंगों के आकार से बड़ा होता है, तो तरंगों का कुछ अंश उसी माध्यम में परिवर्तित हो जाता है, जिसके द्वारा वह गया था। शेष भाग में से कुछ तो मल द्वारा शोषित हो जाता है और बाकी उस दूसरे माध्यम में आर-पार चला जाता है। बड़े-बड़े कमरों में भाषण देने वाले की आवाज़ कभी-कभी इस परिवर्तन के कारण गूँजकर अस्पष्ट हो जाती है। इस दोष को दूर करने के लिए दीवारों इत्यादि पर कपड़े के परदे लटकाकर ध्वनि-शोषण कराया जाता है। जब कोई बड़ा हॉल आदमियों से भरा रहता है, तब वहाँ की आवाज़ में गूँज प्रायः नहीं होती, क्योंकि बैठे हुए मनुष्य ध्वनि-शोषण करते हैं। बड़े-बड़े भाषणालयों में मंच के पीछे ध्वनि-परावर्तक (Sound-reflector) नतोदर (Concave) या परबलीय बोर्ड (Barabolic Board) जिनका आकार कुछ  इस प्रकार का होता है, परदे के रूप में लगे रहते हैं। वक्ता इस परावर्तक की नाभि (Focus) के निकट खड़ा होकर बोलता है, अतः परिवर्तित ध्वनि-तरंगें परस्पर समानान्तर बनकर सामने श्रोताओं की ओर जाने लगती हैं। इसका लाभ यह होता है कि मंच से दूर बैठे लोग भी वक्ता की सारी बातें सुन सकते हैं।

### ध्वनि आवर्तक (Refraction of Sound)

जब ध्वनि-तरंगें एक माध्यम से दूसरे माध्यम में प्रवेश करती हैं तो यह क्रिया आवर्तन के साधारण नियमों के अनुसार ही होती है। उदाहरण के लिए, गर्मी के दिनों



में जब पृथ्वी के पास की वायु का तापमान ऊपर की दूर की वायु के तापमान से अधिक होता है तो ध्वनि-तरंगें क्रमशः विरल (Rarefied) से सघन (Condensed) वायु-परतों में से होकर जाने लगती हैं। दूसरे शब्दों में इन ध्वनि-तरंगों की गति (पृथ्वी के समीप की वायु गर्म होने के कारण) ऊपर की ओर हो जाती है। इसके विपरीत रात्रि में, जबकि पृथ्वी के समीप की वायु अधिक ठंडी होती है, इन ध्वनि-तरंगों का झुकाव नीचे की ओर हो जाता है। इसीलिए दिन की अपेक्षा रात्रि को ध्वनि अधिक दूर तक सुनाई देती है।

जब हवा बहती है, तब भी ध्वनि का आवर्तन होता है। यदि वायु ध्वनि की दिशा में ही चल रही हो, तो ध्वनि पृथ्वी को छूती हुई चलती है और उसे अधिक दूर तक सुना जा सकता है। इसके विपरीत यदि हवा ध्वनि की विपरीत दिशा में चल रही हो तो ध्वनि ऊपर आकाश की ओर चली जाती है और अधिक दूर तक सुनाई नहीं देती।

### ध्वनि-विवर्तन (Diffraction of Sound)

जब ध्वनि के मार्ग में बाधा आ जाती है तो वह भुड़ जाती है। ध्वनि का यह मुड़ाव उसके प्रकार और विशिष्ट गुणों पर निर्भर करता है, यद्यपि उसका वेग नहीं बदलता। इस गुण को 'ध्वनि का विवर्तन' कहते हैं, गुण के फलस्वरूप हम ध्वनि को तब भी सुन सकते हैं, जबकि उसका उत्पत्ति-केन्द्र दिखाई न देता हो; जैसे दीवार की दूसरी ओर की ध्वनि, किवाड़ों के पार की ध्वनि या किसी मोड़ की ओर की ध्वनि।

### ध्वनि का व्यतिकरण (Interference of Sound)

अवस्था-विशेष में दो ध्वनियाँ मिलकर शांत (Dead) हो जाती हैं। इस क्रिया को 'ध्वनि का विनष्टीकरण' या 'व्यतिकरण' कहते हैं। जब दो कंपनांक (Frequency) और कंप-विस्तार (Amplitude of vibration) बिल्कुल बराबर होते हैं और दोनों से एक-जैसी तरंगें उत्पन्न होती हैं तथा वे दोनों एक ही दिशा में चल रही होती हैं, तो माध्यम के कुछ निश्चित कणों पर तो ध्वनि अधिकतम और कुछ पर वह एकदम मंद पड़ जाती है। इसी क्रिया को 'ध्वनि का व्यतिकरण' कहते हैं।

इसके विपरीत यदि दो स्रोतों से समान तरंग-दैर्घ्य (Wave Length) और कंप-विस्तारवाली तरंगें उत्पन्न होकर माध्यम में विपरीत दिशा में चलती हों, तो उनसे मिलकर बनने वाली नई तरंग में कुछ बिंदुओं पर कंपन नहीं होता और कुछ पर अधिकतम कंपन होता है। ये दोनों प्रकार के बिन्दु बराबर-बराबर दूरी पर स्थिर रहते हैं। इस आधार पर बनने वाली तरंग को 'स्थावर-तरंग' या 'पास-पास तरंग' (Stationary Wave) कहते हैं। इसका कारण यह है कि दोनों तरंगों का तरंग-दैर्घ्य और कंप-विस्तार बराबर होने के कारण, माध्यम के कुछ कण तो स्थायी रूप से स्थिर रहते हैं और कुछ का कंप-विस्तार दुगुना हो जाता है।



## अनुनाद (Resonance)

जब कोई वस्तु किसी बाह्य स्रोत से प्रेरित होकर स्वयं कंपित होने लगती है तो इस क्रिया को 'अनुनाद' (Sympathetic Vibrations) कहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि आप दो तानपूरे एक ही स्वर में मिलाकर पास-पास रख लें और एक को बजाएँ तो देखेंगे कि दूसरा भी बिना बजाए हुए झनझनाने लगता है। इसका दूसरा उदाहरण इस प्रकार दिया जा सकता है कि यदि आपने सितार में जोड़ी के तारों को एक स्वर में मिला लिया है तो किसी एक तार पर छोटा-सा कागज का टुकड़ा मोड़कर रख दीजिए। अब दूसरे तार को बजाइए। आप देखेंगे कि जिस तार पर कागज का टुकड़ा रखा है, वह तार भी झनझनाने लगेगा और फलस्वरूप कागज का टुकड़ा तार से अलग जा पड़ेगा। यदि इन दोनों तारों की ध्वनियों में समानता नहीं है तो कागज का टुकड़ा तार से नहीं हटेगा।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जब दो समान कंपनांकों (Frequency) की वस्तुओं को पास-पास रखकर किसी एक से ध्वनि उत्पन्न की जाए तो दूसरी वस्तु स्वतः ही कंपित होने लगती है और इस प्रकार ध्वनि की तीव्रता बढ़ जाती है। इसी को 'अनुनाद' कहते हैं।

इस अनुनाद का कारण यह है कि जब आन्दोलित होनेवाली वस्तु कंपित होती है तो उसकी ध्वनि-तरंगें वायु में फैल जाती हैं। अब यदि कोई वस्तु, जिसका कंपनांक उसी आन्दोलित होनेवाली वस्तु के कंपनांक के बराबर है, और वे दोनों वस्तुएँ पास-पास हैं, तो वह दूसरी वस्तु भी वायु के उन्हीं कंपनांक के अनुसार स्वतः कंपित होने लगती है। फलस्वरूप ध्वनि की तीव्रता बढ़ जाती है। इसी अनुनाद के सिद्धान्त पर कई भारतीय तार-बाद्ययंत्र बनाए गए हैं; जैसे वीणा, सितार, इसराज, सरोज इत्यादि। इन बाद्यों में प्रधान तारों के साथ-साथ बगल में और भी अनेक तार लगे रहते हैं। इन तारों को 'तरबें' कहते हैं। ये तरबें राग में लगनेवाले स्वरों के अनुसार मिलाई जाती हैं। वादन करते समय जब वे स्वर बजते हैं तो ये तार स्वतः ही अनुनाद के सिद्धान्त के कारण ध्वनि देने लगती हैं। इस प्रकार जो संयुक्त स्वर उत्पन्न होता है (अर्थात् मूल स्वर + तरब का स्वर), उससे स्वर की तीव्रता और मधुरता बढ़ जाती है।

इसके विपरीत यदि किसी आन्दोलित होनेवाली वस्तु को किसी दूसरी ऐसी वस्तु के समीप लाएँ जिसके कंपनांक उस आन्दोलित होनेवाली वस्तु के कंपनांक से भिन्न हों, तो उससे अनुनाद उत्पन्न नहीं होगा। परन्तु जब हम किसी एक धीमी ध्वनि उत्पन्न करनेवाले ध्वनि-स्रोत का सम्बन्ध किसी दूसरी वस्तु से कर देते हैं, तो यह दूसरी वस्तु भी आन्दोलित होनेवाले स्रोत के आवृत्ति-काल (period) के अनुसार कांपना चाहती है। फलस्वरूप वह वस्तु प्रारम्भ में कुछ बेड़ंगे आन्दोलनों के पश्चात् आवर्त बल के अनुसार कंपन करने लगती है। इस प्रकार के कंपनों को 'उत्प्रेरित कंपन' (Forced Vibrations) करते हैं।



उदाहरण के लिए, जब हम किसी द्विभुज (Tuning Fork) को हवा में बजाते हैं तो बहुत ही धीमी या मंद ध्वनि सुनाई देती है, लेकिन जब उसे सीधा खड़ा करके, उसकी मुठ को मेज पर रख देते हैं तो ध्वनि काफी तेज हो जाती है। इसका कारण यह है कि द्विभुज के कंपन मुठिया द्वारा मेज तक पहुँचते हैं और इस प्रकार मेज में उत्प्रेरित कंपन होने लगते हैं। मेज का त.खता काफी लम्बा-चौड़ा होने के कारण, जब यह द्विभुज कंपनांकों के अनुसार कंपित होने लगता है तो इसके तखते के पासवाली हवा भी उत्कंपित हो जाती है। फलस्वरूप ध्वनि तेज सुनाई देने लगती है।

संगीत-विद्वानों ने इस सिद्धान्त का भी उपयोग खूब किया है। साधारणतः वाद्य-यंत्रों में किसी-न-किसी प्रकार का ध्वनि-बोर्ड (Sound Board) लगा रहता है। इस ध्वनि-बोर्ड की सहायता से स्वरों की तीव्रता बढ़ जाती है। तार या ताँतवाले वाद्यों में जब तार या ताँत के डोरे कंपन करते हैं तो उनका आवर्त-बल (Periodic Force) जवारियों (घुड़च या Bridge) के द्वारा खोखले बॉक्स (तूबे) को मिल जाता है। अतः तूबे के भीतरवाली हवा उत्प्रेरित कंपन करने लगती है। इसका आयबन काफी बड़ा होता है, अतः ध्वनि तेज सुनाई देती है। वाँयलिन में उसका शरीर (Body या Belly) और बाँसुरी में उसकी नली (Pipe) इत्यादि कंपित होने लगती है और इस कारण ध्वनि भी तेज तथा मधुर सुनाई देती है।

### प्रतिध्वनि (Echo)

जब बोलनेवाले के शब्द एक से अधिक बार सुनाई पड़ते हैं तो इस क्रिया को 'प्रतिध्वनि' कहते हैं। प्रतिध्वनि का कारण दूरस्थ परन्तु समतल स्थान होते हैं। उदाहरण के लिए, भवनों की पंक्ति, पेड़ या पर्वत-श्रेणी के सामने निश्चित दूरी पर खड़े होकर बोलने से प्रतिध्वनि सुनाई देती है।

सुननेवालों के कान में सुनी हुई ध्वनि का प्रभाव  $\frac{1}{2}$  सैकंड तक रहता है। यदि परावर्तित ध्वनि-तरंगें सुननेवाले के पास तक  $\frac{1}{2}$  सैकंड के बाद लौटती हैं, तो प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ती है अथवा 'ध्वनि' और 'प्रतिध्वनि' में कोई भेद नहीं हो पाता। अतः प्रतिध्वनि को सुनने के लिए यह आवश्यक है कि ध्वनि-परावर्तक सुनने वाले से कम-से-कम इतनी दूरी अवश्य हो कि वहाँ तक जाने और सुननेवाले तक लौटने में ध्वनि को  $\frac{1}{2}$  सैकंड से थोड़ा अधिक समय लगे। ध्वनि का वेग खुली हवा में लगभग ११२० फीट प्रति सैकंड होता है। अतः सुननेवाले से परावर्तक की दूरी कम-से-कम  $(1120/2 \div 90) = 56$  फीट अवश्य होनी चाहिए।

बड़े-बड़े व्याख्यान-भवनों या रिकार्डिंग हॉलों की दीवारें और कोने इस प्रकार बनाए जाते हैं कि लगातार प्रतिध्वनियाँ उत्पन्न न हों और स्वर या शब्द बिना किसी गूँज के स्पष्ट सुनाई दें।

### ध्वनि का दोलन और वहन

यह बताया जा चुका है कि ध्वनि-कम्पन, तरंग, आंदोलन या दोलन से उत्पन्न होती है। लेकिन क्या हर कंपन से ध्वनि उत्पन्न होती है? कई बार ऐसा होता है



कि नेत्रों से हम वस्तुओं का कंपन देखते हैं, लेकिन वस्तुओं का अभाव पाते हैं। इसका कारण यही है कि कंपन से ध्वनि तो उत्पन्न होती है, लेकिन हमारे कान उसको सुन नहीं पाते। कारण यही है कि कंपन की आवृत्तियाँ ध्वनि की तीव्रता को एक विशेष सीमा में रखती हैं। जिन ध्वनियों की आवृत्ति बीस चक्र प्रति सैकंड से कम होती है वे हमारे कानों पर प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पातीं और न वे ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं जिनकी आवृत्ति बीस हजार चक्र प्रति सैकंड से अधिक होती है। इसलिए बीस हजार आंदोलन प्रति सैकंड उत्पन्न करने वाली वस्तुओं से ही मनुष्य के कान को ध्वनि सुनाई पड़ती है। बीस हजार से अधिक आंदोलन वाली ध्वनियाँ 'पराश्रव्य' (Ultra sonic waves) कहलाती हैं। इनके माध्यम से आजकल प्रयोगशालाओं एवं चिकित्सा के क्षेत्र में अनेक उपयोगी कार्य सिद्ध किए जा रहे हैं। इन ध्वनियों को कुत्ते, घिमगादड़ और मछलियाँ सुन सकती हैं।

### वायु का स्प्रिंग (Elasticity of wind)

वायु में स्प्रिंग गुण अथवा प्रत्यास्थता (Elasticity) होती है जिसे प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। एक काँच की सीधी नली को लगभग दो लीटर आयतन के फ्लास्क या बोतल से कॉर्क द्वारा जोड़कर ऐसा बंद करते हैं कि वायु कॉर्क से तनिक भी न निकल पाए। काँच की नली के ही व्यास की इस्पात की गोली नली में छोड़ देने पर नली में दोलन करती है। यदि उसके नीचे का स्टॉप कॉर्क खोल दिया जाए तो गोली फ्लास्क की पेंदी में गिर पड़गी। गोली का दोलन वायु की प्रत्यास्थता या लचीलेपन को सिद्ध करता है। गोली नीचे जाने पर फ्लास्क की वायु का आयतन घटने से वायु का दाब बढ़ जाता है क्योंकि बंद वायु का द्रव्यमान स्थिर रहता है। दाब की अधिकता ही वायु में स्प्रिंग जैसी अवस्था उत्पन्न करती है जो कि गोली को ऊपर की ओर धकेलती है। गोली ऊपर की ओर चलकर, अपनी पूर्व स्थिर स्थिति तक पहुँचती है लेकिन संवेग के कारण वह रुकने की बजाय आगे बढ़ जाती है। जैसे-जैसे गोली ऊपर उठती है वैसे-वैसे फ्लास्क की वायु का आयतन बढ़ता जाता है और दाब कम होती रहती है। अतः बाहरी वायुमण्डल का दाब अधिक होने के कारण गोली पुनः नीचे लौटती है। फलस्वरूप वायु के स्प्रिंग तथा अपनी जड़ता (Inertia) के कारण गोली दोलन करती है। इसी पद्धति से होली की पिचकारी में पानी भरकर उसके हत्थे को दवाने पर वायु का ऐसा ही दाब बनता है तभी पानी की धारा एकदम न निकल कर वायु स्प्रिंग के माध्यम से निकलती है।

वायु के लचीलेपन एवं उसकी वहन-क्षमता के आधार पर ही हाइड्रोलिक सिस्टम के अन्तर्गत अनेक यंत्र एवं वस्तुओं का निर्माण किया गया है। किसी पेट्रोल पम्प पर जाकर देखें जहाँ कार की धुलाई-सफाई होती है तो एक लम्बे लोहे के खंभे पर कार रखी हुई दिखाई देगी जिसे हाइड्रोलिक सिस्टम से ऊपर-नीचे चढ़ाया-उतारा जाता है। इस पद्धति से गाड़ियों के ब्रेक लगाए जाते हैं और मोटर कारों में शॉक ऐब्जॉर्बर फिट किए जाते हैं, तभी गाड़ियाँ यकायक न रुककर स्प्रिंग की गति से



रुकती हैं और मोटरकार की सीट पर बैठकर सड़क के गड्ढों का हमें पता नहीं लगता ।

### अनुदैर्घ्य तरंग (Longitudinal Wave)

उपर्युक्त विवरण से वायु का लचीलापन सिद्ध होता है । वायु का भार जड़त्व प्रदान करता है । इसलिए यदि वायु में कोई वस्तु कम्पन करती है तो उसके द्वारा वायु में सम्पीडन एवं विरलन उत्पन्न होता है । यही सम्पीडन और विरलन वायु में संचरण करके ध्वनि को स्रोत से आगे ले जाते हैं, ठीक उसी तरह जैसा कि गोली व स्प्रिंग के उदाहरण से स्पष्ट किया जा चुका है ।

जल की तरंग या लहर से सभी परिचित हैं । ये लहर दौड़ती हुई दिखाई देती हैं लेकिन ध्यान से देखा जाए तो पता चलेगा कि आंदोलन के केन्द्र से जल का कोई खण्ड टूटकर हमारी ओर नहीं आता । जल स्थिर रहता है, लेकिन उसके कण वायु के स्पर्श से क्रमानुसार कंपित होकर ऊपर-नीचे होते हैं और यही कंपन या आंदोलन तरंग का रूप लेकर आगे फैलता है । इसे जल की तरंग कहते हैं ।

जल के अणु एक-दूसरे से प्रायः चिपके हुए होते हैं । इसीलिए जब एक अणु ऊपर उठता है तो उसके अगल-बगल के अणु भी उसके साथ बँधे हुए से ऊपर को खिंच आते हैं लेकिन वायु या किसी भी गैस के अणु एक-दूसरे से स्वतंत्र होते हैं । इसलिए जल के अणु की तरह ऊपर उठकर ये अपने अगल-बगल के अणुओं को विचलित नहीं कर सकते बल्कि अपने सामने के अणु को ही धक्का मारकर आंदोलन को आगे बढ़ा सकते हैं । इसलिए जहाँ जल की तरंग की दिशा उसके अणुओं के कंपन की दिशा के साथ समकोण बनाती है अर्थात् आड़ी होती है वहाँ वायु या गैस की तरंग की दिशा अणुओं के कंपन की दिशा में ही होती है । इस प्रकार तार के कंपन की तरह ही तरंग भी दो प्रकार की होती है । पहली अनुप्रस्थ तरंग और दूसरी अनुदैर्घ्य तरंग ।

उपर्युक्त विचार से यह स्पष्ट है कि गैसों में केवल अनुदैर्घ्य तरंग पैदा की जा सकती है किन्तु द्रव या ठोस में दोनों ही प्रकार की तरंगें पैदा हो सकती हैं ।

### ध्वनि के शक्ति स्रोत (Energetic source of Sound)

ध्वनि की तीव्रता का ज्ञान स्रोत की शक्ति प्रस्तुत करता है । ध्वनि की शक्ति का महत्त्व संगीत तथा वाग्ध्वनि (Speech sound) के संदर्भ में अत्यधिक है । वाग्ध्वनि की शक्ति का मापन गहन अध्ययन का विषय बन गया है । साधारण बातचीत के लिए दस माइक्रोवाट की औसत शक्ति पर्याप्त पाई गई है । शक्ति का अधिकतम मान २ सैंकिड के समयांतर के लिए इसका १०० गुना तक पाया जाता है । साधारण बोलचाल में ध्वनि की अधिकतम शक्ति पुरुषों में २५० तथा १००० आवृत्ति के बीच के उच्चारणों में रहती है तथा महिलाओं में यह सीमाएँ ५०० से १५०० आवृत्ति की हो जाती हैं । १२५ आवृत्ति से कम तारत्व की ध्वनियाँ बहुत कम (पुरुषों के लिए) बोलचाल में आती हैं ।



सन्नादी स्वर (Consonants) में शक्ति की मात्रा अत्यन्त न्यून रहती है तथा उनकी आवृत्ति ऊँची पाई जाती है। हालाँकि सन्नादी स्वरों में शक्ति नहीं के बराबर होती है परन्तु वे शब्दों के समझने में बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं।

वाद्ययंत्रों में शक्ति की असमानता अत्याधिक होती है। उदाहरण-स्वरूप वाँद्यलिन के श्रवण में कम से कम  $3.5 \times 10^6$  वाट की शक्ति चाहिए जबकि एक पूरे ऑर्केस्ट्रा की शक्ति इसकी दो करोड़ गुनी होती है। संगीत के लिए पुरुषों तथा स्त्रियों की शक्ति १ वाट की है तथा एक सप्तक के स्वरांतराल (Interval) पर दोनों का विकिरण सौ माइक्रोवाट प्रति सैकिण्ड है (क्रमशः १३० तथा २६० आवृत्ति पर) तथा ३६० व ७८० आवृत्ति पर यह एक लाख वाट प्रति सैकिण्ड हो जाता है।

वाद्ययन्त्र	शक्ति (अधिकतम) वाट
पूरा ऑर्केस्ट्रा	७०
भारी ढोल	२५
ऑर्गन पाइप	१३
ट्रोबोन	६
पियानो	०.०४
भोंपू	३
बाँसुरी	०.०३
शहनाई	०.०५

### ध्वनि-वेग (Velocity of sound)

वायु में तरंग का वेग वायु का दाब बढ़ने से बढ़ता है और घनत्व बढ़ने से घटता है। हम देखते हैं कि तार या दोलन को छेड़ देने पर, वह थोड़ी देर तक हिलता रहता है; फिर धीरे-धीरे हिलना बन्द हो जाता है। यदि दोलन की एक आवृत्ति के समय को घड़ी से नापें तो पता चलेगा कि यह समय सदा बराबर ही होता है। उसका विस्तार अवश्य घटता जाता है जो अंत में शून्य हो जाता है लेकिन काल में कोई अन्तर नहीं पड़ता। मामूली तौर से यह कहा जा सकता है कि किसी भी कम्पमान वस्तु की आवृत्ति विस्तार पर निर्भर नहीं है। विस्तार बहुत अधिक बढ़ जाने पर आवृत्ति के ऊपर कुछ असर अवश्य पड़ता है किन्तु साधारण अवस्था में विस्तार और आवृत्ति एक दूसरे से स्वतंत्र हैं। इसलिए सितार या तानपूरे का तार एक निश्चित स्थान तक कम्पित हो या ऊपर-नीचे उसका विस्तार बढ़ जाए लेकिन तार की आवृत्ति में कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

किसी वस्तु की आवृत्ति इसकी लम्बाई, मोटाई, घनत्व, स्थिति-स्थापकत्व (जो दबाने से कम दबे), आकार आदि अनेक भौतिक गुणों पर निर्भर है। जब तक इन गुणों में कोई अन्तर नहीं होता तब तक वस्तु की एक सैकिण्ड की कम्पन-संख्या या आवृत्ति में भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। एक पीतल के तार की लम्बाई-मोटाई



और खिचाव बराबर एकसा रहे तो कभी छेड़ने पर उसकी प्रति सैकिण्ड कम्पन मंख्या एक ही निकलेगी। आवृत्ति तार की लम्बाई की व्युत्क्रम (उलटा) अनुपाती होती है। अर्थात्, तार को दूना लम्बा कर देने से आवृत्ति आधी हो जाती है। इसकी खोज का श्रेय पायथागोरस को दिया जाता है। यदि तार की लम्बाई बराबर रखें और खिचाव का बल बढ़ाएँ तो कम्पन की आवृत्ति इस बल के वर्गमूल के अनुपात से बढ़ती है।

किसी वस्तु में घनत्व आदि निश्चित और स्वाभाविक गुण होते हैं; इसलिए उस वस्तु में ध्वनि का वेग भी निश्चित होता है। डण्डे और चदरे में, स्थिति-स्थापकत्व उनके अणुओं के आपस के खिचाव पर निर्भर रहता है। जबकि तार और पर्दे में यह खिचाव कृत्रिम बल लगाकर पैदा किया जाता है। इसलिए इस कृत्रिम खिचाव को यदि बदला न जाए, तो यह भी स्वाभाविक गुण की कोटि में ही डाला जा सकता है। इस प्रकार, यह मानना पड़ता है कि किसी वस्तु में ध्वनि का एक बँधा हुआ वेग होता है, जो उसकी स्वाभाविक दशाओं पर निर्भर रहता है। यदि वस्तु की लम्बाई इत्यादि तथा आकार के मान को बदलें तो यह निश्चित है कि उस वस्तु की आवृत्ति भी बदल जाएगी। और यदि आकार को भी निश्चित कर दें तो उस वस्तु की एक अपनी आवृत्ति होगी जो उस वस्तु के लिए स्वाभाविक समझी जाएगी। इसी को वस्तु की 'सहज आवृत्ति' कहते हैं।

यहाँ अलग-अलग द्रव्यों के तापक्रम और उनके वेग (Velocity) को बताया जा रहा है।

## सारणी

द्रव्य	तापक्रम	वेग
वायु	०° (डिग्री सेण्टीग्रेड)	१८७ ] फुट प्रति
हाइड्रोजन	०° "	४१८३ ] सैकेण्ड
जल	१५° "	४७१४ "
ताँबा	२०° "	११६७० "
लोहा	२०° "	१६८२० "
लकड़ी, ओक (आँस के साथ)	१०°-२०° "	१२६२० "
काँच	१०°-२०° "	१६४००-१८७०० "
आक्सीजन	०° "	३१७२ "
तारपीन तेल	४° "	१३७० "
चाँदी	४° "	२६०० "
रबर	४° "	७० "
हिम	०° "	२३०० "



इस सारणी से विदित होता है कि हाइड्रोजन में वायु की अपेक्षा अधिक, द्रवों में गैसों से अधिक तथा ठोसों में द्रवों से अधिक ध्वनि का वेग पाया जाता है। ठोसों में केवल स्वर ही एक ऐसा अपवाद है, जिसके भीतर ध्वनि का वेग द्रवों से कम है।

तापमान के परिवर्तन पर ध्वनि का वेग बदल जाना अत्यन्त स्पष्ट तभी होता है जब संगीत वाद्ययंत्रों के तार बेसुरे या भ्रष्ट हो जाएँ। किसी बाँसुरी, ऑर्गन पाइप इत्यादि के स्वरों का आवर्त काल वह समय है, जो इन यंत्रों की नली-लम्बाई की कोई पूर्ण-गुणांक-दूरी वाली, ध्वनि को तय करने में लगता है। अतः आवर्त काल ध्वनि के वेग का प्रतिलोमानुपाती होता है। अर्थात् ध्वनि का वेग बढ़ने पर ध्वनि का तारत्व भी बढ़ जाता है। इसीलिए इसका परिणाम संगीत में अप्रिय रहता है क्योंकि लकड़ी के बने वाद्ययंत्र तथा धातु के बने वाद्ययंत्र, दोनों में तारत्व का परिवर्तन असमान होकर बेसुरापन अथवा विस्पंदन (Beats) उत्पन्न हो जाते हैं, जबकि स्वरों में एकरूपता होनी चाहिए। जिन वाद्ययंत्रों में परिवर्तनों को ठीक करने अर्थात् स्वर मिलाने की व्यवस्था होती है (जैसे-तबला, वायलिन, क्लैरीनेट, शहनाई, सितार इत्यादि), उनमें स्वर मिलाकर पुनः शुद्ध आवृत्ति की ध्वनि उत्पन्न की जा सकती है। इसीलिए तापमान का परिवर्तन होने पर वाद्यों के स्वर ऊँचे-नीचे हो जाते हैं तो उन्हें मिलाकर ठीक करना पड़ता है, परन्तु स्थायी स्वरों वाले यंत्रों में यह दोष समय-समय पर खोलकर ही दूर किया जा सकता है, तत्काल नहीं क्योंकि स्थायी स्वर वाले यंत्र अच्छी संगीत प्रस्तुति के लिए घटिया सिद्ध होते हैं। वाद्यों की बन्द नलियों में घर्षण तथा नली द्वारा ऊष्मा के निकल जाने एवं समतल तरंग समीकरणों के पूरा लागू न होने के कारण अधिकतर त्रुटि होती है। विभिन्न प्रयोगों से जो परिणाम पाए गए हैं उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. आरंभ में ध्वनि कैसे भी उत्पन्न हो लेकिन प्रचारण के दौरान वह एक सरल विशेषित रूप पा लेती है।
२. इस रूप के आ जाने पर ध्वनि का वेग तरंग के सब अंगों के लिए एकममान पाया जाता है।
३. पिस्तौल या बन्दूक की ध्वनि में सरल रूप नहीं रहता बल्कि तरंग के विभिन्न अंगों का वेग विभिन्न रहता है। लेकिन तरंग का संघनन का भाग शीघ्र ही सामान्य वेग पा लेता है। अतः तरंग के अग्रभाग की अत्यधिक तेज गति धीरे-धीरे कम होकर सामान्य तक पहुँच जाती है।
४. सामान्य वेग पर पिस्तौल की ध्वनि तीव्रता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता लेकिन अंग, तरंग का वेग ध्वनि की तीव्रता अधिक होने पर पड़ता है।
५. साधारण तीव्रता वाली ध्वनि की तीव्रता का परिवर्तन ध्वनि के वेग पर प्रभाव नहीं डालता।
६. तारत्व का परिवर्तन, ध्वनि वेग पर प्रभाव नहीं डालता।



७. ध्वनि प्रचारण की गति खुली वायु में नली की अपेक्षा अधिक रहती है। नली की दीवार, ध्वनि के वेग में कमी उत्पन्न करती है जो नली के व्यास का प्रतिलोमानुपाती होता है। इस कमी का मान ४६ मीटर प्रति सैकिण्ड से अधिक पाया गया, जबकि नली का व्यास एक मीटर था।

दीवाल का प्रभाव सम्बन्धन द्वारा ऊष्मा ले लेने तथा वायु की पतों में घर्षण द्वारा अवमन्दन उत्पन्न करने में होता है। अतः वेग का मान कम होकर समतापीय धारणा पर पाए गए मान को प्राप्त करने लगता है।

### अतिध्वनि वा पराश्रव्य (Ultra sonic Waves)

ध्वनि की आवृत्ति बढ़कर जब बीस हजार चक्र प्रति सैकिण्ड से अधिक हो जाती है तो मनुष्य के कानों को सुनाई नहीं पड़ती। इसी ध्वनि को अतिध्वनि, पराश्रव्य या कर्णातीत ध्वनि कहा जाता है। आज इस ध्वनि के असीमित प्रयोग किए जा रहे हैं और यह अध्ययन का एक अलग विषय बन गया है।

कर्णातीत ध्वनि को प्रयोगशाला में उत्पन्न करने की तीन प्रमुख विधियाँ इस प्रकार हैं :—

(क) यांत्रिक : गालटन सीटी तथा साइरन (Siren) द्वारा।

(ख) चुम्बकीय आकारांतर (Magnostruction) : प्रभाव द्वारा।

(ग) दाब : विकृत प्रभाव (Piezo electric Effect) द्वारा।

यांत्रिक विधियों में गालटन की सीटी एक अत्यन्त सरल यन्त्र है जिसके द्वारा  $2 \times 10^4$  कम्पन प्रति सैकिण्ड तक की कर्णातीत ध्वनि उत्पन्न करना सम्भव है। इसकी छड़ के ऊपर आवृत्ति उत्पन्न करना सम्भव है। इसको छड़ के ऊपर आवृत्ति की संख्या तथा एक सूचक लगा रहता है ताकि सीटी बजते समय उत्पन्न आवृत्ति को सदैव जाना जा सके। इसमें मुँह से फूँकने पर दाब संतुलित नहीं रहता, अतः नियत दाब के लिए वायु फूँकने का उपक्रम भी इसके साथ लगाया जाता है।

साइरन के द्वारा बीस हजार कम्पन प्रति सैकिण्ड की आवृत्ति सरलता से उत्पन्न की जा सकती है। इसमें वायु के झोंके की प्रबलता दो-तीन सौ घन फुट प्रति मिनट होती है। इसके एक कक्ष (Chamber) में गोल घूमता दाँतेदार परिभ्रमक (Rotor) तथा ऊपर उतनी ही संख्या में छिद्र रहते हैं। परिभ्रमक की गति (चक्र प्रति सैकिण्ड) तथा छिद्रों की संख्या का गुणनफल ध्वनि की आवृत्ति निर्धारित करता है। साइरन द्वारा ध्वनि की प्राप्ति में ५०% क्षमता प्राप्त होती है।

चुम्बकीय आकारांतर लौह चुम्बकीय (Ferromagnetic) पदार्थों जैसे-लौहे, निकल, कोबाल्ट तथा इनके मिश्रण से बनी धातुओं में यह गुण पाया जाता है कि उनका आकार चुम्बकीय गुणों के परिवर्तन के साथ-साथ बदलता रहता है। यह क्रिया प्रतिवर्ती (Reverseble) है तथा चुम्बकीय क्षेत्र-सिद्धान्त के आधार पर समझी गई है।



कर्णातीत ध्वनि उत्पादन के लिए लम्बाई के परिवर्तन का प्रभाव ही अधिक उपयोगी पाया गया है जिसके लिए इनवार, निबक्रोम, परमेन्तर तथा फेराइट प्रमुख धातु सम्मिश्रण से प्राप्त पदार्थ हैं।

चुम्बकीय क्षेत्र को छड़ की अक्ष के समानांतर दिशा में उत्पन्न करने के लिए छड़ पर एक कुण्डली सोलेनाइड (Solenoid) के समान लपेटकर तैयार किया जाता है। कुण्डली में भारा प्रवाहित करने पर छड़ की लम्बाई बढ़ती या घटती है। अतः धारा का स्रोत यदि आवर्ती होता है तो उसकी कंपन-आवृत्ति के अनुसार छड़ क्रमशः उसी आवृत्ति से घटती-बढ़ती रहेगी। छड़ के छोर पर वायु को इस प्रकार आवर्ती रूप में सम्पीडन तथा विरलन प्राप्त होता है जो कि ध्वनि उत्पन्न करता है ठीक वैसे ही, जैसे स्वरित्र द्वारा। इसी तरह कई प्रकार से कर्णातीत ध्वनि को उत्पन्न किया जाता है। कर्णातीत ध्वनि के पथ में रखे गए पतले तंतु के ऊपर ऊष्मा प्रभाव के कारण उसमें प्रवाहित विद्युत तरंग का मान बदलता है। अतः इस विधि से भी ध्वनि का होना या न होना जाना जा सकता है।

### कर्णातीत ध्वनि का उपयोग

ध्वनि तरंगों के द्वारा सागर की गहराई आँकना कर्णातीत ध्वनि का सबसे पहला उपयोग रहा है जो कि तलहटी में जाकर परावर्तित या प्रतिध्वनित होकर लौटती है। इसके आने-जाने के समय का माप और वेग जानकर पथ की लम्बाई (गहराई) ज्ञात हो जाती है। इसमें लगभग बीस से अस्सी हजार कम्पत प्रति सैकिण्ड की आवृत्तियों वाली कर्णातीत ध्वनि का उपयोग किया जाता है जिसके द्वारा एक सैकिण्ड से भी कम समय में कार्य पूरा कर लिया जाता है। चिमगादड़ की अँधेरे में उड़ान का रहस्य भी इसी सिद्धान्त पर निर्भर है। कर्णातीत ध्वनि से दूषित पदार्थों का ज्ञान हो सकता है, इच्छित रासायनिक प्रभाव उत्पन्न किए जा सकते हैं, हवाई जहाज की ऊँचाई नापी जा सकती है, दिशा-ज्ञान, कम्पन के घर्षण द्वारा पदार्थों में छिद्र करके कर लिया जाता है, काँच को मनमाने रूप में काटा जा सकता है, शरीर के अन्दर बिना किसी चीरफाड़ के आपरेशन किया जा सकता है एवं अन्य अनेक ऐसे रहस्यों का पता लगाया जा सकता है जो मनुष्य की इन्द्रियों से परे हैं। कर्णातीत ध्वनि द्वारा अनेक रोगों को दूर किया जा सकता है लेकिन कुछ रोगों में यह हानिप्रद भी सिद्ध हुई है। अतः इस क्षेत्र में अनुसंधान की प्रक्रिया निरन्तर चल रही है।



# ध्वनि विज्ञान से संबंधित महत्त्वपूर्ण

## पारिभाषिक शब्द

अंतराल-Interval	किरण-Ray
अतिध्वनिक-Ultrasonic	किरणावलि-Beam
अर्द्ध स्वरक-Chromatic	खण्ड-Segment
अनिष्ट या अतिविकृत स्वर-Dissonant Tone	गतिक समीकरण Dynamic Equation
अनुदैर्घ्य-Longitudinal	गुण-Timbre, Quality
अनुनाद-Resonance	ग्रन्थि-Node
अनुनादक-Resonator	ग्राम-Scale
अनुप्रस्थ-Transverse	ग्राहक-Receiver
अनुयोग-Coupling	चक्रिक प्रक्रिया-Cyclic Process
अनुरणन-Reverberation	चालन-Modulation
अपस्वरण-Mistuning	ज्यावक्र-Sinecurve
अभिसारी-Convergent	जटिल-Complex
अवकलन-Differentiation	जड़ता-Inertia
अवमन्दन-Damping	जगम-Progressive
अवरोध-Obstacle	ठाठ Mode
अवशोषण-Absorption	डोल Beat
आकरणन-Stethoscope	तरंग-Wave
अर्द्रता Humidity	तंत्र या प्रणाली System
आद्यतक-Harmonic	तार-Wire
आवृत्ति-Frequency	तारता-Pitch
आंशिक-Partial	तीव्रता Loudness, Intensity
इष्ट स्वर-Consonant Tone	द्विभुज-Tuning
उपस्वर-Overtone	द्विस्वरक Diatonic
उभार-Crest	दोलक-Pendulum
ऊर्जा प्रवाह-Energy Flux	दोलन-Oscillation
कड़ापन-Stiffness	ध्वनि Sound
कर्णातीत-Ultrasonic	ध्वनि प्रकीर्णन-Scatring of sound
कला-Phase	नाद-Musical Sound
कंपन-Vibration	परावर्तन-Reglection
कम्पविस्तार-Amplitude of Vibration	परिणामी स्वर-Resultant Tone
कारक-Operator	प्रणामी-Progressive
काल-Period	प्रत्यास्थता (स्प्रिंग गुण) Elasticity



प्रतिग्रन्थि-Antinode	वैकालिक-Nonperiodic
प्रतिध्वनि या गूँ Echo	श्रवण तंत्रिका-Auditory Nerves
प्रवेशक स्वर Leading Note	श्रुतिमूलक-Enharmonic
प्राकृतिक-Natural	संक्रम-Melody
प्राकृतिक प्रक्रिया Natural Process	संक्रमिक प्रक्रिया-Melodic process
प्रेषक Transmitter	संगीत-Music
प्रेरित-Forced	संघनन-Condensation
मान Length	संघात-Chord
मिश्र Composite	संचार-Propagation
मुक्त Free	संयोग-Composition
मौलिक Fundamental	संश्लेषण-Synthesist
यमकत्व Symmetry	संहति-Harmony, Amass
योगिक स्वर-Summation Tone	सघनता-Condensation
राव या शोर-Noise	सम्पीड़न Compresion
रुद्धोष्म Adiabatic	सप्तक-Octave
व्यतीकरण-Interference	समसाधृत Equal Temperament
वक्र-Curve	सामकालिक-Periodic
वक्र ध्वनि-Curve Sound	सरल आवर्त गति-Simple Harmonic Motion
वर्तन Regraction	सातत्य समीकरण-Equation of continuity
विरलता Rarefaction	साधारण-Tempered
विवर्तन Diffraction	समकालिक-Synchronous
विश्लेषक Analyser	सुरमापी Sonometer
विश्लेषण-Analpsis	स्वर-रज्जु-Vocal Cord
विवादी-Dissonant	स्वरित-Tonic
विसरण Diffusion	स्थायर या अप्रगामी-Stationary
विस्तार-Amplitude	स्वर साधृत-Meantone
वेग-Velocity	स्वरित्रद्विभुज-Tuning Fork
वेधन Penetration	स्थिति-स्थापकत्व-Elasticity

अन्य पारिभाषिक शब्दों की जानकारी के लिए पुस्तक के अन्त में दिए गए शब्दों का अध्ययन किया जा सकता है।



# ध्वनितरंग और उपकरण

## (Sound-waves and Apparatus)

ध्वनि-शास्त्र का अध्ययन करने से पहले यह समझना जरूरी है कि ध्वनि (Sound) क्या है।

कर्णेन्द्रिय से सम्बन्धित ध्वनि-विज्ञान या ध्वनि-शास्त्र को अकॉस्टिक (Acoustic) कहते हैं।

परिभाषा के अनुसार ध्वनि उस अनुभूति या संवेदन को कहते हैं, जिसे कानों द्वारा ग्रहण किया जाता है। ध्वनि का वेग प्रकाश के वेग की अपेक्षा बहुत अल्प होता है। इसीलिए जब आसमान में बिजली चमकती है तो उसका प्रकाश पहले आता है और गड़गड़ाहट बाद में सुनाई पड़ती है। ध्वनि की उत्पत्ति, प्रसार और उसके गुण के अध्ययन को ही ध्वनिकी (Acoustics) कहते हैं।

### ध्वनि-उत्पादन और तरंग

धातु की किसी चीज़ को पीटा जाए तो उसमें कम्पन होने लगता है। उस कम्पन से ही ध्वनि का जन्म होता है, जिसे एक संवेदन के रूप में कान ग्रहण कर लेते हैं, परन्तु प्रत्येक कम्पन को कान नहीं सुन सकते। कम्पनों की प्रति सैकण्ड उत्पन्न होने वाली निश्चित संख्या ही ध्वनि के रूप में सुनाई पड़ सकती है। इसी को श्रव्यता की सीमा (Limit of Audibility) कहते हैं। इस सीमा के अंदर कम्पन करने वाली वस्तु को प्रति सैकण्ड २० कम्पन से कम अथवा २० हजार कम्पन से अधिक नहीं करने चाहिए। अर्थात्, कान द्वारा ध्वनि का संवेदन ग्रहण करने के लिए यह जरूरी है कि कम्पन करने वाली वस्तु में प्रति सैकण्ड होने वाले पूर्ण कम्पनों की संख्या २० से कम अथवा २० हजार से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। २० से कम कम्पन होने पर जो तरंगें उत्पन्न होती हैं, उन्हें अवश्राविकी (Infrasonic) कहते हैं और २० हजार से अधिक कम्पन होने पर तरंगें पराश्रव्य (Ultrasonic) कहलाती हैं। इन दोनों प्रकार की तरंगों को कान तो नहीं सुन सकते, परन्तु वैज्ञानिक क्षेत्र में इनका बहुत उपयोग है। जैसे—समुद्र की गहराई ज्ञात करना, छोटे-छोटे कीड़ों को नष्ट करना



इत्यादि। ध्वनि के संचरण के लिए किसी माध्यम का आवश्यकता होती है जिसमें वायु प्रदान है, परन्तु ध्वनि प्रकाश की तरह गैसों, द्रवों और ठोसों को भी माध्यम बना सकती है, इसलिए वह तार, पानी या गैस इत्यादि माध्यमों से भी सुनी जा सकती है।

### आवर्त-गति (Periodic Motion)

कोई गतिमान वस्तु जब एक निश्चित समय के बाद अपनी पूर्व-अवस्था ग्रहण कर लेती है तो वह आवर्त-गति कहलाती है, जैसे किसी वृत्त के ऊपर घूमता हुआ कण, सूर्य के चारों ओर पृथ्वी का परिक्रमा करना अथवा इलेक्ट्रॉन का नाभिक के चारों ओर घूर्णन गति करना। आवर्त-गति की सरलतम गति को सरल आवर्त-गति कहते हैं।

### सरल आवर्त-गति (Simple Harmonic Motion)

सरल आवर्त-गति को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

- (१) रैखिक सरल आवर्त-गति (Linear Simple Harmonic Motion)
- (२) कोणीय सरल आवर्त-गति (Angular Simple Harmonic Motion)

#### रैखिक सरल आवर्त-गति की विशेषताएँ

(१) इस गति में गतिमान वस्तु अपनी मध्यमान स्थिति के दोनों ओर सरल रेखा में गति करती है।

(२) गति करती हुई वस्तु अपनी मध्यमान स्थिति से दोनों ओर बराबर दूरी तय करने में बराबर का समय लगाती है, अर्थात् निश्चित समय के बाद वस्तु अपनी पूर्व-अवस्था में आ जाती है।

(३) गतिमान वस्तु के त्वरण (Acceleration) का परिणाम मध्यमान स्थिति से वस्तु के विस्थापन के समानुपाती होता है और त्वरण की दिशा मध्यमान स्थिति की ओर संकेत करती है, जैसे कमानी से लटकी हुई वस्तु की ऊर्ध्व वांछर दिशा में गति, पानी में तैरती वस्तु को ऊपर से दबाने पर उसका गतिशील होना तथा स्प्रिंग से लटकी वस्तु को खींचकर छोड़ देने पर उसका गतिशील होना आदि।

#### कोणीय सरल आवर्त-गति की विशेषताएँ

(१) इस गति में गतिमान वस्तु अपनी मध्यमान स्थिति के दोनों ओर वृत्ताकार मार्ग में गति करती है।

(२) गति करती हुई वस्तु अपनी मध्यमान स्थिति से दोनों ओर बराबर कोण बनाने में बराबर का समय लेती है, अर्थात् निश्चित समय के बाद वस्तु अपनी पूर्व-अवस्था में आ जाती है।

(३) गतिमान वस्तु के कोणीय त्वरण का परिमाण मध्यमान स्थिति से वस्तु के द्वारा बनाए हुए कोण के समानुपाती होता है तथा त्वरण की दिशा मध्यमान स्थिति की ओर संकेत करती है।



## ध्वनि-संचार (Propagation)

ध्वनि का एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना ध्वनि-संचरण कहलाता है; जैसे टेलीफोन, रेडियो इत्यादि। इन क्रियाओं में माइक्रोफोन तथा लाउड-स्पीकर का महत्वपूर्ण स्थान है। माइक्रोफोन ऐसा यन्त्र है जो ध्वनि-तरंगों को परिवर्ती विद्युतधारा में बदल देता है। इसके विपरीत, लाउड-स्पीकर परिवर्ती विद्युतधारा को तीव्र ध्वनि-तरंगों में बदल देता है। जब ध्वनि को कहीं दूर भेजना होता है तो उसे माइक्रोफोन द्वारा विद्युतधारा में बदल दिया जाता है, जिसके अन्तिम छोर पर लाउड-स्पीकर द्वारा उन विद्युतधाराओं को पुनः ध्वनि में बदलकर उस ध्वनि का प्रक्षेपण कर दिया जाता है। इस प्रकार कोई भी नाद या शब्द अपने असली स्वरूप में सुरक्षित रहता हुआ श्रोता तक पहुँच जाता है।

इसी आधार पर रिकॉर्डिंग-स्टूडियो में गीत या भाषण की रिकॉर्डिंग करके मनचाही चीजों को पुनः विद्युतधारा में बदलकर तार, टेप सैल्युलाइड रिकॉर्ड या डिस्क रिकॉर्ड पर सुरक्षित रख लिया जाता है और आवश्यकता होने पर उन्हें फिर से प्रसारित करके अर्थात् विद्युतधाराओं को ध्वनि में परिवर्तित करके इच्छित समय और स्थान पर सुन लिया जाता है।

### माइक्रोफोन और लाउड-स्पीकर को कार्य-प्रणाली

जब कोई व्यक्ति माइक्रोफोन के समक्ष बोलता है तो उसके पटल [तनु पट] पर ध्वनि-तरंगें गिरने लगती हैं, जिससे पटल में कंपन उत्पन्न होने लगता है और उसके अंदर तारों के बेलन (Coil) में चुंबकीय प्रक्रिया होने लगती है, इससे परिवर्ती विद्युतधारा बहने लगती है जो ट्रांसफॉर्मर में पहुँचकर ऊँचे विभव (High Voltage) के रूप में परिवर्तित हो जाती है, जिसे प्रवर्धक (Amplifier) के द्वारा लाउड-स्पीकर में भेज दिया जाता है।

लाउड-स्पीकर माइक्रोफोन से उपलब्ध एवं प्रवर्धित धारा को प्रवर्धक के माध्यम से तीव्र ध्वनि के रूप में परिवर्तित कर देता है। इस प्रकार प्रसारित ध्वनि वलशाली ध्वनि के रूप में सुनाई पड़ने लगती है, जिसे आवश्यकतानुसार Volume Control के द्वारा कम-ज्यादा किया जा सकता है।

लाउड-स्पीकर की कार्यप्रणाली के सिद्धान्त का आधार यह है कि जब चुंबकीय क्षेत्र में रखे किसी चालक में विद्युतधारा प्रवाहित की जाती है तो चालक पर एक बल कार्य करने लगता है। यदि चालक गति करने के लिए स्वतंत्र हो तो वह बल की दिशा में गति करने लगता है।

जब माइक्रोफोन से प्राप्त प्रवर्धित विद्युतधारा लाउड-स्पीकर में प्रवाहित होती है, तो उसकी कुण्डली (Coil) के प्रत्येक बिंदु पर एक बल कार्य करने लगता है। चूँकि कुण्डली में बहने वाली धारा परिवर्ती होती है, अतः कुण्डली पर कार्य करने वाला बल भी परिवर्ती होता है। इसके फलस्वरूप लाउड-स्पीकर की कुण्डली तथा



उसके साथ कागज का शंकु (Cone) भी अक्ष की दिशा में आगे-पीछे कंपन करने लगता है चूँकि शंकु (Cone) का आकार काफी बड़ा होता है, अतः वह वायु के बहुत बड़े आयतन को कंपित कर देता है और तीव्र ध्वनि सुनाई देने लगती है।

### उत्पादक वस्तु का कम्पन आयाम

वस्तु जितने अधिक कम्पन आयाम (Amplitude) से कंपित होती है, उतनी ही तीव्र ध्वनि उत्पन्न होती है।

### माध्यम का घनत्व

अधिक घनत्ववाले माध्यम में ध्वनि की तीव्रता अधिक होती है, क्योंकि घनत्व अधिक होने से माध्यम के इकाई आयतन में उपस्थित ऊर्जा का मान अधिक होता है।

### रिकॉर्डिंग पद्धति

आधुनिक काल में ध्वनि को रिकार्ड करने और उसे स्थायी रूप से सुरक्षित रखने के लिए अनेक नये यन्त्रों का आविष्कार हो गया है। इसके साथ-साथ ध्वनि को विस्तारित करने, प्रभावशाली बनाने और परिष्कृत करने के लिए जिन उपकरणों की सहायता ली जाती है, वे सब एक अच्छे रिकॉर्डिंग-स्टूडियो में उपलब्ध रहते हैं, किसी भी वाद्ययंत्र की आवाज को घटाना-बढ़ाना, एक ही इलेक्ट्रॉनिक वाद्य-यंत्र द्वारा अनेक वाद्य-यन्त्रों की ध्वनियाँ उत्पन्न करना, अनेक ध्वनियों को मिश्रित करके एक ही 'टेक' पर इच्छित रिकॉर्डिंग करना, ध्वनि-प्रदूषण को समाप्त करके मूल गीत की रिकॉर्डिंग करना आज मामूली बात है, जो ध्वनि-शास्त्र (Acoustics) के क्षेत्र में आती है। रिकॉर्डिंग-उपकरणों के अतिरिक्त रिकॉर्डिंग-थियेटर की संरचना भी इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, ताकि ध्वनि में किसी भी प्रकार की विस्वरता, अनावश्यक गुंज, अतिरंजित प्रतिध्वनि या निरर्थक कोलाहल न आ पाए और वह अपने नैसर्गिक रूप में संप्रेषित होकर उम्दा रिकॉर्डिंग में सहायक हो सके।

एककोणीय ध्वनि (Mono) और द्विकोणीय ध्वनि (Stereophonic) की रिकॉर्डिंग में बहुत अंतर रहता है, अतः उनके सम्बन्धित उपकरण भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। आजकल (Stereophonic Recording) का प्रचलन बढ़ गया है, ताकि प्राकृतिक रूप में जिस प्रकार मनुष्य के दोनों कान बाह्य ध्वनियों को जितनी दूरी और दिशाओं से ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार बायीं या दायीं ओर से आने वाली रिकॉर्डिंग ध्वनियों को उसी अनुपात में कानों तक संप्रेषित किया जा सके। डिस्क के माध्यम से आज बीस हजार पुस्तकों को ४ इंच की प्लेटनुमा डिस्क पर रिकार्ड करके दीर्घकाल तक सुरक्षित रखा जा सकता है और जब इच्छा हो तब कम्प्यूटर के माध्यम से इच्छित ग्रन्थ का इच्छित पृष्ठ टी० वी० के परदे पर देखा-सुना जा सकता है। यह सब ध्वनि-विज्ञान के उच्चतम विकास और अनुसंधानात्मक प्रक्रिया का परिणाम है।



## संगीत-वाद्य और ध्वनि-तरंग

संगीत सम्बन्धी वाद्यों का वादन करते समय हम देखते हैं कि उस ध्वनि में मधुरता होती है, स्थिरता होती है और एक अपरिवर्तित ध्वनि सुनाई पड़ती है जो हवा की सरसराहट, जूतों की चरमराहट तथा अन्य शोरगुल में नहीं पायी जाती। इस प्रकार की ध्वनि को सुनना कठिन होता है क्योंकि उसमें विविध अन्तराल रहते हैं जबकि वाद्यों से उत्पन्न सांगीतिक ध्वनि को एक निश्चित स्वरूप में कभी भी सुना जा सकता है।

तारत्व अर्थात् पिच (Pitch) प्रबलता (Loudness) और स्वरूप (Quality) इन तीन लक्षणों के द्वारा ध्वनि के गुणों में अन्तर हो जाता है इसीलिए हम एक ही स्वर प्रसारित करनेवाले दो हारमोनियम या दो सितार इत्यादि को पहचान पाते हैं।

### तार वाद्यों का कम्पन

कम्पित समुदायों में एक खिंची हुई डोरी या रज्जु से अधिक महत्वपूर्ण कोई नहीं है। वीणा, सितार, सरोद, इसराज, तथा वायलिन इत्यादि वाद्य यन्त्रों में खिंची हुई डोरी के सिद्धान्तों को ही अपनाया गया। अपने सरल सिद्धान्तों के कारण डोरी का कम्पन स्वर स्वभाव के जटिल प्रश्न का उत्तर देने में सफल हुआ और उसी से आवृत्ति-माप का सरल उपाय निकला। रेशम की डोरी के अनेक वाद्य आज भी संसार में प्रचलित हैं जिनकी ध्वनि में लोहे के तार वाले वाद्यों की अपेक्षा अधिक मुगठित, नियन्त्रित एवं मधुर ध्वनि निकलती है।

डोरी और तार का कम्पन दो मुख्य प्रकारों का हो सकता है। १. अनुदैर्घ्य  
२. अनुप्रस्थ।

अनुदैर्घ्य तरंग—जब किसी कपड़े या चमड़े के टुकड़े पर राल की महीन बुकनी छिड़क कर उससे किसी धातु की छड़ को तेजी के साथ रगड़ें तो उस छड़ से निकलने वाली ध्वनि के कंपनों को अनुदैर्घ्य तरंग कहते हैं, जो काफी तेज सुनाई पड़ती है। इसराज या वायलिन बजाने में जब कमानी या गज आड़ा न चलकर तिरछा हो जाता है और तार की लम्बाई की दिशा में रगड़ा देता है तो उससे भी अनुदैर्घ्य तरंग का ध्वनि निकलती है।



अनुप्रस्थ तरंग—किसी धातु के डण्डे या छड़ में उसके दोनों सिरों के नीचे दो तिकोनी गिट्टियाँ रख दें और छड़ के बीच में काठ की हथौड़ी से ठोककर (टंकोर) मारें तो छड़ से निकलने वाली तरंग को अनुप्रस्थ तरंग (कंपन) कहते हैं। इस कंपन (तरंग) की आवृत्ति, मामूली तौर पर, छड़ के अनुदैर्घ्य कंपन की आवृत्तियों से बहुत ही कम होती है।

प्रायः अनुप्रस्थ कंपनों का ही अध्ययन किया जाता है। क्योंकि डोरी के कण लव रूप से विस्थापित होते हैं जिसके कारण खिंचाव में परिवर्तन होता है। मरसेन्ने (Mersenne) ने डोरी के कंपनों को नियमबद्ध करने की चेष्टा की जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने ३ नियमों का प्रतिपादन किया—

(क) किसी डोरी विशेष के लिए, एक से तनाव पर, आवर्तकाल डोरी की लम्बाई का अनुपाती होता है।

(ख) एक विशेष लम्बाई के लिए आवर्तकाल का वर्ग खिंचाव का प्रतिलोमानुपाती होता है।

(ग) समान खिंचाव और समान लम्बाई की डोरियों का आवर्तकाल उनके घनत्व के वर्गमूल का अनुपाती होता है।

इन नियमों के कारण ही किसी भी डोरी या तार वाले यन्त्र में भिन्न-भिन्न स्वर उत्पन्न करने के लिए उस तार की लम्बाई घटाना-बढ़ाना पर्याप्त होता है और स्वर मिलने के लिए तार की लम्बाई को स्थिर रखते हुए उसके तनाव में परिवर्तन कर देना पर्याप्त होता है। डोरी कंपन के नियम को सुरमापी यन्त्र (Sonometer) द्वारा आसानी से जाँचा जा सकता है। डोरी और तार के लचीलेपन और दृढ़ता के कारण आवर्तकाल पर प्रभाव पड़ता है। तार की दृढ़ता का प्रभाव उसके अधिक उच्च सन्नादी स्वरों के कंपन पर बहुत अधिक पड़ता है।

तार-कंपन वाले वाद्य यंत्रों को ३ प्रकार में बाँट सकते हैं जो उन्हें कम्पित करने की विधि पर निर्भर करता है—

(क) गज के घर्षण द्वारा उत्तेजित।

(ख) नख उँगुली, चुटकी, जवा या मिज़राब से टंकोर देकर।

(ग) गद्दीदार हथौड़े के प्रहार द्वारा।

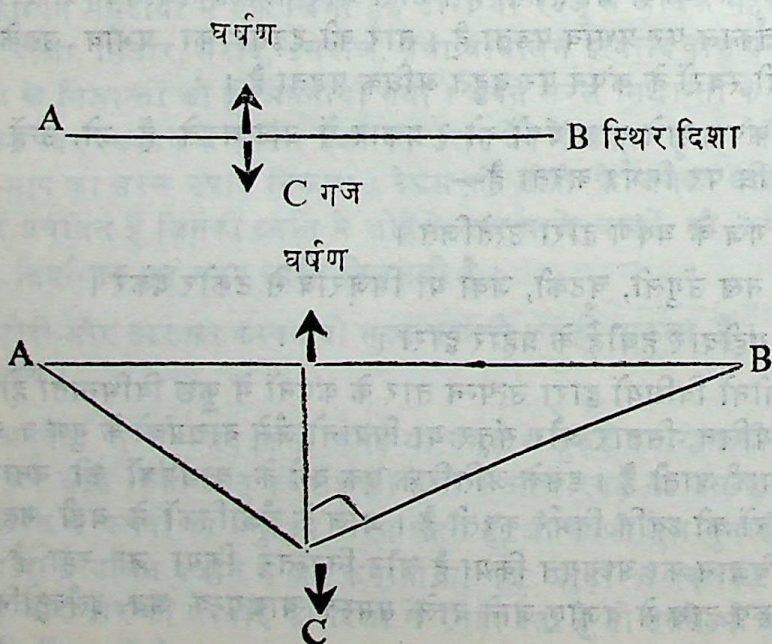
इन तीनों विधियों द्वारा उत्पन्न तार के कंपनों में कुछ विभिन्नता होती है। इसीलिए वायलिन, सितार और संतूर या पियानो जैसे वाद्ययंत्रों के गुण व स्वभावों में भिन्नता पाई जाती है। इसके अतिरिक्त एक वर्ग के वाद्ययंत्रों की बनावट पर भी उनके स्वरों की ध्वनि निर्भर करती है। आज के वैज्ञानिकों ने बड़ी गहराई के साथ ध्वनि विज्ञान का अध्ययन किया है और निरन्तर किया जा रहा है जिसके परिणाम स्वरूप हाथ से बजाए जाने वाले समस्त वाद्ययन्त्र अब इलेक्ट्रॉनिक्स में परिवर्तित हो गए हैं।



आवृत्ति : किसी वस्तु की आवृत्ति उसकी लम्बाई, मोटाई, घनत्व, स्थिति-स्थापकत्व (जो वस्तु दबाने से जितना कम दबती है या मोड़ने से जितना कम मुड़ती है, वह उतनी ही अधिक स्थिति-स्थापक मानी जाती है) तथा आकार इत्यादि अनेक भौतिक गुणों पर निर्भर करती है। जब तक इन गुणों में कोई अन्तर नहीं होता तब तक वस्तु की एक सैक्रिण्ड की कंपन संख्या या आवृत्ति में भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। किसी पीतल के तार की लम्बाई-मोटाई और खिंचाव बराबर एकसा रहे तो उसे छोड़ने पर उसकी प्रति सैक्रिण्ड कंपन-संख्या एक ही निकलेगी।

### वायलिन (बेला) तथा सारंगी की ध्वनि तरंगें

गज घर्षण द्वारा कम्पित होने वाले वाद्ययन्त्रों में वायलिन परिवार के समस्त वाद्ययन्त्र आते हैं, जिनमें सारंगी को हम प्रमुख मान सकते हैं। गज से उत्पन्न ध्वनि तरंगों का प्रथम वैश्लेषिक एवं प्रयोगात्मक अध्ययन हेल्महर्ट्ज़ (Helmholtz) ने किया था। उन्होंने तार के मध्यबिन्दु का लिसाजूस (Lissa Jous) चित्र बनाकर कंपन की आवृत्ति तथा स्वरूप का अध्ययन किया था। जिसके फलस्वरूप उन्हें ज्ञात हुआ कि तार का कंपन असातत्य (Discontinuity) दिखलाता है जो पूरे गज संचालन वाले बिन्दु (Point) पर वेग में उत्पन्न होकर पूरे तार पर फैलता है। आवर्तकाल के एक आंशिक समय तक गज तार को अपने साथ एक ओर खींचता है और उनमें कोई आपेक्षिक वेग नहीं होता तथा गज के रेसिनयुक्त बाल एवं तार का घर्षण अत्यधिक होता है। शुरू में तार का खिंचाव (Tension) घर्षण की दिशा के लम्बरूप होता है परन्तु जैसे-जैसे तार गज के साथ खिंचता है तो दोनों बलों का कोण  $90^\circ$  डिग्री से कम होता चला जाता है। जैसे कि नीचे के चित्र में दिखाया गया है।





ऋणात्मक और धनात्मक ध्वनि तरंगों एवं असातत्य की संख्या ही यह तय करती है कि आवृत्ति क्या है अथवा कौन से आंशिक स्वर उत्पन्न होने हैं ? इसी आधार पर तार का कम्पन घोषित किया जाता है। जब गजवाले वाद्यों में गज का दाब बढ़ाया जाए या वेग कम किया जाए तो तार का वह अल्प समय जिसमें वह गज के साथ सम्पर्क रखता है, बढ़ जाता है। अतएव कंपन के स्वरूप में किंचित परिवर्तन हो जाता है। यदि गज द्वारा उत्तेजित बिन्दु प्रबल संवादी स्वर के निस्पंद के समीप है तो स्पष्ट है कि उसके द्वारा उक्त स्वरक को उत्पन्न करने के लिए अधिक दाब की आवश्यकता पड़ेगी, जबकि प्रस्पंद पर कम दाब द्वारा ही यह कार्य किया जा सकता है।

रमण ने प्रयोगों द्वारा ज्ञात किया कि अधिक दाब द्वारा मूल स्वर प्राप्त हो सकता जाता है, यदि गज को तार के छोर पर चलाया जाए और जैसे-जैसे गज इस छोर से दूर किया जाये तो दाब का मान दूरी के वर्ग के प्रतिलोमानुपाती रूप में घटता जाता है। इसीलिए सारंगी या वाँयलिन-वादन यह आदेश देते हैं कि गज की गति बढ़ाने पर ध्वनि की तीव्रता बढ़ती है और गज को कुछ सेतु, घुड़च या ब्रिज (Bridge) के समीप खिसकाना भी जरूरी होता है। गज की चौड़ाई अधिक होने से उच्च आवृत्ति के कुछ संवादी स्वरों का उत्पादन रुक जाता है क्योंकि जिन कंपनों का निस्पंद गज के नीचे पड़ेगा वे लुप्त हो जाएंगे। यदि गज ब्रिज के निकट है तब स्वर प्रथम छह संवादी स्वरों में अधिक तीव्रता रखता है और उससे एक विशेष प्रभाव (Sulphonticello) उत्पन्न होता है।

### वीणा, सितार या तानपूरा की ध्वनि तरंगें

वायु के कम्पन, तार के जैसे सरल नहीं होते, अतः तार वाद्यों के ढाँचे के अनुसार तार के त्रिकम्पन स्वर में माधुर्य इत्यादि गुणों को प्रकट करते हैं। वाद्य की लकड़ी और उसकी वार्निश तक से त्रिकम्पित स्वर प्रभावित होता है।

जब किसी वाद्य यन्त्र के तार की आवृत्ति उसके अनुनादक लकड़ी के ढाँचे या अन्य किसी कम्पन करने योग्य अंग की स्वाभाविक आवृत्ति के समान होती है तभी अनुनाद उत्पन्न होता है। कभी-कभी, इस अनुनाद की स्थिति में ध्वनि की तीव्रता संगीतज्ञ के नियन्त्रण से बाहर हो जाती है तो शोर जैसा स्वर सुनाई पड़ता है, उसे भेड़िया-स्वर (Wolf Note) कहते हैं। भेड़िया-स्वर की एक विशेषता है कि वह मूल स्वर पर कभी न सुनाई देकर, हमेशा उच्च आवृत्ति पर ही सुनाई देता है। यदि तार को उँगली से खींचकर अनियन्त्रित रूप में छोड़ा जाय, तब भी भेड़िया-स्वर उत्पन्न होता है। वाद्य के भार और आकृति पर भी स्वर का परिवर्तन निर्भर करता है, इसी लिए सितार, वीणा, तानपूरा इत्यादि तंतुवाद्यों को बनाते समय बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है। ध्वनि-गुण के कारण ही अमुक-अमुक स्थान के वाद्य लोकप्रिय होते हैं, जैसे-कलकत्ता के पितार, हारमोनियम और तबला महाराष्ट्र या अन्य किसी प्रदेश



के वाद्यों से श्रेष्ठ माने जाते हैं। जिस प्रकार वाद्य का बजाना एक कला है, उसी तरह उसका निर्माण भी एक कला है।

उँगली से तारों को झंकृत करने पर, ध्वनि उत्पन्न करने वाले वाद्य यन्त्रों की श्रेणी में तानपूरा प्रमुख है। यह गायक की संगत अथवा वादक के वाद्य को मूल गूँज प्रदान करने वाले वाद्यों में अग्रणी है। सितार और तानपूरा की घुड़च पर जहाँ तार स्पर्श करते हैं, वहाँ तक तार की लम्बाई मानी जाती है। घुड़च पर घिसकर ऐसा स्थान तैयार किया जाता है, जहाँ तार के कम्पन टकराकर मुख्य कम्पनों की तीव्रता को कम कर देते हैं तथा विषम सन्नादी को प्रबलता प्रदान करते हैं। यह क्रिया "जवारी खुलना" कहलाती है। जवारी खुलने से स्वर की मात्रा और मिठास बढ़ जाती है।

टंकोर ( छड़ी या हथौड़ा ) से बजने वाले वाद्यों के ( संतूर इत्यादि ) ध्वनि कम्पनों के बारे में निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं :

१. मूल स्वर का आयाम, भारी हथौड़े से तथा एक छोर के समीप प्रहार करने पर अधिक होता है।

२. यह आयाम परिवर्तनशील है। जब हथौड़ा मध्य की ओर प्रहार करता है, तो अधिकतम और न्यूनतम आयाम के बिन्दु प्राप्त होते हैं। हल्के हथौड़े से कम्पनों में कम आयाम परिवर्तित होते हैं, जिनमें एक अधिकतम तथा दो न्यूनतम कम्पन आयाम बिन्दु होते हैं।

३. कड़े अथवा मुलायम हथौड़े का प्रभाव समान होता है। केवल तार के जितने अंश पर हथौड़े का सम्पर्क होता है, उसी से कम्पन का स्वरूप निश्चित होता है।

४. प्यानो वाद्य यन्त्र के तारों पर, उपर्युक्त सिद्धान्त बना है, जिनको आघात के द्वारा  $1/7$  से  $1/9$  दूरी पर प्रहार करके उत्तेजित किया जाता है। इसमें तार सप्तक के तारों के लिए नुकीले ( हथौड़े ) आघात का प्रयोग किया जाता है। यह धारणा की गई है कि जब हथौड़े का आघात तार के प्रत्यानन बल के समान हो जाता है, तब तार की गति रुक जाती है और हथौड़ा उस पर से हट जाता है। चूटकी से तार की विस्थापित दशा को स्थितिज तथा हथौड़े वाली दशा को गतिज कहा गया है। परावर्तन की क्रिया को समझने के लिए परिणामों को प्रगामी तरंग समीकरण द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है।

तार की झंकार द्वारा उत्पन्न कम्पनों का अध्ययन करने के लिए रले ( Rayleigh ) ने एक सरल यन्त्र बनाया था। जिसमें काँच की नली का एक छोर पतला ( १-२ मिलीमीटर व्यास वाला ) कर दिया जाता है तथा एक कार्क में नली फँसाकर उस पर वृत्ताकार तार लगा दिया जाता है। एक मिलीमीटर व्यास वाला



लोहे या पीतल का तार अधिक उपयोगी रहता है। इसके छोर पर रबर की नली से कान सटा दिया जाय तो वायु द्वारा उत्पन्न ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है।

यह सिद्ध हो चुका है कि ध्वनि का उत्पादन तार के किसी भी अंग पर वायु का झोंका पड़ने से हो सकता है। वायु के वेग को एक नियत मान पर तार का कंपन उसकी लम्बाई के अनुसार मूल स्वरों को उत्पन्न करता है।

## सुषिर वाद्य यन्त्र

सुषिर वाद्य यन्त्रों के अन्तर्गत हवा से बजने वाले वाद्य आते हैं जैसे-शहनाई बाँसुरी, हारमोनियम इत्यादि।

वायु के झोंके के प्रहार द्वारा पैनी धार की लकड़ी अथवा धातु से निकलती ध्वनि को धार स्वर कहते हैं। यदि पतले छिद्र से वायु की तीव्र धारा निकलकर धार पर पड़े तभी स्वर उत्पन्न होंगे जिसका कारण छिद्र तथा धार के बीच के स्थान पर बनी श्रमिल भँवर हैं। धार या पत्ते के ऊपर तथा नीचे दोनों ओर भँवरें पैदा होती हैं परन्तु उनका स्वभाव विपरीत है। एक में कर्णों की गति प्रदक्षिण (Clock wise) तथा दूसरे में प्रवाह (Anti clock wise) है। दोनों प्रकार की भँवरों के बीच की दूरी बराबर है और दोनों समुदायों में इस दूरी के आधे का अन्तर रहता है।

वायु के प्रवाह के साथ-साथ इन भँवरों का समूह आगे बढ़ता जाता है। कुछ दूर चलकर आगे के भँवर समाप्त हो जाते हैं तथा पीछे नये उत्पन्न होते हैं। जब भँवर धार के पास आती है तब वायु को अपनी ओर चूसकर माध्यम में संघनन उत्पन्न करती है। इस प्रकार धार के एक ओर संघनन तथा दूसरी ओर विरलन उत्पन्न होता है। इसका प्रभाव हमें ध्वनि के रूप में सुनाई पड़ता है। इन स्वरों का आवर्तकाल एक ही प्रकार के दो क्रमिक भँवरों की दूरी तय करने में लगा समय होगा।

धार स्वरों का पूर्ण अध्ययन मेसन (Masson) तथा सौण्ड हास (Sond Hauss) ने १८५३ ई० में किया था। जिन पर कोनिंग (Koning), क्रूगर (Kruger), वेन्सन (Venson) तथा रिचर्डसन (Richardson) ने और अधिक महत्वपूर्ण प्रकाश डाला। सन् १९३७ में ब्राउन (Brown) ने जो अनुसंधान किये वे अत्यन्त मान्य तथा प्रामाणिक हैं।

धार स्वरों को बदलने के लिए कलाकार को मुँह की ऊँचाई कमया अधिक करनी पड़ती है। इसी प्रकार वायु के निश्चित दबाव के लिए संगीतज्ञ को मुँह खोलने और बन्द करने पर नियन्त्रण रखना पड़ता है। बाँसुरी तथा शहनाई इत्यादि वाद्यों में जैसे-जैसे फूँक या वायु का दाब बढ़ता जाता है तो ध्वनि का तारत्व भी बढ़ता जाता है। अधिक दाब बढ़ने पर कम्पनों की आवृत्ति एक सप्तक बढ़कर मूल स्वर के तार सप्तकीय स्वर को प्रस्तुत करने लगती है। पीतल की बाँसुरी की अपेक्षा लकड़ी की बाँसुरी की ध्वनि अधिक मृदुल होती है। हारमोनियम के रीड या



पट्टिका की स्थिति मुख से अलग रहती है क्योंकि रीड का मुख तभी वन्द होता है जब वायु का झोंका अधिक दाब पर रीड को धक्का दे कर विस्थापित करता है। इस दशा में रीड झुकाव के कारण स्प्रिंग की भाँति अपनी पूर्ण स्थिति में लौटता है और वायु का झोंका उसे पुनः लौटाता है। इस प्रकार रीड तथा वायु-स्तम्भ का कम्पन अनुनाद की दशा में तीव्र ध्वनि उत्पन्न करता है। रीड का अनुप्रस्थ-कम्पन वायु में अनुदैर्घ्य-कम्पन उत्पन्न करता है। अन्य सुषिर वाद्यों के कम्पनों का पोषण बाँसुरी के सिद्धान्त पर ही होता है।

इस प्रकार विभिन्न वाद्यों में ध्वनि तरंग अपने स्वरूप, बल, माध्यम और स्थिति के अनुसार उत्पन्न और नष्ट होकर विविध वाद्य यन्त्रों की प्रकृति के अनुसार स्वर उत्पन्न करती हैं और उनसे अलग-अलग प्रकार के मधुर नादों की उत्पत्ति होती है। नाद की जाति और पूर्व संस्कार के आधार पर हम वाद्ययन्त्रों को भी आसानी से पहचान लेते हैं।

इस प्रकार विभिन्न वाद्यों में ध्वनि तरंग अपने स्वरूप, बल, माध्यम और स्थिति के अनुसार उत्पन्न और नष्ट होकर विविध वाद्य यन्त्रों की प्रकृति के अनुसार स्वर उत्पन्न करती हैं और उनसे अलग-अलग प्रकार के मधुर नादों की उत्पत्ति होती है। नाद की जाति और पूर्व संस्कार के आधार पर हम वाद्ययन्त्रों को भी आसानी से पहचान लेते हैं।

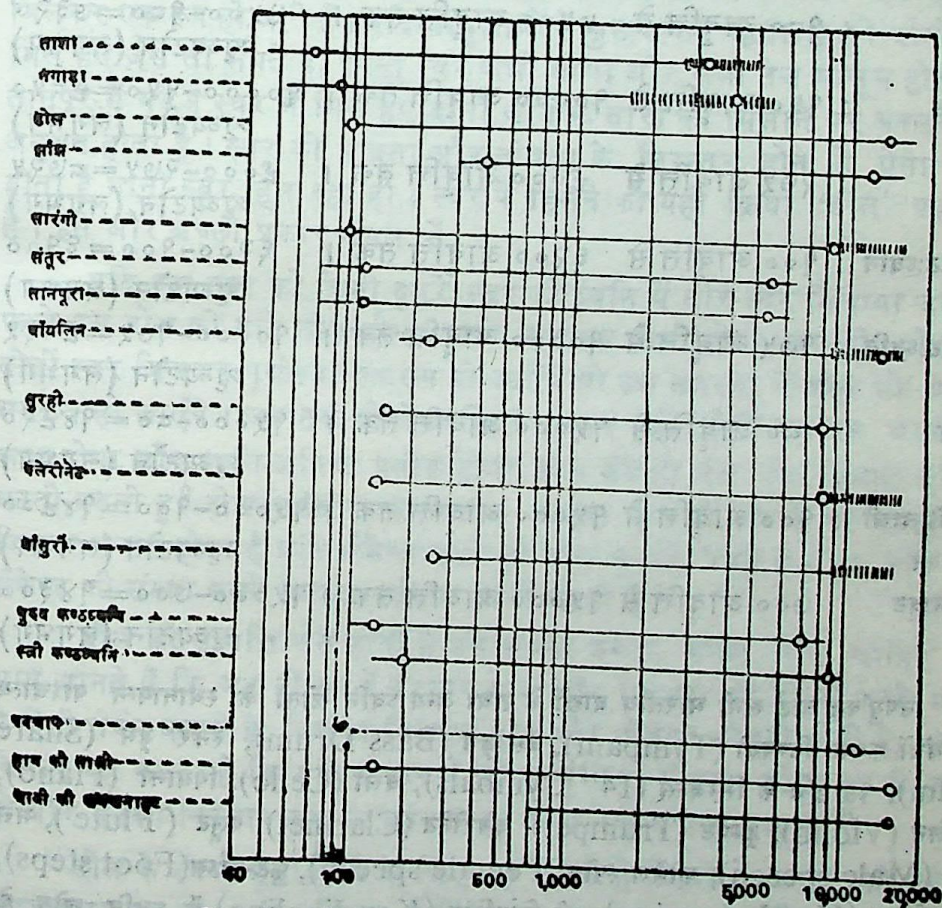
इस प्रकार विभिन्न वाद्यों में ध्वनि तरंग अपने स्वरूप, बल, माध्यम और स्थिति के अनुसार उत्पन्न और नष्ट होकर विविध वाद्य यन्त्रों की प्रकृति के अनुसार स्वर उत्पन्न करती हैं और उनसे अलग-अलग प्रकार के मधुर नादों की उत्पत्ति होती है। नाद की जाति और पूर्व संस्कार के आधार पर हम वाद्ययन्त्रों को भी आसानी से पहचान लेते हैं।



$855P = 0.3 - 0.05P$  : एक तीजा 0.05P से तीजा 0.3 :  
 (तमाम) तडिपु  
 $0.80P = 0.0 - 0.05P$  : एक तीजा 0.05P से तीजा 0.0 :  
 (तमाम) तडिपु  
 $0.95P = 0.0 - 0.05P$  : एक तीजा 0.05P से तीजा 0.0 :  
 (तमाम) तडिपु  
 $0.00PP = 0.05 - 0.05P$  : एक तीजा 0.05P से तीजा 0.05 :  
 (तमाम) तडिपु

## वाद्ययंत्रों की कंपनसंख्या

प्रत्येक वाद्य-स्वर की एक आवृत्ति में कुछ निश्चित कंपन संख्याएँ होती हैं। यहाँ कुछ प्रचलित वाद्ययंत्रों की निश्चित कंपन संख्याओं को दिखाने वाला चार्ट दिया जा रहा है जिसमें प्रति सैकण्ड के हिसाब से ८० प्रतिशत प्रामाणिकता के आधार पर प्रदर्शित किया गया है। कानों से सुनाई देने वाले ध्वनि-क्षेत्र को आधार मानकर कंपन संख्याओं को लिपिबद्ध किया गया है।



वास्तविक स्वर क्षेत्र

० इस बिन्दु पर कंपन संख्या पर टोनल क्वालिटी समाप्त हो गयी है।

संगीत विचार



ताशा	: ६७ आवृत्ति से १३०० आवृत्ति तक ।	१३००-६७=१२३३ श्रव्यटोन (लगभग)
नगाड़ा	: ७० आवृत्ति से ११०० आवृत्ति तक ।	११००-७०=१०३० श्रव्यटोन (लगभग)
ढोल	: ८० आवृत्ति से १५००० आवृत्ति तक ।	१५०००-८०=१४९२० श्रव्यटोन (लगभग)
सांझ	: ३०० आवृत्ति से १२००० आवृत्ति तक ।	१२०००-३००=११७०० श्रव्यटोन (लगभग)
सारंगी	: ७५ आवृत्ति से २००० आवृत्ति तक ।	२०००-७५=१९२५ श्रव्यटोन (लगभग)
संतूर	: ८० आवृत्ति से ५५०० आवृत्ति तक ।	५५००-८०=५४२० श्रव्यटोन (लगभग)
तानपूरा	: ८० आवृत्ति से ५५०० आवृत्ति तक ।	५५००-८०=५४२० श्रव्यटोन (लगभग)
बाँयलिन	: २०० आवृत्ति से २००० आवृत्ति तक ।	२०००-२००=१८०० श्रव्यटोन (लगभग)
तुरही	: १८० आवृत्ति से ७५०० आवृत्ति तक ।	७५००-१८०=७३२० श्रव्यटोन (लगभग)
क्लेरीनेट	: १५० आवृत्ति से १०००० आवृत्ति तक ।	१००००-१५०=९९८५० श्रव्यटोन (लगभग)
बाँसुरी	: २७५ आवृत्ति से २००० आवृत्ति तक ।	२०००-२७५=१७२५ श्रव्यटोन (लगभग)
पुरुष कंठध्वनि	: १०० आवृत्ति से ६२०० आवृत्ति तक ।	६२००-१००=६१०० श्रव्यटोन (लगभग)
स्त्री कंठध्वनि	: १७५ आवृत्ति से १०००० आवृत्ति तक ।	१००००-१७५=९९८२५ श्रव्यटोन (लगभग)
पदचाप	: ८० आवृत्ति से १५००० आवृत्ति तक ।	१५०००-८०=१४९२० श्रव्यटोन (लगभग)
हाथ की ताली	: १०० आवृत्ति से १५००० आवृत्ति तक ।	१५०००-१००=१४९०० श्रव्यटोन (लगभग)
चाबी की		
खनखनाहट	: ७०० आवृत्ति से १५००० आवृत्ति तक ।	१५०००-७००=१४३०० श्रव्यटोन (लगभग)

उपयुक्त चार्ट सभी भारतीय वाद्यों के तथा अन्य ध्वनि स्रोतों के स्थानापन्न पाश्चात्य वाद्य यंत्रों क्रमशः टिम्पनी (Tympani), बेस ड्रम (Bass Drum), स्नैर ड्रम (Snare Drum), १४ इंच के सिम्बल्स (14" Cymbals), चेलो (Cello), पियानो (Piano), बाँयलिन (Violin), ट्रम्पेट (Trumpet), क्लेरीनेट (Clarinet), फ्लूट (Flute), मेल स्पीच (Male speech), फीमेल स्पीच (Female speech), फुट-स्टेप्स (Foot steps), हैंड क्लैपिंग (Hand clapping), की जिंगलिंग (Key Jingling) के ध्वनि स्रोत के प्रामाणिक आधार पर प्रतिबिम्बित किया गया है ।



## डोल (थरथराहट) की उत्पत्ति और स्वरों पर उनका प्रभाव

डोलन या दोलन को अंग्रेजी में ऑसीलेशन (Oscillations) कहते हैं। कानों को स्वरों के अलग अस्तित्व का बोध तभी होता है, जबकि उनकी आवृत्तियों में काफी अन्तर होता है। जब आवृत्तियाँ मिल जाती हैं तो दोनों स्वर एक-दूसरे में मिलकर एक रूप हो जाते हैं। यदि आवृत्तियों में कुछ अन्तर रहता है तो दोनों स्वर मिले हुए जैसे तो लगते हैं, परन्तु स्वर कभी धीमा और कभी तेज मालूम होता है। तानपूरे में षड्ज स्वर में मिले हुए दोनों जोड़ों के तारों को मिलाने पर अक्सर ऐसा अनुभव होता है। स्वर की मन्दता और तीव्रता के निरन्तर होने से ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वर हिल रहा हो। स्वर के हिलने की यही क्रिया 'डोल' कहलाती है। इसे और अच्छी प्रकार समझ लें।

यदि एक स्वर को किसी दूसरे स्वर की ध्वनि में धीरे-धीरे मिलाया जाए तो पहले इस डोल की गति तीव्र होगी, उसके बाद वह धीमी होती जाएगी और जब दोनों स्वर मिलकर पूर्णतया एकरूप हो जाएँगे तो उस अवस्था में डोल भी एकदम समाप्त हो जाएँगे। जब तक दोनों ध्वनियाँ एकरूप नहीं होंगी तब तक कानों को कष्ट होगा और ध्वनि अनिष्ट प्रतीत होगी, ठीक वैसे ही जैसे कि हिलती हुई या घटती-बढ़ती हुई रोशनी देखना कष्टदायक लगता है। दो स्वरों की आवृत्ति में जितना अन्तर होता है प्रति सैकेण्ड उतने ही डोल सुनाई पड़ते हैं। २३ डोल प्रति सैकेण्ड की संख्या सबसे ज्यादा अनिष्ट मानी जाती है।

डोल की उत्पत्ति कैसे होती है इसे अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिए। यह आप जानते हैं कि जब दो तरंगें बराबर मान और विस्तार की हों तो उनके संयोग से ऐसी तरंग बनती है, जिसका विस्तार दूना और तीव्रता चौगुनी होती है, लेकिन विचार यह करना है कि यदि दो तरंगों की आवृत्तियों में बहुत थोड़ा सा ही अन्तर हो और उनका विस्तार लगभग बराबर हो तो परिणाम क्या आएगा ?

डोल के स्पष्ट सुनाई देने के लिए यह जरूरी है कि दोनों स्वरों की तीव्रता लगभग बराबर हो, तभी तीव्रता पूरी तरह कम-ज्यादा या गिर-उठ सकेगी। डोल को कानों का अनुभव या विकार समझने की भूल नहीं करनी चाहिए।



दो स्वरों की आवृत्तियों में जितना अन्तर होगा एक सक्लिण्ड में उतने ही डोल सुनाई पड़ेंगे। तानपूरा मिलाने वालों को डोल का अनुभव सदैव होता रहता है। डोल की अनुभूति से ही स्वर सच्चे रूप में मिलते हैं। आपने देखा होगा कि कभी-कभी तबला-वादक जब किसी एक निश्चित स्वर पर तबला मिलाता है तो स्वर के नजदीक पहुँचकर भी डोल के उत्थान-पतन के कारण समझ नहीं पाता कि स्वर पूरी तरह मिला या नहीं और बार-बार संशय की स्थिति में वह कभी तबले को अल्प रूप में चढ़ाता है या उतारता है। यही स्थिति तार वाद्य-वादकों के साथ होती है। डोल के कारण कभी-कभी कानों पर अविश्वास होने लगता है। ऐसी स्थिति में संगीतकार सुर को बहुत नीचे उतारकर या अधिक ऊँचा चढ़ाकर फिर से इच्छित स्वर को धीरे-धीरे मिलाते हैं और तब उनका वाद्य शुद्ध रूप में मिल पाना है। जैसे ही स्वर में स्वर मिला तो वस वहीं डोल का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है।

जब दो स्वरों की आवृत्तियों में ज्यादा अन्तर होता है तो प्रति सक्लिण्ड डोलों की गिनती इतनी बड़ जाती है कि कान द्वारा उन्हें नहीं पकड़ा जा सकता। लेकिन यदि दोनों स्वर काफी तीव्र हों तो एक तीसरा स्वर सुनाई पड़ता है जिसकी आवृत्ति दोनों स्वरों के अन्तर के बराबर होती है; जैसे—यदि एक स्वर की आवृत्ति ३०० हो और दूसरे स्वर की आवृत्ति २०० हो तो एक तीसरा स्वर भी सुनाई पड़ेगा और उसकी आवृत्ति १०० होगी, इन्हें 'शैषिक स्वर' कहते हैं। इन स्वरों का पता सर्व प्रथम डीसोजी ने और तत्पश्चात् टार्टिनो ने लगाया था। डोल की तरह शैषिक स्वर भी दो स्वरों के अन्तर पर निर्भर करता है। अतः पहले वैज्ञानिकों की धारणा यह थी कि जब डोल की गिनती बहुत बड़ जाती है तो वही स्वर का रूप ले लेता है लेकिन बाद में हेल्महोज ने ऐसे स्वर का भी पता लगाया, जिसकी आवृत्ति दोनों स्वरों के जोड़ के बराबर होती है। इसे यौगिक स्वर कहते हैं। जैसे ऊपर के उदाहरण में यदि हम देखें तो यौगिक स्वर ५०० आवृत्तियों का होगा। ऐसा स्वर कठिनाई से सुनाई पड़ता है। शैषिक और यौगिक इन दोनों ही प्रकार के स्वरों के लिए 'परिणामी स्वर' का व्यवहार होता है। जब परिणामी स्वर दोनों ही प्रकार का होता है तो 'डोल' इसका कारण नहीं हो सकता। इसलिए हेल्महोज ने एक नए सिद्धान्त द्वारा इन स्वरों के अस्तित्व को सिद्ध किया। उसने बताया कि जब दो तीव्र स्वर एक साथ माध्यम के अणुओं पर पड़ते हैं तो उनके कम्पन के ढंग में विषमता आ जाती है। गणित की कसौटी पर कसकर उसने यह परिणाम भी निकाला कि इन दोनों स्वरों के अतिरिक्त शैषिक और यौगिक स्वर माध्यम में स्वतः ही पैदा हो जाते हैं। अनुनादक के द्वारा उसने यह भी सिद्ध कर दिया कि ये दोनों स्वर डोल की भाँति वास्तविक हैं, न कि कानों का कोई विकार। हेल्महोज के सिद्धान्तानुसार, शैषिक और यौगिक स्वरों की उत्पत्ति के लिए स्वरों का तीव्र होना आवश्यक था, परन्तु बाद में यह पता लगा कि सामान्य तीव्रता पर भी परिणामी स्वर सुनाई पड़ते हैं और पूरी जाँच पर यह निष्कर्ष निकला कि सामान्य से तीव्रता से उत्पन्न परिणामी स्वर कानों में पैदा होते हैं, किसी बाहरी माध्यम में इनका अस्तित्व नहीं होता। ऐसे परिणामी स्वर स्वसंवेद्य हैं।



स्वसंवेद्य और वास्तविक इन दोनों प्रकार के परिणामी स्वरों की व्याख्या करते हुए वाइजमान ने बताया कि अगर किसी वस्तु का कम्पन, आगे और पीछे, दोनों ही दिशाओं में एकसा न हो, जैसे मान लें कि एक ओर विस्तार अधिक हो और दूसरी ओर कम, तो दोनों ही प्रकार के परिणामी स्वर अपने-आप पैदा हो जाएंगे। उसने चमड़े के पर्दे के साथ प्रयोग करके भी यह बात सिद्ध की। कान के पर्दे की बनावट इसी तरह की है क्योंकि इसके एक ओर हवा रहती है और दूसरी ओर हड्डियाँ।

हाल में ही वैज्ञानिकों ने यह बताया कि कान के भीतरी हिस्सों में भी इसी प्रकार की विषम गति होती है। जिसके कारण थोड़ी तीव्रता पर ही कान परिणामी स्वरों को पैदा कर देते हैं परन्तु वायु अणुओं के कम्पन में यह विषमता अधिक तीव्र स्थिति पर ही आती है। इसलिए मामूली तीव्रता पर वायु में परिणामी स्वर पैदा नहीं होते जैसा कि हैल्महोज ने बताया। ये परिणामी स्वर केवल मौलिक स्वरों से ही नहीं अपितु उनके आंशिकों से भी पैदा होते हैं। जैसे ऊपर दिए गए उदाहरण में दूसरे स्वर का दूसरा आंशिक ४०० और पहले स्वर का दूसरा आंशिक ६०० तथा २०० आवृत्तियों का शैषिक और १००० आवृत्तियों का यौगिक-स्वर पैदा करेंगे। ये दोनों क्रमशः मौलिकों के शैषिक और यौगिक के दूसरे आंशिक हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि आंशिकों से उत्पन्न परिणामी स्वर हमेशा कानों में ही पैदा होंगे। शैषिक स्वरों का उपयोग टेलीफोन, लाउडस्पीकर, सीटी इत्यादि अनेक उपकरणों के तैयार करने में किया जाता है लेकिन संगीत में इनका विशेष महत्व है क्योंकि स्वरों के संवाद-विवाद पर इनका बहुत प्रभाव पड़ता है।



# ध्वनि अभिलेखन तथा पुनरुत्पादन

(Recording and reproduction of sound)

## ध्वनि अभिलेखन या रिकॉर्डिंग की आवश्यकता और आविष्कार

यदि किसी ध्वनि को एक बार सुनने के अतिरिक्त बार-बार सुनना हो तो ध्वनि अभिलेखन (रिकॉर्डिंग) की ज़रूरत पड़ती है। केवल ध्वनि अभिलेखन ही ऐसा साधन है जिससे हम किसी भी स्वर, शब्द या ध्वनि को सदैव के लिए कैद करके रख सकते हैं।

प्राचीन काल में जब यह सुविधा नहीं थी तो किसी चीज़ को दोबारा नहीं सुना जा सकता था अर्थात् जो बीत गया वह समाप्त हो गया। जब से ध्वनि अभिलेखन की प्रणाली विकसित हुई तो महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ टागोर, ओंकार नाथ ठाकुर या मुहम्मद रफ़ी जैसे किसी भी नेता, कवि या संगीतकार की आवाज़ को ज्यों का त्यों सुन सकते हैं मानो वे हमें दिखाई तो नहीं दे रहे, लेकिन किसी पर्दे के पीछे से उनकी आवाज़ उसी सजीवता के साथ सुनाई पड़ रही है जैसी कि उस समय रिकॉर्डिंग अर्थात् ध्वनि-अभिलेखन के समय रही होगी। रिकॉर्डिंग की यह कला विज्ञान की देन है।

## बैक्स रिकॉर्डिंग

वायु के कम्पनों को सर्वप्रथम लीऑन स्कॉट ने सन् १८५७ ई० में ध्वन्यांकित (रिकॉर्ड) करने में सफलता प्राप्त की। आगे चलकर यह रिकॉर्डिंग यंत्र फ़ोनोग्राफ़ (Phonograph) के नाम से 'पेटेंट' कराया गया। कोनिग (Koenig) ने इस यंत्र में परिष्कार किए। रिकॉर्डिंग के लिए लोहे के हॉर्न का इस्तेमाल किया गया जिसका एक छोर सँकरा था। उसको पतली धातु की झिल्ली (पतली चादर वाला) से बन्द किया गया। इसके ऊपर सूअर के कड़े बाल को एक लिवर के साथ इस प्रकार सम्बद्ध किया गया कि वह झिल्ली में गूँजते कम्पनों को एक घूमते हुए रोलर या सिलेण्डर के ऊपर धारियों के रूप में उन्हें अंकित करता रहे। जब भी किसी ध्वनि को इस हॉर्न में होकर गुजारा जाता तो बाल की नोंक से सिलेण्डर पर लगे हुए मोम पर उसके कम्पनों का अंकन होता रहता था। प्रारम्भ में इस यन्त्र को ध्वनि कम्पनों की आवृत्तियाँ नापने के काम में लाया जाता था।



सन् १८७७ में थॉमस अल्वा एडीसन नामक व्यक्ति ने फोनाटोग्राफ को ऐसी ध्वनियों का अंकन करने का माध्यम बना लिया जिन्हें दुबारा सुना जा सकता था। इसी के परिणाम स्वरूप फोनाटोग्राफ में अंकित प्रकम्पनों को पुनः सुनना सम्भव हो सका। प्रारंभ में धातु की पतली चादर का रिकॉर्ड तैयार किया गया। बाद में वैक्स के रिकॉर्ड बनाए गए। सन् १८७८ में एडीसन ने फोनोग्राफ यन्त्र का आविष्कार किया जिसे बोलने वाला यन्त्र (Talking Machine) कहा गया। इसे ८ मई १८७८ की रॉयल सोसायटी ऑफ आर्ट्स को प्रस्तुत किया गया। वायु के कम्पनों को रबर की नलियों द्वारा श्रोता को सुनाया जाता था।

सन् १८८७ में बर्लिनर ग्रामोफोन का निर्माण हुआ। यह एमिली बर्लिनर का आविष्कार था। इसमें प्लेटनुमा रिकॉर्ड बनाया गया। इसमें सुई के ऊपर-नीचे होने की अपेक्षा दाएँ-बाएँ के संचालन द्वारा ध्वनि को रिकॉर्ड किया गया। मोम के स्थान पर एसिड का प्रयोग किया गया और उसी के रिकॉर्ड तैयार किए गए। इसमें हाथ से चाभी घुमाकर ग्रामोफोन के अंदर की स्प्रिंग को कस दिया जाता था जिससे रिकॉर्ड वाली प्लेट घूमने लगती थी। ग्रामोफोन में घूमती हुई प्लेट के ऊपर रिकॉर्ड को चढ़ाया जाता और एक साउण्ड बॉक्स में सुई लगाकर उसे रिकॉर्ड के ऊपर रख दिया जाता था। रिकॉर्ड के ऊपर सूक्ष्म धारियों से टकराते हुए साउण्ड बॉक्स आगे बढ़ता जाता था और उसके कम्पन साउण्ड बॉक्स में स्थित माइका (धातु की पतली चादर) से टकराकर नली में होते हुए ध्वनि विस्तारक लोहे के हॉर्न से गुजरकर सुनाई पड़ते थे। सन् १८८८ में इसका और परिष्कृत रूप सामने आया। फ्रांसिस बैरॉड (Francis Barraud) ने ग्रामोफोन कम्पनी को 'हिज मास्टर्स वॉइस' (His Master's Voice) नाम का सुझाव दिया। इसी के आधार पर कम्पनी का भोंपू के सामने बैठकर अपने मालिक की आवाज़ सुनने वाले कुत्ते का अमर ट्रेडमार्क सामने आया। कम्पनी द्वारा निर्मित ग्रामोफोन को डॉग मॉडल (Dog Model) के नाम से जाना जाता था।

सन् १८२४ तक आते-आते ग्रामोफोन के कई संशोधित संस्करण सामने आ गए और कम्पनी का नाम हिज मास्टर्स वॉइस अर्थात् एच.एम.वी. (H.M.V.) प्रसिद्ध हो गया। इस कम्पनी ने सभी प्रसिद्ध देशों में शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय एवं लोक-संगीत से संबंधित लाखों रिकॉर्ड्स तैयार किए और ग्रामोफोन-यन्त्र बनाए। इलेक्ट्रो-निक माध्यम से डिस्क रिकॉर्ड निर्मित होने लगे। वायु के दबाव को अंकित करनेवाले माइक्रोफोन का आविष्कार होने से किसी भी ध्वनि की रिकॉर्डिंग करना सरल हो गया और ध्वनि-शास्त्र पर निरंतर शोध होती रही। आगे चलकर विद्युत चालित ग्रामोफोन और ताँबे के रासायनिक एवं अन्य धातुओं के मिश्रित चुंबकीय लेप से निर्मित और परिष्कृत डिस्क रिकॉर्डों का प्रचलन हुआ। लेकिन इस पद्धति में एक बड़ी कमी यही बनी रही कि डिस्क का क्षेत्रफल कम होने से एक निश्चित अवधि (लगभग ढाई मिनट) के अन्दर ही ध्वनि को रिकॉर्ड करके रखा जा सकता था। इस समाधान के लिए १२ इन्च वाले डिस्क रिकॉर्डों का निर्माण हुआ जिनकी अवधि लगभग ५ मिनट होती थी। इसके बाद इनका विकसित स्वरूप लॉग प्लेइंग (L. P.)



और ऐक्सटन्डेड प्लेइंग (E. P.) के रूप में सामने आया। लेकिन अवधि को सात मिनट से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता था। ध्वनि के अच्छे पुनरुत्पादन (Reproduction of Sound) में पाँच हजार प्रति सैकिण्ड वाली फ्रीक्वेंसी की आवश्यकता होती है। इसके लिए रिकॉर्ड के ऊपर घूमने वाली सुई  $\frac{1}{4000}$  सैकिण्ड में ०.००३ इंच या एक मिनट में ६०० इंच की गति से घूमनी चाहिए।

### विद्युत ध्वन्यांकन

यन्त्रों का विद्युतीकरण होने से ध्वनि को इच्छित रूप में अधिक वॉल्यूम से सुना जाने लगा। इसके ग्रामोफोन में भी परिवर्तन किये गये और ध्वनि का पुनरुत्पादन १२००० साइकिल प्रति सैकिण्ड पर ग्रहण किया गया। स्पष्ट आवाज़ की दृष्टि से अनेक यांत्रिक सुधार भी किये गये। यही कारण है कि आज तक डिस्क (प्लेटनुमा रिकॉर्ड) द्वारा ध्वनि का पुनरुत्पादन बड़े-बड़े स्टूडियो तथा आकाशवाणी द्वारा भी अपनाया जाता है। बार-बार डिस्क को बजाने से सुई और डिस्क के घर्षण से उनमें विकार आना स्वभाविक है इसलिए एक निश्चित अवधि में (लगभग १०० बार बजने के बाद) डिस्क को बदलना जरूरी हो जाता है। अन्यथा डिस्क के धरातल प्लास्टिक रसायन के ऊपर लौह मिश्रित रसायन की पर्त का शोर आने लगता है। लगभग ५० बार डिस्क बजने के बाद ध्वनि-आवृत्तियों में ४००० साइकिल प्रति सैकिण्ड की गिरावट आने लगती है।

साउण्ड बॉक्स का विद्युतीकरण होने से उसे 'पिक्-अप' नाम से जाना गया जिसमें से गुजरी हुई आवाज़ एम्पलीफायर के द्वारा वर्धित होकर लाउडस्पीकर के माध्यम से विस्तारित होकर दूर-दूर तक सुनाई पड़ती है। लाउडस्पीकर की तन्त्र रचना माइक्रोफोन की भाँति ही होती है अतः उसे विपरीत माइक्रोफोन (Reversed Microphone) भी कह सकते हैं। माइक्रोफोन ध्वनि-तरंगों को विद्युत में परिवर्तित कर देता है जबकि लाउडस्पीकर विद्युतधारा को ध्वनि तरंगों में बदल देता है। इस आधार पर किसी भी ध्वनि का प्रक्षेपण (Transmission) करना संभव हो गया। ऐसे ध्वनि कंपनों को ऊर्जा में परिवर्तित करके रेडियो द्वारा आज सर्वत्र सुना जाता है।

### विद्युत से ध्वनि का पुनरुत्पादन

इसे इलेक्ट्रिकल रिप्रोडक्शन (Electrical Reproduction) कहते हैं अर्थात् रिकॉर्ड की गई ध्वनि को सुनना। इसमें कुछ गुण होते हैं तो कुछ दोष भी। एक ओर इसे ध्वनि की अति तीव्रता की स्थिति में सुना जा सकता है लेकिन दूसरी ओर विद्युत धारा के कारण उत्पन्न हुए कंपन भी उत्पन्न होते हैं जो मूल ध्वनि को नुकसान पहुँचाते हैं। इस प्रकार ध्वनियों के दोहरे उत्पादन द्वारा जो विकार उत्पन्न होते हैं उन्हें दूर नहीं किया जा सकता है। लाउडस्पीकर के माध्यम से इन्हें सुनना ही पड़ता



है। इसलिये विद्युत द्वारा ध्वनि के पुनरुत्पादन की अपेक्षा तकनीकी अर्थात् मैकेनिकल ध्वनि पुनरुत्पादन अधिक शुद्ध साबित होता है। लेकिन जब किसी ध्वनि का प्रस्तुतीकरण किसी बड़े हॉल में हो तो वहाँ बिना विद्युत वाले ग्रामोफोन द्वारा उतने बड़े पैमाने पर ध्वनि नहीं सुनवाई जा सकती जो कि पूरे हॉल के लिए पर्याप्त हो, इसलिए ऐसे स्थान पर लाउडस्पीकर अर्थात् विद्युत द्वारा उत्पादित ध्वनि का सहारा लेना पड़ता है। ऐसी स्थिति में ग्रामोफोन के साउण्ड-बॉक्स के स्थान पर पिक-अप लगाना पड़ता है।

पिक-अप रिकार्ड पर घूमती हुई सूई के कंपनों को एक माइक्रोफोन की तरह विद्युत धारा में बदल देता है तथा एम्पलीफायर द्वारा उन कंपनों को वर्धित किया जाता है। तब वे लाउडस्पीकर के द्वारा जोरदार आवाज़ के रूप में सुनाई देते हैं। पिक-अप की सुधरी हुई किस्मों से ध्वनि का अच्छे से अच्छा पुनरुत्पादन हो इस पर काफी अनुसंधान किया गया है ताकि ध्वनियों के सूक्ष्म कंपनों को ही पकड़ा जा सके। एक सैक्रिण्ड में लगभग १२००० आवृत्तियों वाले कंपनों को पकड़कर उन्हें पुनरुत्पादित करने का दावा किया गया है।

### मैग्नेटिक रिकॉर्डिंग

सन् १८६८ में पोलसन नामक व्यक्ति ने पियानो के तार को चुम्बकीय बनाकर 'वायर रिकॉर्डर' तैयार किया। तार का चुम्बकीकरण ध्वनि तरंगों का प्रतिरूप था। पोलसन ने तार को नियत गति से एक कुण्डली के बीच में दौड़ा कर उसे ऐसी विद्युतधारा में परिवर्तित किया जो कि लाउडस्पीकर में ध्वनि देती थी।

इस प्रकार एडीसन, बर्लिनर और पोलसन के प्रयत्नों से भविष्य में चुम्बकीय पत्ती वाले टेपरिकॉर्डरों के आविष्कार का द्वार खुल गया। एडीसन के पहले लिअन-स्काट (Leanscott) ने भी ध्वनि अभिलेखन यन्त्र बनाया था, परन्तु भाग्यवश उसे एडीसन के मुहान्त्र सफलता न मिल सकी।

मैग्नेटिक रिकॉर्डिंग की पद्धति सन् १९०० में डेनिस फिजिनिस्ट वाल्देमर पौलसन (Valdemar Poulsen) द्वारा ईजाद की गई। मैग्नेटिक पद्धति का सिद्धान्त यही है कि जब किसी टेप या तार को दो चुम्बकीय स्तम्भों के मध्य गुज़ारा जायेगा तो ध्वनि उस पर चुम्बकीय प्रकंपनों के रूप में अंकित होती जाएगी और जब उसका पुनरुत्पादन किया जायेगा तो उसी प्रक्रिया से तार या टेप को गुज़ार कर विद्युतीकरण द्वारा परिवर्तित करके उसे लाउडस्पीकर द्वारा सुन लिया जायेगा। यह पद्धति कालान्तर में बहुत अधिक प्रचलित हुई। आज का 'कैसेट रिकॉर्डर' इसी की देन है जिसका सर्वत्र प्रचार है।

रिकॉर्डिंग, रि-रिकॉर्डिंग, बैकग्राउण्ड रिकॉर्डिंग, मल्टीचैनल रिकॉर्डिंग, साउण्ड डबिंग (स्क्रिप्टग्राफ़) तथा मिक्सिंग इत्यादि सभी विधियाँ रिकॉर्डिंग की उपयुक्त विधियों से लाभान्वित होकर प्रकाश में आई हैं।

आयरन ऑक्साइड के रासायनिक लेप से युक्त किसी प्लास्टिक टेप (पट्टी) पर रिकॉर्डिंग करने की क्रिया को मैग्नेटिक रिकॉर्डिंग कहते हैं। चलते हुए टेप को किसी



भी समय रोक जा सकता है, वापस लौटाया जा सकता है और ध्वनि को इच्छित समय पर ध्वन्यांकित किया जा सकता है साथ ही उसे पुनरुत्पादित करके सुना भी जा सकता है। टेप पर ध्वन्यांकित सामग्री को बिना किसी जोड़-तोड़ के संपादित किया जा सकता है तथा संपूर्ण ध्वनि को मिटाकर एक ही टेप पर अनेकों बार रिकॉर्डिंग किया जा सकता है। यह सब मैग्नेटिक रिकॉर्डिंग की विशेषता है।

लगभग १९४७ में इस पद्धति का विधिवत् प्रयोग सामने आया। इसके पूर्व सेल्युलाइड फ़िल्म के ऊपर जो रिकॉर्डिंग किया जाता था वह फ़िल्म के निगेटिव पर होता था। उसे डिवेलप तथा प्रिंट करके स्थाई रिकॉर्डेड ध्वनि उपलब्ध की जाती थी। उसमें किसी प्रकार का संपादन या ध्वनि को मिटाकर पुनः रिकॉर्डिंग करने की सुविधा नहीं होती थी। इसलिये यह बड़ा कष्टप्रद और खर्चीला साधन था।

२७ अक्टूबर १९४८ को पहला पोर्टेबिल मैग्नेटिक रिकॉर्डर अमेरिका के वाशिंगटन नगर में एक सामूहिक सभा के अन्तर्गत समाज को भेंट किया गया था।

मैग्नेटिक टेप चौथाई इंच की चौड़ाई वाली होती है। आगे चलकर इस पद्धति में बहुत विकास हुए जिनमें सिगिल ट्रैक, टू ट्रैक्स और फोर ट्रैक्स के आधार पर गायन तथा वाद्यों को अलग-अलग ट्रैक्स (ध्वनि मार्ग) पर रिकॉर्ड करना संभव हो गया, जिन्हें बाद में दूसरे टेप पर स्थानान्तरित अर्थात् ट्रान्सफर करके इच्छानुसार उपयोग में लाया जाने लगा। मैग्नेटिक टेप के ध्वन्यांकन को सेल्युलाइड फ़िल्म के संचालन के साथ सहभागी (Synchronise) करके फ़िल्म की शूटिंग के समय भी उपयोग में लाया जाने लगा। यन्त्रों की गुणवत्ता को जब बढ़ाया गया तो मैग्नेटिक रिकॉर्डिंग पद्धति बड़ी सफल सिद्ध हुई। आज डिक्टाफोन टेप-डेक और कैसेट रिकॉर्डरों जैसे यन्त्रों का व्यापक प्रचार-प्रसार है जो जीवन के विविध क्षेत्रों में सफलतापूर्वक प्रयुक्त किये जा रहे हैं।

## मैग्नेटिक रिकॉर्डिंग की पद्धति

चुम्बकीय पत्तियों (Magnetic Tapes) की अभिलेखन Recording प्रणाली बहुत सरल है। माइक्रोफोन के द्वारा ध्वनि तरंगें आवर्ती विकृत धारा में परिवर्तित होती हैं जो आवर्तित होकर विकृत चुम्बकीय कुण्डली में प्रवाहित होती हैं। चुम्बकीय ध्रुवों (Magnetic Heads) के बीच से पत्ती एक निश्चित गति पर एक ओर से दूसरी ओर चक्कों (Spools) पर विकृत-मोटर द्वारा चलाया जाता है। पत्ती की लम्बाई में चुम्बकीकरण होकर भिन्न-भिन्न ध्वनियों के अनुसार विभिन्न आवृत्ति-मूलक शक्ति का चुम्बकीकरण हो जाता है। ध्वनि को फिर से सुनने के लिए दूसरे स्थाई चुम्बक के ऊपर लेपटी हुई कुण्डली को पत्ती के मार्ग में रखने पर आवर्ती धारा उत्पन्न होती है जिसको लाउडस्पीकर द्वारा फिर से ध्वनि में परिवर्तित किया जाता है। यदि पत्ती पर उत्पन्न चुम्बकीकरण को नष्ट करना हो अथवा रिकॉर्डिंग की ध्वनि को मिटाना हो तो उसके लिए पाँच वाट शक्ति एवं ६० हजार कंपन वाली



धारा का उपयोग किया जाता है। इसके परिणाम स्वरूप कम आवृत्ति का प्रतिरूप या चुम्बकीकरण नष्ट हो जाता है और इस प्रकार पत्ती या टेप पर हम फिर से रिकॉर्डिंग कर सकते हैं।

ध्वनि-अभिलेखन अर्थात् 'साउण्ड रिकॉर्डिंग' (Sound Recording) के तीन मुख्य सिद्धान्त (प्रकार) हैं—

१. डिस्क रिकॉर्डिंग
२. सेल्युलाइड फ़िल्म रिकॉर्डिंग
३. मैग्नेटिक रिकॉर्डिंग (टेप या तार पर)

### सेल्युलाइड फ़िल्म ध्वन्यांकन

२० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में फ़ोटो ग्राफ़िक फ़िल्म की पट्टी के ऊपर ध्वनि को रिकार्ड करना सम्भव हो गया था। सन् १९०० में रुमर (Ruhmer) नामक भौतिक शास्त्री ने फ़िल्म पर प्रकाश किरणों के माध्यम से ध्वनि का अंकन करने में सफलता प्राप्त की। इस पद्धति में ध्वनि को प्रकाश में बदलकर रिकॉर्डिंग के लिए उपयोग में लाया गया और प्रकाश किरणों के पुनः प्रक्षेपण द्वारा उसे ध्वनि तरंगों में परिवर्तित करके लाउड स्पीकर के माध्यम से पुनः सुनने में सफलता प्राप्त हो गयी। सन् १९०६ में यूजीन लौस्ट (Eugene Lauste) ने इस पद्धति में परिष्कार करके अपने यन्त्र को पेटेन्ट करा लिया जो १० अगस्त १९०७ को स्वीकृत हुआ। लेकिन इसका अन्त भी शीघ्र ही हो गया क्योंकि इसी बीच मूक फ़िल्म का विकास इसके पूर्व हो चुका था। सन् १९२३ में डी फॉरेस्ट (De Forest) ने फ़िल्म पर रिकॉर्डिंग और एम्पलीफायर के माध्यम से उसके पुनरुत्पादन की क्रिया को पेटेन्ट कराया। सन् १९२७ में बड़े पैमाने पर इसका व्यापारीकरण हो गया। सिनेमा की दृष्टि से प्रकाश के माध्यम से ध्वन्यांकन किया गया उसमें फ़िल्म के केवल एक इंच के दसवें भाग का प्रयोग किया गया और बाकी को छवि या चित्रों के लिए छोड़ दिया गया। इतने कम स्थान में ध्वनि की उत्कृष्टता के अंकन में कोई विकार नहीं आया। निगेटिव फ़िल्म पर रिकॉर्डिंग के बाद जब उसे डिवेलप किया गया तो वह हमेशा के लिए स्थाई रूप में अंकित हो गई। इसमें न सुई घिसने का खतरा रहा और न रिकार्ड के घिसने का झंझट। साउण्ड फ़िल्म और मूवी-फ़िल्म के निगेटिवों को एक दूसरी फ़िल्म पर परिवर्तित करके जिस फ़िल्म का निर्माण हुआ वह टॉकी-फ़िल्म (Talkie Film) कहलायी।

फ़िल्म पर साउण्ड रिकॉर्डिंग की यह प्रणाली जब प्रकाश किरणों के माध्यम से सम्पन्न होती है तो उसे 'ऑप्टिकल प्रणाली' कहते हैं और जब किसी टेप-रिकार्डर में मैग्नेटिक हैड्स के द्वारा सम्पन्न होती है तो उसे 'मैग्नेटिक रिकॉर्डिंग' कहा जाता है, जिसे साधारण लोग 'टेप रिकॉर्डिंग' कहते हैं।



## फ़िल्म की ध्वन्यांकन पद्धति

फ़िल्म-अभिलेखन में ध्वनि को प्रकाश के आवर्ती तीव्रता परिवर्तन में बदलकर फ़िल्म के ऊपर उसका चित्रण किया जाता है। यह प्रक्रिया फ़िल्म के विशेष कैमरा द्वारा सम्पन्न होती है जिसमें ध्वनि अभिलेखन का कार्य फोटोग्राफिक पद्धति द्वारा होता है। इसकी गति ६० फीट प्रति मिनट रहती है। फ़िल्म के एक हिस्से पर रासायनिक लेप के ऊपर रिकॉर्डिंग प्रकाश की तरंगों के रूप में चित्रित होता जाता है। फ़िल्म के निगेटिव को धोने के पश्चात् यह चित्रण हमेशा के लिए पक्का हो जाता है।

जब ध्वनि का पुनरुत्पादन करना होता है तो विद्युत शक्ति के माध्यम से उस चित्रण को ध्वनि में परिवर्तित करके लाउडस्पीकर द्वारा उसकी पूर्व अवस्था में ज्यों का त्यों सुना जा सकता है। फ़िल्म की पट्टी पर एक ओर ध्वनि तरंगें चित्रित रहती हैं और दूसरी ओर छवियाँ (आकृतियाँ या दृश्य) अंकित रहती हैं। ध्वनि-पट्टी वाले हिस्से को 'साउण्ड ट्रेक' कहते हैं। फ़िल्म का प्रदर्शन होने पर छवि के अंकन की क्रियाएँ और उससे सम्बन्धित ध्वनियाँ एक ही समय में दिखाई और सुनाई पड़ती रहती हैं। फ़िल्म की ये पट्टियाँ ८ मि. मी., १६ मि. मी., ३५ मि. मी. और ७० मि. मी. की चौड़ाई वाली होती हैं। फ़िल्म अभिलेखन क्रियाएँ दो प्रकार की होती हैं; एक परिवर्तनशील घनत्व-विधि तथा दूसरी परिवर्तनशील क्षेत्रफल-विधि।

इस पद्धति में ध्वनि की यात्रा इस प्रकार रहती है—

१. माइक (Mike), २. प्रीएम्पलीफायर (Pre-amplifire), ३. माइक्रोफोन मिक्सर (Microphone Mixer), ४. मेन वॉल्टेज एम्पलीफायर (Main Holtage amplifire), ५. बूस्टर (Booster), ६. इलेक्ट्रॉनिक कम्प्रेसर (Electronic Compressar), ७. हाईपास फ़िल्टर (High pass Filter), ८. लो पास फ़िल्टर (Low Pass Filter), ९. डायलॉग इक्वलाइज़र (Dialogue Equalizer), १०. फ़िल्म लॉस इक्वलाइज़र (Film Loss Equalizer), ११. रिकॉर्डिंग एम्पलीफायर (Recording amplifire), १२. रिकॉर्डिंग गैल्वेनोमीटर (Recor-ding Galvanometse).

## फ़िल्म से ध्वनि का पुनरुत्पादन

सेल्युलाइड फ़िल्म के ऊपर रिकार्ड की गई ध्वनि का पुनरुत्पादन जानने के लिए इसके रिकार्डिंग की प्रक्रिया को उलटकर समझा जा सकता है।

जब फ़िल्म के ऊपर रिकार्डिंग की गई थी तो एक गेट या छिद्र से प्रकाश को उसके ऊपर डाला गया था अर्थात् ध्वनि तरंगें प्रकाश तरंगों में परिवर्तित होकर फ़िल्म के ऊपर अंकित हुई थीं। ध्वनि पुनरुत्पादन की प्रक्रिया में उन्हीं प्रकाश किरणों के विविध रूपों से वायु के विविध दबावों तक पहुँचना पड़ता है। ध्वनि की गति की अपेक्षा प्रकाश की गति अधिक है तथा बरसात के दिनों में बिजली की चमक पहले दिखाई देती है और बादलों की गड़गड़ाहट कुछ देर बाद सुनाई पड़ती है। फ़िल्म के



ऊपर ध्वनि और प्रकाश का ऐसा ही अन्तर रखा जाता है अर्थात् ध्वनि की रिकॉर्डिंग को छवियों के चित्रण से इतना आगे रखा जाता है कि फिल्म के चलने पर ध्वनि तथा चित्र संयुक्त या एकरूप (Syndronise) होकर हमारे नेत्रों और कानों तक पहुँचे। अर्थात् फिल्म के पर्दे पर जैसे ही कोई व्यक्ति किसी शब्द का उच्चारण करे तो ध्वनि उसके होठों के साथ मिलकर तत्क्षण हमें सुनाई पड़े, ठीक वैसे ही जैसा कि प्रत्यक्ष में होता है। इसी आधार पर फिल्म पर रिकार्ड की गई ध्वनि हमें सुनाई पड़ती है। फिल्म के १८ "प्रति सैकण्ड की गति से चलने और ध्वन्यांकन के चित्रांकन से १४ $\frac{1}{2}$ " इन्च आगे रहने पर उचित सिन्क्रोनाइजेशन हो पाता है।

इस प्रक्रिया में समान तीव्रता का प्रकाश स्रोत ध्वनि पट के सामने रखे गये रेखाचित्र (Slits) की .००२" चौड़ाई को प्रकाशित करता है। फिल्म में होकर यह प्रकाश विकृत सेल पर पड़कर उसमें विकृत धारा प्रवाहित करता है। यह धारा प्रकाश की मात्रा के ऊपर कम व अधिक होती रहती है। इस परिवर्तनशील धारा को वर्धित करके लाउडस्पीकर से सम्बद्ध कर देने पर ध्वनि का पुनरुत्पादन हो जाता है। फिल्म पर ध्वन्यांकन और उसके पुनरुत्पादन की कला के विकास के कारण ही पार्श्वगायन की प्रथा संभव हो सकी अर्थात् गीत किसी का गाया हुआ होता है लेकिन फिल्म के पर्दे पर होंठ कोई दूसरा ही चलाता है।

सिनेमा हॉल में कम से कम चार उच्च शक्ति वाले लाउडस्पीकरों का उपयोग किया जाता है जो नीची आवृत्ति Low Band वाले होते हैं। इनसे ध्वनि का सजीव रूप प्रस्तुत किया जाता है। अब सेल्युलाइड फिल्म के स्थान पर पॉलीथिन की फिल्मों का प्रयोग होने लगा है जिन पर मौसम का प्रभाव देर में होता है और प्रोजेक्टर से चलने पर उनके टूटने या चटकने का खतरा भी नहीं रहता।

### अल्ट्रा वायलेट ध्वन्यांकन

फिल्म पर ध्वन्यांकन किये जाने के बाद यह पाया गया कि उनका मुख्य उद्देश्य फिल्म छायांकन है और उन्हें छायांकन को स्पष्ट करने वाले विविध रासायनिक घोलों से गुजरना पड़ता है तो फिल्म के ऊपर रिकॉर्डिंग की गई ध्वनि की गुणवत्ता में कुछ न कुछ कमी रह जाती है। तब उसमें अल्ट्रा वायलेट किरणों का प्रयोग किया गया। सीधी प्रकाश किरणों से फिल्म का एमल्शन (रसायन) सूक्ष्म रूप से कुछ फैलता है जबकि अल्ट्रा वायलेट प्रकाश उस एमल्शन में जड़ब हो जाता है। साथ ही अल्ट्रा वायलेट प्रकाश किरणें लघु तरंग उत्पन्न करती हैं। इसलिये इस पद्धति से बहुत सजीव ध्वन्यांकन (रिकॉर्डिंग) करने में सफलता प्राप्त हुई।

### स्टेरियोफोनिक यंत्र

मनुष्य के दो कान होते हैं जिनसे ध्वनि सुनाई पड़ती है। कोई ध्वनि बायीं ओर से आती है, कोई दायीं ओर से, कोई ऊपर की ओर से, कोई नीचे की ओर से सुनाई



पड़ती है। कभी चारों ओर की ध्वनियाँ सुनाई देती हैं। इन सभी ध्वनियों में निकट की ध्वनि और दूर की ध्वनि का भी भेद रहता है। ऐसी ध्वनियों को हमारे कान जिस रूप में ग्रहण करते हैं उसी रूप में रिकॉर्डिंग होने के पश्चात् भी वे उतने ही सजीव रूप में सुनाई पड़ें, इस तथ्य को साकार करने के लिए 'स्टीरियोफोनिक सिस्टम' सामने आया, जिससे सम्बन्धित यंत्रों के निर्माण का श्रेय डॉ० जोन जी. फ्रेनो (Dr. John G. Frayne) को दिया जाता है। इनके द्वारा निर्मित स्टीरियोफोनिक यंत्रों को सर्वप्रथम ट्वण्टीएथ सेंचुरी फॉक्स नामक फिल्म निर्माता कम्पनी ने अपनी फिल्म 'दि रोब' (The Robe) में इस्तेमाल किया। आज अधिकांश रिकॉर्डिंग या ध्वन्यांकन इसी पद्धति से होता है और उसका पुनरुत्पादन करने के लिए भी तदनुकूल ध्वनि विस्तारक यन्त्र बन गये हैं।

### कॉम्पैक्ट डिस्क (सीडी)

'कॉम्पैक्ट डिस्क', जिसे संक्षेप में 'सीडी' कहते हैं, इस युग का एक उन्नत आविष्कार है। जिसमें रिकॉर्डिंग डिजिटल-प्रणाली द्वारा की जाती है। इसमें धातु की एक छोटी सी डिस्क (प्लेट) के ऊपर ध्वन्यांकन किया जाता है। यह ध्वन्यांकन कभी विकृत नहीं होता क्योंकि न तो इसमें चुम्बकीय पद्धति का प्रयोग होता है, न किसी रसायन के विकृत होने का डर रहता है और न उस पर कोई वातावरण सम्बन्धी प्रभाव होता है। इसमें अंकित ध्वनि का पुनरुत्पादन करने के लिए जब डिस्क प्लेयर के अंदर कॉम्पैक्ट डिस्क को डाला जाता है तो विद्युत की तीक्ष्ण किरण डालकर ध्वन्यांकन को परिवर्तित कर लिया जाता है। ध्वनि-किरण से कॉम्पैक्ट डिस्क को कोई क्षति भी नहीं पहुँचती और रिकॉर्ड प्लेयर तथा कैसेट की तुलना में सीडी को सैकड़ों वर्षों तक ज्यों का त्यों सुरक्षित रखा जा सकता है। कॉम्पैक्ट डिस्क का ध्वन्यांकन बहुत स्पष्ट और जीवन्त होता है। इसलिए इसे भविष्य में ध्वनि को सुरक्षित रखने का सर्वाधिक प्रचलित और सुरक्षित माध्यम माना जा रहा है। अब 'सीडी' के द्वारा ध्वनि के अलावा दृश्यों को भी देखा जा सकता है।

### चिप्स

वर्तमान काल की नई देन 'चिप्स' है। इसका विकास जापान ने किया है। 'चिप्स' अँगूठे के नाखून के बराबर 'पेट्टो चिप्स' की तरह ही छोटी व पतली होती है जिस पर किसी भी ध्वनि के रिकॉर्डिंग का सूक्ष्म टंकण किया जा सकता है। एक यंत्र में डालकर चिप्स के माध्यम से ध्वनि का पुनरुत्पादन किया जा सकता है। आप जिस फिल्म के गाने सुनना चाहें उसकी चिप्स को यन्त्र में डालकर सुन सकते हैं। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि 'चिप्स' वर्तमान 'मैग्नेटिक टेप', 'फिल्म', 'डिस्क', 'सीडी' तथा 'कैसेट' का लघु-संस्करण है। आधा इंच के कागज के टुकड़े की तरह दिखाई देने वाली एक 'चिप्स' में एक पूरी फिल्म के गाने आ सकते हैं। बहुत शीघ्र 'चिप्स' पर पूरी फिल्म भी देखी जाएगी।



# भवन ध्वनिकी

## (Architectural Acoustics)

जब आवाज़ की दृष्टि से हम किसी खुले या बन्द स्थान पर विचार करते हैं तो यह विषय ध्वनि से संबंधित उस शास्त्र की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है जिसे भवन ध्वनिकी (Architectural Acoustics) कहा जाता है। इसका अपना अलग शास्त्र है जिसमें ध्वनि की लहरों के साथ भवन की दीवारों और वायुमण्डल के सम्पर्क का विज्ञान उदित होता है। कुछ लोगों की धारणा है कि इस सम्बन्ध में केवल पाश्चात्य जगत् में ही विचार किया गया है। लेकिन मोहन जोदड़ों और हड़प्पा जैसी अनेक प्राचीन खुदाइयों के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल में भारत में भी यह विज्ञान पूर्ण रूप से विकसित था और उसी के आधार पर मन्दिर, मठ, गुफाओं, भवनों या मकानों, तालाबों, कुपों, चहारदीवारियों, गुम्बदों, मुख्य द्वारों, रंगशालाओं (नाट्यगृहों), सभा मण्डपों, यज्ञशालाओं, पाठशालाओं इत्यादि का निर्माण किया जाता था।

### प्राचीन काल के सभागृह

सभागृह, प्रेक्षागृह नाट्यशाला या रंगशाला उस स्थान को कहा गया है, जहाँ कोई सभा आयोजित की जाए या क्रीड़ाओं को प्रदर्शित करने वाले कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ। अंग्रेजी में इन्हें 'थियेटर हॉल' (Theatre Hall) कह दिया जाता है। 'नाट्यशास्त्र' के अनुसार तीन प्रकार के सभागृह बताए गए हैं—विकृष्ट (Rectangular), चतुरस्र (Square) और त्र्यस्र (Tringular)। इन्हें ज्येष्ठ, मध्य और अवर नाम से भी संबोधित किया गया है।

आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार ज्येष्ठ सभागृह को ऐसे नाटकों के लिए प्रयुक्त किया जाना चाहिए जिसमें नायक-नायिकाएँ दैवीय गुणसम्पन्न हों। अर्थात् जहाँ



धार्मिक नाटक खेले जाएँ। मध्य सभागृह में राजाओं से संबंधित नायक और अवर में साधारण नायक-नायिकाएँ भाग लेते हैं।

आज के ध्वनिकी विज्ञान की आवश्यकता के अनुसार तो नहीं लेकिन ध्वनि के प्रक्षेपण की दृष्टि से प्राचीन सभागृह के निर्माण में पूरा ध्यान रखा जाता था ताकि प्रत्येक श्रोता को स्पष्ट ध्वनि सुनाई पड़े। आधुनिककालीन बम्बई का टाटा थियेटर इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है जिसे अमेरिकन आर्केट्रैक्ट्स द्वारा इस प्रकार बनाया गया है जहाँ ध्वनि विस्तारक यंत्र नहीं लगाने पड़ते और मंच के कार्यक्रम की ध्वनि पूरे सभागृह में अंतिम श्रोता तक स्पष्ट पहुँचती है। विभिन्न प्रकार की मिट्टी और रसायनों के लेप, बाँस, जटा और कुश इत्यादि के प्रयोग से प्राचीन नाट्यगृह आज के सभागृह से ध्वनिकी विज्ञान की दृष्टि से किसी रूप में कम नहीं होते थे।

शारदातनय के भावप्रकाशन ग्रन्थ के अनुसार उन्होंने नाट्य मण्डप की जो शैली बताई है वह नितान्त नवीन है। यजुर्वेद में ऐसे नाट्य मण्डप की चर्चा में जिसमें विविध पात्रों, सामग्रियों एवं वाद्यों का एकत्रित प्रयोग हो सके। हरिवंशपुराण, मत्स्यपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण तथा अग्निपुराण में भी नाट्य-मण्डपों के निर्माण का विधान दिया गया है। इसके अतिरिक्त पातंजलि महाभाष्य, वाल्मीकि रामायण और कामसूत्र में भी नाट्यगृह एवं रंगशालाओं की चर्चा है जहाँ विविध प्रकार के उत्सव और नाटक प्रस्तुत किए जाते थे। राजशेखर के काल तक आते-आते भरत के समय में नाट्यमण्डपों का विकास पूर्णरूपेण हो चुका था। 'काव्य मीमांसा' में सोलह स्तम्भ, वार, द्वार एवं आठ भूतवारणियों वाले विशाल नाट्यमण्डप का उल्लेख है। 'शिल्परत्न' नामक ग्रन्थ में नाट्यमण्डपों की रचना राजप्रासादों के सम्मुख बताई गई है जैसा कि भावप्रकाशन में भी राजभवनों से संबंधित नाट्यमण्डपों का वर्णन है। 'संगीत रत्नाकर' में नृत्यशालाओं में राजा, मंत्री, सेना-मंत्री, सेनापति, अन्तःपुर की नारियों, नागर, विलासिनी तथा अंगरक्षक आदि के लिए स्थान निर्धारित करने का उल्लेख है, जिस पर भावप्रकाशन का प्रभाव है।

आधुनिक युग में अमेरिका के श्री सॉबिन ने सन् १८६५ से १९२२ तक अनुसंधान करके भवन ध्वनिकी सिद्धान्त में कुछ नए संशोधन किए जिन्हें 'ज्यामितिक ध्वनि किरणों का सिद्धान्त' (Geometric Acoustics Ray Theory) कहते हैं। सॉबिन ने किसी सभागृह में ध्वनि से उत्पन्न होने वाली प्रतिध्वनि की प्रक्रिया सभागृह का आकार-मान तथा उस स्थल की ध्वनि शोषण (Sound Absorption) करने वाली सामग्री तथा उसकी क्षमता, इन तीनों के पारस्परिक सम्बन्ध को प्रस्थापित करने में सफलता प्राप्त की।

उनके अनुसार किसी भी सभागृह की श्रवण कसौटी उस सभागृह में उत्पन्न होने वाली प्रतिध्वनि के काल (Reverberation Time) पर तथा उससे उत्पन्न होने वाली ध्वनि की तीव्रता (Intensity) पर निर्भर होती है।



किसी भवन या सभागृह में जब ध्वनि कंठ या लाउडस्पीकर आदि किसी भी माध्यम से उत्पन्न होती है तो वह फ़ैलकर दीवारों, छत और ज़मीन इत्यादि से टकराती है। ध्वनि का कुछ भाग इनके द्वारा शोषित ( Absorb ) कर लिया जाता है और कुछ परावर्तित ( Reflect ) हो जाता है। परावर्तित ध्वनि किरणें या ध्वनि कम्पन उत्पादक के ध्वनि कम्पनों के साथ सभागृह के सभी भागों में घूमने लगते हैं। कुछ ही समय में सभागृह के सभी भागों में ध्वनि की घनता ( Dansity ) समान हो जाती है। ध्वनि उत्पादक से लगातार ध्वनि चलती रहती है तो उस सभागृह में ध्वनि की जो तीव्रता ( Intensity ) उत्पन्न होती है; वह तीव्रता खुले मैदान में निकली हुई ध्वनि की तीव्रता से १० गुना अधिक होती है।

कुछ समय के बाद सॉबिन के ध्वनिकी सिद्धान्त में कुछ दोष दिखाई देने लगे। तब एक नया सिद्धान्त सामने आया जिसे ध्वनि तरंग सिद्धान्त (Acoustics wave Theory) कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार सभागृह को एक अनुनादक ( Resonator ) माना जाता है। सभागृह का आकार, ध्वनि की तीव्रता ( Intensity ), ध्वनि तरंगों का वेग ( Velocity ), स्थिर ध्वनि तरंग ( Steady state of sound waves ) या ( Standing waves ), अस्थिर या अल्पकालिक ध्वनि तरंग ( Transient waves ), अन्तर्विरोध ( Damping ), ध्वनि शक्ति का ह्रास ( Decay of sound Energy ), ध्वनि शोषक शक्ति ( Absorptive Power ), श्रोताओं की संख्या, कुर्सियों या आसनों की व्यवस्था इत्यादि सभी चीजों का एक-दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करके ही आदर्श सभागृह की स्थापना होती है।

भाषण या व्याख्यान की प्रतिध्वनि का आदर्श काल ०.५ से ०.८ सैकिण्ड होता है। नाटकों के लिए यह १ सैकिण्ड और संगीत-कार्यक्रम के लिए १ से २.५ तक हो सकता है। इस दृष्टि से अलग-अलग सभागृह होने चाहिए। लेकिन यह सम्भव नहीं होता। अतः प्रतिध्वनि काल ( Reverberation Time ) १ से १.५ सैकिण्ड निर्धारित करके एक ही सभागृह का निर्माण कर लिया जाता है जो लगभग सभी कार्यक्रमों के लिए उपयोगी होता है।

### संगीत सभागृह

संगीत के कार्यक्रम प्रायः ४ प्रकार के सभागृहों में आयोजित किए जाते हैं।

१. १० से १०० श्रोताओं के लिए। इसके लिए कोई दीवानखाना या छोटा सभागृह पर्याप्त होता है।

२. १०० से ५०० श्रोताओं के लिए मध्यम आकार का सभागृह उपयुक्त रहता है।

३. ५०० से १००० श्रोताओं के लिए बड़ा सभागृह उपयुक्त रहता है।

४. १००० से अधिक संख्या के श्रोताओं के लिए खुला सभागृह ( Open Air Theatre ) या पंडाल उपयुक्त रहता है।



संगीत-कार्यक्रमों के लिए अधिकतर सभागृह मध्यम आकार ( $40 \times 40 \times 15$ ) अर्थात् ४८,००० घन फुट के बनाये जाते हैं, जिनमें ३०० से ६०० तक श्रोताओं के बैठने की व्यवस्था रहती है। ऐसे सभागृह की ऊँचाई १५ फीट से अधिक नहीं होनी चाहिए और आसन या सीटों के लिए ८ घन फुट का स्थान निश्चित करना चाहिए। सभागृह का आकार लम्ब वर्तुलाकार, अर्ध वर्तुलाकार हो तो श्रवणता में बाधा उत्पन्न हो सकती है जिससे ध्वनि संतुलन बिगड़ जाता है। इसलिए दीवारों का पृष्ठ-भाग पदों से आच्छादित करना आवश्यक होता है। बाहर की आवाजें व्यवधान उत्पन्न न करें इसके लिए गैलरी तथा अन्य संलग्न कमरों की ध्वनि तीव्रता १५ से २० डेसिबल तक की होनी चाहिए। आदर्श श्रवणता कसौटी की दृष्टि से ध्वनि प्रक्षेपण व्यवस्था एवं रंगमंच से सम्बन्धित साजो-सामान इत्यादि में एक संतुलन बनाना पड़ता है।

### आवश्यक गुण

मोटे रूप में कमरे को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। एक शब्दोच्चारण के लिए तथा दूसरा संगीत कार्यक्रम के लिए। आजकल ऐसे भी यन्त्र मौजूद हैं जो ध्वनि की आवृत्तियों को घटा-बढ़ाकर श्रवण योग्य बना लेते हैं और तब ध्वनि विस्तारक यंत्र से उन्हें प्रेषित किया जाता है अथवा उनकी रिकार्डिंग कर ली जाती है। भवन में संगीत का सुनना अच्छा लगने के लिए निम्नलिखित गुणों का समावेश आवश्यक है—

१. अनुनाद अथवा स्वरक (Tone) की पूर्णता का ज्ञान होना अर्थात् ध्वनि की तीव्रता इतनी हो जिससे गायक और श्रोता के मध्य पर्याप्त ऊर्जा का प्रवाह बना रहे।
२. स्पष्टता ठीक रहे ताकि एक के पश्चात् दूसरे स्वर के उत्पन्न होने पर उसका श्रवण भी पृथक्-पृथक् और स्पष्ट रूप में सुना जा सके।
३. पर्याप्त संतुलन रहे ताकि अलग-अलग वाद्यों का श्रवण कमरे में निश्चित दूरी तक पहुँच सके।
४. पर्याप्त ध्वनि सम्मिश्रण (Blending) अर्थात् अनेक वाद्यों की ध्वनि का प्रभाव सम्मिलित रूप में सुनाई पड़े न कि उनमें बिखराव हो।
५. अनावश्यक तथा कष्टप्रद प्रतिध्वनि या गूँज (Echo) उत्पन्न न हो।
६. भारी शोर (Noise) का प्रवेश अति अल्प मात्रा में ही रहे।
७. पर्याप्त अनुरणन (Reverberation) समय का मान।

### ध्वनि की वृद्धि तथा क्षेत्र

वन्द कमरे में ध्वनि उत्पादक का प्रभाव जानने के लिए हम मान लेते हैं कि कमरे में सर्वत्र ऊर्जा-घनत्व (Energy Density) ऊर्जा-प्रति-इकाई-आयतन का मान एकसा है और प्रत्येक दिशा में ऊर्जा का प्रवाह भी समान है।



## अनुरणन काल (Reverberation Time)

ध्वनि स्रोत के रुकने के बाद कमरे में उसकी गूँज अथवा अनुरणन जितनी देर तक सुनाई पड़ता है, उसे अनुरणन-काल कहते हैं। किन्तु परिभाषा के लिए अनुरणन काल उस समय को कहा जाता है जिसमें किसी भवन की ध्वनि ऊर्जा का घनत्व घटकर अपने स्थिर मान का १० लाखवाँ अंश हो जाती है। यह १० लाखवाँ अंश प्राप्त करने की दशा ६० डेसीमेल (Decimal) तीव्रता की कमी के समान है। अनुरणन काल ऐसा भौतिक गुण है जिसे गणित के आधार पर मापा जा सकता है। इसलिए इसका महत्त्व अधिक है। किसी कमरे या भवन के लिए उपयुक्त अनुरणन काल उसके आयतन और उपयोग पर निर्भर करता है।

वाक् ध्वनि (Speech) के लिए जो कमरे हों उनमें अनुरणन काल कम होना चाहिए ताकि शब्द एक-दूसरे में मिलकर निरर्थक न हो जाएँ। माइक्रोफोन तथा लाउडस्पीकर पद्धति के कारण आजकल सूक्ष्म ध्वनि भी श्रोता तक पर्याप्त आवर्धन द्वारा पहुँचाई जा सकती है। अतः अधिक अनुरणन काल के कमरे (ताकि ध्वनि ऊर्जा की मात्रा अधिक बनी रहे) शब्दों के लिए आवश्यक नहीं हैं लेकिन संगीत में गूँज उत्पन्न करने की दृष्टि से अनुरणन की अधिक आवश्यकता होती है। रेडियो स्टेशनों पर या रिकार्डिंग स्टूडियो में इन्हीं का ध्यान रखकर कमरे बनाए जाते हैं।

उच्च आवृत्ति पर वायु का अवशोषण बढ़ जाने से अनुरणन काल कम हो जाता है और निम्न आवृत्ति पर समान तीव्रता (Loudness) वाली ध्वनि के कन्टूर (Contour) पास-पास होने के कारण अनुरणन का काल बढ़ जाता है।

### शब्दोच्चार परीक्षा

भवन ध्वनिकी में किसी कमरे में विभिन्न बिन्दुओं पर श्रवण की स्थिति क्या है, यह जानने के लिए धीरे-धीरे अनेक शब्द बोले जाते हैं और अनेक व्यक्ति अलग-अलग स्थलों पर बैठकर, उन्हें सुनकर लिखते जाते हैं। इसी के आधार पर जितने प्रतिशत शब्दों को ठीक सुना गया है उस प्रतिशत को 'शब्दोच्चार' कहा जाता है। प्रतिशत शब्दोच्चार—

८६ : इस पर श्रवण पूर्ण संतोषजनक रहता है।

८५-८६ : इस पर श्रवण काफी संतोषजनक रहता है।

७५-८५ : इस पर श्रवण संतोषजनक रहता है।

६५-७५ : इस पर वार्ता समझने में कठिनाई रहती है।

६५ से कम : इस पर श्रवण असंतोषजनक रहता है।

### भवन ध्वनिकी के आकार-प्रकार (डिजायन) सिद्धान्त

हालाँकि सैवाइन के काल से आज भवन ध्वनिकी की प्रगति अत्यन्त प्रगतिपूर्ण स्थिति में है फिर भी यह विषय विज्ञान के रूप में कम और कला के रूप में अधिक



माना जाता है। क्योंकि वह वस्तुनिष्ठ अधिक है और अनुभव समय समय पर प्रायः विपरीत होते पाए गए हैं जो व्यक्ति की मनः स्थिति पर निर्भर करते हैं। इसीलिए विज्ञान और कला का मिलन पूर्ण संतोषप्रद सिद्ध नहीं हो पाता। इन कारणों से भवन ध्वनिकी को पूर्ण विज्ञान बनाने की चेष्टा विफल रही है और कुछ सामान्य नियमों को मापदण्ड मानकर उसके रचनात्मक तत्त्वों को ग्रहण कर लिया जाता है। सबसे मुख्य बात यही है कि बाहर के शोर का आगमन भवन के अंदर न हो।

बड़े भवन जहाँ दो-तीन हजार व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था करनी होती है उसके निर्माण में अधिक परिश्रम करना पड़ता है। नक्शे से गोलीय सतह का डिजाइन ध्वनि को केन्द्रित करने के कारण सदैव दूर रखना चाहिए। इस केन्द्रीयकरण की वजह से कमरे में ध्वनि की एकरूपता बिगड़ती है लेकिन यदि ऐसी सतह आवश्यक हो तो उनका वक्रता अर्द्धव्यास (Radius of curvature) कमरे की ऊँचाई का दुगुना होना चाहिए।

यह भी आवश्यक है कि स्रोत अधिक से अधिक संख्या में मुख्य स्रोत के सामने बैठें न कि अगल-बगल में। प्रथम परावर्तन के पश्चात् प्राप्त तरंग का पथ-अंतर (Track Difference) यदि ६० फीट से अधिक हो जाए तो दोनों में हानिकारक व्यतीकरण उत्पन्न होता है। यदि स्रोत के पीछे की दीवाल परबलयिक (parabolic) है तो ध्वनि तरंगों का परावर्तन उनको समानांतर करके भवन के हॉल में उत्तम सिद्ध होता है। संगीत जगत् में अच्छी ध्वनि की लिए जो भवन प्रसिद्ध होते हैं उनमें प्रति दर्शक १२० से २४० घन फुट आयतन रखा जाता है। शब्दोच्चार वाले भवनों में इससे कम आयतन पर्याप्त माना जाता है। समतल छत छोड़ देना हानिकारक होता है, विशेषकर तब जबकि वह फर्श के समानान्तर हो। क्योंकि उसके कारण कोई अभिलम्ब (Normal) आयात (incident) किरण अनेक बार छत व फर्श के परावर्तन से उसी जगह पर चलती रहती है और एक विचित्र तथा अश्राव्य उत्स्फुरित प्रतिध्वनि (Flutter Echo) दर्शक को परेशान कर देती है। इसलिए समानांतर दीवारों को न रखना ही श्रेयस्कर रहता है।

आधुनिक डिजायनों में नक्काशी, खम्भे, खिड़की, झरोखे, बालकनी, काँगूरे, मेहराब तथा अन्य सजावट का अभाव रहता है। इनकी उपयोगिता ध्वनि तरंगों को विसरित (Diffuse) करने में हुआ करती थी। इसीलिए अब कृत्रिम रूप से विसारक लगाना आवश्यक हो जाता है। असली दीवाल के सामने दूसरी दीवाल खड़ी कर दी जाती है ताकि ध्वनि परावर्तन विविध दिशाओं में हो सके। उनमें भी छिद्र बनाकर पीछे के स्थान में रुई, काँच-रेशम (Glass Fibres), नमदा, प्लाईवुड, ऊन या बुरादा इत्यादि भर दिया जाता है ताकि ध्वनि की अनावश्यक आवृत्ति या कम आवृत्ति वाली ध्वनि का अवशोषण हो सके।



## ध्वनि प्रवेश

किसी भवन में ध्वनि का प्रवेश तीन विधियों से होता है।

१. वायु द्वारा संचारित स्रोत जो कि छिद्रों तथा खुले भागों से कमरे में प्रवेश कर जाता है।

२. दीवारों, दरवाजों तथा खिड़कियों इत्यादि के स्वयं कंपित होने से संचारित होकर।

३. भवन की ठोस दीवारों तथा छत आदि को पार करके।

एक छिद्र या दरार में होकर कितनी ध्वनि पार जा सकती है, इसका साधारणतः कोई अनुमान नहीं रहता। सैबाइन के प्रयोगों द्वारा विदित हुआ कि यदि एक ठोस धातु की दीवाल की सतह के क्षेत्रफल का १२% अंश छिद्रयुक्त हो तो उसके एक पार से दूसरे पार तक ७५% ध्वनि निकल जाती है। इसलिए अच्छी तरह सटे हुए दरवाजे और खिड़कियाँ बनाने चाहिए।

दूसरा कारण यह है कि पतले बने दरवाजे या दीवाल आदि पर बाहर से पड़ने वाला शोर कम्पन उत्पन्न करता है जिससे कमरे की वायु में भी कम्पन उत्पन्न होते हैं। इस समस्या पर डेविस लिटलर (Davis Littler), कांस्टेबल (Constable) तथा एस्टन (Aston) इत्यादि वैज्ञानिक अनेक प्रयोगों द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ध्वनि के ऐसे अनच्छिन्न कंपन रोकने के लिए दरवाजों को भारी बनाना चाहिए। लेकिन भारीपन ही पर्याप्त नहीं है अर्थात् ४३ इंच मोटी दीवाल ४८ डेसीमल ध्वनि-अंतर बनाए रख सकती है। परन्तु इससे दुगुनी मोटी दीवार दोनों ओर के बीच में ५३ डेसीमल का अंतर उत्पन्न करती है। इस्पात निर्मित भवन में ईंट-चूने की अपेक्षा ध्वनि ज्यादा पार जाती है। इसलिए इसके नीचे या स्थान-स्थान पर कम्पन निरोधक (Anti-vibration) चटाई या जाल बिछाने की व्यवस्था की जाती है।

— है प्रायः सति के निकट मूल्य अपेक्ष-सुलझाई कि उक्त सही P



## स्वर-शास्त्र (Tonality)

### स्वर-स्थान और आंदोलन-संख्या

जब हम वीणा, सितार या तानपूरे के किसी तार को छेड़ते या बजाते हैं, तो उस तार से एक झंकार पैदा होती है। उस झंकार द्वारा एक सैकिण्ड में हवा में जो कंपन पैदा होता है, उसे आंदोलन (Vibration) कहते हैं। इसे पीछे, समझा दिया गया है। आंदोलन-संख्या जितनी अधिक होती है, नाद उतना ही ऊँचा होता है और आंदोलन-संख्या जितनी कम होती है, नाद उतना ही नीचा होता है।

इसी प्रकार तार की लम्बाई से भी नाद की ऊँचाई और नीचाई ज्ञात होती है। तार की लम्बाई कम होगी तो नाद ऊँचा पैदा होगा और तार की लम्बाई अधिक होगी तो नाद नीचा पैदा होगा।

### स्वरों की आंदोलन-संख्या निकालना

ऊपर बताया जा चुका है कि जितनी ही आवाज़ ऊँची होगी, उतने ही आंदोलन अधिक होंगे और आवाज़ जितनी नीची होती जाएगी, आंदोलन-संख्या इसी अनुपात से कम होती जाएगी।

वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सबसे नीची आवाज़ द्वारा एक सैकिण्ड में मोलह आंदोलन हो सकते हैं और सबसे ऊँची आवाज़ के एक सैकिण्ड में अड़तीस हजार आंदोलन हो सकते हैं। यह ऊँची आवाज़ लगभग ग्यारह सप्तक ऊँचाई की होगी। इस हिमाव से षड्ज स्वर की आंदोलन-संख्या २४० मानकर हमारे शास्त्र-कारों ने तथा पश्चिमी विद्वानों ने बारह स्वरों की आंदोलन-संख्या नियत की है।

स्वरों की आंदोलन-संख्या मालूम करने के तीन आधार हैं :—

१. जिस स्वर की आंदोलन-संख्या मालूम करनी हो, उसके तार की लम्बाई का नाप।

२. षड्ज स्वर के तार की लम्बाई।

३. षड्ज स्वर की आंदोलन-संख्या।



## स्वरों का गुणान्तर

स्वरों की आंदोलन-संख्या मालूम करने के लिए स्वरों के आपसी गुणान्तर की समझे बिना आगे बढ़ना ठीक न होगा। दो स्वरों की आंदोलन-संख्याओं के भजन-फल को उनका गुणान्तर या स्वरान्तर कहते हैं; जैसे षड्ज स्वर की आंदोलन-संख्या २४० मान ली गई है; अब यदि पंचम स्वर की आंदोलन-संख्या ३६० हो, तो षड्ज और पंचम का गुणान्तर बड़ी संख्या में छोटी का भाग देने से निकल आएगा; अर्थात्  $360 \div 240 = \frac{3}{2}$  अथवा  $\frac{3}{2}$  या  $1\frac{1}{2}$ । इसका अर्थ यह हुआ कि पंचम स्वर, षड्ज स्वर से डेढ़ गुना ऊँचा है।

इस प्रकार यदि किसी स्वर का गुणान्तर हमें मालूम हो, तो षड्ज की आंदोलन-संख्या २४० को उससे गुणा कर देने से उस स्वर की आंदोलन-संख्या निकल आती है। चाहे जिस स्वर की आंदोलन-संख्या निकाली जाए, किन्तु षड्ज की मदद के बिना वह नहीं निकल सकेगी, क्योंकि षड्ज ही सब स्वरों का आधार है।

तार की लम्बाई के नाप से भी स्वरों का गुणान्तर निकल आता है, जैसे षड्ज के तार की लम्बाई ३६ इंच है और मध्यम की लम्बाई २७ इंच है; अब हमने इसका गुणान्तर निकाला, तो ३६ में २७ का भाग दिया; इसका अर्थ हुआ  $\frac{3}{2}$  या  $\frac{3}{2}$ । इस प्रकार षड्ज और मध्यम में  $4 : 3$  का या  $\frac{4}{3}$  का स्वरान्तर है। अब इसी गुणान्तर या स्वरान्तर को लेकर मध्यम स्वर की आंदोलन-संख्या मालूम की जाए, तो इस प्रकार निकलेगी  $\frac{4}{3} \times 240 = 320$ ; क्योंकि षड्ज की मानी हुई आंदोलन-संख्या २४० है और षड्ज-मध्यम का स्वरान्तर  $\frac{4}{3}$  है; इसलिए  $\frac{4}{3}$  को २४० से गुणा करके आसानी से मध्यम की आंदोलन-संख्या ३२० निकल आई। इसी प्रकार पंचम की आंदोलन-संख्या निकालने के लिए सा = ३६ इंच, प = २४ इंच, इनका स्वरान्तर हुआ  $\frac{3}{2}$  यानी  $\frac{3}{2}$ ; इसको षड्ज की आंदोलन-संख्या २४० से गुणा कर दिया, तो  $\frac{3}{2} \times 240 = 360$  'प' की आंदोलन-संख्या निकल आई।

यह तो हुआ स्वरों की लम्बाई से आंदोलन-संख्या निकालने का नियम। अब यह बताते हैं कि आंदोलन-संख्या से स्वरों की लम्बाई किस प्रकार निकलती है:—

### आंदोलन-संख्या से लम्बाई निकालना

अगर दो स्वरों की आंदोलन-संख्या हमें मालूम हो, तो उनकी लम्बाई भी निकाली जा सकती है और यदि इनमें से एक ही स्वर की लम्बाई मालूम हो, तो गुणान्तर (स्वरान्तर) निकालकर लम्बाई मालूम की जाएगी। उदाहरणार्थ षड्ज और मध्यम की आंदोलन-संख्याओं से हमें मध्यम स्वर की लम्बाई मालूम करनी है, तो इस प्रकार करेंगे—षड्ज = २४० इंच, मध्यम = ३२० इंच; इसका गुणान्तर हुआ  $\frac{3}{2}$  या  $\frac{3}{2}$ ; इस गुणान्तर का षड्ज की लम्बाई ३६ इंच में भाग दिया गया तो  $36 \div \frac{3}{2} = 24$  इंच मध्यम की लम्बाई निकल आई। यहाँ पर एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि

बंगीत-निर्धारक



लंबाई से आंदोलन निकालने में तो स्वरांतर का षड्ज की आंदोलन-संख्या से गुणा करना होगा, और जब आंदोलन से लंबाई निकाली जाएगी, तब षड्ज की लंबाई में उस स्वरांतर का भाग देना होगा। इस प्रकार मालूम होगा कि तार की लंबाई और स्वर की आंदोलन-संख्या का सम्बन्ध बिल्कुल उलटा है। लम्बाई घटेगी, तो नाद या आवाज़ ऊँची होगी; जैसे 'सा' की लंबाई ३६ इन्च है, 'प' की २४ इन्च ही रह गई। 'सा' से 'प' की आवाज़ तो ऊँची हो गई, किन्तु लम्बाई कम हो गई। इसके विरुद्ध स्वर ऊँचा होता है; तो आंदोलन-संख्या बढ़ती है और स्वर नीचा होता है, तो आंदोलन-संख्या कम होती है; जैसे 'सा' की आंदोलन-संख्या २४० है और 'प' की बढ़कर ३६० हो गई।

इस प्रकार ध्वनि ( नाद ) की दृष्टि से स्वर-स्थानों का स्पष्टीकरण करने के लिए दो साधन हुए :—

१. प्रत्येक ध्वनि के एक सैक्रिण्ड में होने वाले तुलनात्मक आंदोलन बताना।

२. वीणा के बजने वाले तार की लंबाई के भिन्न-भिन्न भागों से ध्वनि की ऊँचाई-निचाई बताना।

हमारे प्राचीन ग्रन्थकारों को इनमें से पहला साधन या तो मालूम नहीं था या उन्होंने इसका उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा। उन्होंने अपने ग्रन्थों में दूसरे साधन की ही चर्चा विशेष रूप से की है। प्रथम साधन की चर्चा आधुनिक ग्रन्थकारों तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा की गई है।

संगीत के इतिहास का मध्य-काल १४-वीं शताब्दी से १८-वीं शताब्दी तक माना जाता है। इसमें संगीत के विद्वानों ने संगीत पर कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे, जिनके नाम हैं :—

१. संगीत पारिजात, २. हृदय कौतुक, ३. हृदय प्रकाश, ४. राग-तत्त्व-विबोध आदि।

इनमें से मुख्य ग्रन्थ 'संगीत पारिजात' है, जिसके लेखक हैं अहोबल पंडित। उन्होंने ही सर्वप्रथम वीणा के तार की लम्बाई के विभिन्न भागों से बारह स्वरों के ठीक-ठीक स्थान निश्चित किए। इसके पश्चात् श्रीनिवास पंडित ने भी अपने लिखे हुए ग्रन्थ 'राग-तत्त्व-विबोध' में बारह स्वरों के स्थान बताए हैं।

पं० श्रीनिवास ने वीणा के छत्तीस इंच लम्बे खुले तार पर षड्ज स्वर मानकर क्रमशः बारह स्वरों के परदे बाँधने का ढंग बताया है।

पं० श्रीनिवास के स्वरों की स्थापना का नियम समझने से पहले हमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि श्रीनिवास का शुद्ध ठाठ आधुनिक 'काफी ठाठ' था; अर्थात् इनके शुद्ध ठाठ में गांधार और निषाद कोमल थे, जबकि हमारे संगीतज्ञ आजकल शुद्ध ठाठ 'बिलावल' मानते हैं। इसी प्रकार अन्य मध्यकालीन ग्रन्थकारों के सात शुद्ध स्वरों



में 'ग नि' कोमल होते थे। उनके सात शुद्ध स्वर हमारी दृष्टि से इस प्रकार थे :—

सा (शुद्ध)	प (शुद्ध)
रे (तीव्र)	ध (तीव्र)
ग (कोमल)	नि (कोमल)
म (कोमल)	

## वीणा के तार पर श्रीनिवास के स्वर

सबसे पहले श्रीनिवास पंडित तार-षड्ज और मध्य-षड्ज का स्थान वीणा पर इस प्रकार बताते हैं :—

पूर्वान्त्ययोश्चमेवोश्च मध्ये तारकसः स्थितिः ।

तदर्धे त्वतितारस्य सस्वरस्य स्थितिर्भवेत् ॥

### मध्य-षड्ज

पूरे छत्तीस इंच लम्बे खुले तार को बिना किसी जगह दबाए छेड़ा जाए, तो मध्य-सप्तक का षड्ज बोलेंगा।

सा  
मेरु ० \_\_\_\_\_ ० घुड़च  
३६ इंच

### तार-षड्ज

मेरु से घुड़च तक जो वीणा का तार खिंचा हुआ है, उसके बीचों-बीच तार-षड्ज स्थित है; अर्थात् छत्तीस इंच लम्बा तार मानकर उसके दो भाग करने पर  $36 \div 2 = 18$  इंच पर तार-षड्ज बोलेंगा।

सां  
मेरु ० \_\_\_\_\_ ० घुड़च  
१८ इंच

इसके बाद बताते हैं अतितार-षड्ज और मध्य स्वरों के स्थान :—

मध्यस्थानादिसषड्जमारभ्यातारषड्जगम् ।

सूत्रं कुर्यात्तवर्धे तु स्वरं मध्यममाचरेत् ॥

### अतितार-षड्ज

घुड़च और तार-षड्ज (सां) के बीच में अठारह इंच स्थान है, उसके मध्य-स्थान में अतितार-षड्ज स्थापित है, अर्थात् 'सां' से नौ इंच आगे जाकर अतितार-षड्ज बोलेंगा।

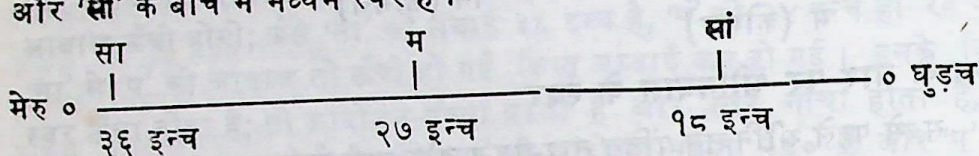
सा सां सां  
मेरु ० \_\_\_\_\_ ० घुड़च  
३६ इंच १८ इंच ९ इंच

### संगीत-विशारद



## मध्यम

मेरु और तार-षड्ज के बीच में जो अठारह इन्च का तार है, उसके दो भाग नौ-नौ इन्च के हुए अतः मध्यम स्वर  $9\text{८} + ८ = २७$  इन्च पर बोलेगा; अर्थात् 'सा' और 'सां' के बीच में मध्यम स्वर है।

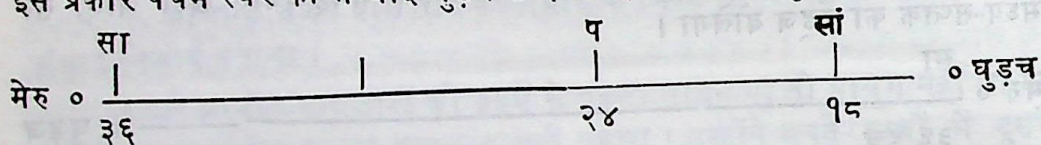


## पंचम

पागत्रयसमायुक्तं तत्सूत्रं कारित भवेत् ।

पूर्वभागद्वयादग्रे स्थापनीयोऽथ पंचमः ॥

पंचम स्वर को इस प्रकार बताते हैं कि मेरु और तार 'सां' के बीच के हिस्से को तीन बराबर भागों में बाँटा जाए तो  $9\text{८} \div ३ = ३२$  इंच पर पंचम स्वर बोलेगा। इस प्रकार पंचम स्वर की लम्बाई घुड़च से  $9\text{८} + ३२ = १३०$  इंच हुई।

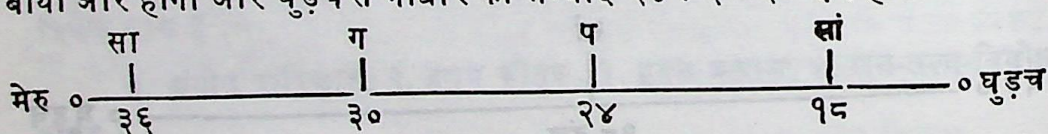


## गांधार

षड्जपंचममध्ये तु गांधारस्थानमाचरेत् ।

षड्जपंचमं सूत्रमंशत्रयसमन्वितम् ॥

षड्ज और पंचम के बीच में गांधार है; अर्थात् गांधार स्वर पंचम से छह इंच बायें ओर होगा और घुड़च से गांधार की लम्बाई  $२४ + ६ = ३०$  इंच होगी :—

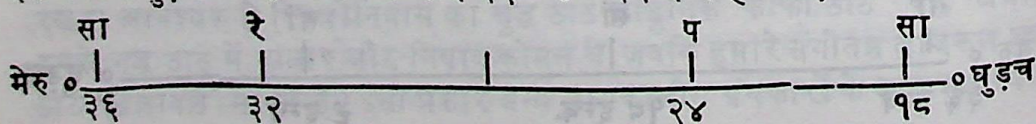


ध्यान रहे, श्रीनिवास का यह गांधार वर्तमान प्रचलित कोमल गांधार है, क्योंकि उन्होंने अपने शुद्ध ठाठ में 'ग-नि' कोमल लिए हैं।

## ऋषभ

तत्रांशद्वयसन्त्यागात् पूर्वभागे तु रिभवेत् ।

ऋषभ स्वर को इस प्रकार बताते हैं कि षड्ज और पंचम के बीच के स्थान के तीन भाग करके मेरु के पूर्व-भाग में ऋषभ स्वर बोलेगा। मेरु और पंचम के बीच का स्थान बारह इंच है, तो  $१२ \div ३ = ४$  अर्थात् मेरु से चार इंच पर ऋषभ हुआ। इस प्रकार घुड़च से ऋषभ की लम्बाई  $३६ - ४ = ३२$  इंच हो जाएगी।





## धैवत

पंचमोत्तरषड्जालयमध्ये धैवतमाचरेत् ॥

पंचम और तार-षड्ज के मध्य-स्थान में धैवत स्वर स्थित है, ऐसा श्रीनिवास पंडित का कहना है। किन्तु 'प-सां' के बीचों-बीच धैवत स्थापित करके जब हम बजाते हैं, तो कुछ ऊँचा अर्थात् चढ़ा हुआ बोलता है। इस थोड़े से अन्तर के लिए श्रीनिवास का कहना है कि 'स्वरसंवादिताज्ञानं स्वरस्थापनकारणम्।' इसका भावार्थ यही है कि ऋषभ का स्थान निश्चित हो जाने पर धैवत का स्थान 'षड्ज-पंचम-भाव' से कायम कर लेना चाहिए। धैवत के उपर्युक्त श्लोक में 'मध्ये' का अर्थ बीच न मानकर क्षेत्र मान लेने से सब ठीक हो जाता है। षड्ज-पंचम-भाव का अर्थ यही है कि जिस प्रकार पंचम स्वर षड्ज स्वर से डेढ़गुना ऊँचा है, उसी प्रकार ऋषभ से डेढ़गुना ऊँचा धैवत, गांधार से डेढ़गुना ऊँचा निषाद और मध्यम स्वर से डेढ़गुना ऊँचा तार-षड्ज होगा।

इस हिसाब से ऋषभ का पंचम धैवत, गांधार का पंचम निषाद और मध्यम का पंचम तार षड्ज होगा। इस प्रकार 'षड्ज-पंचम-भाव' की निम्नलिखित चार जोड़ियाँ बनीं :—

सपथो रिधयोश्चैव तथैव गनिषादयोः ।

संवादः सम्मतो लोके मसयो स्वरयोर्मिथः ॥

अर्थात्—'सा - प, रे - ध, ग - नि, म - सां, संवाद संगीतज्ञों में प्रसिद्ध हैं ही :—

षड्ज और पंचम स्वरों की ऊँचाई-निचाई का सम्बन्ध ही षड्ज-पंचम-भाव कहलाता है, जिसका गुणांतर  $2\frac{1}{2}$  होता है। षड्ज की लम्बाई छत्तीस इन्च है; इसमें डेढ़ का भाग दिया, तो  $36 \div 1\frac{1}{2} = 24$  इन्च पर पंचम हो गया। इसी प्रकार पंचम, जो कि चौबीस इन्च पर स्थित है, इसका डेढ़ से गुणा कर दिया, तो  $24 \times 1\frac{1}{2} = 36$  इन्च पर षड्ज हो गया। अब इसी हिसाब को लेकर, अर्थात् षड्ज-पंचम-भाव से 'रे ध' की दूरी निकाली गई, तो इस प्रकार निकली :—

चूँकि ऋषभ की लम्बाई वत्तीस इन्च है, तो  $32 \div 1\frac{1}{2} = 21\frac{1}{3}$ , इसलिए  $21\frac{1}{3}$  इन्च पर धैवत स्वर स्थित हुआ।

सा	रे	प	ध	सां
३६	३२	२४	२१ $\frac{1}{3}$	१८

निषाद

पसयोर्मध्यभागे स्यात् भागत्रयसमन्विते ।

पूर्वभागद्वयं त्यक्त्वा निषादो राजते स्वरः ॥

पंचम और तार-षड्ज की लम्बाई के तीन भाग करके पहले दो भागों को छोड़ दिया जाए, तो तीसरे भाग पर निषाद स्वर होगा। पंचम और तार-षड्ज के बीच

संगीत-विशारद



की लम्बाई छह इन्च है। इसके तीन बराबर भाग किए गए तो  $6 \div 3 = 2$  इन्च का प्रत्येक भाग हुआ; चूँकि षड्ज की लम्बाई अठारह इन्च है, अतः  $9 \times 2 = 18$  इन्च पर निषाद स्वर स्थापित हुआ।

सा	प	नि	सा
३६	२४	२०	१८

ध्यान रहे, यह निषाद हमारा कोमल निषाद है। ऊपर हम बता चुके हैं कि श्रीनिवास ने अपने शुद्ध ठाठ में 'ग, नि' दोनों स्वर ले लिए हैं, जिन्हें हम आजकल 'कोमल ग, नि' कहते हैं :—

## पं० भातखण्डे-वर्णित शुद्ध तथा विकृत

### स्वरों की सारिणी

स्वर (मेरु से)	तार की लम्बाई इंचों में (मेरु से)	अन्तराल		आवृत्ति
		भिन्नांक में	सेवर्ट में	
मेरु ( स )	३६	१	०	२४०
सम्पूर्ण तार की लम्बाई ३६ इन्च तथा आवृत्ति २४०	२३	$1\frac{1}{2}$	२८.०	२५६
रि	४	$\frac{1}{2}$	५१.१	२७०
ग	६	$\frac{1}{3}$	७८.१	२८८
ग	$6\frac{1}{2}$	$\frac{2}{3}$	८६.१	३००
म	८	$\frac{3}{4}$	१२५.०	३२०
म	$9\frac{1}{2}$	$1\frac{1}{4}$	१४८.१	३३७.३
प	१२	$1\frac{1}{2}$	१६७.१	३६०
ध	१४	$1\frac{2}{3}$	२०४.१	३८४
ध	$14\frac{1}{2}$	$1\frac{5}{6}$	२२७.२	४०५
नि	१६	$1\frac{2}{3}$	२५५.२	४३२
नि	$16\frac{1}{2}$	$1\frac{5}{6}$	२७३.०	४५०
सं	१८	२	३०१.०	४८०

उपर्युक्त वर्णन के अनुसार श्रीनिवास पंडित के शुद्ध स्वर-स्थानों की लम्बाई आंदोलनों सहित इस प्रकार हुई :—



## श्रीनिवास के शुद्ध स्वर

स्वर	स्वर का पूरा नाम	तार की लम्बाई	आंदोलन-संख्या
सा	षड्ज (मध्य-सप्तक)	३६ इन्च	२४०
सां	षड्ज (तार-सप्तक)	१८ इन्च	४८०
सां	षड्ज (अतितार-सप्तक)	९ इन्च	९६०
म	मध्यम (मध्य-सप्तक)	२७ इन्च	३२०
प	पंचम (मध्य-सप्तक)	२४ इन्च	३६०
ग	गांधार (मध्य-सप्तक)	३० इन्च	२८८
रे	ऋषभ (मध्य-सप्तक)	३२ इन्च	२७०
ध	धौवत (मध्य-सप्तक)	२१ $\frac{१}{३}$ इन्च	४०५
नि	निषाद (मध्य-सप्तक)	२० इन्च	३२

ये तो हुए श्रीनिवास के शुद्ध स्वर। अब रहे पाँच विकृत स्वर (कोमल ऋषभ, कोमल धौवत, तीव्रतर मध्यम, तीव्र गांधार और तीव्र-निषाद)। श्रीनिवास पंडित गांधार और निषाद के विकृत होने पर उन्हें तीव्र गांधार और निषाद कहते हैं, जबकि हमारी पद्धति में 'ग, नि' विकृत होने पर 'कोमल ग, नि' कहलाते हैं।

### श्रीनिवास के विकृत स्वर

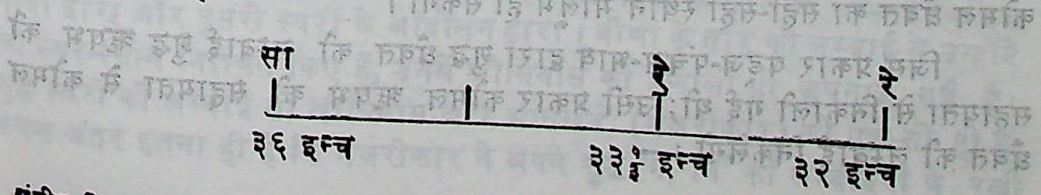
#### कोमल रे

भागत्रयोदिते मध्ये मेरोक्तर्षभसंज्ञितात् ।

भागद्वयोत्तरं मेरोः कुर्यात् कोमलरिस्वरम् ॥

मध्य 'सा' और शुद्ध 'रे' के बीच में तार की जितनी लम्बाई है, उसके तीन भाग किए, तो 'सा' से दूसरे भाग पर या मेरु से दूसरे भाग पर कोमल 'रे' स्वर बोलेगा।

'सा' और 'रे' का अन्तर चार इन्च है। इसके तीन भाग किए, तो प्रत्येक भाग  $\frac{३२}{३}$  इन्च का हुआ, क्योंकि 'रे' की लम्बाई षड्ज से बत्तीस इन्च की दूरी पर है, अतः  $३२ + \frac{३२}{३} = ३२\frac{१}{३}$  इन्च पर कोमल 'रे' स्थापित हुआ। नीचे के चित्र में षड्ज और शुद्ध ऋषभ के तार की चार इन्च लम्बाई दिखाकर, तीन भाग करके कोमल ऋषभ दिखाया जाता है:—



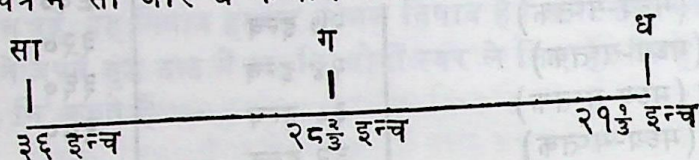
संगीत-विशारद



## तीव्र ग

मेरुधैवतयोर्मध्ये तीव्रगांधारमाचरेत् ।

मेरु (षड्ज) और धैवत के बीच में तीव्र गांधार है । मेरु और 'ध' का अन्तर इस प्रकार है—सा ३६-ध २१ $\frac{३}{४}$  = १४ $\frac{३}{४}$ ; इसका आधा हुआ ७ $\frac{३}{८}$  इन्च, अतः तीव्र गांधार की लम्बाई धैवत से ७ $\frac{३}{८}$  इन्च हुई और घुड़च से हुई २१ $\frac{३}{४}$  + ७ $\frac{३}{८}$  = २८ $\frac{३}{८}$  इन्च नीचे के चित्र में 'सा' और 'ध' के बीच में तीव्र गांधार दिखाया गया है :—

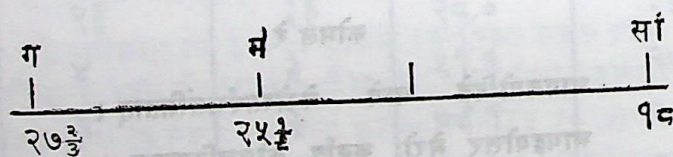


## तीव्रतर मध्यम

भागत्रयविशिष्टेस्मिन् तीव्रगांधारषड्जयोः ।

पूर्वभागोत्तरं मध्ये सं तीव्रतरमाचरेत् ॥

तीव्र गांधार और तार-षड्ज के मध्य के तीन भाग करके प्रथम भाग पर तीव्रतर मध्यम स्थापित होगा । तीव्र 'ग' और तार 'सा' का अन्तर = २८ $\frac{३}{८}$  — १८ = १० $\frac{३}{८}$  अर्थात् ३ $\frac{३}{८}$  हुआ; इसके तीन भाग किए तो ३ $\frac{३}{८}$  × ३ = १० $\frac{३}{८}$  इन्च का प्रत्येक भाग होगा अतः तीव्रतर मध्यम घुड़च से १८ + ३ $\frac{३}{८}$  + ३ $\frac{३}{८}$  = २४ $\frac{३}{८}$  इन्च की दूरी पर होगा । नीचे के चित्र में तार-षड्ज और तीव्र गांधार के बीच में तीव्र मध्यम का स्थान देखा है :—



## कोमल धैवत

भागत्रयान्विते मध्ये पंचमोत्तरषड्जयोः ।

कोमलो धैवतः स्थाप्यः पूर्वभागे विवेकिभिः ॥

पंचम और तार षड्ज के बीच के तार की छह इन्च लम्बाई के तीन भाग करें, तो कोमल धैवत पंचम से पहले भाग पर होगा; क्योंकि पंचम की लम्बाई घुड़च से चौबीस इन्च है । इसमें से दो घटाए जाएँ, तो बाईस इन्च पर कोमल धैवत उपयुक्त श्लोक के अनुसार होना चाहिए । किन्तु जब हम इसे वीणा पर बजाते हैं, तो यह कुछ चढ़ा हुआ बोलता है, अतः इसे भी षड्ज-पंचम-भाव से ही निकालना होगा; तभी कोमल धैवत का सही-सही स्थान मालूम हो सकेगा ।

जिस प्रकार षड्ज-पंचम-भाव द्वारा शुद्ध धैवत की लम्बाई शुद्ध ऋषभ की सहायता से निकाली गई थी; उसी प्रकार कोमल ऋषभ की सहायता से कोमल धैवत की लम्बाई निकलेगी :—



रे की लम्बाई  $33\frac{1}{3}$  इन्च है। इसमें डेढ़ का भाग दिया  $33\frac{1}{3} \div 9\frac{1}{2} = 1\frac{1}{3} \times 2 = 2\frac{2}{3}$  इन्च; अर्थात् कोमल धैवत की लम्बाई घुड़च से  $2\frac{2}{3}$  इंच बिलकुल ठीक है।

### तीव्र निषाद

तथैव घसयोर्मध्ये भागत्रयसमन्विते ।

पूर्वभागद्वयाद्धैवा निषादं तीव्रमाचरेत् ॥

धैवत और तार-षड्ज की लम्बाई (जोकि  $1\frac{1}{3}$  इन्च है) के तीन भाग किए जाएँ, तो धैवत से दूसरे भाग पर तीव्र निषाद स्थित होगा; अर्थात् :—

धैवत  $29\frac{1}{3}$ —तार षड्ज  $9\frac{1}{2} = 1\frac{1}{3} \div 3 = \frac{1}{3}$  इन्च का प्रत्येक भाग हुआ और घुड़च से निषाद की लम्बाई  $9\frac{1}{2} + \frac{1}{3} = 9\frac{4}{6}$  इन्च हुई। नीचे के चित्र में धैवत और तार-षड्ज के तीन भागों में तीव्र निषाद देखिए :—

ध	नि	सां
$29\frac{1}{3}$	$9\frac{4}{6}$	$9\frac{1}{2}$

इस प्रकार श्रीनिवास के पाँच विकृत स्वर निश्चित हुए, जिनकी लम्बाई निम्नांकित नक्शे में देखिए :—

### श्रीनिवास के पाँच विकृत स्वर

स्वर	स्वर का पूरा नाम	तार की लम्बाई	आंदोलन
रे	कोमल ऋषभ (मध्य-सप्तक)	$33\frac{1}{3}$ इन्च	$25\frac{1}{2}$
ग	तीव्र गांधार	$25\frac{1}{3}$ इन्च	$309\frac{1}{3}$
म	तीव्रतम मध्यम	$24\frac{1}{2}$ इन्च	$384\frac{1}{2}$
ध	कोमल धैवत	$22\frac{2}{3}$ इन्च	$355\frac{1}{2}$
नि	तीव्र निषाद	$9\frac{4}{6}$ इन्च	$852\frac{1}{2}$

श्रीनिवास के उपर्युक्त पाँच विकृत स्वरों में 'ग, नि' तीव्र हैं। इसका कारण यही है कि श्रीनिवास इन दोनों तीव्र स्वरों को विकृत मानते थे, जबकि हम आजकल इन्हें शुद्ध स्वर मानते हैं।

'अभिनव राग-मंजरी' के लेखक श्री भातखंडे ने आधुनिक संगीत-पद्धति के स्वरों की स्थापना दो प्रकार से बताई है—एक तो वीणा के तार की लम्बाई विभिन्न नापों द्वारा और दूसरी स्वरों के आंदोलन द्वारा। वीणा के तार की लम्बाई से उन्होंने जो स्वर-स्थान निश्चित किए हैं, उनमें श्रीनिवास की प्रणाली ही अपनाई गई है। शुद्ध स्वरों की लम्बाई तो श्रीनिवास और भातखंडे (मंजरीकार) की एक-सी ही है; केवल अंतर इतना ही है कि मंजरीकार ने अपने शुद्ध 'ग, नि' की लम्बाईयाँ वे रखी



हैं; जो श्रीनिवास ने तीव्र 'ग, नि' की रखी हैं। इसका यही कारण है कि मंजरीकार अपने शुद्ध ठाठ में 'ग, नि' तीव्र ही लेते हैं, जबकि श्रीनिवास अपने शुद्ध ठाठ में कोमल 'ग, नि' लेते हैं।

विकृत स्वरों में मंजरीकार ने कोमल 'ग-नि' की लम्बाइयाँ वही रखी हैं, जो श्रीनिवास ने शुद्ध 'ग, नि' की रखी थीं, केवल 'रे, धु, म' इन तीनों स्वरों के स्थान मंजरीकार ने बदलकर बताए हैं। कोमल ऋषभ और कोमल धैवत के लिए उन्होंने लिखा है :—

मध्ये षड्जपंचमयो संस्थित कोमलर्षभः ॥

षड्जपंचमभावेन तत्संवादी ध कोमलः ॥

अर्थात्—मध्य-षड्ज और शुद्ध रे के बीचों-बीच कोमल ऋषभ स्थापित है और उसी के षड्ज-पंचम-भाव द्वारा कोमल धैवत का स्थान नियत किया है। मंजरीकार के कोमल ऋषभ तथा कोमल धैवत की लम्बाई इस प्रकार निकलती है :—

### कोमल ऋषभ

मध्य 'सा' और शुद्ध 'रे' के तार की लम्बाई चार इन्च के दो बराबर भाग करें, तो प्रत्येक भाग दो इन्च का हुआ; क्योंकि मध्य-षड्ज छत्तीस इन्च पर है और शुद्ध 'रे' बत्तीस इन्च पर है, अतः कोमल 'रे' घुड़च से चौतीस इन्च पर होगा।

### कोमल धैवत

इसे षड्ज-पंचम-भाव से निकाला गया, तो इस प्रकार निकलेगा :—  
कोमल ऋषभ की लम्बाई चौतीस इन्च है। इसमें डेढ़ का भाग दिया तो  $34 \div 1\frac{1}{2} = 22\frac{2}{3}$  इन्च पर कोमल धैवत हुआ। अब रहा मंजरीकार का तीव्र मध्यम, इसके लिए वह लिखते हैं :—

मध्यपंचमयोर्मध्ये तीव्रमध्यमताचरेत् ॥

अर्थात्—शुद्ध मध्यम और पंचम के ठीक बीचों-बीच तीव्र मध्यम है। शुद्ध मध्यम की लम्बाई सत्ताईस इन्च और पंचम की चौबीस इन्च है, तो  $24\frac{1}{2}$  इन्च पर तीव्र मध्यम स्थापित हुआ।

इसके अतिरिक्त मंजरीकार श्री भातखंडे ने स्वरों के आंदोलन द्वारा स्वरों की ऊँचाई-निचाई नियत की है। मंजरीकार के स्वरों की आंदोलन-संख्या समझने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि मंजरीकार का शुद्ध ठाठ विलावल है अर्थात् वह अपने ठाठ के सब शुद्ध स्वर मानते हैं। उनके बारह शुद्ध-विकृत स्वर, तार की लम्बाई तथा आंदोलन संख्या सहित इस प्रकार हैं :—



## मंजरीकार (भातखंडे) के बारह स्वर-स्थान

स्वर	शुद्ध या विकृत	तार की लम्बाई	आंदोलन-संख्या
१ सा	शुद्ध	३६ इन्च	२४०
२ रे	कोमल विकृत	३४ इन्च	२५४ $\frac{३}{४}$
३ रे	तीव्र (शुद्ध)	३२ इन्च	२७०
४ ग	कोमल (विकृत)	३० इन्च	२८८
५ ग	तीव्र (शुद्ध)	२८ $\frac{३}{४}$ इन्च	३०१ $\frac{३}{४}$
६ म	कोमल (शुद्ध)	२७ इन्च	३२०
७ म	तीव्र (विकृत)	२५ $\frac{३}{४}$ इन्च	३३८ $\frac{३}{४}$
८ प	शुद्ध	२४ इन्च	३६०
९ ध	कोमल (विकृत)	२२ $\frac{३}{४}$ इन्च	३८१ $\frac{३}{४}$
१० ध	तीव्र (शुद्ध)	२१ $\frac{३}{४}$ इन्च	४०५
११ नि	कोमल (विकृत)	२० इन्च	४३२
१२ नि	तीव्र (शुद्ध)	१८ $\frac{३}{४}$ इन्च	४५२

यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि मंजरीकार के कोमल 'रे', कोमल 'ध' और तीव्र 'म' ये तीन स्वर-स्थान प्राचीन ग्रन्थों से अलग हैं।

### वीणा के तार पर

श्रीनिवास और मंजरीकार के स्वर-स्थान तथा आंदोलन-संख्याएँ

श्रीनिवास के स्वर-स्थान			मंजरीकार के स्वर-स्थान		
स्वर-नाम	लम्बाई	आंदोलन-संख्या	स्वर-नाम	लम्बाई	आंदोलन-संख्या
षड्ज शुद्ध	३६ इन्च	२४०	षड्ज	३६ इन्च	२४०
ऋषभ कोमल	३३ $\frac{३}{४}$ इन्च	२५८ $\frac{३}{४}$	ऋषभ कोमल	३४ इन्च	२५४ $\frac{३}{४}$
ऋषभ शुद्ध	३२ इन्च	२७०	ऋषभ तीव्र	३२ इन्च	२७०
गांधार शुद्ध	३० इन्च	२८८	गांधार कोमल	३० इन्च	२८८
गांधार तीव्र	२८ $\frac{३}{४}$ इन्च	३०१ $\frac{३}{४}$	गांधार तीव्र	२८ $\frac{३}{४}$ इन्च	३०१ $\frac{३}{४}$
मध्यम शुद्ध	२७ इन्च	३२०	मध्यम कोमल	२७ इन्च	३२०
मध्यम तीव्र	२५ $\frac{३}{४}$ इन्च	३३८ $\frac{३}{४}$	मध्यम तीव्र	२५ $\frac{३}{४}$ इन्च	३३८ $\frac{३}{४}$

संगीत-विशारद



पंचम शुद्ध	२४ इन्च	३६०	पंचम	१४ इन्च	३६०
धैवत कोमल	२२ $\frac{३}{४}$ इन्च	३७७ $\frac{३}{४}$	धैवत कोमल	२२ $\frac{३}{४}$ इन्च	३८१ $\frac{३}{४}$
धैवत शुद्ध	२१ $\frac{३}{४}$ इन्च	४०५	धैवत तीव्र	२१ $\frac{३}{४}$ इन्च	४०५
निषाद शुद्ध	२० इन्च	४३२	निषाद कोमल	२० इन्च	४३२
निषाद तीव्र	१९ $\frac{३}{४}$ इन्च	४५२ $\frac{३}{४}$	निषाद तीव्र	१९ $\frac{३}{४}$ इन्च	४५२ $\frac{३}{४}$
षड्ज शुद्ध (तार)	१८ इन्च	४८०	तार षड्ज	१८ इन्च	४८०

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि श्रीनिवास के सभी शुद्ध स्वर-स्थान मंजरीकार ने मान लिए हैं; केवल शुद्ध-विकृत स्वर-स्थानों के बारे में इन दोनों विद्वानों के मत नहीं मिलते। अतः हम बताएँगे कि इनका मतैक्य तथा मतभेद कौन-कौनसी बातों पर है।

### मतैक्य (समानता)

१. दोनों ही विद्वान् कोमल धैवत तथा शुद्ध धैवत को षड्ज-पंचम से निकालकर वीणा के तार पर स्थापित करते हैं।

२. दोनों ही विद्वानों ने तीव्र निषाद को भिन्न रीति से वीणा के तार पर स्थापित करके एकदम से उसकी लम्बाई १९ $\frac{३}{४}$  इंच स्वीकार की है।

३. दोनों ही विद्वानों ने कोमल ऋषभ, तीव्र मध्य और कोमल धैवत, ये तीन स्वर वीणा के तार पर भिन्न-भिन्न रीति से स्थापित किए हैं।

४. कोमल 'रे', कोमल 'ध' और तीव्र 'म' को छोड़कर शेष स्वर-स्थान दोनों ही विद्वानों के एक से हैं।

५. दोनों ही विद्वानों के शुद्ध स्वरों तथा कोमल गांधार और कोमल निषाद के स्थानों को वर्तमान संगीतज्ञ मानते हैं और वे हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में प्रचलित हैं।

### मतभेद (असमानता)

श्रीनिवास	मंजरीकार (भातखण्डे)
१. शुद्ध ठाठ में गांधार-निषाद कोमल रखते हैं।	१. शुद्ध ठाठ में गांधार-निषाद तीव्र (शुद्ध) रखते हैं।
२. हमारे काफी ठाठ को शुद्ध ठाठ मानते हैं।	२. बिलावल ठाठ को शुद्ध ठाठ मानते हैं।
३. 'सा' और 'रे' के तार की लम्बाई के तीन भाग करके 'सा' से दूसरे भाग पर कोमल 'रे' स्थापित करते हैं, जिसकी लम्बाई घुड़च से ३२ $\frac{३}{४}$ इंच होती है।	३. 'सा' और 'रे' के तार की लम्बाई के दो भाग करके इन दोनों स्वरों के ठीक मध्य में कोमल 'रे' की स्थापना करते हैं, जिसकी लम्बाई घुड़च से चौतीस इंच होती है।
४. कोमल धैवत २२ $\frac{३}{४}$ इंच पर स्थापित करते हैं।	४. कोमल धैवत २२ $\frac{३}{४}$ इंच पर स्थापित करते हैं।



- |  |  |
|--|--|
| <p>५. तीव्र निषाद <math>9\frac{1}{2}</math> इन्च पर स्थापित करते हैं।</p> <p>६. तीव्र निषाद का स्थान निकालने के लिए तीव्र 'ध' और तार-षड्ज के तार की लम्बाई के तीन भाग करके तीव्र 'ध' से दूसरे भाग पर तीव्र 'नि' वीणा पर स्थापित करते हैं।</p> <p>७. तीव्रतर मध्यम <math>2\frac{1}{2}</math> इन्च पर स्थापित करते हैं।</p> <p>८. कोमल 'रे', कोमल 'ध' और तीव्रतर 'म' को छोड़कर बाकी सब शुद्ध और विकृत स्वर वर्तमान हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में प्रचलित हैं।</p> <p>९. कोमल 'रे' तीव्रतर 'म' और कोमल 'ध', ये तीन स्वर 'संगीत-पारिजात' तथा अन्य मध्यकालीन ग्रंथकारों के आधार पर हैं।</p> | <p>५. तीव्र निषाद <math>9\frac{1}{2}</math> इन्च पर स्थापित करते हैं।</p> <p>६. षड्ज-पंचम-भाव से तीव्र ध्रुवत की लम्बाई निकालकर वीणा पर इसका स्थान निश्चित करते हैं।</p> <p>७. तीव्र मध्यम <math>2\frac{1}{2}</math> इन्च पर स्थापित करते हैं।</p> <p>८. इनके कोमल, तीव्र या शुद्ध और विकृत सभी स्वर एकमत से वर्तमान हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में प्रचलित हैं।</p> <p>९. कोमल 'रे', तीव्र 'म' और कोमल 'ध', इनके ये तीनों स्वर-स्थान मध्यकालीन ग्रंथकारों से मेल नहीं खाते। यह इनके स्वयं आविष्कारक हैं।</p> |
|--|--|

## स्वरों की इष्टता, अनिष्टता और सम्वाद सम्बन्ध

इष्ट का अर्थ 'प्रिय' या 'चाहा हुआ' और अनिष्ट का अर्थ 'अप्रिय' या 'न चाहा हुआ' है। जो दो स्वर साथ-साथ छिड़ने पर भले प्रतीत हों, वे परस्पर 'इष्ट' कहलाते हैं और साथ-साथ छेड़े जाने पर जिनकी ध्वनि भली प्रतीत न हो, वे परस्पर 'अनिष्ट' कहलाते हैं।

इष्टता के भी दो प्रकार हैं—'सामान्य इष्टता' और 'परम इष्टता'। 'सामान्य इष्टता' को 'अनुवाद' और 'परम इष्टता' को 'सम्वाद' भी कहा जाता है। इसी प्रकार 'परम अनिष्टता' को 'विवाद' कहा जाता है।

षड्ज और पंचम के साथ-साथ छिड़ने पर अथवा षड्ज और मध्यम के साथ-साथ छिड़ने पर जिस इष्टता की प्राप्ति होती है, उसे 'स्वर सम्वाद' कहते हैं। 'सम्वाद' का अर्थ यहाँ 'सम्यक् + वाद' या 'भली भाँति बोलना' है। जिन दो स्वरों में षड्ज-पंचम अथवा षड्ज-मध्यम के बराबर अन्तर हो, उनमें भी परस्पर 'स्वर-सम्वाद' होता है।

षड्ज और अन्तर (स्वयंभू) गांधार का पारस्परिक इष्ट और प्राकृतिक अन्तर एक विशेष इष्टता है, जिसका परिमाण 'सम्वाद' की अपेक्षा कम और अनुवाद की अपेक्षा अधिक है। मतंग ने मध्यम-ग्राम में इस अन्तर को भी 'सम्वाद' कहा है।

सम्वाद का एक दूसरा अर्थ 'सादृश्य' अथवा 'एक-जैसी वस्तु का अन्यत्र दर्शन' है। इसे 'स्वर-संघात (स्वर-समूह) का सम्वाद' या 'राग-सम्वाद' कहा जा सकता है।



जिन दो स्वरों को क्रमपूर्वक छेड़ने में उस समय कानों को अच्छा न लगे, जबकि उन दोनों में से कोई एक अंश स्वर ( प्रधान स्वर या कीनोट ) हो, तो उन दोनों का पारस्परिक अंतराल 'विवादी' कहलाता है। अर्थात् 'विवाद' दो स्वरों में पाए जाने वाले अनिष्ट अंतराल का द्योतक है। स्वरों का पारस्परिक 'विवाद' सम्बन्ध अत्यन्त अनिष्ट कहलाता है। जैसे- 'रे-गु', 'ध-नि' अंतराल 'ग-म' और 'नि-स' अंतराल को 'विवाद' कहा गया है।

तीन, चार, छह, सात, नौ और तेरह श्रुतियों के अन्तर पर स्थित स्वर परस्पर 'इष्ट' होते हैं और पाँच, आठ तथा दस श्रुतियों का अन्तर 'अनिष्ट' कहा गया है।

### स्वर संवाद और स्वर संघात

यह बताया जा चुका है कि जब दो स्वरों की संगति प्रिय होती है तो उसे एक स्वर का दूसरे स्वर के साथ सम्वाद होना कहा जाता है। जब दोनों ध्वनियाँ अप्रिय सिद्ध होती हैं तो उन्हें विवाद सम्बन्ध नाम से जाना जाता है।

महर्षि भरत ने स-प और स-म अर्थात् षड्ज-पंचम और षड्ज-मध्यम सम्वाद की चर्चा की है। इसकी जाँच के लिए तानपूरा के दो तारों को एक स्वर में मिला लीजिए। अब एक तार को जरा-सा चढ़ाइए तो दोनों तारों की ध्वनि को एक साथ छेड़ने पर वे बेसुरी प्रतीत होंगी। जब दोनों स्वरों का अंतराल एक अर्द्ध स्वर होता है तो बेसुरापन सबसे अधिक हो जाता है। तार को क्रमशः और चढ़ाया जाय तो बेसुरापन घटता जाता है और कोमल गु (  $\frac{6}{5}$  ) पर प्रायः लुप्त हो जाता है। शुद्ध ग (  $\frac{5}{4}$  ) पर पहुँचकर संगति सुरीली हो जाती है। तार को उसके बाद भी चढ़ाएँ तो फिर बेसुरापन बढ़ेगा और म (  $\frac{4}{3}$  ) पर फिर संगति सुरीली हो जाती है। इस प्रकार तानपूरे के दोनों तारों के स्वरों की संगति या सम्बन्ध बेसुरा हो-होकर प (  $\frac{3}{2}$  ), ध (  $\frac{2}{1}$  ) पर सुरीला हो जाता है। अंत में नि पर बेसुरा होकर पुनः पूरी तरह सुरीला हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि स-प, स-म के अलावा कुछ और सम्वाद भी ( ग्राम में ) मौजूद हैं। जिन स्वरों का स या षड्ज से सम्वाद है उन्हें 'इष्ट स्वर' और जिनका विवाद है उन्हें 'अनिष्ट स्वर' कह दिया जाता है।

विदेशी शुद्ध ग्राम की सारणी देखने से पता चलता है कि जिन स्वरों का षड्ज से अंतराल सरल है अर्थात् छोटी-छोटी संख्याओं से प्रकट किया गया है वे तो इष्ट स्वर हैं और जिनका अंतराल बड़ी संख्याओं से प्रकट किया गया है वे अनिष्ट हैं। इष्ट और अनिष्ट स्वरों के बीच की सीमा का अंक आठ है। अंक के छोटेपन पर ही इष्टता की मात्रा निर्भर करती है, जिसका उदाहरण इस प्रकार है:-

अति इष्ट — प (  $\frac{3}{2}$  ), म (  $\frac{4}{3}$  )

इष्ट — ध (  $\frac{5}{4}$  ), ग (  $\frac{5}{3}$  )

अल्प इष्ट — गु (  $\frac{6}{5}$  ), ध्रु (  $\frac{7}{6}$  )

अनिष्ट — र (  $\frac{8}{5}$  ), लघु स्वर (  $\frac{9}{8}$  )

अति अनिष्ट — रे (  $\frac{9}{5}$  )



इस विचार से यह मानना पड़ता है कि हिन्दुस्तानी शुद्ध सप्तक का ध (३९) अति अनिष्ट स्वरों में है। वास्तव में इष्ट और अनिष्ट स्वरों का सीधा सम्बन्ध आवर्तकों से है जिनको प्राचीन संगीत की दृष्टि से श्रुति-अंतराल कहा जा सकता है। किसी स्वर के आवर्तकों में ये स्वर स्वभावतः मौजूद हैं। यह बात मौलिक स्वर की आवृत्ति को एक मानकर नीचे दिखाया जा रहा है :—

१ ला सप्तक	२ रा सप्तक	३ रा सप्तक	४ था सप्तक
१	२	४ ५ ६	७ ८ ९
सं	प	म ग गु	र
		३ ५४ ६	
		ध प	

इस सांकेतिक विवरण को देखने से पता चलता है कि जो स्वर निकट के आवर्तकों के मेल से बने हैं और जो दूर के या अधिक ऊँचे आवर्तकों के मेल से बने हैं, वे अनिष्ट हैं। इस तरह स्वर के बनाने वाले आवर्तक जितने ऊँचे होते जाएँगे अनिष्टता उतनी ही बढ़ती जाएगी। इसलिये १५ वें और १६ वें आवर्तकों से बना हुआ अर्द्ध स्वर का अंतराल या रे बहुत ही अधिक अनिष्ट होता है। उपर्युक्त संकेत से यह बात भी प्रकट होती है कि ग्रामों के बनाने में सातवें आवर्तक से काम नहीं लिया गया है। इटली के वैज्ञानिक ब्लेसरना के मत ९ स्वर में जो ७ है, इष्टता का काफी अंश है और इसका कभी-कभी सरलता के साथ उपयोग किया जा सकता है।

हेल्महोर्ज के मतानुसार जब दो स्वरों के बीच डोल पैदा होता है तो उससे कानों को कष्ट पहुँचना है और ऐसे स्वरों की संगति अनिष्ट मालूम होती है। ठीक वैसे ही जैसे हिलती हुई रोशनी देखने पर होती है या बार-बार घटती-बढ़ती रोशनी को देखकर आँखों को कष्ट पहुँचता है। यह बताया जा चुका है कि दो स्वरों की आवृत्तियों में जितना अन्तर होता है। प्रति सैकिण्ड उतने ही डोल सुनाई पड़ते हैं। जब आवृत्तियों का अन्तर बहुत अधिक बढ़ जाता है तो डोल भी तेज हो जाता है और तब कानों पर उतना अप्रिय प्रभाव नहीं पड़ता। उसी तरह जब अन्तर बहुत ही थोड़ा होता है तो डोल धीमा हो जाता है और यह भी उतना अप्रिय नहीं लगता। इनके बीच, डोलों की एक खास संख्या है जिस पर यह सबसे अधिक कटु मालूम होता है। हेल्महोर्ज ने यह निर्णय किया है कि जब साधारण आवृत्ति के दो स्वरों की संगति में ३३ डोल प्रति सैकिण्ड होते हैं तो वह संगति सबसे अधिक अनिष्ट होती है। लेकिन आजकल सबसे अधिक अनिष्ट संगति के डोल की संख्या २३ मानी जाती है। यदि एक स्वर की आवृत्ति २४० मानें तो २३ डोलों के लिए दूसरे स्वर की आवृत्ति को २६३ या २१७ मानना पड़ेगा। इन दोनों स्वरों का अन्तराल लगभग एक अर्द्ध-स्वर से निकलता है। इसीलिए अर्द्ध-स्वर का अन्तराल सबसे अधिक विवादी



होता है। भरत आदि प्राचीन शास्त्रकारों ने भी दो श्रुति के अन्तर वाले स्वर को विवादी माना है। जैसे—रे ग, ग म, ध नि इत्यादि परस्पर विवादी स्वर हैं। वास्तव में प्राचीन दो श्रुतियों का अन्तराल आधुनिक अर्द्ध स्वर का द्योतक है।

यदि दो स्वरों के अंतराल को आगे बढ़ाएँ तो स्पष्ट है कि डोलों की गिनती बढ़ती जाएगी और संगति की अनिष्टता कम होती जाएगी। यह सामान्य अनुभव की बात है कि पूरे एक स्वर के अंतराल पर अनिष्टता अर्द्ध स्वर की अपेक्षा बहुत कुछ कम हो जाती है। कोमल ग पर डोल सुनाई नहीं पड़ता और अनिष्टता प्रायः लुप्त हो जाती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जब दो स्वरों का अंतराल ग (१) से छोटा होता है तो वे स्वर परस्पर विवादी होते हैं। यह विवाद अर्द्ध स्वर के अंतराल पर सबसे अधिक होता है परन्तु यह साधारण आवृत्ति के लिए ही ठीक है। दोनों की आवृत्ति बहुत अधिक होने पर संभव है कि एक गुरु स्वर के अंतराल पर भी डोल सुनाई न दें। इसलिए ऐसा नहीं समझना चाहिए कि हर आवृत्ति पर एक अर्द्ध स्वर का अंतराल सबसे अधिक अनिष्ट होता है या ग के अंतराल पर अनिष्टता लुप्त हो जाती है।

यह बताया जा चुका है कि २४० और २६३ के बीच सबसे अधिक विवाद है जिनका अंतराल लगभग अर्द्ध स्वर है। लेकिन जब दोनों स्वरों को दूना करके तार सप्तक में ले जाया जाए तो दोनों का अंतराल तो वही अर्द्ध स्वर रहेगा पर डोलों की संख्या अब ४६ प्रति सैकिण्ड हो जाएगी। गिनती बढ़ जाने के कारण डोल में तेजी आ जाने से यह अर्द्ध स्वर का अंतराल अब उतना अनिष्ट नहीं जँचेगा। लेकिन इसका यह मतलब भी नहीं कि तार सप्तक में भी, मध्य सप्तक की तरह ही, २३ डोल पर ही सबसे अधिक विवाद प्रकट होगा। सबसे अधिक विवाद के लिए डोल की संख्या २३ और ४६ के बीच कहनी पड़ेगी। निष्कर्ष यही है कि जैसे-जैसे दोनों स्वरों की आवृत्ति बढ़ती है वैसे ही वैसे सबसे अधिक विवाद पैदा करने वाला अंतराल तो अर्द्ध-स्वर से छोटा होता है लेकिन डोलों की संख्या बड़ी होती जाती है। ठीक इससे उल्टा परिणाम स्वरों की आवृत्ति घटने में होता है। कितनी आवृत्ति पर कितना डोल सबसे अधिक अनिष्ट होता है, इसकी जाँच में वैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोग किए हैं। उनमें से मेयर और स्टम्फ के प्रयोग का परिणाम नीचे की तालिका में प्रस्तुत है जो ऊपर की समस्त बातों को स्पष्ट करती है—

स्वरों की आवृत्ति	सबसे अधिक अनिष्ट डोल की संख्या	जिस अंतराल पर डोल सुनाई नहीं पड़ते
६६	१६ प्रति सैकिण्ड	६ अर्द्धस्वर
२५६	२३ "	४ "
५७५	४३ "	३ "
१७०७	८४ "	२ "
२८००	१०० "	१.५ "



हेल्महोज के इस निर्णय को मान लेने पर भी कि दो स्वरों के विवाद का कारण उन स्वरों के संयोग से उत्पन्न 'डोल' है, स्वर सम्वाद की समस्या हल नहीं होती। क्योंकि कानों को सुनाई देने वाला 'डोल' तो तभी पैदा होता है जब दोनों स्वरों की आवृत्तियाँ पास-पास होती हैं। इसलिए सिर्फ 'डोल' के आधार पर यह नहीं बताया जा सकता कि 'सा' और 'नि' में विवाद क्यों है, जो एक-दूसरे से बहुत दूर हैं। फिर लगातार आवृत्तियों का अन्तर बढ़ाते जाने पर भी सम्वाद के पश्चात् विवाद और विवाद के पश्चात् सम्वाद क्यों होता है ?

इस समस्या को हेल्महोज ने एक और धारणा से हल किया है। उन्होंने बताया कि 'डोल' जिस तरह स्वर के मौलिकों के संयोग से पैदा होता है, उसी तरह उनके उपस्वरों के संयोग से भी पैदा होता है। इतना ही नहीं, दो स्वरों के परिणामी (शैक्षिक और यौगिक) स्वर भी 'डोल' के कारण होते हैं। अर्थात् स्वर की इष्टता या अनिष्टता में मौलिक उपस्वर और परिणामी स्वर तीनों का ही संयोग रहता है। आचार्य डॉ० बृहस्पति ने इस सम्बन्ध में श्रुतियों के क, ख और ग अन्तरों को सिद्ध करके दीर्घ मनन और चिन्तन के आधार पर स्वरों की इष्टता तथा अनिष्टता पर अनुभव सिद्ध प्रकाश डाला है जो वर्तमान काल की मौलिक स्थापना है और भारतीय संगीत को अभिनव देन है

## यूरोपीय स्वर-सम्वाद

### कोन्सोनेन्स (Consonance)

जब दो या दो से अधिक स्वरों को एकसाथ बजाया जाता है, तो इन स्वरों की जो सम्मिलित ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे 'कॉर्ड' (Chord) कहते हैं। अब यदि यह मिश्रण सुनने पर कानों को प्रिय लगता है, तो इसे 'कान्कॉर्ड' (Concord) का 'कोन्सोनेन्स' ((Consonance) कहते हैं।

### डिस्सोनेन्स (Dissonance)

परन्तु यदि यह मिश्रित ध्वनि सुनने में बुरी लगती है, तो इसे 'डिस्सोनेन्स' (Dissonance) कहते हैं। हेल्महोज विद्वान् कहते हैं कि इस अप्रियता (Dissonance) का कारण तो उन दोनों मूल स्वरों में अथवा उनसे उत्पन्न होने वाले स्वयंभू नादों के मध्य में 'डोल' (Beat) का उपस्थित होना है। मध्य-षड्ज तथा तार-षड्ज का मेल अत्यन्त मधुर होता है; क्योंकि तार 'सा' के आंदोलन मध्य 'सा' से ठीक दुगुने होते हैं और इनमें डोल (Beat) उत्पन्न नहीं होती। अब यदि दो स्वरों के मध्य में चार डोल तक भी उत्पन्न होती हैं, तब भी वह अप्रिय प्रतीत नहीं होंगे। परन्तु यदि इन डोलों की संख्या चार डोल प्रति सैकिण्ड से अधिक होती जाए, तो ध्वनि में अप्रियता बढ़ती जाएगी। यह अप्रियता बढ़ते-बढ़ते किसी एक स्थान पर सबसे अधिक होगी, जो कि आंदोलन-संख्या के बढ़ाते रहने पर स्वतः कम होती चली जाएगी और फिर ऐसे स्थान पर पहुँच जाएगी, जहाँ उन स्वरों की सम्मिलित ध्वनियों में कटुता प्रतीत ही नहीं होगी।



मेयर (Mayar) नामक वैज्ञानिक ने संगीतज्ञों के कानों को आधार मानकर यह निश्चय कर दिया है कि किस आंदोलन-संख्या वाले स्वर पर किस आंदोलन-संख्या का स्वर सबसे अधिक कर्णकटुता उत्पन्न करेगा और किस आंदोलन-संख्या पर पहुँचकर यह अप्रियता समाप्त हो जाएगी। हम मेयर द्वारा बनाई गई तालिका को नीचे दे रहे हैं :—

नीचे के स्वरों की आंदोलन-संख्या	प्रति सैकिण्ड डोल की संख्या	
	जब अप्रियता सबसे अधिक होगी	जब अप्रियता समाप्त हो जाएगी
६४	६.४	१६
१२८	१०.४	२६
२५६	१८.८	४७
३८४	२४.०	६०

इसका अर्थ यह समझना चाहिए कि यदि हम चौंसठ कम्पन-संख्या वाले स्वर को और उनहत्तर कम्पन-संख्या वाले स्वर को एक साथ बजा दें, तो अप्रियता प्रारम्भ हो जाएगी। यदि इसे ७०.४ कम्पन प्रति सैकिण्ड वाले स्वर के साथ बजाएँ तो अप्रियता सबसे अधिक होगी (क्योंकि  $६४ + ६.४ = ७०.४$ ) और यदि ८० ( $= ६४ + १६$ ) कम्पन-संख्या प्रति सैकिण्ड के साथ बजाएँ, तो यह अप्रियता बिलकुल नहीं रहेगी। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि हमें चौंसठ कम्पन प्रति सैकिण्ड वाले स्वर के साथ किसी अन्य ऐसे स्वर को बजाना है कि सुनने में अप्रिय प्रतीत न हो, तो दूसरे स्वर की कम्पन-संख्या या तो चौंसठ और अड़सठ के बीच में होनी चाहिए अथवा अस्सी कम्पन प्रति सैकिण्ड से अधिक।

### भारतीय तथा योरोपीय स्वर-सम्बाद

हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में जिन स्वरों को 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि' कहा जाता है, पश्चिमी (अँग्रेजी) संगीत-पद्धति में उन्हें डो, रे, मी, फ़, सोल, ला, सी (Do, Re, Mi, Fa, Sol, La, si) कहते हैं। उन्होंने अपने निर्धारित स्वर-स्टेन्डर्ड के लिए सात स्वरों के संक्षिप्त नामों के इशारे इस प्रकार कायम किए हैं :—

सी, डी, ई, एफ़, जी, ए, बी, (C, D, E, F, G, A, B,) इन स्वर-संकेतों के आधार पर ही पश्चिम तथा अन्य देशों के संगीत-कलाकार अपने वाद्य तैयार करते हैं :—

उपर्युक्त अँग्रेजी स्वरों की तुलना यदि हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति के स्वरों से की जाए, तो दोनों में काफी अन्तर दिखाई देता है। यद्यपि पश्चिमी संगीतज्ञ अपने सात स्वरों को हमारी संगीत-पद्धति के लगभग बिलावल ठाठ अर्थात् शुद्ध स्वर-सप्तक के समान मानते हैं, फिर भी हमारे और उनके स्वरों की आंदोलन-संख्या में कुछ अन्तर दिखाई पड़ता है। इसका कारण यह है कि हमारे और उनके स्वरांतर अलग-अलग हैं।



वे अपने सात स्वरों को तीन भागों में विभाजित करते हैं—१. मेजर टोन (Major Tone) २. माइनर टोन (Minor Tone) ३. सेमीटोन (Semi Tone)। पश्चिमी विद्वानों ने अपने सात स्वरों का परस्पर अन्तर अर्थात् स्वरान्तर निकालकर उनकी आन्दोलन-संख्या निश्चित की है। उनके स्वरान्तर (फासले) इस प्रकार हैं :—

C-D	D-E	E-F	F-G	G-A	A-B	B-C
$\frac{9}{8}$	$\frac{8}{7}$	$\frac{16}{15}$	$\frac{9}{8}$	$\frac{8}{7}$	$\frac{9}{8}$	$\frac{16}{15}$

इन स्वरान्तरों में पहला, चौथा और छठा स्वरान्तर 'मेजर टोन', दूसरा और पाँचवाँ स्वरान्तर 'माइनर टोन' तथा तीसरा और सातवाँ स्वरान्तर 'सेमी टोन' कहलाता है।

उपर्युक्त स्वरान्तरों के द्वारा ही पश्चिमी संगीत-पंडितों ने स्वरों की आन्दोलन-संख्या इस प्रकार निश्चित की है :—

पश्चिमी स्वर	हिन्दुस्तानी में उनके स्वर-नाम	पश्चिमी आन्दोलन-संख्या	हिन्दुस्तानी आन्दोलन-संख्या (मंजरीकार)
C	सा (अचल)	२४०	२४०
	रे कोमल	२५६	२५४ $\frac{3}{4}$
D	रे तीव्र	२७०	२७०
	ग कोमल	२८८	२८८
E	ग तीव्र	३००	३०१ $\frac{1}{2}$
F	म कोमल	३२०	३२०
	म तीव्र	३३७ $\frac{1}{2}$	३३८ $\frac{1}{2}$
G	प (अचल)	३६०	३६०
	ध कोमल	३८४	३८१ $\frac{3}{4}$
A	ध तीव्र	४००	४०५
	नि कोमल	४३२	४३२
B	नि तीव्र	४५०	४५२ $\frac{3}{4}$
C	सा (तार सप्तक)	४८०	४८०

उपर्युक्त नक्शे से यह स्पष्ट है कि पश्चिमी विद्वानों द्वारा निर्धारित किए हुए 'रे' कोमल, 'ग' तीव्र 'म' तीव्र, 'ध' कोमल, 'ध' तीव्र तथा 'नि' तीव्र, इन छह स्वरों के आन्दोलन मंजरीकार अथवा हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति के आन्दोलनों से मेल नहीं खाते। केवल 'सा' (अचल), 'रे' तीव्र, 'ग' कोमल, 'म' कोमल, 'प' अचल और 'नि' कोमल के स्वरान्दोलन ही हमारी पद्धति से ठीक-ठीक मिलते हैं।

ज्ञातव्य : कुछ संगीत-विद्वानों का मत है, कि अँग्रेजी स्वरों में से 'ई' (E) को 'सा' मानकर ही सप्तक कायम करना चाहिए।



## स्वरांतर

इस अध्याय को समाप्त करसे से पूर्व आपको यह बता देना उचित समझते हैं कि स्वरांतर दो प्रकार के होते हैं—एक षड्ज से प्रत्येक स्वर का अन्तराल और दूसरा स्वरों का आपसी अन्तराल। उदाहरण के लिए भरत मुनि के षड्ज-ग्राम के अन्तराल इस प्रकार हैं :—

मध्य-षड्ज से—१	$\frac{1}{2}^{\circ}$	$\frac{3}{2}$	$\frac{4}{3}$	$\frac{3}{2}$	$\frac{4}{3}$	$\frac{1}{2}^{\circ}$	२
सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा
स्वरों का परस्पर	$\frac{1}{2}^{\circ}$	$\frac{1}{2}$	$\frac{1}{3}$	$\frac{1}{3}$	$\frac{1}{2}^{\circ}$	$\frac{1}{2}$	$\frac{1}{2}$
अन्तराल							

ऊपर आए हुए अन्तराल में  $\frac{1}{2}^{\circ}$ ,  $\frac{1}{2}$  और  $\frac{1}{3}$  को क्रम से चार श्रुति, तीन श्रुति और दो श्रुति का अन्तराल भी कहते हैं। इन अन्तरालों के अतिरिक्त तीन अन्तराल एक-एक श्रुति के और होते हैं, जिन्हें हमने पीछे आचार्य डॉ० बृहस्पति के अनुसार 'क' 'ख', और 'ग' अन्तराल कहा है। इन्हें गणित में क्रम से  $\frac{3}{8}$ ,  $\frac{2}{3}$  और  $\frac{1}{4}$  भी कहते हैं।

इन अन्तरालों पर जब साधारण दृष्टि पड़ती है, तो यह पहचानना कुछ कठिन हो जाता है कि कौन अन्तराल बड़ा है और कौन छोटा। इसलिए एक फ्रांस के विद्वान् ने इन अन्तरालों को स्पष्ट करने के लिए एक माप निकाला और उसे अपने नाम पर ही 'सेवर्ट' कहा। इस आधार पर इन अन्तरालों का मूल्य 'सेवर्ट' पद्धति द्वारा इस प्रकार आता है :—

पूरे सप्तक का अन्तराल	= ३०१ सेवर्ट
गुरु स्वर ( $\frac{1}{2}$ ) का अन्तराल	= ५१.१ सेवर्ट
लघु स्वर ( $\frac{1}{4}$ ) का अन्तराल	= ४५.८ सेवर्ट
अर्ध स्वर ( $\frac{1}{3}$ ) का अन्तराल	= २८.० सेवर्ट
लीमा ( $\frac{3}{8}$ ) का अन्तराल	= २३.० सेवर्ट
लघु अर्ध स्वर ( $\frac{2}{3}$ ) का अन्तराल	= लगभग १८.० सेवर्ट
कौमा ( $\frac{1}{4}$ ) का अन्तराल	= ५.० सेवर्ट

इसी प्रकार एलिस नामक एक अन्य विद्वान् ने सप्तक को १२०० 'सेंट' में विभाजित कर दिया। उसके अनुसार ऊपर के स्वरों का मान 'सेंट' पद्धति में इस प्रकार हुआ :—

पूरे सप्तक का अन्तराल	= १२०० सेंट
गुरु स्वर ( $\frac{1}{2}$ ) का अन्तराल	= २०३.० सेंट
लघु स्वर ( $\frac{1}{4}$ ) का अन्तराल	= १८२.६ सेंट
अर्ध स्वर ( $\frac{1}{3}$ ) का अन्तराल	= १११.६ सेंट



## स्वरों की गणना से सम्बन्धित चार्ट

पं० विष्णु नारायण भातखण्डे ने 'अभिनव रागमंजरी' में अहोबल तथा श्रीनिवास की पद्धति में हिन्दुस्तानी संगीत के १२ स्वरों का स्थान निरूपण किया है, जिसके आधार पर नीचे दी गई सारिणी में निश्चित तार की लम्बाई पर स्थित भिन्न-भिन्न स्वरों के अन्तरालों के भिन्नांक और सेवर्ट स्पष्ट किये गए हैं :—

स्वर	तार की लम्बाई (इंच)	अन्तराल		कंपन संख्या
		भिन्नांक	सेवर्ट	
स	३६	१	०	२४०
र	३४	१८/१७	२४.८	२५४ <sup>३</sup> / <sub>७</sub>
र	३२	८/८	५१.१	२७०
ग	३०	६/५	७८.१	२८८
ग	२८ <sup>३</sup> / <sub>४</sub>	५४/४३	८८.८	३०१ <sup>५</sup> / <sub>३</sub>
म	२७	४/३	१२५	३२०
म	२५ <sup>१</sup> / <sub>३</sub>	२४/१७	१४८.८	३३८ <sup>१</sup> / <sub>३</sub>
प	२४	३/२	१७६.१	३६०
ध	२२ <sup>३</sup> / <sub>४</sub>	२७/१७	२०१.०	३८१ <sup>३</sup> / <sub>७</sub>
ध	२१ <sup>१</sup> / <sub>३</sub>	२७/१६	२२७.२	४०५
न	२०	८/५	२५५.२	४३२
न	१८ <sup>१</sup> / <sub>३</sub>	८१/४३	२७५.०	४५२ <sup>४</sup> / <sub>३</sub>
स	१८	२	३०१.०	४८०

धार स्वरों का पूर्ण अध्ययन मेसन ( Masson ) तथा सौण्ड हास ( Sond Hauss) ने १८५३ ई० में किया था। जिन पर कोनिंग (Koning), क्रूगर (Kruger) वेनसन (Venson) तथा रिचर्डसन (Richardson) ने और अधिक महत्वपूर्ण प्रकाश डाला। सन् १८३७ में ब्राउन (Brown) ने जो अनुसंधान किये वे अत्यन्त मान्य तथा प्रामाणिक हैं।

धार स्वरों को बदलने के लिए कलाकार को मुँह की ऊँचाई कम या अधिक करनी पड़ती है। इसी प्रकार वायु के निश्चित दबाव के लिए संगीतज्ञ को मुँह खोलने और बन्द करने पर नियन्त्रण रखना पड़ता है। बाँसुरी तथा शहनाई इत्यादि वाद्यों में जैसे-जैसे फूँक या वायु का दाब बढ़ता जाता है तो ध्वनि का तारत्व भी बढ़ता जाता है। अधिक दाब बढ़ने पर कंपनों की आवृत्ति एक सप्तक बढ़कर मूल स्वर के तारसप्तकीय स्वर को प्रस्तुत करने लगती है। पीतल की बाँसुरी की अपेक्षा लकड़ी की बाँसुरी की ध्वनि अधिक मृदुल होती है। हारमोनियम के रीड या



इस प्रकार विभिन्न वाद्यों में ध्वनि तरंगों अपने स्वरूप, बल, माध्यम और स्थिति के अनुसार उत्पन्न और नष्ट होकर विविध वाद्य यन्त्रों की प्रकृति के अनुसार स्वर उत्पन्न करती हैं और उनसे अलग-अलग प्रकार के मधुर नादों की उत्पत्ति होती है। नाद की जाति और पूर्व संस्कार के आधार पर हम वाद्य यन्त्रों को भी आसानी से पहचान लेते हैं।

इस प्रकार विभिन्न वाद्यों में ध्वनि तरंगों अपने स्वरूप, बल, माध्यम और स्थिति के अनुसार उत्पन्न और नष्ट होकर विविध वाद्य यन्त्रों की प्रकृति के अनुसार स्वर उत्पन्न करती हैं और उनसे अलग-अलग प्रकार के मधुर नादों की उत्पत्ति होती है। नाद की जाति और पूर्व संस्कार के आधार पर हम वाद्य यन्त्रों को भी आसानी से पहचान लेते हैं।

## संगीत-विद्यार्थी



## संगीत के सप्तक का विकास

### पायथागोरस का स्वर-सप्तक

मानव को सबसे पहले षड्ज-पंचम के कर्णप्रिय सम्बन्ध या भाव का अनुभव हुआ। साथ ही उसे यह भी विदित हुआ कि पंचम स्वर षड्ज स्वर का ड्योढ़ा है। तब यह विचार किया गया कि तार-षड्ज जिस स्वर का ड्योढ़ा है, वह कौनसा है। ( कारण कि मध्य-षड्ज और तार-षड्ज के मेल भी अत्यन्त कर्णप्रिय लगते हैं। ) खोजने पर मालूम हुआ कि वह स्वर मध्यम है। ऐसा होने पर मध्यम और पंचम स्वरों के बीच का एक नया अन्तराल और मालूम हो गया, जो  $\frac{1}{2}$  है। अब मध्य-षड्ज से इसी अन्तराल पर एक स्वर स्थापित किया, जिसे 'ऋषभ' कहा गया। ऐसा करने पर ज्ञात हुआ कि अभी ऋषभ और मध्यम के बीच में इतना अन्तराल और शेष है, जितना षड्ज-ऋषभ या मध्यम-पंचम के बीच में है; और इस अंतराल पर एक स्वर भी स्थापित किया जा सकता है। अतः उस अंतराल पर 'रे' से आगे एक स्वर और स्थापित कर दिया गया जिसे 'गांधार' कहा गया। अब गांधार और मध्यम के बीच में इतना अंतराल न बचा कि उस पर और कोई स्वर स्थापित किया जा सके।

जो भी स्थिति मध्य-षड्ज से आगे हुई, वही पंचम से आगे भी हुई, अर्थात् पंचम स्वर से आगे तार-षड्ज तक के बीच में, मध्यम और पंचम स्वरों के अंतराल की दूरी पर क्रम से धैवत और इसी अंतराल पर धैवत से आगे निषाद स्वर स्थापित किए गए। अब पुनः निषाद और तार-षड्ज के मध्य में बहुत थोड़ा अंतराल बचा, अतः इसे भी ज्यों-का-त्यों छोड़ दिया गया। इस प्रकार जो सप्तक बना, उसमें षड्ज से ऋषभ, ऋषभ से गांधार, मध्यम से पंचम, पंचम से धैवत और धैवत से निषाद के बीच में अन्तराल एक-समान थे। गांधार और मध्यम तथा निषाद और तार-षड्ज के बीच में जो अन्तराल आया वह था तो बराबर, परन्तु पहले अन्तराल से छोटा था। इस प्रकार एक सप्तक में दो अन्तराल थे, एक बड़ा और दूसरा छोटा। गणित की दृष्टि से बड़ा अंतराल  $\frac{1}{2}$  था और छोटा  $\frac{1}{4}$  इसमें  $\frac{1}{2}$ । अंतराल को 'टोन' कहते हैं और  $\frac{1}{4}$  को 'लीमा'। परन्तु पायथागोरस ने इसे 'हैमीटोन' कहा है। चूँकि इस सप्तक को बनाने का प्रयास यूनान के प्रसिद्ध विद्वान् पायथागोरस ने किया था, अतः इसे 'पायथागोरियन स्केल' कहते हैं।



## षड्ज-पंचम-भाव से सप्तक निर्माण

उपर्युक्त आधार पर जो सप्तक बना, उसके निषाद तथा गांधार स्वर 'हारमनी' की रचना करने में अधिक कर्णप्रिय न लगे अतः सप्तक को किसी अन्य प्रकार से बनाने का प्रयत्न किया गया। इन परिस्थितियों में षड्ज-पंचम-भाव से सप्तक बनाने का प्रयास किया गया। इस आधार पर षड्ज का ड्योढ़ा पंचम निकाला। इसी पंचम को षड्ज माना और इसका ड्योढ़ा स्वर पंचम खोजा, जो ऋषभ आया। पुनः इस नवीन पंचम (अर्थात् ऋषभ) का ड्योढ़ा स्वर खोजा, जो धैवत आया। इसी प्रकार जो पंचम आता रहा, उसे षड्ज मानकर उसका पंचम खोजते चले आए। अतः जो सप्तक बना, उसमें अन्तिम षड्ज के आंदोलन प्रारम्भिक षड्ज के ही आंदोलन के गुणान्तर नहीं थे वरन् कुछ अधिक थे। देखने पर विदित हुआ कि जो अन्तराल बढ़कर आया था, वह गणित की दृष्टि से  $\frac{5}{4}$  था। इस प्रकार यह सप्तक भी संतोषजनक न बना।

## षड्ज-मध्यम-भाव के आधार पर सप्तक की रचना

जब षड्ज-पंचम-भाव से सप्तक न बन पाया, तो तार-षड्ज से पीछे की ओर पाँचवें स्वर अर्थात् मध्यम स्वर की ओर इसका मध्यम खोजा, तो निषाद प्राप्त हुआ। इसी प्रकार इस क्रिया को तब तक करते रहे, जब तक कि जिस आंदोलन-संख्या से चले थे, उसी के गुणान्तर का कोई आंदोलन प्राप्त न हुआ। इस आधार पर जो सप्तक बना, उसमें अन्तिम षड्ज उस षड्ज से नीचा आया जो आना चाहिए था। फलस्वरूप यह सप्तक भी संतोषजनक न बना। हाँ, ऐसा करने पर एक बात अवश्य विदित हो गई कि जितना अन्तराल षड्ज-पंचम-भाव के समय अन्तिम षड्ज के समय बढ़ा था, ठीक उतना ही अन्तराल अब-षड्ज मध्यम-भाव से सप्तक बनाते समय कम हो गया। अर्थात् अबकी बार  $\frac{5}{4}$  अन्तराल कम आया। इस अन्तराल को विद्वानों ने 'कॉमा' या 'प्रमाण श्रुति' कहा।

## डायटॉनिक स्केल की रचना

क्योंकि अभी तक कोई संतोषजनक स्केल नहीं बन पाया था, अतः विद्वान् लोग उत्तम स्वर-सप्तक बनाने का बराबर प्रयत्न करते रहे। विचार करने पर यह अनुभव किया गया कि षड्ज, मध्यम और पंचम के अतिरिक्त यदि स्वरों को ४-५-६ के अनुपात में बजाएँ तो वे भी कर्णप्रिय लगते हैं। ऐसा करने पर जब षड्ज के इस अनुपात पर स्वर खोजे गए तो 'सा', 'ग' और 'प' प्राप्त हुए। पुनः मध्यम से ४-५-६ के अनुपात पर 'म', 'ध' और 'सां' प्राप्त हुए। इसी प्रकार पंचम से ४-५-६ के अनुपात पर 'प', 'नि' और 'रे' प्राप्त हुए। जब इस रिषभ को एक सप्तक नीचा कर लिया, तो पूरा एक सप्तक बन गया। इस सप्तक के स्वर बड़े मधुर थे। इसका नाम 'सच्चा स्वर-सप्तक' या 'नेचुरल स्केल' रखा गया। इस सप्तक में तीन अन्तराल प्राप्त हुए, जो



क्रम से  $\frac{1}{2}^\circ$ ,  $\frac{1}{4}^\circ$  और  $\frac{1}{8}^\circ$  थे। इनमें से  $\frac{1}{2}^\circ$  और  $\frac{1}{4}^\circ$  अन्तरालों में बहुत न्यून अन्तर था, अतः इन्हें 'टोन' कहा गया, और  $\frac{1}{8}^\circ$  को 'सेमीटोन'। इस सप्तक में केवल स्थूल रूप से 'टोन' और 'सेमीटोन', ये दो ही अन्तराल होने के कारण इसे 'ढाया' (अर्थात् दो का) 'टॉनिक' (स्वरमाला) स्केल कहा गया।

### इस सप्तक की बड़ी अड़चन

वैसे तो 'ढायाटॉनिक स्केल' बड़ा उत्तम बन गया, किन्तु इस सप्तक में एक बड़ी अड़चन उत्पन्न हो गई कि जब तक हम षड्ज को ही अपना षड्ज मानकर गान-यादन करते हैं, तब तक तो हमें उस स्केल के सच्चे स्वर प्राप्त होते रहते हैं; परन्तु यदि कोई गायक या वादक षड्ज के अतिरिक्त किसी अन्य स्वर को अपना षड्ज मान लेता है, तो उसे 'ढायाटॉनिक स्केल' के सच्चे स्वर प्राप्त नहीं होते। यह सम्भव नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति, वह चाहे मोटी आवाज वाला हो या पतली आवाज वाला, एक ही स्वर को षड्ज मानकर गान करे। अतः इसमें भी कमी दिखाई देने लगी।

### औसत स्वरान्तर-सप्तक

उपर्युक्त कठिनाई को दूर करने के लिए यह सोचा गया कि यदि  $\frac{1}{2}^\circ$  और  $\frac{1}{4}^\circ$  अन्तरालों का, जोकि बड़े-बड़े हैं और जिनमें बहुत थोड़ा अन्तर है, औसत निकाल लिया जाए और इसी औसत स्वरान्तर को  $\frac{1}{2}^\circ$  और  $\frac{1}{4}^\circ$  स्वरान्तरों के स्थान पर रख दिया जाए तो समस्या हल हो जाएगी। ऐसा ही किया गया और इस प्रकार जो सप्तक बना, उसे 'औसत स्वरान्तर-सप्तक' (Mean Tone Temperament Scale) कहा गया।

### समानान्तरालीय स्वर-सप्तक

ऊपर बताए स्वर-सप्तकों के अतिरिक्त विद्वानों ने विचार किया कि षड्ज-पंचम-भाव और षड्ज-मध्यम-भाव के आधार से स्वर-सप्तक बनाते समय जो अन्तराल बढ़ा या घटा था, उसे बारह स्वरों में बराबर बाँट दिया जाय तो इस सप्तक में जितना 'सा' से 'प' बेसुरा होगा, ठीक उतना ही 'रे' से 'ध' बेसुरा होगा। दूसरे शब्दों में 'सा' से 'रे' के बीच में जितना अन्तराल होगा, ठीक वही अन्तराल 'रे' और 'रे' के बीच में कर दिया। तात्पर्य यह है कि किसी भी एक स्वर से उससे अगले या पिछले स्वर के अन्तराल को समान कर दिया, अर्थात् पूरे सप्तक को बराबर बारह भागों में विभाजित कर दिया और इस सप्तक को 'समानान्तरालीय स्वर-सप्तक' (Equally Tempered Scale) कहा गया।

अब तक हम अनेक स्वर-सप्तक देख चुके हैं, परन्तु अभी तक यह निश्चय नहीं कर सके कि किस स्वर-सप्तक को अपनाया जाए। इसका निश्चय करने से पूर्व हमें

संक्षेप-विशारद



यह ध्यान रखना होगा कि हम उसी स्वर-सप्तक को अपना सकते हैं, जो कि 'डायटॉनिक स्केल' या 'नेचुरल स्केल' के अधिक समीप हो। खोज करने पर ज्ञात हुआ कि 'समानान्तरालीय स्वर-सप्तक' (Equally Tempered Scale) 'डायटॉनिक स्केल' के स्वरों के अधिक समीप है अतः हमने इसे अपना स्वर-सप्तक मान लिया। इसी स्वर-सप्तक के आधार पर समस्त पाश्चात्य वाद्य (प्यानो, गिटार, मेंडोलिन इत्यादि) बनाए गए हैं और वही स्वर हमें हारमोनियम में मिलते हैं। इस आधार पर निस्संकोच रूप से कहा जा सकता है कि यदि हम हारमोनियम के साथ गान-वादन करते हैं, तो वे सामानान्तरालीय स्वर-सप्तक के ही स्वर हैं, न कि 'प्राकृतिक' या 'नेचुरल स्केल' के।

## स्केल (Scale)

स्वरों के रखने के ढंग को 'स्केल' कहते हैं। आप इस क्रम से आरोह अथवा अवरोह, दोनों कर सकते हैं।

स्केल दो प्रकार के होते हैं—१. डायटॉनिक (Diatonic) और २. क्रोमेटिक (Chromatic)। ये दोनों स्केल दो प्रकार के सेमीटोन के आधार से बनाए गए हैं। डायटॉनिक स्केल में टोन और सेमीटोन, दोनों का प्रयोग होता है, जबकि क्रोमेटिक में केवल सेमीटोन ही प्रयुक्त होते हैं।

डायटॉनिक स्केल में भी दो भाग हो जाते हैं, जिनमें एक को मेजर और दूसरे को माइनर स्केल कहते हैं। प्रत्येक स्केल में (हमारे मेल अथवा ठाठ की भाँति) सातों स्वरों का होना आवश्यक है। इनमें स्वरों को रेखाओं के ऊपर अथवा उनके मध्य में लिखा जाता है। सात स्वरों के उपरान्त भी यही क्रम चालू रहता है। परन्तु जब तक इस क्रम में आठवाँ स्वर भी न जोड़ दिया जाए, यह क्रम पूर्ण प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार यह आठवाँ स्वर प्रथम षड्ज का ही दुगुना ऊँचा होता है। इसी प्रकार दसवें स्वर का अर्थ है कि प्रथम सप्तक के (१०-७) तीसरे स्वर का दूना ऊँचा स्वर।

## मेजर स्केल (Major Scale)

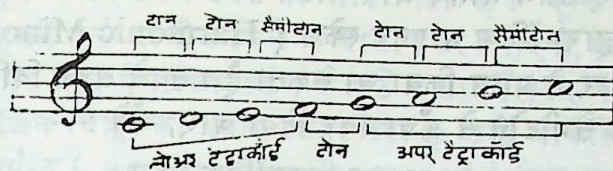
इसमें टोन और सेमीटोन का क्रम एक विशेष प्रकार से निश्चित होता है। तीसरे और चौथे व सातवें और आठवें स्वरों के बीच में सेमीटोन होता है तथा शेष स्वरों के बीच में टोन।

## टेट्राकॉर्ड (Tetra Chord)

यदि इस सप्तक के 'सा रे गा मा' और 'पा धा नी सां' दो भाग कर दें तो इन टुकड़ों को क्रम से लोअर (Lower) और अपर (Upper) टेट्राकॉर्ड (Tetra Chord) कहेंगे।



ज्ञातव्य : 'सा' (सी-C) का मेजर स्केल इस प्रकार होगा :—



(ध्यान रखिए कि भारतीय संगीत के विद्यार्थी को जल्दी समझाने के उद्देश्य से हमने मेजर स्केल का अर्थ 'शुद्ध स्वर' कर दिया है। जब किसी भी स्वर का मेजर स्केल कहा जाए, तो आप जल्दी समझने के लिए उसी स्वर को 'सा' मानकर उसके शुद्ध स्वर खोज लीजिए।)

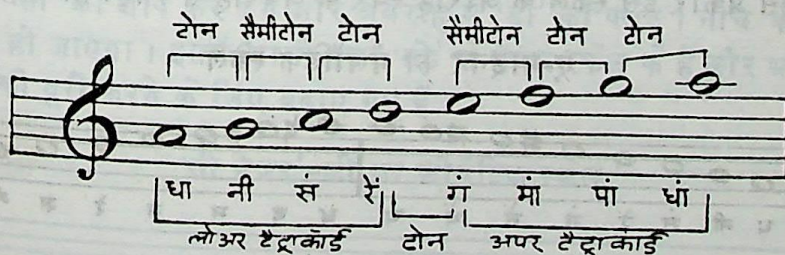
इस प्रकार जब आप 'सा' (सी-C) का मेजर स्केल देखना चाहें, तो अपने 'सा' (सी-C) के शुद्ध स्वर देख लीजिए। इसी प्रकार जब आपसे 'पा' (जी-G) के मेजर स्केल के स्वर बजाने को कहा जाए तो तुरन्त 'पा' को 'सा' मानकर, सम्पूर्ण शुद्ध स्वर बजा डालिए। बस, यही आपका 'पा' (जी-G) का मेजर स्केल होगा।

### माइनर स्केल (Minor Scale)

जैसा कि हम पिछले अध्याय में कह चुके हैं कि जब किसी भी मेजर स्वरांतर को एक सेमीटोन कम कर देते हैं, तो वह माइनर स्वरांतर (Minor Semitone) हो जाता है चूँकि इस स्केल (मेल) में 'की-नोट' (अर्थात् सा) से तृतीय स्वर का अन्तर 'माइनर' होता है, अतः इस स्केल को 'माइनर स्केल' कहते हैं।

यद्यपि मेजर स्केल दो शताब्दी से एक ही रूप में चला आ रहा है, परन्तु इस स्केल में कई बार परिवर्तन हो चुका है। इसका सबसे प्राचीन रूप यूनानियों में 'चर्च-स्केल' या 'मोड्स' (Modes) के नाम से प्रचलित है, जिसका स्वरूप इस प्रकार था:—

ए-माइनर का प्राचीन स्केल

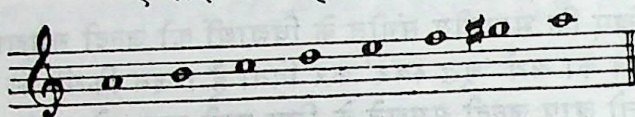


यहाँ आप यदि प्रारम्भिक स्वर को अपनी पद्धति का 'सा' मान लें, तो हमारी दृष्टि से यह आसावरी ठाठ के स्वर हैं। यहाँ पर एक बात विशेष रूप से देखने की है कि 'धा' को प्रारम्भ का स्वर मानकर समस्त शुद्ध स्वरों अर्थात् हारमोनियम के सफेद-सफेद स्वरों (पदों) का ही उपयोग किया गया है। साथ-साथ आप यह भी देखेंगे कि सातवें और आठवें स्वर के बीच का अन्तर एक टोन है, जबकि अब तक के समस्त मेल (Scale) बनाते समय वह अन्तर सेमीटोन था और आधुनिक मेलों के



अनुसार भी एक सेमीटोन हा हांना चाहिए। अतएव प्राचीन माइनर स्केल को आधुनिक रूप देने के लिए उसमें सातवें और आठवें स्वर के अन्तर को एक सेमीटोन करके उसका नाम हारमोनिक माइनर स्केल ( Harmonic Minor Scale ) रख दिया। इसे दो प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है। सबसे सरल विधि तो यही है कि सातवें स्वर को एक सेमीटोन से ऊँचा स्वर दिया जाए; जैसे :—

ए-माइनर का हारमोनिक स्केल



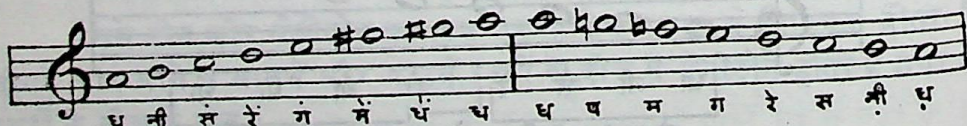
ध नि सां रें गं धुं मं धं

परन्तु सातवें स्वर को सेमीटोन से बढ़ा देने पर यहाँ छठे और सातवें स्वर के मध्य की दूरी डेढ़ टोन हो गई। प्राचीन संगीत में यह क्रम गायन में कुछ कठिन होने के कारण छोड़ दिया गया था, अतः इसे वर्जित रखा। किन्तु जब वाद्यों पर बजाने में इसमें अधिक असुविधा उत्पन्न न हुई, तो हारमोनिक माइनर स्केल का भी खूब प्रचार बढ़ा और यह अब भी खूब प्रचलित है।

साथ-साथ छठे और सातवें स्वर के अन्तर के डेढ़ टोन की कठिनाई को दूर करने के लिए मैलॉडिक माइनर स्केल ( Melodic Minor Scale ) बनाना पड़ा। इसका नाम मैलॉडिक इस कारण से रखा कि इसका प्रयोग मुख्यतया मैलॉडी बनाने में ही किया जाता है, जबकि हारमोनी अथवा हारमोनिक-कार्ड्स बनाने में ही इसका अधिक प्रयोग होता है।

इस प्रकार मैलॉडिक माइनर स्केल में यह विशेषता हो गई कि सातवें और आठवें स्वरों के मध्य में सेमीटोन लाने के लिए केवल आरोह में, छठे और सातवें स्वरों को एक-एक सेमीटोन से ऊँचा करना पड़ा और अवरोह में उन्हें पुनः शुद्ध स्थान पर ले आए। इस प्रकार इस स्केल के आरोह स्वर के अवरोह से भिन्न हो गए; जैसे :—

ए-माइनर का मैलॉडिक स्केल



इस स्केल में आप देखेंगे कि आरोह में तो द्वितीय व तृतीय और सप्तम व अष्टम के मध्य में सेमीटोन है (यदि आप इस 'ध' को अपना 'सा' मान लें, तो ये स्वर 'सा रे गु म प ध नि सां' होंगे।) लेकिन अवरोह में सेमीटोन का अन्तर द्वितीय व तृतीय और पंचम व षष्ठ के मध्य होगा। (यदि आप 'ध' को 'सा' मान लें तो अवरोह में यही स्वर 'सां नि धु प म गु रे सा' होंगे।) इस प्रकार माइनर मैलॉडिक स्केल के अवरोह का रूप वही होगा, जो कि प्राचीन माइनर स्केल का था।



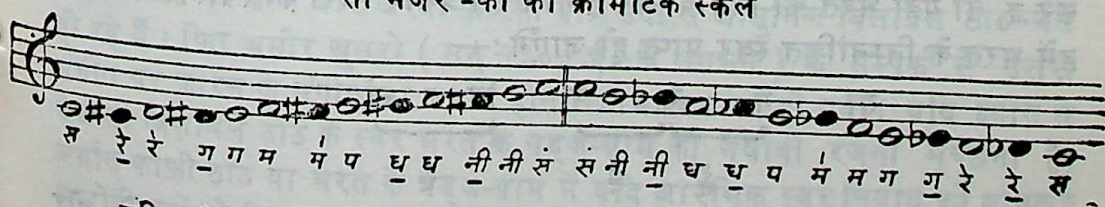
हमने यहां यह भी देखा कि ए-माइनर का प्राचीन स्केल समस्त शुद्ध स्वरों पर ही बना हुआ है। अर्थात् इसमें फ्लैट या शार्प नहीं हैं। चूंकि हारमोनिक अथवा मैलॉडिक रूप हमने इसी प्राचीन स्केल के आधार पर बनाए हैं, अतः हारमोनिक स्केल के सातवें स्वर पर और मैलॉडिक स्केल के छठे व सातवें स्वर पर आरोह में शार्प करने के लिए जिन चिह्नों का प्रयोग किया गया है, उन्हें आकस्मिक रूप से अर्थात् एक्सीडेंटली शार्पेन्ड ( Accidentally Sharpened ) किए गए कहेंगे। इस प्रकार इन चिह्नों को एक्सीडेंटल कहेंगे और इन्हें की-सिगनेचर (Key Signature) में नहीं लगाएंगे। इसी तरह मैलॉडिक स्केल के अवरोह में जो शुद्ध रूप देने वाले चिह्न हैं, उनको भी एक्सीडेंटल की भाँति ही प्रयोग करेंगे।

### क्रोमैटिक स्केल (Chromatic Scale)

इसमें समस्त स्वर एक-एक सेमीटोन की दूरी पर ही रखे जाते हैं। चूंकि एक सप्तक में कुल बारह ही स्वर होते हैं, अतः उसी क्रम से रखने की क्रिया को 'क्रोमैटिक स्केल' कहते हैं। इसमें एक ही नाम के दो-दो स्वर भी आ जाते हैं; जैसे 'सी' और 'सी-शार्प' या 'डी' और 'डी-शार्प' आदि। यदि इस स्केल को बारह स्वरों से अधिक ऊपर ले जाना हो, तो आगे आने वाले स्वर क्रमशः पहले स्वरों के ठीक-ठीक दुगुने ऊँचे होंगे; जैसे पन्द्रहवाँ स्वर तीसरे स्वर का ठीक दुगुना ऊँचा स्वर होगा।

क्रोमैटिक स्केल को प्रायः मेजर स्केल के स्वरों के आधार पर ही बनाते हैं। मेजर स्केल के स्वरों में जो स्थान बाकी रहते हैं, उन्हें आरोह में शार्प अथवा शुद्ध स्वरों के चिह्नों द्वारा एक-एक सेमीटोन की दूरी पर कर दिया जाता है। अवरोह में भी फ्लैट अथवा शुद्ध स्वरों के चिह्नों द्वारा स्वरों की दूरी को एक-एक सेमीटोन कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, 'सी' के मेजर स्केल में 'सी' से अगला स्वर एक टोन की दूरी पर 'डी' स्वर है। क्रोमैटिक स्केल बनाते समय 'सी' से 'डी' की दूरी में, आरोह में 'सी' को शार्प कर देंगे और अवरोह में 'डी' को फ्लैट। नीचे के चित्र से यह स्पष्ट हो जाएगा। इसमें खाली स्वर 'सी' के मेजर स्केल के हैं और भरे हुए स्वर सेमीटोन की दूरी करने के लिए बढ़ाए गए हैं।

#### 'सी मेजर'-की का क्रोमैटिक स्केल

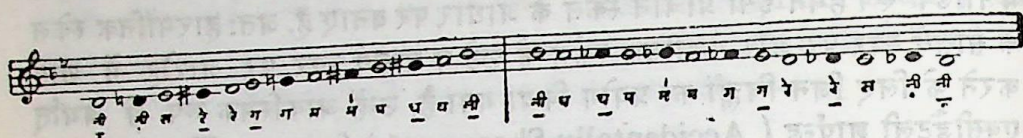


यदि 'की-सिगनेचर' (Key Signature) में शार्प या फ्लैट के चिह्न न दिए गए हों, तो टोन के बीच में सेमीटोन करने के लिए आरोह में शार्प तथा अवरोह में फ्लैट के चिह्न लगाकर ही क्रोमैटिक स्केल बनाते हैं। परन्तु यदि 'की-सिगनेचर' में

संकीर्त-विशारद



कुछ चिह्न दिए गए हैं, तो उन चिह्नों को उसी प्रकार रखते हैं, अर्थात् उनमें कोई परिवर्तन नहीं करते। जैसे बी-प्लैट-मेजर का क्रोमैटिक स्केल देखिए :—

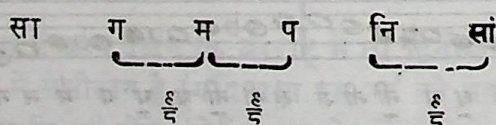


## भारतीय स्वर-सप्तक का विकास

जिस स्वर-सप्तक का यहाँ स्पष्टीकरण करेंगे, वह भरत का षड्ज तथा मध्यम ग्राम है। भारतीय स्वर-सप्तक के विकास को समझने से पूर्व विद्यार्थियों को यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि जिस स्वर-सप्तक को भरत ने शुद्ध कहा है, उसके स्वर आधुनिक काफी ठाठ-जैसे हैं। इसलिए हम जहाँ भी भरत के शुद्ध स्वरों को स्वर-लिपि में लिखेंगे; वहाँ उन पर भातखंडे स्वरलिपि-पद्धति के कोमल स्वर का चिह्न लगा देंगे।

## भरत के षड्ज-ग्राम के स्वरों का विकास

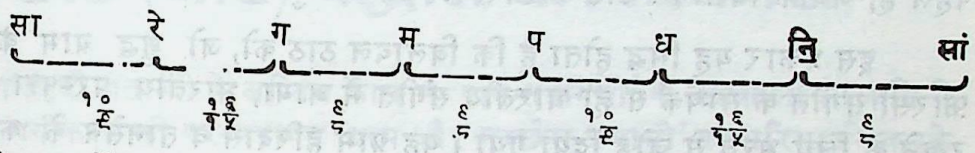
जसा कि पहले बताया जा चुका है कि जिस प्रकार मध्य-षड्ज से मध्य-पंचम आगे की ओर का पाँचवाँ स्वर है, उसी प्रकार तार-षड्ज से शुद्ध मध्यम पीछे की ओर का पाँचवाँ स्वर है। यह अंतराल  $\frac{1}{2}$  या एक गुरु स्वर है। जैसा कि भरत की सारणा-चतुष्टयी के आधार पर हमने देखा कि चौथी सारणा में चल वीणा के पंचम को अचल वीणा के मध्यम में मिलाया गया, तो चल वीणा के मध्यम और षड्ज स्वतः ही क्रम से अचल वीणा के गांधार और निषाद में लीन हो गए। निष्कर्ष यह निकला कि जो अंतराल मध्यम और पंचम के बीच में था ( $\frac{1}{2}$  या गुरु स्वर या चार श्रुतियों का), ठीक वही अंतराल मध्यम से पीछे गांधार तक या षड्ज से पीछे निषाद तक का है। अब, यदि मध्यम स्वर से नीचे या पीछे की ओर हम इसी ( $\frac{1}{2}$ ) अंतराल पर एक स्वर स्थापित कर दें, तो यही भरत का शुद्ध गांधार होगा। इसी प्रकार यदि तार-षड्ज से नीचे या पीछे की ओर इसी ( $\frac{1}{2}$ ) अंतराल पर एक स्वर और स्थापित कर दें, तो यही भरत का निषाद स्वर होगा। इस प्रकार स्वरों को स्थापित करने पर हमें भरत के निम्नांकित स्वर प्राप्त हो जाएँगे :—



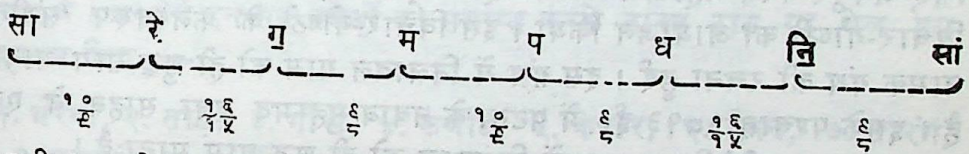
अब इस सप्तक को पूरा करने के लिए दो स्वर ऋषभ और धौवत को और खोजना है कि उनकी स्थिति किस स्थान पर है। किन्तु इससे पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि दो श्रुतियों का अंतराल क्या है। इसका संकेत हमें प्राचीन ग्रंथकारों



के दो स्वरों 'अंतरगांधार' तथा 'काकली निषाद' से प्राप्त होता है। उनका कथन है कि अंतरगांधार की प्राप्ति 'गु' को दो श्रुतियाँ चढ़ाने पर अथवा मध्यम को इसी अंतराल से कम करने पर हो सकती है। इससे यह स्पष्ट है कि 'अन्तर गांधार' स्वर इसी 'गु' और 'म' के ठीक मध्य में है। इसी प्रकार 'काकली निषाद' भी 'तार-षड्ज' और 'नि' के ठीक मध्य में है। इस आधार पर यदि हम 'गु-म' अथवा 'नि-सां' के अंतराल को आधा कर लेंगे, तो जो अन्तराल प्राप्त होगा, वह दो श्रुतियों का अंतराल होगा। अब यदि दो श्रुतियों के अंतराल में एक श्रुति का अंतराल ( जो पीछे बताए गए 'क', 'ख' 'ग' अंतरालों में से 'ख' अंतराल है) जोड़ दिया जाए, तो जो स्वर-स्थान प्राप्त होगा; वह गांधार के पहले ऋषभ और निषाद से पूर्व धैवत होगा। इस आधार पर भरत के षड्ज-ग्राम में स्वरों में परस्पर अंतराल इस प्रकार होंगे :-



धैवत के मध्य में चार श्रुतियों का अंतराल हो जाता है। इसलिए इस ग्राम के स्वरों का परस्पर अंतराल इस प्रकार होगा :-



यही भरत के स्वर-सप्तक का विकास है।

### बिलावल ठाठ की मान्यता

अब हम इस पर विचार करेंगे कि जब भरत मुनि का षड्ज-ग्राम शुद्ध ग्राम माना जाता था, तो बिलावल ठाठ को शुद्ध ग्राम (शुद्ध सप्तक) मानने का प्रचार कब से और क्यों हुआ। यह बताया जा चुका है कि प्राचीन विद्वानों का शुद्धमेल आधुनिक काफ़ी ठाठ था। किन्तु अनुमान है कि अहोबल (१६१५ ई० के लगभग) से बहुत पूर्व ही बिलावल ठाठ शुद्ध मेल के रूप में प्रचार में आ चुका था। कारण कि यूनानी पाइथागोरस का ग्राम आर अरबी-फ़ारसी ग्राम सदा से आधुनिक बिलावल ठाठ-जैसे ही रहे हैं। फिर अमीर खुसरो ( सन् १३०० ई० के लगभग ) के सम्पर्क से उत्तरी संगीत पर फ़ारस के संगीत का प्रभाव होना स्वाभाविक-सा हो गया। यदि ध्यान से देखें तो बिलावल ठाठ के स्वर भरत के षड्ज-ग्राम की नैषादी रजनी मूर्च्छना है; अर्थात् काफ़ी ठाठ या भरत के षड्ज-ग्राम में यदि आरंभिक स्वर निषाद को मानकर आरोही करें तो बिलावल ठाठ के स्वर बनते हैं। दूसरे, भरत का ग्राम अवरोहात्मक होने से प्रत्येक स्वर की श्रुतियाँ नीचे की ओर चलती हैं। अब यदि श्रुतियों के स्वरों का मान भरत के आदेशानुसार ही रखें और प्रत्येक स्वर की श्रुतियों को ऊपर की ओर

संगीत-विशारद



जाता हुआ मानें, तो बिलावल ठाठ की रचना होती है। भरत के अनुसार, षड्ज की तीव्रा, कुमुद्वती, मंदा और छंदोवती, ये चार श्रुतियाँ मानी जाती हैं। ये चारों श्रुतियाँ उत्तरोत्तर ऊँची होती जाती हैं। षड्ज को भरत और शाङ्गदेव ने छंदोवती पर स्थापित किया है। किन्तु षड्ज को तीव्रा पर मान लें और इसी तरह शेष स्वरों के स्थान को निम्नतम श्रुति पर मानें, तो भरत का ग्राम स्वयं ही बिलावल ठाठ में बदल जाएगा; जैसे :—

भरत      नि   सा   रे   गु   म   प   ध   नि  
बिलावल   सा   रे   ग   म   प   ध   नि   सा

यहाँ पर ऊपर की तालिका में भरत के स्वरों में 'सा' की श्रुतियाँ 'सा' स्वर से पहले हैं, जबकि बिलावल ठाठ के स्वरों में 'सा' की श्रुतियाँ 'सा' से आगे हैं।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि बिलावल ठाठ को, जो शुद्ध ग्राम के नाते फ़ारसी संगीत के सम्पर्क से ही भारतीय संगीत में आया, भारतीय परम्परा बनाए रखने के लिए भरत से जोड़ दिया गया। यह ग्राम हरिदास व तानसेन के काल में भी प्रचलित था। उत्तर-भारत के संगीत की ऐसी ही अनेक उलझनों को सुलझाने के लिए जयपुर-नरेश महाराज प्रतापसिंह देव (१७७६-१८०१ ई०) ने एक बृहद् संगीत-विचार-गोष्ठी का आयोजन किया। इस विचार-गोष्ठी के फलस्वरूप 'संगीत-सार' नामक ग्रंथ की रचना हुई। इस ग्रंथ में बिलावल ग्राम को ही शुद्ध ग्राम माना गया है। इसके पश्चात् १८१३ ई० में पटना के नवाब मुहम्मद रजा साहब ने एक ग्रंथ 'नगमाते-आसफ़ी' लिखा। इसमें बिलावल को ही शुद्ध ग्राम माना है।

यही नहीं, दक्षिण में भी शंकराभरण (बिलावल) राग सबसे अधिक लोकप्रिय समझा जाता है। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि उधर भी बिलावल को ही शुद्ध मेल मानने की ओर झुकाव है। साथ में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पाश्चात्य संगीत में भी 'सा' का 'मेजर स्केल' (Major Scale of C) यही बिलावल ठाठ है।

इस प्रकार आज हिन्दुस्तानी संगीत में बिलावल ठाठ को ही शुद्ध मेल मानते हैं।



## संगीत में ठाठ (थाट) पद्धति का विकास

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम काल में 'राग-तरंगिणी' के लेखक लोचन कवि ने रागों के वर्गीकरण की परम्परागत 'ग्राम और मूर्च्छना-प्रणाली' का परिमार्जन करके मेल अथवा ठाठ को सामने रखा। उस समय तक लोचन कवि के लेखानुसार सोलह हजार राग थे, जिन्हें गोपियाँ कृष्ण के सामने गाया करती थीं; किन्तु उनमें से छत्तीस राग प्रसिद्ध थे। उन्होंने इन-सब बखेड़ों को समाप्त करके बारह ठाठ या मेल इस प्रकार कायम किए :—

१. भैरवी, २. तोड़ी, ३. गौरी, ४. कर्णाट, ५. केदार, ६. ईमन, ७. सारंग, ८. मेघ, ९. धनाश्री, १०. पूर्वी, ११. मुखारी और १२. दीपक।

भैरवी : १. भैरवी, २. नीलाम्बरी।

तोड़ी : १. तोड़ी।

गौरी : १. मालव, २. श्री-गौरी, ३. चैतीगौरी, ४. पहाड़ीगौरी, ५. देशीतोड़ी, ६. देशिकार, ७. गौरी, ८. त्रिवण, ९. मुलतानी, १०. धनाश्री, ११. वसंत, १२. रामकरी, १३. गुर्जरी, १४. बहुली, १५. रेवा, १६. भटियार, १७. षट्, १८. पंचम, १९. जयतश्री, २०. आसावरी, २१. देवगांधार, २२. संध-व्यासावरी, २३. गुणकरी।

कर्णाट : १. कानर, २. वेगीश्वरीकानर, ३. खंभावती, ४. सोरट, ५. परज, ६. मारु, ७. जैजैवंती, ८. ककुभा, ९. कामोद, १०. कामोदी, ११. गौर, १२. मालव-कौशिक, १३. हिंडोल, १४. सुग्राही, १५. अडाणा, १६. कौरकानर, १७. श्रीराग।

केदार : १. केदारनाट, २. आभीर, ३. खंभावती, ४. शंकराभरण, ५. बिहागरा, ६. हम्मीर, ७. श्याम, ८. छायाण्ट, ९. भूपाली, १०. भीमपलासी, ११. कौशिक, १२. मारु।

संगीत-विशारद



ईमन : १. ईमन, २. शुद्धकल्याण, ३. पूरिया, ४. जयतकल्याण ।

सारंग : १. सारंग, २. पटमंजरी, ३. वृन्दावनी, ४. सामंत, ५. बड़हंसक ।

मेघ : १. मेघमल्लार, २. गौड़सारंग, ३. नाट, ४. वेलावली, ५. अलैया, ६. सुह,  
७. देसी सुह, ८. देशाख्य, ९. शुद्ध नाट ।

धनाश्री : १. धनाश्री, २. ललित ।

पूर्वी : १. पूर्वी ।

मुखारी : १. मुखारी ।

दीपक : १. दीपक ।

लोचन के बाद बहुत समय तक मेल या ठाठ के बारे में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। १९५५ ई० के लगभग श्री हृदयनारायणदेव ने लोचन के उक्त ठाठों के वर्गीकरण की पुष्टि करते हुए इस प्रकार व्याख्या की :—

१. भैरवी : शुद्ध स्वर—सांशन्यासा च संपूर्ण षट्ज्यादिभैरवी भवेत् ।

२. कर्नाट : कर्नाटस्त्रयसंपूर्णाः षड्जादिः परिकीर्तितः ।

३. मुखारी : कोमल धेवत-ध कोमला मुखारी स्यात्पूर्णधादिक सूच्छना ।

४. तोड़ी : कोमलर्षभधैवतो तीव्रतरगांधारनिषादौ च ।

: कोमलर्षभधा पूर्णा गांशा तोड़ी निरूप्यते ।

५. केदार : गांधार और निषाद ।

६. यमन : तीव्रतर गांधार, धैवत और निषाद ।

७. मेघ :

८. दीपक : तीव्रतम गांधार, मध्यम और निषाद । - - हृदयराम  
गस्यतीव्रतमत्वेऽथ तथा तीव्रतमौ मनी ।

इहैवोत्प्रेक्षिता पूर्णा हृदयाद्यारिभोच्यते ॥

६. गौरी :

१०. सारंग :

११. पूर्वो :

૧૨. ધનાશ્રી :

सत्रहवीं शताब्दी में ठाठों के अन्तर्गत रागों का वर्गीकरण प्रचार में आ गया था, जो उस समय के प्रसिद्ध ग्रंथ 'संगीत-परिजात' और 'राग-विबोध' से स्पष्ट है। इसी काल में श्रीनिवास ने मेज़ की परिभाषा करते हुए बताया कि राग की उत्पत्ति ठाठ से होती है और ठाठ के तीन रूप हो सकते हैं—औडव, षाडव और संपूर्ण। उसके पश्चात् सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक ठाठों की संख्या में विद्वानों का विशेष मतभेद



रहा। उदाहरणार्थ — 'राग-विबोध' के लेखक ने ठाठों की संख्या तेईस, 'स्वरमेल-कलानिधि' के लेखक ने बीस तथा 'चतुर्दण्डप्रकाशिका' के लेखक ने उन्नीस बताई है।

दक्षिणी संगीत-पद्धति के विद्वान् लेखक पं० वेंकटमखी ने ठाठों की संख्या निश्चित करने के लिए गणित का सहारा लिया और पूर्ण रूप से हिसाब लगाकर ठाठों की कुल निश्चित संख्या बहत्तर बताई। इसके बारे में अपने दृढ़ विश्वास के साथ उन्होंने कहा कि इस संख्या में संगीत के जनक भगवान् शंकर भी घटा-बढ़ी नहीं कर सकते। बहत्तर में से वेंकटमखी ने उन्नीस ठाठ काम चलाऊ चुन लिए, जिनकी तालिका आगे दी जाएगी। वेंकटमखी की इस ठाठ-संख्या को दक्षिणी संगीतज्ञों ने तो अपनाया, किन्तु उत्तरी विद्वानों पर इसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। फिर भी उत्तर भारत के संगीतज्ञ ठाठों की कुल निर्धारित संख्या (७२) को गलत नहीं मानते। ठाठों की यह संख्या कुछ कारणों से उत्तरी पद्धति के लिए अनुकूल नहीं रही, अतः आधुनिक काल के विद्वान् संगीताचार्य पंडित विष्णुनारायण भातखंडे ने उक्त बहत्तर ठाठों में से केवल दस ठाठ चुनकर समस्त प्रचलित रागों का वर्गीकरण किया, जिसे उत्तर-भारतीय संगीत-विद्यार्थियों ने अपनाकर राग-रागिनी की प्राचीन पद्धति से अपना पीछा छुड़ाया। इस प्रकार लोचन कवि से आरम्भ होकर यह ठाठ-पद्धति चक्कर काटती हुई श्री भातखंडे के समय में आकर वैधानिक रूप से स्थिर हो गई।

## ठाठ-ट्याख्या

**मेलः स्वरसमूहः स्याद्भागव्यंजनशक्तिमान् ।**

— अभिनव रागमंजरी

अर्थात्—'मेल' (ठाठ) स्वरों के उस समूह को कहते हैं, जिससे राग उत्पन्न हो सकें। नाद से स्वर, स्वरों से सप्तक और सप्तक से ठाठ तैयार होते हैं।

एक सप्तक में शुद्ध-विकृत (कोमल-तीव्र) मिलकर कुल बारह स्वर होते हैं, यह पहले बताया ही जा चुका है। इन्हीं स्वरों की सहायता से ठाठ तैयार होते हैं और ठाठ को ही संस्कृत में 'मेल' कहते हैं।

### ठाठ के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें

१. यद्यपि ठाठ बारह स्वरों से तैयार किए गए हैं, किन्तु ठाठ में सात स्वर ही लिए जाते हैं। ये सात स्वर उन्हीं बारह स्वरों में से चुन लिए जाते हैं।

२. वे सात स्वर 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि' इसी क्रम से और इन्हीं नामों से होने चाहिए। यह हो सकता है कि उपर्युक्त सात स्वरों में से कोई कोमल या कोई तीव्र ले लिया जाए, किन्तु सिलसिला यही रहेगा। राग में ये स्वर इस क्रम से हों या न हों, किन्तु ठाठ में इस क्रम का होना आवश्यक है। राग में सात स्वरों से कम भी हो सकते हैं, किन्तु ठाठ में सात स्वरों का होना जरूरी है। अर्थात् ठाठ का सम्पूर्ण होना आवश्यक है, क्योंकि बहुत-से ऐसे राग हैं, जिनमें सातों स्वर लगते हैं, इसलिए

संगीत-विशारद



ठाठ में सातों स्वरों का होना आवश्यक है; अन्यथा उससे सम्पूर्ण जाति के राग तैयार करने में असुविधा होगी ।

३. ठाठ में केवल आरोह ही होता है, इसमें आरोह-अवरोह, दोनों का होना आवश्यक नहीं है ।

४. ठाठ में एक ही स्वर के दो रूप (कोमल व तीव्र) साथ-साथ आ सकते हैं ।

५. ठाठ में रंजकता का होना आवश्यक नहीं है, अर्थात् यह आवश्यक नहीं कि ठाठ सुनने में कानों को अच्छा ही लगे । कारण, ठाठ में क्रमानुसार सात स्वर लेना अनिवार्य होता है और कभी-कभी एक स्वर के दो स्वरूप ( कोमल-तीव्र ) भी साथ-साथ आ सकते हैं; इसलिए प्रत्येक ठाठ में रंजकता का रहना सम्भव है ही नहीं ।

६. ठाठ को पहचानने के लिए, उसमें से उत्पन्न हुए किसी प्रमुख राग का नाम दे दिया जाता है; जैसे—भैरव एक प्रसिद्ध राग है, इसलिए भैरव राग के स्वरों के अनुसार जो ठाठ बना, उस ठाठ का नाम भी 'भैरव ठाठ' रख दिया । इसी प्रकार अन्य ठाठों के नाम रखे गए । प्रत्येक ठाठ में स्वर तो केवल सात ही होते हैं, किन्तु उनके स्वरों में कोमल, तीव्र का अन्तर पड़ सकता है । इस अन्तर से ही तरह-तरह के ठाठ बना लिए हैं ।

यमन, बिलावल, और खमाजी; भैरव, पूरवि, मारव, काफी ।

आसा, भैरवि, तोड़ि, बखाने; दशमित ठाठ 'चतुर' गुनि माने ।

'चतुर' पंडित की इस कविता से दस ठाठों के नाम आसानी से याद हो जाते हैं । नीचे दस ठाठों में लगने वाले कोमल व तीव्र स्वर दिखाए गए हैं :—

**दस ठाठों के सांकेतिक चिन्ह**

यमन या कल्याण ठाठ :	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
बिलावल ठाठ :	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
खमाज ठाठ :	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
भैरव ठाठ :	सा	रे	ग	म	प	धु	नि	सां
पूर्वी ठाठ :	सा	रे	ग	म	प	धु	नि	सां
मारवा ठाठ :	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
काफी ठाठ :	सा	रे	गु	म	प	ध	नि	सां
आसावरी ठाठ :	सा	रे	गु	म	प	धु	नि	सां
भैरवी ठाठ :	सा	रे	गु	म	प	धु	नि	सां
तोड़ी ठाठ :	सा	रे	गु	म	प	धु	नि	सां

**७२ ठाठों की रचना का सिद्धांत**

यहाँ आप यह प्रश्न कर सकते हैं कि जब उत्तर भारत में गणित की दृष्टि से केवल ३२ मेल सम्भव हैं तब वेंकटमखी ने अपनी पुस्तक में बहत्तर मेल कैसे बना



दिए ? बात यह थी कि हमने जो अपने स्वरों के नाम रखे हैं वे उनक स्वरों के नाम नहीं थे । उन्होंने अपने बारह स्वरों के नाम बारह के स्थान पर सोलह कर लिये थे । अर्थात् चार स्वरों के दो-दो नाम कर दिए । यह नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जाएगा :—

**दक्षिण भारतीय या कर्नाटिक स्वर**

**उत्तर भारतीय या हिन्दुस्तानी**

**संगीत पद्धति के स्वर**

षड्ज	सा
शुद्ध ऋषभ	कोमल रे
शुद्ध गांधार (या चतुःश्रुति ऋषभ)	शुद्ध रे
साधारण गांधार (या षट्श्रुति ऋषभ)	कोमल ग
अन्तर गांधार	शुद्ध ग
शुद्ध मध्यम	शुद्ध मध्यम
प्रति मध्यम	तीव्र मध्यम
पञ्चम	पा
शुद्ध धैवत	कोमल धा
शुद्ध निषाद (या चतुःश्रुति धैवत)	शुद्ध धा
कशिक निषाद (या षट्श्रुति धैवत)	कोमल नि
काकली निषाद	शुद्ध नि

इस तालिका पर आप देखेंगे कि वेंकटमखी ने तीन रे ( शुद्ध, चतुःश्रुति और षट्श्रुति ) तीन धा ( शुद्ध, चतुःश्रुति और षट्श्रुति ), तीन गा ( शुद्ध, साधारण और अन्तर ) और तीन नि ( शुद्ध, कशिक और काकली ) बना लिए । यदि प्रत्येक स्वर के रा, री, रु की भाँति तीन-तीन सांकेतिक नाम रख दिए जाएँ तो ये निम्न प्रकार होंगे :—

स्वर	सांकेतिक नाम	स्वर	सांकेतिक नाम
शुद्ध रे	रा	शुद्ध गा	गा
चतुःश्रुति रे	री	साधारण गा	गी
षट्श्रुति रे	रु	अन्तर गा	गु
शुद्ध धा	धा	शुद्ध नि	ना
चतुःश्रुति धा	धी	कशिक नि	नी
षट्श्रुति धा	धु	काकली नि	नु

अब जो वेंकटमखी ने पूर्वांग के छह मेल बनाए उनमें ऋषभ-गांधार का क्रम (i) रा गा (ii) रा गी (iii) रा गु (iv) री गी (v) री गु और (vi) रु गु रखा । इस प्रकार से आप देखेंगे कि उन्होंने अपने मेलकर्ताओं की रचना करते समय प्रत्येक मेल में ऋषभ और गांधार का ही प्रयोग किया है । यही बात उत्तरार्ध के मेलों में भी है । अब यदि उनके द्वारा बनाए गए सप्तक के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध को देखें तो इसका रूप निम्न भाँति होगा :—

**संक्षेप-निर्धार**



## पूर्वार्ध

- (१) सा रा गा मा
- (२) सा रा गी मा
- (३) सा रा गु मा
- (४) सा री गी मा
- (५) सा री गु मा
- (६) सा रु गु मा

## उत्तरार्ध

- (७) पा धा ना सा
- (८) पा धा नी सा
- (९) पा धा नु सा
- (१०) पा धी नी सा
- (११) पा धी नी सा
- (१२) पा धु नु सा

अब पूरी आरोही बनाने के लिए नं० १ को नं० ७ से मिलाया तो एक मेल बना। जब इसी एक को क्रम से नं० ८, १०, ११ व १२ से मिला देंगे तो क्रम से ५ मेल और बन जायेंगे। इस प्रकार नं० १ पूर्वार्ध को छह भिन्न उत्तरार्ध से मिला देने पर छह भिन्न मेल बनेंगे। इसी आधार पर प्रत्येक पूर्वार्ध से छह-छह मेल बनेंगे। इस प्रकार भिन्न मेलों की कुल संख्या ३६ होगी।

अब यदि इन ऊपर के मेलों में शुद्ध मध्यम के स्थान पर विकृत मध्यम को रख दें तो ३६ और नवीन बन जाएँगे। इस प्रकार मेलों की कुल संख्या ७२ हो जाएगी। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि उनका ७२ ठाठों की रचना का सिद्धांत भी ठीक था।

उपर्युक्त बहत्तर ठाठों में से हिन्दुस्तानी ( उत्तर-भारतीय ) संगीत-पद्धति में केवल दस ठाठ ही प्रचलित हैं, क्योंकि इनसे ही हमारा काम भली-भाँति चल जाता है। इनके नाम और स्वर इस लेख के आरम्भ में ही बताए जा चुके हैं।



# उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति के

## बारह स्वरों से बत्तीस ठाठ

यह बताया जा चुका है कि वेंकटमखी पंडित के स्वर हमारे स्वरों के समान नहीं थे, इसलिए उन्होंने अपने स्वरों के हिसाब से बहत्तर ठाठ बनाए। किन्तु यदि हम वेंकटमखी के स्वरों पर ध्यान न देकर अपनी हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति के बारह स्वरों के अनुसार ठाठ-रचना करें, तो उनके अनुसार केवल बत्तीस ठाठ ही बनने संभव हैं। वे किस प्रकार बनेंगे यह यहाँ बताया जाता है।

सप्तक के पूर्वांग और उत्तरांग, ये दो भाग पहले का तरह कर लीजिए :—

१. सा रे रे गु ग म और प ध ध नि नि सां।

सप्तक के पहले भाग से	सप्तक के दूसरे भाग से
१. सा रे गु म	१. प ध नि सां
२. सा रे ग म	२. प ध नि सां
३. सा रे गु म	३. प ध नि सां
४. सा रे ग म	४. प ध नि सां

इस प्रकार चार स्वर वाले आठ मेल बनाने के बाद अब इनको मिलाकर सात स्वर वाले मेल बनाए जायें, तो  $4 \times 4 = 16$  मेल इस प्रकार बनेंगे :—

### शुद्ध मध्यम वाले सोलह मेल

*१. सा रे गु म प ध नि सां	५. सा रे ग म प ध नि सां
२. सा रे गु म प ध नि सां	*६. सा रे ग म प ध नि सां
३. सा रे गु म प ध नि सां	७. सा रे ग म प ध नि सां
४. सा रे गु म प ध नि सां	८. सा रे ग म प ध नि सां



*८. सा रे ग म प ध नि सां	१३. सा रे ग म प ध नि सां
१०. सा रे ग म प ध नि सां	१४. सा रे ग म प ध नि सां
*११. सा रे ग म प ध नि सां	*१५. सा रे ग म प ध नि सां
११. सा रे ग म प ध नि सां	१६. सा रे ग म प ध नि सां

उपर्युक्त सोलह ठाठों में शुद्ध मध्यम लगाया गया है, अब यदि हम शुद्ध की बजाय तीव्र मध्यम लगाकर बिल्कुल इसी प्रकार से स्वर लिखें तो सोलह मेल और बन जायेंगे :—

### तीव्र मध्यम वाले सोलह मेल

१. सा रे ग म प ध नि सां	५. सा रे ग म प ध नि सां
*२. सा रे ग म प ध नि सां	*६. सा रे ग म प ध नि सां
३. सा रे ग म प ध नि सां	७. सा रे ग म प ध नि सां
४. सा रे ग म प ध नि सां	८. सा रे ग म प ध नि सां
९. सा रे ग म प ध नि सां	९. सा रे ग म प ध नि सां
१०. सा रे ग म प ध नि सां	१३. सा रे ग म प ध नि सां
११. सा रे ग म प ध नि सां	१४. सा रे ग म प ध नि सां
१२. सा रे ग म प ध नि सां	१५. सा रे ग म प ध नि सां
	१६. सा रे ग म प ध नि सां

इस प्रकार सोलह मेल शुद्ध मध्यम वाले और सोलह मेल तीव्र मध्यम वाले मिलकर  $१६ + १६ = ३२$  मेल हमारी पद्धति से बन सकते हैं और इनमें सिलसिलेवार स्वरों में से कोई नहीं छूटा तथा एक स्वर के दो रूप पास-पास भी नहीं आये।

उपर्युक्त वत्तीस मेलों में हमारे प्रचलित दस ठाठ भी मौजूद हैं, जो यथास्थान पुष्पांकित किये गये हैं; देखिये :—

शुद्ध मध्यम वाले सोलह मेलों में	तीव्र मध्यम वाले सोलह मेलों में
सं० १ पर भैरवी ठाठ	सं० २ पर तोड़ी ठाठ
सं० ६ पर भैरव ठाठ	सं० ६ पर पूर्वी ठाठ
सं० ८ पर आमावरी ठाठ	सं० ८ पर मारवा ठाठ
सं० ११ पर काफ़ी ठाठ	सं० १६ पर कल्याण ठाठ
सं० १५ पर खमाज ठाठ	
सं० १६ पर बिलावल ठाठ	



यद्यपि हमारी पद्धति से उपर्युक्त बत्तीस ठाठ ही सम्भव हैं, फिर भी पं० वेंकटमखी के बहत्तर ठाठों का सिद्धान्त इसलिए मानना पड़ता है कि इसके आविष्कारक वेंकटमखी ही थे और उन्होंने अपने देश की, अर्थात् कर्नाटकी पद्धति के स्वरों से बहत्तर ठाठ बनाने का जो सिद्धान्त सबसे पहले प्रतिपादित किया, गणित के अनुसार यह बिल्कुल ठीक था। किन्तु उन्होंने बहत्तर ठाठों में से उन्नीस ठाठ अपना काम चलाने को ऐसे चुन लिए, जिससे दक्षिणी रागों का वर्गीकरण किया जा सकता था। इसी प्रकार उत्तर-भारत के विद्वानों ने उपर्युक्त बहत्तर ठाठों में से बत्तीस ठाठ ऐसे चुने, जिनके अन्तर्गत उत्तर-भारतीय संगीत पद्धति रागों का वर्गीकरण सम्भव हो सकता था। फिर अपना काम चलाने के लिए बत्तीस में से केवल दस ठाठ उत्तर-भारतीय संगीत में चालू रखे गये, जो आजकल प्रचलित हैं।

इन दस ठाठों को भी तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

### पहला वर्ग

कल्याण

बिलावल

समाज

}

शुद्ध 'रे, ग, घ' वाले रागों के लिए

### दूसरा वर्ग

भैरव

पूर्वी

मास्वां

}

कोमल 'रे' तथा शुद्ध 'ग, नि' वाले रागों के लिए

### तीसरा वर्ग

काफ़ी

भैरवी

आसावरी

तोड़ी

}

कोमल 'ग', 'नि' वाले रागों के लिए

इस प्रकार इन दस ठाठों के अन्तर्गत हमारे प्रत्येक समय के राग आ सकते हैं। इसीलिए भातखंडे जी ने केवल दस ठाठ ग्रहण किए और शेष ठाठों को विदेशी तथा अपने लिए अनुपयोगी समझकर छोड़ दिया।



# उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति के

## दस ठाठों से उत्पन्न कुछ राग

### कल्याण ठाठ के राग

१. यमन, २. भूपाली, ३. शुद्ध कल्याण, ४. चन्द्रकान्त, ५. जयतकल्याण, ६. मालश्री, ७. हिंदोल, ८. हमीर, ९. केदार, १०. कामोद, ११. श्याम, १२. छाया-नट, १३. गोडसारंग इत्यादि।

### बिलावल ठाठ के राग

१. बिलावल शुद्ध, २. अल्हैयाबिलावल, ३. शुक्लबिलावल, ४. देवगिरी, ५. यमनी, ६. ककुभ, ७. नटबिलावल, ८. लच्छासाख, ९. सरपर्दा, १०. विहाग, ११. देशकार, १२. हेमकल्याण, १३. नट राग, १४. पहाड़ी, १५. मांड, १६. दुर्गा, १७. मलुहा, १८. शंकरा इत्यादि।

### खमाज ठाठ के राग

१. झिझोटी, २. खमाज, ३. दुर्गा द्वितीय, ४. तिलंग, ५. रागेश्वरी, ६. खंवावती, ७. गारा, ८. सोरठ, ९. देश, १०. जेजैवंती, ११. तिलककामोद इत्यादि।

### भैरव ठाठ के राग

१. भैरव, २. रामकली, ३. बंगालभैरव, ४. सौराष्ट्रटंक, ५. प्रभात, ६. शिव-भैरव, ७. आनंदभैरव, ८. अहीरभैरव, ९. गुणकली, १०. कालिगड़ा, ११. जोगिया, १२. विभास, १३. मेघरंजनी इत्यादि।

### पूर्वी ठाठ के राग

१. पूर्वी, २. पूर्याधनाश्री, ३. जेतश्री, ४. परज, ५. श्रीराग, ६. गौरी, ७. मालश्री, ८. त्रिवेणी, ९. टंकी, १०. वसंत इत्यादि।



## मारवा ठाठ के राग

१. मारवा, २. पूरिया, ३. जैत, ४. मालीगौरा, ५. साजगिरी, ६. वराटी, ७. ललित, ८. सोहनी, ९. पंचम, १०. भटियार, ११. विभास, १२. भंखार इत्यादि ।

## काफी ठाठ के राग

१. काफी, २. सैधवी, ३. सिंदूरा, ४. धनाश्री, ५. भीमपलासी, ६. धानी, ७. पटमंजरी, ८. पटदीपकी, ९. हंसकंकणी, १०. पीलू, ११. बागेश्वरी, १२. शहाना, १३. सूहा, १४. सुघराई, १५. नायकीकान्हड़ा, १६. देवसाख, १७. बहार, १८. वृन्दावनी सारंग, १९. मध्यमादि सारंग, २०. सामंतसारंग, २१. शुद्ध सारंग, २२. मियाँ की सारंग, २३. बड़हंससारंग, २४. शुद्ध मल्लार, २५. मेघ, २६. मियाँ की मल्लार, २७. सूरमल्लार, २८. गौड़मल्लार इत्यादि ।

## आसावरी ठाठ के राग

१. आसावरो, २. जौनपुरी, ३. देवगांधार, ४. सिंधुभैरवी, ५. देसी, ६. षट् राग, ७. कौशिक कान्हड़ा, ८. दरबारी कान्हड़ा, ९. अडाणा, १०. नायकी द्वितीय इत्यादि ।

## भैरवी ठाठ के राग

१. भैरवी, २. मालकौंस, ३. धनाश्री, ४. विलासखानी तोड़ी इत्यादि ।

## तोड़ी ठाठ के राग

१. तोड़ी (चौदह प्रकार की), २. मुलतानी इत्यादि ।

यद्यपि उपर्युक्त दस ठाठों द्वारा और भी बहुत-से राग उत्पन्न होते हैं, किन्तु यहाँ कुछ प्रचलित रागों का ही उल्लेख किया गया है ।



## वेंकटमरवी पण्डित के बहत्तर मेल (ठाठ)

१. कनकांबरी	१५. मायामालवगोल	२९. शंकराभरण
२. फेनद्युति	१६. वेगवाहिनी	३०. नागाभरण
३. सामवराली	१७. छायावती	३१. कलावती
४. भानुमती	१८. शुद्धमालवी	३२. चूड़ामणि
५. मनोरंजन	१९. झंकारभ्रमरी	३३. गंगातरंगिणी
६. तनुकीर्ति	२०. रीतिगोल	३४. छायानट
७. सेनाग्रणी	२१. किरणावली	३५. देशाक्षी
८. तोड़ी	२२. श्रीराग	३६. चलनाट
९. भिन्नषड्ज	२३. गौरीबेलावली	३७. स गंधिनी
१०. नटाभरण	२४. वीरवसंत	३८. जगमोहिनी
११. कोकिलस्वर	२५. शरावती	३९. वरालिका
१२. रूपवती	२६. तरंगिणी	४०. नभोमणि
१३. हेजुज्जी	२७. सौरसेना	४१. कुम्भिनी
१४. बसंतभरवी	२८. केदारगोल	४२. रविक्रिया



४३. गीर्वाणी	५३. गमक क्रिया	६३. गीतप्रिया
४४. भवानी	५४. वंशावती	६४. भूषावती
४५. शैवपंतुवराली	५५. शामला	६५. शान्तकल्याण
४६. स्तवराज	५६. चामरा	६६. चतुरंगिणी
४७. सौबीरा	५७. समद्युति	६७. संतानमंजरी
४८. जीवंतिका	५८. सिंहख	६८. ज्योति
४९. धवलाग	५९. धामवती	६९. धौतपंचम
५०. नामदेशी	६०. नैषध	७०. नासामणि
५१. रामक्रिया	६१. कुन्तल	७१. कुसुमाकर
५२. राममनोहर	६२. रतिप्रिया	७२. रसमंजरी

### वैकटमखी पंडित के उन्नीस मेल और उनके स्वर

मेल-नाम	स	रि	ग	म	प	ध	नि
१. मुखारी	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध
२. सामवराली	"	"	साधारण	"	"	"	काकली
३. भूपाली	"	"	"	"	"	"	कैशिक
४. हेजुज्जी	"	"	अन्तर	"	"	"	शुद्ध
५. वसंतभैरवा	"	"	"	"	"	"	कैशिक
६. गोल	"	"	"	"	"	"	काकली
७. भरवी	"	"	साधारण	"	"	"	कैशिक
८. आहीरी	"	"	"	"	"	"	"
९. श्री	"	"	"	"	"	पंचश्रुति	"
१०. कांभोजी	"	"	अन्तर	"	"	"	"



११. शंकराभरण	"	"	"	"	"	"	काकली
१२. सामंत	"	"	"	"	"	षट्मुख	"
१३. देशाक्षी	"	षट्श्रुति	"	"	"	पंचश्रुति	"
१४. नाट	"	"	"	"	"	षट्श्रुति	"
१५. शुद्धवराली	"	शुद्ध	शुद्ध	वराली	"	शुद्ध	"
१६. पंतुवराली	"	"	साधारण	"	"	"	"
१७. शुद्धरामक्रिया	"	"	अन्तर	"	"	"	"
१८. सिंहख	"	पंचश्रुति	साधारण	"	"	पंचश्रुति	कैशिक
१९. कल्याणी	"	"	अन्तर	"	"	"	काकली

### पंडित वैकटमखी के जनक मेल तथा जन्य राग

‘चतुर्दंडप्रकाशिका’ में पं० वैकटमखी के उन्नीस ठाठों से उत्पन्न हुए रागों की नामावली इस प्रकार है :—

जनक मेल	जन्य
१. मुखारी	१. मुखारी
२. सामवराली	१. सामवराली
३. भूपाल	१. भूपाल, २. भिन्नषड्ज
४. वसंतभैरवी	१. वसंतभैरवी
५. गोल	१. गोल, २. गुंडक्रिया, ३. सालंगनाट, ४. नादरामक्रिया, ५. ललित, ६. पाडी, ७. गुर्जरी, ८. बहुली, ९. मल्लहरी, १०. सावेरी, ११. छायागोल, १२. पूर्वगोल, १३. कर्णाटक, १४. बंगाल, सौराष्ट्र
६. अहीरी	१. आभेरी, २. हिंडोलवसंत



७. भैरवी	१. भरवी, २. हिंडोल, ३. अहीरी, ४. घंटारव, ५. रीतिगौल
८. श्रीराग	१. श्री, २. सालगभैरवी, ३. धन्यासी, ४. मालवश्री, ५. देव-गांधार, ६. आंधाली, ७. बेलावली, ८. कन्नडगौल
९. हेजुज्जी	१. हेजुज्जी, २. रेवगुप्ति
१०. कांभोजी	१. कांभोजी, २. केदारगौल, ३. नारायणगौल
११. शंकराभरण	१. शंकराभरण, २. आरभी, ३. रागध्वनि, ४. साम, ५. शुद्ध-वसंत ६. नारायणदेशाक्षी, ७. नारायणी
१२. सामंत	१. सामंत
१३. देशाक्षी	१. देशाक्षी
१४. नाट	१. नाट
१५. शुद्धवराली	१. वराली
१६. पंतुवराली	१. पंतुवराली
१७. शुद्धरामक्रिया	१. शुद्धरामक्रिया
१८. सिंहरव	१. सिंहरव
१९. कल्याणी	१. कल्याणी

इस प्रकार उन्नीस मेलों से पचपन जन्यराग बताए गए हैं।

### ‘रागलक्षणम्’ के बहत्तर कर्नाटिकी मेल

पं० वेंकटमखी के बाद कर्नाटिकी संगीत की एक पुस्तक ‘रागलक्षणम्’ और लिखी गई। उसके लेखक ने भी बहत्तर ठाठ मानकर उनसे लगभग पाँचसौ जन्य-रागों की उत्पत्ति बताई है। इस ग्रंथ के अनुसार, आजकल कर्नाटिकी संगीत-पद्धति में बहत्तर ठाठ प्रचलित हैं। इसे वे अपना आधार-ग्रंथ मानते हैं।

‘रागलक्षणम्’ के लेखक के स्वरों में और वेंकटमखी के स्वर-नामों में कहीं कहीं अंतर पाया जाता है। आगे की तालिका में हम अपने प्रचलित उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति के बारह स्वरों के साथ-साथ वेंकटमखी और ‘रागलक्षणम्’ के स्वर दिखाते हैं।

संगीत-विशारद



उत्तर-भारतीय स्वर	वेंकटमखी के स्वर	'रागलक्षणम्' के स्वर
१. सा	सा	सा
२. रे (कोमल)	शुद्ध रि	शुद्ध रि
३. रे (शुद्ध)	पंचश्रुति रि या शुद्ध ग	चतुःश्रुति रि या शुद्ध ग
४. ग (कोमल)	षट्श्रुति रि या साधारण ग	षट्श्रुति रि या साधारण ग
५. ग (शुद्ध)	अन्तर ग	अन्तर ग
६. म (शुद्ध)	शुद्ध म	शुद्ध म
७. म (तीव्र)	प्रति म या वराली म	प्रति म
८. प	प	प
९. ध (कोमल)	शुद्ध ध	शुद्ध ध
१०. ध (शुद्ध)	पंचश्रुति ध या शुद्ध नि	चतुःश्रुति ध या शुद्ध नि
११. नि (कोमल)	षट्श्रुति ध या कैशिक नि	षट्श्रुति ध या कैशिक नि
१२. नि (शुद्ध)	काकली नि	काकली नि

अब आगे की तालिका में 'रागलक्षणम्' ग्रंथ के अनुसार बहत्तर मेल-नाम स्वर-सहित दिये जाते हैं। इसमें आरम्भ के छत्तीस मेल शुद्ध मध्यमवाले तथा उसके बाद के छत्तीस मेल प्रति मध्यमवाले हैं।

**'रागलक्षणम्' (कर्नाटिकी पद्धति) के बहत्तर मेल और उनके स्वर**  
( शुद्ध मध्यमवाले छत्तीस मेल )

मेल-नाम	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
१. कनकांगी	सा	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	प	शुद्ध	शु.
२. रत्नांगी	"	"	"	"	"	"	कै.
३. गानमूर्ति	"	"	"	"	"	"	का.



४. वनस्पति	सा	शुद्ध	"	"	"	च.	कै.
५. मानवती	सा	"	"	"	"	च.	का.
६. तानरूपी	सा	"	"	"	"	ष.	का.
७. सेनावती	सा	"	साधारण	"	"	शुद्ध	शु.
८. हनुमत्तोड़ी	सा	"	साधारण	"	"	"	कै.
९. धेनुका	सा	"	साधारण	शुद्ध	प	"	का.
१०. नाटकप्रिय	सा	"	साधारण	"	प	"	कै.
११. कोकिलप्रिय	सा	"	साधारण	"	प	"	का.
१२. रूपवती	सा	"	साधारण	"	प	ष.	का.
१३. गायकप्रिय	सा	"	साधारण	"	प	शुद्ध	शु.
१४. वकुलाभरण	सा	"	अन्तर	"	प	"	कै.
१५. मायामालवगौल	सा	"	अन्तर	"	प	"	का.
१६. चक्रवाल	सा	"	अन्तर	"	प	च.	कै.
१७. सूर्यकान्त	सा	"	अन्तर	"	प	"	का.
१८. हाटकांबरी	सा	"	अन्तर	"	प	ष.	का.
१९. झंकारध्वनि	सा	"	अन्तर	"	प	शुद्ध	का.
२०. नटभैरवी	सा	"	अन्तर	"	प	"	शु.
२१. कीरवाणी	सा	"	अन्तर	"	प	"	कै.
२२. खरहरप्रिय	सा	"	अन्तर	"	प	च.	का.
२३. गौरीमनोहरी	सा	"	अन्तर	"	प	च.	कै.
२४. वरुणप्रिय	सा	"	अन्तर	"	प	ष.	का.
२५. मानरंजनी	सा	"	अन्तर	"	प	शुद्ध	शु.
२६. चारुकेशी	सा	"	अन्तर	"	प	"	कै.
२७. सांगी	सा	"	अन्तर	"	प	"	का.

संगीत-विशारद



२८. हरिकांभोजी	सा	शुद्ध	अन्तर	शुद्ध	प.	च.	क.
२९. धीरशंकराभरण	सा	शुद्ध	अन्तर	"	"	"	का.
३०. नागनंदिनी	सा	ष.श्रु.	अन्तर	"	"	ष.	"
३१. यागप्रिया	सा	"	अन्तर	"	"	शुद्ध	शुद्ध
३२. रागवर्धिनी	सा	"	अन्तर	"	"	कै.	कै.
३३. गांगेयभूषणी	सा	"	अन्तर	"	"	शुद्ध	का.
३४. वागधीश्वरी	सा	"	अन्तर	"	"	च.	क.
३५. शूलिनी	सा	"	अन्तर	"	"	"	का.
३६. बलनाट	सा	"	अन्तर	"	"	ष.	"

प्रति मध्यम वाले छत्तीस मेल

३७. सालग	सा	शुद्ध	शुद्ध	प्रति	प.	शुद्ध	शु.
३८. जलार्णव	सा	"	"	"	"	"	कै.
३९. झालवराली	"	"	"	"	"	"	का.
४०. नवनीत	"	"	"	"	"	च.	कै.
४१. पावनी	"	"	"	"	"	"	का.
४२. रघुप्रिया	"	"	"	"	"	ष.	"
४३. गवांबोधी	"	"	साधारण	"	"	शुद्ध	शुद्ध
४४. भवप्रिय	"	"	"	"	"	"	कै.
४५. शुभपंतुवराली	"	"	"	"	"	"	का.
४६. षड्विधमार्गिणी	"	"	"	"	"	च.	क.
४७. सुवर्णांगी	"	"	"	"	"	"	का.
४८. दिव्यमणि	"	"	"	"	"	ष.	"
४९. धवलांबरी	"	"	अन्तर	"	"	शुद्ध	शुद्ध



५०. नामनारायणी	सा	शुद्ध	अन्तर	प्रति	प	शुद्ध	कै.
५१. कामवर्धनी	सा	"	अन्तर	प्रति	प	"	का.
५२. रामप्रिय	सा	"	अन्तर	प्रति	प	"	कै.
५३. गमनश्रिय	सा	"	अन्तर	प्रति	प	"	का.
५४. विश्वभरी	सा	"	अन्तर	प्रति	प	ष.	का.
५५. श्यामलांगी	सा	"	साधारण	प्रति	प	शुद्ध	शु.
५६. षण्मुखप्रिय	सा	"	साधारण	प्रति	शुद्ध	"	कै.
५७. सिंहेंद्रमध्यम	सा	"	साधारण	प्रति	शुद्ध	"	का.
५८. हेमवती	सा	"	साधारण	प्रति	शुद्ध	च.	क.
५९. धर्मवत	सा	"	साधारण	प्रति	शुद्ध	च.	का.
६०. नीतिमणि	सा	"	साधारण	प्रति	शुद्ध	ष.	का.
६१. कांतमणि	सा	"	अन्तर	प्रति	शुद्ध	शुद्ध	शु.
६२. ऋषभप्रिय	सा	"	अन्तर	प्रति	शुद्ध	"	कै.
६३. लतांगी	सा	"	अन्तर	प्रति	शुद्ध	"	का.
६४. वाचस्पति	सा	"	अन्तर	प्रति	शुद्ध	च.	कै.
६५. मेघकल्याणी	सा	"	अन्तर	प्रति	शुद्ध	च.	का.
६६. चित्रांबरी	सा	"	अन्तर	प्रति	शुद्ध	ष.	का.
६७. सुचरित्र	सा	"	अन्तर	प्रति	शुद्ध	ष.	शु.
६८. ज्योति-स्वरूपिणी	सा	"	अन्तर	प्रति	शुद्ध	ष.	क.
६९. धातुवर्धनी	सा	"	अन्तर	प्रति	शुद्ध	ष.	का.
७०. नासिका	सा	"	अन्तर	प्रति	शुद्ध	च.	क.
७१. कोसल	सा	"	अन्तर	प्रति	शुद्ध	च.	का.
७२. रसिकप्रिया	सा	"	अन्तर	प्रति	शुद्ध	ष.	का.

संगीत-विशारद



इन बहत्तर ठाठों से लगभग पाँचसौ रागों की उत्पत्ति भी बताई गई है। पीछे दी हुई तालिका में स्वरों के संक्षिप्त संकेत इस प्रकार समझिए :—

शु. : शुद्ध  
 ष. : षट्श्रुतिक  
 च. : चतुःश्रुतिक  
 कै. : कैशिक निषाद  
 साधारण : साधारण गांधार  
 अन्तर : अन्तरगांधार  
 प्रति : प्रति मध्यम

‘रागलक्षणम्’ के बहत्तर ठाठों की जो तालिका यहाँ दी गई है, उसमें अपनी उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति के दस ठाठ भी मिलते हैं। उनके नाम और नंबर इस प्रकार हैं :—

उत्तर-भारतीय पद्धति के दस ठाठ	कर्नाटिक (दक्षिण-भारतीय) पद्धति के मेल तथा नंबर
१. कल्याण	मेचकल्याणी ६५
२. बिलावल	धीरशंकराभरण २६
३. खमाज	हरिकांभोजी २८
४. भैरव	मायामालवगौल १५
५. पर्वी	कामवर्धिनी ५१
६. मारवा	गमनश्रिय ५३
७. काफ़ी	खरहरप्रिय २२
८. आसावरी	नटभैरवी २०
९. भैरवी	हनुमत्ततोड़ी ८
१०. तोड़ी	शुभपंतुवराली ४५



# नाद-स्थान, सप्तक, वर्ण, अलंकार, राग, ताल और मूर्च्छना

## नाद-स्थान

नाद, अर्थात् आवाज़ की ऊँचाई और निचाई के आधार पर उसके मंद्र, मध्य और तार, ये तीन भेद माने जाते हैं। इनको 'नाद-स्थान' (Voice Register) कहते हैं। इन तीन नाद-स्थानों में एक-एक सप्तक मानकर क्रमशः मंद्र-सप्तक, मध्य सप्तक और तार-सप्तक कहलाते हैं। इस प्रकार तीन सप्तक होते हैं; यथा :—

प्रथमं सप्तकं मंद्रं द्वितीयं मध्यमं स्मृतम् ।

तृतीय तारसंज्ञं स्यादेवं स्थानत्रयं मतम् ॥

— अभिनव रागमंजरी

अर्थात्—पहले सप्तक को मंद्र, दूसरे को मध्य और तीसरे को तार-सप्तक कहते हैं। इस प्रकार तीन सप्तक माने गए हैं।

## सप्तक

'सप्तक' का अर्थ है 'सात'। क्योंकि एक स्थान पर सात शुद्ध स्वर निवास करते हैं, अतः इसका नाम 'सप्तक' हुआ।

ध्वनि की साधारण ऊँचाई में जब मनुष्य बात करता है अथवा 'अ S S S' इस प्रकार आलाप लेता है, तो उसे 'मध्य-सप्तक' कहते हैं, किन्तु जब कभी गाने-बजाने में नीचे आवाज़ ले जाने की आवश्यकता होती है, तो वहाँ 'मंद्र-सप्तक' के स्वर काम देते हैं। और, जब मध्य-सप्तक से भी ऊँचा गाने की आवश्यकता पड़ती है, तब 'तार-सप्तक' के स्वर प्रयुक्त होते हैं।

मंद्र-सप्तक के स्वरों को बोलने में हृदय पर, मध्य-सप्तक के स्वरों को बोलने में कंठ पर और तार-सप्तक के स्वरों को बोलने में तालू पर जोर लगाना पड़ता है।

मंद्र-सप्तक : जिस सप्तक के स्वरों की आवाज़ सबसे नीची हो अथवा मध्य-सप्तक से आधी हो, उसे 'मंद्र-सप्तक' कहते हैं। भातखंडे-पद्धति में इसके स्वरों की पहचान यह है :—



सा रे ग म प ध नि (मंद्र-सप्तक)

मध्य-सप्तक : मंद्र-सप्तक से दुगुनी आवाज़ होने पर 'मध्य-सप्तक' कहलाता है। मध्य का अर्थ है 'बीच,' अर्थात् न अधिक नीचा, न अधिक ऊँचा। इसके स्वरों पर कोई चिह्न नहीं होता।

सा रे ग म प ध नि (मध्य-सप्तक)

तार-सप्तक : मध्य-सप्तक से दुगुनी ऊँची आवाज़ होने पर 'तार-सप्तक' कहलाता है। इसे उच्च-सप्तक भी कहते हैं। इसकी पहचान के लिए स्वरों के ऊपर बिन्दु लगा दिया जाता है; जैसे :—

सां रेँ गं मं पं धं निं (तार-सप्तक)

ज्ञातव्य : यद्यपि एक सप्तक में सात स्वर कहे गये हैं, किन्तु पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है कि कोमल-तीव्र रूप करके स्वरों की संख्या एक सप्तक में बारह हो जाती है। बारह-बारह स्वरों के इस प्रकार सप्तक होते हैं :—

सा रे रे ग ग म म प ध ध नि नि मंद्र-सप्तक

सा रे रे ग ग म म प ध ध नि नि मध्य-सप्तक

सां रेँ रेँ गं गं मं मं पं धं धं निं निं तार-सप्तक

## वर्ण

गानक्रियोच्यते वर्णः स चतुर्धा निरूपितः ।

स्थायारोह्यवरोही च संचारीत्यथ लक्षणम् ॥

—अभिनव रागमंजरी

अर्थात्—गाने की जो क्रिया है, उसे 'वर्ण' कहते हैं। वर्ण चार प्रकार के होते हैं, जिन्हें क्रमशः १. स्थायी, २. आरोही, ३. अवरोही और ४. संचारी वर्ण कहते हैं।

स्थायी वर्ण : एक ही स्वर बार-बार ठहर-ठहरकर बोलने या गाने की क्रिया को स्थायी वर्ण कहते हैं; जैसे—सा सा सा सा, रे रे रे रे अथवा ग ग ग ग। स्थायी का अर्थ है—'ठहरा हुआ'।

आरोही वर्ण : नीचे स्वर से ऊँचे स्वर तक चढ़ने या गाने की क्रिया को आरोही वर्ण कहते हैं; जैसे—षड्ज से आगे स्वर बोलने हैं, तो 'सा रे ग म प ध नि', यह आरोही वर्ण हुआ।

अवरोही वर्ण : ऊँचे स्वर से नीचे स्वरों पर आने या गाने की क्रिया को अवरोही वर्ण कहते हैं; जैसे—षड्ज स्वर से नीचे के स्वर बोलने हैं, तो 'सां नि ध प म ग रे सा', यह अवरोही वर्ण हुआ।



संचारी वर्ण : स्थायी, आरोही और अवरोही—इन तीन वर्णों के संयोग (मिलावट) से जब स्वरों की उलट-पलट की जाती है, अर्थात् जब तीनों वर्ण मिलकर अपना रूप दिखाते हैं, तब इस क्रिया को संचारी वर्ण कहते हैं।

ज्ञातव्य : गाते-बजाते समय उपर्युक्त चारों वर्ण काम में लाए जाते हैं। किसी भी गायन में उपर्युक्त चारों वर्ण अवश्य ही मिलेंगे, क्योंकि इनके बिना गान-क्रिया चल नहीं सकती।

## अलंकार

प्राचीन ग्रंथकार 'अलंकार' की परिभाषा इस प्रकार करते हैं :—

विशिष्टवर्णसंदर्भमलंकार प्रचक्षते

अर्थात्—कुछ नियमित वर्ण-समुदायों को 'अलंकार' कहते हैं।

'अलंकार' का अर्थ है 'आभूषण' या 'गहना'। जिस प्रकार आभूषण शारीरिक शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार अलंकारों के द्वारा गायन की शोभा बढ़ जाती है। 'अभिनव रागमंजरी' में लिखा है :—

शशिना रहितेव निशा विजलेव नदी लता विपुष्पेव ।

अविभूषिते कांता गीतिरलंकारहीना स्यात् ॥

अर्थात्—जैसे चन्द्रमा के बिना रात्रि, जल के बिना नदी, फूलों के बिना लता तथा आभूषणों के बिना स्त्री शोभा नहीं पाती, उसी प्रकार अलंकार-बिना गीत भी शोभा को प्राप्त नहीं होते।

अलंकार को 'पलटा' भी कहते हैं। गायन सीखने से पहले विद्यार्थियों को अलंकार सिखाए जाते हैं, क्योंकि इसके बिना न तो अच्छा स्वर-ज्ञान ही होता है और न उन्हें आगे संगीत-कला में सफलता ही मिलती है। अलंकारों से राग-विस्तार में भी काफी सहायता मिलती है। अलंकारों के द्वारा राग की सजावट करके उसमें चार चाँद लगाए जा सकते हैं। तानें इत्यादि भी अलंकारों के आधार पर ही बनती हैं, जैसे 'सारे गरे गम ग म पऽ। रेग रे ग मप धऽ' इत्यादि।

अलंकार वर्ण-समुदायों में ही होते हैं। उदाहरण के लिए वर्ण-समुदाय को लीजिए 'सा रे ग सा'। इसमें आरोही-अवरोही, दोनों वर्ण आ गए हैं। यह एक सीढ़ी मान लीजिए। अब इसी आधार पर आगे बढ़िए और पिछला स्वर छोड़कर आगे का स्वर बढ़ाते जाइए; रे ग म रे यह दूसरी सीढ़ी हुई; ग म प ग यह तीसरी सीढ़ी हुई। इसी प्रकार बहुत-से अलंकार तैयार किए जा सकते हैं। शुद्ध स्वरों के अलावा कोमल-तीव्र स्वरों के अलंकार भी तैयार किए जा सकते हैं, किन्तु उनमें यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि जिस राग में जो स्वर लगते हैं, वे ही स्वर उस राग के अलंकारों में मिल जाएँ।

संगीत-विस्तार



## राग

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः ।

रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः ॥

—अभिनव रागमंजरी

अर्थात्—ध्वनि की उस विशिष्ट रचना को, जिसमें स्वर तथा वर्णों के कारण सौंदर्य हो, जो मनुष्य के चित्त का रंजन करे, अर्थात् जो श्रोताओं के मन को प्रसन्न करे, बुद्धिमान लोग उसे 'राग' कहते हैं ।

राग में निम्नलिखित बातों का होना जरूरी है :—

१. राग किसी ठाठ से उत्पन्न होना चाहिए ।
२. ध्वनि (आवाज़) की एक विशेष रचना हो ।
३. उसमें स्वर तथा वर्ण हों ।
४. रंजकता यानी सुन्दरता हो ।
५. राग में कम से कम पाँच स्वर अवश्य होने चाहिए ।
६. राग में एक स्वर के दो रूप पास-पास लेने का शास्त्रकारों ने विरोध किया है; जैसे 'गु', 'ग' या 'म' 'म' ।\*

७. राग में आरोह तथा अवरोह का होना आवश्यक है; क्योंकि इनके बिना राग का रूप पहचाना नहीं जा सकता ।

८. किसी भी राग में षड्ज (सा) स्वर वर्जित नहीं होता ।

९. मध्यम और पंचम, ये दो स्वर एक साथ तथा एक ही समय कभी भी वर्जित नहीं होते ।

१०. राग में वादी-सम्वादी स्वर अवश्य रहते हैं । इन स्वरों पर ही विशेष जोर रहता है ।

### रागों की जाति

पहले यह बताया जा चुका है कि ठाठ के स्वरों में से ही राग तयार होते हैं, और यह भी बताया गया था कि ठाठ में सात स्वर होने जरूरी हैं, किन्तु राग में यह जरूरी नहीं कि सात ही स्वर हों । अतः किसी ठाठ के स्वरों में से पाँच, छह या सात स्वरों को लेकर जब कोई राग तैयार किया जाता है, तो जितने स्वर उस ठाठ में से लिए जाते हैं, उन्हीं के आधार पर उसकी जाति निश्चित की जाती है ।

इस प्रकार स्वरों की संख्या के अनुसार रागों की तीन जातियाँ मानी गई हैं; जिन्हें औडव, पाडव और सम्पूर्ण कहते हैं :—

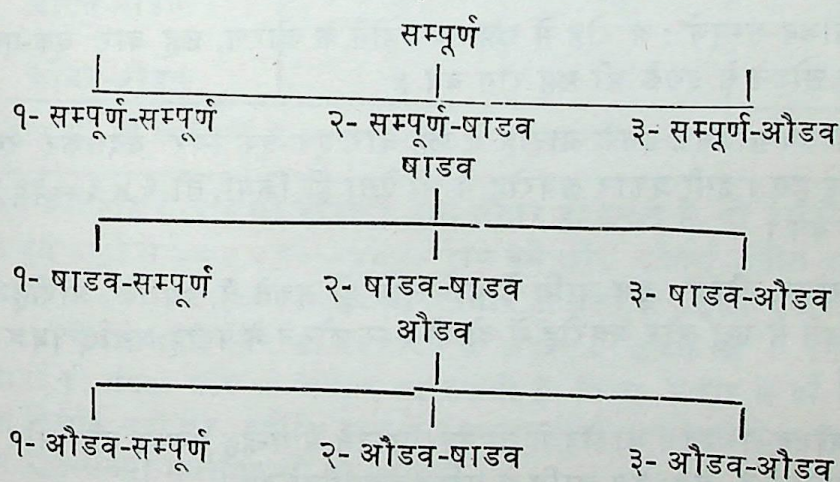
\* नियम सं० ६ के विरुद्ध कुछ राग ऐसे भी हैं, जिनमें एक ही स्वर के दो रूप पास-पास आ जाते हैं जैसे ललित, विहाग, केदार इत्यादि । किन्तु इन्हें इस नियम को अपवाद-स्वरूप ही समझना चाहिए ।



औडव राग : जब किसी ठाठ में से कोई दो स्वर घटाकर ( वर्जित करके ) कोई राग उत्पन्न होता है, अर्थात् जब किसी राग में पाँच स्वर लगते हैं, तो उसे 'औडव राग' कहते हैं; जैसे भूपाली, मालकोश इत्यादि । ध्यान रहे कि 'सा' स्वर भी वर्जित नहीं किया जाता ।

षाडव राग : किसी ठाठ में से केवल एक स्वर वर्जित करके जब कोई राग उत्पन्न होता है, अर्थात् जब किसी राग में छह स्वर प्रयुक्त होते हैं, तो उसे 'षाडव राग' कहते हैं; जैसे मारवा, पूरिया इत्यादि ।

सम्पूर्ण राग : ठाठ से कोई स्वर न घटाकर सातों स्वर जिस राग में लगते हैं, उसे 'सम्पूर्ण राग' कहते हैं; जैसे यमन, बिलावल, भैरव और भैरवी इत्यादि । ऊपर बताई हुई तीन जातियों के रागों के आरोह तथा अवरोह में क्रमशः पाँच-छह स्वर हैं, लेकिन कुछ राग ऐसे भी हैं, जिनके आरोह में छह तथा अवरोह में पाँच स्वर लगते हैं अथवा आरोह में सात और अवरोह में पाँच स्वर लगते हैं । ऐसे रागों को पहचानने के लिए ग्रंथकारों ने उपर्युक्त तीन जातियों में से हर एक जाति की तीन-तीन जातियाँ और बना दी हैं । इस तरह नौ प्रकार की जातियाँ बनीं :—



इस प्रकार तीन जातियों से नौ उपजातियों की उत्पत्ति हुई । अब इनका पूर्ण विवरण देखिए :—

सम्पूर्ण-सम्पूर्ण : जिस राग के आरोह में सात स्वर हों और अवरोह में भी सात स्वर लगते हों, उसे सम्पूर्ण-सम्पूर्ण जाति का राग कहेंगे ।

सम्पूर्ण-षाडव : जिस राग के आरोह में सात स्वर और अवरोह में छह स्वर लगते हों, उसे सम्पूर्ण-षाडव जाति का राग कहेंगे ।

सम्पूर्ण-औडव : जिसके आरोह में सात स्वर और अवरोह में पाँच स्वर हों ।

षाडव-सम्पूर्ण : जिसके आरोह में छह स्वर और अवरोह में सात स्वर हों ।

षाडव-षाडव : जिसके आरोह में भी छह स्वर हों तथा अवरोह में भी छह स्वर हों ।



षाडव-औडव : जिसके आरोह में छह स्वर और अवरोह में पाँच स्वर हों ।  
 औडव-संपूर्ण : जिसके आरोह में पाँच स्वर और अवरोह में सात स्वर हों ।  
 औडव-षाडव : जिसके आरोह में पाँच स्वर और अवरोह में छह स्वर हों ।  
 औडव-औडव : जिसके आरोह में भी पाँच स्वर हों तथा अवरोह में भी पाँच स्वर लगते हों ।

रागों की इन जातियों से राग-संख्या मालूम हो जाती है । देखिए, उपर्युक्त नौ जातियों से किस प्रकार किसी एक ठाठ द्वारा ४८४ राग तैयार हुए ।

सम्पूर्ण-सम्पूर्ण : इससे केवल एक राग ही बन सका, क्योंकि आरोह में भी सात स्वर हैं और अवरोह में भी सात स्वर हैं ।

सम्पूर्ण-षाडव : इस जाति के छह राग बन सकते हैं, क्योंकि आरोह तो सम्पूर्ण रखते जाइए और अवरोह में प्रत्येक बार एक स्वर बदलकर छोड़ते जाइए ।

सम्पूर्ण-औडव : इसके आरोह में सात स्वर रखते जाइए और अवरोह में दो स्वर (बदल-बदलकर) जोड़ते जाइए, तो पन्द्रह राग बने ।

षाडव-सम्पूर्ण : आरोह में छह स्वर होने के कारण, छह बार एक-एक स्वर बदलकर छोड़ने से इसके भी छह राग बने ।

षाडव-षाडव : इसके आरोह में छह बार एक-एक स्वर बदलकर रखा, तो छह टुकड़े हुए । इसी प्रकार अवरोह में भी ऐसा ही किया, तो  $6 \times 6 = 36$  राग इस जाति से बने ।

षाडव-औडव : इस जाति में नब्बे राग हो सकते हैं, क्योंकि आरोह में एक स्वर छोड़ने से छह और अवरोह में दो-दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह अर्थात्  $9 \times 6 = 54$  राग बने ।

औडव-सम्पूर्ण : आरोह में दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह प्रकार बने और अवरोह इसका सम्पूर्ण है, अतः इस जाति से पन्द्रह राग पैदा हुए ।

औडव-षाडव : क्योंकि इसके आरोह में प्रतिवार कोई-से दो स्वर छोड़ने पड़े तो पन्द्रह प्रकार बने और अवरोह में एक स्वर प्रतिवार छोड़ना पड़ा तो छह प्रकार बने, इसलिए  $9 \times 6 = 54$  राग इस जाति से उत्पन्न हुए ।

औडव-औडव : इस जाति के सबसे अधिक अर्थात् दो सौ पन्चीस राग हो सकते हैं, क्योंकि आरोह में प्रतिवार दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह प्रकार बने और अवरोह में भी ऐसे ही दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह प्रकार बने, तो  $9 \times 9 = 81$  राग तैयार हुए ।

इस प्रकार एक ठाठ की नौ जातियों से चारसौ चौरासी राग बने, जो नक्शे द्वारा स्पष्ट किए जाते हैं ।



सं०	जाति	आरोह के स्वर	अवरोह के स्वर	राग तैयार हो सकते हैं ।
१	सम्पूर्ण-सम्पूर्ण	७	७	१
२	सम्पूर्ण-षाडव	७	६	६
३	सम्पूर्ण-औडव	७	५	१५
४	षाडव-सम्पूर्ण	६	७	६
५	षाडव-षाडव	६	६	३६
६	षाडव-औडव	६	५	८०
७	औडव-सम्पूर्ण	५	७	१५
८	औडव-षाडव	५	६	८०
९	औडव-औडव	५	५	२२५

एक ठाठ की नौ जातियों से उत्पन्न रागों का कुल जोड़ = ४८४

जब एक ठाठ से चार सौ चौरासी राग तैयार हो सकते हैं, तो उत्तरी संगीत-पद्धति के दस ठाठों से  $४८४ \times १० = ४८४०$  राग बने और दक्षिण संगीत-पद्धति के बहत्तर ठाठों से  $४८४ \times ७२ = ३४८४८$  राग तैयार हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ और भी राग केवल वादी स्वर को बदल देने से उत्पन्न हो सकते हैं। इस प्रकार यद्यपि रागों की संख्या और भी अधिक बढ़ सकती है; किन्तु प्रचार में दो सौ रागों से अधिक दिखाई नहीं देते; क्योंकि राग में रंजकता होनी आवश्यक है। इस बंधन के कारण राग-संख्या मर्यादित-सी हो जाती है।

## ग्राम-मूर्च्छना

ग्राम

ग्राम शब्द समूहवाची है। जिस प्रकार कुटुम्ब में लोग मिल-जुलकर मर्यादा की रक्षा करते हुए इकट्ठे रहते हैं, उसी प्रकार वादी-सम्वादी स्वरों का वह समूह जिसमें श्रुतियाँ व्यवस्थित रूप में विद्यमान हों और जो मूर्च्छना, तान आदि का आश्रय हो, उसे ग्राम कहते हैं। यहाँ यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि जब तक स्वरों में श्रुतियाँ व्यवस्थित रूप में रहेंगी तभी तक ग्राम रहेगा। उदाहरण के लिए जब आप स्वरों में ४, ३, २, ४, ४, ३, २ का क्रम रखेंगे तो विद्वान् इसे षड्ज ग्राम कहते हैं। अब यदि इनमें से किसी भी एक स्वर की श्रुतियों को बदल दिया

संगीत-विशारद



जाएगा तो ग्राम भी तुरन्त बदल जाएगा। उदाहरण के लिए यदि षड्ज ग्राम के स्वरों में पंचम की चार श्रुतियों के स्थान पर तीन कर दें तो धैवत की चार हो जायेंगी, अर्थात् इनका क्रम ४, ३, २, ४, ४, ३, २ के स्थान पर ४, ३, २, ४, ३, ४, २ कर दें तो अब श्रुतियों के क्रम में अन्तर हो जाने के कारण यह दूसरा ग्राम बन गया। इसे षड्ज ग्राम न कहकर मध्यम ग्राम कहते हैं। दूसरे शब्दों में आप इसे यूँ भी कह सकते हैं कि षड्ज ग्राम का पंचम चार श्रुतियों का है, जबकि मध्यम ग्राम का पंचम तीन श्रुतियों का होता है। (ध्यान रखिए कि शेष स्वरों की स्थिति में कोई अन्तर नहीं होता।) जब केवल एक स्वर पंचम को एक श्रुति गिराकर तोगों को गायन-वादन करना इतना कठिन प्रतीत होता है कि साधारण रूप से लोग यह समझने लगे हैं कि मध्यम ग्राम का प्रचार अब नहीं है, तब इसके स्थान पर यदि षड्ज व पंचम को छोड़कर शेष समस्त स्वरों के स्थान बदल जायें तो उस ग्राम का गायन-वादन कितना कठिन होगा? यही स्थिति गान्धार ग्राम की है। इसीलिए इसके विषय में यह कहा जाता है कि गान्धार ग्राम स्वर्ग लोक को गया।

संक्षेप में आप यूँ समझिये कि ग्राम कुल तीन होते हैं—षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम और गान्धार ग्राम। इनमें से गान्धार ग्राम स्वर्ग लोक में गया। मध्यम ग्राम का प्रचार अब नहीं है। षड्ज ग्राम में श्रुतियों का क्रम ४, ३, २, ४, ४, ३, २ होता है और ये स्वर हमारे आधुनिक काफी ठाठ जैसे होते हैं।

## मूर्च्छना

क्रमयुक्त सात स्वर मूर्च्छना कहलाते हैं। उदाहरण के लिए यदि हम षड्ज ग्राम में (अर्थात् इन श्रुतियों के क्रम में) आरम्भ का स्वर षड्ज मान लें तो स रे ग म प ध नि हमारी षड्ज ग्राम में 'स' स्वर की मूर्च्छना हुई। अब यदि स के स्थान पर आरम्भिक स्वर नि मान लें तो नि स रे ग म प ध में श्रुतियों का क्रम २, ४, ३, २, ४, ३ हो जाएगा, यही हमारी षड्ज ग्राम में निषाद की मूर्च्छना हुई। इसी प्रकार धैवत को आरम्भिक स्वर मानकर ध नि स रे ग म प सातों स्वरों को क्रमयुक्त रखने पर धैवत की और पंचम को आरम्भिक स्वर मानकर सातों स्वरों को क्रमयुक्त रखने पर पंचम की मूर्च्छनायें होंगी। अन्य स्वरों की भी मूर्च्छनायें इसी प्रकार समझनी चाहिए। चूँकि स्वरों की संख्या सात होती है अतएव षड्ज ग्राम में इन शुद्ध स्वरों की सात मूर्च्छनायें बनेंगी, अब इसी प्रकार मध्यम ग्राम में भी सात मूर्च्छनायें समझनी चाहिए। इस आधार से दोनों ग्रामों से कुल मूर्च्छनायें चौदह होती हैं।

## सान्तरा मूर्च्छनायें

भरत के समय में शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त अन्तरगांधार और काकलीनिषाद केवल दो स्वर विकृत और थे। अतः जब शुद्ध गांधार के स्थान पर अन्तर गांधार को रख लेंगे और अब जो सात मूर्च्छनायें बनेंगी उन्हें सान्तरा (अन्तरगांधार सहित) मूर्च्छनायें कहते हैं। इस प्रकार दोनों ग्रामों से चौदह सान्तरा-मूर्च्छनायें और बनेंगी।



## सकाकली मूर्च्छनायें

अब यदि शुद्ध स्वरों में शुद्ध निषाद के स्थान पर काकली-निषाद को रख दें और फिर मूर्च्छनाओं को बनायें तो दोनों ग्रामों से चौदह मूर्च्छनायें और बनेंगी। इन्हें सकाकली (काकली सहित) मूर्च्छनायें कहते हैं।

## साधारणीकृता

अब यदि शुद्ध गांधार के स्थान पर अन्तरगांधार और शुद्ध निषाद के स्थान पर काकलीनिषाद को रख दें, अर्थात् दोनों विकृत स्वरों को प्रयोग में ले लें और तब मूर्च्छनाओं को बनायें, तो इन मूर्च्छनाओं को साधारणीकृता मूर्च्छनायें कहते हैं। इस प्रकार दोनों ग्रामों से कुल छप्पन मूर्च्छनायें बनती हैं, जो निम्नांकित हैं :—

षड्ज ग्राम की मूर्च्छनायें	मध्यम ग्राम की मूर्च्छनायें
शुद्ध स्वरों से	७
सान्तरा	७
सकाकली	७
साधारणीकृता	७
कुल योग	२८

आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत में थाट-पद्धति प्रचलित हो जाने के कारण मूर्च्छना व ग्राम का कोई महत्त्व नहीं रहा है।

## आधुनिक संगीत में मूर्च्छनाओं का उपयोग

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि अब मूर्च्छना का कोई महत्त्व नहीं है। है तो यही बात, परन्तु आजकल विद्वान् गायक रागों में विचित्रता उत्पन्न करने के लिए भी मूर्च्छनाओं का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए आप यमन गा रहे हैं। अब थोड़ी देर को निषाद को आरम्भिक स्वर मानकर अकार से नि स रे ग म प ध नि गाइए और निषाद पर ठहरते रहिये। आप देखेंगे कि यहाँ निषाद को आरम्भिक स्वर मानने से सारे स्वर भैरवी के हो गए। इस प्रकार यमन में निषाद की मूर्च्छना से आपने उन्हीं स्वरों में भैरवी की छाया उत्पन्न कर दी। अब धैवत को आरम्भिक स्वर मानकर ध नि स रे ग म प ध गाइये। आप देखेंगे कि यहाँ काफी राग की छाया आने लगी। ज्यों ही षड्ज पर ठहरेंगे, पुनः यमन स्पष्ट हो जाएगा। अब पंचम को आरम्भिक स्वर मान लीजिए। प ध नि स रे ग म प में बिलावल की छाया दिखाई देगी। इसी प्रकार आप अन्य रागों में भी कर सकते हैं।

आप चाहें तो भैरवी में ऋषभ से ऋषभ तक आलाप करके श्रोताओं को यमन का आभास करा सकते हैं। इसी प्रकार जैजैवन्ती में भी ऋषभ से आलाप करने से भैरवी की छाया उत्पन्न हो जाती है। जब यमन में निषाद को आरम्भिक स्वर मानकर भैरवी की छाया उत्पन्न करते हैं तो संगीत की भाषा में उसे यमन राग में



निषाद की मूर्च्छना कहते हैं। इसी प्रकार जब भैरवी में ऋषभ को आरम्भिक स्वर मानकर यमन दिखाया था तो उसे भैरवी में ऋषभ की मूर्च्छना कहेंगे।

कुछ लोगों का अनुमान है कि प्रचलित रागों में से कुछ राग संभवतः इसी प्रकार षड्ज का परिवर्तन करके बनाए गए होंगे। उदाहरण के लिए, यदि तानपूरे में मिले हुए पंचम पर षड्ज की कल्पना करके कालिङ्गड़ा गायें तो पीलू बनता है। इसी प्रकार शुद्ध मध्यम को 'सा' (आरम्भिक स्वर) मानकर, अवरोही वर्ण में खमाज गाने पर गारा या पंचम से भरवी गाने पर सिंध भैरवी बन जाती है।



## जाति-गायन

यहाँ ग्राम व मूर्च्छना के साथ-साथ जाति-गायन को भी स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। प्राचीन काल में 'राग' नाम की कोई वस्तु नहीं थी। 'राग' के स्थान पर उस समय ये जातियाँ वास्तव में 'मूल-राग' थीं। इन जातियों में विकास होने से अनेक रागों का जन्म हुआ। जाति के दस लक्षण 'अंश, ग्रह, तार, मंद्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडव और औडव' बताए गए हैं; यही प्राचीन रागों के दस लक्षण भी हैं। इनका विवरण इस प्रकार है :—

### अंश

जाति-गायन में मूर्च्छनाओं के प्रारम्भिक स्वर को 'अंश स्वर' कहते थे। दूसरे शब्दों में 'अंश' स्वर से ही सप्तक को प्रारम्भ करते थे। इसी स्वर को 'प्राण-स्वर' या 'जीव-स्वर' भी कहते थे। परन्तु किसी एक जाति में एक से अधिक अंश स्वर भी हो सकते थे। वाद्य-विधि में इसी को 'स्थायी स्वर' कहा गया है। मृदंग इत्यादि वाद्य इसी स्वर में मिलाये जाते थे। आज यदि जाति-गायन का प्रयोग किया जाए तो सितार या वीणा की चिकारियाँ इसी स्थायी स्वर में मिलाई जायेंगी। निरंतर गूँजते रहने के कारण ही इसका नाम 'स्थायी' है। आज मेल्-पद्धति एवं ठाठ पद्धति में प्रत्येक स्थायी स्वर को 'सा' कहा जाने लगा है। फलस्वरूप आज प्रत्येक मूर्च्छना के सात स्वर 'स रे ग म प ध नि स' बन गए हैं। 'अंश' स्वर के 'संवादी' स्वर का कभी लोप नहीं होता था (अर्थात् उसे वर्जित नहीं करते थे) इसीलिए उसे 'वादी-स्वर' भी कहा जाता था।

### ग्रह

जिस स्वर से जाति-गायन प्रारम्भ होता था, उस स्वर को 'ग्रह स्वर' कहते थे। जब किसी जाति में गायन-वादन का प्रारम्भ अंश स्वर से होता था तो उस अवस्था में उसे 'ग्रह-स्वर' भी कहते थे।



## तार-मन्द्र

तार-मन्द्र का अभिप्राय यह था कि किस जाति को किस स्वर तक तार-सप्तक में और किस स्वर तक मन्द्र-सप्तक में गाया जाए। कुछ विद्वानों का मत यह भी है कि किस जाति-विशेष में तार-सप्तक प्रबल रहेगा और किस में मन्द्र-सप्तक। इसी बात को प्रकट करने के लिए तार-मन्द्र का उपयोग किया है।

## न्यास

जाति-गायन में जिस स्वर पर 'अङ्ग' (गीत या वाद्य प्रबन्ध) की समाप्ति होती हो वह स्वर 'न्यास' कहलाता है। इस आधार पर आप गीतों की समाप्ति के स्वर को 'न्यास' कह सकते हैं।

## अपन्यास

जिस स्वर पर गीत के मध्य की समाप्ति होती है, उस स्वर को 'अपन्यास' स्वर कहते हैं।

## सन्यास

गीत की प्रथम 'विदारी' \* को समाप्त करने वाला (अंश का संवादी या अनुवादी) स्वर 'सन्यास' कहलाता है।

## विन्यास

जो स्वर विदारी के खण्ड-रूप पदों, अर्थात् शब्दों के अन्त में रहता है वह 'विन्यास' कहलाता है।

ग्रह, न्यासादि के स्वरों का प्रयोग राग-गायन से पूर्व जबकि जाति-गायन होता था, उस समय किया जाता था। अतः आज के विद्यार्थियों की समझ में इनकी परिभाषाएँ स्पष्ट नहीं होतीं। इन्हें समझने के लिए आप तनिक अनुमान कीजिए कि आप एक ऐसा गीत सुन रहे हैं जो केवल आठ पंक्तियों में गाया जा रहा है। (आप अपनी समझ के लिए गीत में पूर्व की चार पंक्तियों को स्थायी और अन्त की चार पंक्तियों को अन्तरा भी समझ सकते हैं।) इनमें गीत जिस स्वर से प्रारम्भ होगा उस 'ग्रह स्वर' और जहाँ समाप्त होगा उसे 'न्यास स्वर' कहेंगे। गीत का पूर्वाद्ध जहाँ समाप्त होगा (आपकी दृष्टि से स्थायी का अन्तिम स्वर) 'अपन्यास स्वर' कहलायेगा। गीत के प्रथम खण्ड की समाप्ति (अर्थात् दूसरी पंक्ति का अन्तिम स्वर) 'सन्यास' होगा।

जो विदारी के शब्दों के अन्त में (अर्थात् प्रथम पंक्ति का या अन्य स्थानों पर) आने वाला स्वर है, उसे 'विन्यास' कहते हैं। आगे दिया हुआ चित्र इसे अधिक स्पष्ट कर देगा। यहाँ पहली चार रेखाएँ गीत के पूर्वाद्ध को और अन्तिम चार रेखाएँ गीत के उत्तरार्द्ध को बताती हैं। देखिये :—

\* गीत के छोटे-बड़े भाग अथवा गीत-खण्ड को विदारी कहते हैं।



ग्रह \_\_\_\_\_ विन्यास

\_\_\_\_\_ सन्यास

\_\_\_\_\_ अपन्यास

\_\_\_\_\_ न्यास

इनके अतिरिक्त अन्य पंक्तियों पर जो अन्तिम शेष स्वर होंगे वे सब विन्यास के स्वर कहलायेंगे। यदि गीत १६ पंक्तियों का है तो अपन्यास आठवीं पर और सन्यास चौथी पंक्ति का अन्तिम स्वर होगा। यदि गीत में बारह पंक्तियाँ हैं तो ये क्रमशः छठी और तीसरी पंक्तियों पर होंगे।

### अलपत्व-बहुत्व

जब तक कुछ स्वरों पर अधिक और कुछ पर कम देर तक न ठहरा जाए, राग नहीं बनता, इसलिए जिन स्वरों पर अधिक देर तक ठहरा जाए उन्हें 'अभ्यास-मूलक-बहुत्व' और जिन पर भले ही कम ठहरें, परन्तु छोड़ देने से राग-हानि होती हो, उन्हें 'अलघन-मूलक-बहुत्व' के स्वर कहते हैं। इसी प्रकार जिन स्वरों को बिलकुल छोड़ दिया जाए, उन्हें 'अघन-मूलक-अलपत्व' और जिन पर कम ठहराव हो, उन्हें 'अभ्यास मूलक-अलपत्व' के स्वर कहा जाता है।

### औडव-षाडव

इनका सम्बन्ध राग में प्रयुक्त होने वाले स्वरों की संख्याओं से है लेकिन अभि-प्राय औडव, षाडव और सम्पूर्ण राग-जातियों से है।

अब हम यहाँ एक जाति 'पंचमी' का उदाहरण महर्षि भरत के अनुसार दे रहे हैं। 'पंचमी' जाति में दो स्वर पंचम और ऋषभ अंश होते हैं। (अर्थात् इस जाति का गायन-वादन इन स्वरों में से किसी एक से प्रारम्भ होगा।) निषाद, पंचम व ऋषभ अपन्यास के स्वर हैं। (अर्थात् रचना के मध्य की समाप्ति का स्वर इन तीनों में से ही कोई होना चाहिए।) न्यास का स्वर पंचम है। (अर्थात् रचना की समाप्ति भी पंचम पर ही होनी चाहिए।) गांधार लोप होने से षाडव और गांधार-निषाद के लोप से औडव करना चाहिए। इस जाति में स, ग, म दुर्बल हैं। मध्यम-ऋषभ की

### गीत-विशारद



संगति है। गांधार से निषाद पर जाना चाहिए। आशा है, इस विवरण से आपको 'जाति' के विषय में स्पष्ट ज्ञान हो गया होगा।

भरत मुनि ने षड्ज ग्राम की सात और मध्यम ग्राम की ग्यारह जातियाँ गिनाई हैं। ऊपर के उदाहरण वाली जाति 'पंचम' है जो कि मध्यम ग्राम की ग्यारह जातियों में से एक है।

## रागों के आधुनिक दस लक्षण

जिस प्रकार प्राचीन विद्वान् जातियों के दस लक्षण मानते थे, उसी प्रकार आज रागों के भी दस लक्षण माने जाते हैं। ये दस लक्षण क्रम से 'ठाठ' 'अरोहावरोह' 'जाति' 'वादी-संवादी' 'पकड़' 'न्यास' के स्वर, 'पूर्वांग' या 'उत्तरांग' की 'प्रधानता' 'गायन-समय' 'आविर्भाव-तिरोभाव' और राग का 'रस' हैं। इनका विवरण इसी पुस्तक में विस्तार से अन्यत्र दिया गया है।



# रागों के लक्षण

## राग-भेद

प्राचीन ग्रंथों में रागों के तीन भेद बताए गए हैं—१. शुद्ध, २. छायालग और ३. संकीर्ण ।

**शुद्ध** : जिस राग में अन्य किसी राग के स्वर लगने पर भी उसकी छाया न पड़ने पाये, उसे 'शुद्ध राग' कहते हैं ।

**छायालग** : दो रागों के मेल से अथवा किसी एक राग में अन्य किसी राग के स्वर आ जाने से दूसरे राग की जो छाया दिखाई दे जाती है, ऐसे राग को 'छायालग राग' कहते हैं । इसे 'सालंक' भी कहते हैं ।

**संकीर्ण** : जिस राग में दो रागों से अधिक रागों का मिश्रण या मिलावट हो, उसे 'संकीर्ण राग' कहते हैं ।

## वादी, सम्वादी, अनुवादी और विवादी

राग के नियमों में वादी, सम्वादी आदि स्वरों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है, जो निम्नांकित श्लोक से प्रकट है :—

वादी स्वरस्तु राजा स्यान्मन्त्री संवादिसंज्ञितः ।

स्वरो विवादी बैरी स्यादनुवादी च भूत्वन्तः ॥

अर्थात्—वादी स्वर को राजा के समान, सम्वादी स्वर को मन्त्री के समान, विवादी स्वर को बैरी ( दुश्मन ) के समान तथा अनुवादी स्वर को सेवक के समान समझना चाहिए ।

**वादी** : राग में लगने वाले स्वरों में जिस स्वर पर सबसे अधिक जोर रहता है, अथवा जिसका प्रयोग अधिक या बार-बार किया जाता है, उसे उस राग का 'वादी स्वर' कहते हैं ।



संवादी : यह वादी स्वर का सहायक होता है, तभी इसे मन्त्री की पदवी शास्त्रों ने दी है। यह वादी स्वर से कम तथा अन्य स्वरों से अधिक प्रयुक्त होता है। वादी स्वर के चौथे या पाँचवें नम्बर पर 'संवादी स्वर' होता है।

अनुवादी : वादी और संवादी के अतिरिक्त जो नियमित स्वर राग में लगते हैं, वे सब 'अनुवादी स्वर' कहलाते हैं।

विवादी : 'विवादी' का वास्तविक अर्थ तो 'बिगाड़ पदा करने वाला' ही होता है, अर्थात् ऐसा स्वर, जिससे राग का स्वरूप बिगड़ जाए। इसीलिए विवादी को शत्रु (वैरी) की पदवी शास्त्रों में दी गई है। इतना सब होते हुए भी कभी-कभी राग में विवादी स्वर का प्रयोग ऐसी कुशलता से कर दिया जाता है, जिससे कि राग में एक विचित्रता पैदा हो जाती है; जैसे यमन राग में दो शुद्ध गांधारों के बीच में शुद्ध 'म' लगा दिया जाता है तो उसका सौंदर्य कुछ बढ़ ही जाता है। इस प्रकार विवादी स्वर का प्रयोग कुशल गायक करते हैं।

## आश्रय-राग

उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति में प्रत्येक ठाठ का नाम उस ठाठ से उत्पन्न होने वाले किसी राग-विशेष 'जन्य राग' के नाम पर ही देखा जाता है। जिस जन्य (उत्पन्न होने वाले) राग का नाम ठाठ को दिया जाता है, उसी को 'आश्रय-राग' कहते हैं; जैसे 'सा रे ग म प ध नि', इस स्वर-समुदाय से विदित होता है कि यह भैरव ठाठ है। इसका नाम भैरव ठाठ इसलिए रखा गया, क्योंकि इन्हीं स्वरों से और इसी ठाठ से प्रसिद्ध राग 'भैरव' की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार राग भैरव, भैरव ठाठ का आश्रय-राग हुआ।

किसी भी ठाठ से उत्पन्न होने वाले (जन्य) रागों में आश्रय-राग का थोड़ा-बहुत अंश अवश्य दिखाई देता है, किन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिए कि आश्रय-राग सभी जन्य रागों का उत्पादक है। जन्य रागों का उत्पादक तो ठाठ ही माना जाएगा।

आश्रय-राग-को ही 'ठाठ-वाचक राग' भी कहते हैं। उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति में कुल दस आश्रय-राग माने गए हैं, जो निम्नांकित तालिका में द्रष्टव्य हैं :-

ठाठ-नाम	ठाठ के स्वर	आश्रय-राग	राग के आरोह-अवरोह
१. बिलावल	सा रे ग म प ध नि सां	बिलावल	सा रे ग म प ध नि सां सां नि ध प म ग रे सा
२. कल्याण (यमन)	सा रे ग म प ध नि सां	यमन	सा रे ग म प ध नि सां सां नि ध प म ग रे सा



३. खमाज	सा रे ग म प ध नि सां	खमाज	सा रे ग म प ध नि सां सां नि ध प म ग रे सा
४. भैरव	सा रे ग म प ध नि सां	भैरव	सा रे ग म प ध नि सां सां नि ध प म ग रे सा
५. पूर्वी	सा रे ग म प ध नि सां	पूर्वी	सा रे ग म प ध नि सां सां नि ध प म ग रे सा
६. मारवा	सा रे ग म प ध नि सां	मारवा	सा रे ग म ध नि सां सां नि ध म ग रे सा
७. काफी	सा रे ग म प ध नि सां	काफी	सा रे ग म प ध नि सां सां नि ध प म ग रे सा
८. आसावरी	सा रे ग म प ध नि सां	आसावरी	सा रे म प ध सां सां नि ध प म ग रे सा
९. भैरवी	सा रे ग म प ध नि सां	भैरवी	सा रे ग म प ध नि सां सां नि ध प म ग रे सा
१०. तोड़ी	सा रे ग म प ध नि सां	तोड़ी	सा रे ग म प ध नि सां सां नि ध प म ग रे सा

ध्यान रहे कि ठाठ में केवल आरोह ही होता है तथा सातों स्वर पूरे होते हैं, किन्तु राग में आरोह-अवरोह, दोनों का होना आवश्यक है, चाहे स्वर सात हों या कम।

## रागों का समय-विभाजन

उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति में रागों का प्रयोग-काल (गायन-वादन का समय) दिन और रात्रि के चौबीस घंटों के दो भाग करके बाँटा गया है। पहला भाग बारह बजे दिन से बारह बजे रात्रि तक और दूसरा भाग बारह बजे रात्रि से बारह बजे दिन तक माना जाता है। इनमें पहले भाग को 'पूर्व-भाग' और दूसरे भाग को 'उत्तर-भाग, कहते हैं।

संगीत-विशारद



पूर्व राग : जो राग दिन के बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक (पूर्व-भाग के समय में) गाए-बजाए जाते हैं, उन्हें 'पूर्व-राग' कहते हैं ।

उत्तर राग : जो राग बारह बजे रात्रि से दिन के बारह बजे तक (उत्तर-भाग के समय में) गाए-बजाए जाते हैं, उन्हें 'उत्तर-राग' कहते हैं ।

'पूर्व-राग' और 'उत्तर-राग' को ही प्रचार में 'पूर्वांगवादी' तथा 'उत्तरांगवादी' राग भी कहते हैं । यहाँ पर यह बता देना भी आवश्यक है कि इनको 'पूर्वांगवादी' या उत्तरांगवादी राग क्यों कहते हैं ?

सप्तक के सात शुद्ध स्वरों में तार-सप्तक का 'सां' मिलाकर 'सा रे ग म, प ध नि सां' इस प्रकार स्वरों की संख्या आठ कर ली जाए और फिर इसके दो हिस्से कर दिए जायें, तो 'सा रे ग म', यह सप्तक का 'पूर्वांग' और 'प ध नि सां', यह सप्तक का 'उत्तरांग' कहा जाएगा ।

### पूर्वांगवादी राग

जिन रागों का वादी स्वर जब सप्तक के पूर्वांग अर्थात् 'सा रे ग म', इन स्वरों में से होता है, तो वे 'पूर्वांगवादी राग' कहे जाते हैं । ऐसे राग प्रायः दिन के पूर्व-भाग यानी दिन के बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक के समय में गाए-बजाए जाते हैं ।

### उत्तरांगवादी-राग

जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग अर्थात् 'प ध नि सां' इन स्वरों में से होता है, वे 'उत्तरांगवादी राग' कहे जाते हैं । ऐसे राग प्रायः दिन के उत्तर-भाग अर्थात् रात्रि के बारह बजे से दिन के बारह बजे तक ही गाए-बजाए जाते हैं ।

उपर्युक्त वर्गीकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि राग के वादी स्वर को जान लेने पर उस राग के गान-वादन का समय ज्ञात हो जाता है; जैसे आसावरी का वादी स्वर धैवत है, अर्थात् सप्तक का उत्तरांग-स्वर है, तो इसके गान-वादन का समय भी प्रातः है । अर्थात् रात्रि के बारह बजे से दिन के बारह बजे तक का जो समय (उत्तर-भाग) है, उसी के अन्तर्गत प्रातःकाल आ जाता है । यमन का वादी स्वर गांधार है, जो कि सप्तक के पूर्वांग में से लिया हुआ स्वर है, अतः यमन राग के गान-वादन का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है, जोकि दिन के बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक के क्षेत्र (पूर्व भाग) में आता है । इसलिए यमन 'पूर्वांगवादी राग' कहा जाएगा और आसावरी को 'उत्तरांगवादी राग' कहेंगे ।

उपर्युक्त विवेचन पर संगीत-विद्यार्थियों को यह शंका होना स्वाभाविक है कि भैरवी में मध्यम वादी स्वर है, जोकि सप्तक का पूर्वांग स्वर हुआ; फिर क्या कारण है कि भैरवी का गान-वादन समय प्रातः बताया गया है । उपर्युक्त वर्णन के अनुसार भैरवी का गान-वादन समय दिन का उत्तर-भाग अर्थात् बारह बजे दिन से बारह बजे



रात्रि तक होना चाहिए। प्रातःकाल तो 'उत्तर-भाग' के अन्तर्गत आता है, फिर भैरवी का वादी स्वर, सप्तक के पूर्वांग में से क्यों है? इसी प्रकार यह भी शंका हो सकती है कि कामोद में पंचम वादी है, जोकि सप्तक का उत्तरांग स्वर है; फिर क्यों इसे पूर्व-भाग (रात्रि के प्रथम प्रहर) में गाते-बजाते हैं?

उपर्युक्त शंकाओं का समाधान यह है कि उत्तर भारतीय संगीत-पद्धति में यद्यपि 'सा रे ग म' को सप्तक का पूर्वांग और 'प ध नि सां' को उत्तरांग कहा गया है, किन्तु कुछ पूर्वांगवादी तथा उत्तरांगवादी स्वरों को उपर्युक्त वर्गीकरण में लाने के लिए पूर्वांग का क्षेत्र 'सा रे ग म प' और उत्तरांग का क्षेत्र 'म प ध नि सां' इस प्रकार बढ़ाकर माना गया है। इस प्रकार सप्तक के दो भाग करने से 'सा, म, प' ये तीनों स्वर, सप्तक के उत्तरांग तथा पूर्वांग, दोनों भागों में आ जाते हैं। और जब किसी राग में इन तीनों स्वरों में से कोई स्वर वादी होता है तो वह राग पूर्वांगवादी भी हो सकता है और उत्तरांगवादी भी हो सकता है। उपरिर्वाणित भैरवी और कामोद राग इसी श्रेणी में आ जाते हैं और कामोद में पंचम वादी होते हुए भी उसे पूर्वांगवादी राग कह सकते हैं; क्योंकि ये दोनों ही राग सप्तक के बढ़ाये हुए क्षेत्र में आ जाते हैं। इस प्रकार अन्य कुछ राग भी इस श्रेणी में आकर अपना क्षेत्र बना लेते हैं। अतः जब किसी राग में वादी स्वर 'सा, म, प' इनमें से कोई स्वर हो और यह बताना हो कि यह राग पूर्वांगवादी है या उत्तरांगवादी, तो उस राग के गान-वादन का समय देखकर तथा सप्तक के उत्तरांग और पूर्वांग भागों के दोनों प्रकारों को ध्यान में रखकर आसानी से बताया जा सकता है कि अमुक राग पूर्वांगवादी है या उत्तरांगवादी।

## स्वर और समय की दृष्टि से रागों के तीन वर्ग

उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति में रागों के गाने-बजाने के बारे में समय-सिद्धान्त (Time Theory) प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। यद्यपि प्राचीन रागों में एवं आर्वाचीन रागों में समय-सिद्धान्त पर कुछ मतभेद हैं, जिनका कारण रागों के स्वरों में उलट-फेर हो जाना है, तथापि यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि हमारे प्राचीन संगीत पंडितों ने रागों को उनके ठीक समय पर गान-वादन का सिद्धान्त अपने ग्रन्थों में स्वीकार किया है। उसी को आज के संगीतज्ञ भी स्वीकार करके अपने रागों में समय-सिद्धान्त का पालन कर रहे हैं :—

हिंदुस्थानीयरागणां त्रयो वर्गाः सुनिश्चिताः ।

स्वरविकृत्यधीनास्ते लक्ष्यलक्षणकोविदः ॥

श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्

स्वर और समय के अनुसार उत्तर-भारतीय रागों के तीन वर्ग मानकर कोमल-तीव्र (विकृत) स्वरों के हिसाब से उनका विभाजन किया गया है—१. संधि-प्रकाश राग अर्थात् कोमल 'रे' और कोमल 'ध' वाले राग, २. शुद्ध 'रे' और शुद्ध 'ध' वाले राग तथा ३. कोमल 'ग' और कोमल 'नि' वाले राग।

संगीत-विशारद



## संधिप्रकाश राग

ऊपर बताए हुए तीन अंगों में से प्रथम वर्ग अर्थात् कोमल 'रे' और कोमल 'ध' वाले राग संधिप्रकाश रागों की श्रेणी में आ जाते हैं। ध्यान रहे, इस वर्ग में कोमल 'रे-ध' के साथ-साथ तीव्र 'ग' होना जरूरी है। यदि तीव्र 'ग' के स्थान पर कोमल 'ग' होगा तो वह तीसरे वर्ग में आ जाएगा। दिन और रात्रि की संधि अर्थात् मेल होने के समय को संधि-काल कहते हैं। प्रातः सूर्योदय से कुछ पहले और शाम को सूर्यास्त से कुछ पहले का समय ऐसा होता है, जिसे न तो दिन ही कह सकते हैं, न रात्रि ही। इसी समय को 'संधिप्रकाश की वेला' कहा गया है और इस वेला में जो राग गाए-बजाए जाते हैं, उन्हें ही 'संधिप्रकाश राग' कहते हैं; जैसे-भैरव, कालिंगड़ा, भैरवी, पूर्वी, मारवा इत्यादि। संधिप्रकाश के भी दो भाग माने गए हैं। — १. प्रातः-कालीन संधिप्रकाश राग और २. सायंकालीन संधिप्रकाश राग। जो राग सूर्योदय के समय गाए-बजाए जायेंगे वे प्रातःकालीन संधिप्रकाश राग होंगे और जो सूर्यास्त के समय गाए-बजाए जायेंगे, उन्हें सायंकालीन संधिप्रकाश राग कहेंगे।

संधिप्रकाश रागों में मध्यम स्वर बड़े महत्त्व का है। प्रातःकालीन संधिप्रकाश रागों में अधिकतर मध्यम कोमल यानी शुद्ध होगा और सायंकालीन संधिप्रकाश रागों में अधिकतर तीव्र मध्यम मिलेगा, जैसे भैरव और कालिंगड़ा प्रातःकालीन संधिप्रकाश राग हैं, क्योंकि इनमें शुद्ध मध्यम है तथा पूर्वी और मारवा सायंकालीन संधिप्रकाश राग हैं, क्योंकि इनमें तीव्र मध्यम है।

संधिप्रकाश रागों की एक साधारण-सी पहचान यह भी है कि उनमें धैवत स्वर चाहे कोमल हो या तीव्र, किन्तु उनमें 'रे' कोमल और 'ग-नि' तीव्र ही अधिकतर मिलेंगे। यद्यपि कोई-कोई संधिप्रकाश राग इस नियम का अपवाद भी हो सकता है; जैसे—भैरवी।

## शुद्ध 'रे-ध' वाले राग

'रे-ध' शुद्ध (तीव्र) वाले रागों के गाने-बजाने का समय संधिप्रकाश-काल के बाद आता है। क्योंकि संधिप्रकाश-काल दिन में दो बार आता है, अतः इस वर्ग के रागों के गाने का समय भी चौबीस घंटों में दो बार आता है। इसमें कल्याण, बिलावल और खमाज ठाठ के राग गाए-बजाए जाते हैं।

प्रातःकालीन संधिप्रकाश रागों के बाद गाए-बजाए जाने वाले रागों में दिन चढ़ने के साथ-ही-साथ शुद्ध 'रे' तथा शुद्ध 'ध' की प्रधानता बढ़ती जाती है। इस प्रकार प्रातः सात बजे से दस बजे तक और शाम को सात बजे से दस बजे तक दूसरे वर्ग के अर्थात् 'रे-ध' शुद्ध वाले राग गाए-बजाए जाते हैं। इस वर्ग में 'ग' का शुद्ध होना आवश्यक है। साथ-ही-साथ इस वर्ग के रागों में मध्यम स्वर का भी विशेष महत्त्व है। इस प्रकार प्रातः सात बजे से दस बजे तक गाए-बजाए जाने वाले रागों में



शुद्ध अर्थात् कोमल मध्यम की प्रधानता रहती है; जैसे विलावल, देशकार, तोड़ी इत्यादि; और शाम के सात बजे से दस बजे तक गाए-बजाए जाने वाले रागों में तीव्र मध्यम की प्रधानता रहती है; जैसे यमन, शुद्ध कल्याण, भूपाली इत्यादि।

### कोमल 'ग-नि' वाले राग

इस वर्ग के रागों को गाने का समय शुद्ध 'रे-ध' वाले रागों के बाद आता है, अर्थात् कोमल 'ग-नि' वाले राग दिन में दस बजे से चार बजे तक और रात्रि में दस बजे से चार बजे तक गाए-बजाए जाते हैं। इस वर्ग के रागों की खास पहचान यह है कि उनमें 'ग' कोमल ज़रूर होगा, चाहे 'रे-ध' शुद्ध हों या कोमल। इस वर्ग के रागों में प्रातःकाल आसावरी, जौनपुरी, गांधारी, तोड़ी इत्यादि राग गाए जाते हैं और रात्रि में यमन इत्यादि गाने के बाद जैसे-जैसे आधी रात का समय आता जाता है, वागेश्री, जयजयवंती, मालकौंस इत्यादि राग गाए बजाए जाते हैं।

यहाँ हम रागों के गाने-बजाने की एक तालिका दे रहे हैं, जो कि रात्रि के प्रथम प्रहर के प्रमुख राग यमन से प्रारम्भ होती है; क्योंकि गायक-वादक प्रायः यमन राग से ही अपना गान-वादन प्रारम्भ करते हैं। इस तालिका में भैरवी को इसलिए छोड़ दिया गया है कि महफ़िज़ की समाप्ति प्रायः भैरवी पर ही करने का रिवाज-सा हो गया है। अतः भैरवी का गान-काल यद्यपि प्रातःकाल है, किन्तु रात्रि के एक-दो बजे जब भी महफ़िज़ समाप्ति पर हो, भैरवी सुनाई दे जाती है। इसी प्रकार दिन में भी एक-दो बजे कभी-कभी भैरवी सुनाई दे जाती है।

### तीव्र मध्यम वाले राग

१. यमन

२. शुद्ध कल्याण

३. मालश्री

५. भूपाली

६. जैतकल्याण

४. हिंडोल : इस राग के विषय में दो मत प्रचलित हैं। रात्रिगेय हिंडोल में गांधार वादी होता है, किन्तु प्रातःकाल गाने वाले धैवत वादी मानते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि वसंत-ऋतु में यह राग चाहे जिस समय गाया जा सकता है।

७. हमीर

८. केदार

९. कामोद

१०. छायावट

११. बिहाग

१२. शंकरा (मध्यम का अभाव,

संगीत-विशारद



## तीव्र 'ग' तथा कोमल 'नि' वाले राग

१३. खमाज  
१४. देस  
१५. तिलक कामोद

१६. जयजयवंती ( परमेज प्रवेशक राग )  
कुछ विद्वान् जयजयवंती के पश्चात्  
ही मालकौंस गाने का समय बत-  
लाते हैं ।

## कोमल 'ग' तथा कोमल 'नि' वाले राग

१७. बागेश्री  
१८. दरबारी  
२१. बहार  
२२. मालकौंस

१९ अड़ाना  
२०. पूरिया: इस राग को 'रात्रि का  
पूरिया' भी कहा जाता है, क्योंकि  
पूरिया-धनाश्री को प्रायः 'दिन का  
पूरिया' कहा जाता है ।

## यहाँ से तीव्र मध्यम का पुनः प्रयोग आरम्भ हुआ

२३. वसंत  
२४. परज

२५. सोहनी

## प्रातःकालीन संधिप्रकाश रागों से सायंकालीन संधिप्रकाश रागों तक का क्रम

२६. कालिगडा  
२७. जोगिया  
२८. ललित  
२९. रामकली  
३०. भैरव (सब प्रकार के भैरव)  
३१. विभास (भैरव का अन्तिम प्रकार)  
३२. विभास (मारवा ठाठ का विभास)  
३३. अलहैयाविलाव ।  
३४. विलावल के सब प्रकार  
३५. देशकार  
३६. तोड़ी (सब प्रकार)  
३७. आसावरी  
३८. जौनपुरी  
३९. देसी  
४०. सूहा  
४१. सुघराई

४२. सारंग  
४३. सारंग के सब प्रकार  
४४. गौड़ सारंग  
४५. काफ़ी ( कुछ विद्वान् काफ़ी का समय  
मध्य-रात्रि मानते हैं तथा कुछ के मता-  
नुसार यह सर्वकालिक राग है ।)  
४६. भीमपलासी  
४७. धनाश्री  
४८. धानी  
४९. मुलतानी  
५०. पूर्वी  
५१. पूरियाधनाश्री  
५२. श्रा  
५३. जैतश्री  
५४. गौरी  
५५. मारवा

जैत गाने के बाद प्रायः यमन राग गाने का समय फिर आ जाता है । इस प्रकार रागों की यह तालिका हमें बताती है कि पूरे चौबीस घण्टे का चक्कर लगाकर एक आवर्तन समाप्त करके फिर वही सिलसिला शुरू हो जाता है ।

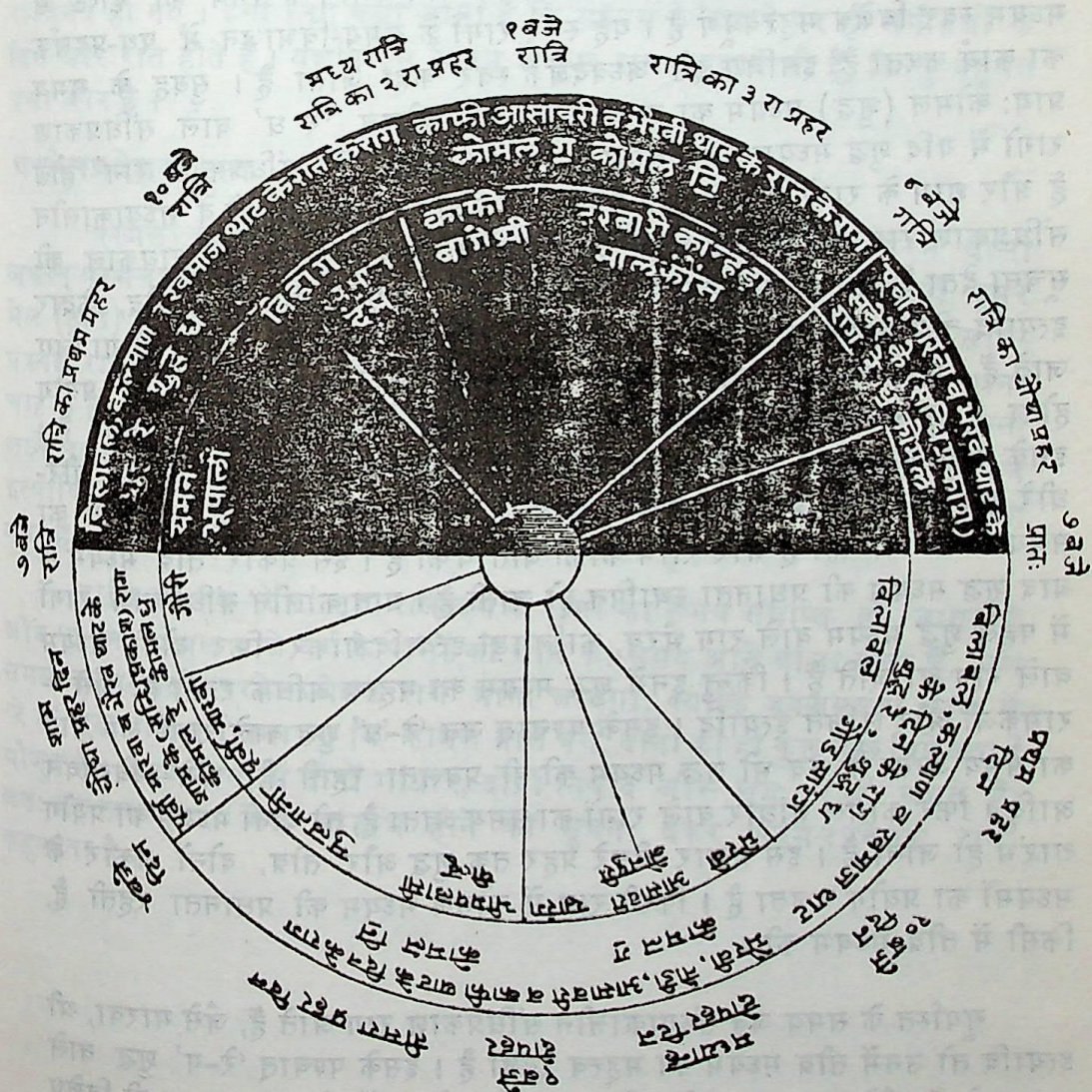


उक्त तालिका का यह अर्थ नहीं कि इसमें दिए हुए किसी राग के बाद अमुक राग गाना ही चाहिए। बहुत-से गायक अपनी इच्छानुसार इनके क्रम में परिवर्तन करके गाते हैं तथा अन्य रागों का समावेश भी इच्छानुसार कर लेते हैं। किन्तु राग के समय का ध्यान रखकर ही उन्हें ऐसा करना चाहिए, क्योंकि कुसमय में कोई राग गाने-बजाने से न तो श्रोताओं पर उसका अच्छा प्रभाव होता है और न राग से रसोत्पत्ति ही संभव है।

यहाँ पर राग-समय-चक्र का एक चित्र भी दे रहे हैं, जिससे संगीत के विद्यार्थियों को यह विदित हो जाएगा कि संगीत के दिन और रात किस प्रकार होते हैं :—

## संगीत के दिन रात

( राग-समय-चक्र )



इस चित्र में काला भाग रात्रि का और सफेद भाग दिन का सूचक है।



## अध्वदर्शक स्वर 'मध्यम' का महत्त्व

उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति में रागों के गाने-बजाने के समय की दृष्टि से मध्यम स्वर विशेष महत्त्वपूर्ण है। यह स्वर रागों के समय-विभाजन में पथ-प्रदर्शक का कार्य करता है, इसलिए इसे 'अध्वदर्शक स्वर' कहा जाता है। सुबह के समय प्रायः कोमल (शुद्ध) मध्यम का राज्य रहता है। कोमल 'रे ध' वाले संधिप्रकाश रागों में यदि शुद्ध मध्यम प्रबल होता है, तो वे 'प्रातःकालीन संधिप्रकाश राग' होते हैं और शाम के रागों में यदि तीव्र मध्यम की प्रधानता रहती है, तो वे 'संध्याकालीन संधिप्रकाश राग' कहे जाते हैं। इस प्रकार तीव्र मध्यम अधिकतर सायंकाल की सूचना देता है और कोमल मध्यम प्रातःकाल की। यमन, हमीर, कामोद, केदार इत्यादि तीव्र मध्यम वाले राग सायंकाल में रात्रि के प्रथम प्रहर के अंदर ही गा लिए जाते हैं। शाम को मुलतानी, पूर्वी तथा श्री इत्यादि रागों में तीव्र मध्यम का प्रयोग होता है और यह प्रयोग लगभग आधी रात तक लगातार चलता रहता है। इसके पश्चात् रात्रि के दूसरे प्रहर में जब बिहाग गाने का समय आता है, तो धीरे-धीरे शुद्ध मध्यम का प्रयोग आरंभ हो जाता है। वह सूचित करता है कि प्रभात का समय निकट आ रहा है और रात्रि काफ़ी बीत चुकी है। इस प्रकार तीव्र मध्यम के बाद शुद्ध मध्यम की प्रधानता स्थापित हो जाती है। प्रातःकालीन संधिप्रकाश रागों में पहले शुद्ध मध्यम वाले राग भैरव, कालिंगड़ा इत्यादि गाकर फिर दोनों मध्यम वाले राग आ जाते हैं। किन्तु इनमें शुद्ध मध्यम का महत्त्व अधिक रहता है; जैसे—रामकली और ललित इत्यादि। इसके पश्चात् जब 'रे-ध' शुद्ध वाले रागों का गाने का समय आता है, तब भी शुद्ध मध्यम की ही प्रबलता रहती है; जैसे—बिलावल आदि। फिर कोमल गांधार वाले रागों का समय आता है, तो दोनों मध्यम का प्रयोग आरंभ हो जाता है। इस प्रकार तीसरे प्रहर तक शुद्ध और तीव्र, दोनों प्रकार के मध्यमों का प्रयोग चलता है। किसी राग में कोमल मध्यम की प्रधानता रहती है, किसी में तीव्र मध्यम की।

सूर्यास्त के समय जब संध्याकालीन संधिप्रकाश राग आते हैं, जैसे मारवा, श्री इत्यादि तो उनमें तीव्र मध्यम का महत्त्व रहता है। इसके पश्चात् 'रे-ग' शुद्ध वाले राग आते हैं; जैसे कल्याण, हमीर, केदार आदि, तो उनमें तीव्र मध्यम का ही विशेष



प्राधान्य रहता है। अन्त में जाकर जब 'ग' वाले रागों के गाने का समय आता है, तो शुद्ध मध्यम वाले रागों की फिर प्रधानता हो जाती है; जैसे बागेश्री, काफी, मालकौंस इत्यादि।

इसीलिए कहा जाता है कि हमारी पद्धति में मध्यम स्वर का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। केवल मध्यम के परिवर्तन से गायन में अन्तर दीखने लगता है। भैरव प्रातःकाल के प्रथम प्रहर में गाया जाता है, किन्तु इसके स्वरों में यदि कोमल मध्यम की जगह तीव्र मध्यम कर दिया जाए, तो सायंकाल में गाया जाने वाला पूर्वी राग हो जाएगा तथा प्रातःकाल गाए जाने वाले विलावल राग के स्वरों में सिर्फ कोमल मध्यम हटाकर तीव्र मध्यम करने से रात्रि को गाया जाने वाला राग यमन हो जाता है। इस प्रकार केवल मध्यम का स्वरूप बदल देने से प्रातःकाल के स्थान पर ये राग रात्रिगेय हो गए। इसी लिए कहा जाता है कि मध्यम के इशारे पर ही संगीतज्ञों के दिन और रात होते हैं। यद्यपि इस नियम के कुछ राग अपवाद भी हैं, किन्तु बहुमत इसी ओर है।

### परमेलप्रवेशक राग

'परमेल' का अर्थ है दूसरा कोई मेल और 'प्रवेशक' यानी प्रवेश करने वाला अर्थात् परमेलप्रवेशक राग वे कहे जाते हैं, जो किसी एक मेल (ठाठ) से किसी दूसरे मेल (ठाठ) में प्रवेश करते हैं। उदाहरणार्थ—संध्या-काल में गाए जाने वाले संधि-प्रकाश रागों को गाकर जब गायक समयानुसार दूसरे किसी मेल के राग गाना चाहता है; जैसे भीमपलासी, धनाश्री और धानी गाकर जब कोई गायक मुलतानी गाने लगता है तो उससे यह संकेत होता है कि अब गायक किसी दूसरे ठाठ (यमन इत्यादि) में प्रवेश करने वाला है। इस प्रकार मुलतानी 'परमेलप्रवेशक राग' माना गया है। एक उदाहरण से यह और स्पष्ट किया जाता है :—

रात्रि को जब 'रे ध' शुद्ध वाले वर्ग के रागों का समय समाप्त हो जाता है और 'ग नि' कोमल वाले वर्ग के रागों को गाने का समय आने वाला होता है, उस समय जयजयवंती 'परमेलप्रवेशक राग' माना जाएगा; क्योंकि जयजयवंती राग में 'रे ध' शुद्ध वाले वर्ग तथा 'ग नि' कोमल वाले वर्ग, दोनों की ही कुछ-कुछ विशेषताएँ मौजूद हैं। जयजयवंती में दोनों गांधार, दोनों निषाद और शुद्ध 'रे, ध' लगते हैं; अतः यह राग दूसरा मेल आरम्भ होने की सूचना देकर 'परमेलप्रवेशक राग' कहलाता है।



## हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति के चालीस सिद्धान्त

कर्नाटक (दक्षिण-भारतीय) संगीत-पद्धति की तुलना में हिन्दुस्तानी (उत्तर-भारतीय) संगीत पद्धति अपनी कुछ विशेषताएँ रखती है। यही कारण है कि आज मैसूर, मद्रास और कर्नाटक को छोड़कर शेष समस्त भारत में हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति ही प्रचलित है। यह पद्धति कुछ विशेष सिद्धान्तों पर अवलम्बित है। संगीत-विद्यार्थियों को इन सिद्धान्तों का भली प्रकार मनन कर लेना चाहिए। श्री भातखण्डे ने 'क्रमिक पुस्तक-मालिका' के पाँचवें भाग में इन पद्धतियों का विस्तृत उल्लेख किया है। उसी आधार पर निम्नलिखित सिद्धान्त दिये जा रहे हैं :—

१. हिन्दुस्तानी (उत्तर-भारतीय) संगीत-पद्धति की नीवें 'बिलावल ठाठ' को शुद्ध ठाठ मानकर रखी गई है, अर्थात् बिलावल ठाठ के स्वर ही शुद्ध स्वर-सप्तक का निर्माण करते हैं।

२. समस्त रागों का वर्गीकरण तीन भागों में किया गया है—१. औडव (पाँच स्वरों के राग), २. षाडव (छह स्वरों के राग) और ३. सम्पूर्ण (सात स्वरों के राग)।

३. पाँच स्वरों से कम का और सात स्वरों से अधिक का (कोमल-तीव्र मिलाकर बारह स्वर) राग नहीं होता।

४. औडव, षाडव और सम्पूर्ण, इनके आरोह-अवरोह में उलट-पुलट होने से नौ प्रकार के भेद माने जाते हैं, जिनका विवेचन इस पुस्तक में औडव-षाडव-भेद के अन्तर्गत किया गया है।

५. प्रत्येक राग में ठाठ, आरोह-अवरोह, वादी-सम्वादी, समय और रंजकता, ये बातें अवश्य होती हैं।

६. वादी-सम्वादी स्वरों में प्रायः चार स्वरों का अन्तर होता है। वादी स्वर पूर्वाङ्ग में होता है तो सम्वादी स्वर उत्तराङ्ग में होगा और वादी स्वर उत्तराङ्ग में होगा तो सम्वादी स्वर पूर्वाङ्ग में होगा।



७. वादी स्वर बदलकर शाम को गाए-बजाए जाने वाले राग को सुबह गाया बजाया जाने वाला राग बनाया जा सकता है।

८. राग में सुन्दरता लाने के लिए विवादी या वजित स्वर का भी किञ्चित् प्रयोग किया जा सकता है।

९. हर एक राग में एक वादी स्वर होता है, जिसका राग में विशेष जोर रहता है। वादी स्वर के आधार पर ही पूर्व-राग और उत्तर-राग पहचाने जा सकते हैं।

१०. इस पद्धति के राग सामान्यतः तीन वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं। १. कोमल 'रे-ध' वाले राग, २. शुद्ध 'रे-ध' वाले राग और ३. कोमल 'ग-नि' वाले राग। जो संधिप्रकाश राग सूर्यास्त और सूर्योदय के समय गाए-बजाए जाते हैं, वे अधिकांशतः प्रथम वर्ग में पाए जाते हैं। प्रातःकालीन संधिप्रकाश रागों में प्रायः 'रे-ध' वजित नहीं होते तथा सायंकालीन संधिप्रकाश रागों में प्रायः 'ग नि' वजित नहीं होते।

११. इस पद्धति में मध्यम स्वर महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसे 'अध्वदर्शक स्वर' कहा जाता है; क्योंकि इससे दिन-रात के रागों को गाने-बजाने का समय निर्धारित होता है।

१२. जिन रागों में 'ग-नि' कोमल लगते हैं, वे दोपहर या आधी रात को ही अधिकतर गाए-बजाए जाते हैं।

१३. संधिप्रकाश रागों के बाद प्रायः 'रे-म-ध-नि' शुद्ध लगने वाले राग गाए-बजाए जाते हैं।

१४. षड्ज, मध्यम और पंचम, ये तीन स्वर प्रायः दिन और रात्रि के तीसरे प्रहर के रागों में अपना विशेष महत्त्व से रखते हैं।

१५. तीव्र मध्यम अधिकतर रात्रि के रागों में ही पाया जाता है; दिन के रागों में यह स्वर कम दिखाई देता है।

१६. 'सा-म-प' ये स्वर पूर्वांग और उत्तरांग, दोनों भागों में ही होते हैं, अतः जो राग प्रत्येक समय (सार्वकालिक) गाए-बजाए जाने वाले होते हैं, उनमें इन तीन स्वरों में से एक वादी होता है।

१७. मध्यम और पंचम, ये दोनों स्वर एकसाथ किसी भी राग में वजित नहीं होते। 'प' वजित होगा तो 'म' मौजूद होगा और 'म' वजित होगा तो 'प' मौजूद रहेगा।

१८. किसी भी राग में षड्ज स्वर वजित नहीं होता।

१९. रागों में प्रायः एक ही स्वर के दो रूप (कोमल-तीव्र) पास-पास नहीं आने चाहिए, किन्तु ललित इत्यादि कुछ राग इस नियम के अपवाद हैं।

२०. अपने नियत समय पर गाने-बजाने से ही राग सुन्दर लगता है, किन्तु राज-दरबार तथा रंगमंच (स्टेज) पर यह नियम शिथिल भी हो जाता है।



२१. तीव्र 'म' के साथ कोमल 'नि' बहुत कम रागों में आता है ।  
 २२. दोनों मध्यम लगने वाले रागों में कुछ-कुछ एकरूपता पाई जाती है । इनकी भिन्नता प्रायः आरोह में ही दिखाई देती है । ऐसे राग का अन्तरा बहुत-कुछ मिलता-जुलता होता है ।

२३. रात्रि के प्रथम प्रहर में जो दोनों मध्यम वाले राग गाए-बजाए जाते हैं, उनका एक साधारण-सा नियम यह है कि शुद्ध मध्यम तो आरोह-अवरोह, दोनों में लगता है, किन्तु तीव्र मध्यम केवल आरोह में ही दिखाई देता है तथा शुद्ध मध्यम की अपेक्षा ठाठ का उपयोग दोनों मध्यम वाले रागों में कम पाया जाता है ।

२४. रात्रि के प्रथम प्रहर वाले रागों में एक नियम यह भी दिखाई देता है कि उनके आरोह में निषाद वक्र और अवरोह में गांधार वक्र रूप से लगता है । ऐसे रागों के अवरोह में प्रायः निषाद दुर्बल दिखाई देता है ।

२५. हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में ताल की अपेक्षा राग को अधिक महत्त्व दिया गया है । इसके विरुद्ध कर्नाटक-संगीत-पद्धति में राग की अपेक्षा ताल का महत्त्व अधिक माना गया है ।

२६. पूर्व-रागों की विशेषता आरोह में और उत्तर-रागों का चमत्कार अवरोह में दिखाई देता है ।

२७. प्रायः प्रत्येक ठाठ से पूर्व-राग तथा उत्तर-राग उत्पन्न हो सकते हैं ।

२८. गंभीर प्रकृति के रागों में षड्ज, मध्यम या पंचम का विशेष महत्त्व होता है तथा मंद्र-सप्तक में उनका अधिक महत्त्व माना गया है; किन्तु क्षुद्र प्रकृति के रागों में यह बात नहीं पाई जाती ।

२९. संधिप्रकाश रागों के द्वारा करुण व शांत रस, 'रे-ग-ध' तीव्र वाले रागों से शृंगार व हास्य रस और कोमल 'ग-नि' वाले रागों द्वारा वीर, रौद्र व भयानक रसों का परिपोषण होता है ।

३०. एक ठाठ के रागों से दूसरे ठाठों के रागों में प्रवेश करते समय परमेल-प्रवेशक राग गाए-बजाए जाते हैं ।

३१. संधिप्रकाश राग सूर्योदय और सूर्यास्त के समय गाए-बजाए जाते हैं और इनके बाद तीव्र 'रे-ग-ध' वाले राग गाए-बजाए जाते हैं या कोमल 'ग-नि' वाले राग गाए-बजाए जाते हैं ।

३२. जिन रागों में कोमल 'नि' लगता है; जैसे काफ़ी और खमाज ठाठ के राग उनके आरोह में बहुधा तीव्र 'नि' का प्रयोग भी कर दिया जाता है ।

३३. किसी राग में जब स्वर लगाए जाते हैं, तो वे अपने कम, अधिक या बराबर के परिमाण में लगाकर दुर्बल, प्रबल या सम माने जाते हैं । 'दुर्बल' का अर्थ वर्जित नहीं है ।

३४. दो, तीन या चार स्वरों के समुदाय को 'तान' कहते हैं, 'राग' नहीं कह सकते ।



३५. दोपहर बारह बजे के बाद तथा रात्रि को बारह बजे के बाद जो राग गाए-बजाए जाते हैं, उनमें क्रमशः 'सा-म-प' का प्राबल्य होता चला जाता है।

३६. दोपहर को गाए-बजाए जाने वाले रागों के आरोह में 'रे-ध' या तो लगते ही नहीं अथवा दुर्बल होते हैं। ठीक दोपहर के समय गाए-बजाए जाने वाले रागों में ऋषभ और निषाद स्वर खूब चमकते हैं।

३७. जिन रागों में 'सा-म-प' स्वर वादी होते हैं, वे प्रायः गंभीर प्रकृति के राग होते हैं।

३८. प्रातःकाल के रागों में कोमल 'रे-ध' की प्रबलता रहती है और सायंकाल के रागों में तीव्र 'ध-नि' अधिक दिखाई देते हैं।

३९. 'निसारेग', यह स्वर-समुदाय शीघ्रतापूर्वक संधिप्रकाशत्व सूचित करता है।

४०. पूर्व-रागों का स्वरूप आरोह में तथा उत्तर-रागों का स्वरूप अवरोह में विशेष रूप से खुलकर दिखाई देता है।



२१. तीव्र 'म' के साथ कोमल 'नि' बहुत कम रागों में आता है ।  
 २२. दोनों मध्यम लगने वाले रागों में कुछ-कुछ एकरूपता पाई जाती है ।  
 इनकी भिन्नता प्रायः आरोह में ही दिखाई देती है । ऐसे राग का अन्तरा बहुत-कुछ मिलता-जुलता होता है ।

२३. रात्रि के प्रथम प्रहर में जो दोनों मध्यम वाले राग गाए-बजाए जाते हैं, उनका एक साधारण-सा नियम यह है कि शुद्ध मध्यम तो आरोह-अवरोह, दोनों में लगता है, किन्तु तीव्र मध्यम केवल आरोह में ही दिखाई देता है तथा शुद्ध मध्यम की अपेक्षा ठाठ का उपयोग दोनों मध्यम वाले रागों में कम पाया जाता है ।

२४. रात्रि के प्रथम प्रहर वाले रागों में एक नियम यह भी दिखाई देता है कि उनके आरोह में निषाद वक्र और अवरोह में गांधार वक्र रूप से लगता है । ऐसे रागों के अवरोह में प्रायः निषाद दुर्बल दिखाई देता है ।

२५. हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में ताल की अपेक्षा राग को अधिक महत्त्व दिया गया है । इसके विरुद्ध कर्नाटिक-संगीत-पद्धति में राग की अपेक्षा ताल का महत्त्व अधिक माना गया है ।

२६. पूर्व-रागों की विशेषता आरोह में और उत्तर-रागों का चमत्कार अवरोह में दिखाई देता है ।

२७. प्रायः प्रत्येक ठाठ से पूर्व-राग तथा उत्तर-राग उत्पन्न हो सकते हैं ।

२८. गंभीर प्रकृति के रागों में षड्ज, मध्यम या पंचम का विशेष महत्त्व होता है तथा मंद्र-सप्तक में उनका अधिक महत्त्व माना गया है; किन्तु क्षुद्र प्रकृति के रागों में यह बात नहीं पाई जाती ।

२९. संधिप्रकाश रागों के द्वारा करुण व शांत रस, 'रे-ग-ध' तीव्र वाले रागों से शृंगार व हास्य रस और कोमल 'ग-नि' वाले रागों द्वारा वीर, रौद्र व भयानक रसों का परिपोषण होता है ।

३०. एक ठाठ के रागों से दूसरे ठाठों के रागों में प्रवेश करते समय परमेल-प्रवेशक राग गाए-बजाए जाते हैं ।

३१. संधिप्रकाश राग सूर्योदय और सूर्यास्त के समय गाए-बजाए जाते हैं और इनके बाद तीव्र 'रे-ग-ध' वाले राग गाए-बजाए जाते हैं या कोमल 'ग-नि' वाले राग गाए-बजाए जाते हैं ।

३२. जिन रागों में कोमल 'नि' लगता है; जैसे काफी और खमाज ठाठ के राग उनके आरोह में बहुधा तीव्र 'नि' का प्रयोग भी कर दिया जाता है ।

३३. किसी राग में जब स्वर लगाए जाते हैं, तो वे अपने कम, अधिक या बराबर के परिमाण में लगाकर दुर्बल, प्रबल या सम माने जाते हैं । 'दुर्बल' का अर्थ वर्जित नहीं है ।

३४. दो, तीन या चार स्वरों के समुदाय को 'तान' कहते हैं, 'राग' नहीं कह सकते ।



३५. दोपहर बारह बजे के बाद तथा रात्रि को बारह बजे के बाद जो राग गाए-बजाए जाते हैं, उनमें क्रमशः 'सा-म-प' का प्राबल्य होता चला जाता है।

३६. दोपहर को गाए-बजाए जाने वाले रागों के आरोह में 'रे-ध' या तो लगते ही नहीं अथवा दुर्बल होते हैं। ठीक दोपहर के समय गाए-बजाए जाने वाले रागों में ऋषभ और निषाद स्वर खूब चमकते हैं।

३७. जिन रागों में 'सा-म-प' स्वर वादी होते हैं, वे प्रायः गंभीर प्रकृति के राग होते हैं।

३८. प्रातःकाल के रागों में कोमल 'रे-ध' की प्रबलता रहती है और सायंकाल के रागों में तीव्र 'ध-नि' अधिक दिखाई देते हैं।

३९. 'निसारुंग', यह स्वर-समुदाय शीघ्रतापूर्वक संधिप्रकाशत्व सूचित करता है।

४०. पूर्व-रागों का स्वरूप आरोह में तथा उत्तर-रागों का स्वरूप अवरोह में विशेष रूप से खुलकर दिखाई देता है।



# राग में वादी स्वर का महत्त्व

प्रयोगे बहुलः स्वर वादी राजऽत्र गीयते ।

शास्त्रों की उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार वादी स्वर की स्थिति राग-रूपी राज्य में राजा के समान मानी गई है। वादी स्वर का प्रयोग राग में अन्य स्वरों की अपेक्षा अधिक होता है। वादी स्वर पर ही प्रत्येक राग की विशेषता निर्भर रहती है। इसी कारण वादी स्वर को 'जीव' या 'अंश' स्वर भी कहते हैं। वादी स्वर का प्रयोग राग में कुशल गायक भिन्न-भिन्न प्रकारों से करते हैं। राग में वादी स्वर को बार-बार दिखाना, वादी स्वर से ही राग का आरंभ करना, वादी स्वर पर ही राग समाप्त करना, राग के प्रमुख भागों में वादी स्वर को बार-बार भिन्न-भिन्न स्वरों के साथ दिखाना तथा कभी-कभी वादी स्वर को बड़ी देर तक लंबा करके गाना इत्यादि विविध ढंगों से वादी स्वर का प्रदर्शन रागों में किया जाता है। उदाहरणार्थ, बिहाग में गांधार वादी स्वर है, तो उसका प्रयोग इस प्रकार देखने में आएगा :—

'ग, रेसा, निसाग, मग, प, गमग, निप, गमग, निसागमध, पगमग, सा' इत्यादि ।

इसी प्रकार मारवा में वादी स्वर कोमल ऋषभ का प्रयोग देखिए :—

'निरेऽऽसा, निरेऽऽ, गरेऽऽ, गमगरे, मंगरेऽऽसा' इत्यादि । यहाँ पर कोमल ऋषभ को लंबा खींचकर उसका वादित्व कितनी सुन्दरता से प्रकट किया गया है ।

वादी स्वर के प्रयोग से रागों के गायन-वादन का समय भी जानने में सुविधा मिलती है। जब किसी राग में सप्तक के पूर्वांग में से कोई स्वर वादी होता है, तो उसे पूर्वांगवादी राग कहते हैं और उसके गाने का समय प्रायः दिन-रात के पूर्वांग-समय अर्थात् दिन के बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक के बीच होता है, जैसे—भीमपलासी, पीजू, पूर्वी, मारवा, यमन, भूपाली, बागेश्री इत्यादि रागों में पूर्वांगवादी स्वर होने के कारण ये राग उपर्युक्त समय (पूर्वांग-समय) में ही गाए-बजाए जाते हैं।

इसी प्रकार किसी राग में जब कोई वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग में से होता है, तो वह दिन-रात के उत्तरांग भाग अर्थात् रात्रि के बारह बजे से दिन के बारह बजे तक के समय में से किसी समय का राग होता है; जैसे भैरव, भैरवी, बिलावल, काजिगड़ा, सोहनी, आसावरी इत्यादि। वादी स्वर की एक विशेषता यह भी है कि किसी राग में केवल वादी स्वर बदल देने से ही राग भी बदल जाता है, चाहे उन रागों में लगने वाले स्वर लगभग एक-जैसे ही हों, जैसे भीमपलासी और धनाश्री



ये दोनों राग काफी ठाठ से उत्पन्न हुए हैं और दोनों में ही 'ग नि'-कोमल प्रयुक्त होते हैं, किन्तु इन रागों में केवल वादी स्वर के उलट-फेर से ही राग परिवर्तित हो जाता है। जब भीमपलासी गाया जाएगा तो उसमें मध्यम स्वर अधिक दिखाया जाएगा, क्योंकि भीमपलासी में मध्यम वादी है, और जब धनाश्री गाया जाएगा तो पंचम स्वर अधिक दिखाया जाएगा, क्योंकि धनाश्री में पंचम वादी है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि केवल वादी स्वर को बदल देने से ही राग भीमपलासी से धनाश्री हो गया।

किसी राग का कोई स्वर-समुदाय देखकर उसमें वादी स्वर पहचानने से उस राग का नाम भी ध्यान में आ जाता है; जैसे 'सा गमध, निध' सांनिधप, गमध, प, धप, गमरे, सा'। इसमें धैवत स्वर विशेष रूप से चमककर अपना वादित्व प्रकट कर रहा है, अतः यह हमीर राग है, क्योंकि हमीर में वादी धैवत माना जाता है।

वादी स्वर की सहायता से राग का विस्तार तथा राग की बढ़त भी दिखाई जाती है; जैसे—मालकौंस में मध्यम स्वर वादी है, तो देखिए, उसके स्वर-विस्तार में 'म' किस तरह समाया हुआ है :—

'सा नि॒सा, म म॒गु, म॒धु, नि॒धु, म॒गु, गु॒मगु, सा । साम, सामगु॒म, धुमगु॒म, निधुमगु, म' इत्यादि।

राग में वादी स्वर का महत्त्व बताते हुए जो वर्णन किया गया है, उसके अनुसार निम्नलिखित सात बातें विद्यार्थियों को याद रखनी चाहिए :—

१. वादी स्वर राग का प्रधान स्वर होता है और राग-रूपी राज्य में उसका स्थान राजा के बराबर है।
२. वादी स्वर को ही संगीत-शास्त्रों में 'जीव स्वर' भी कहा है, अर्थात् इसी स्वर में राग के प्राण होते हैं।
३. वादी स्वर से राग के गायन वादन का समय जाना जा सकता है।
४. केवल वादी स्वर को बदल देने से कोई-कोई राग भी बदल जाता है, चाहे अन्य स्वर दोनों रागों में एक-से ही हों।
५. वादी स्वर पर राग का सौंदर्य निर्भर है।
६. किसी स्वर-समुदाय में वादी स्वर को पहचानकर यह बताया जा सकता है कि यह अमुक राग है।
७. राग में लगने वाले अन्य सब स्वरों की अपेक्षा वादी स्वर अधिक प्रयोग में आता है।

## राग में विवादी स्वर का प्रयोग

शास्त्र-नियम के अनुसार रागों में विवादी स्वरों का प्रयोग वर्जित है, किन्तु उनका अल्पत्व रखते हुए थोड़ा-सा प्रयोग तान इत्यादि में करने की आज्ञा भी शास्त्रों में पाई जाती है, जैसा कि 'राग-मंजरी' में कहा गया है :—

विवादी तु सदा त्याज्यः ववचित्तानक्रियात्मकः।

इस प्रकार विवादी स्वर के विषय में प्राचीन ग्रन्थकारों की धारणा विचित्र रूप से पाई जाती है। इसी का उल्लेख करते हुए 'लक्ष्य संगीत' में कहा गया है :—

संगीत-विशारद



विवादीस्वरव्याख्याने रत्नाकरप्रपंचितम् ।

रहस्यं किंचिदप्यासीत् भिन्नं मर्मविदाम्मते ॥

इससे सिद्ध होता है कि विवादी स्वर की व्याख्या 'रत्नाकर' आदि ग्रन्थों में रहस्यपूर्ण ढंग से भिन्न-भिन्न रूपों में पाई जाती है। कई ग्रंथों में विवादी स्वर को राग का दुश्मन भी 'शत्रु तुल्याः विवादिनः' कहकर बताया गया है।

इतना सब होते हुए भी भातखंडे जी का मत विवादी स्वर के बारे में यह था कि यदि कुशलता पूर्वक कण के रूप में विवादी स्वर का प्रयोग कर दिया जाए और उससे राग की रंजकता बढ़ती हो, तो 'मनाक् स्पर्श' के नाते यह कृत्य क्षम्य समझा जाएगा। उन्होंने 'अभिनव राग-मंजरी' में लिखा है :—

सुप्रमाणयुतो रागे विवादी रक्तिवर्धकः ।

यथेषत्कृष्णवर्णेन शुभ्रस्यातिविचित्रता ॥

'संगीत-समय-सार' ग्रंथ में विवादी स्वर की व्याख्या 'प्रच्छादनीयो लोप्यो वा' इस प्रकार की गई है। प्रच्छादन का अर्थ है 'मनाक् स्पर्श', अर्थात् किंचित् विवादी स्वर का प्रयोग। इस प्रकार आजकल हम देखते भी हैं कि कुशल गायक अपने राग में विवादी स्वर का किंचित् प्रयोग करके श्रोताओं से प्रशंसा प्राप्त कर लेते हैं और राग का स्वरूप भी नहीं बिगड़ने पाता, बल्कि उसमें कुछ और विचित्रता ही पैदा हो जाती है। किन्तु यह कार्य अत्यन्त सावधानी से ही करना चाहिए। इसके विरुद्ध यदि गायक चतुर न हुआ और बेढंगे तरीके से विवादी स्वर का प्रयोग कर बैठा, तो राग-हानि तो होगी ही, साथ ही वह श्रोताओं से निन्दा भी प्राप्त करेगा।

इसलिए विवादी स्वर का जब-कभी प्रयोग किया जाए, तो क्षणिक कण के रूप में या जड़द तानों में ही करना शोभा देगा। इस मत का समर्थन 'राग-विबोध' में इस प्रकार मिलता है—'वर्जस्वरोऽवरोहे द्रुतगीतो न रक्तिहरः' अर्थात् विवादी स्वर द्रुत गीतों में सौंदर्य को नष्ट नहीं करता है।

वर्तमान समय में अनेक रागों में विवादी स्वरों का प्रयोग होने लगा है; जैसे हमीर, कामोद और गौड़सारंग राग में कोमल निषाद विवादी स्वर के नाते जब कण-स्पर्श या द्रुत लय की मीड़ के साथ प्रयुक्त किया जाता है, तो उस समय बड़ा अच्छा लगता है। इसी प्रकार केदार, छायाण्ट रागों में तो विवादी स्वर (कोमल निषाद) का प्रचार इतना बढ़ गया है कि कभी-कभी श्रोतागण आश्चर्य चकित हो जाते हैं। और भैरवी की तो कुछ पूछिए मत; इसमें तो विवादी स्वर का प्रयोग आजकल इतना बढ़ गया है कि यह राग सात स्वरों की जगह बारह स्वरों का हो गया है। अर्थात् कोमल स्वरों के अतिरिक्त 'रे-ग-म-ध-नि,' इन पाँचों स्वरों का भी प्रयोग इसमें खूब खुलकर लोग करने लगे हैं। किन्तु विवादी स्वरों का अधिकता के साथ प्रयोग करना रागों के साथ अन्याय करना है।

विवादी स्वर आखिर विवादी ही है, अतः इसका प्रयोग सीमित रूप में और कुशलता के साथ करना उचित है।



# राग रागिनी पद्धति

## राग-रागिनी-वर्गीकरण

प्राचीन काल से आज तक इस वर्गीकरण की मुख्य योजनाओं की ऐतिहासिक रूप-रेखा निम्न-प्रकार से प्राप्त होती है :—

कहा जाता है कि प्राचीन काल में संगीत का वर्गीकरण पाँच मतों के अन्तर्गत किया जाता था जो क्रम से ब्रह्म मत, शिव मत, नारद मत, हनुमान मत और भरत मत के नाम से जाने जाते थे। कुछ विद्वानों का कहना है कि केवल शिव मत, हनुमान मत और भरत मत तीन ही मत प्रचार में थे, जबकि कुछ विद्वानों के अनुसार प्राचीन भारत में शिव मत, नारद मत और भरत मत प्रचार में रहे। क्योंकि इन मतों के विषय में कोई ठोस प्रमाण प्राप्त नहीं होता, अतः इन्हें छोड़ देना ही ठीक है। इस विषय में कुछ अधिक जानने के लिए यह उचित होगा कि संगीत के प्राप्त ग्रंथों को देखा जाय कि वे इस बारे में क्या कहते हैं।

## नाट्य-शास्त्र

भरत मुनि - लिखित 'नाट्य-शास्त्र' नामक ग्रन्थ संगीत के ग्रन्थों में सबसे प्राचीन और प्रमाणिक माना जाता है। यह लगभग दूसरी शताब्दी में लिखा गया था। विद्वान् नाट्य-शास्त्र को ही 'भरत मत' कहते हैं। इसमें न तो 'राग' शब्द है और न कोई 'राग-अध्याय'। इन्होंने अठारह जातियों का दो ग्रामों (षड्ज ग्राम और मध्यम ग्राम) में वर्गीकरण किया है। जिनमें से सात षड्ज ग्राम में और ग्यारह मध्यम ग्राम में बताई हैं। ये ही अठारह जातियाँ 'दत्तिलम्' में जो कि दत्तिल का लिखा हुआ ग्रन्थ है, प्राप्त होती हैं। इसे षड्ज और मध्यम ग्रामों से १८ जातियों का वर्गीकरण कहते हैं।

## बृहद्देशी

इसके उपरांत चौथी से सातवीं शताब्दी के मध्य में मर्तग द्वारा लिखा गया अन्य ग्रन्थ 'बृहद्देशी' प्राप्त होता है। इसमें प्रथम बार 'राग' शब्द प्राप्त होता है। इनके समय में जो सात जातियाँ थीं, उनमें से ही एक जाति 'राग' थी। उनके मत से अंश स्वर के प्रयोग से ग्राम-रागों का जन्म होता है।

## संगीत-विशारद



## संगीत मकरंद

इसके उपरान्त नारद नामक व्यक्ति का लिखा ग्रन्थ 'संगीत-मकरंद' प्राप्त होता है। इसमें सर्वप्रथम रागों को 'पुल्लिंग', 'स्त्रीलिंग' और 'नपुंसक लिंग' जैसे वर्गीकरण में बाँटा गया है। साथ ही गमक के आधार पर रागों के 'कम्पित गमक,' 'अर्ध कम्पिताः' और 'कम्पित विहीना' जैसे तीन वर्ग और कर दिए हैं। इसे ग्राम-राग वर्गीकरण कहते हैं।

नारद के मतानुसार पुरुष राग २१ हैं, स्त्री रागों की संख्या २४ है और नपुंसक रागों की १३ है। 'संगीत मकरंद' में वर्णित रागों में से १७ राग वर्तमान समय में भी प्रचार में हैं। इनके नाम हैं—श्री राग, भूपाली, छायानट, वसंत, सौराष्ट्र (सोरटा) शुद्ध सारंग, भैरवी, सैन्धवी, गान्धारी, देशी, विलावली, नारायणी, मेघरंजनी, ललित, धनाश्री, सावेरी और शंकराभरण। इनमें से कुछ राग ऐसे हैं, जिनकी जातियों में परिवर्तन हो चुका है। जैसे मधुमाद, श्री और वसंत की जातियाँ पहले क्रम से सम्पूर्ण, षाडव और सम्पूर्ण थीं, जिनमें अब मधुमाद की औडव-औडव और श्री तथा वसंत की औडव-सम्पूर्ण हो गई।

नारद ने ही सर्वप्रथम राग-रागिनियों को भिन्न-भिन्न प्रहर में (प्रातःकालीन राग, सायंकालीन राग, मध्याह्न के राग और सूर्यास्त के उपरान्त गाए जाने वाले राग) गाने-बजाने के लिए लिखा है।

## संगीत रत्नाकर

इनके बाद शाङ्गदेव द्वारा लिखित 'संगीत-रत्नाकर' प्राप्त होता है। इसमें इन्होंने अपने समय के प्रचलित रागों का वर्गीकरण देशी और मार्गी रागों के अन्तर्गत किया है। मार्गी रागों के (१) ग्राम राग, (२) उप राग, (३) शुद्ध राग, (४) भाषा राग, (५) विभाषा राग और (६) अन्तर भाषा राग; ये छह भेद बताये हैं और देशी रागों को (१) रागांग, (२) उपांग, (३) भाषांग और (४) क्रियांग, इन चार भेदों में विभाजित कर दिया है। इनके अतिरिक्त कुछ 'पूर्व-प्रसिद्ध' और अधुनाप्रसिद्ध राग और दिए हैं। इन सब रागों को मूर्च्छनाओं के आधार पर बताया गया है। यह भेद किस आधार पर किए गए हैं, यह नहीं बताया है। इसे रत्नाकर का 'दस-विधि राग-वर्गीकरण' कहते हैं।

१४ वीं या १५ वीं शताब्दी में पं० कल्लिनाथ और सिंहभूपाल नामक विद्वानों ने संगीत रत्नाकर की टीका प्रस्तुत की। शाङ्गदेव ने ३० ग्राम-रागों का भी उल्लेख किया है, जिनमें शुद्ध गीति के मिश्रण से सात, भिन्ना के आधार से पाँच, गौड़ी के के योग से तीन, वेपरा से आठ और साधारणी से सात राग हैं। इसे 'मूर्च्छना ग्राम-राग वर्गीकरण' कहते हैं।

संगीत के कुछ प्राचीन ग्रंथकारों ने रागों का वर्गीकरण राग, -रागिनी, राग-पुत्र और राग-पुत्रवधू, इस प्रकार किया है। इसमें चार मतों का उल्लेख मिलता है— १. शिव-मत या सोमेश्वर-मत, २. भरत-मत, ३. कल्लिनाथ-मत और ४. हनुमन्मत।



इन मतों के माननेवाले विद्वानों में मुख्य छह रागों के बारे में भी मतभेद था, अर्थात् कुछ विद्वान् अपने छह राग किसी एक प्रकार से मानते थे, तो कुछ विद्वान् अपने छह राग किसी भिन्न प्रकार से मानते थे।

### शिव-मत (सोमेश्वर-मत) के छह राग और छत्तीस रागनियाँ

राग	प्रत्येक राग की छह रागिनियाँ
१. श्रो	१. मालवी, २. त्रिवेणी, ३. गौरी, ४. केदार, ५. मधुमाधवी, ६. पहाड़िका
२. वसंत	१. देशी, २. देवगिरी, ३. वराटी, ४. तोड़ी, ५. ललिता, ६. हिंदोली
३. पंचम	१. विभाषा, २. भूपाली ३. कर्णाटी, ४. बड़हंसिका, ५. मालवी, ६. पटमंजरी
४. मेघ	१. मल्लारी, २. सोरठी, ३. सावेरी, ४. कौशिकी, ५. गांधारी, ६. हरशृंगारा
५. भरव	१. भरवी, २. गुर्जरी, ३. रामकिरी, ४. गुणकिरी, ५. बंगाली, ६. सैंधवी
६. नटनारायण	१. कामोदी, २. आभीरी, ३. नाटिका, ४. कल्याणी, ५. सारंगी, ६. नट्टहंबीरा

शिव-मत को माननेवाले के लिए दामोदर पंडित-कृत 'संगीत-दर्पण' ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण माना जाता है। शिव-मत व कल्लिनाथ-मत में राग-संख्या छह मान कर प्रत्येक की छह-छह रागिनियाँ मानी हैं। किन्तु अन्य मतों में 'छह राग' मान कर उनकी पाँच-पाँच रागिनियाँ मानी हैं। अर्थात् शिवमत व कल्लिनाथ-मत 'छह राग छत्तीस रागिनियों' के सिद्धान्त को मानते हैं और भरत-मत तथा हनुमन्मत में 'छह राग तीस रागिनियों' का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है।

### भरतमत के छह राग और तीस रागिनियाँ

राग	प्रत्येक राग की पाँच रागिनियाँ
१. भरव	१. मधुमाधवी, २. ललिता, ३. वरारी, ४. भरवी, ५. वहुली।
२. मालकौंस	१. गुजरी, २. विद्यावती, ३. तोड़ी, ४. खंवावती, ५. ककुभ।
३. हिंडोल	१. रामकजी, २. मालवी, ३. आसावरी, ४. देवारी, ५. केकी।
४. दीपक	१. केदारी, २. गौरा, ३. रुद्रावती, ४. कामोद, ५. गुजरी।
५. श्रो	१. सैंधवी, २. काफ़ी, ३. ठुमरी, ४. विचित्रा, ५. सोहनी।
६. मेघ	१. मल्लारी, २. सारंगा, ३. देशी, ४. रतिवल्लभा, ५. कानरा।



## कल्लिनाथ मत के छह राग और छत्तीस रागिनियाँ

राग	प्रत्येक राग की छह रागिनियाँ
१. श्री	१. गौरी, २. कोलाहल, ३. धवला, ४. वरोराजी, ५. मालकौंस, ६. गांधार
२. पंचम	१. त्रिवेणी, २. हस्तंतरेतहा, ३. अहीरी, ४. कोकभ, ५. वेरारी, ६. आसावरी
३. भैरवी	१. भैरवी, २. गुजरी, ३. बिलावली, ४. बिहाग, ५. कर्नाटी, ६. कानड़ा
४. मेघ	१. बंगाली, २. मधुरा, ३. कामोद, ४. धनाश्री, ५. देवतीर्थी, ६. दिवाल
५. नटनारायण	१. त्रिबंकी, २. तिलंगी, ३. पूर्वी, ४. गांधारी, ५. रामा, ६. सिधमल्लारी
६. वसंत	१. अंधाली, २. गुणकली, ३. पटमंजरी, ४. गौड़गिरी, ५. धाँकी, ६. देवसाग

## हनुमन्मत के छह राग और तीस रागिनियाँ

राग	प्रत्येक राग की पाँच रागिनियाँ
१. भैरव	१. बंगाली, २. सैधवी, ३. भैरवी, ४. बरारी, ५. मदमादी ।
२. मालकौंस	१. तोड़ी, २. गुणकरी, ३. गौरी, ४. खंवावती, ५. ककुभ ।
३. हिंडोल	१. रामकली, २. देशाख, ३. ललिता, ४. बिलावली, ५. पटमंजरी ।
४. दीपक	१. देसी, २. कामोदी, ३. केदारी, ४. कानड़ा, ५. नाटिका ।
५. श्री	१. मालश्री, २. आसावरी, ३. धनाश्री, ४. वसंती, ५. मारवा ।
६. मेघ	१. तनक २. मल्लारी, ३. गुजरी, ४. भोपाली, ५. देशकार ।

इनके अतिरिक्त प्राचीन ग्रंथकारों ने प्रत्येक रागिनी के पुत्र और पुत्रवधू मानकर उनके परिवार को विस्तृत किया है ।

जिस समय उक्त मत प्रचलित थे, उस समय राग-रागिनियों का जो स्वरूप था, वह आधुनिक प्रचलित रागों से नहीं मिलता, अतः उनको आधुनिक ठाठ-पद्धति के रागों में लागू नहीं किया जा सकता है । फिर भी संगीत के विद्यार्थियों को अपनी प्राचीन राग-रागिनी-पद्धति के बारे में जानकारी रखना आवश्यक है ।

प्राचीन राग-रागिनी-पद्धति का खंडन करते हुए सर्वप्रथम (१८१३ ई० में) पटना के मुहम्मदरजा ने अपने ग्रंथ 'नगमाते-आसफी' में लिखा कि प्राचीन राग-रागिनी-पुत्र-पुत्रवधू की कल्पना गलत और अवैज्ञानिक है, क्योंकि राग और उनकी



रागिनियों के स्वरों में समता नहीं पाई जाती। अतः मुहम्मद रज़ा ने बिलावल ठाठ को शुद्ध ठाठ मान कर सर्वप्रथम अपना एक नवीन मत प्रचलित किया। उनका कथन है कि राग और उनकी रागिनियों के स्वरों में कुछ सामंजस्य अवश्य होना चाहिए; अतः उन्होंने छह राग और तीस रागिनियों का अपना नवीन मत तत्कालीन संगीतज्ञों के सम्मुख रखा। उन्होंने हनुमन्मत से मिलते-जुलते राग-रागिनियों के नामों पर नवीन स्वरों का निर्माण किया। राजा साहब की यह पद्धति भी बहुत समय तक प्रचलित रही, किन्तु बाद में आधुनिक ग्रंथकारों द्वारा यह पद्धति तथा प्राचीन राग-रागिनियों की सभी पद्धतियाँ छोड़कर ठाठ राग-पद्धति चालू हो गई।

प्राचीन ग्रंथकारों ने संगीत की उत्पत्ति देवी-देवताओं से मानी है, अतः इन राग-रागिनियों का भी उन्होंने पुरुष राग और स्त्री रागिनी के रूप में देव-देवी-स्वरूप ही मानकर वर्गीकरण किया। उनके स्वरूपों का भी वर्णन किया गया, जिसके आधार पर राग-रागिनियों के चित्र भी बन गए, जो आज तक पाए जाते हैं।

जिस युग में जैसे रागों का प्रचार होता है, उसी के आधार पर उस युग के विद्वान् संगीत-शास्त्र की रचना करते हैं। किन्तु संगीत परिवर्तनशील रहा है। प्राचीन ग्रंथों में रागों में वर्णित स्वरूप या स्वर आज के प्रचलित राग-स्वरों से मेल नहीं खाते। उदाहरण के लिए राग मालकौंस को लीजिए। प्राचीन शास्त्रों में यह मालव-कौशिक, मालकोश, मालकौंस, तथा मालकेस आदि नामों से मिलता है। संगीत-दर्पण-कार ने मालव-कौशिक के स्वर 'सा रे ग म प ध नि सां' दिए हैं। 'हृदयप्रकाश' में 'सा रे ग ध नि सां, सां नि ध म ग रे सा', इस प्रकार बताया है। किन्तु आजकल जो मालकौंस राग प्रचलित है, वह 'रे प' वर्जित होकर 'सा गु म ध नि सां', 'सां नि ध म ग सा', इस प्रकार है। ऐसे ही अन्य बहुत-से रागों के नाम तो आजकल मिलते हैं, किन्तु उनकी स्वरावली बिल्कुल दूसरे ही रूप में है। इन्हीं सब कारणों से प्रचलित राग-रागिनी-पद्धति धीरे-धीरे पीछे हटती रही और ठाठ-पद्धति से रागों की उत्पत्ति सामने आ गई। आजकल ठाठ-राग-पद्धति ही भारत में प्रचलित तथा मान्य है।



## गायकों के गुण-अवगुण

संगीतं मोहिनीरूपमिदं याहुः सत्यमेव तत् ।

योग्यरसभावभाषारागप्रभृतिसाधनेः ॥

गायकः श्रोतुमनसि नियतं जनयेत् फलम् ।

—लक्ष्य-संगीत

योग्य रस, भाव तथा भाषांग की उचित रूप से साधना करते हुए जो गायक गाता है, उसका संगीत मोहिनी रूप होकर श्रोताओं के मन को जीतने में अवश्य ही सफल होता है। इसलिए हमारे प्राचीन ग्रंथकारों ने गायकों के गुण-अवगुणों का वर्णन बड़े सुन्दर ढंग से किया है। उन नियमों पर ध्यान देकर जो संगीतज्ञ अपनी कला का प्रदर्शन करता है, उसके गाने का रंग महफिल में शीघ्र ही जम जाता है। इसके विरुद्ध कुछ गायक ऐसे देखे जाते हैं, जिन्होंने या तो 'गायकों के गुणावगुणों' का शास्त्रों में मनन ही नहीं किया है, अथवा वे उन्हें जानते हुए भी अपनी आदत से मजबूर होकर उन पर ध्यान नहीं देते। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी भद्दी हरकतें (मुद्राएँ) महफिल में रंग जमाने की बजाए हास्य का वातावरण पैदा कर देती हैं। श्रोताओं में सभी तरह के व्यक्ति होते हैं। कोई श्रोता गीत की कविता पर ध्यान देता है, कोई गायक के सुरीलेपन और लयकारी को देखता है और कोई गायक-गायिका के रूप-रंग तथा उसके हाव-भाव प्रदर्शित करने के ढंग में ही आनन्द लेता है। इस प्रकार संगीत-कला के सभी अंगों से भिन्न-भिन्न प्रकार के श्रोता अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल रसास्वादन करते हैं। ऐसी हालत में यह निश्चित ही है कि गायक के गुण-अवगुण महफिल में रंग बनाने या बिगाड़ने में बहुत सहायक होते हैं। अतः प्रत्येक संगीत-विद्यार्थी को आरम्भ से ही ध्यान देकर गायकों के गुण अपनाने चाहिए और अवगुणों से बचना चाहिए। आरम्भ में जैसी आदत पड़ जाती है



वह आसानी से नहीं छूटती। यदि शुरू में ही हाथ-पैर फेंक-फेंककर या टेढ़ा मुँह करके भद्दे ढंग से दाँत दिखाकर गाने की आदत पड़ गई तो उससे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो जाएगा और इसका परिणाम यह होगा कि संगीत-समाज में उसे सम्मान और सफलता कदापि नहीं मिलेगी। गायकों की स्थिति बताते हुए लक्ष्यसंगीतकार ने ठीक ही लिखा है :—

भाषाऽव्यक्ता हावभावाः प्रतीयन्ते विसंगताः ।

व्यस्ताश्चेष्टास्तथाऽऽक्रोशाः केवलं कर्कशा मताः ॥

एताद्गायनान्न स्यात् परिणामो ह्यभीप्सितः ।

ततो हास्यरसस्यैव केवलं स्यात् समुद्भवः ॥७३॥

—लक्ष्य-संगीत

उपर्युक्त श्लोक का भावार्थ यही है कि भद्दे ढंग से चिल्ला कर और ऊटपटाँग हाव-भाव दिखाने से महफिज में केवल हास्य-रस का ही वातावरण पैदा होता है।

‘संगीत रत्नाकर’ में गायक के गुणों के बारे में इस प्रकार लिखा है :—

## गायक के गुण

हृद्यशब्दः सुशारीरो ग्रहमोक्षविवक्षणः ।

रागरागाङ्गाभाषाङ्गक्रियाङ्गोपाङ्गकोविदः ॥

प्रबन्धगाननिष्णातो विविधालप्तिरसवित् ।

सर्वस्थानोच्चगमकेष्वायसलसद्गतिः ॥

आयत्तकंठस्तालज्ञः सावधानो जितभ्रमः ।

शुद्धज्ज्ञायालगाभिज्ञः सर्वकाकुविशेषवित् ॥

अपारस्थायसंचारः सर्वदोषविवर्जितः ।

क्रियापरोऽजललयः सुघटो धारणान्वितः ॥

स्फूर्जन्निर्ज्वलनो हारिरहः कूद्भजनोद्धुरः ।

सुसम्प्रदायो गीतज्ञर्गीयते गायनाप्रणीः ॥

भावार्थ इस प्रकार है :—

१. हृद्यशब्द : जिसका शब्द अर्थात् आवाज़ मधुर प्रिय तथा हो।

२. सुशारीर : जिसकी वाणी में अभ्यास के बिना राग-स्वरूप व्यक्त करने का गुण (तासीर) हो।

३. ग्रहमोक्षविवक्षण : जो ग्रह और न्यास के नियमों को जाननेवाला हो (ग्रह को विवेचना इसी पुस्तक में अन्यत्र दी गई है)।



४. रागरागकोविद : जो भाषांगक्रियांगोपांग राग-रागांग इत्यादि का जानकार हो। ( देशी संगीत में रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग, ये चार भेद कहे गए हैं। (उनका विवेचन इस पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है)

५. प्रबंधगाननिष्णात : जो प्रबंध-गान में प्रवीण हो ( प्रबंध एक प्रकार की प्राचीन गान-शैली है, जो वर्तमान समय में प्रचलित नहीं है)।

६. विविधालप्तितत्त्ववित् : जो भिन्न-भिन्न आलप्तियों के तत्त्व का ज्ञाता हो, अर्थात् आलाप करने की गूढ़ बातें (राग का आविर्भाव, तिरोभाव दिखाने की कला) जानता हो।

७. सर्वस्थानोयागमकेष्वनायासपद्गति : जो सब स्थानों की गमक सहज में ही ले सकता हो, अर्थात् मंद्र, मध्य और तार, इन तीनों स्थानों में गमकों का प्रयोग कर सके।

८. आयत्तकंठ : जिसका कंठ (गला) स्वाधीन हो, अर्थात् खुली हुई आवाज हो।

९. तालज्ञ : जो ताल का ज्ञान रखनेवाला हो।

१०. सावधान : जो एकाग्रचित्त होकर सावधानीपूर्वक गाए।

११. जितश्रम : जो श्रम को जीतनेवाला हो, अर्थात् गाते समय यह अनुभव न हो कि गाने में बड़ा परिश्रम करना पड़ रहा है।

१२. शुद्धच्छायालगभिन्न : जो शुद्ध, छायालग और संकीर्ण—इन राग-भेदों को जाननेवाला हो (इन राग-भेदों की परिभाषा इस पुस्तक में अन्यत्र दी गई है)।

१३. सर्वकाकुविशेषवित् : जो संगीत-शास्त्रों में वर्णित षड्विध यानी छह प्रकार के काकुओं का प्रयोग करने की जानकारी रखता हो।\*

१४. अनेकस्थायसंचार : जो गाते समय असंख्य स्थाय अर्थात् रागों के भाग या हिस्से तैयार करके सुनाने का ज्ञान रखता हो।

१५. सर्वदोषविवर्जित : जो सब प्रकार के दोषों से रहित हो, अर्थात् जिसमें कोई दोष न हो।

१६. क्रियापर : जो अभ्यास में दक्ष हो, अर्थात् रियाजी हो।

१७. अजस्रलय : जो अत्यन्त लयदार हो।

१८. सुघट : जो सुघड़ ( सुन्दर ) हो, अर्थात् जिसे देख कर श्रोता धृणा न करें।

१९. धारणान्वित : जो धारणावान् हो।

२०. स्कृज्जन्निर्जवन : जो 'निर्जवन' (स्थाय का एक विशेष भाग) को गाते समय मेघ-गर्जना के समान गम्भीर आवाज निकालनेवाला हो।

\* 'संगीत रत्नाकर' में छह प्रकार के काकुओं के नाम इस प्रकार दिए हैं—१. स्वर-काकु, २. राग-काकु, ३. देश-काकु, ४. क्षेत्र-काकु, ५. अन्य राग-काकु, ६. यंत्र-काकु।



२१. हारिरह : कृद्भजनोधुर : जो अपने गायन से श्रोताओं के मन को मोहित करनेवाला हो ।

२२. सुसम्प्रदाय : जिसकी गुरु-परम्परा उच्च श्रेणी की हो, अर्थात् जो ऊँचे सम्प्रदाय का हो ।

## गायक के अवगुण

संबद्धोद्धृष्टसूत्कारिभीतशक्तिकंपिताः ।

कराली विकलः काकी वितालकरमोदडाः ॥

सौबकस्तुम्बकी बक्की प्रसारी विनिमीलकः ।

विरसापस्वराव्यवस्थानभ्रष्टाव्यवस्थितः ॥

मिश्रकोऽनवधानश्च तथाऽन्यः सानुनासिकः ।

पंचविंशतिरित्येते गायना निदिता मता ॥

—संगीत रत्नाकर

भावार्थ इस प्रकार है :—

१. संबद्ध : दाँत पीस कर गानेवाला हो ।
२. उद्धृष्ट : जो नीरस, जोर से गानेवाला हो ।
३. सूत्कारी : जो गाते समय सूत्कार करनेवाला हो ।
४. भीत : जो भयभीत होकर गानेवाला, अर्थात् जो डरते-डरते गाए ।
५. शक्ति : जो आत्मविश्वास-रहित होकर गाए, अर्थात् जो घबरा कर जल्द-बाजी से गानेवाला हो ।
६. कंपित : जो काँपती हुई आवाज़ से गानेवाला हो ।
७. कराली : जो भयंकर मुँह फाड़ कर गानेवाला हो ।
८. विकल : जिसके गाने में श्रुतियाँ कम या अधिक लग जाती हों, अर्थात् जिसके स्वर अपने उचित स्थान पर न लगते हों ।
९. काकी : जो कोए के समान कर्कश आवाज़वाला हो ।
१०. विताल : जो बेताल गानेवाला हो ।
११. करम : मुँड़ी (शिर) ऊँची करके गानेवाला हो ।
१२. उद्धृष्ट : जो भेड़ की तरह मुँह फाड़ कर गानेवाला हो ।
१३. सौबक : जो गले और मुँह की नसों फुलाकर गानेवाला हो ।
१४. तुम्बकी : जो तूँबे के समान मुँह फुला कर गानेवाला हो ।
१५. बक्की : जो मुँड़ी (शिर) टेढ़ी कर के गानेवाला हो ।



१६. प्रसारी : जो हाथ-पैर फेंक-फेंककर या हाथ-पैर पटक कर गानेवाला हो ।  
 १७. विनिमोलक : जो आँखें बन्द करके या आँखें मींच कर गानेवाला हो ।  
 १८. विरस : जिसके गाने में रस न हो, अर्थात् नीरस गानेवाला हो ।  
 १९. अपस्वर : जिसके गाने में वर्जित स्वर भी लग जाए ।  
 २०. अव्यक्त : गाते समय जिसका शब्दोच्चारण ठीक न हो ।  
 २१. स्थान-भ्रष्ट : जिसकी आवाज योग्य स्थान पर न पहुँचती हो ।  
 २२. अव्यवस्थित : जो बेढंगे तरीके से अर्थात् अव्यवस्थित रीति से गानेवाला हो ।  
 २३. मिश्रक : जो राग को मिश्र करके (भ्रष्ट करके) गानेवाला हो ।  
 २४. अनवधान : जो लापरवाही से गानेवाला हो ।  
 २५. सानुनासिक : जो नाक के स्वर से गानेवाला हो, अर्थात् जो गाते समय नाक से आवाज निकाले ।

इन समस्त दोषों से अच्छे गायक को बचना चाहिए, ऐसा शास्त्र-विधान है। यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है कि इन पच्चीस दोषों में कुछ दोष ऐसे भी तो हैं जो अनेक अच्छे गायकों में पाए जाते हैं; जैसे उन्नीस और तेईस संख्यावाले दोष। अर्थात् बहुत से अच्छे गायक अपने गायन में वर्जित स्वर प्रयोग करते देखे जाते हैं और रागों को मिश्र करके यानी मिलाकर भी गाते हैं।

इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि कुशल गायक जब-कभी वर्जित स्वर का प्रयोग राग में करते हैं, तो वे विवादी स्वर के नाते ऐसी कुशलता से उसे लगाते हैं कि राग का सौंदर्य बिगड़ने के बजाए और खिल उठता है, अतः उपर्युक्त नियम को अपवाद समझते हुए उनका यह कृत्य 'गायक-अवगुण' श्रेणी में नहीं आता। 'समर्थ को नहीं दोष गुमाँई' की उक्ति के अनुसार वे दोषी नहीं ठहराए जा सकते, क्योंकि उनको यह सामर्थ्य प्राप्त है कि वे राग में विकृत स्वर लगा कर भी उसके द्वारा एक विशेषता दिखा दें। इसके विरुद्ध साधारण गायक यदि ऐसे कृत्य करने लगेगा, तो वह राग-रूप को ही बिगाड़ बैठेगा। इसी प्रकार रागों में मिश्रण करने के लिए भी कुशल और समर्थ संगीतज्ञ दोषमुक्त किए जा सकते हैं, क्योंकि वे जब किसी एक राग में दूसरे राग के स्वर दिखाते हैं या मिलाते हैं, तो उस समय राग का रूप नहीं बिगड़ने देते, प्रत्युत वहाँ पर अन्य राग की थोड़ी सी छाया लाकर 'तिरोभाव' दिखाते हुए मुख्य राग को कुछ देर के लिए छिपा कर फिर आविर्भाव द्वारा उसे प्रकट करके अपना कौशल दिखाते हैं। इसी कार्य को एक साधारण गायक करने लगे तो वह कठिनाई में पड़ जाएगा और मुख्य राग का रूप भी नष्ट कर बैठेगा। इसीलिए शास्त्रकारों ने इसे भी दोष माना है। अतः शास्त्रों में वर्णित उपर्युक्त गुण तथा अवगुणों पर संगीत-विद्यार्थियों को पूरा ध्यान देना चाहिए।



## यन्त्र वादकों के गुण-दोष

प्राचीन ग्रंथकारों ने वाद्य-यंत्र बजाने वालों के गुण-दोषों का जो वर्णन किया है, उसका भावार्थ इस प्रकार है :—

### वादक के गुण

१. गीत, वाद्य और नृत्य में पारंगत हो ।
२. भिन्न-भिन्न वाद्यों (साजों) को बजाने में कुशल हो ।
३. वाद्य-यंत्र बनाने की जानकारी रखनेवाला हो ।
४. ग्रह-ज्ञान रखनेवाला हो ।
५. अँगुली-संचालन में कुशल हो ।
६. ताल और लय का ज्ञान रखता हो ।
७. विभिन्न वाद्ययंत्रों के विषय में पूर्ण ज्ञान रखता हो ।
८. हस्त-संचालन में कुशल हो ।
९. किस वाद्य-यंत्र को बजाने में कौन-से शारीरिक अवयवों से सहायता मिलती है, इसका ज्ञान रखनेवाला हो ।
१०. स्वरों के उतार-चढ़ाव का ज्ञान रखनेवाला हो ।

### वादक के दोष

जिस वादक में उपर्युक्त दस गुण नहीं हैं या जो वादक उक्त बातों का ज्ञान नहीं रखता, फिर भी किसी वाद्य को बजाने की चेष्टा करता है, वह सफलता प्राप्त नहीं कर सकता । इस प्रकार उक्त दस गुणों का अभाव ही दस दोषों में बताया गया है ।



## नायक व गायक आदि के भेद

**नायक :** जो प्राचीन तथा नवीन, दोनों प्रकार के संगीत का पूर्ण ज्ञाता है और गुरु-परंपरा से मिली हुई शिक्षा के अनुसार ताल और स्वर में बँधी हुई चीजें शुद्ध रूप से गाता-बजाता है, उसे 'नायक' कहते हैं तथा उसके द्वारा प्रदर्शित की हुई कला को 'नायकी' कहते हैं।

**गायक :** जो गुरु-परंपरा से बँधी हुई चीजों को या नायक द्वारा प्रदर्शित संगीत में अपनी बुद्धि से अलंकार व तानों का प्रयोग करके उसमें सौंदर्य तथा विचित्रता पैदा करके गाता है, उसे 'गायक' कहते हैं और उसके द्वारा जो कला प्रदर्शित होती है, उसे 'गायकी' कहते हैं।

**कलावंत :** कलावंत का मुख्य गुण है 'क्रिया-सिद्धि'। जिसके नित्य-प्रति के अभ्यास में गला और हाथ खूब तैयार हों, जो ध्रुवपद-धमार का पूर्ण ज्ञाता हो और कुशलतापूर्वक गाकर श्रोताओं का मनोरंजन कर सके, उसे 'कलावंत' कहते हैं।

**गंधर्व :** जो मार्ग संगीत को गा-बजा सकता हो तथा राग-रागनियों की भी पूर्ण जानकारी रखता हो, उसे 'गंधर्व' कहते हैं।

**पंडित :** जिसे गान-शास्त्र का तो पूर्ण ज्ञान हो, किन्तु गान-कला अर्थात् क्रियात्मक संगीत का साधारण ज्ञान हो, उसे संगीत-कला का 'पंडित' कहते हैं।

**संगीत-शास्त्रकार :** जिसे संगीत की प्राचीन और नवीन पद्धति की जानकारी हो; संगीत का पूर्व-इतिहास, प्राचीन और अर्वाचीन शुद्ध सप्तकों का ज्ञान हो; प्राचीन और आज की गान-पद्धति का अंतर प्रकट करने की क्षमता रखता हो; गीत, प्रबंध वाद्यों



के प्रकार, ताल व नृत्य का इतिहास अपनी लेखनी द्वारा प्रकट कर सके व संगीत का वर्तमान स्वरूप तथा भविष्य में उसकी उन्नति पर अपने योग्य विचार प्रकट करके संगीत-कला का आदर्श उपस्थित कर सके और प्राचीन तथा आधुनिक संगीत-पद्धति पर नवीन ग्रंथों का निर्माण उपस्थित कर सके, उसे 'संगीत-शास्त्रकार' कहते हैं।

**संगीत-शिक्षक :** जो शान्त वृत्ति से विद्यार्थी को संगीत-शिक्षा दे सके और उसकी कठिनाइयों को जानकर, उसकी आवाज़ का धर्म, ग्रहण-शक्ति तथा रुचि पर ध्यान देकर सहज और सरल मार्ग से समझाने-पढ़ाने की क्षमता रखता हो, उसे 'संगीत-शिक्षक' कहते हैं। संगीत-शिक्षक भले ही गायकों की महफ़िल में बैठकर अपना रंग न जमा सके, किन्तु उसमें अच्छे संगीत-विद्यार्थी तैयार करने का गुण अवश्य होना चाहिए।

**कव्वाल :** जो गायक गज़ल, दादरा, कव्वाली इत्यादि गाता है, उसे 'कव्वाल' कहा जाता है।

**अताई गायक :** जो व्यक्ति किसी एक उस्ताद को अपना उस्ताद या गुरु न मानकर शुद्ध रूप से नियमित संगीत-शिक्षा नहीं लेते, बल्कि इधर-उधर जहाँ से भी प्राप्त हुआ, देख-सुनकर गाने-बजाने लगते हैं और शास्त्र का ज्ञान नहीं रखते, उन्हें 'अताई गायक' कहा जाता है।

**ढाढ़ी गायक :** जो विशुद्ध गायन के साथ-साथ शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान रखते हैं, वे 'ढाढ़ी गायक' कहलाते हैं।

**कथक :** नृत्य-संगीत की शिक्षा देनेवाले वे व्यवसायी व्यक्ति, जिनके यहाँ कई पीढ़ियों से यही कार्य होता आया है, 'कथक' या 'ढाढ़ी' कहलाते हैं।

## वाग्गेयकार के गुण व दोष

'वाक्' और 'गेय' से मिलकर 'वाग्गेय' शब्द बना है। 'वाक्' का अर्थ है पद्य-रचना और 'गेय' का अर्थ है स्वर-रचना; इन्हीं को 'मातृ' और 'धातृ' कहते हैं। अर्थात् जो स्वर-रचना और पद्य-रचना का ज्ञाता हो, ऐसे संगीत-विद्वान् को प्राचीन काल में वाग्गेयकार की संज्ञा दी जाती थी। पाश्चात्य विद्वान् उसे 'कंपोज़र' (रचयिता) कहते हैं। वाग्गेयकार को साहित्य और संगीत, दोनों का उत्तम ज्ञान होना अति आवश्यक है, तभी वह पद्य-रचना और स्वर-रचना कर सकता है। 'संगीत रत्नाकर' में वाग्गेयकार के गुणों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार दिया है :—

वामांतुहच्यते गेय धातुरित्यभिधीयते ।

वाचं गेयं च कुरुते यः स वाग्गेयकारकः ॥१॥

शब्दानुशासनज्ञानमभिधानप्रवीणता ।

छंदः प्रभेदवेदित्वमलंकारेषु कौशलम् ॥२॥



रसभावपरिज्ञानं	देशस्थितिषु	चातुरी ।
अशेषभाषाविज्ञानं	कलाशास्त्रेषु	कौशलम् ॥३॥
तूर्यत्रितयचातुर्यु	हृद्यशारीरशालिता	।
लयतालकलाज्ञानं	विवेकोऽनेककाकुषु	॥४॥
प्रभूतप्रतिभोद्भेदभास्त्वं	सुभगगेयता	।
देशीरागेऽवभिज्ञत्वं	वाक्पटुत्वं	सभाजये ॥५॥
रागद्वेषपरित्यागः	साद्रत्वमुचितज्ञता	।
अनुच्छिष्टोक्तिनिबन्धो	नूतनधातुविनिमितिः	॥६॥
परचित्तपरिज्ञानं	प्रबन्धेषु	प्रगल्भत ।
द्रुतगीतविनिर्माणं	पदांतरविदग्धता	॥७॥
त्रिस्थानगमकप्रौढिविविधालप्तिनैपुणम्		।
अवधानं	गुणैर्भिवरो	वाग्गेयकारकः ॥८॥

पीछे के आठ श्लोकों का भावार्थ क्रमशः नीचे दिया जाता है :—

१. जो 'वाक्' यानी 'मातृ' और 'गेय' यानी 'धातु' का कर्ता है, अर्थात् जो पद्य-रचना और स्वर-रचना का ज्ञाता है, वह वाग्गेयकार है ।

२. जो व्याकरण-शास्त्र का ज्ञाता, शब्द-ज्ञाता, छंद-ज्ञाता तथा साहित्य-शास्त्र में बताए हुए उपमादिक अलंकारों का ज्ञाता है ।

३. जिसे शृंगार आदि रसों और विभावादिक भावों का उत्तम ज्ञान है और जो भिन्न-भिन्न देशों के रीति-रिवाजों तथा उनकी भाषाओं की जानकारी रखते हुए संगीतादि शास्त्रों में प्रवीण है ।

४. जो गीत, वाद्य और नृत्य, इन तीनों में, चतुर है; जिसे 'हृद्य' अर्थात् सुन्दर 'शारीर' प्राप्त हुआ है । 'शारीर' एक पारिभाषिक शब्द है । जो व्यक्ति बिना कठोर परिश्रम के अथवा अभ्यास न करते हुए भी रागों की अभिव्यक्ति अर्थात् राग-प्रदर्शन में समर्थ होता है, उसके लिए कहा जाता है कि उसे 'हृद्य (मनोहर) शारीर' प्राप्त है । जो लय, ताल और कलाओं का ज्ञानी है और जिसे भिन्न-भिन्न स्वर-काकुओं अर्थात् स्वर-भेदों का ज्ञान है । ('काकु' भी एक पारिभाषिक शब्द है जिसका विशेष विवरण इस पुस्तक में आगे दिया है ।)

५. जो प्रलिभावान् है (जिसे नई-नई कल्पनाएँ सूझती हैं), जिसे सुखदायक गायन करने की शक्ति प्राप्त है, देशी रागों का जिसे ज्ञान है और जो सभा में अपनी वाक्-पटुता (व्याख्यान-चातुरी) के बल से विजय प्राप्त कर सकता है ।



६. जिसने राग-द्वेष का परित्याग करके सरसता धारण की है, उचित-अनुचित का जिसे ज्ञान है, अर्थात् किस स्थान पर कौनसी चीज़ उचित है, जो यह जानता है; जिसमें स्वतन्त्र रचना करने की शक्ति है और जो नई-नई स्वर रचना करने का ज्ञान रखता है ।

७. जो दूसरों के मन का भाव जानने की शक्ति रखता है, जिसे प्रबन्धों का उच्च ज्ञान प्राप्त है, जो शीघ्रता से कविता रचने की सामर्थ्य रखता है और जिसमें भिन्न-भिन्न गीतों की छायाओं का अनुकरण करने की शक्ति है ।

८. जो तीनों स्थानों (मंद्र, मध्य, तार) में गमक लेने की शक्ति रखता है जो रागालप्ति तथा रूपकालप्ति में निपुण है और जिसमें चित्त की एकाग्रता का गुण है ।

उपर्युक्त सभी गुण जिस व्यक्ति में विद्यमान हों, वही उत्तम वाग्गेयकार बताया गया है ।

## मध्यम और अधम वाग्गेयकार

मध्यम और अधम वाग्गेयकार के लिए शास्त्रों में इस प्रकार लिखा है :—

विदधानोऽधिकं धातुं मातुंदस्तु मध्यमः ।

धातुमातुविदप्रौढः प्रबन्धेष्वपि मध्यमः ॥

रम्यमातुबिनिर्माताऽप्यधमो मंदधातुकृत् ।

भावार्थ : जो स्वर-रचना अर्थात् धातु में प्रवीण है और मातु (पद्य-रचना) में मंदबुद्धि है, वह मध्यम श्रेणी का वाग्गेयकार है और जो स्वर-रचना अर्थात् स्वर-लिपि करने का ज्ञान रखता हो और पद्य रचना (मातु) का भी अच्छा ज्ञानी हो, किन्तु भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रबन्ध-गायन में कुशल न हो, वह भी मध्यम श्रेणी में ही आता है । अधम वाग्गेयकार वह है, जिसे केवल शब्द-ज्ञान तो हो, किन्तु पद्य-रचना (कविता) तथा स्वर-रचना (स्वर लिपि) का ज्ञान नहीं हो ।



# गीत, गांधर्व, गान, मार्ग संगीत, देशी संगीत ग्रह, अंश और व्यास

रंजकः स्वरसंदर्भो गीतमित्यभिधीयते ।

गांधर्व गानमित्यस्य भेदद्वयमुदीरितम् ॥

—संगीत रत्नाकर

गीत : स्वरों का वह समुदाय, जिससे मन का रंजन हो, 'गीत' कहलाता है।  
गीत के दो भेद हैं—१. गांधर्व २. गान ।

गांधर्व : जो संगीत स्वर्गलोक के गंधर्वों द्वारा गाया जाता था, जिसका उद्देश्य मोक्ष-प्राप्ति है, उस वेदों के अपौरुषेय व अनादि संगीत को 'गांधर्व' कहा गया है।

गान : जो संगीत वाग्गेयकारों ने, अर्थात् संगीत के पंडितों ने अपने बुद्धि-कौशल से उत्पन्न किया तथा जिसे लक्षणबद्ध करके देशी रागों में जिसका उपयोग कर लोकरंजन के निमित्त प्रचलित किया, वह 'गान' है।

मार्ग संगीत : 'संगीत रत्नाकर' के टीकाकार कल्लिनाथ के मतानुसार 'गांधर्व' और 'गान' को ही क्रमशः 'मार्ग' और 'देशी' माना जाए, तो कोई हानि नहीं। मार्ग संगीत वर्तमान काल में बिल्कुल प्रचलित नहीं है।

मार्गो देशीति तद् द्वेधा तत्र मार्गः स उच्यते ।

यो मार्गितो विरिच्याद्यै, प्रयुक्तो भरतादिभिः ॥

—संगीत-रत्नाकर (१।२२)

इस श्लोक के अनुसार 'मार्ग-संगीत' वह है, जिसका प्रयोग ब्रह्मा के बाद भरत ने किया। वह अत्यन्त प्राचीन तथा कठोर सांस्कृतिक व धार्मिक नियमों से जकड़ा हुआ था, अतः आगे उसका प्रचार ही समाप्त हो गया।



**देशी संगीत :** देश के विभिन्न भागों में छोटे-बड़े सभी लोग जिसे प्रमपूर्वक गा-बजाकर अपना मत प्रसन्न करते हैं, वह 'देशी संगीत' है। शाङ्गदेव के समय में भी सभी जगह देशी संगीत ही प्रचलित था, किन्तु वर्तमान हिन्दुस्तानी संगीत से वह बिलकुल भिन्न था। इसका कारण यही है कि देशी संगीत सर्वदा परिवर्तनशील रहा है, लोक-रुचि के अनुसार उसका स्वरूप भी बदलता रहता है। देशी संगीत में नियमों का विशेष बंधन नहीं, इसलिए यह सुलभ और सरल है तथा लोक-रुचि पर अवलंबित रहता है।

देशे-देशे जनानां यदरुच्या हृदयरंजकम् ।

गानं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते ॥

— संगीत रत्नाकर

अर्थात्—भिन्न-भिन्न देशों के जन (मनुष्य) अपनी-अपनी रुचि के अनुसार जिसे गा-बजाकर और नाचकर प्रसन्नता प्राप्त करते हैं अथवा हृदय का रंजन करते हैं, वह 'देशी संगीत' है।

तत्तद्देशस्थया रीत्या यत्सात् लोकानुरंजनम् ।

देशे-देशे तु संगीतं तद्देशीत्यभिधीयते ॥

— संगीत दर्पण

अर्थात्—जो संगीत देश के भिन्न-भिन्न भागों में वहाँ के रीति-रिवाजों के अनुसार जनता का मनोरंजन करता है, वह 'देशी संगीत' कहलाता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान समय में जैसा संगीत प्रचलित है, वह सब देशी संगीत है। अतः ग्वालियर का ध्रुवपद-गायन, मथुरा का होरी-गायन, मिर्जापुर का कजरी-गायन, बनारस और लखनऊ का ठुमरी-गायन, मणिपुर का मणिपुरी नृत्य, लखनऊ का कथक नृत्य, ब्रज का गोपी-नृत्य, गुजरात का गरबा नृत्य इत्यादि सब देशी संगीत के अन्तर्गत हैं।

**ग्रह, अंश और न्यास**

गीतादौ स्थापितो यस्तु स ग्रहस्वर उच्यते ।

न्यासस्वरस्तु विज्ञेयो यस्तु गीतसमापकः ॥

बहुलत्वं प्रयोगेषु स चांश स्वर उच्यते ॥१६३॥

अर्थात्—गीत के आरंभ में ही जो स्वर स्थापित किया जाता है, उसे 'ग्रहस्वर' कहते हैं। गीत की समाप्ति जिस स्वर पर होती है, उसे 'न्यास स्वर' कहते हैं और प्रयोग में जो स्वर बहुलत्व दिखाता है, अर्थात् बार-बार आता है, उसे 'अंश स्वर' कहते हैं। इस प्रकार प्राचीन ग्रंथों में तीन स्वर-भेद मिलते हैं। प्राचीन काल में ग्रह, अंश स्वरों का ध्यान रखते हुए प्रत्येक राग एक नियमित स्वर से आरंभ किया जाता

**संगीत-विशारद**



था और एक नियमित स्वर पर उसकी समाप्ति होती थी। इसी प्रकार बार-बार या अधिक प्रयोग होने वाले स्वर को महत्त्व देकर उसे 'अंश स्वर' मानते थे, जिस प्रकार कि हम आजकल वादी स्वर मानते हैं।

सम्भव है, प्राचीन समय में उपर्युक्त स्वर-नियमों का पालन उत्तम रीति से किया जाता हो। किन्तु संगीत परिवर्तनशील है, अतः आगे चलकर गायक-वादकों ने ग्रह तथा न्यास स्वरों का नियम नहीं माना, अर्थात् अमुक राग अमुक स्वर से ही आरम्भ होना चाहिए या अमुक स्वर पर ही उसे समाप्त करना चाहिए, इस बंधन को तोड़कर वे चाहे जिस राग या गीत को भिन्न-भिन्न स्वरों से आरम्भ करके गाने लगे और भिन्न-भिन्न स्वरों पर समाप्त करने लगे। उन्होंने केवल 'अंश स्वर' का सिद्धान्त 'वादी स्वर' के रूप में माना, जो आज तक प्रचलित है। क्योंकि वादी स्वर से राग की पहचान हो जाती है कि यह पूर्वांगवादी है या उत्तरांगवादी। वादी स्वर के द्वारा राग गाने का समय पहचानने में भी सहायता मिलती है। अतः प्राचीन समय के स्वर-नियमों में से ग्रह और न्यास छोड़कर 'अंश स्वर' के नियम का पालन करना आवश्यक है।



## चतुर्दण्डी और उसकी अवधारणा

सन् १६२०-१६५० के विद्वान्, वैणिक और शास्त्रज्ञ वेंकटमखी ने सबसे पहले अपने ग्रंथ 'चतुर्दण्डीप्रकाशिका' में चतुर्दण्डी के लक्षण दिये, जिनके अनुसार आलाप, ठाय, गीत, प्रबन्ध इन चारों अंगों के प्रयोग को बताया गया। लक्ष्मीनारायण ने नारद इत्यादि मुनिश्वरों का हवाला देते हुए अपने ग्रंथ में स्थाय, आरोह, अवरोही और संचारी के प्रयोग-क्रम को चतुर्दण्डी बताया। यथा—

स्थायारोह्यवरोही च सञ्चारीति क्रमा इमाः ।

चतुर्दण्डी च सा प्रोक्ता नारदादिमुनीश्वरैः ॥

बाद में चतुर्दण्डी से संबंधित अनेक ग्रंथों का निर्माण हुआ, जिन्हें चतुर्दण्डी लक्ष्य ग्रंथ कहा गया। गोपाल नायक ने सैंतीस रागों के आलाप, ठाय, गीत, प्रबन्ध रूप अपने ग्रन्थ की रचना की जो चतुर्दण्डी लक्ष्य ग्रन्थ के अन्तर्गत माना गया।

प्रबन्धों के अनेक रूप प्रचार में थे जो षडङ्ग, पंचांग, चतुरंग, त्रिअंग या द्विअंग बनाये गये थे। प्रबन्धों के चार धातु उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग बताये गये हैं। ये चारों तरह के लक्ष्य साहित्य चतुर्दण्डी नाम से प्रसिद्ध हुए।

### ठाय

राग के भिन्न-भिन्न रूप को प्रदर्शित करने का काम जिस छोटे संचार के द्वारा होता है उसे 'ठाय' कहते हैं, जो स्थाय नामक संस्कृत शब्द का प्राकृत रूप है। 'संगीत-रत्नाकर' में 'ठाय' के नाम रूप वर्णित किए गये हैं। कुल मिलाकर ६६ ठायों का उल्लेख मिलता है।

### गीत

'संगीत रत्नाकर' के प्रबन्धाध्याय में अनेक प्रबन्धों की चर्चा मिलती है। राग स्वरूप का प्रकाशन करने के लिए चतुर्दण्डी के गीत अंग का जो स्थान है उसके अन्तर्गत राग का रूप छोटे-छोटे संचारों से बना हुआ सुलभ तालबद्ध होता है।



## प्रबन्ध

प्रबन्धों में छह अंग यथा—स्वर, विरुद, पद, तेनक, पात, ताल एवं चार धातु यथा—उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग होते हैं ।

## आलाप

आलाप के प्रथम भाग में राग स्वरूप की रूपरेखा होती है जिसे आक्षिप्तका कहा जाता है । इसमें जो 'आयत्तम' नाम से पुकारा जाता है उसके चार भाग होते हैं जिसके प्रत्येक भाग का नाम स्वस्थान है । स्वस्थान के बाद स्थायी नामक भाग का गान करना होता है, स्थायी के बाद 'मकरणी' का गान किया जाता है जिसे आलाप का मुकुट रूप कहा गया है ।

चतुर्दण्डी शब्द का अर्थ है, संगीत कला को वश में करने के चार उपाय जिनका वर्णन ऊपर किया गया है । इसी को चतुर्दण्डी की अवधारणा या मान्यता, कहते हैं ।



## प्राचीन प्रबन्ध-गायन अथवा शैलियाँ

शास्त्रों में गायन के 'अनिबद्ध' और 'निबद्ध' दो भेद दिए गए हैं। 'अनिबद्ध' का अर्थ ताल से मुक्त अर्थात् आलाप-जैसा गायन है और जो ताल में बँधा हुआ होता है, उसे 'निबद्ध' कहा जाता है। स्वर, ताल और पद, ये ऐसे तीन तत्त्व हैं, जिनका 'बन्ध' निबद्ध गान में आवश्यक है। शास्त्रों में निबद्ध गान के तीन नाम मिलते हैं—प्रबन्ध, वस्तु और रूपक। इनमें 'प्रबन्ध' सर्वाधिक प्रचलित नाम है। प्रबन्ध का शाब्दिक अर्थ भी 'प्र + बन्ध' या 'प्रकृष्ट रूपेण बन्धः' अर्थात् वह गेय रचना, जिसमें अंगों को भली भाँति, सुन्दर रूप से बाँधा गया हो, है। इस प्रकार 'प्रबन्ध' में अंगों का एक अंग में बँधा होना ही मुख्य अर्थ है। आजकल 'बन्दिश' या 'चीज' भी इसी के अन्तर्गत आती है। इस प्रकार 'ताल, स्वर एवं शब्द से युक्त रचना को प्रबन्ध कहते हैं।'

प्रबन्ध शब्द अत्यन्त प्राचीन है। जिस प्रकार अनेक राग, ताल, वाद्य और संगीत की परिभाषाएँ अति प्राचीन होकर अप्रचलित हो गईं; ठीक उसी प्रकार गायन का यह भेद भी अप्रचलित हो गया। भरत मुनि ने नाट्य-शास्त्र में नृत्य-सम्बन्धी 'ध्रुव' और 'गीत' दो प्रकार के प्रबन्धों का वर्णन किया है। सर्वप्रथम प्रबन्धों के स्वरूप का उल्लेख मतंग की बृहद्देशी में ४६ देशी प्रबन्धों का और शाङ्गदेव की 'संगीत रत्नाकर' में ७५ प्रबन्धों का प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि १३-वीं शताब्दी तक प्रबन्ध व्यापक रूप से लोकप्रिय थे। प्रबन्ध शब्द देशी गीतों के लिए पर्याय-रूप में प्रयुक्त होने वाला शब्द है, अतः इसके भेद असंख्य हो सकते हैं।

प्रबन्धों का वर्णन करते हुए मतंग ने बताया है कि वे सभी प्रबन्धों को देशी प्रबन्ध के अन्तर्गत मानते थे। परन्तु शाङ्गदेव ने अपने प्रबन्धों का वर्गीकरण तीन वर्गों के अन्तर्गत किया है, जिन्हें (i) सूड प्रबन्ध, (ii) आलिक्रम प्रबन्ध (iii) विप्रकीर्ण प्रबन्ध कहते हैं। इनमें 'सूड' के दो भेद कर दिए गए हैं, जिन्हें 'शुद्ध सूड' और 'सालग सूड' कहते हैं।



सूड प्रबन्ध में पूर्वा पर ( अर्थात् पूर्व में कही गई बातों से ) सम्बन्ध अनिवार्य रूप से होता है । जबकि विप्रकीर्ण प्रबन्ध मुक्तक की भाँति पूर्वापर-सम्बन्ध से रहित होते हैं और स्वतन्त्र रूप से गाए जाने का वैशिष्ट्य रखते हैं । आलोक्य प्रबन्ध की स्थिति 'सूड' तथा 'विप्रकीर्ण' प्रबन्धों के बीच की समझी जाती है ।

अनेक विद्वानों ने 'प्रबन्ध', 'रूपक' और 'वस्तु' तीन नाम निबद्ध गान के लिए दिए हैं । प्रबन्ध का अर्थ है 'बाँधना' । इस आधार पर प्रबन्ध के छह अंग (१) स्वर, (२) विरुद, (३) पद, (४) तेनक, (५) पाट और (६) ताल हैं और (१) उद्ग्राह (२) मेलापक (३) ध्रुव और (४) आभोग; चार धातु हैं, इनका स्पष्टीकरण निम्न-प्रकार है :—

### स्वर

स, रे, ग, म, इत्यादि संगीत के 'स्वर' कहलाते हैं । इनके बिना संगीत की रचना नहीं हो सकती, इसलिए यह पहला अंग है ।

### विरुद

इन प्रबन्धों का प्रचलन नाटकों के काल में था । नाटकों के अन्तर्गत इनका प्रयोग होता था । उस समय इन गीतों में पात्र, संदर्भ अथवा कभी-कभी देवताओं का वर्णन भी हुआ करता था । पात्रों का गुणगान भी किया जाता था । अतः इस अंग के अन्तर्गत गीत में नायक के नाम, कुल इत्यादि का वर्णन करना 'विरुद' कहलाता था ।

### पद

शब्दों को कहते थे । दूसरे शब्दों में नायक के शौर्य और गुणों का वर्णन करना 'पद' अंग कहलाता था ।

### तेनक

इस अंग में 'ओम् तत् सत्' और 'तत्त्वमसि' जैसे शुभ वाक्यों या 'तेन-तेन' (जो मंगल वाक्य हैं उन वाक्यों का) प्रयोग किया जाता था ।

### पाट

ताल के बोलों का जब रुद्र वीणा, शंख और कुछ अन्य प्रकार के ढोलों की ध्वनि के साथ उच्चारण किया जाता था, तो उसे 'पाट' कहते थे ।

### ताल

'समय' के माप को ताल कहते हैं । अतः प्रत्येक प्रबन्ध का एक अंग ताल भी है । इन उपर्युक्त अंगों के आधार पर प्रबन्धों का वर्गीकरण निम्न-प्रकार किया जाता था :—

### मेदिनी जाति

इस जाति के प्रबन्धों में ऊपर दिए हुए छहो अंगों का रहना आवश्यक था ।

### आनन्दिनी जाति

इस जाति के प्रबन्धों में पाँच अंग रहते थे ।



## दीपिनी जाति

इस जाति के प्रबन्धों में ऊपर के चार अंग रहते थे ।

## भाविनी जाति

इस जाति के प्रबन्धों में ऊपर के अंगों में से तीन अंग रहते थे ।

## तारावली जाति

इस जाति के प्रबन्धों में केवल दो अंग ही रहते थे । इन सब जाति के प्रबन्धों में ताल का प्रत्येक जाति में रहना आवश्यक था । चार धातुओं का स्पष्टीकरण निम्न-प्रकार है :—

### उद्ग्राह

प्राचीन प्रबन्धों के विश्लेषण से पता चलता है कि उद्ग्राह और ध्रुव किसी सांगीतिक रचना के अनिवार्य अंग थे । ध्रुव को आधुनिक दृष्टि से स्थायी के समान समझा जा सकता है । आज गीत के स्थायी से पूर्व कुछ नहीं गाया जाता । परन्तु पहले ध्रुव के पूर्व केवल एक बार उद्ग्राह गाया जाता था । समय की गति से यह भाग अब समाप्त हो गया ।

### ध्रुव

प्रबन्धों में इस धातु की अनिवार्यता थी, अतः इसका नाम 'ध्रुव' अर्थात् 'अचल' रहने वाली धातु पड़ा ।

### मेलापक

कभी-कभी उद्ग्राह और ध्रुव के मध्य भाग में 'अन्तर' नामक एक पाँचवीं धातु और होती थी । इस प्रकार प्रबन्ध का आरम्भिक भाग 'उद्ग्राह' था । उद्ग्राह को तृतीय अंग 'ध्रुव' से मिलाने वाला होने के कारण इस द्वितीय अंग का नाम 'मेलापक' पड़ा ।

### आभोग

प्रबन्ध की पूर्ति करने वाले भाग को 'आभोग' धातु कहते थे ।

धातुओं की दृष्टि से भी प्रबन्ध चतुर्धातु, त्रिधातु और द्विधातु तीन प्रकार के थे । इनमें उद्ग्राह और ध्रुव अनिवार्य थे । त्रिधातु प्रबन्ध में मेलापक नहीं होता । द्विधातु प्रबन्ध में उद्ग्राह और ध्रुव होते हैं या ध्रुव और आभोग अथवा उद्ग्राह और आभोग । प्रबन्ध की रचना में कम से कम दो धातुओं का होना आवश्यक है ।

आज भी शास्त्रों में वर्णित अनेक प्रबन्धों का अस्तित्व देशी भाषाओं के रचे हुए पदों में मिलता है । अनेक सन्तों के पदों में प्रबन्ध नामोल्लेख के बिना भी यत्र-तत्र आलोक्य तथा विप्रकीर्ण प्रबन्धों के उदाहरण प्राप्त होते हैं ।

### राग कदम्ब

जिस प्रबन्ध में अनेक रागों का प्रयोग होता है, उसे 'राग-कदम्ब' प्रबन्ध कहा जाता है । कर्नाटक-संगीत में इस प्रकार की रचनाओं की 'राग मालिका' और उत्तर-



भारत में 'राग-सागर' या 'रागमाला' कहा जाता है। आज शास्त्रीय संगीत में इन कृतियों का गायन प्रायः लुप्त हो गया है। निम्नांकित पद में रागों के नाम दिए हैं।

गौरी मेरी पीबतजि, पर्यौ कानरा बोल ।

कैसे होत कल्याण अब, रूठौ नाह हिडोल ॥

### मातृका प्रबन्ध

इस प्रबन्ध में अकारादि-क्रम से गीत की पंक्तियों के आरम्भ में स्वरों और व्यंजनों या व्यंजनों और स्वरों का केवल क्रम रहता है। जैसे :—

ओ अंकार आदि में जाना । लिखि औ मिटे ताहि न माना ॥

ओ अंकार लखे जो कोई । सोइ लखि भेटणा न होई ॥

कवका किरणि कमल मंहि पावा । ससि बिगास सम्पट नहीं आवा ॥

अरु जे तहा कुसुम रस पावा । अकह कहा कहि का समझावा ॥

खरखा इहै खोड़ि मन आवा । खोड़े छाड़ि न बह दिसि धावा ॥

### पंचतालेश्वर प्रबंध

इस प्रबन्ध में पाँच तालों के प्रयोग का विधान मिलता है। शास्त्रों ने इस प्रबन्ध को आलिक्रम प्रबन्ध के अन्तर्गत स्थान दिया है।

### कैवाड़ प्रबंध

इस प्रबन्ध-भेद के अन्तर्गत पखावज, तबला, मृदंग आदि अवनद्ध वाद्यों के वर्णों की गेय रचनाएँ आती हैं जो कि सार्थक और निरर्थक, दोनों प्रकार की हो सकती हैं। इस प्रकार की रचनाएँ आजकल 'त्रिवट' कही जाती हैं।

### द्विपदी प्रबंध

इस प्रबन्ध में 'रहाड' के पश्चात् क्रमशः '१' और '२' अंक दो पादों के सूचक हैं। 'संगीतराज' में इसे आलिक्रम प्रबन्धों के भेदों में स्थान दिया है जैसे :—

राम को बलू पूरन भाई । ताते वृथा न बिआपे काई ॥१॥ रहाड ॥

जो जो चितवै दास हरि भाई । सो सो करत आपि कराई ॥१॥

निन्दक की प्रभिषति गवाई । नानक हरि गुण निरभउ गाई ॥२॥

इस प्रकार के अनेक द्विपदे गुरु अर्जुनदेव और सुन्दरदास ने बहुतायत से लिखे हैं।

### द्विपथक प्रबंध

जिसे हिन्दी में 'दोहा' कहते हैं वही संस्कृत में 'श्लोक' या 'अनुष्टुप' छन्द के नाम से प्रचलित हुआ। लगभग सभी सन्तों ने 'साखियाँ' लिखी हैं और साखियों का



प्रमुख छन्द 'दोहा' ही है। शास्त्रीय संगीत में 'दोहा' छन्द को खयाल-शैली में निबद्ध करके विभिन्न रागों में भी गाया जाता है। इसी प्रकार और भी अनेक प्रबन्ध हैं।

## रूपक और वस्तु

ऊपर बताया जा चुका है कि प्रबन्ध, रूपक और वस्तु तीनों ही निबद्ध गान के भेद थे। इनमें प्रबंध की व्याख्या ऊपर दे दी गई है। जब नाटकीय तत्त्वों पर बल दिया जाता था तो उस रचना को 'रूपक' कहते थे। आज इसका बिल्कुल लोप हो गया है। 'वस्तु' का अर्थ अंग और धातु के मिश्रण से बनी सम्पूर्ण रचना से था। प्रबंधों में तो रचना के भागों पर बल दिया जाता था, जबकि इन अंगों से बनी सम्पूर्ण रचना को 'वस्तु' की संज्ञा दी जाती थी। इस प्रकार ये दोनों शब्द एक-दूसरे के पूरक हैं। इसे अधिक स्पष्ट इस प्रकार समझिए कि ये किसी एक ही रचना के दो पहलू हैं—अर्थात् इन अंगों से सम्पूर्ण रचना बनी है, यह 'प्रबंध' है और इस सम्पूर्ण रचना के ये अंग हैं, यह 'वस्तु' है।

उक्त धातुओं को हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में आधुनिक स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग की भाँति समझा जा सकता है।

इन प्रबंधों के दो भेद मिलते हैं, जो निम्नलिखित हैं :—

### नियुक्त प्रबंध

इनकी रचना नियमानुसार होती है।

### अनियुक्त प्रबंध

इनकी रचना नियमों के अनुसार नहीं होती है।



# आधुनिक प्रबंध-गायन या संगीत शैलियाँ

नवीन पद्धति में, प्रबन्ध के छह अंगों (स्वर, विरुद, तेनक, पद, पाट, और ताल) में से प्रायः तीन अंगों में प्रबंध रचे जाने लगे। इनमें भी 'पद' और 'विरुद' को ही मुख्य स्थान दिया जाने लगा। अतः दो अंगों से रचे हुए प्रबंध ही अधिक हैं। इनका विवरण निम्न प्रकार है :—

## ध्रुवपद

कहा जाता है कि ध्रुवपद-गायन का आविष्कार सबसे पहले पन्द्रहवीं शताब्दी में ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर द्वारा हुआ था। उन्होंने स्वयं भी कुछ ध्रुवपदों की रचना की थी। प्राचीन काल में ध्रुवपद में संस्कृत-श्लोकों को गाकर हमारे ऋषि-मुनि भगवान् की आराधना करते थे।

वर्तमान समय में भी ध्रुवपद एक गंभीर और जोरदार गाना माना जाता है। ध्रुवपद के गीत प्रायः हिन्दी, उर्दू एवं ब्रजभाषा में मिलते हैं। यह मर्दानी आवाज़ का गायन है। इसमें वोर, शृंगार और शांत रस प्रधान हैं। 'अनूप संगीत रत्नाकर' में ध्रुवपद की व्याख्या इस प्रकार की है :—

गीर्वाणमध्यदेशीयभाषासाहित्यराजितम् ।

द्विचतुर्वक्ष्यसंपन्नं नरनारीकथाश्रयम् ॥

शृंगाररसभावाद्यं रागालापपदात्मकम् ।

पादांतानुप्रासयुक्तं पादानयुगलं च वा ॥

प्रतिपादं यत्र बद्धमेवं पादचतुष्टयम् ।

उद्ग्राहध्रुवकाभोगांतरं ध्रुवपदं स्मृतम् ॥

अनूप संगीत रत्नाकर



ध्रुवपद में स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग, ये चार भाग होते हैं। ध्रुवपद अधिकतर चौताल, सूलफाक, झंपा, तीव्रा, ब्रह्मताल, रुद्रताल इत्यादि तालों में गाए जाते हैं।

ध्रुवपद में तानों का प्रयोग नहीं होता, किन्तु उसमें दुगुन, चौगुन, बोलतान इत्यादि का प्रयोग किया जाता है।

## ध्रुवपद की चार वाणियाँ

प्राचीन काल में ध्रुवपद-गायकों को 'कलावंत' कहते थे। धीरे-धीरे ध्रुवपद-गायकों के भेद उनकी चार वाणियों के अनुसार किए जाने लगे। उन चार वाणियों के नाम इस प्रकार हैं—१. गोबरहार वाणी अथवा शुद्ध वाणी, २. खंडहार वाणी, ३. डागुर वाणी ४. नोहार वाणी।

'मआदनुलमूसीकी' नामक ग्रंथ के प्रणेता हकीम मुहम्मद करम इमाम ने उक्त चारों वाणियों के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं :—

“अकबर बादशाह के दरबार में उस समय चार महागुणी रहते थे—१. तानसेन, २. ब्रजचन्द ब्राह्मण ( डागुर गाँव के निवासी ), ३. राजा समोखनसिंह वीणाकार (खंडहार नामक स्थान के निवासी), ४. श्रीचंद राजपूत (नोहार के निवासी)। अकबर के समय में इन चारों के द्वारा चार वाणियाँ प्रसिद्ध थीं। तानसेन गौड़ ब्राह्मण होने से उनकी वाणी का नाम 'गौड़ीय' अथवा 'गोबरहारी' पड़ गया। प्रसिद्ध वीणाकार समोखनसिंह की शादी तानसेन की कन्या के साथ होने के कारण उनका नाम नौबाद खाँ निश्चित हुआ। नौबाद खाँ का निवास-स्थान खंडहार था, इसलिए उनकी वाणी का नाम खंडहार-वाणी हुआ। ब्रजचन्द के निवास-स्थान के नामानुसार उनकी वाणी का नाम हुआ डागुर-वाणी। राजपूत श्रीचन्द नोहार के निवासी थे, इसीलिए उनकी वाणी का नाम 'नोहार-वाणी' प्रसिद्ध हुआ।”

## चार वाणियों के प्रधान लक्षण

१. गोबरहार-वाणी : इसका प्रधान लक्षण प्रसाद गुण है, यह शांत रसोद्दीपक है और इसकी गति धीर है।

२. खंडहार-वाणी : वैचित्र्य और ऐश्वर्य-प्रकाश खंडहार-वाणी की विशेषताएँ हैं। यह तीव्र रसोद्दीपक है। गोबरहार-वाणी की अपेक्षा इसमें वेग और तरंगें अधिक होती हैं, किन्तु इसकी गति अति विलंबित नहीं होती।

३. डागुर-वाणी : इसका प्रधान गुण है सरलता और लालित्य। इसकी गति सहज व सरल है। इसमें स्वरों का टेढ़ा और विचित्र काम दिखाया जाता है।



४. नोहार वाणी : 'नोहार' रीति से सिंह की गति का बोध होता है। एक स्वर से दो-तीन स्वरों का लघन करके परवर्ती स्वर में पहुँचना इसका लक्षण है। नोहार-वाणी विशेष रूप से किसी रस की सृष्टि नहीं करती, कुछ-कुछ अद्भुत रसोद्दीपक है।

हम जिसे केवल वाणी या शुद्ध वाणी कहते हैं, वह गोवरहार और डागुर-वाणी का ही नाम-रूपान्तर है। शुद्ध वाणी ही संगीत की आत्मा है और इसी से संगीत की प्रतिष्ठा भी है। संगीत के प्राणस्वरूप जो रस वस्तु है, उसका अविरल झरना शुद्ध वाणी में ही मिलेगा। इसके आनंद का अनुभव वही कर सकता है, जिसने शुद्ध वाणी की रसधारा का रसास्वादन किया है, इसलिए सेनी लोग (तानसेन-वश के गायक-वादक) सर्वदा शुद्ध वाणी के संगीत पर विशेष जोर देते हैं।

संगीत की उक्त चार वाणियों में गोवरहार (गौड़ीय) वाणी को गुणी जनों ने राजा का पद दिया है। डागुर-वाणी को मन्त्री का पद, खंडहार को सेनापति का स्थान और नोहार को सेवक का स्थान दिया है। अपने-अपने स्थान पर प्रत्येक वाणी की एक विशिष्ट महत्ता है। गोवरहार-वाणी का प्रत्येक स्वर अपने सुनिर्दिष्ट रूप में प्रकट होता है। स्पष्टता इस वाणी का प्रधान लक्षण है। डागुर-वाणी में एक स्वर दूसरे स्वर के साथ जिस विचित्रता से मिलता है, उस कारण उसमें एक विचित्र और रहस्यमय भाव उत्पन्न हो जाता है। स्वर को स्पष्ट रूप में व्यक्त न करके श्रोता की कल्पना के अनुसार उसे प्रकट करना पड़ता है। लालित्य और गम्भीरता इन दोनों वाणियों में पर्याप्त रूप से मिलते हैं। खंडहार-वाणी को संस्कृत में 'भिन्ना गीति' कहा गया है। \* इस वाणी में स्वर के भिन्न-भिन्न टुकड़े करके गाते हैं। संभवतः इसी लिए संस्कृत में इसको 'भिन्ना' कहा जाता है। स्वर के खंड-खंड होने के कारण हिन्दी में इसको 'खंडहार-वाणी' कहा गया है। दोनों शब्दों का मूल तात्पर्य एक ही है। स्वर को सरल भाव से प्रकट न करके कुटिल भाव में खंड-खंड करके प्रकट करना ही खंडहार-वाणी की विशेषता है। इस कृत्य में स्वर की मधुरता का नाश नहीं होता, अपितु सूक्ष्म गमक की सहायता से स्वर को आन्दोलित करने पर उसमें मधुरता की और भी वृद्धि होती है, इसलिए उत्तम गुणी गमक की सहायता से खंडहार-वाणी गाते थे। यन्त्र-संगीत में वीणा द्वारा खंडहार-वाणी का

\* गीतयः पञ्च शुद्धा च भिन्ना गौडी च वेसरा ॥

साधारणीति, शुद्धा स्यादवकल्ललितः स्वरः ।

भिन्ना वक्त्रः स्वरः सूक्ष्ममधुरैर्गमकैर्युता ।

गार्हस्त्रिस्थानगमकैरोहाटीललितः स्वरः ।

अखण्डितस्थितिः स्थानत्रये गौडी मठा सताम् ॥

ओहाटी कम्पितमन्दैर्मृदुततरः स्वरः ।

हकारोकारयोगेण हन्यस्ते चित्तुके भवेत् ॥

वेगवद्भिः स्वरैर्वर्णवतुष्केऽप्यतिरक्तितः ।

वेगस्वरा रागगीतिर्वेसरा चोच्यते बुधैः ॥६॥—सं० रत्ना० (रागविवेक० २/३)



सेनी लोग विविध प्रकार से मध्य लय, गमक व जोड़ में उपयोग करते हैं। शुद्ध वाणी की प्रधानता रबाब द्वारा दिखाई जाती थी, क्योंकि रबाब का स्वर सरल होता है। इसमें विलंबित, मध्य और द्रुत, ये त्रिविध आलाप बखूबी दिखाए जा सकते हैं।

वाणी का रहस्य जाननेवाले गायक आजकल शायद ही कोई हों। ध्रुवपद-गायन को प्रचलित हुए पाँचसौ वर्षों से अधिक हो गए, किन्तु इधर लगभग डेढ़सौ वर्षों से ध्रुवपद-गायकी का प्रचार कम हो गया है और खयाल गायन का प्रचार अधिक हो गया है। इतना होते हुए भी संगीतकला-मर्मज्ञों में ध्रुवपद-गायकी को अब भी श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है।

## खयाल

फ़ारसी भाषा में 'खयाल' का अर्थ है—विचार या कल्पना। राग के नियमों का पालन करते हुए अपनी इच्छा या कल्पना से विविध आलाप-तानों का विस्तार करते हुए एकताल, त्रिताल, झूमरा, आड़ा चौताल इत्यादि तालों में गाते हैं। खयालों के गीतों में शृंगार-रस का प्रयोग अधिक पाया जाता है। खयाल की गायकी में जलद तान, गिटकरी इत्यादि का प्रयोग शोभा देता है और स्वर-वैचित्र्य तथा चमत्कार पैदा करने के लिए खयालों में तरह-तरह की तानें ली जाती हैं। खयाल-गायन में ध्रुवपद-जैसी गंभीरता और भक्ति-रस की शुद्धता नहीं पाई जाती।

खयाल दो प्रकार के होते हैं—१. जो विलंबित लय में गाए जाते हैं, उन्हें बहुधा 'बड़े खयाल' कहते हैं २. जो द्रुत लय में गाए जाते हैं, उन्हें 'छोटे खयाल' कहते हैं। गायक जब खयाल गाना आरम्भ करता है, तो पहले विलंबित लय में बड़ा खयाल गाता है, जिसे प्रायः विलंबित एकताल, तीनताल, झूमरा, आड़ा चौताल इत्यादि में गाया जाता है। फिर इसके बाद ही छोटा खयाल मध्य या द्रुत लय में आरम्भ कर देता है, जिसे प्रायः त्रिताल अथवा द्रुत एकताल में गाया जाता है। छोटे-बड़े खयाल जब गायक एक स्थान पर एक समय गाता है, तो ये दोनों ही प्रायः किसी एक ही राग में होते हैं, किन्तु बोल या कविता, दोनों खयालों की अलग-अलग होती हैं। मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले ( सन् १७१६ ) के दरबार में प्रसिद्ध गायक सदारंग ( न्यामत खाँ ) और अदारंग ने हजारों खयाल रचकर अपने शिष्यों को सिखाए, किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि उन्होंने अपने वंशजों को एक भी खयाल नहीं सिखाया और न गाने ही दिया। रामपुर के वजीर खाँ सदारंग के ही वंशज कौर मुहम्मदअली खाँ तानसेन के वंशज थे। वे दोनों ही ध्रुवपद-गायक थे, खयाल-गायक नहीं।

## टप्पा

खयाल-गायकी के बाद टप्पा-गायकी का प्रचार हुआ। यह हिन्दी का शब्द है। शब्दकोश में तो 'टप्पा' के बहुत-से अर्थ मिलेंगे; जैसे—उछाल, कूद, फलाँग,



अंतर, फर्क, तथा एक प्रकार का चलता गाना जो पंजाब से चला है। इसमें से संगीत-विद्यार्थियों के लिए अन्तिम अर्थ ही लेना उचित है। कहा जाता है कि लखनऊ के के नवाब आसिफ़उद्दौल के दरबार में एक पंजाबी रहते थे, जिनका नाम शोरी मियाँ था। इन्होंने ही टप्पा की गायकी का आविष्कार किया।

टप्पा अधिकतर काफ़ी, झिझोटी, बरवा, भैरवी, खमाज इत्यादि रागों में गाया जाता है। इसमें स्थायी और अन्तरा, ये दो भाग होते हैं। टप्पा क्षुद्र प्रकृति की गायकी है। इसमें शृंगार-रस की प्रधानता होती है और इसमें पंजाबी भाषा के शब्द ही अधिकतर पाए जाते हैं। इसकी तानें दानेदार बहुत तैयार लय में गाई जाती हैं। टप्पा की गति बहुत चपल होती है। कुछ विद्वानों का ऐसा भी मत है कि प्राचीन 'वेसरा गीति' से इस गायकी की उत्पत्ति हुई है।

### ठुमरी

जिन रागों में टप्पा गाया जाता है, प्रायः उनमें ही ठुमरी गाई जाती है। इसमें शब्द तो कम होते हैं, किन्तु शब्दों को हाव-भाव द्वारा बताकर गीत का अर्थ प्रकट करना ठुमरी-गायन की विशेषता मानी जाती है। ठुमरी का जन्म लखनऊ के नवाबों के दरबार में हुआ। कहा जाता है कि इसके आविष्कारक गुलामनबी, शोरी के घराने के लोग ही थे। ठुमरी अधिकतर पंजाबी त्रिताल में ही गाई जाती है। इसकी गति अति द्रुत नहीं होती।

लखनऊ और बनारस ठुमरी के लिए प्रसिद्ध हैं। बनारसी ठुमरी में सुन्दरता और मधुरता अधिक पाई जाती है। ठुमरी में प्रायः राग की शुद्धता की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। अनेक गायक ठुमरी गाते समय भिन्न-भिन्न रागों के स्वरों का मिश्रण करके उसे सुन्दर बनाने का प्रयत्न करते हैं। महाराष्ट्र में ठुमरी को विशेष आदर या प्रेम की दृष्टि से नहीं देखा जाता; क्योंकि महाराष्ट्र में राग-नियमों का पालन कुछ सख्ती से किया जाता है। संभवतः इसी लिए वहाँ ठुमरी का महत्त्व नहीं है; फिर भी ठुमरी का गायन किसी प्रकार उपेक्षित नहीं है और उसे उत्तर-प्रदेश में विशेष सम्मान प्राप्त है।

### तराना

यह भी खयाल के प्रकार की एक गायकी है। इसमें गीत के बोल ऐसे होते हैं, जिनका कोई अर्थ नहीं होता; जैसे—ता ना दा रे, तदारे, ओदानी, दीम, तनोम इत्यादि। तराने में भी स्थायी और अन्तरा, ये दो भाग होते हैं। तानों का प्रयोग भी इसमें होता है।

तराने में राग, ताल और लय का ही आनन्द है। प्राचीन काल में तराना को 'स्तोभ गान' के नाम से जाना जाता था। स्तोभाक्षरों को शुष्काक्षर कहा जाता था जिनका कोई अर्थ तो नहीं होता था परन्तु वे ओंकार की ध्वनि के वाचक होते थे और गायन में वाद्ययंत्र का आनन्द भी देते थे।



तरानों का गायन मनोरंजक माना जाता है। बहादुरहुसैन खाँ, नत्थू खाँ तथा वर्तमान काल में निसार हुसैन खाँ, पं० विनायक राव पटवर्धन और पं० कृष्णराव इत्यादि के तराने विशेष प्रसिद्ध हुए हैं।

## तिरवट या त्रिवट

यह भी तराने की तरह गाया जाता है, किन्तु तराने से तिरवट की गायकी कुछ कठिन है। किसी तराने में जब मृदंग के बोलों का भी प्रयोग किया जाता है तो ऐसे तरानों को त्रिवट के नाम से जाता है। इसे सभी रागों में गाया जा सकता है। वर्तमान समय में तिरवट गायकी का प्रचार कम हो गया है।

## होरी-धमार

जब 'होरी' नाम के गीत को धमार ताल में गाते हैं, तो उसे 'धमार' कहा जाता है। धमार-गायन में प्रायः ब्रज की होली का वर्णन रहता है। धमार में दुगुन, चौगुन, बोलतान, गमक इत्यादि का प्रयोग होता है, अतः कठिन गायकी है। धमार के गायकों को स्वर, ताल और राग का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। प्रायः देखा जाता है कि धमार में खयाल के समान तानें नहीं ली जातीं।

## गज़ल

गज़ल अधिकतर उर्दू या फ़ारसी भाषा में होती है। इसके अधिकांश गीतों में आशिक-माशूक का वर्णन पाया जाता है, इसलिए यह शृंगाररस-प्रधान गायकी है। गज़ल रूपक, पश्तो, दीपचन्दी, दादरा, कहरवा तालों में गाई जाती है। वे ही गायक गज़ल गाने में सफल होते हैं, जिन्हें उर्दू-हिन्दी का अच्छा ज्ञान है और जिनका शब्दोच्चारण शुद्ध है। गज़ल की अनेक तर्जें हैं। वर्तमान समय में फिल्मों के द्वारा गज़ल और गीत का प्रचार बहुत हुआ है।

## कव्वाली

कव्वाली मुसलिम-समाज की स्तुतिपरक गायकी है। इसमें अधिकतर फ़ारसी और उर्दू भाषा का प्रयोग होता है। स्थायी-अंतरा के अतिरिक्त इसके बीच-बीच में 'शेर' भी होते हैं। हिन्दुओं में भी कव्वाली का प्रचार पाया जाता है। इसके गानेवाले 'कव्वाल' कहलाते हैं। किसी विशेष अवसर पर रात-रात भर कव्वालियाँ होती हैं। कव्वाली के साथ ढोलक बजती हुई अधिक देखी जाती है, साथ-साथ हाथों से तालियाँ भी बजती हैं। रूपक, पश्तो तथा कव्वाली तालों का इसमें विशेष प्रयोग होता है।

## दादरा

'दादरा' एक ताल का भी नाम है, किन्तु एक विशेष गायकी को भी 'दादरा' कहते हैं। इसकी चाल गज़ल से कुछ मिलती-जुलती होती है। मध्य तथा द्रुत लय में दादरा अच्छा मालूम पड़ता है। इसमें प्रायः शृंगार-रस के गीत होते हैं।



## सादरा

इस गाने की लय भी दादरा से बहुत मिलती जुलती रहती है। सादरा को अधिकतर कथक गायक एवं वेश्याओं में प्रचलित रहा है। इसमें कहरवा, रूपक, झप ताल तथा दादरा, इन तालों का प्रयोग होता है। ठुमरी-गायक 'सादरा' भली प्रकार गा लेते हैं। इसके गीतों में शृंगार-रस ही अधिक मिलता है।

## खमसा

'खमसा' गाने का प्रचार मुसलमानों में अधिक पाया जाता है। इसके गीतों में उर्दू भाषा का प्रयोग ही मिलेगा। खमसा की गायकी क़वाली से मिलती-जुलती होती है।

## लावनी

'चंग' (एक प्रकार का ताल-वाद्य) बजा-बजाकर कई आदमी मिलकर (या अकेला व्यक्ति) 'लावनी' गाते हैं। इसमें शृंगार तथा भक्ति-रस के गीत होते हैं और कहरवा ताल का प्रयोग होता है।

## चतुरंग

१. खयाल, २. तराना, ३. सरगम, ४. त्रिवट—ऐसे चार अंग जिस गीत में सम्मिलित होते हैं, उसे 'चतुरंग' कहते हैं। पहले भाग में गीत के शब्द, दूसरे में तराने के बोल, तीसरे में किसी राग की सरगम और चौथे भाग में मृदंग के बोलों की एक छोटी-सी परन रहती है। चतुरंग को खयाल की तरह गाते हैं, किन्तु इसमें तानों का प्रयोग खयाल की अपेक्षा कम होता है।

## सरगम

रागबद्ध व तालबद्ध स्वर-रचना-विशेष को 'सरगम-गीत' कहते हैं। इसमें किसी प्रकार की कविता नहीं होती; केवल स्वर ही होते हैं। सरगम-गीत भिन्न-भिन्न रागों व तालों में निबद्ध होते हैं। इनको गाने से विद्यार्थियों को स्वर-ज्ञान तथा राग-ज्ञान में बहुत सहायता मिलती है।

## रागमाला

जब एक गीत में कई रागों का वर्णन आता है और उस गीत की एक-एक पंक्ति में एक-एक राग के स्वर लग जाते हैं तथा उस राग का नाम भी आ जाता है, तो ऐसी रचना को 'रागमाला' कहते हैं।

## लक्षण-गीत

कोई गीत जब किसी राग में गाया गया हो और उस गीत के शब्दों में उस राग के वादी-संवादी या वर्जित स्वरों का वर्णन किया गया हो, तो उसे 'लक्षण-गीत' कहते हैं। लक्षण-गीत से राग-संबंधी अनेक बातें सरलतापूर्वक याद हो जाती हैं।



## भजन-गीत

जिस प्रकार उर्दू भाषा के शब्दों से गज़लें तैयार होती हैं, उसी प्रकार हिन्दी-शब्दावली से पद, भजन या धार्मिक गीतों की रचना होती है। ईश्वर-स्तुति या भगवान् की लीला का वर्णन भजनों में किया जाता है। भजन को किसी एक राग में बाँध कर भी गाते हैं और ऐसे भी भजन हैं, जो किसी विशेष राग में न होकर मिश्रित राग-स्वरों द्वारा तैयार हुए हैं। भजन अधिकतर कहरवा, दादरा, धुमाली, रूपक एवं तीनताल जैसी तालों में गाए जाते हैं।

## कीर्तन

भगवान् के गुणानुवाद से युक्त गीत या शब्दों को झाँझ, करताल व मृदंग-तबला इत्यादि वाद्यों के साथ जब गाते हैं, तो उसे 'कीर्तन' कहते हैं।

## गीत

ईश्वर-प्रार्थना या भगवान् की लीला संबंधी पदों को छोड़कर जो साहित्यिक रचनाएँ ऐसी होती हैं जो कि किसी ताल में बाँधकर गाई जा सकें, उन्हें 'गीत' कहते हैं। इनमें भाव की प्रधानता रहती है। गीतों में शृंगार और करुण रस अधिक पाया जाता है। गीतों में किसी प्रकार का स्वर-विस्तार या तानों का प्रयोग नहीं होता। आकाशवाणी तथा फ़िल्मों द्वारा गीत व भजनों का यथेष्ट प्रचार हुआ है।

## कजली (कजरी)

'कजली' गीतों में वर्षा-ऋतु का वर्णन, विरह-वर्णन तथा राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन अधिकतर मिलता है। कजली की प्रकृति क्षुद्र है। इसमें शृंगार-रस प्रधान है। मिर्जापुर और बनारस में कजली गाने का प्रचार अधिक पाया जाता है।

## चैती

होली के बाद जब चैत का महीना आरम्भ होता है, तब 'चैती' गाई जाती है। इसके गीतों में भगवान् राम की लीलाओं का वर्णन रहता है। पूर्व बिहार की ओर इसका प्रचार अधिक है। इसमें अधिकतर पूर्वी भाषा का प्रयोग होता है। ठुमरी-गायक 'चैती' भली प्रकार गा सकते हैं।

## लोक-गीत

लोक-गीत उन्हें कहते हैं, जो विशेषतः घर-गृहस्थी के मांगलिक अवसरों तथा विशेष त्योहारों या उत्सवों पर नर-नारियों द्वारा नगरों तथा गाँवों में अपनी-अपनी प्रांतीय या ग्रामीण भाषाओं में गाए जाते हैं। लोकगीतों के द्वारा हमें अपनी संस्कृति से परिचित होने का अवसर मिलता है। परम्परागत रूप से जो धुनें चलती आई हैं, वे सब हमारी धरोहर हैं। यहाँ पर हम लोक-गीतों के कुछ प्रकार पाठकों की जानकारी के लिए दे रहे हैं :—



१. घोड़ी : बन्ना, ज्योनार, जनेऊ, भात, मांडवा, गारी आदि लोक-गीत उत्तर-प्रदेश में ब्रज-भूमि की ओर विशेष रूप से प्रचलित हैं, जिन्हें महिलाएँ विवाहादि के अवसरों पर मिलकर गाती हैं।

२. बिरहा : यह गीत यादवों (ग्वाल-वंश) में प्रचलित है। विवाह के अवसर पर कन्या-पक्ष के व्यक्ति वर-पक्ष के यहाँ जाकर नगाड़े के साथ विभिन्न पैतरेबाजी दिखाते हुए रात-भर 'विरहा' या 'बिरहा' गाते हैं।

३. निबंही : सावन में खेत निराते समय ये गीत गाए जाते हैं।

४. चंदेनी : यह ग्वालों (यादवों) का गीत है। प्रायः देहातों में ग्वाले लोग इसे गाते हैं।

५. सोहर : यह गीत प्राचीन समय से ही महिलाओं में प्रचलित है, जो बच्चा पैदा होने के अवसर पर गाया जाता है। पहले तो 'सोहर' केवल ढोलक के साथ ही गाए जाते थे, किन्तु आजकल शहरों में हारमोनियम और ढोलक के साथ भी महिलाएँ 'सोहर' गाने लगी हैं।

६. झूमर : यह गीत कई प्रकार का होता है; जैसे विरहा का झूमर, जिसे यादव, निषाद या खटीक लोग अधिक गाते हैं। दूसरा कजली का झूमर, वर्षा-ऋतु में गाया जाता है और तीसरे प्रकार का झूमर शीतला देवी की पूजा के समय गाया जाता है।

७. नऊआ भक्कड़ : यह नाइयों का गीत है। विवाह-शादी के अवसर पर कई व्यक्ति मिलकर इसे गाते हैं; साथ-साथ झाँझ-खंजरी भी बजाते रहते हैं।

८. आल्हा : 'आल्हा-ऊदल' की ऐतिहासिक लड़ाई का वर्णन एक विशेष प्रकार की तर्ज में बाँधकर गाया जाता है, उसी को 'आल्हा' कहते हैं। 'आल्हा' सुनकर ग्रामीणों में जोश भर जाता है।

९. बारहमासी : विरह-प्रेम तथा भगवान् राम और कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते हुए बारहों महीनों के नाम जिस गीत में आ जाते हैं, उसे 'बारहमासी' कहते हैं। इसे स्त्रियाँ तथा पुरुष, सभी गाते हैं। 'बारहमासी' ढोलक के साथ भी गायी जाती है। बिना ताल के भी इसे गाते हैं।

१०. सावनी : वर्षा-ऋतु में जब सावन का महीना आता है, तो उसमें झूले के गीत, हिंडोले के गीत, मल्हार, निहालदे इत्यादि गाए जाते हैं। वे 'सावनी' गीत कहलाते हैं।

११. मांड : ये राजपूताना, मारवाड़ की ओर के देशी गीत हैं। इन्हें अब इधर के लोग भी गाते देखे गए हैं।

इनके अतिरिक्त विभिन्न प्रांतों में वहाँ की परम्परा और संस्कृति के अनुसार के बहुत-से और भी लोक-गीत गाए जाते हैं। भारत के सभी लोक-गीतों का उल्लेख किया जाए, तो एक विशाल ग्रंथ ही तैयार हो जाएगा।



# प्राचीन आलाप-तान तथा अन्य परिभाषाएँ

## स्वस्थान

प्राचीन समय में आलाप करने के एक विशेष नियम को 'स्वस्थान' कहते थे। 'संगीत रत्नाकर' ग्रंथ में स्वस्थानों का उल्लेख इस प्रकार मिलता है :—

यत्रोपवेश्यते रागः स्वरे स्थायी स कथ्यते ।  
ततश्चतुर्थो द्व्यर्धः स्यात् स्वरे तस्मादधस्तने ॥  
चालानां मुखचालः स्यात् स्वस्थानं प्रथमं च तत् ।  
द्व्यर्धस्वरे चालयित्वा न्यसनं तद्वितीयकम् ॥  
स्थायिस्वरादष्टतस्तु द्विगुणः परिकीर्तितः ।  
द्व्यर्धद्विगुणयोर्मध्ये स्थिता अर्धस्थितस्वराः ॥  
अर्धस्थिते चालयित्वा न्यसनं तु तृतीयकम् ।  
द्विगुणे चालयित्वा तु स्थायिन्यासान्चतुर्थकम् ॥  
एभिश्चतुर्भिः स्वस्थानैः रागालप्तिर्भवेत् सताम् ।

उक्त श्लोकों का भावार्थ यह है कि अंश स्वर पर ही समस्त राग निर्भर रहता है। उसे ही स्थायी स्वर कहते हैं। स्थायी स्वर से चौथा स्वर द्व्यर्ध कहलाता है, आठवाँ द्विगुण कहा जाता है तथा द्विगुण और द्व्यर्ध स्वरों के बीच में जो स्वर हैं, वे अर्धस्थित स्वर माने जाएँगे। प्रथम स्वस्थान में गायक को अपना आलाप द्व्यर्ध स्वर के नीचे रखना आवश्यक होता था। इससे वह मंद्र-सप्तक में इच्छानुसार विस्तार कर सकता था। परन्तु न्यास स्थायी स्वर पर ही किया जाता था।

आलाप के दूसरे स्वस्थान-नियम में द्व्यर्ध स्वर भी सम्मिलित कर लिया जाता था और आलाप का अंत पुनः स्थायी स्वर पर ही किया जाता था।

आलाप के तीसरे स्वस्थान-नियम में आलाप का क्रम अर्धस्थित स्वरों में होता था। परन्तु आलाप की समाप्ति सदैव स्थायी स्वर पर ही की जाती थी। आलाप के



चौथे स्वस्थान-नियम में द्विगुण स्वर तथा उससे ऊपर के स्वर भी सम्मिलित कर लिए जाते थे। परन्तु न्यास पुनः स्थायी-स्वर पर ही होता था। इस प्रकार आलाप के चार स्वस्थान-नियम माने जाते थे। प्रत्येक गायक को उपर्युक्त विधि से ही आलाप-गायन में स्वस्थान क्रमों के नियमों का पालन करना पड़ता था। मनमाने ढंग से ही, चाहे जिस स्थान से आलाप प्रारम्भ करके चाहे जहाँ न्यास करने की आज्ञा उस समय नहीं थी।

### रूपकालाप

प्राचीन आलाप-पद्धति का यह एक दूसरा प्रकार माना जाता था, जिसे 'रूपकालाप' कहते थे। यह आलाप का एक और विशेष भेद है, जिसके लिए कहा गया है :—

**रूपकं तु तद्वदेव पृथग्विदारिकम् ।**

रूपकालाप में प्रबन्ध के धातु के समान, आलाप के भिन्न-भिन्न भाग करके गायक को दिखाने पड़ते थे। इन भागों में जो अंतिम स्वर आते थे, उन्हें 'अपन्यास' कहा जाता था।

रागालाप करने समय श्रोताओं के सम्मुख आलाप की व्याख्या करते हुए गायक यह भी बताते थे कि हम अमुक राग गा रहे हैं, किन्तु रूपकालाप में कुछ बताने-कहने की आवश्यकता नहीं थी। वह तो श्रोताओं को स्वतः ही प्रत्यक्ष प्रबन्ध के समान दिखाई देता था। रूपकालाप शब्दहीन होता था, अर्थात् उसमें बोल या ताल इत्यादि नहीं होते थे। इस प्रकार रागालाप की अपेक्षा रूपकालाप को विशेष महत्त्व प्राप्त था और इसे रागालाप की अगली सीढ़ी माना जाता था।

### आलप्ति-गान

रागालाप और रूपकालाप से आगे बढ़ने पर 'आलप्ति' की वारी आती थी। आविर्भाव और तिरोभाव करते हुए राग को पूर्ण रूप से प्रदर्शित करना ही 'आलप्ति-गान' कहलाता है।

### आविर्भाव-तिरोभाव

किसी राग का विस्तार करते समय उसके बीच में अन्य समप्राकृतिक रागों के छोटे-छोटे टुकड़े दिखाकर, थोड़ी देर के लिए मुख्य राग को छिपाने का उपक्रम जब किया जाता है, तो उसे 'तिरोभाव' कहते हैं, और फिर मुख्य राग-स्वरों को कुशलतापूर्वक दिखाकर राग-रूप स्पष्ट करने को 'आविर्भाव' कहते हैं। इसे एक उदाहरण से इस प्रकार समझना चाहिए; जैसे गायक वसंत राग गा रहा है और गाते-गाते उसमें निषाद पर न्यास करके परज राग की छाया दिखाने लगे, तो उसे 'तिरोभाव' कहेंगे। फिर वसंत के स्वरों की मुख्य पकड़ लगाकर वसंत को स्पष्ट कर दिया जाए, तो 'आविर्भाव' कहा जाएगा। ये भाव अत्यन्त मनोरंजक होते हैं, जिन्हें राग-गायन के बीच में या गायन-समाप्ति पर भी प्रायः कुशल गायक दिखाते हैं।



## स्थाय

छोटे-छोटे स्वर-समुदायों को 'स्थाय' कहते हैं; जैसे 'सा नि ध नि सा, म, ग म, ग' रे सा स्वर-समुदाय को आप बागेश्री की पकड़ कह सकते हैं। परन्तु अब कुछ ऐसे छोटे-छोटे स्वर-समुदाय देखिए, जो बागेश्री की पकड़ नहीं हैं, परन्तु फिर भी इस राग को स्पष्ट करते हैं। जैसे—'ग म ध' या 'म ध नि ध, म' अथवा 'सां नि ध नि ध' या 'म प ध ग, म ग' रे सा नि ध' आदि स्वर-समुदाय पकड़ नहीं हैं, वरन् राग के रूप को स्पष्ट करते हैं। अतः इन सब छोटे-छोटे स्वर-समुदायों को 'स्थाय' कहा जाएगा।

## मुखचालन

रागोचित विविध गमक-अलंकारों का प्रयोग करते हुए गायन-वादन करने को 'मुखचालन' कहते हैं।

## आक्षिप्तिका

स्वर, शब्द और ताल की सहायता से जो रचना तैयार होती है, उसे प्राचीन पंडित 'आक्षिप्तिका' कहते थे; जैसे खयाल, ध्रुवपद, धमार इत्यादि आक्षिप्तिकाएँ निबद्ध गान की ही श्रेणी में आती हैं।

## निबद्ध-अनिबद्ध गान

जो रचनाएँ नियमानुसार स्वर-ताल में बँधी हुई होती हैं, वे सब 'निबद्ध गान' के अन्तर्गत आती हैं। इसके तीन प्रकार हैं—१. प्रबन्ध, २. वस्तु, ३. रूपक। इनके विभिन्न भागों को 'धातु' कहा जाता है। धातु के भी पाँच नाम हैं—१. उदग्राह, २. ध्रुव, ३. मेलापक, ४. अंतरा, ५. आभोग। जो रचना स्वरों में तो बँधी हुई हो, किन्तु ताल में न हो, वह 'अनिबद्ध गान' के अन्तर्गत आती है। इसमें रागालाप, रूपकालाप, आलक्षितगान तथा स्वस्थान-नियमों का आलाप-गायन, ये सब आते हैं; क्योंकि इनमें ताल का प्रयोग नहीं होता।

## विदारी

गीत तथा आवाजों में विभिन्न छोटे-छोटे भागों को ही 'विदारी' कहते हैं। निबद्ध गान के अंतर्गत जो उदग्राह, ध्रुव, मेलापक, अंतरा और आभोग ऊपर बताए जा चुके हैं, वे सब विदारी की श्रेणी में ही आ जाते हैं। विदारी में जब अन्तिम स्वर आते हैं, तो वे हो न्यास, अपन्यास कहलाते हैं।

## अल्पत्व

अल्पत्वं च द्विधाप्रोक्तमनभ्यासाच्च लघनात् ।

अनभ्यासस्त्वनंशेषु प्रायो लोप्येवपीड्यते ॥



रागों में अल्पत्व और बहुत्व का एक महत्वपूर्ण स्थान है। 'अल्पत्व' का अर्थ है 'कमी के साथ' और बहुत्व माने 'ज्यादा तादाद में'। जब किसी राग में किसी स्वर का महत्व कम दिखाकर राग-विस्तार में उसका उपयोग कमी के साथ किया जाता है, तो उसे 'अल्पत्व' कहते हैं। इसका प्रयोग दो प्रकार से किया जाता है—१. लंघन से, २. अनभ्यास से। लंघन द्वारा जब अल्पत्व दिखाया जाएगा, तो आरोह या अवरोह में वह स्वर छोड़ दिया जाएगा; जैसे शुद्धकल्याण में निषाद का अल्पत्व है तो उसे आरोह में छोड़ देते हैं या लाँच जाते हैं। यह प्रयोग लंघन से हुआ और इस प्रकार आशेह में उनका अल्पत्व माना जाएगा। अनभ्यास द्वारा अल्पत्व इस प्रकार होता है कि किसी राग में कोई स्वर कम प्रमाण में प्रयोग किया जाए और उस पर बार-बार अभ्यास न किया जाए और न उस स्वर पर अधिक देर तक ठहरा ही जाए; जैसे भीमपलासी में 'ध' और 'रे' का अनभ्यास-अल्पत्व है। प्रायः इस श्रेणी में वर्जित या विवादी स्वर आते हैं और उनका अल्प उपयोग कुशलतापूर्वक अनभ्यास-अल्पत्व के द्वारा ही विवादी स्वर के नाते किया जाता है।

### बहुत्व

यह दो प्रकार से दिखाया जाता है—अलंघन और अभ्यास से। अलंघन द्वारा बहुत्व इस प्रकार माना जाएगा कि किसी राग के आरोह या अवरोह में उस स्वर को छोड़ा न जाए, अर्थात् उसे लाँचा न जाए और उसपर अधिक रुका भी न जाए; जैसे कालिंगड़ा में मध्यम स्वर छोड़ा नहीं जाता, किन्तु उसपर अधिक देर तक रुकते भी नहीं, अर्थात् केवल अलंघन द्वारा ही उसका बहुत्व दिखाते हैं। अभ्यास द्वारा बहुत्व दिखाना उसे कहते हैं, जब किसी स्वर को बार-बार और देर तक दिखाया जाता है, जैसे हमीर में धैवत का प्रयोग अभ्यासमूलक बहुत्व माना जाएगा। प्रायः राग के वादी या संवादी स्वर का ही अभ्यासमूलक बहुत्व दिखाया जाता है, किन्तु किसी-किसी राग में अन्य स्वर का भी बहुत्व देखने में आता है। 'संगीत रत्नाकर' का भी यही आशय प्रतीत होता है :—

अलंघनात्तथाऽभ्यासाद्बहुत्वं द्विविधं मतम् ।

पर्यायांशे स्थितं तच्च वादिसंवादिनोरपि ॥

—संगीत रत्नाकर

**भावार्थ**—स्वरों को अलंघन और अभ्यास, दो प्रकार से बहुत्व दिया जाता है। यह बहुत्व प्रायः वादी-संवादी स्वर को तो मिलता ही है, किन्तु कभी-कभी राग के किसी दूसरे 'पर्याय-अंश' स्वर को भी यह बहुत्व दिया जाता है।

### पकड़

स्वरों का एक ऐसा समूह, जिससे राग का स्वरूप व्यक्त होता है, अर्थात् जिन स्वरों के समूह से राग पहचाना जा सकता है, उसे 'पकड़' कहते हैं। प्रत्येक राग को पहचानने के लिए अलग-अलग पकड़ होती है, उदाहरणार्थ राग यमन की पकड़ यह है—नि रे ग रे, सा, पमंग, रे, सा। केवल इतने स्वर-समुदाय से तुरन्त ही मालूम



हो जाएगा कि यह राग यमन का स्वरूप है। इस प्रकार अच्छे गायक आरोहावरोह के पश्चात् राग की पकड़ दिखाकर राग-रूप स्पष्टतया व्यक्त कर देते हैं।

**मीड़** किसी एक स्वर से आगे या पीछे के दो, तीन या अधिक स्वरों पर ध्वनि को

बिना खंडित किए गाने या बजाने को 'मीड़' कहते हैं। जैसे प ध नि सां' यहाँ पर पंचम से लेकर तार-षड्ज तक की 'मीड़' दिखाई गई है, तो इसे गाने में 'प' से 'सां' तक कोमलता से इस प्रकार गाना चाहिए कि बीच के दोनों स्वर 'ध-नि' बोल भी जाएँ और आवाज़ टूटने भी न पाए।

**सूत** 'सूत' और 'मीड़' में केवल इतना ही अंतर है कि मीड़ का प्रयोग गाने में या सितार इत्यादि मिज़राब वाले साजों में होता है और सूत का प्रयोग गज़ से बजनेवाले साजों—जैसे सारंगी, दिलरुबा, वाँयलिन इत्यादि में होता है। तरीका वही है, जो मीड़ का है।

**आंदोलन**

स्वरों के हिलने या कंपन को 'आंदोलन' कहते हैं। स्वरों के हिलने या उनके कंपन से ही आंदोलन संख्या नापी जाती है।

**गमक**

आंदोलन के द्वारा जब स्वरों में कंपन पैदा होता है, तो उसका गंभीरता-पूर्वक उच्चारण करना ही 'गमक' कहलाता है जैसे स अ अ अ रे ए ए ए ग अ अ अ इत्यादि।

**कण**

किसी स्वर का उच्चारण करते समय उसके आगे या पीछे के किसी स्वर को नि

कुछ छूने या उसका स्पर्श करने को 'कण' कहते हैं; जैसे सां। यहाँ पर निषाद का ज़रा-सा स्पर्श करके 'सा' पर आना है, अतः इसे 'सां' पर निषाद का 'कण' कहेंगे।

**तान**

स्वरों का वह समूह, जिसके द्वारा राग-विस्तार किया जाता है, 'तान' कहलाता है; जैसे—'सा रे ग म, ग रे सा' अथवा 'सां नि ध प म ग रे सा' इत्यादि। स्वरों को तानने या फैलाने से ही 'तान' शब्द की उत्पत्ति हुई है। तानों के निम्न लिखित प्रकार हैं—

**शुद्ध तान**

जिस तान में स्वरों का क्रम एकसा हो और आरोह-अवरोह सीधा-सीधा हो, उसे 'शुद्ध तान' कहते हैं; जैसे—'सा रे ग म प ध नि सां' 'सां नि ध प म ग रे सा।' इसे 'सपाट तान' भी कहते हैं।

संगीत-विचार



## कूट तान

जिस तान में स्वरों का क्रम या सिलसिला स्पष्ट प्रतीत न हो, उसे 'कूट तान' कहेंगे। यह हमेशा टेढ़ी-मेढ़ी चलती है; जैसे—'सारे ग रे ध प म प रे ग म प ध सां ध प' इत्यादि।

## मिश्र तान

'शुद्ध तान' और 'कूट तान', इन दोनों का जिसमें मिलाप या मिश्रण हो, उसे 'मिश्र तान' कहेंगे; जैसे—'प ध नि सां ग म प ध ध प म प ग म रे सा'। इसमें 'कूट तान' और 'शुद्ध तान' दोनों मिली हुई हैं।

## खटके की तान

स्वरों पर धक्का लगाते हुए तान ली जाए, तो उसे 'खटके की तान' कहेंगे।

## झटके की तान

जब तान दुगुनी चाल में जा रही हो और यकायक बीच में चौगुन की चाल में जाने लगे, तो उसे 'झटके की तान' कहेंगे; जैसे—'सा रे ग म प ध नि सां नि ध प म' सारे ग म प ध नि सां नि ध प म गरेसानि'।

## वक्र तान

यह 'कूट तान' के ही समान होती है। वक्र का अर्थ है टेढ़ा, अर्थात् जिसकी चाल सीधी न हो, जिसमें स्वरों का कोई क्रम न हो।

## अचरक तान

जिस तान में प्रत्येक दो स्वर एकसे बोले जाएँ; जैसे—'सासा रेरे गग मम पप धध'। इसे 'अचरक की तान' कहेंगे।

## सरोक तान

जिस तान में चार-चार स्वर एकसाथ सिलसिलेवार कहे जाएँ; जैसे—'सारेगम रेगमप गमपध मपधनि'। इसे 'सरोक तान' कहेंगे।

## लड़ंत तान

जिस तान में सीधी-आड़ी कई प्रकार की लय मिली हुई हों तो उसे 'लड़ंत तान' कहते हैं; जैसे—'नि सा नि सा रे रे रे रे नि ध नि ध सा सा सा सा' इत्यादि। इन तानों में गायक और वादक की लड़ंत बड़ी मज्जेदार होती है।

## सपाट तान

जिस तान में क्रमानुसार स्वर तेजी के साथ जाते हों, उसे 'सपाट तान' कहते हैं; उदाहरणार्थ—'मपधनि सारेगम पधनिसां रेंगंमप' इत्यादि।



## गिटकरी तान

दो स्वरों को एकसाथ शीघ्रता से एक के पीछे दूसरा लगाते हुए यह तान ली जाती है; जैसे—'निःसा निःसा सारे सारे रेग रेग गम गम मप मप पध पध निःसां निःसां' इत्यादि ।

## जबड़े की तान

कंठ के अंतस्तल से आवाज निकालकर जबड़े की सहायता से जब तान ली जाती है, तो उसे 'जबड़े की तान' कहते हैं । यह मुश्किल होती है और सुलझे हुए गायक ही ऐसी तान प्रस्तुत करने में समर्थ होते हैं ।

## हलक-तान

जीभ को क्रमानुसार भीतर-बाहर ले जाते हुए 'हलक-तान' ली जाती है ।

## पलट-तान

किसी तान को लेते हुए अवरोह करके लौट आने को 'पलट-तान' या 'पलटा-तान' कहते हैं; यथा—सान्निधप मगरेसा ।

## बोल-तान

जिन तानों में तान के साथ-साथ गीत के बोल भी मिलाकर विलंबित, मध्य और द्रुत, आवश्यकतानुसार ऐसी तीन लयों में गाए जाते हैं, वे 'बोल-तान' कहलाती हैं; जैसे—गम रेसा मंध मप

गुनि जन गाऽ वत

## आलाप

गायक जब अपना गाना आरंभ करता है, तो राग के अनुसार उसके स्वरों को विलंबित लय में फैलाकर यह दिखाता है कि कौन सा राग गा रहा है । आलाप को स्वर-विस्तार भी कहते हैं; जैसे—बिलावल का स्वर-विस्तार इस प्रकार शुरू करेंगे—'ग ऽ, रे ऽ, सा ऽ सा, रे सा ऽ ग ऽ म ग प ऽ म ग, म रे, सा ऽ ऽ ऽ' इत्यादि ।

## बढ़त

जब कोई गायक, गाना गाते समय एक-एक या दो-दो स्वरों को लेते हुए या छोटे-छोटे स्वर-समुदायों से बढ़ते हुए बड़े-बड़े स्वर-समुदायों पर आकर लय को धीरे-धीरे बढ़ाता है और फिर 'बोल-तान' गमक इत्यादि का प्रयोग करता है, तब उसे 'बढ़त' कहते हैं ।



## सामवेदकालीन संगीत

वैदिक युग भारत के सांस्कृतिक इतिहास में प्राचीनतम माना जाता है। इस युग में चार वेदों का विस्तार हुआ जिनके नाम हैं—‘ऋग्वेद’, ‘यजुर्वेद’, ‘अथर्ववेद’ और ‘सामवेद’। इनमें ‘ऋग्वेद’ विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ है जिसमें संगृहीत मंत्रों को ‘ऋक्’ या हिन्दी में ‘ऋचा’ कहते हैं। सभी मंत्र छन्दोबद्ध हैं जिनमें विभिन्न देवताओं की स्तुतियाँ उपलब्ध होती हैं। ‘यजुर्वेद’ छन्दोबद्ध नहीं है तथा उसमें यज्ञों का विधान है। ‘अथर्ववेद’ में सुखमूलक एवं कल्याणप्रद मंत्रों का संग्रह तथा तांत्रिक विधान दिया है। ‘सामवेद’ मंत्रों का गेय रूप है। ‘ऋग्वेद’ को अन्य वेदों का मूल बताया गया है।

जब किसी वाक्य का स्वरहीन उच्चारण किया जाता है तो उसे ‘वाचन’ कहते हैं। यदि वाक्य में ध्वनि ऊँची-नीची तो हो लेकिन स्वर अपने ठीक स्थान पर न लगें तो इस क्रिया को ‘पाठ’ कहते हैं और जब किसी वाक्य को इस ढंग से गाया जाए कि उसमें ‘स्वर’ अपने ठीक-ठीक स्थान पर लगें तो उस क्रिया को ‘गान’ कहते हैं। इसीलिए संगीत के विद्यार्थी को बताया जाता है कि संगीत का मूल ‘सामवेद’ (‘ऋग्वेद’ का गेयरूप) है। वेद का ‘पाठ्य’ रूप उन लोगों के लिए उपयोगी है, जो नाट्य के विद्यार्थी हैं। ‘पाठ्य’ का मूल ‘ऋग्वेद’, ‘गीत’ का मूल ‘सामवेद’, ‘अभिनय’ का मूल ‘यजुर्वेद’ तथा ‘रसों’ का मूल ‘अथर्ववेद’ में है।

‘ऋग्वेद’ में गीत के लिए गीर, गातु, गाथा, गायत्र, गीति तथा साम शब्दों का प्रयोग पाया जाता है। ‘ऋग्वेद’ की ऋचाएँ स्वरावलियों में निबद्ध होने पर ‘स्तोत्र’ कहलाती हैं। ‘गीत’ के चार अंग बताए गए हैं—‘स्वर’, ‘पद’, ‘ताल’ और ‘मार्ग’। षड्ज इत्यादि स्वरों को ‘स्वर’ कहते हैं तथा अकारादि स्वरों से युक्त व्यंजनों का सार्थक या अर्थहीन समूह ‘पद’ कहलाता है। विशिष्टविभाग सहित भाषाओं की आवृत्ति को ‘ताल’ कहते हैं और द्रुत, मध्य या विलंबित लय से युक्त प्रकार ही ‘मार्ग’ कहलाता है। इसीलिए संगीत के विद्यार्थी को सामवेद में क्रमशः स्वरों, पदों, तालों और मार्गों का बीज खोजना होगा।



यह ध्यान में रखना चाहिए कि मूलतः 'सामगान' में ग्राम-विभाग नहीं हैं। सामगान से 'गांधर्व' का विकास हो चुकने के बाद सामगान करने वालों ने 'गांधर्व' की मूर्च्छनाओं का प्रयोग भी सामगान में करना आरम्भ कर दिया। अस्तु, हमें षड्ज-ग्रामीय स्वरों का मूल 'सामवेद' में खोजना होगा। दसवीं शताब्दी के आरम्भ में जब आचार्य अभिनव गुप्त नाट्यशास्त्र की अपनी प्रसिद्ध टीका 'अभिनव भारती' कश्मीर के प्रवरपुर ग्राम में बैठकर कर रहे थे, उस समय तक प्रदेश मुसलमानों के आक्रमणों से अप्रभावित था और वहाँ सामगान एवं संगीत की परम्परा अपने विशुद्ध रूप में जीवित थी। अतः साम सम्बन्धी स्वरों के सम्बन्ध में आचार्य अभिनव गुप्त की उक्ति का प्रमाण है।

आचार्य अभिनव गुप्त का कथन है—“उच्चता (पूर्ववर्ती स्वर की अपेक्षा अधिक से अधिक ऊँचाई) के कारण 'चतुःश्रुति' स्वर 'उदात्त' है तथा नीचता (पूर्ववर्ती स्वर की अपेक्षा कम से कम ऊँचाई) के कारण 'द्विश्रुति' स्वर 'अनुदात्त' है और (उदात्त एवं अनुदात्त का) मध्यवर्ती तथा समाहार (द्विश्रुति की अपेक्षा अधिक ऊँचाई और चतुःश्रुति की अपेक्षा कम ऊँचाई) के कारण 'त्रिश्रुति' स्वर 'स्वरित' है।”

सामवेद में स्वरों का क्रम अवरोहात्मक होता है, अतः आज के वागेश्वरी (वागीश्वरी) राग में प्रयुक्त होने वाले मध्यम, गांधार, ऋषभ और षड्ज क्रमशः उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और उदात्त हैं। इनके सामवेद सम्बन्धी नाम प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ हैं। ये अवरोह की ओर क्रमशः चतुःश्रुतिक, त्रिश्रुतिक, द्विश्रुतिक और चतुःश्रुतिक हैं। इन मध्यम, गांधार, ऋषभ, और षड्ज के सम्वादी तार सप्तकीय षड्ज एवं मध्य सप्तकीय निषाद, धैवत, और पंचम क्रमशः हैं। षड्ज-ग्रामीय सप्तक को प्राप्त करने की यह सरलतम विधि है।

साम-गान में तीन, चार, पाँच, छः या सात स्वरों का उपयोग होता है। तीन स्वरों से कम में साम-गान नहीं होता। अधिकांशतः साम-गान पाँच या छः स्वरों के प्रयोग से युक्त है। कुछ लोगों के अनुसार कौथुम शाखा के अन्तर्गत दो सामों का गान सप्तस्वर युक्त है।

स्थायी, आरोही, अवरोही और संचारी वर्णों ने 'साम-गान' से 'गांधर्व' को पृथक् कर दिया। वीणा पर जब सातों स्वरों की स्थापना हो गई, तब यह दिखाई दिया कि पंचम का सम्वाद षड्ज के साथ रहने पर त्रिश्रुतिक ऋषभ के साथ पंचम का सम्वाद नहीं रहता और यदि पंचम को उतारकर ऋषभ का सम्वादी किया जाए, तो षड्ज-पंचम सम्वाद नष्ट हो जाता है। अतः षड्ज-पंचम-सम्वाद की स्थिति में सप्तस्वरों का समूह षड्ज-ग्राम कहलाया और ऋषभ-पंचम सम्वाद की स्थिति में सप्तस्वरों के समूह को मध्यम-ग्राम कहा गया। साम-गान अवरोहात्मक था और उसमें ग्राम-विभाग नहीं था।



एक युग वह आया, जिसमें मूर्च्छनाओं के असम्पूर्ण रूपों का नामकरण यज्ञों के नाम पर किया गया और यह माना गया कि जिस 'तान' (मूर्च्छना के असम्पूर्ण रूप) का नाम जिस यज्ञ के अनुसार रखा गया है, उस 'तान' में गान करने वाले को उसी यज्ञ का फल प्राप्त होगा ।'

ऋचाओं का गेय रूप ही 'साम' है । 'सा' का अर्थ ऋचा और 'अम' का अर्थ स्वर-समूह है, अतः 'सा + अम = साम' को 'साम' कहा जाता है । वेदवाणीयुक्त स्वर-समूह ही 'साम' है । 'साम' तीन ऋचाओं का सम्मिलित गेय रूप है, क्योंकि वैदिक साम के अंगों ( प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन ) के विस्तार के लिए कम-से-कम तीन ऋचाएँ आवश्यक हैं । इन अंगों में 'हिकार' और 'ओंकार' जोड़ देने पर इनकी संख्या सात हो जाती है ।

'सामविधान ब्राह्मण' (१-१-४) के अनुसार यदि साम-गान को व्यक्ति माना जाय, तो वाणी-भाग उसकी अस्थि और स्वर-भाग उस पर चढ़ा हुआ माँस है ।

साम के पूर्वोक्त अंगों को 'भक्ति' ( भाग ) कहा जाता है । कुछ सामों में प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन नामक पाँच भक्तियाँ हैं और कुछ

१. 'संगीत रत्नाकर' में षड्ज ग्राम की षड्जहीन सात तानों के नाम अग्निष्टोम, अन्यग्निष्टोम, वानपेय, षोडशी, पण्डरीक, अश्वमेध और राजसूय; ऋषभहीन सात तानों के नाम स्विष्टकृत्, बहुसौवर्ण, गोसव, महाव्रत, विश्वजित्, ब्रह्मयज्ञ और प्रजापत्य; पञ्चमहीन सात तानों के नाम अश्वक्रान्त, रथक्रान्त, विष्णुक्रान्त, सूर्यक्रान्त, गजक्रान्त, वलभित् और नागरक्ष तथा निषादहीन तानों के नाम चातुर्मास्य, प्रस्था, शस्त्र, उक्थ, सौत्रामणी और उद्भित् चित्रा हैं ।

षड्ज ग्रामीय षड्ज-पंचम हीन तानों के नाम इडा, पुरुषमेध, श्येन, वज्र, इषु, अङ्गिरा, कंडूक; निषाद-गान्धार हीन तानों के नाम ज्योतिष्टोम, दर्श, नान्दी, पौर्णमासक, अश्वप्रतिग्रह, रात्रि और सौभर तथा ऋषभ-पंचमहीन तानों के नाम सौभाग्यकृत्, कारीरी, शान्तिकृत्, पुष्टिकृत्, वैनतेय, उच्चाटन और वशीकरण हैं । 'मध्यमग्रामीय षड्जहीन तानों के नाम सावित्री, अर्धसावित्री, सर्वतोभद्र, आदित्य, नमयन, गवायन, सर्गाणायन और कोणपायन; ऋषभहीन तानों के नाम अग्निचित्, द्वादशाह, उपांशु, सोम, अश्वप्रतिग्रह, बहि और अभ्युदय हैं तथा गान्धारहीन तानों के नाम सर्वस्वदक्षिण दीक्षा, सोम, समित्, स्वाहाकार, तनूनपात् और गोदोहन हैं ।

मध्यमग्रामीय ऋषभ-धैवत-हीन तानों के नाम लोकोक्त्यभोहन, वीर, कन्दर्प-बलुशातन, शंख चूड, गजच्छाय, रोद्र एवं विष्णु-विक्रम तथा निषाद-गान्धार-हीन तानों के नाम भंरव, कामद, अवष्टय, अष्टकपाल, स्विष्टकृत्, वषट्कार और मोक्षद हैं ।



सामों में 'हिकार' और 'ओंकार' भी। पाँच भक्तियों वाले साम पंचविध और सात भक्तियों वाले साम सप्तविध कहलाते हैं। इन भक्तियों और अंगों को समझ लिया जाए।

यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण सोलह होते हैं, इनमें होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा कहे जाने वाले ऋत्विक् प्रमुख हैं। 'प्रस्तोता' कहा जाने वाला ऋत्विक् 'प्रस्ताव' नामक अंग का, 'उद्गाता' नामक ऋत्विक् 'उद्गीथ' का, 'प्रतिहर्ता' नामक ऋत्विक् 'प्रतिहार' नामक अंग का गान करता है।

'उपद्रव' का गान एक विशिष्ट क्रम से 'उद्गाता' करता है और 'निधन' के गान में प्रस्तोता, प्रतिहर्ता और उद्गाता सम्मिलित हैं।

'प्रस्ताव' का अर्थ 'प्रारम्भ' है। जिस अंग से सामगान का आरम्भ किया जाए वह 'प्रस्ताव' है। 'हिकार' या 'हुंकार' की ध्वनि से इसका आरम्भ होता है। विभिन्न सामों में 'प्रस्ताव' के अन्तर्गत गाये जाने वाले अक्षरों की संख्या विभिन्न हो सकती है।

'उद्गीथ' का अर्थ गान का उठाया हुआ भाग है, स्पष्ट है कि 'प्रस्ताव' इसके लिए भूमिका बना देता या आधार प्रस्तुत कर देता है। जैसा कि कहा जा चुका है, इसे 'उद्गाता' गाता है। 'उद्गीथ' का आरम्भ ओंकार से किया जाता है।

शारंगदेव ने 'गांधर्व' में इन तानों को वेद प्रेरित कहा है। क्योंकि सामवेदीय स्वर सप्तक ही मध्यमग्रामीय स्वर-सप्तक का मूल और इस प्रकार इन समस्त तानों का बीज है।

२ वैदिक ऋक्, वैदिक गाथा और वैदिक साम के ढाँचे पर लौकिक भाषा में प्रणीत गीत लौकिक ऋक्, लौकिक गाथा और लौकिक साम कहलाये। वैदिक साम के प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन नामक अङ्ग लौकिक साम में क्रमशः उद्गाह, अनुद्गाह, सम्बन्ध, ध्रुवक एवं आभोग कहलाते हैं; लौकिक प्रबन्धों के उद्गाह, मेलापक, ध्रुव और आभोग नामक धातुओं का बीज वैदिक और लौकिक साम के पूर्वोक्त अङ्गों में ही है।

लौकिक ऋक्, लौकिक गाथा और लौकिक साम का उपयोग शिवस्तुति में ब्रह्मप्रोक्त कहा जाता है। अन्य देवताओं की स्तुति में इस प्रकार का उपयोग उचित है।

देवता विशेष की प्रशंसा से युक्त ऋचाएँ गाथा कहलाती थीं। जब कुछ लोग 'गान' को बाजीविका बना कर 'नरों' (आश्रयदाताओं अथवा धनदाताओं) का 'आशंसन' (प्रशंसा, स्तुति) छुशामद करने के लिए लौकिक भाषा में गाथाएँ गढ़ने और उनके गेय रूप का प्रयोग करने लगे, तब ऐसे लोगों को निन्दनीय माना गया और ऐसी गाथाओं को 'नाराशंसी' कहा गया। इनके द्वारा दिया दान लेना निषिद्ध घोषित किया गया। ये नाराशंसी गाथाएँ वेद का 'मल' (मल या विष्ठा) कहलाईं। ऐसी गाथाएँ गाने वालों को बन्दीजनों, चारणों, भाटों और सगीत-जीवियों कहा पूर्वज का जा सकता है।



‘प्रतिहार’ का अर्थ दो भागों को जोड़ने वाला अंग है। प्रतिहार का गान करना प्रतिहर्ता का कार्य है। कभी ‘प्रतिहार’ में दो भाग भी दिखाई देते हैं।

‘उपद्रव’ का गान उद्गाता करता है, इसमें प्रतिहर्ता द्वारा गाये हुए मुख्य प्रतिहार को ही उद्गाता दुहराता है।

प्रतिहार के अवशिष्ट अंश के पश्चात् ओंकार जोड़कर जब प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता साथ-साथ गाकर सामगान का समापन करते हैं, तब यही भाग ‘निधन’ कहा जाता है। ‘निधन’ का अर्थ ‘अन्त’ या ‘समाप्ति’ है। हीजु, उर्ज, ऊ इत्यादि अक्षर-समूह साम के अन्त या मध्य में आते हैं।

‘उपगाता’ नामक ऋत्विक् निरन्तर आधार स्वर का उपगान करते रहते हैं, जिससे गान में निरन्तरता बनी रहती है और प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता सुरिलेपन के साथ गाते रहते हैं।

गाने के लिए मूलभूत ऋचाओं के अक्षरों में कुछ विकार किए जाते हैं; वे हैं- विकार, विश्लेषण, विकर्षण, अभ्यास, विराम और स्तोभ।

ऋक् में आये हुए शब्द ‘अग्नि’ को गाते समय ‘ओग्नायि’ कहना ‘विकार’ है।

‘वीतये’ को ‘वोइ तो या रयि’ कहना ‘विश्लेषण’ है। इसमें ‘वी’ के ‘व’ को पृथक् और ‘ई’ को पृथक् करके ‘वोइ’ और ‘ये’ के ‘य’ और ‘इ’ को अलग करके ‘या रयि’ कहा गया है।

ह्रस्व को दीर्घ या दीर्घ को प्लुत बोलना ‘विकर्षण’ (विशेषतया खींचना) है। ‘ये’ के स्थान पर ‘या २ ३ यि’ प्रयोग ‘विकर्षण’ है।

किसी पद को दुहराना ‘अभ्यास’ है, जैसे ‘तोयायि तोयायि’।

किसी पद के बीच में विराम करना ‘विराम’ है ‘गृणानो हृत्यदातये’ स्थान पर ‘गृणानो हृत्यदातये’ गाना ‘विराम’ है।

स्तोभ वे वर्ण, पद या वाक्य हैं, जो मूल ऋचा में नहीं होते, अपितु पादपूर्ति के लिए साम में सम्मिलित किए जाते हैं। ‘हाउ’, ‘औहोवा’ जैसे पद ‘स्तोभ’ हैं।

भरतोक्त प्रकरण-गीतों में स्तोभ का प्रयोग उन पर सामवेद का ही प्रभाव है।

पारम्परिक रूप में सामगान करने वाले ऋत्विजों का एक स्वतंत्र वर्ग बन गया, वे लोग ‘सामग’ कहलाते थे। गेय ऋचाओं का संकलित रूप सामवेद कहलाया।

सामवेद के दो प्रधान भाग ‘आचिक’ और ‘गान’ हैं। ‘आचिक’ में गेय ऋचाओं का संग्रह है और ‘गान’ उनमें ऋचाओं के गेय रूप हैं। आचिक के दो रूप ‘पूर्वाचिक’ और ‘उत्तराचिक’ हैं। पूर्वाचिक में छः प्रपाठक या अध्याय हैं। इनमें से पाँच में अग्नि, इन्द्र इत्यादि देवताओं की स्तुतियाँ हैं। पाँच अध्यायों में संगृहीत ऋचाएँ ‘ग्रामगान’ और षष्ठ अध्याय में संकलित ऋचाएँ ‘आरण्य गान’ हैं। ‘उत्तराचिक’ में नौ प्रपाठक हैं, जिनमें १२२५ मंत्र हैं, वे तीन-तीन ऋचाओं पर



आश्रित 'प्रगाथों' का संग्रह हैं। इन 'प्रगाथों' में विद्यमान प्रथम ऋचाओं की प्राप्ति पूर्वाचिक में भी होती है, 'प्रगाथ' की अन्य ऋचाओं का गान भी प्रथम ऋचा की शैली के अनुसार होता है।

सामवेद के गान-ग्रंथ चतुर्विध हैं, जिनमें से 'ग्रामगेयगान' और 'आरण्यगान' योनिगान अर्थात् आधारभूत गान कहलाते हैं तथा 'ऊहगान' और 'ऊह्यगान' को विकृति-गान कहा जाता है। 'आरण्यगान' के पश्चात् 'ग्रामगेयगान' की शिक्षा दी जाती थी, अतः ग्रामगेयगान को वेयगान भी कहा जाता था। 'ग्रामगान' में पूर्वाचिक के प्रथम पाँच अध्याय हैं और आरण्यगान में पूर्वाचिक का अन्तिम अर्थात् छठा अध्याय आता है।

ग्रामगेय गान पर आश्रित गान कुछ परिवर्तित रूप में 'ऊहगान' कहलाते हैं। इसी प्रकार कुछ परिवर्तित रूप में आरण्यगान 'ऊह्यगान' कहलाते हैं।

ऋग्वेद के अनुसार साम के गायन से संपूर्ण नभोमण्डल प्रतिध्वनित हो उठता था। पक्षियों के गुंजन की उपमा उद्गाता के सामगान से की गई है। ऋग्वेद काल में सामों के आविष्कर्ता आचार्यों में अंगिरस, भरद्वाज तथा वशिष्ठ का उल्लेख हुआ है जो क्रमशः 'स्तोत्र', 'बृहत्साम' तथा 'रथन्तर साम' के उद्भावक थे। एक मंत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सामगान उन्हीं विद्वानों को प्राप्त हो सकता है, जो अध्यवसायी तथा जागरणशील हैं।

सामों का गान कुछ विशिष्ट छन्दों के साथ किया जाता था अतः उन छन्दों के नाम से ही साम प्रसिद्ध हो जाते थे। धार्मिक कार्यों के अतिरिक्त लौकिक प्रसंगों पर भी सामगान किया जाता था। अंत्येष्टि के समय पर भी साम के गायन का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में दुन्दुभि, वाण, नाडी, वेणु, कर्करि, गर्गर, गोधा, पिंग तथा आघाटि इत्यादि वाद्यों का काफ़ी उल्लेख पाया जाता है, जो गान के साथ साहचर्य बनाये रखने के लिए आवश्यकतानुसार प्रयुक्त किये जाते रहे होंगे।

ऋग्वेद में गीत तथा वाद्य के साथ नृत्य कला का भी प्रचुर अस्तित्व पाया जाता है और कहा गया है कि खुले आकाश के नीचे नृत्य करते हुए लोगों के पदों की धूल से आकाश आच्छादित हो जाता था। यज्ञ वेदी के चारों ओर स्त्रियों द्वारा मण्डलाकार नृत्य करना वैदिक काल में अत्यन्त शुभ माना जाता था। नृत्य का पद श्लेष गीत के साथ हुआ करता था। यजुर्वेद के ब्राह्मण तथा आरण्यक वाङ्मय से स्पष्ट है कि साम का गायन केवल साम गायकों तक ही सीमित था, बल्कि अन्य वैदिक शाखाओं में भी प्रचलित था। अश्वमेध यज्ञ के अन्तर्गत सामगान के साथ गाया गान भी प्रचलित था। साम का अन्तरभाव मंत्र-संगीत से होता है और गाथाओं का स्थान लौकिक संगीत के अन्तर्गत है। इन्हीं को आगे चलकर 'वैदिक संगीत' और 'देशी संगीत' कहा गया।



पुराणों के अनुसार, मूल साम-शाखाओं के प्रवर्तक वेद व्यास हैं। यज्ञ की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर वैदिक और लौकिक संगीतकारों की नियुक्ति की जाती थी। साम के गान ग्रंथों में स्वरांकन के रूप में एक से लेकर सात अंकों का प्रयोग पाया जाता है जिनका स्थान अक्षरों के ऊपर तथा मध्य में दोनों स्थानों पर दिखाई देता है। एक ऋचा तथा उसके साम के स्वरांकन का उदाहरण इस प्रकार है :—

५ ४ ५ २ २ २ ५ १ २ २ २  
 आ ऽ ६ म् ॥ त्य मू षु ॥ वा जि ॥ ना ऽ २ ३ ४ ५ म् ॥ दै व जू  
 सानिऽरे ॥ सासा सा । म ऽम । गम ऽग ऽ रेऽसा । म म म

३ ५ २ आ २ १ २ २ ३ ४ ५  
 ता २ ३ ४ म् ॥ सा हो वा नं ता ॥ रुखा ३ ॥ रथानाम् ॥  
 गऽ मऽगऽरे । सा सा ग म प । म ऽ म ग । मऽगरेसा ।

२ ३ ५ २ २ ३ रे ५  
 आ रि ष्ट ना २ ३ ४ इ मी म् ॥ पृ त ना ३ ४ ५ ज मा शू म् ॥  
 मऽ मऽ म ऽग ऽम ऽगऽ रिऽसा सा । म म म म ग रे ग म ग सा ॥

२ १ १ १ २ २ ३ २ २ ४  
 स्वस्त ॥ या इ ॥ ता क्ष्य मि हा ३ ४ ३ ॥ हू ई वा ५ इमा ६ ५ ६ ॥  
 मप । पऽ प पऽमऽ गऽमऽ गऽरेऽगऽ । म ग रे साऽ सानि सानि ॥



## आधुनिक आलाप-गान

आधुनिक संगीत में प्राचीन निबद्ध-अनिबद्ध गान के अन्तर्गत अनिबद्ध गान का केवल एक प्रकार प्रचार में है और वह है 'आलाप'। आलाप-गान करने वाले बहुधा ध्रुपदिए होते थे, जिनका स्वर-ज्ञान तथा राग-ज्ञान उच्चकोटि का होता था। इसी कारण उनका आलाप-गान सुन्दर और आकर्षक होता था। किन्तु अब तो खयाल-गायक भी सुन्दर आलाप करते देखे जाते हैं।

आलाप करने के वर्तमान समय में दो ढंग हैं:—

१. 'नोम्-तोम्' द्वारा, २. 'अकार' द्वारा। 'नोम्-तोम्' का आलाप त, ना, न, री, नों, नारे, नेनेरी, तनाना, नेतोम, नना इत्यादि शब्दों के साथ किया जाता है और 'अकार' का आलाप आऽऽऽऽ के उच्चारण द्वारा। आकार से आलाप करने की अपेक्षा 'नोम्-तोम्' द्वारा आलाप प्रभावशाली व उत्तम होता है, क्योंकि इसमें बीच में किसी स्थान पर सम दिखाने की अच्छी सुविधा रहती है। अकार द्वारा आलाप में यह सुविधा उतनी अच्छी दिखाई नहीं देती तथा नोम्-तोम् के आलाप में अनेक स्वर-वैचित्र्य दिखाने का कार्य सरलतापूर्वक होता है और द्रुत लय का आलाप भी इससे भली प्रकार किया जा सकता है, क्योंकि द्रुत लय के आलाप में त, ना, न, री, नो इत्यादि अक्षर या शब्द गायक को बहुत सहायता पहुँचाते रहते हैं। किन्तु अकार के आलाप में द्रुत लय में काम दिखाने समय कठिनाई रहती है और अकार के आलाप से श्रोता भी ऊब जाते हैं, जबकि 'नोम्-तोम्' का आलाप उन्हें बराबर स्फूर्ति और चेतना प्रदान करता रहता है।

वास्तव में 'नोम्-तोम्' का आलाप प्राचीन काल की ईश्वरोपासना का बिगड़ा हुआ स्वरूप है। कहा जाता है कि प्राचीन गायक आलाप द्वारा ईश्वर-वंदना 'ॐ अनंत नारायण' या 'तू ही अनंत हरि, इत्यादि प्रार्थना-गान किया करते थे। बाद में केवल स्वर का ही चमत्कार रह गया और निरर्थक शब्द प्रयुक्त किए जाने



लगे। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि संगीत के पूर्व-पंडित संस्कृत भाषा के विद्वान् होते थे, अतः उनका शब्दोच्चारण का ज्ञान भी उच्च कोटि का था। बाद में मुसलमान गायक उन शब्दों का उच्चारण करने में तो असमर्थ रहते थे, किन्तु वे उन स्वरों और रागों पर मोहित थे। इस प्रकार उन्होंने 'नोम्-तोम्' की युक्ति द्वारा राग और स्वर तो पकड़ लिए, किन्तु शब्द छोड़ दिए। यही हाल 'तराना' की गायकी का भी हुआ।

गायक प्रायः पूरे आलाप को चार भागों में बाँटते हैं—१. स्थायी, २. अंतरा, ३. संचारी तथा ४. आभोग। पहले स्थायी का भाग लेकर आलाप करते हैं।

### स्थायी

स्थायी में पहले षड्ज लगाकर वादी स्वर का महत्त्व दिखाते हुए पूर्वांग में आलाप चलता है। शुरु में कुछ मुख्य स्वर-समुदायों को लेकर फिर एक-एक नया स्वर अपने स्वर-समुदायों में जोड़-जोड़कर वे मध्य-स्थान के पंचम, धैवत और निषाद तक जाते हैं, फिर तार-षड्ज को छूट्टर नीचे मध्य-षड्ज पर आकर स्थायी समाप्त करते हैं। स्थायी-भाग का आलाप अधिकतर मंद्र और मध्य-सप्तकों में ही चलता है।

### अंतरा

इसके बाद मध्य-सप्तक के गांधार या पंचम स्वर से अंतरा का भाग शुरु करते हैं और तार-सप्तक के षड्ज पर पहुँचकर अनेक प्रकार के काम दिखाते हैं, अर्थात् इस स्थान पर विभिन्न तानें विभिन्न प्रकार से वहीं समाप्त करते हैं, फिर धीरे-धीरे उतरते हुए मध्य-षड्ज पर आकर मिल जाते हैं। इसमें मीड़ और कंपन का काम भी खूब दिखाते हैं।

### संचारी

तीसरा भाग संचारी का आता है। इसे प्रायः 'सा, म, प' इनमें से किसी भी स्वर से आरम्भ करके मध्य-पंचम या मध्य-षड्ज पर ही आकर समाप्त किया जाता है। क्योंकि संचारी में प्रायः तार-सप्तक के काम नहीं दिखाए जाते। संचारी में गमकों का प्रयोग अधिक दिखाई देता है; क्योंकि संचारी में स्थायी भाग की पुनरावृत्ति भी संशोधित रूप में हो जाती है। संचारी के बाद फिर स्थायी का आलाप नहीं करते, बल्कि एकदम आभोग आरम्भ कर देते हैं।

### आभोग

आभोग का विस्तार प्रायः अंतरे के विस्तार के समान ही करते हैं, अतः इसे अंतरे की पुनरावृत्ति का संशोधित रूप समझा जाए तो अनुचित नहीं। इसमें तीन सप्तकों का प्रयोग किया जा सकता है और तार-सप्तक के गायक अपने गले के धर्मानुसार जितना ऊँचा जाना चाहे, जा सकता है। इसमें लय अति द्रुत हो जाती है।



## आलाप में लय की गति

लय की दृष्टि से उपर्युक्त चारों भागों के आलाप में इस प्रकार चला जाता है—१. स्थायी में विलंबित लय के साथ आलाप चलता है; २. अंतरे में आलाप करने का समय आता है तो मध्य लय कर दी जाती है और तानों का प्रयोग आरम्भ कर दिया जाता है। बीच-बीच में छोटी-छोटी तानों की सहायता से आलाप के काम में सुन्दरता पैदा की जाती है और तीनों सप्तकों में आलाप का काम दिखाकर स्थायी और अंतरा, दोनों के काम इस भाग में दुबारा दिखाए जा सकते हैं; ३. संचारी-भाग में लय द्रुत हो जाती है और तीनों सप्तकों में गमक तथा लयकारी का प्रदर्शन करते हुए आलाप चलता है; ४. आभोग में लय को और भी द्रुत करके अंतरे के भाग को विविध प्रकार से दुहराते हुए गमक का प्रयोग जारी रखा जाता है और गायक जितनी तेजी से गा सकता है, अपना सम्पूर्ण कौशल दिखाते हुए तबला या पखावज-वाले के साथ एक प्रकार की प्रतियोगिता उपस्थित कर देता है। इस भाग के नोम्-तोम् के शब्द अति द्रुत लय के कारण तराने का रूप धारण कर लेते हैं।

### गमक-प्रकार

स्वरस्य कपो गमकः श्रोतृचित्तमुखावहः ।

यस्य भेदास्तु तिरिपः स्फुरितः कंपितस्तथा ॥

लीन आंदोलितवलितत्रिभिन्नकुरुल्लाहताः ।

उल्लासितः प्लावितश्च हुम्फितो मुद्रितस्तथा ॥

नामितो मिश्रितः पंचदशेति परिकीर्तिता ॥

—संगीत रत्नाकर

अर्थात्—स्वरों का ऐसा कंपन, जो सुनने वालों के चित्त को सुखदायी हो, 'गमक' कहलाता है।

गमक के पंद्रह भेद हैं—१. तिरिप, २. स्फुरित, ३. कंपित, ४. लीन, ५. आंदोलित, ६. वलित, ७. त्रिभिन्न, ८. कुरुल, ९. आहत, १०. उल्लासित, ११. प्लावित, १२. हुम्फित, १३. मुद्रित, १४. नामित और १५. मिश्रित।

दक्षिणी संगीत के ग्रंथों में गमकों के निम्नलिखित दस प्रकार मिलते हैं :—

१. आरोह, २. अवरोह, ३. ढालु, ४. स्फुरित, ५. कंपित, ६. आहत, ७. प्रत्याहत, ८. त्रिपुच्छ, ९. आन्दोलित और १०. मूर्च्छना।

प्राचीन समय में, स्वरों में एक विशेष प्रकार के कंपन को 'गमक' कहते थे। उस कंपन को प्रकट करने के लिए जो विभिन्न ढंग उस समय प्रचार में थे, उन्हीं का उल्लेख ऊपर के श्लोकों में किया गया है।



वर्तमान समय में यद्यपि गमकों का प्रयोग प्राचीन ढंग से नहीं होता, तथापि किसी-न-किसी रूप में गमक का प्रयोग हमारे वाद्य-संगीत और कंठ-संगीत में होता अवश्य है। खटका, मुर्की, जमजमा, मीड़, सूत, कंपन, गिटकरी इत्यादि शब्द गमक की ही श्रेणी में आ जाते हैं।

आधुनिक संगीतज्ञ 'गमक' की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—जब हृदय से जोर लगाकर गंभीरतापूर्वक कुछ कंपन के साथ स्वरों का प्रयोग किया जाता है, तो उसे 'गमक' कहते हैं। 'गमक' का प्रयोग अधिकतर ध्रुवपद-गायन में होता है; किन्तु कोई-कोई गायक खयाल-गायन में भी गमक की तानें लेते हैं। नोम्-तोम् में आलाप में भी अन्तिम भाग द्रुत लय का आता है, तो गमकयुक्त तानें ली जाती हैं।

गमक के पंद्रह भेदों का स्पष्टीकरण निम्न-प्रकार है :—

**तिरिप :** इसे आजकल 'हिल्लोल' भी कहते हैं। इसमें स्वर को वेग से कंपित किया जाता है। यह कंपन  $\frac{1}{2}$  मात्रा-काल का होता है।

जैसे—सा  $\underline{\underline{S}} \quad \underline{\underline{S}} \quad \underline{\underline{S}} \quad \underline{\underline{S}} \quad \underline{\underline{S}} \quad \underline{\underline{S}} \quad \underline{\underline{S}}$

**स्फुरित :** इसे आजकल 'गिटकरी' कहते हैं। इसमें कंपन का काल  $\frac{1}{4}$  मात्रा-काल का होता है; जैसे—रें सां नि सां

~~~~ ~~~~ ~~~~ ~~~~

**कंपित :** इसे आजकल 'खटका' कहते हैं। इसमें  $\frac{1}{8}$  मात्रा-काल में कंपन होता है

रें  
जैसे—सा

**लीन :** जब कोई स्वर आधी मात्रा के काल में किसी आगे या पीछे के स्वर में लीन हो जाए तो उसे 'लीन गमक' कहते हैं; जैसे—नि सा S

o o -

**आंदोलित :** एक मात्रा के काल से कंपन करने को 'आंदोलित गमक' कहते हैं; —नि—

जैसे—सा o सा

o -

**बलि :** इसे आजकल 'मीड़' कहते हैं; —ध सा

**त्रिभिन्न :** जब तीन स्थानों को छूकर चौथे पर पहुँचा जाए तो उसे 'त्रिभिन्न गमक' कहते हैं। इसमें एक प्रकार से किसी एक स्वर पर एकसाथ तीन स्वरों का रें सां नि

कण दिया जाता है; जैसे— सां

**कुरुल :** इसे आजकल 'घसीट' कहते हैं। इसमें स्वरों का घनता के साथ उच्चारण किया जाता है; जैसे—प प



आहत : संचार करते समय जब किसी स्वर से अगले स्वर को छूकर मूल स्वर  
रे

पर लौट जाएँ तो उसे 'आहत गमक' कहते हैं; जैसे—सा सा

उल्लासित : जब स्वर एक क्रम से शीघ्रता से आरोह-क्रम से गाए या बजाए  
जाएँ तो उसे 'उल्लासित गमक' कहते हैं; जैसे—ग म प ध नि सां  
— — — — —

प्लावित : जब स्वर को तीन चौथाई मात्रा-काल में आंदोलित किया जाए तो  
उसे 'प्लावित गमक' कहते हैं; जैसे—नि ऽ सा

हुम्फित : जब हृदय में हुंकार की ध्वनि से गमक उत्पन्न की जाती है, तो उसे  
'हुम्फित गमक' कहते हैं; जैसे—प प

मुद्रित : जब मुँह बन्द करके गमक ली जाए तो उसे 'मुद्रित गमक' कहते हैं।

नामित : जब स्वर मीढ़ की भाँति चलकर अपने स्थान से नीचा हो जाय तो

उसे 'नामित गमक' कहते हैं; जैसे—गं रें। इसी प्रकार जब नामित की उलटी गमक  
ली जाए, अर्थात् जब किसी नीचे स्वर को छूकर एकदम ऊँचे स्वर पर ठहर जाएँ,

जैसे—रें गं, तो इसे 'निवृत्ति गमक' कहते हैं।

मिश्रित : जब ऊपर की गमकों में दो या दो से अधिक गमकों को मिश्रित  
करके प्रयोग में लाएँ तो उन भेदों को 'मिश्रित गमक' कहते हैं।



# रागों का दस विभागों में वर्गीकरण करने का प्राचीन सिद्धांत

प्राचीन संगीत-पंडित शाङ्गदेव ने अपने ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर' में अपने रागों का दस विभागों में वर्गीकरण इस प्रकार किया है :—

१. ग्राम-राग, २. उपराग, ३. राग, ४. भाषा, ५. विभाषा, ६. अंतर्भाषा, ७. रागांग, ८. भाषांग, ९. क्रियांग और १०. उपांग ।

## ग्राम-राग

'संगीत-रत्नाकर' ग्रंथ में शुद्धा, भिन्ना, गौड्या, वेसरा और साधारण—इन पाँच गीतियों के अन्तर्गत तीस ग्राम-राग माने हैं, जो इस प्रकार हैं :—

१. शुद्धा : १. षड्ज-ग्राम, २. मध्यम-ग्राम, ३. शुद्धकैशिक, ४. शुद्धपंचम, ५. शुद्धकैशिक मध्यम, ६. शुद्धसाधारित, ७. शुद्धषाडव ।

२. भिन्ना : १. भिन्नषड्ज, २. भिन्नपंचम, ३. भिन्नकैशिक, ४. भिन्नतान, ५. भिन्नकैशिक मध्यम ।

३. गौड्या : १. गौडकैशिक, २. गौडपंचम, ३. गौडकैशिक मध्यम ।

४. वेसरा : १. सौवीर, २. टंक, ३. बोट्ट, ३. मालवकैशिक, ५. टंककैशिक, ६. हिंदोल, ७. मालवपंचम, ८. वेसराषाडव ।

५. साधारण : १. रूपसार, २. शकः, ३. भंभाणपंचम, ४. नर्त, ५. गांधारपंचम, ६. षड्ज-कैशिक, ७. ककुभ ।



उपर्युक्त ३० ग्राम-रागों के अतिरिक्त ८ उपराग, २० राग, ८ पूर्व-प्रसिद्ध रागांग, ११ भाषांग, १२ क्रियांग, ३ उपांग, ६ भाषा राग, २० विभाषा राग, ४ अंतर्भाषा राग, १३ शाङ्गदेव के समय में प्रचलित राग, ६ भाषांग, ३ क्रियांग और २७ उपांग राग बताए गए हैं। इस प्रकार 'संगीत रत्नाकर' ग्रंथ में २६४ राग बताए गए हैं।

'संगीतसमयसार' ग्रंथ में पार्श्वदेव ने देशी संगीत के अंतर्गत १०१ राग मानकर उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया है :—

| रागांग राग  | भाषांग राग  | उपांग राग   | क्रियांग राग |
|-------------|-------------|-------------|--------------|
| १२ सम्पूर्ण | २१ सम्पूर्ण | १८ सम्पूर्ण |              |
| ४ षाडव      | ११ षाडव     | ७ षाडव      | ३            |
| ४ औडव       | १५ औडव      | ६ औडव       |              |
| २०          | ४७          | ३१          |              |

**ग्राम-राग :** प्राचीन संगीत के कुछ ग्रंथों में ग्रामों से जातियों और जातियों से ग्राम-रागों की उत्पत्ति मानी गई है। प्राचीन काल में राग-गायन के स्थान पर जाति-गायन प्रचलित था, अतः रागों के प्रकार या वर्ग को ही 'ग्राम-राग' कहा जाता था।

**उपराग :** ग्राम-रागों में ही विभिन्न स्वरों के हेर-फेर से उपरागों की उत्पत्ति हुई।

**राग :** ये भी ग्राम-रागों के माध्यम से ही उत्पन्न हुए।

**भाषा :** गाने की एक विधि या शैली को कहा जाता था। उस शैली का गायन जितने रागों में व्यवहृत होता था, उन्हें 'भाषा-राग' कहते थे। मतंग ने भाषा के अन्तर्गत सोलह राग बताए हैं।

**विभाषा :** गाने की एक अन्य विधि या प्रकार को कहा जाता था। इसके अन्तर्गत मतंग ने बारह राग अपने ग्रंथ में लिखे हैं।

**अंतर्भाषा :** गाने की एक अन्य विधि थी, जिसका प्रयोग विशिष्ट रागों में किया जाता था।

रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग के विवरण भातखंडे जी ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार दिए हैं, जो उन्हें दक्षिण के एक पंडित ने बताए थे :—

**रागांग :** ऐसे शास्त्रीय रागों को कहा जाता था, जिनमें राग के सभी शास्त्रीय नियमों का पालन किया जाता हो।

**भाषांग :** ऐसे रागों को कहा जाता था, जो शास्त्रीय राग-नियम पर आश्रित न रहकर भिन्न-भिन्न देशों की विभिन्न शैलियों या भाषाओं द्वारा निर्मित होकर व्यवहार में लाए जाते थे। उन्हीं शास्त्रीय रागों के 'भाषांग राग' कहलाते थे, जिनसे वे बहुत-कुछ मिलते-जुलते थे।



**क्रियांग :** जिन रागों में शास्त्रीय राग-नियमों का पालन करते हुए कुछ गायक अपनी क्रिया से किसी विवादी स्वर का प्रयोग करके उनमें विशेषता पैदा करते थे, वे 'क्रियांग राग' कहलाते थे।

**उपांग :** क्रियांग रागों की तरह अन्य रागों में हेर-फेर करके 'उपांग राग' उत्पन्न किए जाते थे। इनमें मूल राग के किसी स्वर को हटाकर नया स्वर ले लिया जाता था।

'संगीत दर्पण' के लेखक दामोदर पंडित ने इनकी व्याख्या इस प्रकार संक्षेप में बताई है :—

**रागांग राग :** वे कहलाते हैं, जिनमें ग्राम-राग की कुछ छाया मिलती है।

**भाषांग राग :** वे कहलाते हैं, जिनमें भाषा राग की छाया मिलती है।

**क्रियांग राग :** वे कहलाते हैं, जिनसे शिथिल इन्द्रियों को बल व उत्साह प्राप्त होता है।

**उपांग राग :** वे कहलाते हैं, जिनमें राग की छाया बहुत ही कम मिलती हो।

इसी से मिलता-जुलता वर्णन कल्लिनाथ ने 'संगीत रत्नाकर' की टीका में किया है।



## आदत-जिगर-हिसाब

ऐसे पुराने उस्तादों से, जो विशेष पढ़े-लिखे नहीं हैं, बात-चीत करते समय बहुधा कुछ ऐसे शब्द सुनाई देते हैं, जिनका अर्थ जानने के लिए संगीत के विद्यार्थी उत्सुक रहते हैं, उन शब्दों में आदत, जिगर और हिसाब आते हैं, जिनका उल्लेख यहाँ किया जाता है :

प्राचीन गुणी गायकों का कहना है कि गायक में 'आदत, जिगर और हिसाब' इनमें से कम-से-कम प्रथम दो बातें तो होनी ही चाहिए, अन्यथा वह अपनी संगीत-साधना में सफलता प्राप्त नहीं कर सकेगा। तीसरी विशेषता 'हिसाब' प्रायः ताल-वाद्य-वादकों से सम्बन्धित है, जिसका उल्लेख नहीं किया जाएगा।

**आदत :** उत्तम रियाज़ (अभ्यास) द्वारा भली प्रकार तान लेने की सामर्थ्य प्राप्त करने की क्षमता रखना 'आदत' कहलाता है। जो संगीत-प्रेमी नियमित रूप से नित्य-प्रति अभ्यास करता रहता है, उसके उच्चारण में गंभीरता और स्वर माधुर्य पैदा हो जाता है। उसके गाने की 'आदत' जबतक कायम रहेगी, तबतक उसे सफलता मिलती रहेगी। इसके विरुद्ध कोई बड़े-से-बड़ा गायक भी जब अपना रियाज़ छोड़ देता है, तो उसके गायन में वह आकर्षण नहीं रहता, जोकि रियाज़ जारी रहने पर सम्भव हो सकता था। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि उस संगीतज्ञ की 'आदत' छूट गई।

**जिगर :** आयुर्वेद में 'जिगर' शरीर के उस भाग को कहा जाता है, जिसके द्वारा रक्त बनता है, लेकिन संगीतज्ञों के कोश में इसका अर्थ है 'अंग-स्वभाव' अर्थात् Musical Temperament। रागों की बढ़त करते समय किस स्थान पर कौनसा स्वर-समुदाय सुन्दर और आकर्षक प्रतीत होगा; राग में कौनसे स्वर लगने पर राग



का माधुर्य बढ़ेगा, इत्यादि बातों का ज्ञान रखना ही अंग-स्वभाव के अंतर्गत आता है; इसे संगीतज्ञों की भाषा में 'जिगर' कहते हैं।

**हिसाब :** राग व ताल के शास्त्रीय नियमों की जानकारी रखना ही 'हिसाब' के अन्तर्गत आता है। बहुत-से अशिक्षित गायक या तबला-वादक मात्राओं के हिसाब-किताब को न जानते हुए भी यद्यपि काम कर जाते हैं, किन्तु गुणी लोगों के साथ बैठकर बातचीत करते समय जब मात्राओं या शास्त्रीय नियमों का मसला पेश होता है, तब वे बगलें झाँकने लगते हैं। किसी-किसी गायक को बड़ी-बड़ी तानें लेकर 'सम' पर मिलना आता है, किन्तु वह बेचारा अशिक्षित होने के कारण 'हिसाब' से शून्य होता है।

## आसड़ी-आसड़ी-आसड़ी

हिसाब की एक विशेषता यह है कि इसमें राग और ताल के नियमों का ज्ञान होना चाहिए। यदि कोई गायक या वादक इन नियमों का ज्ञान नहीं रखता, तो वह 'आसड़ी' कहलाता है। 'आसड़ी' का अर्थ है 'अज्ञान'। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं।

'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं।

हिसाब की एक विशेषता यह है कि इसमें राग और ताल के नियमों का ज्ञान होना चाहिए। यदि कोई गायक या वादक इन नियमों का ज्ञान नहीं रखता, तो वह 'आसड़ी' कहलाता है। 'आसड़ी' का अर्थ है 'अज्ञान'। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं।

हिसाब की एक विशेषता यह है कि इसमें राग और ताल के नियमों का ज्ञान होना चाहिए। यदि कोई गायक या वादक इन नियमों का ज्ञान नहीं रखता, तो वह 'आसड़ी' कहलाता है। 'आसड़ी' का अर्थ है 'अज्ञान'। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं। 'आसड़ी' गायक या वादक को 'आसड़ी' कहते हैं।



## भारतीय स्वरलिपि-पद्धति

किसी गाने की कविता अथवा साजों पर बजाने की गत को स्वर और ताल के साथ जब लिखा जाता है, तब उसे स्वरलिपि (Notation) कहते हैं। प्राचीन काल में, भारत में लगभग २५० ई० पू० अर्थात् पाणिनि के समय से पहले ही स्वरलिपि-पद्धति विद्यमान थी, किन्तु तब यह स्वरलिपि-पद्धति अपने शैशव काल में ही थी। उस समय तीव्र और कोमल स्वरों के भेद तथा ताल-मात्रा-सहित स्वरलिपि नहीं होती थी; अपितु केवल स्वरों के नाम उनके प्रथम अक्षरों के साथ सरगम के रूप में दिए जाते थे। उनसे केवल इतना ही बोध होता था कि अमुक गायन में अमुक स्वर प्रयुक्त हुए हैं।

तीव्र-कोमल स्वरों के चिह्न न होने के कारण व ताल, मात्रा, मीड़ आदि के अभाव में उन स्वरलिपियों से संगीत-विद्यार्थी लाभ उठाने में असमर्थ रहे। प्राचीन समय में स्वरलिपि-पद्धति का विकास न होने के और भी कुछ कारण थे; उदाहरणार्थ :—

१. उस समय संगीत-कला विशेषतया क्रियात्मक ( Practical ) रूप में थी अर्थात् गुरु-मुख से सुनकर ही विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण किया करते थे।

२. लेखन-प्रणाली व मुद्रण-सम्बन्धी सुविधाएँ उस समय आजकल-जैसी नहीं थीं।

३. रागों को ज़ुबानी (मौखिक) याद रखा जाता था।

४. संगीत-कला गुरु से शिष्य को और शिष्य से उसके शिष्यों को सिखाने या कंठस्थ कराने की प्रथा थी।

५. प्राचीन समय के उस्ताद अपनी कला को अपने पुत्र अथवा विश्वसनीय शिष्यों को भी लिखकर नहीं बताते थे, बल्कि सीना-ब-सीना ( सामने बैठकर ) ही सिखाना पसंद करते थे।

विद्यार्थियों के लिए सुबोध और सरल स्वरलिपि का निर्माण आज से ८०-९० वर्ष पूर्व हुआ, जिसका श्रेय भारतीय संगीत की दो महान् विभूतियों—१. पं० विष्णु-नारायण भातखंडे, २. पं० विष्णुदिगंबर फुल्कर को है।



इनके द्वारा निर्मित स्वरलिपियों का प्रचार शनैः-शनैः समस्त भारत में होता गया। बीच-बीच में अन्य कई संगीत-पंडितों ने भी अपनी-अपनी पृथक् स्वरलिपि-पद्धतियाँ चालू कीं, किन्तु व्यापक रूप से प्रचार में न आ सकीं और आज उक्त दोनों (भातखंडे व पलुस्कर) पद्धतियाँ ही लोकप्रिय होकर प्रचार में आ रही हैं।

यद्यपि इन स्वरलिपि-पद्धतियों से गायक के गले की सभी विशेषताएँ लिपिबद्ध करना सम्भव नहीं हो सका है; उदाहरणार्थ भारतीय संगीत की विशेषताएँ गमक गिटकरी, राग-सौंदर्य, अलंकार, श्रुति-प्रयोग, स्वर-माधुर्य आदि बारीकियाँ स्वरलिपि द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकतीं। फिर भी वर्तमान स्वरलिपि-पद्धतियों से संगीत-विद्यार्थियों को जो सहायता मिली है और मिल रही है, उसे भुलाया नहीं जा सकता।

श्री भातखंडे ने पुराने वरानेदार उस्तादों के गायनों की स्वरलिपियाँ तैयार करने में बहुत ही परिश्रम किया था। उन्होंने समस्त भारत का भ्रमण करके उस्तादों की सेवा तथा खुशामद करके स्वरलिपियाँ तैयार कीं। उस समय कुछ ऐसे भी उस्ताद थे, जो अपने गाने की स्वरलिपि किसी प्रकार दूसरे व्यक्ति को बनाने की आज्ञा नहीं देते थे। श्री भातखंडे ने बड़ी युक्ति और कौशल से परदों के पीछे छिप-छिपकर उनका गायन सुना और स्वरलिपियाँ तैयार कीं तथा बहुत-सी स्वरलिपियाँ ग्रामोफोन-रिकार्डों द्वारा भी तैयार कीं। इस प्रकार कई हजार चीजों की स्वरलिपियाँ तैयार करके उन्होंने 'क्रमिक पुस्तक-मालिका, नामक पुस्तक में प्रकाशित कराकर संगीत-विद्यार्थियों का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इसी प्रकार पं० विष्णुदिगंबर पलुस्कर ने भी कई पुस्तकें तैयार कीं। पलुस्कर जी की स्वरलिपि-पद्धति जो प्रारम्भ में उनके द्वारा चालू हुई थी, अब उसमें कुछ परिवर्तन हो गए हैं। यही कारण है कि विष्णु-दिगंबर जी की प्रारंभिक मूल पुस्तकों में तथा आज उनके विद्यालयों में चलने वाली 'रागविज्ञान' आदि पुस्तकों के चिह्नों में काफी अन्तर पाया जाता है। तथापि वर्तमान स्वरलिपि-पद्धति उनकी प्राचीन पद्धति से अधिक सुविधाजनक है। पलुस्कर जी की परिमार्जित स्वरलिपि-पद्धति जो आजकल प्रचार में आ रही है, इस प्रकार है :—

### विष्णुदिगंबर पद्धति के स्वरलिपि-चिह्न

1. जिन स्वरों के ऊपर-नीचे कोई चिह्न नहीं होता, वे मध्य-सप्तक के शुद्ध स्वर समझे जाते हैं; जैसे—रे ग म प।
2. जिन स्वरों के नीचे हलंत का निशान होता है, उन्हें कोमल या विकृत स्वर मानते हैं; जैसे—र्ि ग् ध् नि।
3. तीव्र या विकृत मध्यम को उल्टे हलंत द्वारा इस प्रकार दिखाते हैं; जैसे—म्।
4. ऊपर बिंदुवाले स्वर मंद्र-सप्तक के जाने जाते हैं; जैसे—पं धं निं।



५. जिन स्वरों के ऊपर खड़ी लकीर होती है, वे तार-सप्तक के स्वर होते हैं;

जैसे—सा र ग म ।

६. स्वर पर मात्राओं के लिए इस प्रकार चिह्न रखे हैं :—

× चार मात्रा, जैसे

{ सा }  
{ × }

∞ दो मात्रा, जैसे

{ सा }  
{ ∞ }

- एक मात्रा, जैसे

{ सा }  
{ - }

० आधी मात्रा, जैसे

{ सा }  
{ ० }

— १/४ मात्रा, जैसे

{ प }  
{ — }

≡ १/२ मात्रा, जैसे

{ म }  
{ ≡ }

७. उच्चारण के लिए अवग्रह-चिह्न (s) का प्रयोग करते हैं और गीत के अक्षरों के ठहराव को लंबा करने के लिए बिन्दु (·) का प्रयोग करते हैं ।

जैसे—ग s s प

रा · · म

८. स्वरों के नीचे १/४ या १/२ इत्यादि लिखा हो, तो वहाँ १ मात्रा में ३ या ६ स्वर बोले जाते हैं ।

९. किसी स्वर के ऊपर कोई दूसरा स्वर लिखा हो, तो कण-स्वर (Grace Note) के रूप में प्रयुक्त करते हैं ।

१०. ताल के सम के लिए १ चिह्न लगाते हैं, खाली के लिए + चिह्न का प्रयोग होता है; अन्य तालियों के लिए क्रमशः उन गिनतियों का प्रयोग करते हैं, जिन गिनतियों पर ताल लगानी होती है ।

### भातखण्डे पद्धति के स्वरलिपि-चिह्न

१. जिन स्वरों के नीचे-ऊपर कोई चिह्न नहीं होता, उन्हें 'शुद्ध स्वर' मानते हैं; जैसे—सा रे ग म ।

२. जिन स्वरों के नीचे आड़ी रेखा खींच दी गई हो, उन्हें 'कोमल स्वर' कहते हैं; जैसे—रे ग ध नि ।

३. तीव्र मध्यम की पहचान के लिए म के ऊपर एक खड़ी लकीर खींच दी जाती है; जैसे—म ।

४. नीचे बिन्दुवाले स्वर मंत्र-सप्तक के माने जाते हैं; जैसे—म प ध ।



५. ऊपर बिन्दुवाले स्वर तार-सप्तक के माने जाते हैं; जैसे—गं रें सां ।
६. बिना बिन्दीवाले स्वर मध्य-सप्तक के समझने चाहिए; जैसे—प म ग ।
७. गाने के जिस शब्द के आगे जितने अवग्रह-चिह्न (ऽ) हों, उस शब्द को उतनी ही मात्रा बढ़ाकर गाते हैं; जैसे—श्या ऽ ऽ म ।
८. जिस स्वर के आगे जितनी पड़ी लकीरें (-) हों, उस स्वर को उतनी मात्रा बढ़ाकर गाते हैं; जैसे—ग - - - ।
९. कई स्वरों को एक मात्रा में गाने-बजाने के लिए—इस चिह्न का प्रयोग होता है; जैसे—पमग अथवा रेगमप ।

१०. स्वर के ऊपर—इस प्रकार के चिह्न को मीड़ कहते हैं; जैसे—म ण ध नि अर्थात् यहाँ पर मध्यम से निषाद तक मीड़ ली जाएगी ।

११. किसी स्वर के ऊपर कोई स्वर दिया हो, तो उसे कण-स्वर समझना चाहिए; ग

जैसे—प अर्थात् ग को जरा छूते हुए प स्वर को गाना या बजाना है ।

१२. जो स्वर कोष्ठक में बंद हो, उसे इस प्रकार गाना चाहिए—पहले उसके बाद का स्वर, फिर वह स्वर जो कोष्ठक में बंद है, फिर उसके पहले का स्वर तथा फिर वही कोष्ठक वाला स्वर । अर्थात् एक मात्रा में चार स्वर गाए जाएँगे, जैसे—(प)=ध प म प ।

१३. ताल में सम दिखाने का यह × चिह्न होता है ।

१४. खाली के लिए शून्य के चिह्न (०) का प्रयोग होता है ।

१५. सम को पहली ताली मानकर अन्य तालियों के लिए क्रमशः २-३-४ आदि संख्याएँ लगाते हैं ।

१६. वाद्य में स्वर को आंदोलित करने की क्रिया ज़मज़मा कहलाती है ।

१७. नीचे दो बिन्दीवाले स्वर अति मंद्र सप्तक के होते हैं; जैसे—गं स म ।

१८. ऊपर दो बिन्दीवाले स्वर अति तार सप्तक के होते हैं; जैसे—सं मं पं

१९. जहाँ \* फूज का चिह्न हो, वहाँ एक मात्रा चुप रहिए ।

२०. जहाँ कॉमा का निशान हो वहाँ एक मात्रा ठहरिये ।



## १४५ रागों का वर्णन ( प्रथम वर्ष से अष्टम वर्ष तक )

|                   |                            |                    |
|-------------------|----------------------------|--------------------|
| १. अड़ाना         | २१. खमाजी दुर्गा           | ४२. जैत या जेत     |
| २. अल्हैया बिलावल | २२. खंभावती                | ४३. जैत कल्याण     |
| ३. अहीर भैरव      | २३. गांधारी                | ४४. जोग            |
| ४. आनन्द भैरव     | २४. गारा                   | ४५. जोगिया         |
| ५. आभोगी          | २५. गुणकली                 | ४६. जोगकौंस        |
| ६. आरभी या आरभटी  | २६. गुणकरी या गुणक्री      | ४७. जौनपुरी        |
| ७. आसावरी         | २७. गूजरी या गुर्जरी तोड़ी | ४८. झिझोटी         |
| ८. आभोगी कानड़ा   |                            | ४९. तिलककामोद      |
| ९. कलावती         | २८. गोरख कल्याण            | ५०. तिलंग          |
| १०. कामोद         | २९. गौड़ मल्हार            | ५१. तोड़ी          |
| ११. काफ़ी         | ३०. गौड़ सारंग             | ५२. दरबारी         |
| १२. काफ़ी कानड़ा  | ३१. गौरी (भैरव थाट)        | ५३. दरबारी कानड़ा  |
| १३. कालिगड़ा      | ३२. गौरी (पूर्वी थाट)      | ५४. दुर्गा         |
| १४. कीरवाणी       | ३३. चन्द्रकान्त            | ५५. देवगिरि बिलावल |
| १५. कुकुभ         | ३४. चन्द्रकौंस             | ५६. देवगांधार      |
| १६. केदार         | ३५. चारुकेशी               | ५७. देशकार         |
| १७. कोमल ऋषभ      | ३६. चाँदनी केदार           | ५८. देस            |
| आसावरी            | ३७. छायाण्ट                | ५९. देसी           |
| १८. कौशिक कानड़ा  | ३८. जयंत मल्हार            | ६०. घनाश्री        |
| अथवा कौंसी        | ३९. जलधर केदार             | ६१. धानी           |
| १९. खट            | ४०. जयजयवंती               | ६२. नंद            |
| २०. खमाज          | ४१. जैतश्री या जैताश्री    | ६३. नट बिलावल      |



|                                   |                       |                       |
|-----------------------------------|-----------------------|-----------------------|
| ६४. नट बिहाग                      | ६९. भटियार या भटिहार  | ११८. रागेश्री         |
| ६५. नट मल्लार                     |                       | ११९. रामकली           |
| ६६. नायकी कानड़ा                  | ६२. भीम               | १२०. रामदासी मल्लार   |
| ६७. नारायणी                       | ६३. भीम पलासी         | १२१. रेवा             |
| ६८. पटदीप                         | ६४. भूपाल तोड़ी       | १२२. ललित             |
| ६९. पटमंजरी                       | ६५. भूपाली            | १२३. ललित पंचम        |
| ७०. पंचम                          | ६६. भैरव              | १२४. ललिता गौरी       |
| ७१. प्रदीपकी या पटदीपकी           | ६७. भैरव बहार         | १२५. विभास (भैरव थाट) |
| ७२. परज                           | ६८. भैरवी             | १२६. शंकरा            |
| ७३. पहाड़ी                        | ६९. मधुमाद सारंग      | १२७. श्याम कल्याण     |
| ७४. पीलू                          | १००. मधुवंती          | १२८. शहाना            |
| ७५. पूरिया                        | १०१. मल्लार या मल्हार | १२९. शुद्ध सारंग      |
| ७६. पूरिया धनाश्री                | १०२. मलुहाकेदार       | १३०. शुक्ल बिलावल     |
| ७७. पूर्वी                        | १०३. मारवा            | १३१. शुद्ध कल्याण     |
| ७८. पूर्वाकल्याण या पूरिया कल्याण | १०४. मारू बिहाग       | १३२. शिवमत भैरव       |
| ७९. बृन्दावनी सारंग               | १०५. मालगुंजी         | १३३. सरपरदा           |
| ८०. बरवा                          | १०६. मालश्री          | १३४. साजगिरी          |
| ८१. बसंत                          | १०७. मालीगौरा         | १३५. सिद्धरा          |
| ८२. बसंत बहार                     | १०८. मालकोश           | १३६. सुघराई           |
| ८३. बहार                          | १०९. मियाँ मल्हार     | १३७. सूर मल्लार       |
| ८४. बागेश्री                      | ११०. मियाँ की सारंग   | १३८. सूहा             |
| ८५. बिलासखानी तोड़ी               | १११. मुल्तानी         | १३९. सोहनी            |
| ८६. बिलावल                        | ११२. मेघ              | १४०. श्री             |
| ८७. बिहाग                         | ११३. मेघ मल्लार       | १४१. हंसकंकणी         |
| ८८. बिहागड़ा                      | ११४. माँड             | १४२. हंसध्वनि         |
| ८९. बंगाल भैरव                    | ११५. यमन              | १४३. हमीर             |
| ९०. भंखार                         | ११६. यमन कल्याण       | १४४. हिंडोल           |
|                                   | ११७. यमनी बिलावल      | १४५. हेमन्त           |



## अङ्गना

यह आसावरी थाट का राग है । इसमें गांधार-धैवत कोमल तथा दोनों निषाद लगते हैं । आरोह में गांधार को वर्जित रखते हैं और अवरोह में धैवत को, अतः जाति षाडव-षाडव है । वादी स्वर तार सप्तक का षड्ज है और सम्वादी पंचम है । गांधार स्वर को अवरोह में वक्र रखते हैं ।

आरोह में म प ध्रु, निसं लेते हैं और अवरोह में संध्रु, निसं, ध्रु नि प । गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है । इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स रे म प ध्रु, नि सं । यहाँ सरेमप में 'सारंग' की छाया आती है । संध्रु निप, मपगुम रेस । जिन रागों में निप और गुमरेस लगता है, उन्हें 'कान्हड़ा' का प्रकार कहा जाता है । अतः यह भी एक 'कान्हड़ा' का ही एक प्रकार है ।

स्वरूप—संध्रु, निसं, ध्रु नि प, मपगुमरेस ।

## अल्हैया बिलावल

इसके आरोह में मध्यम वर्जित है अतः इसकी जाति षाडव-सम्पूर्ण है । इसमें धैवत वादी और गांधार सम्वादी है । यह एक उत्तरांग अर्थात् अवरोहांग प्रधान राग है । इसमें 'बिलावल' ही के स्वर लगते हैं । परन्तु आरोह में कोमल निषाद के अल्प प्रयोग से वह भिन्न होकर 'अल्हैया बिलावल' कहलाता है । व्यवहार में लोग 'बिलावल' को ही 'अल्हैया बिलावल' समझ लेते हैं । इसीलिए 'शुद्ध बिलावल' अप्रचलित राग बन बैठा है । इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सरे गप, धनि निसां । सां नि, ध नि ध प, मग रेसा ।

स्वरूप—ग रे ग प म ग, ग प ध नि ध प, ध म ग, रे ग प म ग, रेग, ग प म रेसा । इसमें ध म ग और ध ग स्वर-संगति महत्वपूर्ण है, जो बिलावल-अंग प्रदर्शित करती है ।

## अहोर भैरव

भैरव थाट से उत्पन्न यह सम्पूर्ण जाति का राग है । इसके पूर्वांग में 'भैरव' और उत्तरांग में 'काफी' का मिश्रण होता है । वादी स्वर मध्यम और सम्वादी षड्ज है । इसका गायन समय प्रातःकाल है । मध्यम पर विश्रान्ति बड़ी शोभनीय होती है । इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सारु गम पध निसां । सां नि धपम गरेसा ।

स्वरूप—ग, म, रे, सा, रेग, म, प, धनिध, प, मप, मग, मरे, सा, ममरेम, पपमप, पपपध, धपध, मपगम, रेरेगम, पगरेसा ।

## आनन्द भैरव

यह भैरव थाट का राग है, जिसमें तीव्र धैवत लगता है । पूर्वांग में 'भैरव' और उत्तरांग में 'बिलावल' के संयोग से इसका जन्म हुआ है । वादी मध्यम और सम्वादी



पङ्ज है। गायन समय प्रातःकाल है। कुछ लोग आरोह में कोमल धैवत और अवरोह में तीव्र धैवत करके भी गाते हैं लेकिन वह अधिक प्रचलित नहीं। इसमें भैरव के अनुसार ही ऋषभ पर आंदोलन होता है और मध्यम पर विश्रान्ति भली दिखाई पड़ती है। आसावरी थाट का आनन्द भैरवी इससे बिल्कुल भिन्न है क्योंकि उसमें गांधार और निषाद कोमल लगते हैं। आनन्द भैरव की जाति सम्पूर्ण है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सारे, गमपधनिसां। सां नि ध प म ग रे सा

स्वरूप—ग, मगरे, गरे, सा, सा, रे ग, म, म, मप, सां, ध नि प, मग, मरे, पमगरे, रे, सा।

## आभोगी

यह कर्नाटिक राग है जो काफी थाट से उत्पन्न हुआ है। जाति औडव है, गांधार कोमल लगता है। वादी षड्ज और सम्वादी मध्यम है। पंचम और निषाद वर्जित स्वर हैं तथा समय प्रातःकाल है। षड्ज पर विश्रान्ति रहती है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सारेग सां। सां ध म ग रे सा।

स्वरूप—म ग रे सा, ध ध सा, सा, म, ममधग, मग मध, सां, सां, सां ध सां, ध मध, ग।

## आरभी या आरभटी

यह राग विलावल थाट से उत्पन्न माना जाता है क्योंकि इसमें सभी स्वर शुद्ध लगते हैं। इसके आरोह में गांधार और निषाद वर्जित हैं तथा अवरोह सम्पूर्ण है। इसलिए इसकी जाति औडव-सम्पूर्ण मानी जाती है। इस राग का वादी स्वर ऋषभ तथा सम्वादी धैवत है। गायन-वादन का समय रात्रि का द्वितीय प्रहर सर्व सम्मति से मान्य है। इसमें 'रे म' और 'ध म' स्वर संगतियाँ बार-बार आती हैं। यह राग माँड और खंवावती रागों के मिश्रण से बना है, ऐसा संगीतज्ञों का मत है। माँड और मेवाड़ा इन दोनों रागों से यह राग बिल्कुल अलग है। माँड के आरोह में ऋषभ व धैवत स्वर दुर्बल रहते हैं तथा आरभी में ये दोनों स्वर ( रे व ध ) प्रबल हैं, माँड राग का स्वरूप सम्पूर्ण वक्र है तथा आरभी में केवल अवरोह में ही पंचम वक्र है। इसके सिवाय "वादिभेदे राग भेदः" इसके प्रमाण से भी यह राग स्वतन्त्र है।

इस राग की मुख्य तान—“रे, म प ध, धनि, प ध सां, नि, ध प, ध म, गरे, रे सा” है। इस राग को कुछ गुणी लोग 'पटखंवावती' भी कहते हैं। इसका आरोह

अवरोह इस प्रकार है—सा, रे, म प ध, ध नि, प ध सां। सां नि ध प ध म, प, म ग रे, सा।

स्वरूप -रे, म, प ध, धनि, प ध म, प, म ग रे, रे सा।



## आसावरी

यह आसावरी थाट का आश्रय राग है। इसमें गांधार, धौवत और निषाद कोमल हैं, जेप स्वर शुद्ध हैं। आरोह में गांधार और निषाद वर्जित हैं अतः जाति औडव-सम्पूर्ण है। वादी धौवत और सम्वादी निषाद है। गायन-वादन का समय दिन का दूसरा प्रहर है। इसी में जब ऋषभ को कोमल कर दिया जाए तो वही 'कोमल ऋषभ आसावरी' कहलाता है। यह उत्तरांग प्रधान राग है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स रे म प ध्र सं। सं नि ध्र, प, म ग रे स।

स्वरूप—सा, रेम, प, प, ध्र, प, ध्रम, पध्रमप, ग, रेसा. रेम, प, निध्र, प, सां नि, ध्र, प, मपध्रमपग, रे, सा, रेम, प, प, ध्र, प।

## आभोगी कानड़ा

'अभोगी' या 'आभोगी' कर्नाटिक पद्धति का मूल राग है जो उत्तर भारत में 'आभोगी' तथा 'कानड़ा' दो रूपों में प्रचार में आ गया है। 'आभोगी' के स्वर हैं सा रे, ग म ध, सां। नि, ध म ग रे सा। इस स्वर रचना में 'कानड़ा' अंग है जिसका सूचक कोमल गांधार है। जब आभोगी के अवरोह में गांधार वक्र करके लेंगे जैसे-ग, म रे सा, तो इतने से ही 'कानड़ा' का रंग फैल जायेगा और 'आभोगी कानड़ा' हो जायेगा। इस राग में रिषभ, धौवत शुद्ध हैं एवं गांधार कोमल है। इसकी जाति औडव है क्योंकि पंचम और निषाद वर्जित हैं।

अवरोह में कोमल गांधार वक्र है। समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सा, ध्र सा रे ग, म ध, सां। सां ध, म ग, म रे सा।

स्वरूप—सा रे ध्र सा, रे ग म ग ग, म रे सा।

## कलावती

यह नवनिर्मित राग है जो कर्नाटिक पद्धति से आया है। इसमें रिषभ, गांधार और धौवत शुद्ध हैं तथा निषाद कोमल है। मध्यम वर्जित होने से इसकी जाति षाडव है। रिषभ वादी और पंचम सम्वादी है। समय रात्रि है। राग की रंजकता रिषभ और पंचम पर ही दिखाई देती है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सा, रे ग प, ध नि सां। सां नि ध प, ग रे, नि सा।

स्वरूप—सा, नि, सा ग रे, ग प, प ग रे, नि नि ध्र सा, ग प ध नि ध प ग रे, प ग रे, रे, नि सा। सां सां रें नि सां, धनि प ध, ग प ग रे ध, ध नि ध प ग रे, रे ग प ग रे रे नि सा।

## कामोद

यह कल्याण थाट का राग है। इसमें दोनों मध्यम का प्रयोग किया जाता है। तीव्र मध्यम का प्रयोग केवल आरोह में होता है। वादी स्वर पंचम और सम्वादी

धंशत-विशारद



ऋषभ है। जाति संपूर्ण-संपूर्ण है परन्तु गांधार और निषाद को आरोह में दुर्बल रखते हैं। अवरोह में कभी-कभी कोमल निषाद का प्रयोग विवादी स्वर के नाते कर लिया जाता है। इस राग में ऋषभ से पञ्चम पर जाते हैं। गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सरे, प, मप धप, निधसं। सं, निध, प, मपधप, गमरेस। अवरोह में गांधार को वक्र रखते हैं।

स्वरूप—रे, प, मपधप, गमप, गमरेस। जब किसी राग में रेप या गमप, गमरेन ले लेते हैं तब इस स्वर-समुदाय को 'कामोद' का अंग कह देते हैं।

## काफ़ी

यह काफ़ी थाट का आश्रय राग है। इसमें ग-नि कोमल, शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। वादी पञ्चम व संवादी षड्ज है। राग की सुन्दरता बढ़ाने के लिए इसमें शुद्ध गांधार व शुद्ध निषाद का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे रे ग म प ग रे और म, पध नि सं, निधप म ग रे। रेप और पग की संगति बार-बार आती है। जैसे—रे प म प ग रे या म प ग रे। गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इसका आरोह अवरोह इस प्रकार है—स रे ग म प ध नि सं। सं निधप, मगरे, स।

स्वरूप—सा रे ग, सा रेप, म प, ध प, नि ध प, सां, नि ध प, म प ध प, ग रे, रेगरेमगरेसा, सासा रे रे ग ग म म प।

## काफ़ी कानड़ा

यह राग काफ़ी कानड़ा रागों के मिश्रण से बना है। साधारणतः पूर्वांग में 'कानड़ा' तथा उत्तरांग में काफ़ी राग रहने से काफ़ी-कानड़ा का स्वरूप स्पष्ट और शुद्ध रूप में दिखाई देता है। ग-नि स्वर कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध हैं। वादी स्वर पंचम तथा संवादी षड्ज है। जाति वक्र-संपूर्ण है। प्रयोग काल रात्रि का द्वितीय प्रहर है। नि प स्वरों की संगति से तथा अवरोह में वक्र गांधार एवं उस पर आंदोलन होने से कानड़ा स्पष्ट रूप में प्रतीत होता है। रे ग सा रे नि ध प यह स्वर-समुदाय बार-बार लेने से, साथ ही रे ग रे गरेसा रे सा इन स्वरों के प्रयोग से इस राग की

शोभा बढ़ती है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—नि सा रे ग, म प ध नि सां।

सां रें, नि ध प, म प ग म रे सा।

स्वरूप—सा रे ग, रे ग म प, ग म नि ध प, म प ध नि सां, सां नि सां रें, सां रें ग रें ग रें सां रें सां, सां नि प, म प नि प, ध प म प म ग, ग म रे सा, रे सा नि ध नि प, म प नि सा।



## कालिंगड़ा

यह भैरव थाट का राग है। ऋषभ, धौवत कामल तथा शेष स्वर शुद्ध हैं। इस राग में ऋषभ व धौवत को आंदोलित नहीं करते, जबकि भैरव में करते हैं। वादी पंचम और सम्वादी षड्ज है। इन्हीं स्वरों पर विशेष बल दिया जाता है। बार-बार पंचम पर टिकाव करने से और आलाप की समाप्ति गांधार पर करने से तथा उत्तरांग में निषाद पर बल देने से यह राग 'भैरव' से अलग हो जाता है। इसकी जाति संपूर्ण-संपूर्ण है। गायन का समय दिन का प्रथम प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स रे ग म प ध नि सां। सां नि ध प म प, ग म ग, म ग रे स।

स्वरूप—प, ध म प ग म ग, रे स।

## कीरवाणी

यह कर्नाटिक पद्धति का कीरवाणी मेल से उत्पन्न राग है जिसमें गांधार और धौवत कोमल लगते हैं। षड्ज वादी और पंचम सम्वादी है व जाति सम्पूर्ण है। इसका समय सायंकाल है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सा रे ग म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे सा।

स्वरूप—रे ग म प ध प, ग रे, नि, रे सा नि सा रे म ग, रे, सा, म प ध नि, सां, रे ग रे रे सां रे सां नि सां, नि ध प, ग म, ग ध प, ग रे सा।

## कुकुभ

इसका थाट बिलावल है और समय प्रभातकाल है। वादी स्वर मध्यम और सम्वादी षड्ज है। बिलावल के समान ही इसमें दोनों निषादों का प्रयोग होता है और सम्पूर्ण अवरोह सुन्दर दिखाई देता है। सा-प और सा-म स्वर संगतियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ लोग 'अल्हैया' और 'झिझोटी' का योग कर के तथा कुछ व्यक्ति 'जैजैवन्ती' तथा 'अल्हैया' के मिश्रण से इसे गाते हैं। इसकी जाति सम्पूर्ण है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सा रे ग म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे सा।

स्वरूप—पहला प्रकार सा ग, म, नि ध प म प, ग म, ध नि सां, सां ध नि प, ध म, ग, सा, ग, म और दूसरा प्रकार—रे, रे, ग म ग रे, स, नि सा रे, सा, ध, नि प, ग म, म प, ध म प, सां, ध, प, ध म ग, म रे, सा।

## केदार

यह कल्याण थाट का राग है। इसमें दोनों मध्यम तथा शेष स्वर शुद्ध हैं। आरोह में ऋषभ और गांधार वर्जित होने से सीधे 'सा' से 'म' पर जाते हैं। कुछ लोग गांधार को आरोह में दुर्बल रख कर स म, ग प, म प ध प की भाँति गांधार को ले लेते हैं। इसमें अवरोह सम्पूर्ण है अतः इसकी जाति औडव-सम्पूर्ण है। अवरोह में गांधार को वक्र रखते हैं, अर्थात् ग म रे स की भाँति लेते हैं, मध्यम को मुक्त रूप से लेने



से यह राग तुरन्त स्पष्ट होता है। तीव्र मध्यम को केवल पंचम के साथ लेते हैं, जैसे—  
म प ध प म। अन्तरा में एकदम पंचमसे षड्ज पर जाने से राग अच्छा लगता है।  
जैसे—म प ध प सं या ध म प सं या म प सं। वादी मध्यम और सम्वादी षड्ज है।  
गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स म,  
म प, ध प, नि ध सं। सं नि ध प म, प म रे स।

स्वरूप—स म, म प, म प ध प म, प म रे स।

### कोमल ऋषभ आसावरी

‘आसावरी’ राग के स्वरूप को ही कुछ क्लिष्ट बनाकर, कोमल ऋषभ का प्रयोग  
करके लोग इसे गाते हैं। इस राग में रे ग ध नि कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध लगते  
हैं। वादी स्वर धैवत तथा सम्वादी गांधार है। जाति औडव-सम्पूर्ण एवं प्रयोग काल  
दिन का दूसरा प्रहर है। राग का चलन प्रायः ‘आसावरी’ राग के समान ही है।

इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सा रे म प ध सां। सां नि ध म प गु, रे रे सा।  
स्वरूप—सा ध ध सा, रे गु गु गु, रे रे नि, सा नि सा, सा रे म, म म प, प ध  
ध प, ध म प गु गु, रे नि, नि नि सा रे रे म प, म प ध ध म प ध नि ऽ ध म म प ध  
म म  
म गु गु, रे रे नि सा। सा, रे म प ध ध प ध म, म प ध सां, रे नि, रे नि नि सां।

### कौशिक कानड़ा अथवा कौंसी

यह आसावरी थाट से उत्पन्न सम्पूर्ण जाति का राग है। इसमें निषाद व  
गांधार कोमल लगते हैं। मध्यम वादी और षड्ज सम्वादी है। समय मध्य-रात्रि  
है। इसमें ‘कानड़ा’ व ‘मालकौंस’ का अंग रहता है। इस राग का दूसरा प्रकार  
काफ़ी थाट वाला है, जिसे ‘बागेश्री’ अंग से गाते हैं। इसका आरोह-अवरोह इस  
प्रकार है—सा रे गु म प ध नि सां। सां नि ध प म गु रे सा।

स्वरूप—(मालकौंस अंग का कौंसी) सा नि ध नि, सा म, म गु, म गु, रे सा, नि ध,  
सा, म, म गु प, प गु, रे गु म गु रे सा। म ध नि सां, सां, सां मं, मं गुं रे सां, सां नि  
ध म, गु प गु, म गु रे सा।

स्वरूप—(बागेश्री अंग का कौंसी) प म, प ध गु, म प, गु म रे सा, रे नि सा,  
गु, म, रे सा, ग म सा, ध ध, ध नि प, ध नि सां, रे सां, सां ध नि प, ध नि रे सां, प ध म।



## खट

यह आसावरी थाट से उत्पन्न सम्पूर्ण जाति का राग है जिसमें गांधार व धैवत कोमल और दोनों निषाद लगते हैं, धैवत वादी तथा गांधार संवादी है। समय दिन का दूसरा प्रहर है। कोई-कोई पंचम को वादी मानते हैं और गांधार से उठाव करके पंचम पर ही मुकाम करते हैं। इसकी प्रकृति चंपल तथा गमक से युक्त है। कई लोग इसे भैरव थाट में भी लेते हैं। यह छह रागों से मिलकर बना है, ऐसा भी कुछ लोग कहते हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सा रे ग म प नि धु नि सां । सां नि धु प म ग रे सा ।

स्वरूप—रे नि सा <sup>ग</sup> म, नि नि नि सां, <sup>प</sup> नि प, प ग, म, म नि धु प, प, प ग, म, म, प <sup>ग</sup> धु नि धु प ग म ग रे सा ।

खट राग के दूसरे प्रकार का स्वरूप—रे नि सा, <sup>म</sup> ग म, प, प, प, <sup>नि नि</sup> धु धु, प, सां, <sup>म</sup> धु, प, <sup>म</sup> ग, म, नि धु, प, <sup>म</sup> धु प, ग, म, पा ग, रे सा ।

## खमाज

खमाज राग खमाज ठाठ से ही उत्पन्न है। इसमें सातों स्वर लगते हैं। इसकी जाति षाडव-संपूर्ण है। इसका वादी स्वर ग तथा संवादी स्वर नि है। आरोह में रे स्वर का प्रयोग नहीं होता। निषाद स्वर कोमल (नि) लगता है। गायन-समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सां, गम, प, ध नि सां । सां नि धप, मग, रेसा ।

स्वरूप—गमधनिसां, निध, मपध, मग ।

## खमाजी दुर्गा

यह राग खमाज थाट से उत्पन्न होता है। इसमें दोनों निषाद लगते हैं तथा शेष स्वर शुद्ध हैं। खमाज थाट में जब ऋषभ व पंचम को वजित कर देते हैं तो इसकी रचना होती है अतः इसकी जाति औडव-औडव है। वादी स्वर गांधार और संवादी निषाद है। आरोह में शुद्ध और अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग होता है। गायन-समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स ग म ध नि सं । सं नि ध म ग स ।

स्वरूप—नि स, ग म ध, नि ध, म ग, स ।



## खंभावती

यह राग खमाज थाट से उत्पन्न हुआ है। 'खमाज' में किंचित् परिवर्तन करने से ही 'खंभावती' उत्पन्न हो जाता है। अतः स्वरूप प्रायः 'खमाज' जैसा ही है। इसमें

मसा की स्वर संगति विशेष रंजक रहती है। 'खमाज' के आरोह में ऋषभ वर्जित है। लेकिन 'खंभावती' के आरोह में वह रक्तिवर्धक हो जाता है। इसके अवरोह में ऋषभ वर्जित है अतः जाति सम्पूर्ण षाडव है। वादी गांधार और संवादी धैवत है। 'खमाज' और 'मांड' के संयोग से यह राग बना है। गायन समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है। उत्तरांग में कुछ वागेश्वरी का आभास होता है, परन्तु कोमल गांधार न होने से वह भिन्न हो जाता है। 'ध-म' संगति राग दर्शक होती है। रे म प और ध म ग तथा

मसा के ये टुकड़े इस राग में महत्त्वपूर्ण होते हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सा रे ग म प नि ध सां । सां नि ध प म ग म स ।

स्वरूप—सा, रे म प ध, प ध सां, नि ध प ध म, गमस, म, म प, नि, सां सां

रे गं सां, निध, धनिप, धसां निध, धम, ग, मस ।

## गांधारी

यह आसावरी थाट से उत्पन्न षाडव-सम्पूर्ण जाति का राग है। इसमें गांधार, धैवत कोमल तथा निषाद और ऋषभ कोमल व तीव्र दोनों प्रकार के लगते हैं। आरोह में गांधार वर्जित है। वादी धैवत एवं संवादी गांधार है। समय दिन का दूसरा

प्रहर है। इसका साधारण चलन आसावरी-अंग का है "ग रे म प" यह स्वर-विन्यास इसका स्वतन्त्र अंग है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सा रे म प ध नि सां । सां नि धु प म ग रे सा ।

स्वरूप—सा, नि ध प, धमप, गुरेमप, निधु, प, नि, निसां, धु, प, धु, म, पग, रे, सा, रेमप, निधु, निधुप, मप, धमप, रे, सा ।

## गारा

यह खमाज थाट से उत्पन्न हुआ है। इसमें दोनों गांधार और दोनों ऋषभ लगते हैं; कोमल गांधार अवरोह में लगता है। इसका ढाँचा खमाज अंग का होने के कारण इसे खमाज थाट में सम्मिलित करना होगा। वादी गांधार और संवादी



धैवत या निषाद माना जाता है। गायन समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है। इसका विस्तार मन्द्र और मध्य सप्तक में ही विशेष रूप से होता है। कुछ लोगों के मत से इसमें षड्ज वादी और पंचम संवादी है। क्षुद्र प्रकृति का होने के कारण यहराग ठुमरी जैसे गीतों के योग्य है। वास्तव में इस प्रकार के रागों को धुन भी कह दिया जाता है। इसकी जाति सम्पूर्ण है और आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सारे गरे गमपध निसां । सां नि ध नि पमगरे गुरेसा ।

स्वरूप—स, धनि, मग, मप, मग, म, रे गुरेसा, निसा, निध निप मप धनि सा, रे निस धनि, ग, मग, साग, मप, म, रेगुरेसा, प, मप, गम, रेगुरेसा, रे निसा, निध, निप, मप, धनिसा ।

### गुजरी या गुर्जरी तोड़ी

यह तोड़ी थाट का राग है। इसमें ऋषभ, गांधार व धैवत कोमल हैं। मध्यम तीव्र और निषाद शुद्ध है। पञ्चम स्वर वर्जित है अतः जाति षाडव-षाडव है। वादी धैवत व संवादी गांधार है। गायन समय दिन का दूसरा प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स रे ग म ध नि सं । सं नि धु म ग रे स ।

स्वरूप—स रे ग मध, म ग रे ग रे स ।

### गुणकरी या गुणक्री

‘गुणकरी’ अथवा ‘गुणक्री’ भैरव थाट से उत्पन्न हुआ है। गांधार और निषाद वर्जित होने से इसकी जाति औडव है। वादी धैवत और संवादी ऋषभ है। विलम्बित लय में ‘भैरव’ अंग के इस राग का अच्छा प्रभाव पड़ता है। इसकी प्रकृति गम्भीर और शांत है तथा समय प्रातः काल का प्रथम प्रहर है। राग ‘जोगिया’ से इसकी कुछ समानता है लेकिन ‘जोगिया’ में निषाद का प्रयोग होने और उसके ‘भैरव’ अंग न होने से ‘गुणक्री’ भिन्न रहता है। कोई-कोई लोग इसके कोमल धैवत का उच्चार करते समय कोमल निषाद का स्पर्श भी करते हैं। इस राग को ‘संगीत पारिजात’ और ‘राग तरंगिणी’ जैसे प्राचीन ग्रंथों का आधार प्राप्त है। बिलावल थाट का ‘गुणकली’ नामक राग इससे बिलकुल भिन्न है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सा रे मप धुसां । सांधु, पमरे सा ।

स्वरूप—सा, सांरे, रेसा, ध, सा, , रेसा, मपमरे सा, साधुप, मपम, रेसा, धध. नि प

सांरे सां सां धु सां रे धु प, धु सां धु प, मपमरे सा ।



## गुणकली

इसका थाट विलावल है और जाति सम्पूर्ण। वादी पङ्ज और संवादी पंचम है। यह राग 'विलावल' अंग से गाया जाता है अतः गायन समय दिन का प्रथम प्रहर ही उचित है। कुछ लोग इसे 'कल्याण' अंग का कहते हैं। वादी स्वर गांधार है। ग्रंथों में 'गुणकरी' अथवा 'गुणक्री' नामक एक गौरी (वर्तमान भैरव) थाट से उत्पन्न होने वाले राग का वर्णन किया गया है। वह स्वरूप भी कुछ जगह प्रचलित है। लेकिन इस गुणकली से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सा रेगमपध निसां। सां निधप मगरेसा।

स्वरूप—सा, गरेसा निध, निधप, रेसा, सा, गप, र, सासा, गरसा, निधप, सापप, निध, सां, सां, निध, सारे सानि, पप धसां, धप, ग, परेसा।

## गोरख कल्याण

यह खमाज थाट से उत्पन्न षाडव जाति का राग है। निषाद कोमल है और गांधार वज्रित स्वर है। वादी मध्यम और संवादी पङ्ज है। पंचम दुर्बल है। समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सा रे म ध नि ध सां सां नि ध प म रे सा।

स्वरूप सा नि ध सा, म रे म ध प म रे सा, सा, मम, धनिध मरे नि ध सा।  
म ध नि सां, रें मं रें सां ध नि ध प, धम, ध नि ध, रे म म रे सा।

## गौड़ मल्हार

यह खमाज थाट का राग है। इसमें दोनों निषाद तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। 'शुद्ध मल्हार' का स्वरूप रे प, म प ध सं ध पम है तथा उसमें मप मग, रे ग रे म ग रे स 'गौड़ सारंग' का अँग जोड़ देने से इसकी रचना हो जाती है। वादी मध्यम व संवादी पङ्ज है। मध्यम पर न्यास राग को अधिक मधुर बनाता है। इसके आरोह में निषाद को अल्प रखते हैं। जाति संपूर्ण-संपूर्ण है। गायन समय वर्षा ऋतु है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स रे ग म, रे प, म प ध सं। सं ध, नि प, मग मरे स।

स्वरूप—रे ग रे म ग रे स, म प ध सं, ध प म।



## गौड़ सारंग

यह कल्याण थाट का राग है। इसमें दोनों मध्यम लगते हैं, तीव्र मध्यम केवल आरोह में लेते हैं। जाति वक्र सम्पूर्ण है। वादी स्वर गांधार व संवादी धौवत है। गायन समय दोपहर है। ग रे म ग स्वर समूह को बारम्बार लेने से राग स्पष्ट हो जाता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स, ग रे म ग, प मं ध प, नि ध सं। सं नि ध प, धर्म पग, मरे, प, रेस।

आलाप तथा तान के अन्त में प रे, स लेते हैं।

स्वरूप—स, ग रे मग, परे, स। अवरोह में कभी-कभी कोमल निषाद का प्रयोग कुछ लोग कर लेते हैं।

## गौरी (भैरव थाट)

‘गौरी’ राग के अनेक प्रकार हैं जिनमें से यह एक भैरव थाट से उत्पन्न भेद है। इसके आरोह में गांधार और धौवत वर्जित है तथा अवरोह संपूर्ण है। इसलिए इसकी जाति औडव-संपूर्ण है। वादी स्वर ऋषभ और संवादी पंचम है। यह सायंगेय राग है जिसमें कुछ लोग तीव्र मध्यम का प्रयोग भी करते हैं जो अनुचित प्रतीत नहीं होता। ‘गौरी’ के इस भेद में ‘कार्जिगड़ा’ और ‘श्रीराग’ का मिश्रण है। ‘मंद्र सप्तक’ का निषाद इसमें एक विशेष रीति से लिया जाता है और उसी पर विश्रान्ति की जाती है। इसके इस प्रयोग से ही यह ‘गौरी’ के अन्य प्रकारों से भिन्न रूप में पहचाना जाता है। इसमें ऋषभ और धौवत कोमल लगते हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सा रे म प नि सां। सां नि ध प म ग रे सा।

स्वरूप—सा नि ध नि, रे ग रे म, ग रे, सा रे, नि नि सा, म ध नि सा, ध नि सा, म म रे ग, रे सा। म प ध प म, रे ग, रे रे सा; नि, सा।

## गौरी (पूर्वी थाट)

पूर्वी थाट से उत्पन्न ‘गौरी’ का यह औडव संपूर्ण जाति वाला प्रकार है जिसमें ऋषभ और धौवत कोमल तथा दोनों मध्यम लगते हैं। ऋषभ वादी और पंचम संवादी है। आरोह में गांधार और धौवत वर्जित हैं। गायन समय संध्याकाल है। इसमें भी ‘श्री’ राग का अंग लगता है। कुछ लोगों के मतानुसार स्वल्प धौवत ग्रहण करने से यह ‘श्री’ राग से अलग हो जाता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सारु प मं प नि सां। सां नि ध प म प ग रे म ग रे सा।

स्वरूप—मेमं ग रे सा, नि ध नि, रे, रे ग ग रे सा, मं ध नि सा, रे म ग रे,



सारे नि, सा, मं ध मं ध नि, सा रे, रेग रेसा म ग, म ध प म, रेग, रेमं, ग रे सारे नि, सा ।

गौरी का एक अन्य प्रकार जिसमें आरोह में धैवत लेकर श्रीराग का विस्तार मध्य और तार-सप्तक में करते हुए गाया जाता है, उसका स्वरूप इस प्रकार है—

मं नि  
प, मं, रेग रेसा, मं ध, निसां रें सां, रें नि ध प, प ध ग रे, ग रे, सा, सा प, प मं ग रे, ग रेसा, नि सां रें नि ध प ।

### चन्द्रकान्त

कल्याण थाट से उत्पन्न यह एक अप्रसिद्ध राग है, इसमें गांधार वादी व धैवत संवादी है । आरोह में धैवत वर्जित है अतः जाति औडव संपूर्ण है । मध्यम तीव्र लगता है । इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सारेग मंग प नि ध नि सां । सां नि ध प मं ग रे सा ।

स्वरूप—ग, रे, सा, नि ध, नि ध प, सागरे ध मंग, प, रे सा ।

### चन्द्रकौंस

यह काफ़ी थाट का औडव जाति वाला राग है जिसमें गांधार और निषाद कोमल लगते हैं । ऋषभ और पंचम वर्जित है । मध्यम वादी और षड्ज संवादी है । इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सा ग म ध नि सां । सां नि ध म ग म ग सा ।

स्वरूप—सा, नि ध, मं ध नि सा, म ग, सा, म ग म ध, निसां निसां मंग, सां निसां

नि ध, नि म ध, नि ध, म ग, म ध नि ध, म ग, म ग, सा ।

### चारुकेशी

यह कर्नाटिक पद्धति का 'चारुकेशी मेल' से उत्पन्न राग है जिसमें धैवत और निषाद कोमल लगते हैं । पंचम वादी और षड्ज संवादी है तथा इसकी जाति संपूर्ण है । समय मध्य रात्रि है । इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सारे ग म प ध नि सां । सां नि ध प म ग रे सा ।

नि  
स्वरूप—ग रे, म ग म प, नि ध प म, ग म ग रे, सा नि ध, नि सा, ग म प ध, निसां, सां नि ध नि, ध प, प प, गं गं, मं गं रें सां, निसां ध प म म ग म ।

### चांदनी केदार

यह प्रचलित राग 'केदार' का ही एक प्रकार है । इसमें दोनों मध्यम तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं । गांधार स्वर वर्जित है, अतः जाति षाडव है । वादी स्वर मध्यम



तथा सम्वादी स्वर षड्ज है। इसका प्रयोग-काल रात्रि है। 'केदार' राग में से कामल निषाद वर्जित करके तथा तीव्र मध्यम का अधिक उपयोग करके 'चाँदनी केदार' राग बन जाता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

म  
सारे साम, मंमप, ध नि सां । सां नि ध प, मं प धप मं म, रे सा ।

म  
स्वरूप—सारेसा, साम, मंमप, पधमं पमं म, रे सा, सा म मंम प, ध पमंम,  
मं ध ध म — मं सा  
पध निध प प मं प म, रेसा, प ध मंम सां सांरेंसां, सा मं रेंसां, रें नि सां ध  
नि ध म  
मं प, प मं म, मप, पध धनि-धप, ध पम, प मंम रे सा ।

### छायानट

यह कल्याण थाट का राग है। इसमें दोनों मध्यम तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। तीव्र मध्यम केवल आरोह में और शुद्ध मध्यम आरोह व अवरोह दोनों में प्रयुक्त होता है। जाति सम्पूर्ण-सम्पूर्ण है। गांधार व निषाद को 'हमीर' और 'केदार' के समान ही आरोह व अवरोह दोनों में वक्र रखते हैं। विवादी के नाते कोमल निषाद का प्रयोग भी किया जाता है। वादी स्वर पंचम और सम्वादी ऋषभ है। गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। इस राग में 'प रे' की संगति मधुर लगती है। जब 'गौड़ सारंग' में 'प रे' लेते हैं तो षड्ज पर आते हैं। जैसे-गरेमग, प रे, स। परन्तु जब इस राग में 'मप रे' लेते हैं तो षड्ज पर इस प्रकार आते हैं। जैसे परे, गमप, गमरेस। सरेगम, गम, स्वर समुदाय 'छाया' राग का है। इन दोनों रागों को मिलाकर 'छायानट' गाया जाता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सरे, गमप, निध, सं । सं, निधप, मंमप, गमरेस ।

स्वरूप—परे, गमप, मगमरे, स ।

### जयन्त मल्हार

यह राग 'जयजयवंती' और मियाँ 'मल्हार' का मिश्र स्वरूप है। इसमें दोनों गांधार तथा दोनों निषाद प्रयुक्त होते हैं। पूर्वांग में 'जयजयवंती' और उत्तरांग में 'मियाँ मल्हार' रहता है। वादी स्वर पंचम और सम्वादी षड्ज है। प्रयोग-काल मध्य रात्रि अथवा वर्षा ऋतु है। इस राग को काफी थाट के अन्तर्गत माना गया है। 'रे गु रे', 'ध नि रे', 'म रे प', 'नि ध नि' स्वरावलियाँ रागवाचक हैं। जाति सम्पूर्ण है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सा ध नि रे, ग म रे प ध नि सां । सां नि ध नि प, म ग, रे म प, गु म रे सा ।

स्वरूप—सा रे सा, नि ध नि रे, ग म रे प, गु म रे सा, रे ग म रे प, नि ध नि सां, नि ध प, म ग रे गु रे सा ।

### षंगीत-विशारद



## जलधर केदार

बिलावल थाट से उत्पन्न यह 'केदार' का एक भेद है जिसे 'जलधर' अथवा 'जलधर केदार' कहते हैं। गांधार और निषाद वर्ज्य होने से इसकी जाति औडव है। इसमें 'केदार' और 'मल्हार' का संयोग होता है। वादी मध्यम और सम्वादी षड्ज है। स्थूल रूप में 'केदार' राग का प्रस्तार करके बीच-बीच में रे-प और म-रे स्वर संगति तथा मध्यम पर न्यास करने से इसका स्वरूप अच्छी तरह से स्पष्ट होता है। समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सारे साम मप ध सां। सांधपम रेसा।

स्वरूप—सां, रेंसां, धपम, ममप, धपम, रेसा, सा, रेप, म, रे, सा, मपधसां, सां रेंमरेंसां, ध, प, मपसां, धप, मरेसा।

## जयजयवंती

यह खमाज थाट का राग है। इसमें दोनों गांधार, दोनों निषाद तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। जाति सम्पूर्ण-सम्पूर्ण है। वादी स्वर ऋषभ व सम्वादी पंचम है। इसमें शुद्ध और कोमल निषाद दोनों को आरोही में भी ले लेते हैं—जैसे निस धनि रे। मप नि सं या ध निसं की भाँति शुद्ध निषाद आरोही में तो लिया ही जाता है, कोमल गांधार सदैव आलाप या तान को समाप्त करते समय दोनों ऋषभ के बीच में लिया जाता है, जैसे रे गुरे, स। अन्यथा सदैव शुद्ध गांधार ही लिया जाता है; जैसे-रेगमग, रेगमप मग, रेगमपधनि संनिधप मग लेकर अन्त में रेगुरे जोड़कर षड्ज पर आ जाते हैं। मंद्र सप्तक के पंचम से एकदम मध्य सप्तक के ऋषभ पर भी आते हैं; जैसे-रेसन्निधु, रे। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स रे ग म प निसां या पधनिसां सं नि ध प मग रे, रेगुरे स।

स्वरूप—रे गुरे स, निसध नि रे।

## जैतश्री या जैताश्री

यह पूर्वी थाट से उत्पन्न औडव-सम्पूर्ण जाति का राग है। आरोह में ऋषभ और धैवत वर्जित हैं। वादी गांधार और सम्वादी निषाद है। कोई-कोई पंचम वादी और षड्ज सम्वादी मानते हैं। इसका समय सायंकाल है। ऋषभ, धैवत कोमल और मध्यम तीव्र है, कुछ लोग इसे मारवा थाट का भी मानते हैं जो प्रचार में अधिक नहीं। 'संगीत पारिजात' और 'राग विबोध' ग्रंथों में पूर्वी थाट में ऋषभ और धैवत दुर्बल स्वर वाला 'जैताश्री' राग बताया है। 'हृदय कौतुक' में भी 'जैताश्री' का वर्णन है। परन्तु वह भैरव थाट का है और इससे भिन्न है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सागम प निसां। सां नि धु प मंग रे स।

स्वरूप—निसा, सा, गप, मधुप, मंग, रेसा। प, धुप, सां, सां, रें, सां, निसां, गरेंसां, रेंनिधुप मप, गम, सारे।



## जैत या जेत

यह मारवा थाट से उत्पन्न औडव जाति का राग है। पंचम वादी एवं षड्ज सम्वादी है। इसमें दोनों ऋषभ लगते हैं। आरोह-अवरोह में मध्यम और निषाद वर्जित हैं तथा समय सार्यकाल है। इस राग के दो-तीन प्रकार प्रचलित हैं जिनमें से एक में अल्प रूप में तीव्र मध्यम लगता है और तीसरे प्रकार में दोनों धैवत लगते हैं। प्रस्तुत जैत में 'पधग' स्वर विन्यास राग वाचक है और 'साग' तथा 'साप' ये स्वर संगतियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। कल्याण थाट का 'जैत कल्याण' राग 'जैत' से भिन्न राग है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है

गपधपसां । सां पधप ग रेसा ।

स्वरूप—सा, रेसा, रे गप, प, धग, पधग, रेग, धपग रे, सा, सारे सा । पसां सां, सांरेंसां, प, पग, रे गप, सां, पधग, सागप, धपग, गरेसा, सारेसा ।

मध्यम लगने वाले राग जैत का स्वरूप इस प्रकार है—सा, गप, रेसा, ग रेग मधम, ग, रेसा । पपसां, सां, सांरेंसां, पपग, सासागप, पधग, रेग मध मंग, रेसा ।

दोनों ऋषभ व दोनों धैवत लगने वाले 'जैत' का स्वरूप इस प्रकार है—निसाग, पम, धपग, सारेसा, गपसां, सांरें, सां, गरेग, रेसा, पगप, मध, निसाग, पमधुप ग, रेग, रेसा ।

## जैत कल्याण

यह कल्याण थाट से उत्पन्न हुआ है। मध्यम और निषाद स्वर वर्ज्य होने से इसकी जाति औडव-औडव है। समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। वादी स्वर पंचम है तथा सम्वादी षड्ज है। आरोह में ग-प और अवरोह में ध-ग स्वरों की संगति बड़ी रंजक और राग वाचक होती है। आरोह में ऋषभ और धैवत अल्प प्रमाण में लिए जाएँ तो ठीक रहता है। वादी स्वर के भेद से, यह राग 'भूपाली' से अलग हो जाता है। 'जैत' राग 'जैतकल्याण' से भिन्न राग है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सा रे ग प ध सां । रें सां ध प ग रे सा ।

स्वरूप—सा, ग, पग, पध, पग, रे सा, पग, पधग, गपरे, सा, प, सा, रे सा, ग प सां, रें सां, सां ध सां, ग प ध सां, प, प ध ग ।



## जोग

यह काफ़ी थाट का राग है जिसका प्रचार हाल ही में हुआ है। इसमें दोनों गांधार लगते हैं। निषाद कोमल है और ऋषभ व धैवत वर्जित हैं। अन्य स्वर शुद्ध हैं। इसकी जाति ओडव है। इसके आरोह में शुद्ध गांधार तथा अवरोह में कोमल गांधार का प्रयोग किया जाता है। नि, नि सा ग, ग म, प ग इन स्वरों से 'हंसकंकणी'

तथा 'पीलू' का आभास होता है परन्तु आगे म प गुसा इस प्रकार ऋषभ वर्जित मीड से 'हंसकंकणी' की छाया समाप्त हो जाती है। आरोह में प सां नि सां इन स्वरों में 'भीमपलासी' की छाया तथा अवरोह में नि प म ग, प नि, प म ग, इन स्वरों में 'तिलंग' का तिरोभाव है जिससे राग की मधुरता बढ़ती है। अवरोह में गांधार पर षड्ज का कण तथा पंचम पर निषाद का कण लगाने से राग में विशेष वैचित्र्य आ जाता है, जैसे सा ग सा। म निप गु S।

सां

इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—निःसाग मप निःसां। सां नि पमSS, ग नि  
S म प गु SS मप गSS सा।

सां

नि सा सा

स्वरूप—गमपऽनि सां, निपमग, म, पगऽसा, नि, नि सा ग SSS।

## जोगिया

यह भैरव थाट का राग है। इसमें ऋषभ, धैवत कोमल और शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। आरोह में गांधार, निषाद और अवरोह में केवल गांधार वर्जित है। अतः जाति ओडव-पाडव है। वादी मध्यम व सम्वादी षड्ज है। गायन समय दिन का प्रथम प्रहर है। मध्यम स्वर को मुक्त रखने से और कभी-कभी अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग करने से यह राग तुरन्त स्पष्ट होता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सरेम पधुसं। सं निधु प धु म रे स।

स्वरूप—म म प धु सं, धुनिधुप, मरे, रेस।



## जोगकौंस

इस राग में दोनों गांधार, धौवत कोमल तथा बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं। कोमल निषाद का प्रयोग कभी-कभी वक्र रूप में—‘धु नि धु प ग म’ इस प्रकार किया जाता है। आरोह में ‘रे-प’ वर्ज्य हैं, किंतु अंतरे के विस्तार में ‘रे’ का अल्प प्रयोग कर लिया जाता है, इससे राग की रंजकता बढ़ती है। अवरोह में ऋषभ वर्जित है, अतः इसकी जाति औडव-षाडव मान्य है। वादी स्वर मध्यम और संवादी षड्ज है। प्रयोग-काल रात्रि का पहला तथा दूसरा प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—नि सा ग म-धु नि सां। सां नि धु-म प ग-म-सा गु-सा।

स्वरूप—

सा नि म म म म  
सागु मगु सा नि-धु नि सा, सा ग-ग-मप ग-म-, सा ग म प ग प ग-म,  
म म नि म नि  
सा गु-सानि। सा ग म धु निधु म-प-, ग म, धु-नि-सां-निधु-गम निधु-सां-, सां  
नि नि  
नि-धु-म प ग म धु-नि-सां-, सां नि ध नि धु-म-प-, ग म धु नि सां-रेंसां निसां  
नि म नि  
धु-पम प-ग-म-, सा म गु सा धु-नि सा।

## जौनपुरी

यह आसावरी थाट का राग है। इसमें ग, ध, नि कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। आरोह में गांधार वर्जित है तथा अवरोह संपूर्ण है। अतः जाति औडव-संपूर्ण है। वादी धौवत व संवादी स्वर गांधार है। यह दिन के दूसरे प्रहर में गाया जाता है। ‘आसावरी’ से बचाने के लिए इनमें रेमप, या पगुरेमप स्वर समूहों से पंचम पर न्यास किया जाता है। ‘आसावरी’ का आरोह रे म प धु सं है जबकि ‘जौनपुरी’ का आरोह रे म प धु नि सं है। इसमें पगु की संगति बार-बार आती है। जैसे पगु रेमप, रेमपधुमप, गुरेमप, मपधुमप, मपनिधुप, गुरेमप आदि। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स रे म प धु नि सं। सं नि धु, प, गु, रे स।

स्वरूप—म प नि धु प, धु म प, गु रे म प।

पंजीत-विचारव



## झिंझोटी

यह खमाज अंग का राग है। इसमें दोनों निषाद तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। आरोह में शुद्ध और अवरोह में कोमल निषाद प्रयुक्त होता है। जाति सम्पूर्ण-सम्पूर्ण है। वादी गांधार व संवादी धैवत है। यह एक क्षुद्र प्रकृति का राग है, अतः इसमें ठुमरियाँ विशेष रूप से पाई जाती हैं। गायन समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स रे ग म प ध नि सं। सं नि ध प, म ग रे स।

स्वरूप—ध स रे म ग, प म ग रे, स नि ध प। 'खमाज' राग की आरोही में ऋषभ लेकर मन्द्र सप्तक में विस्तार करने पर यह राग तुरन्त स्पष्ट होता है।

## तिलककामोद

यह खमाज थाट से उत्पन्न होता है। इसमें सारे स्वर शुद्ध लगते हैं। इस राग में गांधार, धैवत वक्र हैं। अतः इसकी जाति कोई औडव-संपूर्ण और कोई वक्र संपूर्ण मानते हैं। गस, रेप, पसं, संप, धम स्वर संगतियाँ इस राग में आती हैं। वादी स्वर ऋषभ व संवादी पंचम है। गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इस राग में प निसं का प्रयोग तो हो सकता है परन्तु अधिकांश लोग म प सं का प्रयोग सं पर जाने के लिए करते हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स रे ग स, रे म प ध म सं। सं प, धमग, सरेग स नि।

स्वरूप—प नि सरे ग स, रेप मग, सरेग, नि। इसमें 'तिलक' और 'कामोद' दो रागों का मिश्रण है। 'कामोद' का अंग रे प है और शेष अंग 'तिलक' का है।

## तिलंग

यह खमाज थाट का राग है। इसमें दोनों निषाद तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। ऋषभ और धैवत वर्जित स्वर हैं। इसकी जाति औडव-औडव है। आरोह में शुद्ध और अवरोह में कोमल निषाद लगता है। तानें लेते समय केवल तार सप्तक में कभी-कभी ऋषभ का प्रयोग भी कर लेते हैं। वादी गांधार व संवादी निषाद है। गायन समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स ग म प नि सं। सं नि प म ग स।

स्वरूप—ग म प नि प म ग।



तोड़ी

यह तोड़ी थाट का आश्रय राग है। इसमें ऋषभ, गांधार और धौवत कोमल हैं तथा मध्यम तीव्र है। गायन समय दिन का दूसरा प्रहर है। इसकी जाति संपूर्ण-संपूर्ण है। वादी धौवत व संवादी गांधार है। पूर्वांग में गांधार और उत्तरांग में धौवत पर न्यास करते हैं। पंचम का प्रयोग अल्प रूप में करते हैं। पंचम वर्जित 'तोड़ी' को 'गूजरी तोड़ी' कहते हैं अतः इसमें पंचम का प्रयोग होना ही चाहिए। इसके गांधार को ऋषभ का कण देकर लेते हैं। जैसे—स रेग, रेग रे स। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स रे ग म प ध नि सं। सं नि ध प म ग रे ग रे स।

स्वरूप—ध नि स रे ग, रे ग म ग रे स।

दरबारी

यह आसावरी थाट का राग है। इसमें ऋषभ शुद्ध एवं शेष स्वर कोमल लगते हैं। अवरोह में धौवत को वर्जित कर देते हैं अतः जाति संपूर्ण-षाडव है। इस राग को मन्द्र सप्तक में रखा करते हैं। आरोह में गांधार व धौवत कुछ रुक कर जाने से राग तुरन्त स्पष्ट होता है। जैसे स रे ग ऽ म प ध ऽ नि सं। मध्य सप्तक के ऋषभ से एकदम मन्द्र सप्तक के धौवत पर आने से भी राग शीघ्र ही स्पष्ट होता है। जैसे नि स रे, ध ऽ नि प, म प ध ऽ नि स। अवरोह में गांधार को वक्र रखते हैं अर्थात् 'ग रे स' न कह कर ग म रे स कहते हैं। वादी ऋषभ व संवादी पंचम है। गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स रे ग ऽ म प ध ऽ नि सं। सं ध ऽ नि प, म प, ग म रे ऽ स।

स्वरूप—नि ऽ स रे ग म रे ऽ स, नि स रे स ध नि प, म प ध नि स।

दरबारी कानड़ा

यह आसावरी थाट का राग है जो कानड़ा प्रकार का एक आश्रय राग है। भावभट्ट ने इसका उल्लेख किया है। इसमें गांधार, धौवत और निषाद कोमल हैं। वादी ऋषभ और संवादी पंचम है। इसकी जाति सम्पूर्ण-षाडव है। गम्भीर प्रकृति के इस राग का समय मध्य रात्रि है इस राग का मुख्य चलन मंद्र व मध्य स्थानों में है। आरोह में गांधार दुर्बल है जिसे द्रुत लय में प्रायः बिल्कुल ही छोड़ दिया जाता है। गांधार पर आन्दोलन करने से यह राग वैचित्र्यदायक रहता है। अवरोह में धौवत वर्जित है। कहते हैं कि तानसेन ने अकबर बादशाह को प्रसन्न करने के लिए 'दरबारी कानड़ा' गाय था। इसमें निषाद और पंचम की संगति एवं ऋषभ से धौवत पर किया गया पात बहुत सुन्दर प्रतीत होता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—नि स, रे ग रे सा, म प, ध, नि सां। सां, ध, नि, प, म प, ग म रे सा।

स्वरूप—गु ग, रे ग, रे ग सा, ध, नि, प, रे सा, म प, ध नि प, म प ग म, रे ग रे ग सा।

वर्णित-विचार



## दुर्गा

यह बिलावल थाट का राग है। गांधार-निषाद वर्जित स्वर हैं। शेष स्वर शुद्ध हैं। इसकी जाति औडव-औडव है। वादी स्वर मध्यम व संवादी षड्ज है। गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। आरोह में धौवत पर और अवरोह में ऋषभ पर ठहरने से यह शीघ्र स्पष्ट हो जाता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स रे म प ध सं । सं ध म रे, स ।

स्वरूप—मपध, मरे, ध, स ।

## देवगिरी बिलावल

यह 'बिलावल' का एक प्रकार है। आरोह में मध्यम वर्जित है, अवरोह संपूर्ण है। अतः जाति षाडव-संपूर्ण है। वादी षड्ज, संवादी पंचम है 'यमन' राग के आरोह में यदि शुद्ध मध्यम न लगे और 'कल्याण' गाया जाए तो इसकी रचना होती है। जैसे—निरेग, रे निरेस या निधनिसं निरेंगंरेंसं को दिखाकर अन्त में 'बिलावल' का प

अंग ममगरे, गम गरे, या ग म गरे जोड़कर 'निरे नि ग ग रे' ले लेते हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स रे ग प ध नि सं । संनिधप मगरेस । गायन समय दिन का दूसरा प्रहर है।

स्वरूप—स नि ध स, रेग, परे, गरे, मगमरे स । इसे 'शुद्ध कल्याण' की भाँति गाते हैं।

## देवगांधार

यह 'आसावरी' राग से उत्पन्न औडव सम्पूर्ण जाति का राग है। इसमें गांधार, धौवत और निषाद कोमल लगते हैं। आरोह में ऋषभ और धौवत वर्जित हैं। धौवत वादी और गांधार संवादी है। समय दिन का दूसरा प्रहर है। इस राग के दूसरे प्रकार में दोनों गांधार लिये जाते हैं तथा अन्य रूप 'जौनपुरी' की तरह रहता है। शुद्ध गांधार आरोह में 'सारेग, म' इस प्रकार लिया जाता है। यह दूसरा प्रकार प्रचार में तो अधिक है किन्तु उसे संस्कृत ग्रंथाधार प्राप्त नहीं। प्रस्तुत 'देवगांधार' के पूर्वांग में 'धनाश्री' व उत्तरांग में 'जौनपुरी' है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सागु मपनिपसां । सां, निधु पमगु रेसा ।



स्वरूप—मम, प, धुप, सां, सां, निसां, नि नि सां, रें सां, निधु, प, धुप, गुमप, रेंसां, निधुप, धुप, गु, रे सा ।

दोनों गांधार लगने वाले देवगांधार का स्वरूप इस प्रकार है—धुम, पनिधु,  
म सा सा  
प, धुमपगु, रे, प प गु, रे, गुसा, निसा, सारेग, म, पगु, रे, गुसा ।

## देशकार

यह बिलावल थाट का राग है । इसमें मध्यम-निषाद वज्रित स्वर हैं । अतः जाति औडव-औडव है । इसमें धौवत वादी तथा गांधार सम्वादी है । इस राग में एकदम मध्य सा से धौवत पर जाते हैं और उत्तरांग को प्रबल रखते हैं । जैसे स, ध, धप, गपधसं धप । गायन समय दिन का दूसरा प्रहर है । इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है — स रे ग प ध सं । सं ध प ग पधप, गरेस ।

स्वरूप—स, ध, प, गपधप, गरेस ।

## देस

यह खमाज थाट का राग है । इसमें दोनों निषाद तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं । इसके आरोह में गांधार व धौवत वज्रित हैं अतः जाति औडव-सम्पूर्ण है । वादी ऋषभ और सम्वादी पंचम है । गायन-वादन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है । इसका रूप 'सोरट' नामक राग से मिलता है । परन्तु सोरट में गांधार स्वर गुप्त रूप से केवल म-रे की मीड़ में ही आता है, जबकि देस में वह स्पष्ट दिखाई देता है । इसमें गांधार रेग नि स, या नि ध प, धमगरे, गस की भाँति लिया जाता है । इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—निसरे, मप निसं । सं नि नि ध प, मगरे, ग स या सं नि ध प, धमगरे, ग, नि सं ।

स्वरूप—रे म प, नि ध प, पधपम, गरे, गस ।

## देसी

यह राग वैसे तो आसावरी थाट का है परन्तु अब इसमें दोनों धौवत भी लगते दिखाई देते हैं, जबकि कुछ लोग कोमल धौवत बिल्कुल नहीं लगाते । ऐसा करने से यह राग 'बरवा' जैसा दिखाई देने लगता है । देसी के आरोह में स रे म प लेते हैं जबकि 'बरवा' में स रे प गु की भाँति गांधार-मध्यम को अल्प रूप में प्रयोग करते हैं देसी में तार षड्ज

संगीत-विशारद



लेते हैं। पंचम से एकदम षड्ज सां पर पहुँचते हैं, जबकि 'वर्षा' में म प ध सं जैसा आरोह लेते हैं। पंचम से अवरोह करते समय इसे वक्र कर देते हैं। जैसे पध, मप, रेगु, सरे, निम। इसके आरोह में गांधार व धौवत को छोड़ देते हैं तथा अवरोह में 'आसावरी' से बचाने के लिए, निषाद को भी छोड़ देते हैं अतः जाति औडव-पाडव मानते हैं। कुछ विद्वान् अवरोह को सम्पूर्ण भी कर देते हैं। इसमें वादी पंचम व सम्वादी ऋषभ है तथा गायन समय दिन का दूसरा प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स रे म प, ध म प, सं। सं प ध म प रे गु सरे नि स।

स्वरूप—पगु, रेगु सरे नि स।

## धनाश्री

यह काफी थाट से उत्पन्न औडव-सम्पूर्ण जाति का राग है। इसमें निषाद और गांधार कोमल हैं, पंचम वादी और षड्ज सम्वादी है। इसके आरोह में ऋषभ और धौवत वर्जित हैं। समय दिन का तीसरा प्रहर है।

काफी थाट से उत्पन्न होने वाले रागों के विशिष्ट रागांगों में ५ वर्ग होते हैं जिनमें 'धनाश्री' 'काफी', 'सारंग', 'कानड़ा' तथा 'मल्हार', अंग हैं। प्रस्तुत 'धनाश्री' अंग में 'रेध' का दौर्बल्य तथा 'सप' और 'म' की प्रबलता है। 'पगु' स्वर-संगति विशेष रूप से ली जाती है जो मधुर लगती है। इस राग का उठाव प्रायः निषाद से रहता है और पंचम पर न्यास रहता है। 'भीमपलासी' और 'धनाश्री' में काफी साम्य है। वादी के प्रयोग एवं वंदिश के चलन से उनमें भिन्नता दिखायी देती है। 'धनाश्री' का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में भी मिलता है। एक अन्य प्रकार के 'धनाश्री' में ऋषभ व धौवत कोमल लिये जाते हैं और उसे भैरवी थाट के अन्तर्गत मानते हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सगु मपनिसां। सां नि ध प मगु रेसा।

म म  
स्वरूप—निसा, गु, मप, धप निधप मगु, मपगु, गु रे सा, निसा, पनिसा, रे,  
म  
सा, गु रेसा।

म म  
भैरवी थाट से उत्पन्न 'धनाश्री' राग का स्वरूप—निसा गु, मप, पधुप, म पगु,  
म म  
गुमप, गु; रेसा, रे नि सा, पपधुप गु, मप, नि, निसां सांगुरेंसा पनिसां, पधुमप, गुमप,  
गु, रेसा।



## धानी

यह 'काफी' अंग का राग है। इसमें गांधार, निषाद कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। ऋषभ तथा धैवत वर्जित हैं अतः इसकी जाति औडव-औडव है। अवरोह में कुछ लोग कभी-कभी ऋषभ का प्रयोग भी कर लेते हैं। वादी गांधार व सम्वादी निषाद है। गायन समय सायंकाल है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—**निसा गु म प नि स। स नि प म गु स।**

स्वरूप—**गु म प गु, स नि स।**

## नंद

कल्याण थाट से उत्पन्न यह षाडव-सम्पूर्ण जाति का राग है। इसमें दोनों मध्यम लगते हैं, अन्य स्वर शुद्ध हैं। आरोह में ऋषभ वर्जित है। वादी षड्ज तथा सम्वादी पंचम है। समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—**सागम प धनिप धर्मप सां। सां निध पर्मप धपगम परेसा।**

स्वरूप—**गम, गमपध नि, प, धर्म, पग, म, धप रेसा, पप, सांसां, सां, रेंनिसां, गं मं**

**रें सां, गं मं पं रें, रें, पंरें, सां, निधप, मपर्मप, गमप, रेसा।**

## नट बिलावल

यह 'नट' और 'बिलावल' रागों के संयोग से उत्पन्न होने वाला एक मिश्र राग है। इसके पूर्वांग में 'नट' और उत्तरांग में 'बिलावल' का अंग होता है। वादी मध्यम और सम्वादी षड्ज है। सा, ग, ग, म इस तरह उठाव लेकर आगे अवरोह में 'बिलावल' जोड़ देने से यह राग स्पष्ट होता है। गायन समय दिन का दूसरा प्रहर है। मध्यम स्वर खुला लगाने से राग में रंजकता आती है। इसमें दोनों निषादों का प्रयोग होता है। आरोह में ऋषभ वर्जित है अतः जाति षाडव-सम्पूर्ण है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—**सागम पमग मपधनिसां। सांनिध निप मग मरेसा।**

स्वरूप—**सा, गम, पम, ग, म, रे, गमप मग, मरे, निधप, म, पमग, रे, ग, मप मग, मरेसा।**

## नट बिहाग

यह बिलावल थाट का राग है, जिसके आरोह में धैवत वर्जित है। इसकी जाति षाडव-सम्पूर्ण है और समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। वादी षड्ज और सम्वादी पंचम।

संशोधन-विचार



है। गम निधप तथा पनि सांरें सांनि और गम निधप स्वर संगतियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सारे गम पनिसां । सां निपधम पमगरेसा । सुन्दरता के लिए कोमल निषाद का अल्प प्रयोग किया जाता है।

स्वरूप—गम, म॒नि धप, प मप, धप, मग, ग, रे, निरेसा, नि॒न्धप, नि॒सारेसा गमगरे सा, गमपनि, सांरेंनिरे सांनिधप गम, निधप, मगरेसा ।

## नट मल्लार

काफी थाट से उत्पन्न नट 'मल्लार' या 'नटमल्लार' सम्पूर्ण जाति का राग है, जिसमें दोनों गांधार एवं दोनों निषाद लगते हैं। मध्यम वादी और षड्ज सम्वादी है तथा समय वर्षाकाल है। 'नट' तथा 'मल्लार' के संयोग से यह बना है। पूर्वांग में 'नट' और उत्तरांग में 'मल्लार' है। 'मरे तथा रेप' स्वर संगतियाँ आनंददायी हैं। कोई-कोई तीव्र गांधार का प्रयोग भी करते हैं और तब उसे बिलावल थाट का मानते हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सारेग मरे गमप निधसां । सां निध निप मग मरेसा ।

ग रे — ग  
स्वरूप—सा, रेग, ग, मरे, मरे, सा, नि॒सा, रेसा, नि॒सा, रेग, मप, पमग  
म  
मरे, रे मरे, नि॒सा ।

## नायकी कानड़ा

यह काफी थाट से उत्पन्न षाडव जाति का राग है, जिसमें कोमल गांधार व दोनों निषाद लगते हैं। मध्यम वादी और षड्ज सम्वादी है, धौवत वजित स्वर है और समय मध्य रात्रि है। पूर्वांग में 'सूहा' व उत्तरांग में 'सारंग' मिलकर यह राग बनता है। 'रेप' संगति राग वाचक है। कोई-कोई आरोह में निषाद की संगति से कोमल धौवत का प्रयोग करते हैं और उसे सम्पूर्ण करके गाते हैं। भाव भट्ट ने अनूप विलास ग्रंथ में 'नायकी कानड़ा' में 'मल्लार' व 'कानड़ा' का योग बताया है। 'कानड़ा' प्रकार होने के कारण इसके अवरोह में गांधार का वक्रत्व और उस पर आंदोलन है तथा 'नि' स्वर संगति प्रमुख है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सारेग मप निसां । सांनिपमग गमरेसा ।



म

म सा

स्वरूप—सा, रेपगु, म, रेसा, रेनिसा, रेपगुम, म, म, प, सानिप, गुम, रे सा, रेपगु, म, रे सा ।

## नारायणी

यह कर्नाटिक पद्धति का राग है, जिसका थाट खमाज है। इसके आरोह में गांधार और निषाद तथा अवरोह में गांधार वर्जित है अतः जाति षाडव-औडव है। ऋषभ वादी और पंचम संवादी है। गायन समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सारे मप धसां सांनि । धग मगु रेसा ।

स्वरूप—सां, निध, मप, निधप, मपम, रे सारे, मरे धसा निधप, मपधप, म, रे, मरेसा । मपधसां, सांरेंरेंसां, मं रेंसां, सांरें सांरेंसां निधप, मपधसां, ध प मरे, सारे, मरे, साधधसा ।

## पटदीप

यह काफ़ी थाट का राग है। इसमें गांधार कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। आरोह में ऋषभ, धौवत वर्जित स्वर हैं। अवरोह संपूर्ण है। अतः जाति औडव-संपूर्ण है। वादी पंचम व संवादी षड्ज है। गायन समय दिन का तीसरा प्रहर है। 'भीमपलासी राग' को शुद्ध निषाद से गाने से यह राग बन जाता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स गु म प नि, सं । सं नि ध प म गु रे स ।

स्वरूप—निस गु म गु रे स नि, स ।

## पटमंजरी

यह राग काफ़ी थाट से उत्पन्न हुआ है जिसकी जाति सम्पूर्ण है। दोनों इसमें गांधार और दोनों निषाद लगते हैं। आरोह में गांधार और धौवत दुर्बल होने से 'सारंग' अंग का आभास होता है। वादी षड्ज और संवादी पंचम है। 'सारंग' राग के बाद गाने से यह राग अधिक अच्छा लगता है। 'सारे मप' स्वरों में 'सारंग' अंग व्यक्त होता है लेकिन धौवत व गांधार के उचित प्रयोग से इसका तिरोभाव होता है। अधिक प्रसिद्ध न होने से इस राग में मतभेद भी प्राप्त होते हैं। 'पटमंजरी' का एक दूसरा प्रकार बिलावल थाट का है। समय दिन का तीसरा प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सारेग मपध निसां । सां नि धपम गु रें सा ।

म

स्वरूप—सा नि सारेसा, धप, सा निसा रेमप, ममप, गुरेगुमगु, रेसा, रेनिसा ।

सां  
निसां, सां, निसां, मप, प, सा, निसा, रेसा, पन्निप, निसा, रेम, प, प, मप, धगुरेगुमगु, रेसा ।



## पंचम

यह मारवा थाट का राग है, जिसके दो प्रकार प्रचलित हैं। एक पंचम वर्जित षाडव जाति का तथा दूसरा सम्पूर्ण। दोनों ही प्रकार 'ललित' अंग के हैं जिनमें दोनों मध्यम का प्रयोग होता है और जिनका वादी स्वर शुद्ध मध्यम तथा संवादी षड्ज है। उत्तर राग होने के कारण के 'पंचम' दोनों प्रकार उत्तर रात्रि में ही गाये जाते हैं। षाडव जाति वाले 'पंचम' राग में 'हिण्डोल' अंग की प्रधानता है। कुछ लोग उसमें ऋषभ का दुर्बलत्व भी मानते हैं। यह राग प्राचीन ग्रंथों में मिलता है परन्तु वहाँ इसे भैरव थाट का बताया गया है। इसमें ऋषभ कोमल है। और इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है-

सा म मंग मंघनिध सां । सां निध ममग मंगरेसा ।

स्वरूप—मंघसां, सां, सांनिध, मंघमग, मंगरेसा, निंसां, म, मग, मंघसां, निध निमंघ, मंग, मंग, रेसा ।

सम्पूर्ण जाति के राग 'पंचम' का स्वरूप इस प्रकार है—ग, रेसा, निरेग, म, ग, मंघ, मंग, रेसा, सा, ग, मंग, रेसा, म, म, मग, प, मंघमं, मग, मंघसां, सां, रेसां, रेनिध, मंघ मंगग, रेग, मंग, रेसा ।

## प्रदीपकी या पटदीपकी

यह काफ़ी थाट से उत्पन्न ओडव-सम्पूर्ण जाति का राग है। इसमें कोमल निषाद व दोनों गांधार लगते हैं। षड्ज वादी तथा मध्यम संवादी है। आरोह में ऋषभ और धैवत वर्जित हैं तथा समय दिन का तीसरा प्रहर है। यह 'भीमपलासी' अंग से गाया जाता है। तीव्र गांधार बहुधा आरोह में आता है। इसका विस्तार प्रायः मंद्र व मध्य सप्तकों में होता है। अवरोह में ऋषभ दुर्बल रहता है। ऋषभ तथा धैवत स्वरों को तीव्र के बजाय थोड़ा नीचा लगाना चाहिए ऐसा नियम कहीं-कहीं दिखाई देता है। मध्यम पर विश्रान्ति होने से 'हंसकंकणी' राग से यह भिन्न रहता है। तीव्र गांधार का प्रयोग कुशलता से करना पड़ता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है-

सगमप निंसां । सां निधप मगमप गुरेसा ।

स्वरूप—निं सा, ग, म, निधप, गम, पग, रेसा, मपसां, रेसां, निंसां, मं गं रेसां, निधप, म, गम, पनि, धप, म, गम, पग, रेसा ।



## परज

यह पूर्वी थाट का राग है। इसमें ऋषभ, धौवत कोमल, दोनों मध्यम तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। आरोह में ऋषभ व पंचम वर्जित हैं तथा अवरोह सम्पूर्ण है। अतः इसकी जाति औडव-सम्पूर्ण है। तार सप्तक में आरोह में ऋषभ का प्रयोग कर लिया जाता है। यह उत्तरांग प्रधान राग है। इसमें उत्तरांग में निषाद पर, पूर्वांग में गांधार पर टिकाव करते हैं। इसमें वादी षड्ज और सम्वादी पंचम है। शुद्ध मध्यम केवल अवरोह में दो गांधार के बीच में लगता है—जैसे ग म ग। गायन समय रात्रि का अन्तिम प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—निःसग, मधु नि सं। सं नि धु प, मप गमग, रेस।

स्वरूप—सं नि धु प म प ग म ग।

## पहाड़ी

यह राग बिलावल थाट से उत्पन्न होता है। आरोह में मध्यम व निषाद स्वर वर्जित हैं और अवरोह में भी अत्यंत दुर्बल हैं। 'भूपाली' व 'देसकार' राग के भी यही स्वर हैं। उनसे बचाने के लिए इसमें बहुत थोड़ी मात्रा में मध्यम व निषाद का प्रयोग कर लेते हैं और इस राग को मन्द्र सप्तक में ही गाते हैं। मध्यम को षड्ज मानकर 'भूपाली' गाने से इसकी रचना होती है। मन्द्र सप्तक के मध्यम को षड्ज मानने से मन्द्र सप्तक का धौवत गांधार बन जाता है, जो भूपाली का वादी स्वर है। अतः मन्द्र सप्तक के धौवत पर की गई विश्रान्ति इसमें अच्छी लगती है। इसमें भजन, ठुमरियाँ, गज़लों विशेष रूप से गाई जाती हैं। फलस्वरूप इसमें कई राग मिला दिये जाते हैं। कुछ लोग इसमें तोत्र मध्यम का प्रयोग भी 'यमन' के मध्यम की भाँति कर देते हैं। वादी स्वर षड्ज व सम्वादी पंचम है। यह सर्वकालिक राग माना जाता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सरे ग प ध सं। संधप, गप, गरे स।

स्वरूप—स, रे ग, पध, पधनि, धप, गम गरेस निध, प ध स।

## पीलू

यह राग काफी थाट से उत्पन्न होता है। इसमें दोनों गांधार और दोनों निषाद लगते हैं। आरोह में शुद्ध एवं अवरोह में कोमल स्वरों का प्रयोग होता है। गायक-वादक इसमें अनेक रागों की छाया उत्पन्न कर देते हैं। मोटे रूप से यदि कोमल गांधार और कोमल धौवत से गाया जाए तो राग अच्छा लगता है। किसी अन्य राग की छाया देकर जब 'पीलू' में प्रवेश करते हैं तो कोमल गांधार और शुद्ध निषाद पर टिकाव कर देते हैं। इसकी जाति संपूर्ण-संपूर्ण है। वादी गांधार व सम्वादी निषाद है।



गु, निःस्वर समुदाय को लेने से यह तुरन्त स्पष्ट होता है। कोमल ऋषभ और कोमल धौवत को लगाने का ढंग निः रेगु, ऽरेगु रेगु सरे सनिः ध्रुपमपनिः स, रेपगु ऽनिः है। शुद्ध गांधार व शुद्ध धौवत को प्रायः निः गमप, मधप, मपध निधप, मपध्रुप मगु ऽ निः, स की भाँति लेते हैं। गायन का समय दिन का तीसरा प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सरे गु, मप ध्रुप निध प सं। सं नि ध प म गु, नि स।

स्वरूप—निःस गु, निःस, पध निः स।

## पूरिया

यह मारवा थाट का राग है। इसमें ऋषभ कोमल और मध्यम तीव्र है। पंचम वर्जित है, अतः जाति षाडव-षाडव है। वादी स्वर गांधार है और संवादी निषाद। इस राग को मन्द्र सप्तक में गाया जाता है। यदि ऋषभ और धौवत पर टिकाव कर दिया जाए तो यही राग 'मारवा' बन जाता है। इसी प्रकार उत्तरार्ध में यदि धनिसंरुं सं कर दिया जाए तो 'सोहनी' राग की छाया आ जाती है। इसकी स्थायी को प्रायः मध्य सप्तक के गांधार से आगे नहीं आने देते। जबकि 'सोहनी' की स्थायी मध्य सप्तक के गांधार से नीचे नहीं आती। इसमें निर्म ग लिया जाता है। गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—निः, रे गमध निः सं। सं निधम ग रे स।

स्वरूप—निधनिः मध निः सरे स।

## पूरिया धनाश्री

यह पूर्वी थाट का राग है। इसमें ऋषभ, धौवत कोमल, मध्यम तीव्र तथा शेष स्वर शुद्ध हैं। इसकी जाति संपूर्ण-संपूर्ण है। वादी पंचम व सम्वादी षड्ज है। गायन समय दिन का चतुर्थ प्रहर है। इसमें मं रेग प और रे नि ध्रु प स्वर-समुदाय बारम्बार लिया जाता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—निः रे ग म प ध्रु नि सं। रे नि ध्रु प मंग, मं रेग, रे स।

स्वरूप—निःरेग, मध्रुप, मं रेग, मं ग रे स।



## पूर्वी

यह पूर्वी थाट का आश्रय राग है। इसमें दोनों मध्यम हैं तथा ऋषभ, धौवत कोमल हैं। शेष स्वर शुद्ध हैं। जाति संपूर्ण-संपूर्ण है। वादी स्वर गांधार तथा संवादी निषाद है। यह एक संधि प्रकाश राग है अर्थात् इसे दिन के अन्तिम प्रहर में गाते हैं। तीव्र मध्यम का प्रयोग आरोह-अवरोह दोनों में होता है। शुद्ध मध्यम से उत्तरांग में नहीं जाया जाता। तार षड्ज पर जाते समय पंचम को दुर्बल रखते हैं जैसे—मधनि, मधुप मध निसं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

नि स, रे ग, मं, ध, नि सं। सं नि ध प, मं प ग म ग, मंगरेस।

स्वरूप—नि स रे ग, रेमग, रेग, रेस।

## पूर्वाकल्याण या पूरिया कल्याण

पूर्वाकल्याण, पूर्याकल्याण अथवा पूर्वकल्याण मारवा थाट का राग है। इसमें ऋषभ कोमल तथा दोनों धौवत लगते हैं। मध्यम तीव्र तथा पंचम वर्ज्य है। वादी गांधार और संवादी निषाद है। इसमें 'पूर्वी', 'पूरिया' और 'मारवा' इन तीनों रागों का मिश्रण है। कोमल धौवत गौण रूप से प्रयुक्त होता है। इसकी जाति षाडव-षाडव है। समय दिन का चौथा प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सा रे ग मं ध नि सां। सां नि ध मं ग रे सा।

स्वरूप—नि, रे ग मं, ध मं, ग रे सा।

## बृन्दावनी सारंग

यह काफ़ी थाट का राग है। इसे केवल 'सारंग' भी कह दिया जाता है। इसमें दोनों निषाद तथा शेष स्वर शुद्ध हैं। आरोह में शुद्ध और अवरोह में कोमल निषाद लगता है। गांधार व धौवत वर्जित स्वर हैं, अतः जाति ओडव-ओडव है। वादी ऋषभ व संवादी पंचम है। गायन समय दिन का दूसरा प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सरे म प निसं। सन्नि प म रे स।

स्वरूप—नि सरे, मरे, पमरे स।



## बरवा

काफ़ी थाट से उत्पन्न यह राग षाडव-संपूर्ण जाति का है, जिसमें कोमल गांधार तथा दोनों निषाद लगते हैं, ऋषभ वादी एवं पंचम संवादी है। आरोह में गांधार वर्जित है और समय दिन का दूसरा प्रहर है। कुछ लोग क्वचित् रूप से शुद्ध गांधार का प्रयोग भी करते हैं। ध्रुव प्रधान होने के कारण इसे क्षुद्र रागों में गिना जाता है। इसके पूर्वांग में कुछ 'देशी' राग का भाग आता है परन्तु अन्य स्वर व चलन भिन्न होने से यह उससे अलग हो जाता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सारेमप धनिसां । सांनिधप मप गुरे गुसा ।

म

स्वरूप—सा, रेम, गुरेसा, रेमप, ध, पधसां, निधम, धप गुरे, गुरेगुसासा म, पधनि, सां, सांनेरेंसां, निनिसां, निधप, सारेम, रेमप, ध, पधसां, निध, म, पग, रेगुसा ।

## बसंत

यह पूर्वी थाट का राग है। इसमें दोनों मध्यम, ऋषभ, धौवत कोमल और शेष स्वर शुद्ध हैं। आरोह में ऋषभ-पंचम को वर्जित करके और अवरोह को संपूर्ण रखने से यह राग चमक जाता है। अतः इसकी जाति औडव-संपूर्ण है। वादी षड्ज (तार षड्ज) और संवादी मध्यम है। इसमें मध्यम को 'ललित' अंग से अर्थात् दोनों मध्यमों को साथ-साथ लेते हैं। गायन-समय रात्रि का अन्तिम प्रहर है किन्तु बसंत ऋतु में हर समय गाया जाता है। इसके समीप का राग 'परज' है। 'परज' में भी ये ही स्वर हैं और दोनों मध्यम भी लगते हैं। 'बसन्त' राग का प्रारम्भ तीव्र मध्यम से होता है। जैसे मधु सं या मधुरेंसं । जबकि 'परज' में इन्हें मधु नि, संरें संरें निसं निध नि की भाँति प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार 'बसन्त' के आरोह में मंग, म, ग की भाँति केवल तीव्र मध्यम तथा ऋषभ को लेते हुए षड्ज पर आते हैं। 'परज' में मपधप गमग की भाँति दो गांधार के बीच में शुद्ध मध्यम को लेते हैं। इसके अतिरिक्त 'परज' में शुद्ध मध्यम और किसी प्रकार नहीं ली जाती। किन्तु 'बसन्त' में स म, ममंग, की भाँति 'ललित' अंग से शुद्ध मध्यम को लेते हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स ग मधु रेंसं । रें नि धु प, मं गमं, ग रेंस ।

स्वरूप—रें नि धु प, मंग, मं, ग, रेस ।



## बसन्तबहार

बहार राग जब अन्य रागों से मिलता है तो उसे नया नाम दे दिया जाता है। इसी से 'भैरव बहार', 'बागेश्वरी बहार', 'जौनपुरी बहार' और 'अड़ाना बहार' इत्यादि नाम प्रचार में आये हैं। इसी प्रकार 'बसन्त बहार' राग में 'बहार' का मिश्रण होने से 'बसन्त बहार' बनता है। 'बसन्त' पूर्वी थाट का षाडव संपूर्ण राग और 'बहार' काफ़ी थाट का षाडव जाति का राग है। जबकि बहार में म वादी और स संवादी है। बसन्त में रेध कोमल व दोनों मध्यम लगते हैं तथा आरोह में पंचम वर्जित है जबकि बहार में गांधार कोमल व दोनों निषाद लगते हैं। किसी भी राग में बहार जोड़ने के लिए उसके स्वर स्वतन्त्र रूप में अलग दिखाने पड़ते हैं। बहार के मुख्य चलन में सा, निसा, धनिंसा, म, मपगु, मधु निसां, सां, निप, मप, गुम, रेसा ये स्वर लगते हैं। जब बसन्त के साथ बहार का सम्मिश्रण करेंगे तो उसका स्वरूप इस प्रकार होगा—

धुसां, निधुप, प, म ग, मंग, मधु, रें, सां, धुनि सां रें नि, सां,

ग  
निधुप, मंग, नि, मंग, मंग, रेसा। यहाँ तक स्पष्ट रूप से 'बसन्त' है 'बहार' जोड़ने पर  
म नि

अन्तिम षड्ज से निसाम, म, मप, निनिपम पगु, मधु, निसां। फिर तार-बड्ज से

'बसन्त' में जाना सुविधाजनक रहता है। जैसे सां, धु नि सां, रें रें रें सां नि सां निधु, प

मधु, निरें निधुप। ऐसे मिश्रित रागों में थाट अथवा जाति खोजना कोई विशेष अर्थ नहीं रखता। 'बसन्त' ऋतु में यह राग शोभादायक रहता है।

## बहार

यह काफ़ी थाट का राग है। इसमें गांधार कोमल और दोनों निषाद लगते हैं। आरोह शुद्ध और अवरोह में कोमल निषाद लगता है। आरोह में ऋषभ और अवरोह में धैवत वर्जित है अतः जाति षाडव-षाडव है। वादी स्वर मध्यम और संवादी षड्ज है। गायन समय मध्य रात्रि है। बसन्त ऋतु में यह राग हर समय गाया जाता है। तार सप्तक पर जाते समय निधनिसं लेते हैं। इसी प्रकार निधनिसं 'मियाँ मल्हार' में भी लिया जाता है। परन्तु 'बहार' में लेते समय तनिक धैवत पर ठहरते हैं और म नि ध, निसं की भाँति लेते हैं। जबकि 'मियाँ मल्हार' में पनिधनिसं लेते हैं और शुद्ध निषाद पर ठहरते हैं। गांधार को अवरोह में वक्र रखकर गुमरेस की भाँति लेते हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स गु म, नि ध, निसं। सं, निप, मप गुम, रे स।

स्वरूप—म प गुम, निध, नि सं।



## बागेश्री

यह काफी थाट का राग है। इसमें गांधार-निषाद कोमल और शेष स्वर शुद्ध हैं। इसके आरोह में रे-प वर्जित हैं तथा अवरोह में केवल पंचम वर्जित है, अतः जाति औडव-षाडव है। कुछ लोग बहुत थोड़ा-सा अवरोह में आलाप के समय म प ध ग की भाँति पंचम का प्रयोग कर देते हैं, अतः वे जाति को औडव-संपूर्ण मानते हैं। परन्तु पंचम को बिल्कुल छोड़ देने से भी राग की हानि नहीं होती। इसका वादी स्वर मध्यम व संवादी षड्ज है। गायन-वादन समय मध्य रात्रि है। सम, धम और धगु स्वर संगतियाँ इसमें खूब आती हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स मगु मध निसं । सं नि ध, म ग, मगु रे, स ।

स्वरूप—स नि ध नि स, मध निध, म, गुरे, स ।

## बिलासखानी तोड़ी

यह भैरवी थाट से उत्पन्न संपूर्ण जाति का राग है। इसमें रे ग ध नि कोमल लगते हैं। आरोह में मध्यम और निषाद दुर्बल हैं। इनका उपयोग चतुरता से करने पर इसे 'भैरवी' से बचा लिया जाता है। धैवत वादी और गांधार संवादी है। समय दिन का दूसरा प्रहर है। कहते हैं इसका आविष्कार तानसेन के पुत्र बिलास खाँ ने किया था। इसमें 'आसावरी' व 'तोड़ी' रागों का सम्मिश्रण है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सारु मगु पध निसं । सानिधुम गुम गुरेसा ।

स्वरूप—सा, रे नि, सा, रेग, रेग, मगु, रे, सा, सारु ध, सा, रेग, मगु, रेग, रेसा । धप, निधुम, पगु, रेग, मगु, रेसा ।

## बिलावल

यह 'बिलावल' थाट का आश्रय राग है। इसमें सभी स्वर शुद्ध लगते हैं। इसकी जाति संपूर्ण-संपूर्ण है। यदि आरोह में मध्यम को कम कर लिया जाए तो राग अधिक स्पष्ट होता है, जैसे—रे ग प म ग। आरोह में कभी-कभी धैवत को भी छोड़कर गपनिनि सं की भाँति गाते हैं। अवरोह में जब कोमल निषाद को धनिधप की भाँति दो धैवत के बीच में ले लेते हैं तो इसे 'अलहैया बिलावल' कहते हैं। गायन समय दिन का प्रथम प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स रे गम, ग प, निध नि सं । सं नि ध प म ग मरे, स ।

स्वरूप—गरे, गप, ध, नि सं ।



## बिहाग

यह बिलावल थाट का राग है। इसमें दोनों मध्यम लगते हैं। तीव्र मध्यम विवादी के नाते प्रयुक्त होता है किन्तु आजकल यह 'बिहाग' के लिए एक आवश्यक स्वर बन गया है। आरोह में ऋषभ व धीवत वर्जित हैं। अवरोह सम्पूर्ण है, अतः जाति औडव-सम्पूर्ण है। वादी स्वर गांधार व सम्वादी निषाद है। गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स ग म प नि सं। सं नि ध प म ग रे स।

स्वरूप—निस, गमप, गमग, रे स।

## बिहागड़ा

यह राग 'बिहाग' का एक प्रकार है। इसमें खमाज का सम्मिश्रण किया जाता है अतः इसे खमाज थाट के अन्तर्गत माना जाता है। कुछ लोग बिलावल थाट भी मानते हैं जो उचित नहीं लगता। इसकी जाति संपूर्ण है। इसमें गांधार वादी तथा निषाद संवादी है। कुछ लोग मध्यम वादी और षड्ज संवादी मानते हैं। इसमें दोनों निषादों का प्रयोग किया जाता है। कुछ लोग आरोह में ऋषभ वर्जित करके इसकी जाति षाडव-संपूर्ण मानते हैं गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।

आरोह : स, गमप, निसां।

अवरोह : सां, निध, पमग, रेसा।

स्वरूप : सग, गम, प निध सां, नि ध प, गमग।

## बंगाल भैरव

यह 'भैरव' थाट से उत्पन्न भैरव का ही एक भेद है। निषाद वर्जित होने से इसकी जाति षाडव-षाडव है। वादी धीवत और संवादी ऋषभ है। आरोह में गांधार वक्र होता है। गायन समय प्रातः काल है। स धु स्वर-संगति राग वाचक होती है। 'बंगाल' नामक राग 'बंगाल 'भैरव' से बिल्कुल अलग है। 'भैरव' का एक प्रकार होने से यह राग 'भैरव' अंग प्रधान होता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सारु गमप धु सां। सांधु, प मपग म रेस।

स्वरूप—धु, धु, प, गम, प, गमरे, सा, सारु, सा, धु, सा, रे, रे, सा गमरे, पगमरे, रे, सा।

## संगीत-विशारद



## भटियार या भटिहार

‘भटिहार’ एक प्राचीन राग है, जिसे ‘भटियार’ या ‘भटियारी’ भी कहते हैं। इसका थाट मारवा है। इसमें दोनों मध्यम लगते हैं। वादी मध्यम तथा सम्वादी षड्ज है, ऋषभ कोमल है। समय रात्रि का अन्तिम प्रहर है। मध्यम पर कुछ ठहरा जाता है। ‘पग व धम’ स्वर संगतियाँ माधुर्य पैदा करती हैं। निषाद आरोह में दुर्बल एवं अवरोह में वक्र रूप से लिया जाता है। आजकल का ‘भटियार’ प्राचीन स्वरूप से भिन्न है। कुछ लोग खमाज थाट में भी एक ‘भटियार’ गाते हैं परन्तु वह बहुत कम प्रसिद्ध है। इसका आरोह, अवरोह इस प्रकार है—साधप धम पग म ध सां। रेंनि धपम, पग रेसा।

रें

स्वरूप—साध, धप, म, म; पग, मंध, सां, सां, निधप, न, पग, मंध, मंग, पग,

मेधसां, सां, निरेंसां, रेंगं, रेंसां, सांम, मपग, मंधसां, रेंनिधमंग, मंगरेंसा।

### भीम

इसमें आरोह में ऋषभ और धौवत वर्जित हैं तथा यह काफी थाट का राग है। कोई-कोई इसमें दोनों गांधार का प्रयोग करते हैं। वादी मध्यम एवं सम्वादी षड्ज है। इसकी जाति पाडव है। आरोह-अवरोह में कोमल निषाद रखने से ‘भीम’ और तीव्र निषाद रखने से ‘पलासी’ राग बनता है। इसी प्रकार आरोह में तीव्र और अवरोह में कोमल निषाद लेने से ‘भीमपलासी’ राग होगा, ऐसा कुछ पुराने गायकों का मत है। दूसरे मत से ‘पलासी’ राग में धौवत को आरोह तथा अवरोह में वर्जित करना चाहिए। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सा रे ग प म प ध नि सां। सां नि ध प म प ग म रे सा।

स्वरूप—नि सा गु, म प नि सां रें नि सां प म गु म गु रे रे सा।

### भीमपलासी

यह काफी थाट का राग है। इसमें गांधार, निषाद कोमल और शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। आरोह में ऋषभ व धौवत वर्जित स्वर हैं तथा अवरोह संपूर्ण है। अतः जाति ओडव-सम्पूर्ण है। वादी मध्यम और सम्वादी षड्ज है। गायन का समय दिन का तृतीय प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—नि स गु म प नि सं। सं नि ध प म, गुरेस।

स्वरूप—निस गुम पग, मगुरेस।



## भंखार

‘भंखार’ या ‘भख्खार’ राग मारवा थाट से उत्पन्न संपूर्ण जाति का उत्तरांग प्रधान राग है। कोई-कोई इसे औडव-संपूर्ण जाति का मानकर आरोह में ऋषभ-धौवत वर्जित करते हैं। इसमें ऋषभ कोमल व दोनों मध्यम लगते हैं। पंचम वादी तथा षड्ज संवादी है। समय रात्रि का अन्तिम प्रहर है। दोनों मध्यमों के प्रयोग से यह अपने समप्राकृतिक राग ‘विभास’ से और मुक्त मध्यम न होने के कारण ‘भटियार’ राग से सहज ही अलग हो जाता है। ‘भटियार’ से अलग करने के लिए इसमें ललित

अंग का प्रयोग करते हैं। इसमें पग व मधु व मध ये स्वर संगतियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सारंगा गम पग पगमधसां। सां निधप मधमग पगरेसा।

स्वरूप—निंसा, गमप, म, पग, मध, मग, रेसा, निंसा, रेग, मग, मधमग, गरेसा, निंजा, गमप, मप, मग, ग, पमग, रेसा, सारेग, मग, धमग, पग, रेसा।

## भूपाल तोड़ी

यह भैरवी थाट से उत्पन्न होने वाला औडव-औडव जाति का राग है। इसमें सब स्वर कोमल तथा मध्यम व निषाद वर्जित स्वर हैं। वादी धौवत व संवादी गांधार है। गायन समय दिन का दूसरा प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स रे ग, पधु सं। सं धु प ग रे स।

स्वरूप—धु सरेग, पग रेगरेस।

ज्ञातव्य : प्रत्येक तोड़ी में गांधार स्वर को ऋषभ का कण लेते हुए गाना चाहिए।

## भूपाली

यह कल्याण थाट का राग है। ‘म-नि’ वर्जित तथा शेष स्वर शुद्ध हैं। जाति औडव-औडव है। वादी गांधार व संवादी धौवत है। गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। उत्तरांग में धौवत को प्रबल कर देने से देशकार की छाया आ जाती है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स रे ग प ध सं। सं ध प ग रे स।

स्वरूप—सधु सरेग, पग, धपग, रेस।

## भैरव

यह भैरव थाट का आश्रय राग है। इसमें ऋषभ, धौवत कोमल एवं शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। यह संपूर्ण-संपूर्ण जाति का राग है। कभी-कभी आरोह में पंचम को छोड़ कर गम धु निसं की भाँति तार सां पर जाते हैं। इसके आरोह में ऋषभ को भी अल्प



रखते हैं। इसके ऋषभ, धौवत आंदोलित स्वर हैं। जबकि कालिंगड़ा में भी यह स्वर लगते हैं परन्तु इन्हें आंदोलित नहीं करते। कालिंगड़ा में गांधार, मध्यम और निषाद पर न्यास किया जाता है। जैसे—सरे गम, पमग, मपधुप गमग, गमपप, मगरेस। जबकि भैरव में सरे रेस, सगमरे, स, गमधुप, मगमरे स जैसे—स्वर लेते हैं। वादी स्वर धौवत और संवादी ऋषभ है। यह प्रातःकालीन 'संधिप्रकाश' राग है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सरे, रेस ग म प, गु धु नि सं। सं नि धु धु प, म ग रे, रे, स।

स्वरूप—स, ग म प, धु धु प।

## भैरव बहार

राग भैरव, भैरव थाट से उत्पन्न संपूर्ण जाति का राग है जिसमें ऋषभ और धौवत कोमल लगते हैं तथा धौवत वादी और ऋषभ संवादी है। बहार राग काफ़ी थाट से उत्पन्न षाडव जाति का राग है जिसमें कोमल गांधार एवं दोनों निषाद लगते हैं तथा मध्यम वादी और षड्ज संवादी है। जब दोनों रागों का मिश्रण कर देते हैं तो 'भैरव-बहार' बन जाता है। इसे दिन के प्रथम प्रहर में गाया जा सकता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सारु गमप निध निसां। सां नि धप मग रेसा।

स्वरूप—सा रे, साग, म, निध, निसां, रेंगुं रें सां निधम, मगम रेगमप मगरे, सा, सां नि सां, निप, पगमरेसा, सानिसा, रेमम, पगु, मरेसा।

## भैरवी

यह भैरवी थाट का आश्रय राग है। इसमें रे-ग-ध-नि कोमल तथा मध्यम शुद्ध है। जाति संपूर्ण-संपूर्ण है। वादी मध्यम व संवादी षड्ज है। गायन समय प्रातः काल का प्रथम प्रहर है। विद्वान् लीग इसमें जब शुद्ध ऋषभ लगा देते हैं तब इसे 'सिन्धु-भैरवी' कहते हैं। स रे म प धु प से 'गुणकली' की, मगु रेगु सरेस, की भाँति शुद्ध ऋषभ, सरे ग म, ममगु, सरेस की भाँति तीव्र मध्यम का प्रयोग कर देते हैं। स रे ग प म ग रे ग स रे स की भाँति 'विलासखानी तोड़ी' और ग म धु, नि सं से 'मालकोष' की छाया उत्पन्न कर देते हैं। इस प्रकार इसमें अनेक रागों की छाया उत्पन्न कर दी जाती है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स रे ग म प ग म प धु नि सं। सं नि धु प म ग रेस।

**ज्ञातव्य :** प्रारम्भ में विद्यार्थी को इसी आरोह-अवरोह के अनुसार ही गाना-बजाना चाहिए।

स्वरूप—म ग, स रे स, धु नि स।



## मधुमाद सारंग

यह काफ़ी थाट का राग है। गांधार तथा धौवत वर्जित स्वर हैं। निषाद कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध हैं। जाति ओडव-ओडव है। वादी ऋषभ व संवादी पंचम है। गायन समय दिन का द्वितीय प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—  
स रे म प नि स। सं नि प म रे स।

स्वरूप—स, रेमप, मरे, निस।

## मधुवन्ती

इस राग में गांधार कोमल, मध्यम तीव्र तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। आरोह में ऋषभ तथा धौवत वर्ज्य होने के कारण इसकी जाति ओडव-संपूर्ण मानी जाती है। ऋषभ पर षड्ज का कण तथा गांधार पर तीव्र मध्यम के स्पर्श ( कण ) से इस राग की रंजकता बढ़ती है। कभी-कभी कोमल निषाद का अत्यल्प प्रयोग करने से राग-वैचित्र्य उत्पन्न होता है, साथ ही माधुर्य भी बढ़ता है। वादी पंचम तथा संवादी स्वर ऋषभ है। प्रयोग-काल सायं चार बजे से रात्रि के प्रथम प्रहर तक है। यह राग 'मुलतानी' के काफ़ी निकट है, अतः कुछ गुणीजन इसे तोड़ी थाट के अन्तर्गत भी मानते हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सा गु म प नि सां। सां नि ध प म गु रे सा।

सा गु म

स्वरूप—नि सा गु म प, पप-सांरें नि सां पध मप, गुम गु रे सा नि सा-गु  
मं

मं प नि सां सां सां सां प नि सा गुं रें-सां-नि नि नि सां ध ध प प गु म मंगु पध मप  
गु रे सा।

## मल्लार या मल्हार

बिनापिन थाट से उत्पन्न यह राग ओडव जाति का है। इसमें सभी शुद्ध स्वर लगते हैं, गांधार वादी और धौवत संवादी है। समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। उत्तर-प्रदेश में वर्षा ऋतु में एक लोकधुन मल्हार के नाम से प्रसिद्ध है। सम्भवतः उसी से मल्लार राग की उत्पत्ति हुई है। यह वर्षाकाल का एक प्रिय राग है। गांधार व मल्लार राग की उत्पत्ति हुई है। यह वर्षाकाल का एक प्रिय राग है। गांधार व निषाद वर्जित हैं। अतः कुछ लोग इसे खमाज थाट में लेने का आग्रह करते हैं। 'रेप' की संगति प्रमुख है एवं मध्यम का प्राबल्य है। सारे म, रेप, प, मप, धसां, धप, म यह



शुद्ध मल्लार का महत्त्वपूर्ण भाग है। मल्लार के अनेक भेद प्रचार में हैं। जैसे—गौड़ मल्लार, मियाँ मल्लार, सूर मल्लार, मेघ मल्लार, रामदासी मल्लार, नट मल्लार, धूलिया मल्लार, चरजू की मल्लार, चंचलसस मल्लार, रूप मंजरी मल्लार, मीराबाई की मल्लार इत्यादि। मल्लारी राग इससे भिन्न है। 'संगीत रत्नाकर' में इस राग की चर्चा है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सारेमप धसां। साधप मपध प म रेसा।

म

स्वरूप—सा, रे म, मप, मपधप, म, सारेम, मरे, सा, रेसा, धपमप धपम, रेसा, धप, म प ध सा, रेम, मप, धसां सारेंसां मरें, सां, रेंसां, पंमरें, सां, रेंसां, सां, धप, मपधसां, रेंमरेंसां, धप, मपधप म, रेसा।

### मलुहाकेदार

यह केदार राग का ही एक उपभेद है, जिसमें श्याम और कामोद रागों का मिश्रण है। तीव्र मध्यम उचित रूप से ग्रहण किया जाता है। इसका विस्तार प्रायः मन्द्र और मध्य सप्तकों में ही होता है। थाट बिलावल है। विलम्बित लय के

विस्तार से राग में गम्भीरता आती है। रे, साप, ममप पपनि, सा, रे, सा यह इसकी जीवभूत तान है। इसके आगे 'कामोद' का अंग सा, ग, मरे, गमप, गमरेसा जोड़ देने से यह राग स्पष्ट हो जाता है। इसमें षड्ज वादी और मध्यम सम्वादी है। आरोह में रिषभ और धौवत स्वर दुर्बल होते हैं। मन्द्र निषाद से विलम्बित रूप से षड्ज पर आने में राग का रूप स्पष्ट दिखाई देता है। गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। आरोह में रिषभ-धौवत वर्जित रहने से जाति औडव-सम्पूर्ण है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—निसा गमप, निसां। सां निध पमग मरेसा।

स्वरूप—सा, रेसा, प, मप, नि, सा ग, ग, मरे, मग, प, मपधनि, धप, पसा।

### मारवा

यह मारवा थाट का आश्रय राग है। इसमें रिषभ कोमल और मध्यम तीव्र हैं। पंचम स्वर वर्जित है, अतः जाति षाडव-षाडव है। आरोह में षड्ज को दुर्बल रखते हैं और रिषभ को वक्र। जैसे रेमंगरे, गरेमंगरे, निरेनिध, निरे स। इसमें मीड़ का काम कम किया जाता है। इसका वादी रिषभ व संवादी धौवत मानते हैं। इसे दिन के चौथे प्रहर में गाते हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—नि रे, गमध, नि रें स। रें निध, मंगरे, गमंग रे स।

स्वरूप—ध म ग रे, ग म ग, रे स। (इसे मध्य सप्तक में गाते हैं।)



## मारू बिहाग

प्राचीन ग्रंथों में केवल 'मारू' राग का उल्लेख मिलता है। अतः मारू बिहाग एक नवनिर्मित राग है जो 'मारू' तथा 'बिहाग' के मिश्रण से बना है। पंचम स्वर इन दोनों को जोड़ने वाला स्वर है। इसके आरोह में ऋषभ, धैवत वर्जित हैं और अवरोह संपूर्ण है। अतः जाति औडव-संपूर्ण है। इसमें ऋषभ, गांधार, धैवत और निषाद शुद्ध हैं तथा मध्यम दोनों लगते हैं। वादी गांधार और संवादी निषाद है। यह राग पूर्वाङ्ग-प्रधान तथा शान्त प्रकृति का है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—नि सा, ग म प नि, सां। सां नि ध प, मं ग रे सा।

स्वरूप—रे नि साम, म प ग, मं ग रे सा।

इसमें ऋषभ स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। जैसे नि सारेसा, ग मं प, मं पग, मं ग रे, सा, रे रे नि सा। मं पग टुकड़े से ऋषभ का महत्त्व बढ़ता है जिसके बाद मं ग रे सा टुकड़ा स्वाभाविक रूप से आता है और ऋषभ स्पष्ट दिखाई देकर राग खुल जाता है।

## मालगुंजी

यह राग काफी थाट से उत्पन्न होता है। इसमें दोनों गांधार और दोनों निषाद लगते हैं। शेष स्वर शुद्ध हैं। इसे 'बागेश्री' की भाँति गाते हैं। परन्तु आरोह में शुद्ध निषाद और शुद्ध गांधार लेने से यह 'बागेश्री' से अलग हो जाता है। आरोह में ऋषभ को वर्जित रखते हैं। अतः जाति षाडव-संपूर्ण है। पंचम को छोड़ा भी जा सकता है और चाहें तो बहुत कमी के साथ रेमपध म की भाँति लिया भी जा सकता है, परन्तु बिल्कुल छोड़ देने से भी राग हानि नहीं होती। कोमल गांधार को अन्त में लेते हैं। जैसे—मगमगरे स। ध नि स ग म से रागेश्री दिखाकर मगरेस जोड़ देते हैं। इस प्रकार यह 'रागेश्री' और 'बागेश्री' का मिश्रण है। गायन समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—नि स ध नि स ग म, ध नि सं। सं नि, ध, मग, मग रेस।

स्वरूप—गम गरेस, नि स ध नि स ग म।

## मालश्री

यह राग कल्याण थाट के अंतर्गत माना जाता है। ऋषभ और धैवत वर्ज्य होने के कारण इसकी जाति औडव-औडव है। वादी स्वर पंचम तथा सन्वादी स्वर षड्ज है। प्रयोग-काल संध्या काल है। मध्यम और निषाद स्वर क्वचित् प्रयुक्त होते हैं। ग-प स्वर-संगति बार-बार आती है। तार सां से पंचम पर लौटने की स्वर रचना अत्यंत मधुर एवं रंजक प्रतीत होती है।



किसी-किसी ग्रंथ में 'मालश्री' और 'मालासी' नाम भी पाये जाते हैं। जिन्हें काफी थाट के अन्तर्गत माना गया है। कुछ गायक 'मालश्री' को सा, प, ग ऐसे तीन ही स्वरों पर गाते हैं जो कि शास्त्रीय दृष्टि से योग्य नहीं। 'बिहाग' और 'शंकरा' नामक रागों से इसे बचाना चाहिए क्योंकि 'बिहाग' में शुद्ध मध्यम स्पष्ट लगता है और 'शंकरा' के अवरोह में धैवत वर्जित नहीं है तथा कोई-कोई अवरोह में ऋषभ का प्रयोग भी करते हैं। अतः उक्त दोनों रागों से इसे आसानी से अलग किया जा सकता है।

इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सा, गप, मंग, प नि सां। नि प, मंग,

पग, सा।

स्वरूप—प, प, पगसा, सा सा गग प, प, पमंग, प, गसा, सा सा प नि सा, गपग, मंग, सा, नि सा गप मंग पग, सा पप गसा, गपसां निसां गंसां, प में गं सां, नि नि पमंग, पसां, सां निपग, सागपसां, निप गपग, गसा।

### मालीगौरा

इस राग में गौरी, सोरठ और पूरिया धनाश्री का अंग प्राप्त होता है। मारवा थाट के इस राग में ऋषभ और धैवत कोमल एवं अन्य स्वर शुद्ध तथा मध्यम तीव्र है। 'मालीगौरा' के दूसरे प्रकार में धैवत शुद्ध लगता है। ऋषभ वादी एवं पंचम संवादी है। समय सायंकाल है। इसे गाते समय रें नि प, रे नि प, मं ध ग, नि ध नि, रे प प, मं रे ग, ध मं ग यह स्वर समुदाय बार-बार आता है। इसकी जाति सम्पूर्ण है। वादी रिषभ एवं सम्वादी पंचम है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सा रे ग मं प ध नि ध सां नि। सां नि धु प मं नि ध मं ग रे स।

स्वरूप—रे ग मं धु, ग मं ग रे सा।

### मालकोश

यह भैरवी थाट का राग है। इसमें ऋषभ, पंचम वर्जित हैं, अतः जाति औडव-औडव है। ग, ध, नि कोमल लगते हैं। वादी मध्यम व संवादी षड्ज है। गायन समय रात्रि का तीसरा प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—नि स ग म धु नि स। स नि धु, म, गु म गु स।

स्वरूप—म गु, म धु नि धु, म, गु, स।



## मियाँ मल्हार

यह काफी थाट का राग है। इसमें दोनों निषाद और कोमल गांधार प्रयुक्त होते हैं। शेष स्वर शुद्ध हैं। यह दरबारी और मल्हार को मिलाने से बनता है। दरबारी में शुद्ध धौवत लेकर निधनि स लगा दें और आरोह में रेम या रेप ले लें और गांधार को अवरोह में वक्र करके गुमरेस की भाँति लें तो यह राग तुरन्त स्पष्ट हो जाता है। 'मल्हार' का अंग मरेप, गुम रेस, निधनि, स को 'दरबारी' में जोड़ दें, जैसे सरेग, मप, निध नि सं या मरेप, निध नि सं ले लें तो 'मियाँ मल्हार' बन जाता है। 'बहार' राग में भी निधनिसं लेते हैं। परन्तु 'बहार' में यह स्वर समुदाय मध्यम से लिया जाता है और धौवत पर कुछ ठहरते हैं—जैसे म निध, नि सं। जब कि 'मियाँ मल्हार' में इसे पंचम स्वर से लेते हैं और शुद्ध निषाद पर कुछ टिकाव करते हैं—जैसे प निधनि, सं। वादी मध्यम व संवादी षड्ज है। गायन समय वर्षा ऋतु है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सरे, मरे, प, निध नि, सं। सं निप, मप, म रे स।

स्वरूप—मरेप, गुम रेस, निध नि, स।

## मियाँ की सारंग

यह काफी थाट से उत्पन्न षाडव जाति का राग है। इसमें दोनों निषाद लगते हैं। आरोह तथा अवरोह में गांधार वजित है। वादी ऋषभ और संवादी पंचम है तथा समय दिन का दूसरा प्रहर है। 'रेप' तथा 'रेम' की स्वर संगति और ऋषभ के वादित्व से इसे 'सारंग' का आधार प्राप्त होता है परन्तु 'निध' संगति वाले 'मियाँ मल्लार' प्रमाण से यह 'सारंग' से भिन्न होता है। वास्तव में 'सा, निध निध, सा' इस स्वर विन्यास से 'मियाँ की सारंग' राग का दर्शन होता है। यावनिक प्रकार का होने से इस राग को मियाँ तानसेन द्वारा प्रचार में लाया गया बताते हैं इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

ध नि सा रे पध निसां। सां निध सां निप मरेसा।

स्वरूप—सा, निसा, रेसा, ध निप, निध निध, सानि सा, मरे, प, प, धप, मरेस  
म ध ध  
प, निध, निध, सां, निसां, रेंसां, निध, सां, रेप, मरें, सां, निप, मरे, सा।



## मुलतानी

यह 'तोड़ी' थाट का राग है। इसमें ऋषभ, गांधार, धौवत कोमल और मध्यम तीव्र लगता है। आरोह में ऋषभ व धौवत वजित हैं। अवरोह सम्पूर्ण है अतः जाति औडव-संपूर्ण है। वादी पंचम व संवादी षड्ज है। इसके गांधार पर तीव्र मध्यम का कण लगाकर लेते हैं। गायन समय दिन का चतुर्थ प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स ग म प नि सं । सं नि ध प म ग रे स ।

स्वरूप—नि स ग म प, ग म ग रे स ।

## मेघ

यह औडव जाति का राग है, जिसमें गांधार व धौवत स्वर वर्ज्य हैं। इसमें 'सारंग' की छाया दिखाई देती है। कोई-कोई कोमल गांधार भी प्रयुक्त करते हैं

अथवा उस पर आन्दोलन करते हैं। जब इसमें 'मल्लार' दिखाते हैं तो पूर्वांग में मरे स्वर संगति लेनी पड़ती है और बीच-बीच में 'रेप' की संगति भी दिखानी पड़ती है। 'मेघ' में दोनों निषाद लेने का चलन दिखाई देता है। आरोह में तीव्र तथा अवरोह में कोमल निषाद का बहुधा प्रचार है। यह गंभीर प्रकृति का है जिसमें सा, म और प स्वर प्रबल हैं। षड्ज वादी एवं पंचम संवादी है। समय वर्षा ऋतु है। मेघ में गांधार व धौवत वर्ज्य करने से वह शुद्ध 'मल्लार', 'गौड़ मल्लार', 'मियाँ मल्लार' और

म —  
'सूरदासी मल्लार' इत्यादि राग स्वतः दूर हो जाते हैं। रे म रे सा, नि सा इस स्वर नि ध प —  
विन्यास से 'मल्लार' का स्वरूप प्रकट हो जाता है तथा सां, नि प अथवा सां, नि प, म रे सा यह भाग आते ही अन्य 'मल्लारों' से 'मेघ' का स्वरूप अलग हो जाता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सा रे म प नि सां । सां नि प म रे सा ।

नि ध प

स्वरूप—सां, नि नि प, म रे सा ।

## मेघ मल्लार

यह काफी थाट से उत्पन्न औडव जाति का राग है, जिसमें दोनों निषाद लगते हैं। धौवत और गांधार वजित हैं। वादी षड्ज और संवादी पंचम है तथा समय



वर्षाकाल है। कोई-कोई इसमें मध्यम को संवादी मानते हैं। 'मरेप' 'मल्लार' राग का यह स्वर विन्यास इसमें प्रमुख रीति से आता है। ऋषभ पर होने वाले आन्दोलन से इस राग को पहचानने में सहायता मिलती है, जो मध्यम का कण लगाते हुए कई बार प्रयुक्त होता है। मध्यम पर अनेक बार ठहरने से 'सारंग' अलग हो जाता है। वर्षाकाल में यह अच्छा लगता है। कुछ वन्दिशों में धौवत स्वर का प्रयोग भी मिलता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सा मरे मप नि निसां। सां निप मरे म नि रे सा।

सा म

स्वरूप—रेम, रेसा निप निसा, रे रे, रेमम, रे, सारेमरे, सा निप, मपसां, रेंसां,  
प मम  
निसारेंमरें, सां, निप, सांनिप, रेरे मरेसा।

## मांड

यह बिलावल थाट का वक्र संपूर्ण राग है। इसमें दोनों निषाद तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। कुछ लोग आरोह में केवल ऋषभ को और कुछ रिषभ व निषाद दोनों को वर्जित कर देते हैं। अवरोह संपूर्ण है। वादी षड्ज है और संवादी पंचम। इसमें भजन, गज़ल, ठुमरी आदि गाई जाती हैं। मध्यम व धौवत को बढ़ाने से राग खिल उठता है। हर समय गाया जा सकता है। यह एक धुन की भाँति का राग है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स रे म प ध सं अथवा सग, म प ध नि सं। सं नि ध म, पध, निध पम गरे, सरेग स।

स्वरूप—रे म प ध, नि ध प, मग, रे स।

## यमन

मध्यकालीन ग्रंथों में 'यमन' राग का उल्लेख मिलता है, परन्तु प्राचीन ग्रंथों में केवल 'कल्याण' राग दिखाई देता है 'यमन' नहीं। आधुनिक ग्रंथों में 'यमन' एक संपूर्ण राग बताया है, लेकिन वास्तव में वह व्यों कि उसमें पंचम वर्जित है। कई बार पंचम का अल्प प्रयोग अवश्य किया जाता है जिसने 'यमन' में अब महत्त्वपूर्ण स्थान ले लिया है। इसमें गांधार, निषाद महत्त्व के स्वर हैं जो वादी और संवादो भी हैं। जाति षाडव और समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। आरोह-अवरोह इस प्रकार है—नि रे ग, म ध नि, सां। सां नि ध, म ग, रे सा।



स्वरूप—सा, नि सा, रे सा नि ध नि, म ध नि नि, ध नि रे सा । नि रे ग रे म म ग, म ध नि म ध, नि ध, सां, निरें सां, सां, नि ध नि, म ध म ग, म ग रे ग, ग, नि रे सा । कई बार पंचम और षड्ज वर्जित करके गांधार और निषाद का महत्त्व राग की विशेषता के रूप में दिखाया जाता है और यही सच्चा 'यमन' है । 'यमन' से ही 'यमनी' और 'यमनी पुरिचा' राग निकले हैं ।

### यमन कल्याण

यह कल्याण थाट का आश्रय राग है । इसमें मध्यम तीव्र तथा शेष स्वर शुद्ध हैं । जाति संपूर्ण-संपूर्ण है । वादी गांधार व संवादी निषाद है । कभी-कभी बहुत थोड़े अंश में शुद्ध मध्यम भी प्रयुक्त हो जाता है । तब इसे 'यमन-कल्याण' कहते हैं । यदि शुद्ध मध्यम बिल्कुल न लगाया जाए तो इसे 'कल्याण' ही कहते हैं । परन्तु सामान्य रूप से शुद्ध मध्यम को बिल्कुल न लगा कर गाए जाने वाले राग को भी 'कल्याण' और 'यमन' या 'ईमन कल्याण' कह दिया जाता है । गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है । इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स रे ग, मप, ध, निसं । संनिध, पम, ग रेस ।

स्वरूप—निरेगरे, स, पमंग, मगरे, निरेगरे, स ।

### यमनी बिलावल

इसका थाट बिलावल है और यह 'बिलावल' का ही एक भेद है । यह 'यमन' और 'बिलावल' के मिश्रण से उत्पन्न हुआ है, जिसमें दोनों मध्यम लगते हैं । वादी षड्ज और संवादी पंचम है । गायन समय प्रातःकाल है । आरोह में तीव्र मध्यम का प्रयोग करके 'यमन' का अंग दिखाया जाता है और फिर शुद्ध मध्यम को स्पष्ट रूप में लगाकर उसका निवारण किया जाता है । साधारण चलन 'बिलावल' राग जैसा ही है । राग वाचक प्रयोग 'प, म, प, गमगरे, गरेसा' है । इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सारेग मग पमध निसं । सांनिधप गमगरे गरेसा ।

स्वरूप—सा, रेग, रे, सा, निधनि सां ग, मंग, पमप, गमगरे, गरेसा ।



## रागेश्री

यह खमाज थाट का राग है। आरोह में ऋषभ, पंचम तथा अवरोह में केवल पंचम वजित है। अतः जाति औडव-षाडव है। दोनों निषादों के अतिरिक्त शेष स्वर शुद्ध हैं। यदि 'बागेश्री' को शुद्ध गांधार से गाया जाए और कभी-कभी आरोह में शुद्ध निषाद ले लिया जाए तथा कभी-कभी गांधार को वक्र कर दिया जाए तो यह राग तुरन्त स्पष्ट होता है। वादी गांधार तथा संवादी निषाद है। गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स ग, मध, नि सं। सं निध म ग, मगरे, स।

स्वरूप—गमधनिध, मगरे, स।

## रामकली

यह भैरव थाट का राग है। इसमें ऋषभ व धैवत कोमल, दोनों मध्यम और दोनों निषाद प्रयुक्त किए जाते हैं। शेष स्वर शुद्ध हैं। तीव्र मध्यम और कोमल निषाद को केवल अवरोह में मं प धु नि धु प गम की भाँति ही लेते हैं। जाति संपूर्ण-संपूर्ण है। वादी पंचम, संवादी षड्ज है। गायन समय प्रातः काल है। 'भैरव' को गाते समय अवरोह में यदि कभी-कभी मं प धु नि धु प स्वर ले लिए जाएँ तो इस राग की रचना होती है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स रे ग म प धु नि सं। सं निधुप, मपधु नि धुप, गम, रे, स।

स्वरूप—मपधु नि धुप, गम रे, स।

## रामदासो मल्लार

काफी थाट से उत्पन्न यह संपूर्ण जाति का राग है। इसमें दोनों गांधार और दोनों निषाद लगते हैं—आरोह में तीव्र एवं अवरोह में कोमल। मध्यम वादी और षड्ज संवादी है तथा समय वर्षाकाल है। कहते हैं इसे 'रामदास नायक' ने बनाया था। दोनों गांधार स्पष्ट लगने से 'मल्लार' के अन्य सब प्रकार इससे अलग हो जाते हैं। 'मरे व रेप' संगतियाँ रक्तिदायक हैं। इसमें 'शहाना' व 'गौड़' इन रागों का संयोग है। कुछ लोग इसे केवल 'कोमल गांधार' से गाना पसन्द करते हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सा रे प मगम पनिध निसां। सांध नि मप मगु मरेसा।

स्वरूप—पगुमरेसा, रेनिसा, सारेगपम, म, प, मप, गुगुमरे, पमनिप, गुम रेसा,

पधनि, सां, सां, सांरेंसां, निसां, निप, म, म, पगु, म, पम, निप, गुमरेसा।



## रेवा

यह पूर्वी थाट से उत्पन्न औडव-औडव जाति का राग है, जिसमें मध्यम और निषाद वर्जित हैं। ऋषभ और धैवत कोमल लगते हैं। गांधार वादी और पंचम संवादी है। समय सायंकाल है। भैरव थाट के विभास से यह मिलता जुलता है परन्तु वादी स्वर के भेद और पूर्वांग की प्रबलता से उससे भिन्न हो जाता है। मध्यम और निषाद वर्ज्य होने के कारण 'गप' सगति स्वतः आगे आ जाती है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सारु गपधसां । सांधप गरे सा ।

स्वरूप—ग, रेग, पग, रे, सा, रेग, प, पध, पग, सारुग, रेग, सांरेंसां, धप, ग, पग, रेसा ।

## ललित

यह मारवा थाट का राग है। इसमें पंचम वर्जित है। जाति षाडव-षाडव है। दोनों मध्यम साथ-साथ लगाए जाते हैं। जैसे-म म म। ऋषभ कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध हैं। वादी मध्यम (शुद्ध) और संवादी षड्ज है। इसे विद्वान् दोनों धैवत से गाते हैं। सन् १८७० ई० तक के आस-पास आकाशवाणी से शुद्ध धैवत का ही 'ललित' सुनाई देता था। जब किसी को कोमल धैवत का 'ललित' गाना होता तो उसे 'कोमल धैवत का ललित' कहा जाता था। केवल 'ललित' का अर्थ शुद्ध धैवत के 'ललित' से था। किन्तु कोमल धैवत का 'ललित' अधिक लोकप्रिय होने के कारण अब उलटा हो गया। अर्थात् अब कोमल धैवत के 'ललित' को 'ललित' और दूसरे को 'शुद्ध धैवत का ललित' कहा जाने लगा। किन्तु शास्त्रों में 'ललित' में शुद्ध धैवत ही है। गायन समय रात्रि का अंतिम प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

नि रे ग मे ध नि सं । सं निध म, म, म ग रे स ।

स्वरूप—नि रे ग म, मम, ग म ग रे स ।

## ललित पंचम

भैरव थाट से उत्पन्न यह एक 'मिश्र' राग है। इसमें ऋषभ, धैवत कोमल तथा दोनों मध्यम लगते हैं आरोह में पंचम वर्जित है, अवरोह पूर्ण वक्र है। वादी मध्यम और संवादी षड्ज है। गायन समय रात्रि का अन्तिम प्रहर है। इसे 'ललित' अंग से गाते हैं। मुक्त मध्यम के प्रयोग से 'ललित' अंग उत्पन्न होता है। परन्तु पंचम लगाने पर वह उससे भिन्न हो जाता है। मारवा थाट में एक पंचम नामक राग है जिसमें शुद्ध धैवत लगता है, अतः वह भी 'ललित पंचम' से सहज ही भिन्न हो जाता है। आरोह में पंचम वर्जित होने से जाति षाडव-संपूर्ण है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सारु सागम मंगमधु निसां । सांति धुप धूमम पग रेसा ।



स्वरूप—गम गरेसा, धनि सागम, ममम; मधुनिसां, सांरें, सांनिधुप, मपमधु, पम, गमधुनिसां, सां, सांनिरें, सांनिधुनि, सां गंगं मं गं रें, सां नि ध प मं प, ग म रे सा ।

### ललितागौरी

पूर्वी थाट से उत्पन्न इस राग में दोनों मध्यम लगते हैं। गुणीजनों के अनुसार दोनों मध्यम लेकर 'गौरी' राग गाने से 'ललितागौरी' होता है। यह संपूर्ण जाति का राग है। कुछ लोग इसे 'ललितगौरी' भी कहते हैं। इसमें दोनों धैवत लगते हैं। लेकिन कोमल धैवत नाम मात्र को लगता है, इसीलिए कोई-कोई इसका थाट 'मारवा' भी कहते हैं। इसमें 'भटियारी' राग की झलक भी दिखाई देती है। ऋषभ कोमल है तथा समय सायंकाल है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सारे गम ममग पधुनिसां । सांनि धुप धुमं मग मरेसा ।

ध नि रें प प  
स्वरूप—मधु, नि, रें, गं, सां, निसां, सां, नि, ध, प, ध, निप मपग, रेग, रेसा  
ध  
निध, सा, प, पधनि, प, ग, मप मं, ध, सां, सां, सां, रें, सां, सां, निरें गंरें सां, सांनि  
धुप, पधनिप, ग, मप ।

### विभास (भैरव थाट)

यह भैरव थाट का राग है। इसमें ऋषभ, धैवत कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध हैं। मध्यम, निषाद वर्ज्य होने से जाति औडव-औडव है। वादी धैवत व संवादी ऋषभ है। गायन समय दिन का दूसरा प्रहर है। यदि कोमल ऋषभ और कोमल धैवत से 'देसकार' को गाया जाए तो यह राग बनता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स रे ग प धु सं । सं धु प, ग रे स ।

स्वरूप—पधुप, गप गरे स ।

### शंकरा

यह कल्याण थाट का राग है। इसके आरोह में केवल मध्यम और अवरोह में मध्यम व ऋषभ वर्जित हैं अतः जाति औडव-षाडव है। वादी स्वर गांधार व संवादी निषाद है। गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। कुछ विद्वान् इसे 'स ग प नि' जैसे चार स्वरों पर ही गाते हैं। 'निध संनि' की भाँति धैवत को अल्प रखते हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स ग प, निध सं । सं नि प, गप, ग रे स ।

स्वरूप—निध सं नि, प, गप, ग स ।



## श्याम कल्याण

यह कल्याण थाट का औडव-संपूर्ण राग है। आरोह में गांधार व धौवत वजित हैं, अवरोह संपूर्ण है। कुछ लोग इसमें 'हमीर', 'गौड़' और 'केदार' का मिश्रण मानते हैं जबकि भातखंडे जी के अनुसार इसमें 'कल्याण' और 'कामोद' का मिश्रण है। 'कामोद' की छाया बचाने के लिए गांधार का प्रयोग किया जाता है। 'कल्याण' अंग दिखाने के लिए निषाद को महत्त्व दिया जाता है। इसमें दोनों मध्यम लिए जाते हैं। आरोह में तीव्र और अवरोह में शुद्ध। अवरोह में गांधार को वक्र रखते हैं। वादी ऋषभ व संवादी पंचम है। गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सरे मं प नि सं । सं निधप मं प गम रे स ।

ग

स्वरूप—गमरे निस, रे मं प ।

## शहाना

यह काफ़ी थाट से उत्पन्न सम्पूर्ण जाति का राग है, जिसमें निषाद और गांधार कोमल लगते हैं। पंचम वादी और षड्ज संवादी है। समय रात्रि का तीसरा प्रहर है। कोई-कोई आरोह में धौवत वर्ज्य करके भी गाते हैं। तीव्र धौवत लगने से यह राग 'अड़ाना' राग से अलग रहता है। उसी प्रकार धौवत और गांधार स्वरों के प्रयोग से 'सारंग' से भिन्न रहता है। इसका साधारण चलन 'कानड़ा' अंग का होने से धौवत व गांधार का प्रयोग बड़ी मधुरता उत्पन्न करता है। निधनिप, धमप, यह स्वर 'विन्यास' इस राग की पहचान है। विद्वानों के अनुसार 'अड़ाना', 'दरबारी' तथा 'मल्लार' के संयोग से यह राग बना है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

निसा गुमप निध प सां । सां नि धनि पमप गुम रेसा ।

प ध म

स्वरूप—निध निप, धमप, प, सां, नि नि प, मपगु, म, पगुमप, गुमरेसा, मप

प प प प म

निसां, सां, निसां, निसारेंसां, सां, निप, नि निप, निमपसां, निप, मप, गुगुम ।



## शुद्ध सारंग

‘शुद्ध सारंग’ या ‘सारंग’ काफी थाट का राग है। इसकी जाति षाडव है। इसमें ऋषभ वादी एवं पंचम संवादी है। दोनों मध्यम और दोनों निषादों का प्रयोग होता है। आरोह और अवरोह में गांधार वर्जित है। कोई-कोई अवरोह में धौवत वर्जित करके भी गाते हैं। समय दिन का दूसरा प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सा रे म प, म प नि सां। सां नि प म, प ध प म रे नि सा।

स्वरूप—नि सा रे सा, नि प नि सा रे, म प म रे रे सा। दूसरा प्रकार—सा रे म रे, प म प, ध ध प, ध नि प, म प, म रे नि सा।

## शुक्ल बिलावल

यह बिलावल थाट का राग है, जो ‘बिलावल’ का एक भेद है। गायन समय प्रातः काल है। मध्यम वादी और षड्ज संवादी है। आरोह में ऋषभ दुर्बल होता है तथा मध्यम पर न्यास होता है। उसी से राग रूप विशेष स्पष्ट होता है। रे-प की स्वर-संगति राग वाचक है। अवरोह में नि-ग और ध-म स्वर संगतियाँ रंजक होती हैं। उत्तरांग प्रधान राग होने से इसके अवरोह में वैचित्र्य प्रतीत होता है। अवरोह में धौवत की संगति में कोमल निषाद का किंचित् स्पर्श सुन्दर दिखाई देता है। विद्वानों के अनुसार ‘बिलावल’ और ‘केदार’ राग के मिश्रण से यह राग उत्पन्न हुआ है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सग मप धनि सां। सां नि ध नि ध प मग म रे सा।

स्वरूप—सा, ग, गमपम, मपम, रेप, मपध नि, ग, गम, मपमग म, सां नि ध, ध ध, मग, मरे, सा।

## शुद्ध कल्याण

यह कल्याण थाट का राग है। इसमें मध्यम तीव्र और शेष स्वर शुद्ध हैं। आरोह में मध्यम-निषाद वर्जित स्वर हैं। अवरोह सम्पूर्ण है, अतः जाति ओडव-सम्पूर्ण है। वादी गांधार और संवादी धौवत है। प्रायः लोग मध्यम को पंचम से गांधार पर आते समय मीड से लेते हैं। द्रुत तानों में तो बिल्कुल छोड़ देते हैं। इस प्रकार निषाद का प्रयोग ही अवरोह में पाया जाता है। ‘भूपाली’ राग से बचाने के लिए स नि ध प ग और परे की संगति लेते हैं। गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—स, रेग, पध, सां। सां नि ध प, मग, रेस।

स्वरूप—ग, रेस, नि ध प, स, गरे, परे, स।



## शिवमत भैरव

यह भैरव थाट का राग है। इसे भैरवी थाट से उत्पन्न भी माना जाता है किन्तु वह अधिक प्रचार में नहीं है। इसमें 'तोड़ी' की भी अल्प छाया रहती है। आरोह में रे तथा ध कोमल प्रयुक्त होते हैं एवं अवरोह में दोनों ग तथा दोनों नि लगते हैं। शेष स्वर शुद्ध हैं। जाति सम्पूर्ण है। धैवत वादी और ऋषभ संवादी है। गायन-समय रात्रि का अंतिम प्रहर या प्रातःकाल है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है-

सा, रे, गम, प, ध, निसां। सां, निध, प, धनिधप, मग, मरे, ग, रेसा या सागुरेसा।

स्वरूप—सां, धनिधप, म, गमपमगरे, सागुरेसा या मगमरेगुरेसा।

## सरपरदा

यह एक यावनिक राग-भेद है। कहा जाता है कि हज़रत अमीर खुसरो द्वारा प्रचलित रागों में से यह एक है। इसका थाट बिलावल है व जाति सम्पूर्ण है। षड्ज वादी व पंचम संवादी है। गायन समय दिन का प्रथम प्रहर है। यह राग अल्हैया-बिलावल के साथ 'यमन', 'गौड़' और 'बिहाग' के मिश्रण से उत्पन्न हुआ है। इसमें सभी स्वर शुद्ध हैं। गांधार और धैवत महत्त्व के स्वर हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सारे गम ध प नि ध निसा। सां निधप मगमरेसा।

स्वरूप—सा, रेग मध, प, मग, मरे, सा, गमध, प, सारेग, मरे, सा।

## साजगिरी

मारवा मेल से उत्पन्न यह एक आधुनिक व अप्रसिद्ध राग है। जाति सम्पूर्ण है। गांधार वादी एवं निषाद संवादी है। इसमें ऋषभ कोमल तथा दोनों मध्यम लगते हैं। समय संध्या काल है। निषाद व मध्यम की संगति रक्तिदायक है। 'पूर्वी' तथा 'पूरिया' के संयोग से इसकी उत्पत्ति हुई है, ऐसा कुछ लोगों का मत है। मन्द्र तथा मध्य सप्तक में यह राग अधिक शोभादायक रहता है। शुद्ध मध्यम पर ठहराव बड़ा आनन्ददायक है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—निरेग मंगमप धुपसां। सांनिध मंध मंग पगुरेसा।

स्वरूप—निरेगरे, मंग, रेसा, निरे गुरेसा निरेनिध, मंध, सा, ग, म, नि, मंग, मप, धप, सां, सां, सांनि, रें निधप, पधग, प, प, ध, सां, निरुंनि, मंधग, मंम गुरेसा।



## सिंदूरा

यह काफ़ी थाट का राग है। इसमें कोमल गांधार, दोनों निषाद तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। आरोह में गांधार, निषाद वर्जित स्वर हैं। अवरोह सम्पूर्ण है। जाति औडव-सम्पूर्ण है। वादी तार षड्ज और संवादी पंचम है। गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स रे म प ध सं । सं निध प म गु रेस ।

स्वरूप—रेमपध सं, निधमपध गुरे, मगुरेस ।

## सुघराई

काफ़ी थाट से उत्पन्न यह एक 'कानड़ा' प्रकार ही है। आरोह में धीवत वर्जित होने से इसकी जाति षाडव सम्पूर्ण है। गांधार कोमल एवं निषाद दोनों लगते हैं। पंचम वादी और षड्ज संवादी है। समय दिन का दूसरा प्रहर है। 'निप' स्वर संगति से 'कानड़ा' की पहचान होती है। अवरोह में गांधार वक्र तथा आंदोलित है। इसमें किंचित् 'सारंग' अंग भी है। कहते हैं कि यह 'अड़ाना' और 'बृन्दावनी सारंग' के सम्मिश्रण से बना है। 'शहाना कानड़ा' का यह समप्राकृतिक राग है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सारेग मप निसां । सां नि धप मप गुम रेसा ।

म प

स्वरूप—धप, मरे, निसा, रेम, मप, निप, सां, पनिप, मपगुम, प, निसां, सां, रें,

प प म म

सां, निप, पमप, निप, गु गु म, रेसा ।

## सूर मल्लार

यह काफ़ी थाट का राग है। आरोह में गांधार व धीवत स्वर वर्जित हैं। अवरोह में केवल गांधार वर्जित है अतः जाति औडव-षाडव है। इसमें दोनों निषाद प्रयुक्त होते हैं। नि प और रे प स्वर संगतियाँ इस राग को 'सोरठ' से अलग कर देती

म

हैं, इसलिए अवरोह में निमप या निधप लेते हैं। कभी-कभी रे प नि नि सं भी लेते हैं। वादी मध्यम व संवादी षड्ज है। वर्षा ऋतु में हर समय गाया जाता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स, रे मरे मप, नि सं । सं, नि प, मनिधप, मरे, स ।

म

स्वरूप—स रेम, पम, निधप, मरे, स ।



## सूहा

काफ़ी थाट से उत्पन्न धैवत वर्जित यह षाडव जाति का राग है एवं 'कानड़ा' का ही एक प्रकार है। गांधार और निषाद कोमल लगते हैं। मध्यम वादी और षड्ज संवादी है। समय दिन का दूसरा प्रहर है। आरोह में ऋषभ दुर्बल और अवरोह में गांधार वक्र है और यही 'कानड़ा' अंग की पहचान है। इसके उत्तरांग में 'सारंग' है परन्तु पूर्वांग में गांधार स्पष्ट होने से वह इससे भिन्न रहता है। इसमें मुक्त मध्यम पर न्यास करने और 'निप' की स्वर संगति से मधुरता उत्पन्न होती है। यह 'दरवारी', 'कानड़ा' और 'मेवमल्हार' के संयोग से बना है, ऐसा विद्वानों का मत है। 'सूहा' के दूसरे प्रकार में कोमल धैवत का प्रयोग किया जाता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

निसा गुम पन्नि मप सां । सां निप मप गुम, रेसा ।

म

स्वरूप—निसा, गुम, पगु, मरे, सा, निसा, निप, सा, मरे, पगु, म, रेसा, सगु,  
प प

म, पप, सां, निप, मपगु, मरे, स ।

कोमल धैवत वाले 'सूहा' का स्वरूप यह है—निसा, मरे, सा, निसा, गुम, पम, गुम, निप, सां, धुनिप, मप, गुम, रेसा ।

## सोहनी

यह 'मारवा' थाट का राग है। इसमें ऋषभ कोमल तथा मध्यम तीव्र है। शेष स्वर शुद्ध हैं। पंचम वर्जित है अतः जाति षाडव-षाडव है। यह तार सप्तक-प्रधान राग है। वादी धैवत व संवादी गांधार है। ग म ध नि सं रें सं, स्वरों से राग तुरन्त स्पष्ट होता है। गायन समय रात्रि का अन्तिम प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स ग म ध नि सं । सं निध, मंग, रेस ।

स्वरूप—संनिध, ग म ध नि सं रें सं । जब इन्हीं स्वरों में मन्द्र सप्तक को प्रबल बनाकर 'ग' और 'नि' पर न्यास करते रहें तो 'पूरिया' राग बनता है। यदि ऋषभ और धैवत को प्रबल करके मध्य सप्तक में गाएँ तो 'मारवा' बनता है। यदि उत्तरांग को प्रबल करके 'धनि सं रें सं' को प्रबल रखें तो 'सोहनी' बनता है।

## श्री

यह 'पूर्वी' थाट का राग है। इसमें ऋषभ, धैवत कोमल और मध्यम तीव्र है। आरोह में गांधार, धैवत वर्जित हैं तथा अवरोह संपूर्ण है। अतः जाति ओडव-संपूर्ण



है। वादी स्वर ऋषभ और संवादी पंचम है। गायन समय दिन का चतुर्थ प्रहर है। रे प की संगति से यह राग एकदम स्पष्ट हो जाता है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स रे म प नि सं। सं नि धु प म ग रे स।

स्वरूप—रे रे प, मपधुप, मगरेस।

## हंसकंकणी

काफ़ी थाट से उत्पन्न तथा आरोह में ऋषभ-धौवत वर्ज्य यह औडव-संपूर्ण जाति का राग है। इसमें दोनों गांधार और दोनों निषाद लगते हैं। पंचम वादी और षड्ज संवादी है। समय दिन का तीसरा प्रहर है। यह 'धनाश्री' अंग का राग है। साधारणतः तीव्र गांधार आरोह में और कोमल गांधार अवरोह में लगता है। 'पग' स्वर संगति विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

साग मप निसां। सां निधप मपग मगरेसा।

स्वरूप—साग, मप, गरेसा, निसा, ग, मप, म, पग, गमप, गु, रेसा, नि, साग, मपनिसां, सां, गुरेंसां, निधप, पनिधपध, मगु, म, पगु, मप, गु, रेसा।

## हंसध्वनि

यह कर्नाटिक पद्धति का राग है। थाट विलावल है। समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। धौवत स्वर वर्जित होने से जाति औडव है। षड्ज वादी और पंचम संवादी है। कोई-कोई गांधार को वादी मानते हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सारे गपगरे गपनि सां। सांनिप गरेसा।

स्वरूप—सारेगसा, सा, गपगरे, गपनि, पनिनि, सां, रेंसां, रेंगरेसांनि, पनिरें-सांनि, गरेगपनि, नि, रेंगरेसां।

## हमीर

यह राग 'कल्याण' थाट से उत्पन्न होता है। इसमें दोनों मध्यम तथा शेष स्वर शुद्ध हैं। तीव्र मध्यम का प्रयोग आरोह में केवल पंचम के साथ होता है जबकि शुद्ध मध्यम आरोह तथा अवरोह दोनों में लगता है। आरोह में निषाद का प्रयोग भी वक्र और सरल दोनों प्रकार से होता है। जैसे मपधप निधसं या धनिसंरेंसं। इसी प्रकार अवरोह में गांधार का प्रयोग भी वक्र और सरल दोनों रूपों में होता है। जैसे—सनिधप, मपधप, गमरेस। समप्रकृति के रागों से बचाने के लिए आरोह में पंचम को छोड़ देते हैं, जैसे गमधप, गमरेस। यह संपूर्ण जाति का राग है। वादी धौवत व संवादी गांधार है। गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। कभी-कभी विवादी के नाते



कोमल निषाद का प्रयोग भी हो जाता है। जैसे संधनिप, या धनिप, धमप गमध। 'केदार' व 'कामोद' समप्राकृतिक राग हैं। इसका आरोह अवरोह इस प्रकार है—

सरेस, गमध, निध सं। सं निधप, मपधप, गमरेस।

नि

स्वरूप—स रे स, गम ध।

## हिंडोल

यह कल्याण थाट का राग है। इसमें ऋषभ-पंचम वर्जित स्वर हैं, अतः जाति औडव-औडव है। मध्यम तीव्र तथा शेष स्वर शुद्ध हैं। वादी स्वर धौवत तथा संवादी षड्ज है। यह एक उत्तरांग प्रधान राग है। निषाद का प्रयोग जितना कम किया जाएगा यह राग उतना ही स्पष्ट होगा। अतः आरोह में निषाद को वक्र रखते हैं। अर्थात् निधसं की भाँति तार-षड्ज पर जाते हैं। यदि निषाद को विल्कुल छोड़ दिया जाए तब भी राग-हानि प्रतीत नहीं होती। परन्तु फिर केवल चार स्वर शेष रहते हैं, अतः 'मीड़' से या वक्र रूप से इसका प्रयोग करते रहना चाहिए। निषाद के प्रबल होने से 'सोहनी' की छाया आ जाती है। गायन समय दिन का प्रथम प्रहर है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

स, ग, मध निध सं। सं, निध, मंग स।

स्वरूप—स, ग, मधनिधमंग, स।

## हेमन्त

विलावल थाट से उत्पन्न यह राग औडव-संपूर्ण जाति का है क्योंकि इसके आरोह में ऋषभ और पंचम वर्जित हैं। स्वर सभी शुद्ध लगते हैं। मध्यम वादी और षड्ज संवादी है। समय मध्य रात्रि है। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

सा ग म ध नि सां। सां ध प नि म ग रे सा।

स्वरूप—ग म रेसा, गम, धप, मरे नि सा, सा, म ध नि सां, निध पम ग म ध नि सां, सां सां मं मं गं मं रें सां, नि सां रें नि सां नि ध प म ग म रे सा, ध नि सा, गम।



# ताल-मात्रा-लय-विवरण

## ताल

भरत मुनि ने संगीत में काल (समय) नापने के साधन को 'ताल' कहा है। जिस प्रकार भाषा में व्याकरण की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार संगीत में ताल की आवश्यकता होती है। गाने-बजाने और नाचने की शोभा ताल से ही है; यथा :—

तालस्तलप्रतिष्ठायामिति धायोद्यञ्जि स्मृतः ।

गीतं वाद्यं तथा नृत्तं यतस्ताले प्रतिष्ठितम् ॥

संगीतरत्नाकर (तालाध्याय)

ताल शब्द 'तल्' धातु से बना है। 'संगीत रत्नाकर' के अनुसार, जिसमें गीत, वाद्य और नृत्य प्रतिष्ठित होते हैं, वह 'ताल' है। 'प्रतिष्ठा' का अर्थ होता है—व्यवस्थित करना, आधार देना या स्थिरता प्रदान करना। तबला, पखावज इत्यादि ताल-वाद्यों से जब गाने के समय को नापा जाता है, तो एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है। वास्तव में 'ताल' संगीत की जान है, 'ताल' पर ही संगीत-कला की इमारत खड़ी हुई है।

## मात्रा

तालों में उनकी लम्बाई स्पष्ट करने वाली इकाई को 'मात्रा' कहते हैं। 'मात्रा' ताल का ही एक हिस्सा है, क्योंकि मात्राओं के योग से ही समस्त तालों की रचना हुई है। एक-सी लय या चाल में गिनती गिनने को मात्रा कह सकते हैं। यदि घड़ी की एक सैकंड को हम एक मात्रा मान लें, तो १६ सैकंड में तीनताल का ठेका बन जाएगा, १२ सैकंड में एकताल का ठेका बन जाएगा और १० सैकंड में झप ताल हो जाएगी। इसी प्रकार बहुत-सी तालें बनी हैं।

## लय

ताल में एक क्रिया और दूसरी क्रिया के बीच की विश्रांति का काल, जो पहली क्रिया का विस्तार है, 'लय' कहलाता है। मुख्य लय तीन प्रकार की होती हैं—  
१. विलंबित, २. मध्य तथा ३. द्रुत।



## विलंबित लय

जिस लय की चाल बहुत धीमी हो, उसे 'विलंबित लय' कहते हैं। 'विलंबित' लय का अंदाज, मध्य लय से यों लगाया जाता है—मान लीजिए, एक मिनट में आपने एक-सी चाल से ६० तक गिनती गिनी, तो उसे अपनी मध्य लय मान लीजिए। इसके बाद इसी एक मिनट में समान चाल से ३० तक गिनती गिनी, तो उसे 'विलंबित लय' कहेंगे, अर्थात् ३० तक गिनती जो गिनी गई, उसकी लय ६० वाली गिनती की अपेक्षा धीमी हो गई, अर्थात् प्रत्येक गिनती में कुछ देर लगी। 'विलम्ब' का अर्थ है—देर।

## मध्य लय

जिस लय की चाल विलंबित से तेज और द्रुत से कम हो, उसे 'मध्य लय' कहते हैं। यह लय बीच की होती है। 'मध्य' का अर्थ है—बीच।

## द्रुत लय

जिस लय की चाल विलंबित लय से चौगुनी या मध्य लय से दुगुनी हो, उसे 'द्रुत लय' कहेंगे। ऊपर बताया गया था कि १ मिनट में समान चाल से ६० तक गिनती गिनकर 'मध्य लय' कायम की गई है। अब यदि १ मिनट में १२० तक गिनती गिनी जाएगी, तो निश्चय ही गिनती की चाल तेज हो जाएगी। 'द्रुत' का अर्थ है—तेज।

## ठेका

'तबला' या 'मृदंग' के लिए प्राचीन शास्त्रकारों ने भिन्न-भिन्न बोल वैसी ही भाषा में बना दिए, जैसी उन ताल-वाद्यों से प्रकट होती है। उन्हीं बोलों को जब हम 'तबला' या 'मृदंग' पर बजाते हैं, तब उसे 'ठेका' कहते हैं जिससे ताल का स्वरूप प्रकट होता है। 'ठेका' एक ही आवृत्ति का होता है, जिसमें मात्राएँ निश्चित होती हैं। उन्हीं निश्चित मात्राओं के अनुसार गाने-बजाने का नाप होता है; जैसे कहरवा ताल में ८ मात्राएँ हैं और इसके दो भाग हैं। प्रत्येक भाग में ४-४ मात्राएँ हैं। पहली मात्रा पर सम और पाँचवीं पर खाली है। इसे इस प्रकार लिखेंगे :—

|             |    |   |    |   |   |    |   |
|-------------|----|---|----|---|---|----|---|
| मात्राएँ— १ | २  | ३ | ४  | ५ | ६ | ७  | ८ |
| ठेका— धा    | गे | न | ति | न | क | धि | न |
| ताल-चिह्न × |    |   |    | ० |   |    |   |

यह कहरवा ताल का ठेका हुआ। इसी प्रकार अन्य बहुत-सी तालों के ठेके हैं।



## दुगुन

किसी ठेके को जब दुगुनी लय में बजाया जाए, यानी जितने समय में कोई ठेका एक बार बजाया गया था, उतने ही समय में उसे दो बार बजाया जाए, तो उसे 'दुगुन' कहेंगे। इसी प्रकार किसी गीत के स्थायी या अन्तरा को जितने समय में एक बार गाया जाए, ठीक उतने ही समय में उसे दो बार गा दिया जाए तो वही 'दुगुन' कहलाएगी।

## तिगुन-चौगुन

जब कोई ठेका या गीत १ मिनट में एक बार गाया या बजाया जाए और वही ठेका या गीत उतने ही समय अर्थात् १ मिनट में ही ३ बार गाया या बजाया जाए, तो उसे 'तिगुन' कहेंगे। यदि १ मिनट में ४ बार गाया गा बजाया जाए, तो उसे 'चौगुन' कहेंगे।

## आड़ी

कोई ठेका या गीत जिस मध्य लय में गाया-बजाया जाए, उससे ड्योढ़ी लय में गाने-बजाने को 'आड़ी' कहेंगे। मान लीजिए, १ मिनट में ६० तक गिनती गिनी जा रही है और जब एक मिनट में ६० तक गिनती गिनने लगें, तो वही 'आड़ी' कहलाएगी।

## कुआड़ी

यदि ठेके की गति मध्य लय से सवाई होती है, तो उसे 'कुआड़ी' लय कहते हैं; जैसे १ मिनट में ६० तक गिनती गिनी जा रही थी, किन्तु जब १ मिनट में ही ७५ तक गिनती गिनी जाएगी, तो उसे 'कुआड़ी' कहेंगे।

## बिआड़ी

इसी प्रकार एक मिनट में १०५ तक गिनती गिनी जाएगी, तो 'बिआड़ी' अर्थात् पौने दोगुनी लय हो जाएगी। लय का विशेष विवरण आगामी पृष्ठों में ताल के साथ दिया गया है।

## सम

यह ताल का वह स्थान है, जहाँ से गाना-बजाना या ताल का ठेका शुरू होता है। गायक-वादक ऐसे स्थान पर संगति करते हुए जब मिलते हैं, तो एक विशेष प्रकार का आनन्द आता है और श्रोताओं के मुँह से अनायास ही 'अँ' निकल जाता है या उनके शरीर का कोई भाग हिल जाता है। 'सम' पर गायक-वादक विशेष जोर देकर उसे प्रदर्शित करते हैं। प्रायः 'सम' पर ही गाने-बजाने की समाप्ति भी होती है। 'सम' को 'न्यास' भी कहते हैं।



## खाली

प्रत्येक ताल के कुछ हिस्से होते हैं, जिन्हें 'भाग' भी कहते हैं। इन भागों पर जहाँ हाथ से तालियाँ बजाई जाती हैं, वे तो 'भरी' कहलाती हैं और जिन भागों पर ताली बंद रहती है, वे 'खाली' कहलाती हैं। ताल में 'खाली' भाग इसलिए रखने पड़े हैं कि इससे 'सम' आने का अंदाज़ ठीक लग जाता है। 'खाली' के स्थान का संकेत हाथ फेंककर किया जाता है और भातखंडे स्वरलिपि-पद्धति में इस स्थान को शून्य के चिह्न (०) द्वारा दिखाते हैं।

## भरी

ताल के जिन हिस्सों पर तालियाँ बजाई जाती हैं, उन्हें 'भरी' या 'तालियों के स्थान' कहते हैं। वैसे, जब हाथ से ताल दिखानी होती है, तब 'भरी' के ताल-स्थान को थाप या थपकी द्वारा दिखाया जाता है।

## आवृत्ति

आवृत्ति का अर्थ है—फेरना, दुहराना या चक्कर लगाना। ताल को सम-से-सम तक जितनी बार दुहराया जाएगा, उसकी उतनी ही आवृत्तियाँ मानी जाएँगी। कोई-कोई इसे 'आवर्तन' या 'आवर्तक' भी कहते हैं।

## जर्ब

जर्ब का अर्थ है—आघात या चोट। तबले पर जब थाप दी जाती है, तो उसे 'जर्ब' कहते हैं। इसी प्रकार सितार पर जो मिज़राब द्वारा आघात किया जाता है, उसे भी 'जर्ब' कहते हैं।

## कायदा

तबला या मृदंग पर बजने वाले वर्ण-समूह जब तालबद्ध होकर अभ्यास में आने लगें और उन्हें शास्त्रीय रीति से तबला या मृदंग पर बजाया जा सके तथा उँगलियाँ सधी हुई और तैयार पड़ें, एवं बोल स्पष्ट निकलें, तो उसे 'कायदा' कहते हैं।

## टुकड़ा

यह तबला या मृदंग पर बजने वाले बोलों का एक छोटा-सा समूह होता है। जब दुगुन, तिगुन, चौगुन या अठगुन की लय में बजाकर सम पर इसकी समाप्ति होती है, तो इसे 'टुकड़ा' कहते हैं।



## ताल के दस प्राण

प्रत्येक जाति के तालों में दस बातें अवश्य ही मिलेंगी, जिन्हें 'ताल के प्राण' कहते हैं—१. काल, २. क्रिया, ३. कला, ४. मार्ग, ५. अंग, ६. प्रस्तार, ७. जाति, ८. ग्रह, ९. लय और १०. यति ।

### काल

समय का ही दूसरा नाम 'काल' है । काल से ही मात्राओं और तालों की रचना हुई और इसी से 'तान' बनती है ।

### क्रिया

किसी भी ताल की मात्राओं के गिनने को 'क्रिया' कहते हैं । हाथों से ताली लगाना या खाली दिखाना अथवा मात्राओं को अँगुलियों से गिनना सब 'क्रिया' कहलाती हैं । 'क्रिया' से ही हमें मालूम होता है कि 'अमुक' ताल में कौन-कौन से अंग हैं और वह कौन सी ताल है । 'क्रिया' के दो भेद माने गये हैं—१. सशब्द क्रिया, २. निःशब्द क्रिया ।

### सशब्द क्रिया (पात)

यह ताल की मात्राओं या समय को गिनने की वह क्रिया है, जिसमें आवाज उत्पन्न हो; अर्थात् ताली देकर मात्राएँ गिनने को 'सशब्द क्रिया' कहेंगे ।

### निःशब्द क्रिया (खाली)

ताल की मात्राएँ जब अँगुलियों पर या मन-ही-मन बिना शब्द किए हुए गिनी जाएँ, तो उसे 'निःशब्द क्रिया' कहेंगे ।

### कला

अक्षर-काल का सूक्ष्म विभाजन 'कला' कहलाता है । इस आधार पर मात्राओं के हिस्से (भाग) को 'कला' कहते हैं; जैसे आधी मात्रा, चौथाई मात्रा या  $\frac{1}{4}$  मात्रा आदि ।

### मार्ग

निश्चित काल से युक्त कलाओं के समूह को 'मार्ग' कहते हैं । प्राचीन ग्रंथों में ये चार प्रकार के बताए हैं—'ध्रुव', 'चतुरा', 'दक्षिणा' और 'वृत्तिका' । कला के हिसाब से इन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार से बाँटा जाता था, किन्तु इनका वास्तविक रूप क्या था, इसका कोई पता नहीं चलता ।

### अंग

ताल के समय में जो भिन्न-भिन्न भाग होते हैं, उन्हें 'अंग' कहते हैं । इस प्रकार अक्षर-काल को स्पष्ट करने वाले चिह्नों को 'अंग' कहा जाता है । ये छह प्रकार के हैं, जिन्हें 'अनुद्रुत', 'द्रुत', 'लघु', 'गुरु', 'प्लुत', और 'काकपद' कहते हैं ।



‘अनुद्रुत’ में १ मात्रा, ‘द्रुत’ में २ मात्रा, ‘लघु’ में ४ मात्रा, ‘गुरु’ में ८ मात्रा, ‘प्लुत’ में १२ मात्रा और ‘काकपद’ में १६ मात्राओं का समय माना गया है।

## यति

लय के चाल-क्रम को ‘यति’ कहते हैं। प्राचीन शास्त्रों में ‘यति’ के पाँच प्रकार माने गये हैं।

### १. समा

लय के अन्तर्गत आरंभ, बीच और अन्त, इन तीनों स्थानों पर बराबर एकसी लय का होना ही ‘समा’ यति कहलाता है।

### २. स्रोतोगता

जिसके आरंभ में ‘विलंबित लय’, बीच में ‘मध्य लय’ और अन्त में ‘द्रुत लय’ हो, उसे ‘स्रोतोगता’ यति कहते हैं।

### ३. मृदंगा

जिसके आरंभ और अंत में ‘द्रुत लय’, बीच में ‘मध्य लय’ या ‘विलंबित लय’ होती है, उसे ‘मृदंगा’ यति कहते हैं।

### ४. पिपीलिका

जिसके आदि व अन्त में ‘विलंबित’ या ‘मध्य लय’ और बीच में ‘द्रुत लय’ होती है, उसे ‘पिपीलिका’ यति कहते हैं।

### ५. गोपुच्छा

जो यति ‘द्रुत लय’ से आरंभ होकर क्रमशः ‘मध्य’ और फिर ‘विलंबित लय’ में होती जाए, उसे ‘गोपुच्छा’ यति कहते हैं।

## प्रस्तार

जिस प्रकार सात स्वरों के फैलाव से ५०४० तानें पैदा हुई हैं; उसी प्रकार एक मात्रा से लेकर १३ मात्राओं तक के प्रस्तार से भिन्न-भिन्न ताल पैदा होकर उनकी संख्या ६५५३५ हो जाती है। प्रस्तार का अर्थ है—बढ़ाना या फैलाना। इस आधार पर, भिन्न-भिन्न रूपों से की जाने वाली अंग-कल्पना को ‘प्रस्तार’ कहते हैं।

## जाति

जाति के बोलों की रचना जितने-जितने अक्षरों से हुई है, उनके अनुसार पाँच जातियाँ कायम की गई हैं, जो निम्नलिखित हैं :—

|                  |                   |               |
|------------------|-------------------|---------------|
| १. त्र्यश्र जाति | ३ मात्राओं के लिए | तकट           |
| २. चतुरश्र जाति  | ४ " "             | तक धिन        |
| ३. खंड जाति      | ५ " "             | तकट किट       |
| ४. मिश्र जाति    | ७ " "             | तक धिन तकट    |
| ५. संकीर्ण जाति  | ८ " "             | तक धिन तक तकट |



‘ताल’ गति को किस स्थान से ग्रहण करता है, इसे जानने के लिए ‘ग्रह’ बनाए गए हैं जो चार होते हैं—१. सम, २. विषम, ३. अतीत, ४. अनागत । १. जब गीत और ताल एक ही स्थान से आरम्भ हों तो उसे ‘सम ग्रह’ कहेंगे । २. जब सम निकलने के बाद गाना शुरू किया जाए, तो उसे विषम ‘ग्रह’ कहेंगे । विषम का अर्थ है—असमान या बराबर न होना । ३. ‘अतीत’ का अर्थ है—पिछला या गुज़रा हुआ । ताल के सम का अंत होने पर जब गायन आरम्भ किया जाता है तो उस स्थान को ‘अतीत’ कहते हैं । ४. जब पहले गायन आरम्भ हो जाए और पीछे ताल शुरू हो, तो उसे ‘अनाघात’ या ‘अनागत ग्रह’ कहते हैं ।

## लय विवरण

‘लय’ की परिभाषा पहले दे दी गई है । दो क्रियाओं के बीच का समय या काल ‘लय’ कहलाता है । इसे और अधिक स्पष्ट रूप में समझने के लिए मान लीजिए कि एक घड़ी के पेंडुलम का प्रत्येक ‘खट’ एक सैकिड के समय में चल रहा है । यदि वही पेंडुलम कोई खट एक सैकिड में और कोई खट डेढ़ सैकिड में करने लगे तो हम संगीत की भाषा में कहेंगे कि इसकी लय बिगड़ गई, अर्थात् घड़ी की चाल बिगड़ गई । लय बराबर तभी रहेगी, जब वह घड़ी अपनी ‘खट-खट’ एकसी लय में करती रहेगी ।

इसी प्रकार संगीत अथवा गाने-बजाने तथा नाचने का संबंध लय से है । एक-सी चाल में किसी ताल को बजाया जाएगा, तो उससे एक प्रकार की लय स्थिर कर ली जाएगी । फिर उस ताल की गति घटाई या बढ़ाई जायगी, तब लय बदल जाएगी । इस प्रकार मुख्य लय तीन मानी गई हैं—१. मध्य लय, २. विलंबित लय, ३. द्रुत लय । किन्तु जब संगीत में बड़े-बड़े कलाकार विशेष रूप से अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं, तो उन्हें उपर्युक्त तीन लयों के अतिरिक्त और लयों की भी आवश्यकता होती है । उनके लिए इन लयों का निर्माण हुआ—अति विलंबित लय, तिगुन लय, चौगुन लय, अठगुन लय, कुआड़ी लय, आड़ी लय और बिआड़ी लय । इस प्रकार लय के कुल दस भेद हुए । अब यह बताते हैं कि इनमें भेद क्या है और इन्हें लिपिबद्ध कैसे किया जाएगा, अर्थात् लिखा कैसे जाएगा ।

## लय की व्याख्या और उसे

### लिपिबद्ध करने का ढंग

#### मध्य लय

जब कोई गायक गाना आरम्भ करे, तो पहले उसकी बराबर की लय मालूम कर लेनी चाहिए । बराबर की लय को ही ‘मध्य लय’ कहते हैं । मध्य का अर्थ है, ‘बीच’ । वह मध्य को आधार मानकर ही अन्य लय का प्रदर्शन करेगा ।



यहाँ हम एक गीत की पहली लाइन दे रहे हैं, इसे मध्य लय में मानकर आगे की लय बताने में सुविधा रहेगी। साथ ही इस गीत की लाइन के सोलह अक्षरों को गाने का समय मध्य लय में सोलह सैकिंड मान लेते हैं। यह हमारा मानदंड है। इसी के गणित से अन्य लयों को यहाँ समझाया जा रहा है :—

### मध्य लय (तीनताल), मानदंड : सोलह सैकिंड

|                   |             |             |             |
|-------------------|-------------|-------------|-------------|
| गीत : ज य ज य     | गि रि ध र   | न ट व र     | म न ह र     |
| सैकिंड : १ २ ३ ४  | ५ ६ ७ ८     | ९ १० ११ १२  | १३ १४ १५ १६ |
| ताल : धा धि धि धा | धा धि धि धा | धा ति ति ता | ता धि धि धा |
| चिह्न : x         | २           | ०           | ३           |

उपर्युक्त गीत के सोलह अक्षर 'सोलह सैकिंड' में गाए गए और यह हमने मध्य लय मान ली। अब इस लय को विलंबित करके दिखाते हैं, अर्थात् उपर्युक्त लय में सोलह अक्षर गाने में जितना समय लगा था, अब उससे दुगुना समय (बत्तीस सैकिंड) इन्हीं सोलह अक्षरों को गाने में लगेगा; जैसे :—

### विलंबित लय (तीनताल)

|                     |                        |                         |
|---------------------|------------------------|-------------------------|
| ज ऽ य ऽ ज ऽ य ऽ     | गि ऽ रि ऽ ध ऽ र ऽ      | म ऽ न ऽ ह ऽ र ऽ         |
| १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८     | ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ | १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ |
| धा - धि - धि - धा - | धा धि - - धि - धा -    | ता - धि - धि - धा -     |
| x                   | २                      | ३                       |

इस प्रकार बत्तीस सैकिंड में वे ही सोलह अक्षर गाए गए, तो यह हमारी अर्द्ध लय हो गई। इसे ही 'विलंबित लय' भी कहेंगे।



## अतिविलंबित लय

|    |   |   |   |    |   |   |   |    |    |    |    |    |    |    |    |
|----|---|---|---|----|---|---|---|----|----|----|----|----|----|----|----|
| ज  | ९ | ९ | ९ | य  | ९ | ९ | ९ | ज  | ९  | ९  | ९  | य  | ९  | ९  | ९  |
| १  | २ | ३ | ४ | ५  | ६ | ७ | ८ | ९  | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ |
| धा | - | - | - | धि | - | - | - | धि | -  | -  | -  | धा | -  | -  | -  |
| ×  |   |   |   |    |   |   |   |    |    |    |    |    |    |    |    |

|    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |
|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|
| गि | ९  | ९  | ९  | रि | ९  | ९  | ९  | ध  | ९  | ९  | ९  | र  | ९  | ९  | ९  |
| १७ | १८ | १९ | २० | २१ | २२ | २३ | २४ | २५ | २६ | २७ | २८ | २९ | ३० | ३१ | ३२ |
| धा | -  | -  | -  | धि | -  | -  | -  | धि | -  | -  | -  | धा | -  | -  | -  |
| २  |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |

|    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |
|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|
| न  | ९  | ९  | ९  | ट  | ९  | ९  | ९  | व  | ९  | ९  | ९  | र  | ९  | ९  | ९  |
| ३३ | ३४ | ३५ | ३६ | ३७ | ३८ | ३९ | ४० | ४१ | ४२ | ४३ | ४४ | ४५ | ४६ | ४७ | ४८ |
| धा | -  | -  | -  | ति | -  | -  | -  | ति | -  | -  | -  | ता | -  | -  | -  |
| ०  |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |

|    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |
|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|
| म  | ९  | ९  | ९  | न  | ९  | ९  | ९  | ह  | ९  | ९  | ९  | र  | ९  | ९  | ९  |
| ४९ | ५० | ५१ | ५२ | ५३ | ५४ | ५५ | ५६ | ५७ | ५८ | ५९ | ६० | ६१ | ६२ | ६३ | ६४ |
| ता | -  | -  | -  | धि | -  | -  | -  | धि | -  | -  | -  | धा | -  | -  | -  |
| ३  |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |

इस प्रकार ६४ सैकिड में वे ही अक्षर गाए गए, अर्थात् मध्य लय नं० १ से इसकी गति चौथाई हुई। क्योंकि मध्य लय में हमने १६ सैकिड में ही १६ अक्षर गा लिए थे और उन्हीं १६ अक्षरों को गाने में यहाँ चौगुना समय लग गया, इसलिए हमारी लय की गति चौथाई हो गई। इसे ही 'अतिविलंबित लय' कहेंगे।

यह तो लय को घटाने या विलंबित करने का गणित हुआ; अब आगे लय को बढ़ाने का हिसाब बताया जाता है।



## दुगुन लय (द्रुत लय)

इसकी चाल प्रारंभ में दी गई 'मध्य लय' से ठीक दुगुनी होगी, इसलिए इसे 'दुगुन' कहेंगे। क्योंकि इसकी चाल में पहले की अपेक्षा तेजी है, इसलिए इसे 'द्रुत लय' भी कहते हैं। 'द्रुत' का अर्थ है जल्द या तेज। 'द्रुत लय' को इस प्रकार लिपिबद्ध करेंगे :—

|      |      |      |      |      |      |      |      |
|------|------|------|------|------|------|------|------|
| जय   | जय   | गिरि | धर   | नट   | वर   | मन   | हर   |
| १    | २    | ३    | ४    | ५    | ६    | ७    | ८    |
| धाधि | धिधा | धाधि | धिधा | धाति | तिता | ताधि | धिधा |
| ×    |      | २    |      | ०    |      | ३    |      |

पाठकों को मालूम ही है कि 'मध्य लय' के उपर्युक्त १६ अक्षरों को १६ सैकिंड में गाया गया था। अब वे ही सोलह अक्षर ८ सैकिंड में गा लिए, अतः यह हुई दुगुन लय, क्योंकि  $16 \div 2 = 8$ ।

## तिगुन लय

इस लय में मध्य लय से 'तिगुनी' चाल हो जाएगी, अर्थात् अब उन्हीं १६ अक्षरों के गाने में मध्य लय की अपेक्षा एक तिहाई समय लगेगा :—

|        |        |        |        |        |       |
|--------|--------|--------|--------|--------|-------|
| जयज    | यगिरि  | धरन    | टवर    | मनह    | र, ज  |
| १      | २      | ३      | ४      | ५      | ५½    |
| धाधिधि | धाधाधि | धिधाधा | तितिता | ताधिधा | धा,धा |
| ×      | २      | ०      |        | ३      | ×     |

**ज्ञातव्य :** 'जय-जय गिरिधर नटवर मनह' इन १५ अक्षरों को गाने में ५ सैकिंड लगे तथा अंतिम 'र' अक्षर में ½ सैकिंड लगा और 'ज' अक्षर पर फिर दूसरी आवृत्ति शुरू हो गई।

इस प्रकार तिगुन लय में उन्हीं १६ अक्षरों को गाने में  $16 \div 3 = 5\frac{1}{3}$  सैकिंड लगेंगे; और यदि इसे तीन बार गाया जाए, तो पूरी १६ सैकिंड में सम पर आ जायेंगे।

## चौगुन लय

इसकी चाल प्रारंभ में दी गई मध्य लय से चौगुनी तेज होगी।

|          |          |          |          |
|----------|----------|----------|----------|
| जयजय     | गिरिधर   | नटवर     | मनहर     |
| १        | २        | ३        | ४        |
| धाधिधिधा | धाधिधिधा | धातितिता | ताधिधिधा |
| ×        | २        | ०        | ३        |



चूँकि प्रारंभ में दी गई मध्य लय के १६ अक्षरों को गाने में १६ सैकिंड लगे थे, इसलिए चौगुनी लय में  $१६ \div ४ = ४$  सैकिंड लगेंगे; और इसे चार बार गाया जाए, तब मध्य लय वाली सम पर आ जाएँगे।

### अठगुन लय

इसकी चाल प्रारंभ में दी गई मध्य लय से अठगुनी तेज होगी :—

जयजयगिरिधर  
धार्धिधिधाधार्धिधिधा

नटवरमनहर  
धार्तिताताधिधिधा

× २

० ३

चूँकि प्रारंभ में दी गई मध्य लय के इन्हीं १६ अक्षरों को गाने में १६ सैकिंड लगे थे, इसलिए अठगुनी लय में  $१६ \div ८ = २$  सैकिंड लगेंगे; और इसे आठ बार गाने पर १६ सैकिंड में मध्य लय वाली सम आएगी।

### कुआड़ी लय

इसकी चाल प्रारंभ में दी गई 'मध्य लय' से सवाई तेज होती है। इसे लिखने के लिए १ अक्षर के चार भाग मानकर प्रत्येक अक्षर के आगे (SSS) ऐसे ३ अवग्रह लगाए जायेंगे और फिर अवग्रह-सहित पाँच-पाँच बोलों को एक-एक मात्रा के अंतर्गत रखेंगे, जैसे :—

| जSSSSय      | SSSजS      | SSयSS      | SगिSSS     | रिSSSध      |            |          |                      |
|-------------|------------|------------|------------|-------------|------------|----------|----------------------|
| १           | २          | ३          | ४          | ५           |            |          |                      |
| धा - - - धि | - - - धि - | - - धा - - | - धा - - - | धि - - - धि |            |          |                      |
| X           |            |            | २          |             |            |          |                      |
| SSSSरS      | SSनSS      | SSSSS      | वSSSSर     | SSSमS       | SSनSS      | SSहSSS   | र,SSSज               |
| ६           | ७          | ८          | ९          | १०          | ११         | १२       | १२½                  |
| - - - धा -  | - - - धा - | - ति - - - | ति - - -   | - ता - - -  | - ता - - - | - धि - - | धि - - - धा - - - धा |
|             | ०          |            |            | ३           |            |          | X                    |

ध्यान दीजिए, 'जयजय गिरिधर नटवर मनहर', ये १६ अक्षर १२ सैकिंड से कुछ अधिक समय में अर्थात् १२½ सैकिंड में ही समाप्त हो गए। क्योंकि 'मध्य लय' १६ सैकिंड में थी, इसलिए  $१६ \div १\frac{१}{२} = १२\frac{१}{२}$  सैकिंड समय लगा।

### आड़ी लय

इसकी गति (चाल) प्रारंभ में दी गई मध्य लय से ड्योढ़ी होती है। इसे लिखने के लिए एक अक्षर के दो भाग मानकर प्रत्येक अक्षर के आगे एक अवग्रह (S) जोड़ा जाएगा और अवग्रह-सहित तीन-तीन बोलों को एक मात्रा के अन्तर्गत रखेंगे।

संगीत-विशारद



|          |        |         |          |      |      |      |       |     |      |                  |
|----------|--------|---------|----------|------|------|------|-------|-----|------|------------------|
| जऽय      | सजऽ    | यऽगि    | रिऽ      | धऽर  | नऽ   | टऽव  | रऽ    | मऽन | हऽ   | रऽ,ज             |
| १        | २      | ३       | ४        | ५    | ६    | ७    | ८     | ९   | १०   | १० $\frac{३}{४}$ |
| घा-धि-धि | -घा-घा | - धि-धि | - धा-घा- | - ति | - ति | - ता | - ता- | धि  | - धि | - घा-, घा        |
| ×        | २      |         | ०        |      |      | ३    |       |     |      | ×                |

इस लय में ही सोलह अक्षर १० $\frac{३}{४}$  सैकिड में गा लिए जाएँगे; क्योंकि मध्य लय १६ सैकिड में थी, इसलिए  $१६ \div १\frac{३}{४} = १०\frac{३}{४}$  सैकिड समय लगा ।

### बिआड़ी लय

इस लय की गति मध्य लय नं० १ से पौने दोगुनी तेज होगी । इसे लिखने के लिए प्रत्येक अक्षर के चार भाग मानकर तीन अवग्रह (ऽऽऽ) जोड़े जाएँगे; अर्थात् एक भाग स्वयं वह अक्षर हो गया । इस प्रकार चार भाग हो जाते हैं । अब अवग्रह-सहित सात-सात बोलों को एक मात्रा के अन्तर्गत रखेंगे ।

|                                                                             |        |         |        |         |
|-----------------------------------------------------------------------------|--------|---------|--------|---------|
| जऽऽऽयऽऽ                                                                     | सजऽऽयऽ | सगिऽऽरि | ऽऽधऽऽ  | रऽऽनऽऽ  |
| १                                                                           | २      | ३       | ४      | ५       |
| घा- - - धि- - - धि - - - घा - - - घा - - - धि - - - धि- - - घा- - - घा- - - |        |         |        |         |
| ×                                                                           |        | २       |        | ०       |
| सऽऽऽवऽ                                                                      | सऽऽऽम  | सऽऽनऽऽ  | हऽऽरऽऽ | स,जऽऽयऽ |
| ६                                                                           | ७      | ८       | ९      | १०      |
| -ति- - - ति- - - ता - - - ता - - - धि - - - धि - - - घा- - - घा- - - धि     |        |         |        |         |
|                                                                             | ३      |         |        | ×       |

इस लय में ये ही १६ अक्षर १० $\frac{३}{४}$  सैकिड में गाए गए, क्योंकि मध्य लय १६ सैकिड में थी और यह उसकी पौने दोगुनी तेज है, अर्थात्  $१६ \div १\frac{३}{४} = १०\frac{३}{४}$  सैकिड हो गए । ध्यान दीजिए, 'मनहर' तक गाने में ९ सैकिड पूरी हो गई, फिर अगली मात्रा के सात भागों में से एक भाग और लेना पड़ा, तभी गणित के हिसाब से १० $\frac{३}{४}$  सैकिड आए ।

इस प्रकार ताल, मात्रा और लय समझ लेने तथा क्रियात्मक रूप में उनका अभ्यास कर लेने से गायन, वादन और नृत्य की विद्या में संगीतकार पक्का हो जाता है और फिर वह ताल के साथ अठखेलियाँ करने लगता है ।



## उत्तर भारतीय संगीत-पद्धति की कुछ मुख्य तालें

कहरवा ताल (मात्राएँ ८, भाग २)

|             |    |    |   |    |   |   |    |   |
|-------------|----|----|---|----|---|---|----|---|
| मात्राएँ :  | १  | २  | २ | ४  | ५ | ६ | ७  | ८ |
| बोल :       | धा | गे | न | ति | न | क | धि | न |
| ताल-चिह्न : | ×  |    |   |    | ० |   |    |   |

बादरा ताल (मात्राएँ ६, भाग २)

|    |    |    |    |    |    |
|----|----|----|----|----|----|
| १  | २  | ३  | ४  | ५  | ६  |
| धा | धी | ना | धा | ती | ना |
| ×  |    |    | ०  |    |    |

खेमटा ताल (मात्राएँ ६, भाग २)

|      |     |     |      |     |     |
|------|-----|-----|------|-----|-----|
| १    | २   | ३   | ४    | ५   | ६   |
| धागे | धिन | गिन | तागे | तिन | किन |
| ×    |     |     | ०    |     |     |

झप ताल (मात्राएँ १०, भाग ४)

|    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |
|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|
| १  | २  | ३  | ४  | ५  | ६  | ७  | ८  | ९  | १० |
| धी | ना | धी | धी | ना | ती | ना | धी | धी | ना |
| ×  |    | २  |    |    | ०  |    | ३  |    |    |



### चारताल (मात्राएँ १२, भाग ६)

|    |    |    |    |     |    |    |    |     |    |     |    |
|----|----|----|----|-----|----|----|----|-----|----|-----|----|
| १  | २  | ३  | ४  | ५   | ६  | ७  | ८  | ९   | १० | ११  | १२ |
| धा | धा | दि | ता | किट | धा | दि | ता | तिट | कत | गदि | गन |
| x  |    | ०  |    | २   |    | ०  |    | ३   |    | ४   |    |

### त्रिताल (मात्राएँ १६, भाग ४)

|    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |
|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|
| १  | २  | ३  | ४  | ५  | ६  | ७  | ८  | ९  | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ |
| धा | धि | धि | धा | धा | धि | धि | धा | धा | ति | ति | ता | ता | धि | धि | धा |
|    |    |    | २  |    |    |    | ०  |    |    |    | ३  |    |    |    |    |

### आड़ा चारताल (मात्राएँ १४, भाग ७)

|    |    |    |        |    |    |   |    |    |    |    |    |    |    |
|----|----|----|--------|----|----|---|----|----|----|----|----|----|----|
| १  | २  | ३  | ४      | ५  | ६  | ७ | ८  | ९  | १० | ११ | १२ | १३ | १४ |
| धि | धि | धा | तिरकिट | तू | ना | क | ता | धी | धी | ना | धी | धी | ना |
| x  |    | २  |        | ०  |    | ३ |    | ०  |    | ४  |    | ०  |    |

### तीव्रा (मात्राएँ ७, भाग ३)

|    |    |    |     |    |     |    |
|----|----|----|-----|----|-----|----|
| १  | २  | ३  | ४   | ५  | ६   | ७  |
| धा | दि | ता | तिट | कत | गदि | गन |
| x  |    | २  |     | ३  |     |    |

### सूलताल (मात्राएँ १०, भाग ५)

|    |    |    |    |     |    |     |    |     |    |
|----|----|----|----|-----|----|-----|----|-----|----|
| १  | २  | ३  | ४  | ५   | ६  | ७   | ८  | ९   | १० |
| धा | धा | दि | ता | किट | तक | तिट | कत | गदि | गन |
| x  |    | ०  |    | २   |    | ३   |    | ०   |    |

### धमार (मात्राएँ १४, भाग ४)

|   |    |   |    |   |    |   |    |   |    |    |    |    |    |
|---|----|---|----|---|----|---|----|---|----|----|----|----|----|
| १ | २  | ३ | ४  | ५ | ६  | ७ | ८  | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ |
| क | धि | ट | धि | ट | धा | क | ति | ट | ति | ट  | ता | ५  |    |
| x |    |   | २  |   |    | ० |    | ३ |    |    |    |    |    |

### रूपक (मात्राएँ ७, भाग ३)

|    |    |    |    |    |    |    |
|----|----|----|----|----|----|----|
| १  | २  | ३  | ४  | ५  | ६  | ७  |
| ती | ती | ना | धी | ना | धी | ना |



### एकताल [मात्राएँ १२, भाग ६]

|    |    |      |        |    |    |   |      |      |        |    |    |
|----|----|------|--------|----|----|---|------|------|--------|----|----|
| १  | २  | ३    | ४      | ५  | ६  | ७ | ८    | ९    | १०     | ११ | १२ |
| धि | धि | धागे | तिरकिट | तू | ना | क | त्ता | धागे | तिरकिट | धि | ना |
| x  | ०  |      | २      |    | ०  |   | ३    |      | ४      |    |    |

### दीपचंदी [मात्राएँ १४, भाग ४]

|    |    |   |    |    |     |   |    |     |    |    |    |     |    |
|----|----|---|----|----|-----|---|----|-----|----|----|----|-----|----|
| १  | २  | ३ | ४  | ५  | ६   | ७ | ८  | ९   | १० | ११ | १२ | १३  | १४ |
| धा | धी | ५ | धा | धा | तीं | ५ | ता | तीं | ५  | धा | धा | धीं | ५  |
| x  |    | २ |    |    |     | ० |    |     | ३  |    |    |     |    |

### पंजाबी [मात्राएँ १६, भाग ४]

|    |     |    |    |    |     |    |    |    |     |    |    |    |     |    |    |
|----|-----|----|----|----|-----|----|----|----|-----|----|----|----|-----|----|----|
| १  | २   | ३  | ४  | ५  | ६   | ७  | ८  | ९  | १०  | ११ | १२ | १३ | १४  | १५ | १६ |
| धा | ऽधी | ऽक | धा | धा | ऽधी | ऽक | धा | ता | ऽती | ऽक | ता | धा | ऽधी | ऽक | धा |
| x  |     |    | २  |    |     | ०  |    |    |     |    | ३  |    |     |    |    |

### मत्त ताल [मात्राएँ १८, भाग ६]

|    |   |    |   |   |   |    |   |   |    |    |    |    |    |    |    |    |    |
|----|---|----|---|---|---|----|---|---|----|----|----|----|----|----|----|----|----|
| १  | २ | ३  | ४ | ५ | ६ | ७  | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ | १७ | १८ |
| धा | ऽ | धि | इ | न | क | धि | इ | न | क  | नि | ट  | क  | त  | ग  | दि | ग  | न  |
| x  | ० |    | २ |   | ३ |    | ० |   | ४  |    | ५  |    | ६  |    | ७  |    |    |

### तिलवाड़ा [मात्राएँ १६, भाग ४]

|    |         |    |    |    |    |    |    |    |         |    |    |    |    |    |    |
|----|---------|----|----|----|----|----|----|----|---------|----|----|----|----|----|----|
| १  | २       | ३  | ४  | ५  | ६  | ७  | ८  | ९  | १०      | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ |
| धा | त्रिकिट | धि | धि | धा | धा | ति | ति | ता | त्रिकिट | धि | धि | धा | धा | धि | धि |
| x  |         |    | २  |    |    | ०  |    |    |         |    | ३  |    |    |    |    |

### सूमरा [मात्राएँ १४, भाग ४]

|    |    |    |    |    |      |        |    |    |    |    |    |      |        |
|----|----|----|----|----|------|--------|----|----|----|----|----|------|--------|
| १  | २  | ३  | ४  | ५  | ६    | ७      | ८  | ९  | १० | ११ | १२ | १३   | १४     |
| धि | धि | नक | धि | धि | धागे | तिरकिट | ति | ति | नक | धि | धि | धागे | तिरकिट |
| x  |    |    | २  |    |      | ०      |    |    |    | ३  |    |      |        |



### ब्रह्म ताल (मात्राएँ २८, भाग १४)

|    |    |    |    |     |    |    |    |      |     |     |    |     |    |
|----|----|----|----|-----|----|----|----|------|-----|-----|----|-----|----|
| १  | २  | ३  | ४  | ५   | ६  | ७  | ८  | ९    | १०  | ११  | १२ | १३  | १४ |
| धा | धि | धि | धा | तृक | धि | धि | धा | ती   | ती  | ना  | ती | ती  | ना |
| ×  |    | ०  |    | २   |    | ३  |    | ०    |     | ४   |    | ५   |    |
| १५ | १६ | १७ | १८ | १९  | २० | २१ | २२ | २३   | २४  | २५  | २६ | २७  | २८ |
| ती | ना | तू | ना | क   | ता | धी | ना | धागे | नधा | तृक | धि | गदि | गन |
| ६  |    | ०  |    | ७   |    | ८  |    | ९    |     | १०  |    | ०   |    |

### गणेश ताल (मात्राएँ २१, भाग १०)

|    |    |    |    |    |     |    |      |    |     |    |      |    |    |      |    |     |    |     |    |    |
|----|----|----|----|----|-----|----|------|----|-----|----|------|----|----|------|----|-----|----|-----|----|----|
| १  | २  | ३  | ४  | ५  | ६   | ७  | ८    | ९  | १०  | ११ | १२   | १३ | १४ | १५   | १६ | १७  | १८ | १९  | २० | २१ |
| धा | ता | ति | ता | कत | तिट | धा | दिता | कत | तिट | ता | धागे | दि | ता | धागे | ता | तिट | कत | गदि | गन |    |
| ×  |    |    |    | २  | ३   |    |      | ४  | ५   | ६  |      |    | ७  | ८    | ९  | १०  |    |     |    |    |

### विक्रम ताल (मात्राएँ १२, भाग ४)

|    |   |    |    |   |   |   |    |     |    |     |    |
|----|---|----|----|---|---|---|----|-----|----|-----|----|
| १  | २ | ३  | ४  | ५ | ६ | ७ | ८  | ९   | १० | ११  | १२ |
| धा | ५ | धि | ता | ५ | क | ५ | ता | तिट | कत | गदि | गन |
| ×  | २ |    |    | ० |   |   | ३  |     |    |     |    |

### गजझंपा ताल (मात्राएँ १५, भाग ४)

|    |    |    |    |    |    |    |    |     |    |    |     |    |     |    |
|----|----|----|----|----|----|----|----|-----|----|----|-----|----|-----|----|
| १  | २  | ३  | ४  | ५  | ६  | ७  | ८  | ९   | १० | ११ | १२  | १३ | १४  | १५ |
| धा | धि | नक | तक | धा | धि | नक | तक | तिन | नक | तक | तिट | कत | गदि | गन |
| ×  |    |    | २  |    |    |    |    | ०   |    |    | ३   |    |     |    |

### शिखर ताल (मात्राएँ १७, भाग ४)

|    |      |    |    |     |    |    |    |     |     |    |      |    |     |    |     |    |
|----|------|----|----|-----|----|----|----|-----|-----|----|------|----|-----|----|-----|----|
| १  | २    | ३  | ४  | ५   | ६  | ७  | ८  | ९   | १०  | ११ | १२   | १३ | १४  | १५ | १६  | १७ |
| धा | त्रक | धि | नक | थुं | गा | धि | नक | धुम | रिट | कत | धेत् | धा | तिट | कत | गदि | गन |
| ×  |      |    |    |     | २  |    |    |     |     |    | ०    |    | ३   |    |     |    |

### यतिशेखर ताल (मात्राएँ १५, भाग १०)

|    |     |    |   |      |    |    |    |     |        |      |      |      |     |    |
|----|-----|----|---|------|----|----|----|-----|--------|------|------|------|-----|----|
| १  | २   | ३  | ४ | ५    | ६  | ७  | ८  | ९   | १०     | ११   | १२   | १३   | १४  | १५ |
| धा | तत् | धि | न | त्रक | धि | धि | ना | तत् | ग्रागि | नाधा | त्रक | धिना | गदि | गन |
| ×  | २   |    | ३ |      | ४  | ५  | ६  | ७   | ८      | ९    |      |      | १०  |    |



## चित्रा ताल (मात्राएँ १५, भाग ५)

|    |    |    |    |    |    |    |   |    |      |    |    |    |    |    |
|----|----|----|----|----|----|----|---|----|------|----|----|----|----|----|
| १  | २  | ३  | ४  | ५  | ६  | ७  | ८ | ९  | १०   | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ |
| धी | ना | धी | धी | ना | तू | ना | क | ता | त्रक | धी | ना | धी | धी | ना |
| ५  |    | २  |    |    | ३  |    |   |    | ४    |    |    |    | ०  |    |

## बसंत ताल (मात्राएँ ६, भाग ६)

|    |     |     |     |     |      |    |     |    |
|----|-----|-----|-----|-----|------|----|-----|----|
| १  | २   | ३   | ४   | ५   | ६    | ७  | ८   | ९  |
| धा | देत | देत | धुं | धुं | तेटे | कत | गदि | गन |
| ५  | २   | ३   | ४   | ०   | ५    | ०  | ६   | ०  |

## विष्णु ताल (मात्राएँ १७, भाग ५)

|    |    |    |    |    |    |      |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |
|----|----|----|----|----|----|------|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|
| १  | २  | ३  | ४  | ५  | ६  | ७    | ८  | ९  | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ | १७ |
| धि | ना | धि | धि | ना | धि | त्रक | धी | ना | धि | धि | ना | धि | धी | ना | धी | ना |
| ५  | २  |    |    |    | ३  |      |    |    | ४  |    |    |    | ०  |    |    |    |

## मणि ताल (मात्राएँ ११, भाग ४)

|    |    |   |    |   |    |    |   |   |    |    |
|----|----|---|----|---|----|----|---|---|----|----|
| १  | २  | ३ | ४  | ५ | ६  | ७  | ८ | ९ | १० | ११ |
| ता | धि | ट | कि | ट | धा | कि | ट | त | हि | ट  |
| ५  |    |   | २  |   | ३  |    |   | ४ |    |    |

## शंका ताल (मात्राएँ १०, भाग ४)

|    |   |    |    |    |   |    |      |    |    |
|----|---|----|----|----|---|----|------|----|----|
| १  | २ | ३  | ४  | ५  | ६ | ७  | ८    | ९  | १० |
| धा | ५ | धा | मे | ति | ट | ति | द्धा | कि | ट  |
| ५  |   | २  |    |    | ० |    | ३    |    |    |

## रुद्र ताल (मात्राएँ ११, भाग ११)

|    |    |    |    |    |    |    |   |    |    |    |
|----|----|----|----|----|----|----|---|----|----|----|
| १  | २  | ३  | ४  | ५  | ६  | ७  | ८ | ९  | १० | ११ |
| धी | ना | धी | ना | ता | ती | ना | क | ता | धी | ना |
| ५  | २  | ०  | ३  | ४  | ५  | ०  | ६ | ७  | ८  | ०  |

## ठेका टप्पा (मात्राएँ १६, भाग ४)

|     |    |     |     |     |    |     |   |    |    |     |    |     |    |     |     |
|-----|----|-----|-----|-----|----|-----|---|----|----|-----|----|-----|----|-----|-----|
| १   | २  | ३   | ४   | ५   | ६  | ७   | ८ | ९  | १० | ११  | १२ | १३  | १४ | १५  | १६  |
| धिं | ता | धिं | धिं | धिं | ता | धिं | ५ | धा | धे | दिं | ५  | धिं | ता | धिं | धिं |
| ५   |    |     |     | २   |    |     |   | ०  |    |     |    | ३   |    |     |     |



### अद्धा तित्राल (मात्राएँ ८, भाग ४)

|      |     |      |     |      |     |      |     |
|------|-----|------|-----|------|-----|------|-----|
| १    | २   | ३    | ४   | ५    | ६   | ७    | ८   |
| धाधि | ऽना | धाधि | ऽना | ताति | ऽना | धाधि | ऽना |
| x    | २   |      | ०   |      | ३   |      |     |

### सवारी ताल (मात्राएँ १५, भाग ७)

|      |     |      |    |      |      |      |      |      |         |       |       |      |      |      |
|------|-----|------|----|------|------|------|------|------|---------|-------|-------|------|------|------|
| १    | २   | ३    | ४  | ५    | ६    | ७    | ८    | ९    | १०      | ११    | १२    | १३   | १४   | १५   |
| घीनि | किट | धीना | कत | धीधी | नाधी | धीना | हीना | हीना | तुकतूना | किडनग | कत्ता | धीधी | नाधी | धीना |
| x    |     | २    |    | ०    |      | ३    |      | ०    |         | ४     |       | ०    |      |      |

### लक्ष्मी ताल (मात्राएँ १८, भाग १८)

|    |      |      |      |    |    |     |    |    |    |    |     |     |     |     |    |     |    |
|----|------|------|------|----|----|-----|----|----|----|----|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|
| १  | २    | ३    | ४    | ५  | ६  | ७   | ८  | ९  | १० | ११ | १२  | १३  | १४  | १५  | १६ | १७  | १८ |
| धि | तेत् | धेत् | धेत् | दि | ता | तिट | कत | धा | दि | ता | धुम | किट | धुम | किट | कत | गदि | गन |
| x  | २    | ३    | ०    | ४  | ५  | ६   | ०  | ७  | ८  | ९  | १०  | ११  | १२  | १३  | १४ | १५  | ०  |

### पड़तो ताल (मात्राएँ ७, भाग ३)

|      |    |   |    |    |    |   |
|------|----|---|----|----|----|---|
| १    | २  | ३ | ४  | ५  | ६  | ७ |
| त्रक | धि | ऽ | धा | गे | ति | ऽ |
| x    |    | २ |    | ३  |    |   |

### कच्वाली ठेका (मात्राएँ ८, भाग २)

|    |    |    |    |    |    |    |    |
|----|----|----|----|----|----|----|----|
| १  | २  | ३  | ४  | ५  | ६  | ७  | ८  |
| धा | कत | धा | धि | ता | कत | ता | धि |
| x  |    |    | २  |    |    |    |    |

### शूलफात्ता ताल (मात्राएँ १०, भाग ३)

|    |    |    |         |    |    |    |    |    |    |
|----|----|----|---------|----|----|----|----|----|----|
| १  | २  | ३  | ४       | ५  | ६  | ७  | ८  | ९  | १० |
| धि | धि | धा | त्रिकिट | तू | ना | कत | धी | धी | ना |
| x  |    |    |         | २  |    | ३  |    |    |    |



# तबला एवं परवावज पर दोनों हाथों के अलग-अलग तथा संयुक्त आघात का वर्णन

**तबले के मुख्य दस वर्ण :** तबला के दाहिने तथा बाएँ, दोनों भागों पर मिलाकर कुल दस बोल होते हैं—‘ध ग द त र क ट न घ ङ’। पखावज-शैली की तालों में कभी-कभी ‘म’ और ‘थ’ बोल भी तबले पर बजाए जाते हैं।

यदि ध्यान से देखा जाए तो तबले के मुख्य वर्ण सात ही होते हैं, जो ‘ध ग द त र क’ और ‘ट’ हैं। अन्य वर्ण इनके अनुयायी होते हैं। उदाहरण के लिए ‘त’ का अनुयायी ‘न’ है, ‘ट’ का ‘ङ’ और ‘ग’ का अनुयायी ‘घ’ होता है।

**दाहिने हाथ से बजनेवाले बोल :** १. ता या ना, २. ति या ती, ३. दि, ४. तू, ५. ते, ६. रे या ठ।

**बाएँ हाथ से बजनेवाले बोल :** १. ग, घ, २. का, कि अथवा कत्।

**खुने और बंद बोल :** जिन बोलों को बजाने के बाद तबला की गूँज सुनाई देती रहे, उन्हें ‘खले’ और जिन बोलों के बजने के बाद गूँज समाप्त हो जाए, उन्हें ‘बन्द’ बोल कहते हैं।

**सीधे हाथ का रखाव :** सर्वप्रथम इस बात की ओर ध्यान रखें कि सीधे हाथ की अनामिका अँगुली स्याही के प्रारंभिक भाग पर कुछ मुड़ी हुई रखी जाए। अँगूठा या तो गजरे पर रहे या उसे छूता रहना चाहिए। उसका गजरे से नीचे लटकते रहना ठीक नहीं। इस अवस्था में तर्जनी अँगुली गोठ पर रखी रहेगी। इन सब बातों के अतिरिक्त इसका ध्यान रखना चाहिए कि बोलों को बजाते समय दायीं हाथ पुड़ी से अधिक ऊँचा नहीं उठना चाहिए। तबला बजाते समय हाथ को पुड़ी से जितना कम ऊँचा उठाएँगे, हाथ उतना ही अधिक तैयार होगा।



**बाएँ हाथ का रखाव :** बाएँ हाथ को डग्रे पर बहुत हल्का रखना चाहिए। कलाई का गट्टा स्याही के पूर्व-भाग (अर्थात् अपनी ओर के भाग) में इस प्रकार रखा रहना चाहिए कि तर्जनी और मध्यमा से जब डग्रे पर आघात किया जाए, तो वह स्याही के अंतिम भाग और गोट के बीच में जो लव (मैदान) है, उस पर पड़े। जब गमक निकालनी हो, तो गट्टे को दबाकर निकाली जाए। पुड़ी के ऊपर गट्टे को रगड़कर या विस्सा देकर गमक निकालने का ढंग ग़लत है।

**बैठक :** तबला बजाने के लिए पालथी लगाकर अथवा वीरासन से बैठना चाहिए। चूँकि तबला-वादन में हाथों का बल लगाना पड़ता है; अतः वे सारे आसन, जिनमें हाथों के द्वारा बल लगाया जा सके, उपयुक्त रहते हैं।

**ज़रब लगाना :** यवन कलाकार तबले पर हाथ से आघात करने की क्रिया को तबले पर ज़रब लगाना कहते हैं।

**डग्रे पर बंद बोल 'क' बजाना :** डग्रे पर बाएँ हाथ से केवल दो प्रकार से प्रहार किया जा सकता है। एक ढंग तो यह होगा कि आप हथेली के गट्टे को बाएँ पर से न उठाते हुए चारों उँगलियों और अँगूठे को जोड़कर स्याही पर थपकी लगा दें। इस बोल को 'क' कहते हैं। इसे 'की' या 'के' भी कहा जा सकता है।

**'कत' बजाना :** यून तो यह 'क' का ही दूसरा रूप है, परन्तु इसे बजाते समय हाथ को ढीला करके ऐसी ज़रब लगाई जाती है कि सुनने वालों को 'क' के साथ 'त' भी सुनाई दे। वैसे, वजता केवल एक बोल 'क' ही है।

**'ग' या 'घ' अथवा बाएँ के खुले बोल बजाना :** बाएँ पर ज़रब लगाने का दूसरा ढंग यह है कि आप हथेली के गट्टे को स्याही के पूर्व-भाग में रखकर अनामिका और मध्यमा अथवा तर्जनी और मध्यमा को मिलाकर, इस प्रकार प्रहार करें कि आपकी उँगलियाँ स्याही के अंतिम भाग और किनार के बीच में जो लव है, उस पर जाकर पड़ें। आघात करते ही उँगलियाँ तुरन्त ऊपर उठ जानी चाहिए। इस प्रकार आघात करने पर डग्रे की स्याहीवाला भाग आपके गट्टे और उँगलियों के बीच में रहेगा। इस बोल को 'ग' कहते हैं।

यदि आघात करने के बाद उँगलियों के उठते ही तुरन्त गट्टे से बाएँ को दबा दिया जाए, तो उसे 'घ' कहते हैं। साधारण दृष्टि से 'ग' और 'घ' एक जैसे ही बजाए जाते हैं। गा, गी, गे, 'ग' की तरह और घा, घी, 'घे' 'घ' की भाँति बजते हैं।

**दाहिने में चाँटी पर बंद बोल 'ना' या 'ता' बजाना :** ये अनामिका को स्याही के प्रारंभिक भाग पर रखते हुए तर्जनी के अग्रभाग से गोट पर आघात करने से निकलते हैं।



**‘ता’ या ‘ना’ को खुले बोल की भाँति बजाना :** दाहिने हाथ की अनामिका से स्याही के प्रारंभिक भाग पर प्रहार करके हाथ को तुरंत उठा लेने पर ये बजेंगे। ठेकों में जब ‘ना’ या ‘ता’ आते हैं तो बंद ही बजाए जाते हैं। परन और बोल बजाते समय इन खुले बोलों का प्रयोग किया जाता है।

**थाप का ‘ता’ बजाना :** जब दाहिने हाथ की चारों उँगलियों को मिलाकर स्याही पर इस प्रकार आघात किया जाए कि कनिष्ठिका का प्रहार सबसे जोरदार पड़े और ज़रब लगते ही हाथ ऊपर उठ जाए, तो बहुत उत्तम ‘ता’ बजता है। इसे ठेका बजाते समय दम लेने के लिए बजा देते हैं।

**‘तिन’ या ‘ती’ :** जब अनामिका को स्याही के प्रारंभिक भाग पर रखकर तर्जनी से स्याही के पूर्व, लव पर प्रहार करके तुरंत उठा लिया जाएगा, तो ये बोल बजेंगे।

**तू :** जब ऊपर की ही भाँति तर्जनी से स्याही के प्रारंभिक भाग पर ( ध्यान रखिए, ऊपर का बोल लव पर बजाया था ) आघात करके उँगली को तुरंत उठा लिया जाएगा, तो यह खुला बोल बजेगा।

**‘ति’ या ‘ते’ :** यह दो प्रकार से बजाया जाता है। ‘दिल्ली’ और ‘अजराड़ा’-घराने के वादक मध्यमा से स्याही के बीचों-बीच उँगली से स्याही को दबाकर बजाते हैं; जबकि पूरब-बाज में बजाय एक के मध्यमा और अनामिका, दोनों से मिलाकर बजाया जाता है। यह स्याही के ऊपर बजनेवाला बंद बोल है।

**दिन :** चारों उँगलियों को जोड़कर स्याही के समाप्त होने से कुछ पहले, स्याही पर हल्का-सा आघात करके हाथ को तुरंत हटा लें, तो यह आँसदार बोल उत्पन्न होगा। यह स्याही पर बजनेवाला खुला बोल है।

**थुं :** यह बोल लगभग ‘दि’ की भाँति बजाया जाता है। इसे बजाने के लिए सीधे हाथ की चारों उँगलियों को जोड़कर स्याही के मध्य भाग में आगे की ओर हाथ बढ़ाकर इस प्रकार आघात किया जाता है कि उँगलियों के साथ हथेली का कुछ भाग भी प्रयोग में आ जाए। बस, यही ‘थुं’ होगा।

**‘रे’ या ‘टे’ :** यह बोल प्रायः ‘ति’ या ‘ते’ के तुरंत बाद ‘तिट’ अथवा ‘तिर’ बजाते समय आता है, अतः इसे बजाने के लिए मध्यमा और अनामिका को मिलाकर स्याही के बीचों-बीच सीधी, किन्तु दाबती हुई ज़रब लगानी चाहिए। तुरंत ही तर्जनी से उसी स्थान पर तथा उसी तरह से दबी हुई ज़रब लगानी चाहिए। इन दोनों बोलों को मिलाकर ‘तिट’ या ‘तिर’ कहेंगे।

**‘धा’ या ‘थेई’ :** जब सीधे हाथ से चाँटी पर बजनेवाला ‘न’ या ‘ता’ और बाएँ पर बजनेवाला ‘ग’ एकसाथ मिलकर बजेंगे, तो इस सम्मिलित ध्वनि को ‘धा’ कहते हैं। नाच में ‘थेई’ भी इसी प्रकार बजाया जाता है।

**धि :** जब दाहिने हाथ का खुला बोल ‘तिन्’ और बाएँ का ‘ग’ एकसाथ मिलकर बजते हैं, तो इस सम्मिलित बोल को ‘धिन्’ कहते हैं।



कुछ अन्य मिले बोल बजाना; जैसे 'कित्' या 'किट' । जब सीध हाथ की चारों उँगलियों के केवल अगले भाग (पूरी उँगलियाँ नहीं) स्याही पर पड़ें, तो 'कत्' या 'किट' बजेगा ।

**तिरकिट** : इसमें 'तिर' ऊपर बताए क्रम से बजाकर 'कि' बाएँ पर बंद और 'ट' 'ति' के समान बजेगा । यह कुल चार ज़रबों का बोल है ।

**धिनगिन** : यह चार ज़रबों का बोल है । चारों बोल साफ़ हैं ।

**घिड़नग** : इसमें 'घि' बाएँ से; 'ड़', 'ति' की भाँति; 'न' किनारी पर और 'ग' बाएँ पर बजेगा ।

**किड़नक** : इसमें 'घ' के स्थान पर 'क' बजाकर, शेष को ऊपर की भाँति बजा दिया जाएगा ।

**तिनकिन** : यह ठीक 'धिनगिन' की भाँति बजेगा । सभी बोल स्पष्ट हैं ।

**तुन्ना** : 'तू' दाहिने के लव पर और 'ना' किनारी पर बजेगा ।

**तागे** : दाहिने से 'ता' और बाएँ पर 'ग' बजेगा ।

**धड़धिन** : 'धा' बजाकर मध्यमा और अनामिका से 'ड़' बजेगा । बाएँ से 'घि' तथा दाहिने की चाँट पर 'न' बजेगा ।

**तड़किन** : बायाँ बंद करके 'धड़धिन' की भाँति बजेगा ।

**तिटकत** : 'तिरकि' की भाँति 'तिटक' और 'त' दाहिने पर आँसदार बजेगा ।

**धिर** : दाहिनी हथेली का दाहिना हिस्सा और बाएँ से 'घ' एकसाथ बजने से 'धि' होगा । हथेली के बाएँ भाग से 'र' बजेगा । आघात में दबाव तथा ज़ोरदारी रहनी चाहिए ।

**त्रक** : इस बोल में 'क' को बाएँ तबले पर न बजाकर दाहिने तबले पर 'ट' की भाँति बजाया जाता है । इसका शुद्ध रूप 'त्रत्' है, 'त्र' वर्ण में अनामिका, मध्यमा तथा तर्जनी, तीनों उँगलियों का प्रयोग होता है । स्याही के प्रारम्भिक भाग पर अनामिका और मध्यमा से हल्का-सा दबा हुआ आघात करके तुरंत तर्जनी को लगा देने से 'त्र' बोल बज जाएगा तथा 'क' को 'ट' की भाँति दाहिने तबले पर बजाएँगे, इस प्रकार यह बोल 'त्रक' बजेगा ।

**धाड़ा** : 'धा' को 'ता' व 'ध' से मिलाकर बजेगा और 'ड़' दो प्रकार से बजता है—१. मध्यमा तथा अनामिका दोनों से लव पर और २. तर्जनी को 'त' के स्थान पर प्रहार करने से ।

**नाड़ा** : ऊपर के बोल में बायाँ न बजाने से यह बोल निकलेगा ।

**कत्, कत्, दित्** : दाहिने की स्याही पर चारों उँगलियों द्वारा प्रहार करने पर बजते हैं ।

**तित्** : मध्यमा से स्याही पर अथवा तर्जनी से लव पर बंद करके बजाएँ ।



**छड़ा :** बाएँ से 'घ' तथा तुरन्त दाएँ से 'ता' बजाएँ । इसका शुद्ध रूप 'छता' है ।

**वड़ा :** बाएँ से 'क' और दाहिने से 'ता' बजाएँ । शुद्ध रूप 'कता' है ।

**तड़न्न :** इसमें 'त' मध्यमा व अनामिका से चाँट पर, 'ड़' तर्जनी से तथा 'न' पुनः दोनों से बजेगा ।

**किड़धा :** 'क्रिटधा' की भाँति बजेगा ।

**गदिगिन :** 'ग' बाएँ से, 'द' दाहिने की स्याही से, 'ग' पुनः बाएँ से तथा 'न' दाहिने से मध्यमा के अग्रभाग से स्याही पर बजेगा ।

**वड़ान और छड़ान :** प्रायः इसे दो प्रकार से बजाते हैं । दोनों हाथों से बजाने के लिए पहले बाएँ पर चारों उँगलियों को मिलाकर स्याही पर ज़रब मारने से 'क' और उसके बाद तुरन्त तर्जनी से दाएँ पर 'ता' बजाते हैं । परन्तु कुछ लोग दाएँ पर सीधे हाथ को मारकर इस प्रकार तुरन्त उठा लेते हैं कि देखने में तो पूरे हाथ की ज़रब दिखाई दे, परन्तु पुड़ी पर केवल कनिष्ठिका तथा उसके नीचे की हथेली का भाग ही पड़ता है ।

**दिन्नक :** पहले बाएँ पर खुला बोल बजाकर दाएँ पर तुरन्त 'ना' बजाया जाता है ।

**गिद्दी :** दोनों तबलों पर खुले बोल बजाने से यह बजता है । पहले दाहिने पर सीधा हाथ पूरा उठा हुआ मारो, फिर डग़े के किनारे पर उछटता हुआ बायाँ हाथ मारो ।

**धेत् :** बाएँ हाथ की अनामिका तथा मध्यमा और दाएँ की कनिष्ठिका, अनामिका और मध्यमा को मिलाकर दोनों तबलों पर एकसाथ ज़रब लगाने से यह बोल बजता है ।

**तरान, ततान, तड़ान :** दाएँ हाथ की कनिष्ठिका, अनामिका तथा मध्यमा के अग्रभाग से स्याही पर दबा हुआ आघात करके 'ट' की भाँति 'त' को बजाइए । फिर 'रा' को खुले 'ता' के समान तथा 'ना' को चाँटी पर बजाना चाहिए । यही 'तरान' बोल होगा । 'तरान' बोल वास्तव में 'टतान' बजाया जाता है ।



# ताल वाद्य-वादकों के गुण-दोष

## ताल वाद्य-वादकों के गुण

- ताल, समय और स्वर का ज्ञान होना चाहिए ।
- हाथों में सौष्ठव, लाघव, बाहुल्य तथा दृढ़ता होनी चाहिए ।
- गीत में दक्ष और वाद्य-वादन, कला, लय, ग्रह एवं मोक्ष का ज्ञान रखनेवाला होना चाहिए ।
- हाथ हलका (लघु) हो, विभिन्न पाणियों का बोध हो, वादन की विधि एवं सिद्धि स्थान का ज्ञाता हो और ध्रुवाओं के गान में दक्ष हो ।
- कलाओं का अभ्यास करता हो, मीठे हाथ वाला हो, जिसमें एकाग्रता की शक्ति हो, आनन्दप्रद मार्जनाओं के निर्माण से प्रजा को अनुरक्त करनेवाला हो, बलवान शरीरवाला हो और बौद्धिक स्थिरतावाला हो ।
- जिसे वाद्यों के उचित लेपन प्रमाण का ज्ञान हो और जिसने चारों मार्गों पर परिश्रमपूर्वक वादन का विधिवत् प्रशिक्षण प्राप्त किया हो, सभी सिद्धियों को जिसने अर्जित किया हो, जिसके शरीर में कोई कमी या दोष न हो, जिसने सभी करणों के वादन का अभ्यास किया हो, जो शान्त स्वभाववाला और गीत का ज्ञाता हो, जिसे ग्रहों का अनेक प्रकार से ( या प्रचुर मात्रा में ) ज्ञान हो (जिससे वह मात्राओं का प्रमाण गणित के आधार पर दुगुन, तिगुन आदि बढ़ कर तुरन्त करले), जो संगीत के प्रयोग प्रस्तुत करने एवं उनका ज्ञान रखने वाला हो, तो अपने इन विशिष्ट गुणों के कारण उसे श्रेष्ठ मृदंग वादक समझना चाहिए ।
- जो वादन की भ्रमण क्रिया में चतुर, ऊपर-नीचे होनेवाले हस्त-प्रयोग में दक्ष और काल का ज्ञान या ध्यान रखनेवाला हो, जिसे प्रयोग के दोषों या कम-जोरियों का ज्ञान होने से उन्हें छिपाने की दक्षता प्राप्त हो और करणों के वादन का ठीक से अभ्यास हो तो इन गुणों के कारण उसे श्रेष्ठ वादक समझना चाहिए ।
- जो बैठक में दर्दुर का वादन स्थिरता और वादन में निपुणता लिए हुए करता हो, जो अपनी कला में दक्ष या स्फूर्तिसम्पन्न हो, जिसके हाथ में हलकापन हो, जिसे वादन का शास्त्रीय ज्ञान हो तथा जिसे दूसरे वाद्यों के वादन का भी ज्ञान हो तो ऐसे वादक की सभी ओर से प्रशंसा होती है ।

## ताल वाद्य-वादकों के दोष

- विद्वानों का मत है कि उपर्युक्त गुणों से रहित जिस वादक को ताल के विषय में ज्ञान न हो तथा जो अवसर, काल और शास्त्र को न समझता हो, उसे केवल चमड़ा कूटनेवाला 'वादक' समझना चाहिए ।



## वाद्ययंत्र परिचय, वाद्यों के प्रकार

भारतीय वाद्यों को चार श्रेणियों में बाँटा गया है—१. तत वाद्य, २. सुषिर वाद्य, ३. अवनद्ध वाद्य और ४. घन वाद्य ।

### तत वाद्य या तंतु वाद्य

इस श्रेणी के वाद्यों में तारों के द्वारा स्वरों की उत्पत्ति होती है । इनके भी दो प्रकार हैं—१. तत वाद्य, २. वितत वाद्य । तत वाद्यों की श्रेणी में तार के वे साज आते हैं, जिन्हें मिज़राब या अन्य किसी वस्तु की टंकोर देकर बजाते हैं; जैसे—‘वीणा’, ‘सितार’, ‘सरोद’, ‘तानपूरा’, ‘इकतारा’, ‘दुतारा’ इत्यादि । दूसरी वितत वाद्यों की श्रेणी में गज की सहायता से बजनेवाले साज आते हैं; जैसे—‘इसराज’, ‘सारंगी’, ‘वायलिन’ इत्यादि ।

### सुषिर वाद्य

इस श्रेणी में फूँक या हवा से बजनेवाले वाद्य आते हैं; जैसे—बाँसुरी, हारमोनियम, क्लारनेट, शहनाई, वीन, शंख इत्यादि ।

### अवनद्ध वाद्य

इस श्रेणी में चमड़े से मढ़े हुए ताल-वाद्य आते हैं; जैसे—मृदंग, तबला, ढोलक, खंजरो, नगाड़ा, डमरू, ढोल इत्यादि ।

### घन वाद्य

इस श्रेणी के वाद्यों में चोट या आघात से स्वर उत्पन्न होते हैं; जैसे—जलतरंग, मंजोरा, झाँझ, करताल, घंटातरंग, पियानो इत्यादि ।



# सितार

जन्म : संगीत-रसिक मुगल सम्राट मुहम्मद शाह रंगीले का राज्यकाल १७१६-१७४८ ई० तक है। इस युग के कलाकारों में 'सदारंग' संगीतज्ञ-शिरोमणि थे। उनका वास्तविक नाम नेमत खाँ था और ये निर्मोल खाँ के पुत्र थे। सदारंग के छोटे भाई 'खुसरो खाँ' भी संगीत के मर्मज्ञ थे। उस युग के एक लेखक दरगाह कुली खाँ ने कहा है कि सदारंग का छोटा भाई एक 'विचित्र वस्तु' जो तीन तार का बाजा है, उस पर राग-रागिनियाँ प्रस्तुत करता है। उस समय तक इस वाद्य का नामकरण नहीं हुआ था। परन्तु यही वाद्य 'सितार' था। दरगाह कुली खाँ ने उस युग के सारंगी, रबाब, बीन, पखावज, ढोलक, धमधमी, घड़ा और पेट तक बजाने वालों की चर्चा तो की है, परन्तु किसी सितार या तबला-वादक की कोई चर्चा नहीं है। फिर, मुहम्मदशाह के युग तक किसी सितार-वादक की चर्चा किसी भारतीय राज-दरबार में नहीं मिलती। नामसाम्य के कारण लोग खुसरो खाँ को अलाउद्दीन कालीन अमीर खुसरो समझ बैठे। अमीर खुसरो की प्रसिद्धि ने, लोगों के अज्ञान के कारण, खुसरो खाँ के यश को निगल लिया। इन्हीं खुसरो खाँ ने सितार को जन्म दिया।

सितार अपने मूल रूप में 'सेह-तार' कहलाता था। फ़ारसी में 'सेह' का अर्थ है 'तीन'। अतः इस तीन तार के वाद्य को 'सेहतार' कहा जाता था। इसमें पहला तार लोहे का था जिसे 'स' में मिलाया जाता था, दूसरा तार पञ्चम में और तीसरा तार 'स' में मिलाया जाता था। इस पर आठ परदे थे और लकड़ी का तूँबा था। क्रमशः इसमें तारों की संख्या पाँच हो गई और उन्हें म-स-प-स-स में मिलाते थे। अब तक लकड़ी के स्थान पर कद्दू का तूँबा लग चुका था। साथ ही बड़े तूँबे के पास ऊपर एक छोटा सा तूँबा और लगा दिया गया और यह वाद्य एकाकी वादन के रूप में प्रयुक्त होने लगा।

सितार को लोकप्रिय बनाने में दो संगीतज्ञों-रजा खाँ और मसीतखाँ ने बड़ा काम किया। उन्होंने पाँच के स्थान पर सात तार कर दिए जो क्रमशः 'म-स-स-प-प-स स' में मिलाए जाते थे; और परदों की संख्या बढ़ाकर २३ कर दी।

प्रसिद्ध संगीतज्ञ इमदाद खाँ ने मीड़ की सुविधा के लिए परदों की संख्या १६ कर दी और नीचे की ओर ११ तरबें भी बढ़ा दीं। उन्होंने चार स्वरों की मीड़ का प्रदर्शन भी किया। इमदाद खाँ के पुत्र इनायत खाँ ने मुख्य तूँबे को (जो पहले चपटा होता था) गोलाकार किया और एक दूसरा तूँबा, वाद्य के ऊपर की ओर लगा दिया। इस प्रकार वर्तमान सितार का रूप निर्धारित हो गया। इनके पुत्र विलायत खाँ ने तारों की संख्या सात से घटा कर छह कर दी। इन्होंने एक जोड़े का तार कम कर दिया। दूसरा तार पञ्चम का हटा कर उसके स्थान पर इस्पात का नया तार



जोड़ा, जिसे बजाए जाने वाले राग के वादी-संवादी स्वरों के अनुसार मिलाया जाता है। पं० रविशंकर ने जोड़े के एक तार के स्थान पर ठेठ खरज ( अति मन्द्र सप्तक ) के 'सा' का तार लगाया और सितार में चार सप्तक तक के वादन की सुविधा देकर इस वाद्य की गम्भीरता को बढ़ा दिया।

प्राचीन काल की वीणाओं में त्रितंत्री वीणा, सप्ततंत्री वीणा या सरस्वती वीणा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है, जिन्हें सितार का आदिरूप जाना जाता है। वर्तमान काल में सितार वाद्य ने देश और विदेश में अच्छी लोकप्रियता प्राप्त की है।

आचार्य बृहस्पति के अनुसार "सन् १८५४ ई० में 'मअदनउल् मूसिकी' के लेखक मौहम्मद करम इमाम ने इस झूठ का प्रचार किया कि सितार के आविष्कारक अमीर खुसरो हैं, जबकि मौहम्मद बिन कासिम से लेकर मौहम्मद शाह रंगीले तक के दरबार में किसी सितार वादक की चर्चा नहीं मिलती। खुसरो के ग्रंथों में सितार की चर्चा तक नहीं है।

'अदारंग' का वास्तविक नाम फ़ीरोज़ खाँ था, इन्हीं की बनाई हुई गतें सितार की प्राचीनतम् 'फ़ीरोज़ खानी गतें' हैं। फ़ीरोज़ खाँ 'अदारंग' रहेले नवाब सादुल्लाह खाँ के आश्रय में थे। फ़ीरोज़ खाँ के पिता खुसरो खाँ भारतीय सितार के आविष्कारक थे और नेमत खाँ 'सदारंग' खुसरो खाँ के अग्रज ( बड़े भाई ) थे। फ़ीरोज़ खाँ को 'सदारंग' की लड़की ब्याही थी।

मुग़ल-सम्राट शाह आलम ने अपने ग्रन्थ 'नादिरातिशाही' ( संकलन-काल १७६८ ई० ) में सितार की चर्चा भारतीय वाद्यों की सूची में की है।

सन् १८७५ में 'रिफ़ेस रिप्रिन्ट', लाहौर (पाकिस्तान) से प्रकाशित पुस्तक के लेखक जनाब रशीद मलिक के अनुसार हज़रत अमीर खुसरो ने भारतीय संगीत में कोई नया आविष्कार नहीं किया, न रागों में, न तालों में, न वाद्यों में। वे ईरानी संगीत के मर्मज्ञ थे। उपर्युक्त पुस्तक के पृष्ठ १४६ पर रशीद साहब का यह वाक्य भी दृष्टव्य है— 'सितार की ईजाद (आविष्कार) इख़्तिराअ (आविष्करण) या तरमीम (परिवर्तन, सुधार) से कोई वास्ता न था'। अपने इस विचार की पुष्टि में लेखक का कथन है कि हज़रत अमीर खुसरो ने अपने ग्रंथ 'एजाज़े-खुसरवी' के दूसरे रिसाले (पुस्तिका, प्रकरण) में २६ वाद्यों के नाम गिनाये हैं परन्तु उनमें सितार की कोई चर्चा नहीं है। सितार के बारे में उनकी खामोशी इस बात की दलील है कि उन्हें सितार की ईजाद से कोई वास्ता न था। खुद हज़रत अमीर खुसरो ने, न उनके किसी 'हमअन्न' (समवर्ती) ने और न ही अबुल्फ़ज़ल ने इस सितार की ईजाद को उनसे मंसूब (सम्बद्ध) किया है। सितार अमीर खुसरो से पहले इख़्तिराअ या ईजाद हो चुका था और उनके ज़माने से एहदे-अकबरी तक हमें हिन्दुस्तान में इसका कोई सुराग़ नहीं मिलता।"

सितार वाद्य को अधिकाधिक मधुर एवं लोकप्रिय बनाने के लिए पुराने उस्तादों से लेकर अब तक के प्रख्यात कलाकारों ने अपनी वादन-शैली के अनुरूप तारों की संख्या एवं उनके मिलाने की पद्धति में परिवर्तन किया है। उदाहरणार्थ उनके तारों की संख्या, किस्म, स्वर और गेज़ यहाँ प्रस्तुत हैं :—



## सितार इसदादखानी

| ७      | ७      | ५     | ४      | ३      | २      | १     |
|--------|--------|-------|--------|--------|--------|-------|
| सां    | सा     | प     | प      | सा     | सा     | म     |
| फौलाद  | फौलाद  | फौलाद | पीतल   | पीतल   | पीतल   | फौलाद |
| चिकारी | चिकारी | पंचम  | खरज    | जोड़ा  | जोड़ा  | बाज   |
| नं. ०० | नं. ०० | नं. २ | नं. २६ | नं. २६ | नं. २६ | नं. २ |

## सितार उ० विलायत खां

| ६      | ५      | ४     | ३      | २      | १     |
|--------|--------|-------|--------|--------|-------|
| सां    | सा     | प     | ग      | सा     | म     |
| फौलाद  | फौलाद  | फौलाद | फौलाद  | ब्रांज | फौलाद |
| चिकारी | चिकारी | पंचम  | गांधार | जोड़ा  | बाज   |
| नं. ०  | नं. ०  | नं. २ | नं. ३  | नं. २८ | नं. ३ |

## सितार पं० रविशंकर

पं० रविशंकर ने अपनी पुस्तक 'माय म्युजिक माय लाइफ' में तार मिलाने की पद्धति का वर्णन इस प्रकार किया है। (पृ० १००-१०३) :—

| ७     | ६     | ५     | ४      | ३      | २      | १     |
|-------|-------|-------|--------|--------|--------|-------|
| सां   | सा    | प     | सा     | प      | सा     | म     |
| स्टील | स्टील | स्टील | ब्रांज | ब्रांज | ब्रांज | स्टील |
| ३४    | ३३    | ३२    | २१     | २५     | २७     | ३०    |

## सितार पं० बलराम पाठक

| ७      | ६      | ५     | ४      | ३      | २      | १     |
|--------|--------|-------|--------|--------|--------|-------|
| सां    | सा     | प     | सा     | प      | सा     | म     |
| फौलाद  | फौलाद  | फौलाद | ब्रांज | ब्रांज | ब्रांज | फौलाद |
| चिकारी | चिकारी | पंचम  | खरज    | पंचम   | जोड़ी  | बाज   |
| नं. ०० | नं. ०० | नं. २ | नं. २२ | नं. २४ | नं. २६ | नं. २ |

## सितार उ० अब्दुल हलीम जाफ़र खां

आप अपने सितार में सात तार का संयोजन उपरोक्त अनुसार ही करते हैं, किन्तु बाज के तार हेतु नम्बर ३, जोड़ी के लिए नं. २८ तथा चिकारी और तरबों के लिए नम्बर ० (नं. सिंगल जीरो) तार प्रयोग करते हैं। शेष तार ऊपर बताई पद्धति के समान ही रखते हैं।



## सितार पं० निखिल बनर्जी

आपने अपने सितार में एक तार की वृद्धि कर दी थी, इसलिए इनके सितार में आठ तार होते थे, जिनको निम्नानुसार मिलाते रहे :—

|     |    |   |   |    |   |    |   |
|-----|----|---|---|----|---|----|---|
| ८   | ७  | ६ | ५ | ४  | ३ | २  | १ |
| सां | सा | प | ग | सा | प | सा | म |

## सितार के अंग

### पहला तार

यह लोहे (स्टील) का होता है और इसे 'बाज का तार' या 'बोल तार' कहते हैं। यह तार मंद्र-सप्तक के 'म' में मिलाया जाता है।

### दूसरा और तीसरा तार

ये दोनों 'जोड़ी के तार' कहलाते हैं। इन्हें मंद्र-सप्तक के षड्ज यानी 'सा' में मिलाते हैं। ये दोनों ही तार पीतल के होते हैं।

### चौथा तार

यह स्टील का होता है और इसे 'पंचम का तार' कहते हैं। यह मंद्र-सप्तक के पंचम यानी 'प' में मिलाया जाता है।

### पाँचवाँ तार

यह पीतल का होता है और जोड़ी के तारों से लगभग दुगुना मोटा होता है। इसे अतिमंद्र-सप्तक के पंचम में मिलाते हैं। यह 'लर्ज' का तार भी कहलाता है।

### छठा तार

यह स्टील का होता है और मोटाई में चौथे तार से कुछ कम होता है। इसे मध्य-सप्तक के षड्ज में मिलाते हैं। इसे 'चिकारी का तार' कहते हैं।

### सातवाँ तार

यह तार भी स्टील का होता है, किन्तु सितार के अन्य सब तारों से पतला होता है और इसे तार-षड्ज अर्थात् 'सां' अथवा मध्य-सप्तक के 'प' में मिलाते हैं। इसे 'चिकारी का तार' या 'पपैया का तार' कहते हैं।

तारों के अतिरिक्त सितार के जो विभिन्न अंग होते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है :—

### तूँबा

यह सितार का वह भाग है, जो डांड के नीचे रहता है। यह अन्दर से बिलकुल



पोला और बहुत हल्का होता है। तारों के द्वारा जो झंकार पैदा होती है, वह इस तूँबे के कारण गूँजती रहती है।

### डांड

लकड़ी की वह लम्बी व पोली डंडी, जिसके ऊपर एक तख्ती ढकी रहती है, 'डांड' कहलाती है। इसी पर परदे बँधे रहते हैं।

### गुलू

जहाँ पर डांड और तूँबा जुड़े होते हैं, उसे 'गुलू' कहते हैं।

### लँगोट

तूँबे के नीचे के उस भाग को 'लँगोट' कहते हैं, जहाँ से तार शुरू होकर खूंटियों तक जाते हैं।

### घुड़च

'घुर्च' या 'घोड़ी' और अँग्रेजी में 'ब्रिज' (Bridge) भी इसे ही कहते हैं। यह हाथी-दाँत की या हड्डी की एक छोटी चौकी के आकार की पट्टी होती है, जो तबली के ऊपर रहती है। इसी पर होकर तार खूंटियों की ओर जाते हैं।

### जवारी

'घुर्च' की एकसी सतह को 'जवारी' कहते हैं, इसके ऊपर तार होते हैं।

### तबली

तूँबे के ऊपर का ढक्कन, जिस पर ब्रिज या घुड़च जमी रहती है, उसे तबली' कहते हैं।

### तारगहन

यह सितार के अग्रभाग की खूंटियों के नीचे हाथी-दाँत या हड्डी की एक आड़ी पट्टी होती है। इसमें कई छेद होते हैं, जिसमें होकर तार खूंटियों तक जाते हैं। इसे 'तारदान' भी कहते हैं।

### परदा

डांड में ताँत से बँधे हुए पीतल या लोहे की सलाइयों के टुकड़े, जो कुछ मुड़े होते कहलाते हैं। इन्हें 'सुन्दरी' या 'सारिका' भी कहते हैं।

### तरब

सितार के परदों की संख्या के अनुसार उसमें 'तरब' के तार भी लगाए जाते हैं। ये भिन्न-भिन्न स्वरों में मिले हुए होते हैं तथा सितार के सात तारों के अतिरिक्त होते हैं। जब सितार बजता है, तो उसकी झंकार से 'तरब' के तारों में स्वतः झंकार उत्पन्न होती है।



## खूंटियाँ

लकड़ी की बनी हुई छोटी-छोटी कुंजियाँ, जिनमें तार लिपटे रहते हैं, 'खूंटियाँ' कहलाती हैं। इनको घुमाने से तार चढ़ते-उतरते हैं।

## मनका

बाज के तार में एक छोटा-सा दाना पिरोया हुआ रहता है, जिसे 'मनका' कहते हैं। इससे बाज के तार की ध्वनि ठीक रखने में सहायता मिलती है।

## मिज़राब

यह पक्के लोहे के तार की अँगूठीनुमा होती है। दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली में इसको पहनकर सितार के तारों पर आघात करते हैं, तभी सितार बजता है।

## सितार मिलाना

सर्वप्रथम किसी स्वर को 'सा' मानकर जोड़ी के दोनों तार मिलाइए। यह मंद्र-सप्तक के 'सा' की आवाज़ होगी। ये दोनों तार बिल्कुल एक स्वर में इतने मिलने चाहिए कि सुनने पर यह मालूम हो कि एक ही तार बोल रहा है।

इसके बाद बाज के तार को अर्थात् पहले तार को मंद्र-सप्तक के मध्यम (म) में मिलाइए।

चौथे तार को मंद्र-सप्तक के पंचम (प) में मिलाइए। यह जानने के लिए कि 'प' का तार ठीक मिला या नहीं, जोड़ी के तार को 'सा' के परदे पर दबाकर, मिज़राब से छेड़कर देखिए कि चौथे तार की आवाज़ इससे मिल जाती है या नहीं। यदि आवाज़ एकसी है, तो पंचम का तार ठीक मिल गया।

पाँचवें तार को, जो सबसे मोटा पीतल का तार है, अतिमंद्र-सप्तक के पंचम में मिलाइए। ठीक आवाज़ पहचानने के लिए चौथे तार की आवाज़ से सहायता ली जा सकती है, क्योंकि चौथे तार की आवाज़ से इनकी आवाज़ एक सप्तक नीची होगी।

छठा तार मध्य-सप्तक के 'सा' में मिलाइए। यह चिकारी का तार है। इस तार की आवाज़ ठीक मिल गई या नहीं, यह जानने के लिए बाज के तार को 'सा' के परदे पर दबाकर मिज़राब से छेड़िए। यदि दोनों की आवाज़ मिल जाए, तो समझिए छठा तार मध्य-सप्तक के षड्ज में ठीक तरह से मिल गया।

सातवें तार को तार-सप्तक के 'सां' में मिलाइए। इसकी पहचान के लिए भी ऐसा करिए कि बाज के तार को तार-सप्तक (सां) के परदे पर दबाकर मिज़राब से छेड़िए। यदि दोनों की आवाज़ मिल जाए, तो सातवाँ तार भी ठीक मिल गया।



## चल ठाठ और अचल ठाठ

साधारणतः सितार दो प्रकार का होता है—१. चल ठाठवाला और २. अचल ठाठवाला ।

१. चल ठाठवाले सितार में १७ परदे इस प्रकार होते हैं :—

मं प ध नि नि सा रे ग म मं प ध नि नि सां रें गं

चल ठाठवाले सितार के परदे आवश्यकतानुसार खिसकाकर ऊँचे-नीचे कर लिए जाते हैं। इससे ठाठ बदल जाता है।

२. अचल ठाठवाले सितार में प्रायः १६ परदे इस प्रकार होते हैं :—

मं प ध ध नि नि सा रे गु ग म मं प ध नि नि सां रें गं

कोई-कोई इनमें २२ या २४ परदे भी मानते हैं, किन्तु १६ परदेवाला अचल ठाठ का सितार ही ठीक रहता है क्योंकि इसके बजाने में सुविधा रहती है। फिर भी भिन्न-भिन्न कलाकार परदों की संख्या में अपनी रुचि के अनुसार हेर-फेर कर लेते हैं।

## सितार के बोल

सितार के तारों पर मिज़राब का प्रहार करने से जो ध्वनि निकलती है; उसे 'बोल' कहते हैं। मुख्य बोल दो हैं :—

**दा**

मध्यम के तार पर बाहर की ओर से प्रहार करके मिज़राबवाली अँगुली जब अपनी तरफ़ लाई जाती है, तो 'दा' बोल निकलता है। इसे 'आकर्ष' प्रहार कहते हैं।

**रा**

'दा' का उलटा बजाने से 'रा' निकलता है। इसे 'अपकर्ष' प्रहार कहते हैं। इन्हीं दोनों बोलों को जब शीघ्रतापूर्वक एक मात्रा में ही बजाया जाता है, तो 'दिर' बोल बन जाता है तथा इन्हीं बोलों के हेर-फेर से द्रा, दाड़, द्रादा, इत्यादि बोल बनते हैं।

**गत**

किसी राग के स्वरों में सितार के बोलों की तालबद्ध रचना को 'गत' कहते हैं। गतों के मुख्य दो प्रकार होते हैं :—

### मसौतखानी गत

इस गत के बोल विलंबित लय में बजाए जाते हैं। मीड़ आदि का प्रयोग करते हुए बोलों में गंभीरता दिखाई जाती है।



## रजाखानी गत

इस गत के बोल द्रुत लय के होते हैं और अनेक प्रकार की विभिन्न चालें इसमें प्रदर्शित की जाती हैं।

## जोड़-आलाप

सितार में गत बजाने से पहले जो आलाप झाले के साथ बजाया जाता है, उसे 'जोड़' भी कहते हैं।

## जमजमा

सितार में जब दो स्वरों को ( एक के बाद दूसरे को ) जल्दी-जल्दी इस प्रकार बजाया जाता है कि पहले स्वर पर तो मिज़राब पड़े और दूसरे को बिना मिज़राब के केवल अँगुनी के आधार से बजाया जाए, तो उसे 'जमजमा' कहते हैं।

जैसे—रेग रेग गम गम

दाS दाS दाS दाS

## झाला

जब बाज के तार पर 'दा' और चिकारी पर 'रा' बजाया जाए तो चिकारी तथा बाज के तार पर प्रहार करते हुए दा रा रा रा, दा रा रा रा, इस प्रकार बजाने को 'झाला' कहते हैं। झाले की सहायता से किसी स्वर को लम्बा भी किया जा सकता है। उलटा झाला इस प्रकार बजेगा— दा रा रा रा, दा दा रा रा अथवा रा दा रा रा, रा रा रा दा इत्यादि।

## कृन्तन

कृन्तन का प्रयोग सितार के ऊँचे स्वर से नीचे स्वर पर आते समय इस प्रकार होता है कि बाएँ हाथ की अँगुलियों से झटके के साथ तार को दबाकर एकदम छोड़ते हैं या अधिक स्वर शीघ्रतापूर्वक बजाए जाते हैं, किन्तु एक स्वर से दूसरे स्वर का सम्बन्ध बना रहता है। इसी कृत्य को 'कृन्तन' कहते हैं।

मीड़, सूत, आंदोलन, गमक इत्यादि का वर्णन इस पुस्तक में अन्यत्र किया जा चुका है, अतः उसे दुहराने की यहाँ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

## तबला

तबले की प्रारम्भिक उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के विभिन्न मत पाए जाते हैं, किंतु अधिकांश विद्वानों का ऐसा मत है कि अलाउद्दीन खिलजी के समय में अमीर खुसरो नामक संगीतज्ञ ने पखावज को बीच में से दो भागों में काटकर तबले का आविष्कार किया। कहा जाता है कि 'तब्ल' नामक फारसी शब्द से 'तबला' की उत्पत्ति हुई है। 'तब्ल' का अर्थ है 'नक्कारा'।





कुछ विद्वानों के मत से तबले के आविष्कर्ता दिल्ली के उ० सिद्धार खाँ ढाढ़ी थे, जिनके शिष्य रोशन खाँ, कल्लू खाँ और तुल्लन खाँ हुए।

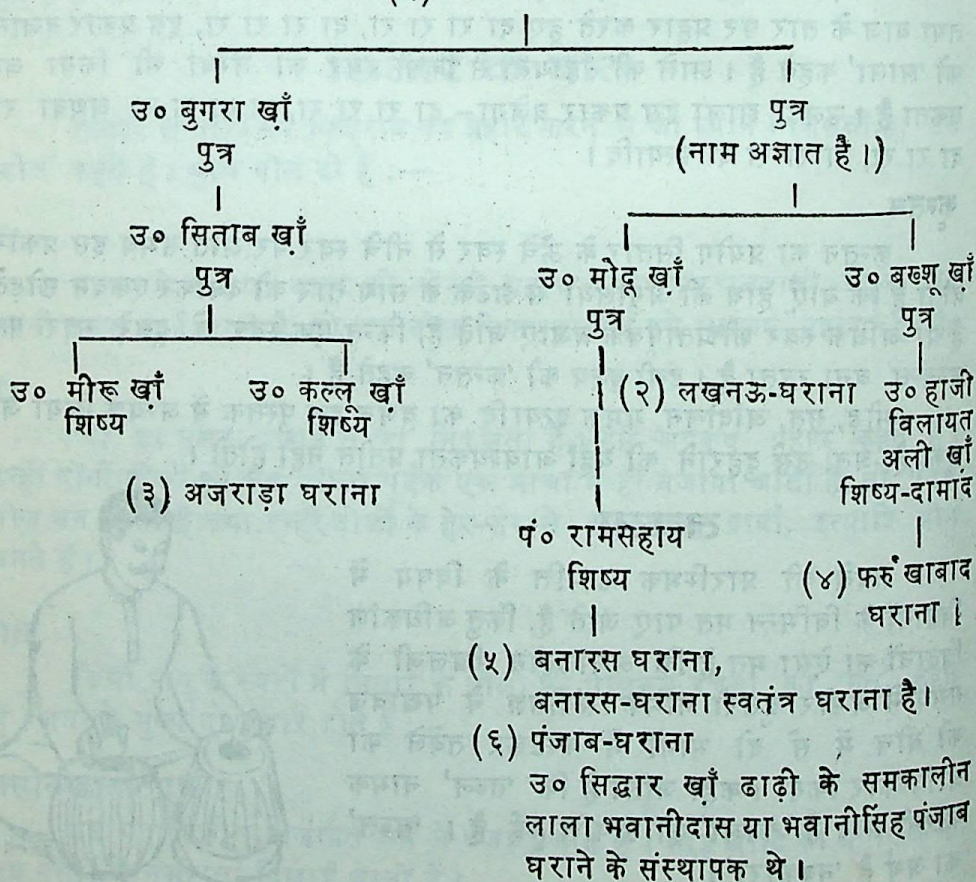
## तबला के घराने

तबला के मुख्य छह घराने माने जाते हैं—१. दिल्ली-घराना, २. अजराड़ा-घराना, ३. पंजाब-घराना, ४. बनारस-घराना, ५. लखनऊ या पूरब-घराना और ६. फर्रुखाबाद-घराना। इन घरानों के अन्तर्गत आजकल दिल्ली और बनारस, ये दो राज अधिक प्रसिद्ध हैं।

### तबला के घरानों का उद्गम

उ० सिद्धार खाँ ढाढ़ी

(१) दिल्ली-घराना





## दिल्ली बाज

इसमें चाँटी का काम विशेष महत्त्व रखता है। चाँटी के काम में तर्जनी और मध्यमा अँगुलियों का विशेष काम रहता है। इससे सोलो-वादन में विशेष सुविधा रहती है तथा पेशकार और कायदों का भली प्रकार निर्वाह होता है। दिल्ली-घराने के मुख्य प्रतिनिधि उस्ताद अहमदजान थिरकवा थे।

## अजराड़ा घराना

कल्लू खाँ व मीरू खाँ, दोनों भाई दिल्ली के प्रसिद्ध तबला वादक उस्ताद सिताब खाँ के शिष्य थे। चूँकि ये मेरठ जिले के एक गाँव अजराड़े में रहते थे, अतः इस गाँव के नाम पर ही इस शैली का बाज कहलाने लगा। इनके वंश में उस्ताद मोहम्मदी बख्श प्रसिद्ध तबला-वादक थे। इनके पुत्र मियाँ चाँद खाँ तथा पौत्र उस्ताद काले खाँ तबला-वादन में प्रवीण थे। काले खाँ साहब के पुत्र हस्सू खाँ तथा हस्सू खाँ के पुत्र उस्ताद शम्सू खाँ प्रसिद्ध तबलियाँ थे। उस्ताद अब्दुलकरीम खाँ तथा उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ आपके ही भतीजे एवं पुत्र थे। उस्ताद अब्दुलकरीम खाँ के शिष्य आगरा के पं० श्रीधर तथा उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ के शिष्य बड़ौदा के सुधीरकुमार सक्सेना हुए।

## पंजाब बाज

इस घराने के प्रवर्तकों ने पखावज के खुले बोलों को बंद करके एक नई शैली अपनाई और नई-नई गतों को जन्म दिया। वर्तमान प्रतिनिधि उस्ताद अल्लारखाँ इसी घराने की देन हैं।

## बनारस बाज

इस बाज में प्रायः खुले बोलों का काम अधिक महत्त्व रखता है, जिनके निकालने में हथेली का प्रयोग अधिक होता है। इस घराने के मुख्य कलाकार पं० कंठे महाराज थे। कंठे महाराज के शिष्यों में नन्नू जी, किशन महाराज आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

## लखनऊ बाज

इस घराने की बंदिशें और चक्रदार परनें प्रसिद्ध हैं। दिल्ली और बनारस के बीच की इस शैली ने उ० आबिदहसैन, उ० मुन्ने खाँ, वाजिदहसैन तथा पं० बीरू मिश्र के द्वारा काफ़ी ख्याति अर्जित की।

## फर्रुखाबाद (पूरब) घराना

लखनऊ के उस्ताद बख्शू खाँ साहब की लड़की का विवाह फर्रुखाबाद के विलायतअली खाँ (हाजी साहब) से हुआ था। हाजी साहब को दहेज में

संगीत-विशारद



लखनऊ-घराने के कुछ कायदे मिले। इन पर विशेष परिश्रम करने से हाजी साहब का नाम तबला-वादन में अमर हो गया। इनके शिष्यों में सलारी खाँ, चूड़ियावाले इमामबख्श, उस्ताद छुन्नू खाँ और उस्ताद मुबारकअली आदि तबला-वादक हो गए हैं।

हाजी साहब के पुत्र उस्ताद हुसैन अली खाँ, उस्ताद मुनीर खाँ के पुत्र थे। मुनीर खाँ की परम्परा में उस्ताद अहमद जान थिरकवा, अमीर हुसैन और गुलाम हुसैन आदि हुए।

हुसैनअली खाँ साहब के वंश में नवाब वाजिदअली शाह के दरबारी तबला-वादक उस्ताद नन्हें खाँ थे। इनके पुत्र कलकत्ता-निवासी उस्ताद मसीत खाँ अधिकांश रूप से रामपुर में रहे। करामत हुसैन खाँ इनके पुत्र तथा ज्ञान घोष शिष्य थे।

श्री भातखंडे जी ने प्राचीन उत्तम तबलियों के नाम इस प्रकार बताए हैं:—

१. बख्शू धाड़ी : प्रसिद्ध तबला-वादक।

२. मम्मू : गत बजाने में कुशल।

३. सलारी : गत और परन बहुत सुन्दर जाननेवाला।

४. मक्खू : प्राचीन ढंग के बाज का उत्तम तबलिया।

५. नज्जू : बख्शू का शिष्य (लखनऊ)। इसका हाथ बहुत तैयार था।

वर्तमान समय में तबले के निम्नांकित कलाकारों ने विशेष ख्याति प्राप्त की।

१. अल्लारखा, २. किशन महाराज, ३. सामताप्रसाद 'गुदई महाराज'  
४. करामत खाँ और ५. निखिल घोष। (इनकी जीवनी इस पुस्तक के अन्त में दी गई हैं।)

## तबला के अंग

दाहिना तबला लकड़ी का होता है और बायाँ मिट्टी या किसी धातु का। इन दोनों के मुँह पर चमड़ा मढ़ा रहता है, जिसे पुड़ी कहते हैं। पुड़ी के किनारे के चारों ओर चमड़े की गोट लगी रहती है, जिसे चाँटी कहते हैं। दाहिने तबले की पुड़ी के बीच और बाएँ (डग्गे) की पुड़ी के बीच से कुछ हटकर स्याही लगी रहती है। दाएँ और बाएँ की दोनों पुड़ियाँ चमड़ों की डोरी से कसी रहती हैं। इन्हें 'बद्धी' या 'दुआल' भी कहते हैं। चाँटी और स्याही के बीच का स्थान 'लव' कहलाता है, इसे मैदान भी कहते हैं। पुड़ी के चारों ओर गोट के किनारे पर चमड़े के फीते का बुना हुआ गजरा लगा रहता है। 'दुआलों' में लकड़ी के गट्ठे लगे रहते हैं, जिन्हें नीचे खिसकाने पर तबले का स्वर ऊँचा होता है और ऊँचे करने पर स्वर नीचा होता है। स्वर को जब अधिक ऊँचा-नीचा करना होता है, तभी गट्ठे ठोके जाते हैं। मामूली स्वर के उतार-चढ़ाव के लिए चाँटी के किनारेवाली पगड़ी या गजरे पर हल्का आघात करने से ही काम चल जाता है।



## तबला मिलाना

तबला का दायाँ जिस स्वर में मिलाना हो, उससे एक सप्तक नीचे उसी स्वर में बायाँ मिलाना चाहिए। वैसे, साधारणतः बाएँ को मिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, फिर भी उपर्युक्त नियम को ध्यान में रखते हुए बायाँ भी ठीक रखने से अच्छा ही रहता है।

तबला को प्रायः षड्ज या पंचम में मिलाते हैं, किंतु जिन रागों में पंचम स्वर वर्जित होता है, उस समय मध्यम स्वर में तबला मिलाते हैं।

सर्वप्रथम किसी एक घर को मिलाकर, दाहिनी ओर से उससे अगले घर को मिलाना चाहिए। इस प्रकार आगे सब घर आसानी से मिल जाते हैं। मिलाने का एक प्रकार यह भी है कि पहले एक घर को मिलाने के बाद, फिर उसके सामनेवाला ६-वाँ घर मिलाते हैं, फिर ५-वाँ घर और फिर १६-वाँ घर मिलाते हैं। इन घरों का अर्थ समझने के लिए तबला की पुड़ी की गोब्बाई का विभाजन १६ भागों में कर लीजिए और जिसे पहले आप मिला रहे हैं, उसे पहला भाग समझिए, यही पहला घर है।

तबला मिलाने से पहले गायक या वादक के स्वर को जान लेना आवश्यक है। यदि उसके स्वर के हिसाब से तबला अधिक चढ़ा या उतरा हुआ है, तब तो गट्टों की ठोक-पीट करनी चाहिए, अन्यथा थोड़े से अंतर के लिए, जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, चाँटी के पासवाले गजरे पर आघात करके ही मिला लेना चाहिए। गजरे को ऊपर से ठोकने पर तबला चढ़ता है और नीचे से उलटी चोट मारने पर तबला का स्वर उतरता है।

## तबला के दस वर्ण

धा धिन तिट तिन ना क धी, ता कि कत्त बिचार।

तबले के दस वर्ण हैं, इनको लेउ सुधार॥

इस प्रकार तबला के दस बोल बताए गए हैं। इन बोलों को तीन भागों में बाँटा गया है—दाहिने हाथ के बोल, बाएँ हाथ के बोल और दोनों हाथों के सम्मिलित बोल।

१. दाहिने हाथ के बोल : ना, ता, तिट, किट दिन या तुन, तिन इत्यादि।

२. बाएँ हाथ के बोल : धी या ग, क, कत्त, किन इत्यादि।

३. दोनों हाथों के सम्मिलित बोल : धि या धिन, धा, धिना, दिनक, गिद्दी, गिड़नग, किटतक, त्रक, कड़ानतान, तकिट इत्यादि।



यद्यपि इन तीन प्रकार के बोलों में बहुत-से ऐसे बोल आ गए हैं, जो उपर्युक्त दस वर्णों में बताए बोलों से भिन्न हैं; किन्तु मूल रूप से बोल दस ही हैं। उनमें से ही अक्षरों को मिला-जुलाकर अधिक बोलों की उत्पत्ति हुई है।

तबला के मुख्य कलाकारों में गामे खाँ, अहमद जान थिरकवा, कंठे महाराज, जहाँगीर खाँ, अमीर हुसैन खाँ, अल्लारखा खाँ, करामतुल्ला खाँ, किशन महाराज, मसीत खाँ, सामता प्रसाद गुदई महाराज, हबीबुद्दीन खाँ और जाकिर हुसैन के नाम उल्लेखनीय हैं।



## मृदंग, खोल या पखावज

नटराज शंकर का डमरू सबसे प्राचीन अवनद्ध वाद्य है, उसी के आधार पर मृदंग की उत्पत्ति हुई। 'मृदंग' की प्राचीनता का प्रमाण ऋग्वेद (५। ३३। ६) से मिलता है। इसमें 'वीणा', मृदंग, 'वंशी' और 'डमरू' का वर्णन आया है। पुरातन काल में 'मृदंग' को 'पुष्कर' वाद्यों की श्रेणी में प्रथम वाद्य कहा जाता था, ऐसा भरत-मत के ग्रंथों में वर्णन मिलता है। 'पुष्कर वाद्य' देवताओं को अति प्रिय था। इसकी ताल के साथ-साथ उनका नृत्य हुआ करता था, इसका प्रमाण अनेक प्राचीन मूर्तियों तथा चित्रों द्वारा मिलता है।

प्राचीन पुष्कर वाद्य कई प्रकार के होते थे, जैसे- 'हरीतकी', 'जवाकृति', 'गोपुच्छाकृति' आदि। हरड़ के आकार-जैसे पुष्कर को 'हरीतकी' कहते थे। जब (जौ) के आकार से मिलता-जुलता पुष्कर 'जवाकृति' कहलाता था और गाय की पूँछ के निचले गुच्छे से जिसका आकार समता रखता था, उसे 'गोपुच्छाकृति' नाम दिया गया।

'पखावज', 'मुरज' और 'मर्दल', ये नाम भी 'मृदंग' के ही हैं। इस प्रकार के विभिन्न नाम और उनकी आकृतियों का वर्णन ग्रन्थों में मिलता है। 'मृदंग' का विशेष प्रचार दक्षिण-भारत में रहा जिसे वहाँ 'मृदंगम्' कहा जाता है। कुछ समय बाद उत्तर-भारत के संगीतज्ञों ने 'मृदंग' से मिलता-जुलता प्रकार बनाकर उसका नाम 'पखावज' (पक्ष वाद्य) रख लिया। 'पखावज' पर अनेक कठिन तालों का प्रयोग हुआ करता था। चौताल, धमार, ब्रह्म, रुद्र, विष्णु, लक्ष्मी, सवारी इत्यादि तालें इस पर बजाई जाती थीं। किन्तु जब से तबले का आविष्कार हुआ, मृदंग का प्रचार बहुत कम हो गया। अब तो मृदंग के दर्शन प्रायः मन्दिरों या कीर्तन-मंडलियों में ही होते हैं। बंगाल की ओर 'मृदंग' को 'खोल' कहते हैं।

प्रसिद्ध पखावजियों में ला० भवानीप्रसाद सिंह को भातखंडे जी ने अप्रतिम पखावजी कहकर संबोधित किया है। प्रसिद्ध पखावजी कुदऊसिंह इन्हीं के शिष्य थे। अवध के नवाब द्वारा उन्हें 'कुंवरदास' की पदवी प्राप्त हुई थी। कहा



जाता है कि एक बार वाजिदअली शाह की एक महफ़िल में कुदऊसिंह व जोधसिंह पखावजी को राजा ने दस हजार रुपये की थैली उनकी कला पर प्रसन्न होकर पुरस्कार में दी थी। इनके पश्चात् ताज खाँ (डेरेदार), भवानीसिंह, खलीफ़ा नासिर खाँ इत्यादि पखावजी प्रसिद्ध हुए।

इनके अलावा पखावज (मृदंग) के मुख्य कलाकारों में नाना पानसे, मक्खन जी, घनश्याम जी, पर्वतसिंह, गुरुदेव पटवर्धन, गोविन्द राव देवराव बुरहानपुरकर, अम्बादासपन्त आगले, अयोध्याप्रसाद, सखाराम, पुरुषोत्तमदास और राजा छत्रपति-सिंह, रामशंकर 'पागलदास', अर्जुन-सेजवाल तथा गोपालदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

## पखावज की बनावट

दायाँ तबला और बायाँ डग्गा, दोनों के निचले भाग मिलाकर एक जगह ढोलक की तरह रख दिए जाएँ, तो पखावज जैसा रूप ही बन जाता है। तबला और पखावज में एक भेद तो यह है कि पखावज में दायाँ और बायाँ अलग-अलग न होकर दोनों का आकाश (पोल) एक ही है। यही कारण है कि तबले की अपेक्षा पखावज में गूँज अधिक पाई जाती है क्योंकि एक तरफ़ थाप देने से दूसरी ओर गूँज स्वयं उत्पन्न होती है। दूसरा भेद तबला और पखावज में यह है कि तबले के बोल बजाने में थाप का प्रयोग कम होता है किन्तु अन्य अँगुलियों का काम अधिक होता है। पखावज में बायीं ओर गीला आटा लगाया जाता है। जब स्वर नीचा करना होता है तो आटा कुछ अधिक लगाते हैं, ऊँचा स्वर करने के लिए आटा कम कर देते हैं।

तबला और पखावज को मिलाने का ढंग लगभग एक-सा ही है, अतः उसे यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

## पखावज के बोल

‘संगीत रत्नाकर’ ग्रन्थ में मृदंग के १६ वर्ण ‘पाट’ माने गए हैं, जिनका प्रमाण निम्नलिखित श्लोक से मिलता है :—

डवर्जितः कवर्गश्च टतवर्गो रहावपि ।

इति षोडश वर्णाः स्युरुभयोः पाटसंज्ञकाः ॥

अर्थात्—‘क-ख-ग-घ-ट-ठ-ड-ढ-त-थ-द-ध-न-म-र-ल’ यह १६ पाट होते हैं। किन्तु आधुनिक कलाकारों द्वारा मृदंग के अक्षर-बोल दूसरे ही निश्चित किए गए हैं, जिन्हें तीन भागों में बाँटा जाता है :—

### खुले बोल

जिन अक्षरों को बजाने पर सुरीली आँस (गूँज) निकलती है, वे खुले बोल कहलाते हैं।

### बंद बोल

जिनको बजाने के बाद सुरीली ध्वनि न निकलकर दबी हुई आवाज़ निकलती है, वे ‘बन्द बोल’ कहे जाते हैं।



## थाप

जब स्याही के ऊपर वाले आधे भाग पर सब अँगुलियाँ मिलाकर पंजा मारा जाए और शीघ्र ही कनिष्ठा अँगुली की ओर वाला हथेली का भाग स्याही के किनारे पर जाए, तो इस कृत्य को 'थाप' कहते हैं।

प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित मृदंग के बोलों का उल्लेख पीछे किया जा चुका है, किन्तु आधुनिक मृदंग-वादक प्रायः आगे दिए गए बोल मानते हैं।

**मुख्य बोल** : ता-त-दो-थु-ना-धा-ङ-धो-दी-ग-खिर्रं जें-म।

**आश्रित बोल** : राँ-क-ग-ण-धु-धी-लां-थेई-ङां-की-टी-थर्र।

## ताल के दस प्राण

१. **काल** : समय के खंड का नाम 'काल' है। इसी से 'मात्रा' व 'ताल' बनती हैं।

२. **मार्ग** : निश्चित काल से युक्त कलाओं के समूह को 'मार्ग' कहते हैं।

३. **क्रिया** : किसी भी ताल की मात्राओं के गिनने को 'क्रिया' कहते हैं। हाथों से ताली लगाना ( सशब्द क्रिया ) या खाली दिखाना ( निःशब्द क्रिया ) अथवा मात्राओं को अँगुलियों से गिनना, 'क्रिया' कहलाता है।

४. **अंग** : ताल के समय में जो भिन्न-भिन्न भाग होते हैं, उन्हें 'अंग' कहते हैं। इस प्रकार अक्षर-काल को स्पष्ट करने वाले चिह्नों को 'अंग' कहा जाता है। ये छह प्रकार के होते हैं—१. अणुद्रुत, २. द्रुत, ३. लघु, ४. गुरु, ५. प्लुत तथा ६. काकपद।

५. **ग्रह** : 'ताल' किसी गति को किस स्थान से ग्रहण करना है, इसे जानने के लिए 'ग्रह' बनाए गए हैं जो चार होते हैं—सम, विषम, अतीत तथा अनाघात।

६. **जाति** : जाति के बोलों की रचना जितने-जितने अक्षरों से हुई है, उनके अनुसार पाँच जातियाँ कायम की गई हैं; जैसे—१. चतुश्च, २. त्र्यश्च, ३. द्वंद्व, ४. मिश्र तथा ५. संकीर्ण जाति।

७. **कला** : अक्षर-काल का सूक्ष्म विभाजन 'कला' कहलाता है। इस आधार पर मात्राओं के हिस्से को 'कला' कहते हैं।

८. **प्रस्तार** : ताल में भिन्न-भिन्न रूपों से की जाने वाली अंग-कल्पना को 'प्रस्तार' कहते हैं। जिस प्रकार सात स्वरो के प्रस्तार से ५०४० तानें पैदा हुई हैं, उसी प्रकार एक मात्रा से लेकर १३ मात्राओं तक के प्रस्तार से भिन्न-भिन्न ताल पैदा होकर उनकी संख्या ६५५३५ हो जाती है। 'प्रस्तार' का अर्थ है बढ़ाव या फैलाव।

९. **लय** : समय या काल के खंड की समान अर्थात् एक-जैसी चाल का ही नाम 'लय' है। हमारे शब्दों में दो मात्राओं के मध्य रहने वाला अयकाश अथवा पहली क्रिया का विस्तार 'लय' कहलाता है। यह विश्रान्ति अधिक या कम होने पर 'लय' भी धीमी या तेज हो जाती है। 'लय' मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं :—

१. विलंबितलय, २. मध्य लय, ३. द्रुत लय।

१०. **यति** : लय के चाल-क्रम को 'यति' कहते हैं। 'यति' के पाँच प्रकार माने गये हैं—१. समा, २. स्रोतोगता, ३. मृदंगा, ४. पिपीलिका और ५. गोपुच्छा।



## तानपूरा या तम्बूरा

भारतीय शास्त्रीय संगीत में 'तानपूरा' या 'तम्बूरा' एक महत्त्वपूर्ण तंतु वाद्य है। शास्त्रीय गायन इसके बिना फीका-सा लगता है। 'तानपूरा' में कोई सरगम या गीत नहीं निकाला जाता, बल्कि इसके तारों को श्रुत करके संगीतकार अपने राग की आधार भूमि के रूप में इसका इस्तेमाल करता है। इसे लिटाकर या सीधा खड़ा करके बजाया जाता है।

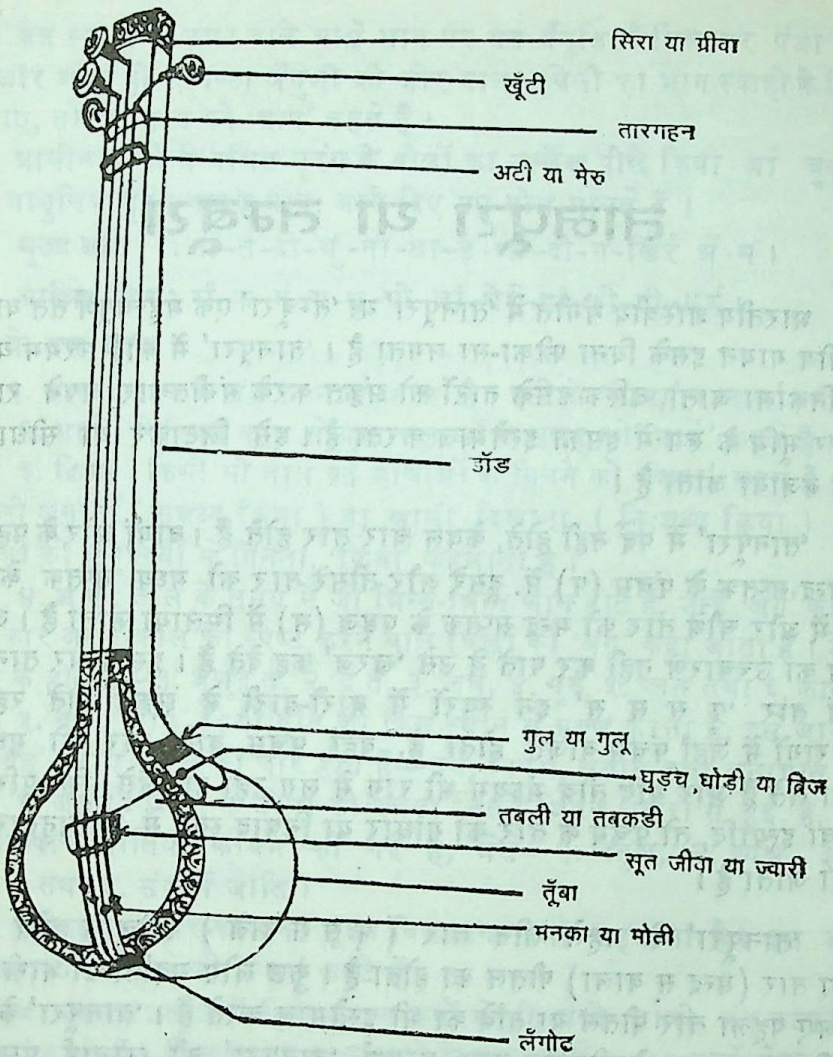
'तानपूरा' में पर्दे नहीं होते, केवल चार तार होते हैं। बायीं ओर के पहले तार को मन्द्र सप्तक के पंचम (प) में, दूसरे और तीसरे तार को मध्य सप्तक के षड्ज (स) में और चौथे तार को मन्द्र सप्तक के षड्ज (स) में मिलाया जाता है। जो लोग षड्ज का उच्चारण नहीं कर पाते वे उसे 'खरज' कह देते हैं। इस प्रकार तानपूरे के चारों तार 'प स स स' इन स्वरों में बारी-बारी से श्रुत होते रहते हैं। कुछ रागों में जहाँ पंचम वर्जित होता है, वहाँ पंचम वाले तार को मध्यम में मिला लेते हैं और यदि तीव्र मध्यम भी राग में लग रहा हो जैसे कि पूरिया या मारवा इत्यादि, तो पंचम के तार को गांधार या निषाद स्वर में इच्छानुसार मिला लिया जाता है।

'तानपूरा' के पहले तीन तार (प स स वाले) स्टील के होते हैं और चौथा तार (मन्द्र स वाला) पीतल का होता है। कुछ लोग मर्दानी या भारी आवाज के लिए पहला तार पीतल या ताँबे का भी इस्तेमाल करते हैं। 'तानपूरा' के तूँबे की परिधि लगभग २० सेन्टीमीटर तथा सम्पूर्ण 'तानपूरा' की लम्बाई प्रायः १५० सेन्टीमीटर होती है। स्त्रियोचित 'तानपूरा' कुछ छोटे साइज के होते हैं। विविधता की दृष्टि से कुछ लोग 'तानपूरा' में पाँच या छह तार भी लगा लेते हैं।

'तानपूरा' का प्रचलन कब हुआ, यह कहना तो सम्भव नहीं लेकिन इसका प्रचार होने से पहले एक तार वाले वाद्य पर ही गायन किया जाता था, जिसे प्राचीन काल में 'घोषा', 'ब्रह्मवीणा' तथा 'एकतंत्री वीणा' कहते थे और वर्तमान काल में 'इकतारा' कहते हैं। वीणा परिवार का यह वाद्य आज अत्यन्त लोकप्रिय है। आजकल छोटे 'बॉक्स तानपूरा' तथा 'इलेक्ट्रॉनिक तानपूरा' भी प्रचार में आ गए हैं, फिर भी परम्परागत तूँबा वाले 'तानपूरा' का महत्त्व कम नहीं हुआ है।



# तानपूरा के अंग



तानपूरा में नीचे लिखे अनुसार अंग होते हैं :—

## सिरा या ग्रीवा

‘अटी’ या ‘तारगहन’ के बाद तानपूरे का ऊपरी भाग ‘सिरा’, ‘शिर’ या ‘ग्रीवा’ कहलाता है। इसे ‘मुख’ या ‘मस्तक’ भी कह सकते हैं। इसी भाग में खूंटियाँ लगी रहती हैं।

## खूँटी

‘अटी’ व ‘तारगहन’ के आग लकड़ी की चार कुंजियाँ-जैसी लगी होती हैं, जिनमें तानपूरा के चारों तार बँधे रहते हैं। इन्हें ‘खूंटियाँ’ कहते हैं। ‘खूँटी’ को घुमाने से ही



तार को कसा या ढीला किया जाता है। खूंटियों का निर्माण आबनूस, खैर, शीशम या अखरोट की लकड़ी से किया जाता है।

## तारगहन

खूंटियों की ओर 'डाँड' पर हड्डी की दो पट्टियाँ लगी रहती हैं, इनमें से खूंटियों की ओर से पहली पट्टी 'तारगहन' कहलाती है। इस पट्टी में सूराख होते हैं जिनके अन्दर होकर तार खूंटियों तक जाते हैं।

## अटी या मेरु

खूंटियों की ओर से हड्डी की दूसरी पट्टी जो 'तारगहन' के पास ही लगी होती है, उसे 'अटी' या 'मेरु' कहते हैं। इसके ऊपर होकर तार जाते हैं।

'तारगहन' और 'अटी,' हड्डी या सांभर के सींग से बनी हुई होती हैं।

## डाँड

तूँवे में जुड़े लकड़ी के लम्बे भाग को 'डाँड' कहते हैं। इसमें तुन, शाशम इत्यादि की लकड़ी से बनाकर अन्दर से पोला (खोखला) रखा जाता है। इसी में ऊपर की ओर 'खूंटियाँ' लगाई जाती हैं, जिनके द्वारा तार खिंचे रहते हैं।

## गुल या गुलू

जिस स्थान पर 'तूँवा' और 'डाँड' जुड़े रहते हैं, उसे 'गुल' या 'गुलू' कहा जाता है। उर्दू भाषा में फूल को गुल कहते हैं।

## घुड़च, घोड़ी या ब्रिज

'घुड़च' को ही 'घुर्च' या 'घोड़ी' और अँग्रेजी में 'ब्रिज' (Bridge) कहते हैं। यह ऊँट की हड्डी, सांभर के सींग अथवा आबनूस, खैर या शीशम की लकड़ी से बनी हुई होती है जो लगभग चार इंच लम्बी और दो इंच चौड़ी होती है। इसी के ऊपर 'तानपूरा' के तार स्थिर रहते हैं।

## तबली या तबकडी

तानपूरा में तूँवा के ऊपर वाला लकड़ी का भाग उत्तर भारत में 'तबली' और महाराष्ट्र की ओर 'तबकडी' कहलाता है। इसी के ऊपर 'घुड़च' लगाई जाती है जिसके कारण तूँवा में अनुनाद या गूँज उत्पन्न होती है।

## सूत, जीवा या ज्वारी

'घुड़च' के ऊपर तारों के नीचे एक धागे का टुकड़ा दबा दिया जाता है। इस धागे को आग-पीछे सरकाने (हटाने) से एक निश्चित बिन्दु पर तानपूरे का स्वर अच्छी गूँज के साथ उत्पन्न हो जाता है। इसी को 'ज्वारी' या 'ज्वारी' खुलना कहते हैं। इस प्रकार 'घुड़च' के ऊपर की सतह का भाग 'ज्वारी' वाला स्थान माना जाता है।



## तूंबा

नीचे की ओर गोल तथा कुछ चपटे आकार का हिस्सा 'तूंबा' या 'तुंबी' कहलाता है। इसके अन्दर पोल होने के कारण स्वरों की गूँज बढ़ जाती है। 'तूंबा' कद्दू की तरह एक विशेष फल होता है। इसकी खेती महाराष्ट्र के पंढरपुर क्षेत्र में विशेष रूप से होती है। जंजीबार (अफ्रीका) से भी तूंबों का आयात किया जाता है। एकतारा, सितार और वीणा जैसे वाद्यों को बनाने में भी इसका उपयोग होता है। दक्षिण भारत में प्रायः लकड़ी के तूंबे बनाए जाते हैं।

## मनका या मोती

'घुड़च' और 'लँगोट' के बीच में जिन मोतियों में तार पिरोये जाते हैं, उन्हें 'मनका' कहते हैं। मनकों को ऊपर या नीचे करके तारों को आवश्यकतानुसार थोड़ा उतारा या चढ़ाया जा सकता है। 'मनका' हड्डी, काँच या कड़ी प्लास्टिक के होते हैं।

## लँगोट

तूंबे की पैदी में लगी हुई कील को 'लँगोट' कहते हैं। इसी से तार शुरू होकर खूंटियों तक जाते हैं।

## तानपूरा छेड़ना

तानपूरा बजाने को ही 'तानपूरा छेड़ना' कहा जाता है। पहले तार को सीधे हाथ की मध्यमा उँगली से और बाकी तीन तारों को तर्जनी अँगुली के पोरुए वाले हिस्से की रपटती हुई कोमल टंकोर से छेड़ा जाता है। चारों तार एक साथ नहीं छेड़े जाते बल्कि एक-एक तार को लयबद्ध ढंग से क्रमशः छेड़ा जाता है और चारों तारों को छेड़ने के बाद, स्थापित लय की एक मात्रा का विश्राम दिया जाता है ताकि पिछले स्वरों की गूँज से उत्पन्न संवाद करने वाले सूक्ष्म स्वरों को कान स्पष्ट रूप से सुन सकें और ध्वनि में कोई टकराहट न हो।

## तानपूरा की बैठक

भिन्न-भिन्न गायक अपनी-अपनी आदत के अनुसार तानपूरा को रखते हैं। कोई एक घुटना नीचा और एक घुटना ऊँचा करके वीरासन में बैठकर तानपूरा छेड़ते हैं और कोई तानपूरे को जमीन पर लिटाकर या आड़ा रखकर छेड़ते हैं तो कोई उसे पालथी लगाकर अपनी गोद में रखकर छेड़ते हैं। बड़े गायक आजकल प्रायः 'स्वरमंडल' वाद्य को गोद में रखकर बजाते हैं और एक या दो तानपूरों को पीछे शिष्यों द्वारा बजवाते हैं। यह सब सुविधा, शोभा, ज़रूरत तथा सांगीतिक वातावरण की अभिवृद्धि के लिए किया जाता है।



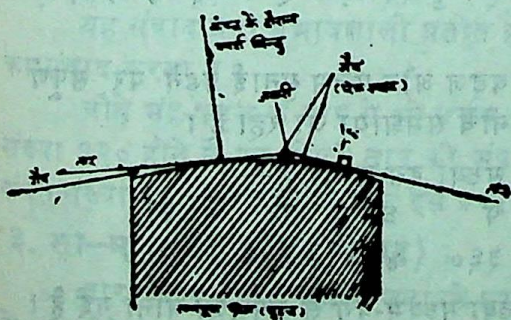
## आवश्यक बातें

१. तानपूरा बजाते समय उनकी ध्वनि करनी चाहिए जितनी गायक के लिए आवश्यक हो। २. चारों तारों पर नियमित अन्तराल से उँगलियों का स्पर्श होना चाहिए। ३. लय एक जैसी रहनी चाहिए, कभी जल्दी या कभी धीरे नहीं होनी चाहिए। ४. वादन-क्रिया में तार को खींचने की चेष्टा बिल्कुल नहीं होनी चाहिए। ५. कुछ लोग तानपूरा को 'तूंबरा', 'तूंबड़ी' या 'तम्बूरी' भी कहते हैं। कुछ कलाकार तानपूरा को ज़मीन पर लिटाकर उसके एक ही तार पर बीणा या गिटार की तरह वादन करते भी देखे जाते हैं। लेकिन यह ऐसा ही माना जायेगा जैसे कुछ लोग पैर से सितार और कुहनी से हारमोनियम बजा लेते हैं।

## तानपूरा के तार मिलाना

तानपूरा में चार तार होते हैं। इनमें से पहला तार मंद्र-सप्तक के पंचम (प) में, बीच के दोनों तार ( जोड़ी के तार ) मध्य-षड्ज ( सा ) में और चौथा तार मंद्र-सप्तक के षड्ज (सा) में मिलाया जाता है। इस प्रकार तानपूरा के चारों तार 'प सा सा सा', इन स्वरों में मिलाए जाते हैं। जिन रागों में पंचम वज्रित होता है उनमें पंचम वाला तार मध्यम स्वर में मिलाते हैं तथा जिन रागों में तीव्र मध्यम लगता है उनमें गांधार या निषाद स्वर में मिला लेते हैं।

तानपूरा के प सा सा, ये तीनों तार पक्के लोहे (स्टील) के होते हैं और चौथा तार (सा) पीतल का होता है। किसी-किसी तानपूरा में पहला तार भी पीतल का होता है, जिसे मर्दानी या भारी आवाज़ के लिए लगाते हैं; किन्तु ज़नानी या ऊँचे स्वर की आवाज़ के लिए लोहे का तार ही ठीक रहता है। कुछ लोग अधिक तारों वाला तानपूरा भी तैयार करा लेते हैं।



## तानपूरा की जवारी

तानपूरा की 'षुड्ज' या 'ब्रिज' (Bridge) चौड़ी और कुछ गोलाई लिए हुए होती है जो हाथीदांत, शीशम की लकड़ी (Rose Wood) जिसका अंग्रेजी नाम 'डलबर्गिया सिसो' (Dalbergia Sisso) है तथा ऊँट की हड्डी या सींग द्वारा

निर्मित होती है। अटी (मेरु) से निकलकर चार तार इसके ऊपर होकर गुज़रते हैं इनमें घागे (जवारी) या जोवा को लगाकर आवाज़ में कुछ तीक्ष्णता लिए हुए ध्वनि-गुंजन बढ़ाया जाता है। गुंजन बढ़ाने की यह प्रक्रिया 'जवारी खुलना' कहलाती है। इसमें



धागा एक ऐसे मेरु (अटी) का काम करता है जहाँ से तार का ढलान शुरू होता है। लेकिन घुड़च की सतह का एक हिस्सा या 'पाइन्ट' अत्यन्त सूक्ष्म रूप से घुड़च से स्पर्श करता है। इसी स्पर्श के कारण तार को झंकृत करने पर वहाँ स्वर कम्पन की आवृत्तियाँ तीक्ष्ण, वर्धित और तेजस्वी होकर गूँज पड़ती हैं। घुड़च की सतह पर होने वाले ये कम्पन ही 'जवारी' के नाम से जाने जाते हैं। जवारी खुलने से एक ही स्वर में उसके अनुनाद व संवादी स्वरों की उत्पत्ति भी सूक्ष्म रूप में होती है। इसीलिए जब तानपूरा के मन्द्र-षड्ज के मोटे तार पर उँगली से आघात किया जाता है तो अन्तर गांधार या शुद्ध गांधार की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है। यदि बहुत ध्यानपूर्वक सुना जाए तो पंचम की आवाज़ भी सुनाई पड़ेगी। कम्पन से उत्पन्न होने वाले नियमित, निश्चित और विभाजित प्रकम्पन ही संवादी स्वरों को जन्म देते हैं। धागा लगने से 'घुड़च' के ऊपर तार की स्थिति में जो परिवर्तन आता है, उसके अनुसार उसके चार भाग हो जाते हैं। जिनमें एक भाग धागे की मोटाई का तथा तीन भाग उन रिक्त स्थानों (Gap) के होते हैं जो धागे के आगे-पीछे एवं घुड़च की प्रारंभिक सतह पर बनते हैं। अन्य वाद्यों में जिनकी 'घुड़च' चौड़ी न होकर पतली या नुकीली होती है, उनमें स्वर संघात से स्वर के कम्पन की ये आवृत्तियाँ नहीं बनतीं। इसीलिए उनमें एक निश्चित ध्वनि विद्यमान रहती है जिसमें तानपूरे की तरह दीर्घ स्वर-गुंजन प्राप्त नहीं होता अर्थात् जन्य-जनक स्वरों का सौन्दर्य उपलब्ध नहीं होता। वास्तव में तानपूरे में जवारी के प्रयोग से तार के कम्पनों की आवृत्ति कम होती है और धागे के कारण 'घुड़च' के ऊपर तीन 'गैप' प्राप्त होने से कम्पन और प्रकम्पन के कारण मूल स्वर से संवाद करने वाली ध्वनियों की निरंतर उत्पत्ति होती रहती है।

## तानपूरा के स्वरों की कम्पन संख्या

तानपूरा में चार तार होते हैं जिन्हें छेड़ने पर हमें बायीं ओर से पहले तार पर मध्य सप्तक का पंचम, दूसरे और तीसरे समान (जोड़े) तारों पर मध्य सप्तक का षड्ज और चौथे तार पर मन्द्र सप्तक का षड्ज सुनाई पड़ता है अर्थात् 'प, स, स, स' स्वर क्रमशः सुनाई पड़ते हैं।

तानपूरा के उपर्युक्त स्वरों से केवल षड्ज और पंचम सुनाई पड़ने पर संपूर्ण सप्तक का निर्माण किस तरह होता है यह नीचे समझाया जा रहा है।

सप्तक के सात शुद्ध स्वरों की कम्पन संख्या इस प्रकार है—

| सा  | रे  | ग   | म   | प   | ध   | नि  | सां |
|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| २४० | २७० | ३०० | ३२० | ३६० | ४०० | ४५० | ४८० |

उपर्युक्त स्वरों में धैवत की कम्पन संख्या मध्यम-वर्ग से उपलब्ध मानी गई है।

तानपूरा के तारों पर संगीत के महत्वपूर्ण संवाद षड्ज-पंचम (स-प), षड्ज-मध्यम (स-म) और षड्ज-गांधार (स-ग) तो तानपूरा छेड़ने से ही उभरने लगते हैं; क्योंकि षड्ज की ध्वनि में यह तीनों संवाद प्राकृतिक रूप से निहित रहते हैं।



पंचम के ध्वनित होने पर (उसे षड्ज मानलें तो) उसमें भी यह तीनों संवाद उभरते हैं। इस प्रकार षड्ज से गांधार, मध्यम और पंचम तथा पंचम के तार द्वारा उत्पन्न तीनों संवाद हमें निषाद, षड्ज और रिषभ के रूप में मिल जाते हैं। इस प्रकार केवल षड्ज और पंचम की गूँज द्वारा उनमें निहित ध्वनियाँ स, रे, ग, म, प, नि प्राप्त हो जाती हैं रिषभ से संवाद होने के कारण धैवत भी सूक्ष्म रूप में ध्वनित होकर अनुभव में आने लगता है।

कंपन संख्या के आधार पर इस बात को निम्नांकित प्रकार से समझा जा सकता है—

### १. स-सां (पूर्ण संवाद) :

सप्तक के सात शुद्ध स्वरों की कंपन संख्या इस प्रकार है :—

केन्द्र अर्थात् बीच में जोड़ के तार मध्य षड्ज से मिले हुए रहते हैं। इनसे निकलने वाला सामुदायिक ध्वनि-योग (Summation tone)  $२४० + २४० = ४८०$ . कंपनसंख्या है। लेकिन  $४८०$  कंपनसंख्या तार षड्ज की भी है, इसलिए जोड़ के तारों से सा-सां संवाद मिलता है।

चारों तारों की कंपन संख्या का जोड़ इस प्रकार है :—

$$३६० + २४० + २४० + १२० = ९६०.$$

$९६०$  की संख्या तार षड्ज के अंतर्गत आती है। इस संख्या को २ से भाग देकर  $९६०/२ = ४८०$  कंपन संख्या होती है। यह तार षड्ज की कंपन संख्या है। यही कारण है कि षड्ज के समांतर तार बाकी सभी तारों के ध्वनि-योग से निर्मित होने वाले स्वरों के साथ सा-सां संवाद का निर्माण करते हैं। ध्यान देने की बात है कि गायक को आवश्यक षड्ज स्वर इन्हीं चारों तारों के छेड़ने से मिलता है। चौथा तार मंद्रसप्तक का होने के कारण बाकी चारों तार अखंड रूप से छेड़ने पर चारों सप्तकों के षड्ज का स्वर, गायक के कानों में आता रहता है और उसे अपना स्वर, अर्थात् षड्ज लगाने में उसे मदद मिलती है। इन चारों षड्ज स्वरों की कंपन संख्या इस प्रकार है—  $१२०$ ,  $२४०$ ,  $४८०$  और  $९६०$ .

### २. सा-प (षड्ज-पंचम संवाद) :

यह संवाद बड़ा प्रभावशाली प्रतीत होता है क्योंकि पहला तार मध्य-पंचम का संवाद करता है।

चौथे मंद्र-षड्ज के तार से भी पंचम का निर्माण होता है। उस तार की कंपन संख्या  $१२०$  होने से यह तीसरे तार की कंपन संख्या  $२४०$  से मिलकर इस पंचम की कंपन संख्या  $३६०$  बन जाती है अतः इस प्रकार से भी पंचम संवाद का निर्माण होता है।

### ३. सा-म (षड्ज-मध्यम संवाद) :

तार षड्ज पंचम भाव से उतारने पर मध्यम मिलता है। जैसे  $४८०$  को  $३/२$  से भाग देने से  $३२०$  संख्या आती है और यही शुद्ध मध्यम की कंपन संख्या है। लेकिन ऊपर बताए गए अनुसार मिलने वाला मध्यम कुछ क्षीण ही होगा इसीलिए गायक को जिस गति का मध्यम संवाद चाहिए वैसा नहीं सुनाई देता। अतः जिस राग



में पंचम वर्ज्य रहता है उस समय गायक पंचम का पहला तार मध्यम में मिलाता है और ऐसा करने से मध्यम संवाद स्पष्ट रूप से सुनाई देता है ।

#### ४. सा-ग (षड्ज-गांधार संवाद) :

मध्य षड्ज और मध्य पंचम इनका सामुदायिक ध्वनि योग (Summation tone) होगा—  $२४० + ३६० = ६००$ । यह ६०० कंपन संख्या मध्य सप्तक में लाने के लिए २ से भाग देने पर ३०० आयेगी । यह संख्या गांधार की होती है अर्थात् षड्ज-गांधार संवाद प्राप्त हो जाता है ।

चौथे तार पर बजने वाला मंद्र षड्ज और तीसरे तार पर निर्मित होने वाले तार षड्ज के संयोग से भी गांधार का निर्माण होता है । जैसे  $१२० + ४८० = ६००$  इसमें पहले की तरह २ से भाग देने पर मध्य सप्तक में लाने से ३०० कंपन संख्या का गांधार मिल जाता है । यह गांधार इतना प्रबल रहता है कि वह चौथे तार को छेड़ने पर स्पष्ट रूप से सुनाई देता है । इस तरह का गांधार सुनाई दे तभी मध्य षड्ज और मंद्र षड्ज सही-सही मिला हुआ माना जाता है । इस तरह षड्ज-गांधार संवाद हमें उपलब्ध हो जाता है ।

इस प्रकार हमने देखा कि तानपूरा में प्रमुख चार संवाद कैसे मिलते हैं । अब तानपूरा से उभरने वाले शुद्ध स्वरों को देखेंगे । तानपूरा के तारों को 'प', सा, सा, सा' में मिलाने से अवल स्वर 'सा प' तो सुनाई देते ही हैं पर साथ में सा-ग संवादान्तर्गत गांधार और मध्यम संवादान्तर्गत शुद्ध मध्यम की उत्पत्ति भी होती है । अब बचे हुए 'रे, ध, नि' स्वर किस प्रकार उभरते हैं यह देखेंगे ।

मध्य पंचम के पहले तार को छेड़ने से ३६० कंपन संख्या का पंचम स्वर मिलता है । तार पंचम स्वर की कंपन संख्या  $३६० \times २ = ७२०$  है । अब पंचम और तार पंचम इन स्वरों से  $३६० + ७२० = १०८०$  कंपन संख्या का स्वर मिलता है । जो मध्य सप्तक में ४ से भाग देने पर  $१०८०/४ = २७०$  कंपन संख्या वाला रिषभ स्वर मिलता है ।

मध्य षड्ज की दूसरे तार सप्तक की कंपन संख्या ४६० ( $२४० \times २ \times २$ ) है । मंद्र सप्तक में शुद्ध मध्यम की कंपन संख्या ४६० ( $२४० \times २ \times २$ ) है । मंद्र सप्तक में शुद्ध मध्यम की कंपन संख्या  $३२० \div २ = १६०$  है । अब ४६० और १६० का ध्वन्यंतर (Difference tone) आएगा ।  $४६० - १६० = ३००$  यह तार सप्तक की कंपन संख्या मध्य सप्तक में  $३००/२ = १५०$  हो जाएगी । यह है मध्य सप्तक के धैवत की कंपन संख्या । इस तरह धैवत स्वर भी तानपूरा से प्राप्त होता है ।

२७० कंपन संख्या के रिषभ स्वर की तार सप्तक में कंपन संख्या  $२७० \times २ \times २ = १०८०$  आएगी । मंद्र पंचम की कंपन संख्या  $३६० \div २ = १८०$  आएगी । अब १०८० और १८० का ध्वन्यंतर आएगा । अर्थात्  $१०८० - १८० = ९६०$  वास्तव में यह है तार सप्तक के निषाद की कंपन संख्या । इसको  $९६० \div २$  करने से जो ४८० कंपन संख्या आएगी, वही होगा मध्य सप्तक का निषाद स्वर । इस प्रकार तानपूरा से सप्तक के सभी शुद्ध स्वरों का निर्माण होता है ।

संजीत-विशारद



## वॉयलिन (बेला)

वॉयलिन (Violin) या बेला एक विदेशी वाद्य है। गज़ से बजनेवाले समस्त वाद्यों में इसे सर्वत्र प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता है। इस यंत्र की उत्पत्ति और आविष्कार के बारे में विभिन्न मत पाए जाते हैं।

जो लोग इसे विदेशी वाद्य मानते हैं, उनके मतानुसार इसका आविष्कार यूरोप में १६-वीं शताब्दी के मध्य हुआ और तभी से यह अधिकाधिक प्रचलित होता गया है।



एक मत के अनुसार 'बेला' को मूल रूप में भारतीय वाद्ययंत्र कहा जाता है। इस मत के अनुयायियों का कहना है कि लंकापति रावण ने एकतारवाला एक वाद्ययंत्र ईजाद किया था जिसे गज़ से ही बजाया जाता था। उसका नाम 'रावणास्त्रम्' रखा गया। इसके पश्चात् ११-वीं शताब्दी के अंत में यह वाद्य भारत होकर परशिया, अरेबिया तथा स्पेन होता हुआ यूरोप पहुँचा। वहाँ इसमें परिवर्तन होते हुए वर्तमान वॉयलिन के रूप में इसका पूर्ण विकास हो गया।

एक पाश्चात्य विद्वान् के मतानुसार, ४०० वर्ष पहले यूरोप में 'वॉयल' (Voil) नामक एक वाद्ययंत्र का आविष्कार हुआ, जिसका प्रचार सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक रहा। बाद में इसी वॉयल यंत्र के ढंग पर वॉयलिन बनाया गया। एक और मतानुसार १५६३ ई० में वेनिस नगर के एक ग्रामीण लीनारोनी ने 'टेनर वॉयलिन' का आविष्कार किया था। उसी के आधार पर इटली के दो कलाकारों ने इसमें कुछ और विशेषताएँ सम्मिलित करके इसे नवीन रूप दिया। कोई-कोई इसे जर्मनी का आविष्कार भी बताते हैं। इस प्रकार वॉयलिन के सम्बन्ध में अनेक धारणाएँ पाई जाती हैं। कुछ भी सही, यह तो मानना ही पड़ेगा कि अपने आधुनिक रूप में यह पूर्णरूपेण एक विदेशी वाद्य है। भारत में विशेषकर दक्षिण भारत में इसका प्रचार दिनों-दिन बढ़ रहा है। अच्छे वॉयलिन वादक भी अब यहाँ अनेक हो गए हैं।



## वाँयलिन के अंग

वाँयलिन (बेला) के छह मुख्य अंग होते हैं :—

### १. बाँडी (Body)

इसे वाँयलिन का शरीर समझिए। अन्दर से पोला होने के कारण इसमें आवाज़ गूँजती है। इसे 'बेली' भी कहते हैं।

### २. फिंगर-बोर्ड (Finger Board)

इस पर अँगुलियों की सहायता से स्वर निकाले जाते हैं।

### ३. टेल-पीस (Tail Piece)

वह भाग है, जिसमें चार सूराख होते हैं। इन चारों सूराखों में होकर चार तार खूंटियों तक जाते हैं।

### ४. एन्ड-पिन (End Pin)

इसमें टेलपीस ताँत के द्वारा फँसा रहता है।

### ५. ब्रिज (Bridge)

इसके ऊपर होकर तार खूंटियों की ओर जाते हैं।

### ६. साउंड-पोस्ट (Sound Po., )

यह वाँयलिन के अन्दर ब्रिज के ठीक नीचे लगा रहता है।

### ७. गज (Bow) और उसके भाग

वाँयलिन जिस छड़ी (गज) से बजाया जाता है, उसे 'बो' कहते हैं। इसके पाँच भाग होते हैं :—

१. गज की छड़ी (Stick), २. बाल (Hair)—ये गज की छड़ी में कसे रहते हैं, ३. स्कू (Screw)—एक प्रकार का पेच, जिसे उलटा या सीधा करने से 'बो' (गज) के बाल तनते या ढीले होते हैं, ४. नट (Nut)—इसमें बाल फँसे रहते हैं और जब पेच घुमाया जाता है तो यह सरकने लगता है तथा ५. हैड (Head)—यह 'बो' का अंतिम सिरा है।

### ८. रेजिन (Resin)

यह एक प्रकार का विरोजा (रेजिन) होता है। इस पर 'बो' (गज) के बाल बिसकर तब वाँयलिन बजाते हैं। इससे आवाज़ स्पष्ट और सुन्दर निकलती है।

## वाँयलिन के चार तार और उन्हें मिलाने की पद्धति

वाँयलिन में कुल चार तार होते हैं, जो अँग्रेजी में क्रमशः जी, डी, ए, ई, (G D A E) कहलाते हैं। इनको मिलाने के ढंग कई प्रकार के हैं :—

संगीत-विशारद



### प्रथम प्रकार

प सा प सां, इस प्रकार मिलाते हैं। यानी मंद्र-सप्तक का पंचम, मध्य-सप्तक का षड्ज, मध्य-सप्तक का पंचम और तार-सप्तक का षड्ज।

### दूसरा प्रकार

स प सा प इस तरह मिलाते हैं। यानी पहले दोनों तार मंद्र-सप्तक के षड्ज-पंचम में और बाकी दो तार मध्य-सप्तक के षड्ज-पंचम में।

### तीसरा प्रकार

म सा प रे, इस प्रकार मिलाते हैं। भारत में अधिकतर यह तीसरा प्रकार ही प्रचलित है।

## वीणा

### वीणा

वीणा भारत का ऐतिहासिक प्राचीनतम वाद्ययंत्र है जो तत्त वाद्यों की श्रेणी में आता है। एक से सौ तार तक वाली वीणाओं की चर्चा भारतीय शास्त्रों में मिलती है। दक्षिण भारत में इसका विशेष प्रचार है। वीणा के दो तूँबे या पेट पोले होते हैं जो कद्दू के बने होते हैं। वीणा की लम्बाई लगभग ३ फीट ७ इंच होती है। पहला तूँबा ऊपर से १० इंच की दूरी पर होता है और दूसरा लगभग २ फीट ११ १/२ इंच की दूरी पर। इनका व्यास १४ इंच का होता है। डाँड (फिंगर बोर्ड) की लंबाई २१ १/२ इंच और चौड़ाई लगभग ३ इंच होती है। इसी के ऊपर पर्दे (चल या अचल सारिकाएँ) लगाए जाते हैं। इनकी संख्या १६ से २२ तक रहती है। डाँड से पर्दे की ऊँचाई १/२ इंच तक और कम से कम १/४ तक होती है। तारों की संख्या ७ होती है जिनमें से ४ तार (दो स्टील के तथा दो पीतल के) षड्ज के ऊपर से जाते हैं, दो बाईं ओर होते हैं और एक सीधी ओर। बाज का मुख्य तार गांधार, मध्यम या धैवत में आवश्यकतानुसार मिलाया जाता है।

उत्तर भारतीय वीणा के ऊपर वाले तूँबे को बाएँ कंधे पर रखकर वीणा-वादन किया जाता है। नीचे का तूँबा सीधे घुटने पर रहता है। बाएँ हाथ की उँगलियों को पर्दों पर दबाकर वादन किया जाता है तथा कनिष्ठिका उँगली को प्रायः बाईं ओर के मुक्त तारों को छेड़ने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। सितार की भाँति सीधे हाथ की तर्जनी और मध्यमा उँगलियों में लोहे की मिजराब (कोण) पहनकर स्वराघात किए जाते हैं। दक्षिण भारतीय वीणा की अपेक्षा उत्तर भारतीय वीणा के मिलाने की पद्धति भिन्न प्रकार की होती है। इसे 'रुद्रवीणा' भी कहते हैं। जो वीणा जमीन पर रखकर बजाई जाती है और जिसमें बाएँ हाथ की उँगलियों के स्थान पर बट्टे (रॉड) का प्रयोग किया जाता है उसे 'बट्टा वीन' या 'विचित्र वीणा' कहते हैं और यह भी उत्तर भारत में ही प्रचलित है। इसमें लगभग एक दर्जन तरब के तार होते हैं जो ऊपर के स्वरों के साथ गुंजित होते रहते हैं। विचित्र वीणा को



ही 'स्वर वीणा' भी कहते हैं। वीणा को बीन भी कहते हैं और वीणा-वादक को बीनकार या वैणिक। सेनीय घराने के प्रवर्तक विलास खाँ द्वारा रुद्रवीणा का प्रचार भी काफी हुआ लेकिन अब उसकी उतनी लोकप्रियता नहीं रह गई है।

वीणाओं के अन्य प्रकारों में उनके आकार-प्रकार एवं तंत्रियों के भेद से एक-तंत्रीवीणा, कच्छपीवीणा, आलापिनीवीणा, कलावतीवीणा, कात्यायनी वीणा, किन्नरीवीणा, घोषवतीवीणा, चित्रावीणा, त्रितंत्रीवीणा, शततंत्रीवीणा, दारवीवीणा, ध्रुववीणा, नकुलीवीणा, नारदवीणा, निःशंकवीणा, पिनाकीवीणा, परिवादिनीवीणा, बृहतीवीणा, भरतवीणा, ब्रह्मवीणा, महतीवीणा, राबणहस्तवीणा, वल्गुवीणा, विपंचीवीणा, शारदीयवीणा, शाङ्गीवीणा, श्रुतिवीणा, सरोदीवीणा, सारंगवीणा, तुम्बरवीणा, मायूरीवीणा, किरातवीणा, नन्दिकेश्वरवीणा इत्यादि वीणा भी होती हैं।

### दाक्षिणात्य वीणा

इसे 'तंजौर वीणा' भी कहते हैं जो दक्षिण भारत में प्रचलित है। इसमें एक ही तूँबा रहता है, परन्तु दाहिने सिरे पर लकड़ी का घट (तूँबा) दण्ड के साथ गुँज की दृष्टि से जोड़ दिया जाता है। इसके तूँबे शीशम या कटहल की लकड़ी के बने होते हैं। कहीं-कहीं बायीं ओर कद्दू का तूँबा भी प्रयोग में लाया जाता है। इसमें २४ पीतल के पर्दे (अचल सारिकाएँ) मोम से जुड़े हुए होते हैं। मूल तन्त्रियाँ (तार) ४ होती हैं और ३ चिकारियों के तार होते हैं जो वीणा-दण्ड के पार्श्व में रहते हैं। मूल तन्त्रियों पर मुक्तावस्था में मध्य षड्ज, मन्द्र पंचम, मन्द्र षड्ज और अतिमन्द्र पंचम बोलते हैं। चिकारियों पर तारस्थानीय षड्ज, पंचम और अतितारस्थानीय षड्ज बोलते हैं। मूल तन्त्रियों में पहली दो लोहे की और बाकी दो पीतल की होती हैं।

गोट्टुवाद्यम् या महानाटकवीणा कर्नाटिक पद्धति का नवीन वाद्य है, जिसमें उपस्वरो या अनुध्वनि के लिए सात तन्त्रियाँ दण्ड के अन्दर स्थापित होती हैं। इसका आकार वीणा के अनुसार ही होता है। वादन सीधे हाथ की उँगलियों से किया जाता है और बाएँ हाथ से लकड़ी के टुकड़े (राँड) द्वारा तन्त्री को दबाकर स्वरों का उत्पादन किया जाता है। काष्ठदण्ड (राँड) की लम्बाई ३ इन्च और व्यास १ इन्च होता है जो आवनूस की लकड़ी से बनाया जाता है। इसके द्वारा विविध गमक अच्छी तरह प्रदर्शित की जा सकती हैं लेकिन वीणा के कुछ विशेष प्रयोग इसमें साध्य नहीं होते। इसमें ४ से ४½ सप्तक तक वादन किया जा सकता है।

दक्षिण की सरस्वती वीणा का रूप ही उत्तर भारत का सितार है। वीणा बजाने के लिए मुख्यतः तीन स्थितियाँ पाई जाती हैं। पहली में पालथी लगाकर एक पैर को दूसरे पर तिरछा रखते हुए जंघाओं का थोड़ा-सा सहारा लेकर, दूसरी में बायीं जाँघ को जमीन पर रखकर सीधे घुटने को मोड़कर तथा तीसरी में पहली पद्धति की तरह एक के ऊपर दूसरा पैर रखकर वीणा को गोद में लेकर बजाया

संगीत-विचार



जाता है। प्रत्येक स्थिति में बाएँ हाथ से सारिकाओं पर वादन किया जाता है और दाएँ हाथ से मिज़राब, नखी या कोण के द्वारा तारों पर आघात किया जाता है। मीड़, सूत, गमक, घसीट, श्रुतियों और तानों का जितना अच्छा प्रदर्शन वीणा के द्वारा हो सकता है उतना अन्य किसी वाद्य के द्वारा सम्भव नहीं होता।

## इसराज

इसराज एक प्रकार से सितार और सारंगी का ही रूपांतर है। इसका ऊपरी भाग सितार से मिलता है और नीचे का भाग सारंगी के समान होता है। इसराज को दिलरुवा भी कहते हैं। यद्यपि इसकी शक्ल में थोड़ा अंतर होता है, किन्तु बजाने का ढंग एक-सा होता है, इसीलिए इसराज और दिलरुवा पृथक् साज नहीं माने जाते।



## इसराज के मुख्य अंग

### तूँबा

यह खाल से मढ़ा हुआ होता है। इसके ऊपर घोड़ी या ब्रिज लगा रहता है।

### लंगोट

यह तार बांधने की कील होती है।

### डांड

इसमें परदे बँधे रहते हैं।

### घुर्च

यह खाल से मढ़ी हुई तबली के ऊपर का हड्डी का टुकड़ा होता है, जिसके ऊपर तार रहते हैं। इसे 'घोड़ी' या 'ब्रिज' भी कहते हैं।

### अटो

सिरे की पट्टी, जिसपर होकर तार तारगहन के भीतर होकर खूंटियों तक जाते हैं।

### खूंटियाँ

ये तारों को बांधने और कसने के लिए होती हैं।

## इसराज के चार तार

### बाज का तार

यह मंद्र-सप्तक के मध्यम (म) में मिलाया जाता है।

### संशोत-विशारद..



## दूसरा व तीसरा तार

ये दोनों तार मन्द्र-सप्तक के षड्ज (स) में मिलाए जाते हैं। इन्हें जोड़ी के तार कहते हैं।

## चौथा तार

मन्द्र-सप्तक के पंचम (प) में मिलता है। इस प्रकार इसराज के चारों तार म सा सा प में मिलाए जाते हैं। कोई-कोई कलाकार म सा प सा या म सा प प, इस क्रम से भी मिलाते हैं। इनके अतिरिक्त इसराज में तरब के तार और होते हैं, जिन्हें भिन्न-भिन्न रागों के अनुसार मिला लिया जाता है।

## इसराज के परदा

इसराज में सोलह परदे होते हैं, जोकि सितार की भाँति पीतल या स्टील के बने हुए होते हैं। ये परदे निम्नलिखित स्वरों में होते हैं :—

म प ध नि नि सा रे ग म म प ध नि सां रे ग  
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६

सितार की भाँति इसराज में कोमल स्वर बनाने के लिए परदों को खिसकाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, कोमल स्वरों के स्थान पर अँगुली रख देने से ही काम चल जाता है।

इसराज बजाने में बाएँ हाथ की तर्जनी और मध्यमा अर्थात् पहली व दूसरी अँगुलियाँ काम देती हैं। गज को दाहिने हाथ से पकड़ते हैं। इसराज को बाएँ कंधे के सहारे रखकर बजाना चाहिए। प्रारंभ में गज धीरे-धीरे चलाना चाहिए तथा गज चलाते समय तार को अधिक जोर से नहीं दबाना चाहिए। पहले स्वर-साधन का अभ्यास हो जाने पर गतें निकालने की चेष्टा करनी चाहिए।

इसराज के प्रमुख कलाकारों में चंद्रिकाप्रसाद दुबे तथा भृगुनाथलाल मुंशी के नाम उल्लेखनीय हैं।

## बाँसुरी

यह वंश परिवार का अति प्राचीन सुषिर (फूंक से बजने वाला) वाद्य है। भगवान् कृष्ण ने अपने अधरों से लगाकर इसे अमरत्व प्रदान कर दिया है। बाँसुरी को वंशी, वेणु या मुरली भी कहते हैं।

आजकल बाँसुरियाँ कई प्रकार की मिलती हैं, किन्तु हम यहाँ पर उसी का विवरण दे रहे हैं, जिसमें छह सूराख होते हैं और जिसकी ट्यूनिंग अँग्रेजी ढंग पर की हुई होती है। यद्यपि देशी बाँसुरी भी काफी अच्छी होती है किन्तु उन्हें अच्छे स्वर-ज्ञान वाले ही पहचान सकते हैं। बाँसुरी पीतल, प्लास्टिक या बाँस से बनी होती है। बाँसुरी के स्वर तथा वादन की विधि आगे दी जा रही है।





## बाँसुरी में सरगम निकालने की विधि

सर्वप्रथम बाँसुरी के सब सूराखों को इस प्रकार बन्द करें कि बाएँ हाथ की पहली, दूसरी, तीसरी अँगुलियाँ ऊपर के तीन सूराखों पर जम जाएँ। फिर दाहिने हाथ की पहली, दूसरी और तीसरी अँगुलियों से नीचे के तीनों सूराख बन्द करें। ध्यान रहे कि सूराखों को अँगुलियों की पोर से अच्छी तरह दबाना चाहिए। यदि बीच में कोई भी अँगुली सूराख से तनिक भी हट गई, तो आवाज़ फटी-फटी निकलेगी।

सब सूराख उपर्युक्त विधि से बंद करने के बाद मुँह से हलकी फूँक लगाएँ। इस प्रकार सब सूराख बंद होने पर जो स्वर निकलेगा, वह मन्द्र-सप्तक का 'प' होगा। बाकी स्वर एक-एक अँगुली क्रमानुसार उठाने पर इस प्रकार निकलेंगे:—

प—सब सूराख बंद करने पर।

ध—नीचे का एक सूराख खोलने पर।

नि—नीचे के दो सूराख खोलने पर।

सा—नीचे के तीन सूराख खोलने पर।

रे—नीचे के चार सूराख खोलने पर।

ग—नीचे के पाँच सूराख खोलने पर।

म—सब सूराख खोल देने पर।

इस प्रकार छह सूराखों से 'प ध नि सा रे ग म' ये सात स्वर निकले। इनमें मध्यम तीव्र है; बाकी स्वर शुद्ध हैं। मध्यम को शुद्ध बनाने के लिए ऊपर का सिर्फ आधा सूराख दबाना पड़ता है तथा अन्य स्वरों को कोमल बनाने के लिए भी सूराखों का अर्ध-प्रयोग किया जाता है।

इसके आगे के स्वर यानी मध्य-सप्तक के 'प ध नि' और तार-सप्तक के स्वर निकालने के लिए क्रम बिलकुल यही रहता है, सिर्फ मुँह की फूँक का वज़न बदल दिया जाता है; उदाहरणार्थ—सब सूराख बंद करने पर हलकी फूँक से मन्द्र-पंचम का (प) निकलता है, तो फूँक का वज़न दुगुना कर देने पर वही मध्य सप्तक का पंचम (प) बन जाएगा। इसी प्रकार आगे की सप्तक के अन्य स्वर भी फूँक के दबाव के आधार पर निकलेंगे।

बाँसुरी पर पहले यमन राग के स्वरों—सा रे ग म प ध नि' का ही अभ्यास करना चाहिए, क्योंकि यमन राग में मध्यम तीव्र तथा बाकी स्वर शुद्ध हैं और बाँसुरी में भी पूरे सूराखों के खुलने पर यही स्वर आसानी से निकलते हैं। बाद में अभ्यास हो जाने पर आधे-आधे सूराखों के प्रयोग से अन्य विकृत स्वर भी निकलने लगेंगे। बाँसुरी शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत एवं लोक संगीत के क्षेत्र में समान रूप से लोकप्रिय है।

बाँसुरी के मुख्य कलाकारों में पन्नालाल घोष, विजय राघव राव, देवेन्द्र मुर्देश्वर तथा हरिप्रसाद चौरसिया के नाम उल्लेखनीय हैं।



137 157 57 1373 137-7

गायकों के मुख्य पाँच घराने हैं—१. ग्वालियर-घराना, २. जयपुर-घराना, ३. किराना-घराना, ४. आगरा-घराना और ५. दिल्ली-घराना । इन घरानों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

इस घराने के जन्मदाता प्रसिद्ध संगीतज्ञ हर्दू खाँ। हस्तू खाँ के दादा स्व० नत्थन पीरबख्श माने जाते हैं। उनकी वंश-परंपरा इस प्रकार है :—

कादिरबखश

पीरबखश

हस्सू खाँ

हद्दू खाँ

नत्थू खाँ

गुलेइमाम

निसारहुसैन खाँ (दत्तक)

मेहंदोहसैन खाँ

रहमत खाँ

मुहम्मद खाँ



नत्थू खाँ यद्यपि कादिरबख्श के पुत्र थे, किन्तु ये अपने चाचा पीरबख्श की गोद थे। हस्सू खाँ, हद्दू खाँ तथा नत्थू खाँ, ये तीनों भाई प्रसिद्ध खयाल-गायक तथा ग्वालियर के दरबारी गायक थे।

ग़लेइमाम के पुत्र मेंहँदी हुसैन को तोड़ी राग गाने में कमाल हासिल था। इस परंपरा के महाराष्ट्रीय शिष्य बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर, वासुदेव जोशी तथा बाबा दीक्षित थे। बालकृष्ण बुआ के शिष्य थे—पं० विष्णुदिगंबर पलुस्कर। पलुस्कर जी ने बम्बई पहुँचकर ग्वालियर-घराने की गायकी का प्रचार किया, जिसके फलस्वरूप पं० ओम्कारनाथ ठाकुर, विनायकराव पटवर्धन, नारायणराव व्यास आदि प्रसिद्ध गायक हमें प्राप्त हुए।

नत्थू खाँ के कोई संतान न होने के कारण उन्होंने निसार हुसैन को गोद ले लिया और उन्हें संगीत की शिक्षा भी भली प्रकार देने लगे। निसार हुसैन ने अपने परिश्रम और प्रतिभा से गायन कला में अच्छी प्रसिद्धि पाई। बाद में आप ग्वालियर के दरबारी गायक नियुक्त हो गए। निसारहुसैन की शिष्य-परंपरा इस प्रकार है :—

निसारहुसैन

शंकर पंडित

रामकृष्ण वझे बुआ

भाऊराव आदि

कृष्णराव पंडित

राजाभैया पृथ्वाले

ग्वालियर-घराने की गायकी में निम्नलिखित विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं :—

१. जोरदार तथा खुली आवाज़ का गायन।

२. ध्रुवपद-अंग के खयाल।

३. सीधी तथा सपाट तानें।

४. बोल-तानों में लयकारी।

५. गमकों का प्रयोग।

**जयपुर-घराना (अलिया फत्तू)**

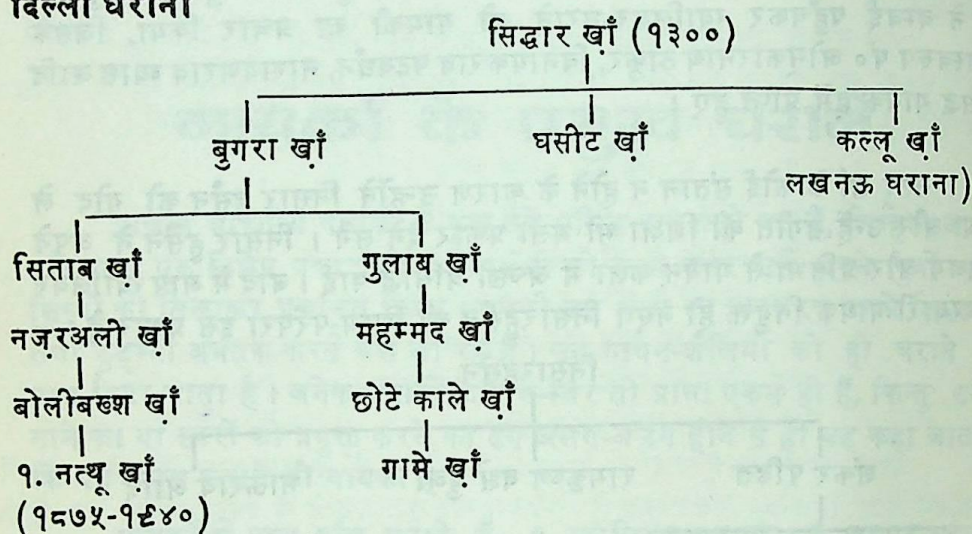
इस घराने के जन्मदाता 'मनरंग' बताये जाते हैं। उनके वंशज मुहम्मद अली खाँ हुए और मुहम्मद अली खाँ के पुत्र आशिक अली खाँ हुए। आगे चलकर इस घराने के दो उप-घराने हो गये—१. पटियाला-घराना और २. अल्लादिया खाँ घराना। जयपुर-घराने की विशेषताओं के साथ-साथ इन उप-घरानों ने कुछ और विशेषताएँ पैदा करके अपनी-अपनी गायन शैली को आकर्षक बनाया।



जयपुर-घराने की विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

१. आवाज़ बनाने की अपनी स्वतंत्र शैली ।
२. खुली आवाज़ में गायन । तनैती बाज़, बोल, उपज तथा अनाघात लय ।
३. गीत की संक्षिप्त बंदिश ।
४. वक्र तानें तथा आलाप की छोटी-छोटी तानों से बढ़त ।
५. खयाल-गायन की विशेष बंदिश ।

## दिल्ली घराना



(१) नत्थू खाँ के शिष्य :—

केशवचन्द्र बनर्जी रायबहादुर, डमरूपाणि भट्टाचार्य, हबीबुद्दीन, हरेन्द्रकिशोर राय चौधुरी ।

## पटियाला या पंजाब घराना

यह घराना दिल्ली से सम्बन्धित रहा लेकिन इसका विकास पंजाब की धरती पर होने के कारण और पटियाला रियासत में पनपने के कारण पटियाला घराना या पंजाब घराना कहलाया । इसकी उत्पत्ति तानरस खाँ से बताई गई है जिनके शिष्यों में कालूमियाँ, अलीबख्श, नबीबख्श और फतेहअली का नाम लिया जाता है । अलीबख्श और फतेहअली की जोड़ी 'अलिया-फत्तू' की जोड़ी के नाम से प्रसिद्ध हुई । अलीबख्श के पुत्र स्व० उस्ताद बड़े ग़ुलाम अली खाँ ने पटियाला घराने का नाम रोशन किया जो अलीबख्श के पुत्र और स्व० फतेहअली के वंशज थे । पटियाला घराने में बड़े ग़ुलाम अली के शिष्यों में प्रमुख हैं उनके सुपुत्र मुनक्वर अली खाँ, प्रसून बनर्जी, मीरा बनर्जी और पाकिस्तान वाले ग़ज़ल मायक ग़ुलाम अली । बड़े ग़ुलाम अली को अपने चाचा काले खाँ से पहले सारंगी और फिर खयाल गायन की शिक्षा मिली ।

पटियाला या पंजाब घराने की विशेषतायें :—

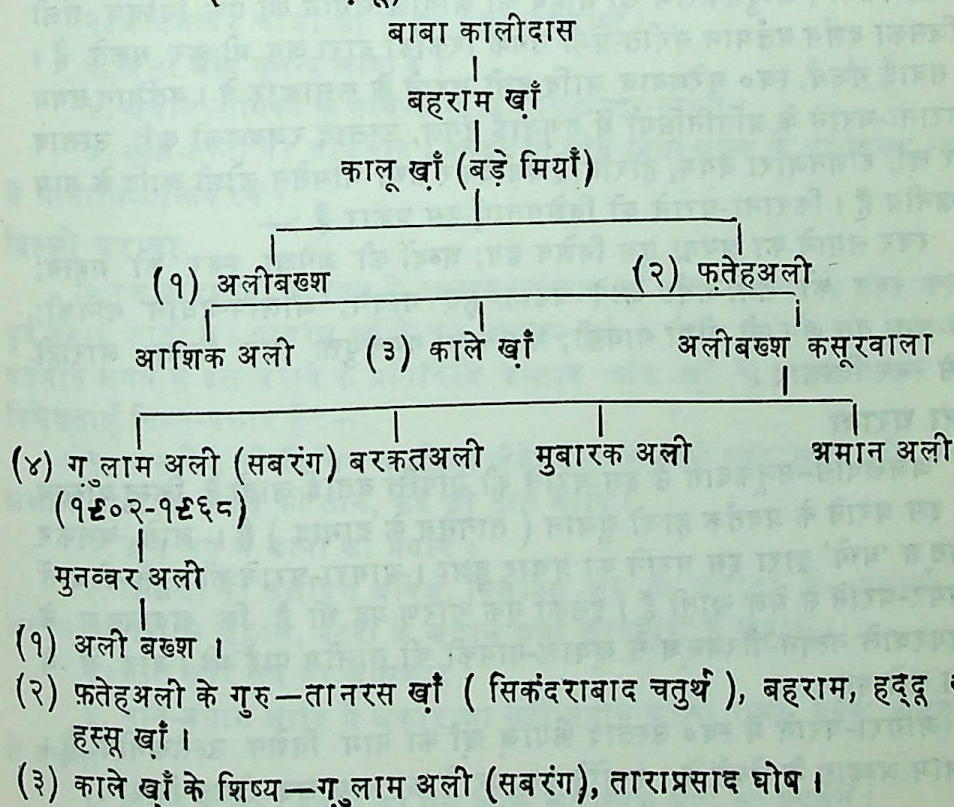
१. रचनाओं में रंगीनी एवं चपलता ।



२. अलंकारिक वक्र तथा फिरत की तानों का प्रयोग ।
३. छोटे छयालों की कलापूर्ण बन्दिशें ।
४. गायन में पंजाब का अंग या टप्पा-शैली का रंग ।
५. तैयार तानों का अधिक प्रयोग और ठुमरी गायन में दक्षता ।

कला के हर क्षेत्र में प्रायः उद्देश्य एक ही होता है लेकिन नया सृजन और नई अभिव्यक्तियाँ सदैव अस्तित्व में आती रहती हैं। भारतीय संगीत के विभिन्न घरानों में भी यही हुआ है। प्रत्येक गुरु से उपलब्ध शिक्षा को शिष्य ने अपनी निजी विशेषताओं का समावेश करके उसे और अधिक लोकप्रिय बनाया है जिसके ज्वलन्त उदाहरण के रूप में हम वर्तमानकाल के उन सभी कलाकारों को ले सकते हैं जिन्होंने घराने की स्मृति समाप्त करके अपने निजी व्यक्तित्व की छाप अधिक छोड़ी है। इनमें कुमार गन्धर्व (गायन), पं० रविशंकर (सितार), पं० शिवकुमार शर्मा (सन्तूर), पं० हरिप्रसाद चौरसिया (बाँसुरी), उदयशंकर (नर्तक), उ० जाकिरहुसैन खाँ (तबला), उ० बिस्मिल्लाह खाँ (शहनाई), श्रीमती एन० राजम् (वाँयलिन), उ० अली अकबर खाँ (सरोद) और पं० रामनारायण (सारंगी) जैसे नाम लिए जा सकते हैं।

### पंजाब घराना (अलिया फ़त्तू)





४. गुलामअली के शिष्य—प्रसूनकुमार बंधोपाध्याय, मीरा बंधोपाध्याय, शैलेन्द्रनाथ बंधोपाध्याय-शिष्या-रमा दत्त, संध्या मुखोपाध्याय ।

## पंजाब या पटियाला घराना

सद्दु हुसैन बख़्श

(१) फ़कीर बख़्श

(२) कादिर बख़्श

[डुक्कर (दुग्गर) बाज]

(१) फ़कीर बख़्श के शिष्य—फ़िरोज़ खाँ । (२) कादिर बख़्श के शिष्य—अल्लारखा शिष्य—शंखधर, लाल मुहम्मद साहब ।

विशेषताएँ :—१. स्वरों के लगाव अनपेक्षित, उत्कंठावर्धक एवं चमत्कारपूर्ण ।  
२. चमत्कार की सृष्टि ।

## किराना घराना

इस घराने का सम्बन्ध प्रसिद्ध बीनकार बंदेअली खाँ से बताया जाता है। स्व० अब्दुलकरीम खाँ तथा अब्दुलवहीद खाँ ने इस घराने की ख्याति बढ़ाकर इसे प्रतिष्ठित किया । अब्दुलकरीम खाँ साहब की आवाज़ लगाने की एक विचित्र शैली थी, जिसका दर्शन वर्तमान संगीत-प्रेमी उनके रिकॉर्डों द्वारा अब भी कर सकते हैं। स्व० सवाई गंधर्व, स्व० सुरेशबाबू आदि इसी घराने के कलाकार थे । वर्तमान समय में किराना-घराने के प्रतिनिधियों में गंगूबाई हंगल, उस्ताद रजबअली खाँ, उस्ताद अमीर खाँ, रोशनआरा बेगम, हीराबाई बड़ोदेकर तथा भीमसेन जोशी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । किराना-घराने की विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

स्वर लगाने का अपना एक विशेष ढंग; शब्दों की अपेक्षा स्वर को महत्व; एक-एक स्वर को शनैः-शनैः आगे बढ़ाते हुए गायन; आलाप-प्रधान गायकी; ठुमरी-अंग; तत अंग की धीमी गायकी; मीड़ तथा गमकयुक्त तान क्रिया; आरोही क्रम से स्वर विस्तार ।

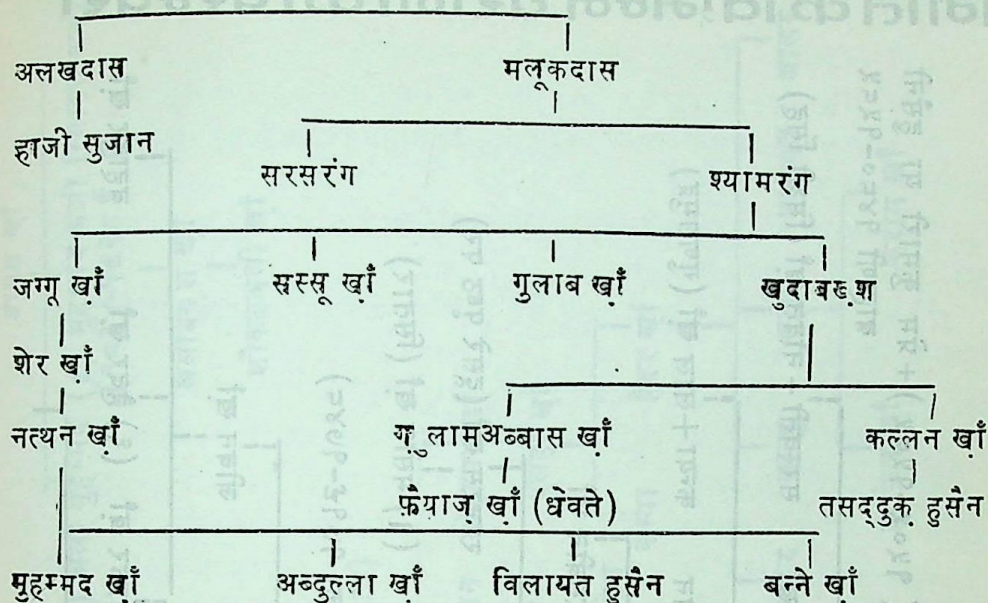
## आगरा घराना

अलखदास-मलूकदास से इस घराने की उत्पत्ति बताई जाती है, किन्तु वास्तव में तो इस घराने के प्रवर्तक हाजी सुजान ( तानसेन के दामाद ) हैं । आगे चलकर खुदाबख़्श 'घग्गे' द्वारा इस घराने का प्रचार हुआ । आगरा-घराने की बहुत-सी बातें ग्वालियर-घराने से मेल खाती हैं । इसका एक कारण यह भी है कि खुदाबख़्श ने ग्वालियरवाले नत्थन-पीरबख़्श से खयाल-गायकी की तालीम पाई थी । बाद में वे आगरा चले गए ।

आगरा-घराने में स्व० उस्ताद फ़ैयाज़ खाँ का नाम विशेष उल्लेखनीय है । ये गुलाम अब्बास के धेवते थे । इन्होंने इस घराने का नाम खूब रोशन किया ।



## आगरा घराना



आगरा-घराने की विशेषताएँ :--

१. नोमतोम में आलाप ।
२. बंदिशदार चीजों का गायन तथा लयकारी ।
३. खुली और बुलन्द आवाज़ ।
४. खयाल-गायकी के साथ-साथ ध्रुवपद-धमार-गायन ।
५. बोल-तानों पर अधिकार । शब्दों को तोड़े बिना काव्य के अर्थानुरूप स्वरों से भावाभिव्यक्तिकरण ।

## दिल्ली घराना

मुग़ल बादशाहों के पतन के पश्चात् तानरस खाँ द्वारा इस घराने की स्थापना हुई बताई जाती है । तानरस खाँ के पुत्र उमराव खाँ ने इस घराने को बढ़ाया । वर्तमान समय में इस घराने के प्रतिनिधि उस्ताद चाँद खाँ बे । इस घराने की विशेषताएँ निम्न-प्रकार हैं :—

१. तान लेने की विचित्र पद्धतियाँ जैसे-जोड़-तोड़ की तान, झूला की तान, शकोले की तान, उखेड़ की तान, फंदे की तान आदि ।
२. द्रुत लय में तानों का प्रयोग ।
३. खयालों की कलापूर्ण बंदिशें, विलंबित लय के खयालों में--पालकी के खयाल, सवारी के खयाल, पटरी के खयाल तथा खानापूरी के खयाल ।
४. ताल और लय पर अधिकार ।
५. तान-बंधान आदि में अकार का सही प्रयोग करना तथा उसके अवगुणों से वचना ।
६. गायन में सुंदर स्वरों का मेल करके कलात्मक अंगों का प्रदर्शन ।



## संगीत के विभिन्न घरानों की परम्परा

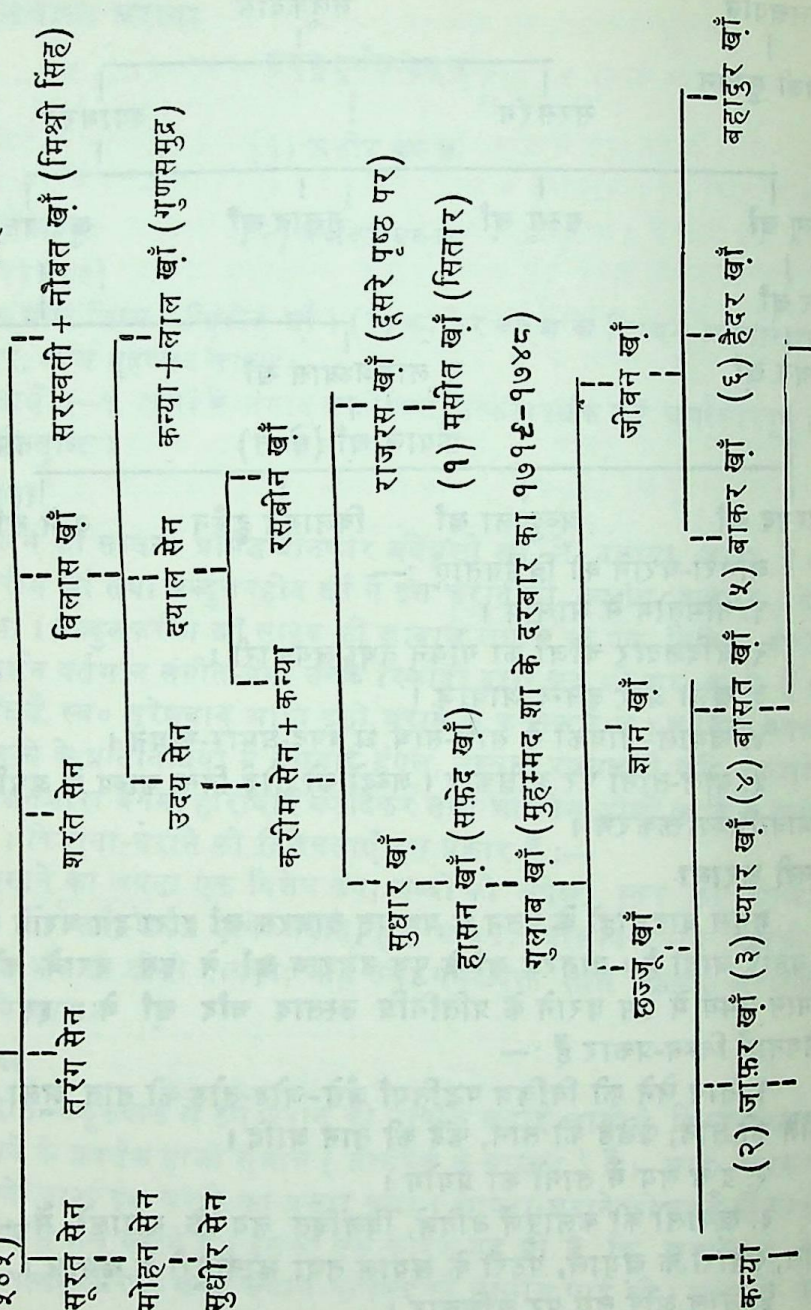
## १. तानसेन-वंशावली

मकरंद या मकुन्द पांडे

## हरिदास के शिष्य—राम

(XOXO-05286)

म कुमारी या हुसैनी  
ब्राह्मणी १४८०-१५८५





(७) बहादुर सेन      जांफर खाँ      बासत खाँ

काजम अली (११) सादिक अली अहमद अली (१२) निसार अली (८) अली मुहम्मद (६) मुहम्मद अली रियासत अली (१८३४-१८२८ ई०)

(१४) कासिम अली      कन्या + अमीर खाँ      अलीबख्श खाँ      शौकत अली खाँ

राजरस खाँ

(१) मसीत खाँ (सितार-सूडा)

सुखसेन      नूरसेन      बहादुरसेन      मोहम्मद खाँ

गुलाम सेन      सुखसेन      दुलहा खाँ

हस्यु सेन      रहीम सेन      कन्या      हैदर खाँ

सत्तम सेन

न्यामतसेन      लालसेन      (१०) अमृतसेन      कन्या +      वजीर      अज्जु      मम्मु      सलावत      आलम

निहाल सेन      (१३) अमीर खाँ      हाफिज खाँ      करीम खाँ

कन्या      कन्या      फ़िदाहसेन      फ़ज़लहसेन



(१) मसीत खाँ (सितार-सृष्टा) — गुलाम रजा ।

(२) जाफर खाँ-बहादुरसेन (७) महाराज विश्वनाथसिंह (रीवाँ)

(३) प्यार खाँ-आनंदकिशोर (बेतिया), गुरुप्रसाद मिश्र-शिष्य लक्ष्मीनारायण बाबाजी सुरेन्द्रनाथ मजूमदार ।

(४) बासत खाँ-कासिमअली १४. नियामतुल्ला खाँ (सरोद), राजा हरकुमार ठाकुर, राणाघाट के पाल चौधरी ।

(५) हैदर खाँ-नवाब अली नकी खाँ, (वाजिद अलीशाह के दीवान), हैदर खाँ बेतिया-घराना के प्रवर्तक ।

(६) बहादुर खाँ-गदाधर चक्रवर्ती (विष्णुपुर) ।

(७) बहादुरसेन-इनायतहुसैन, अलीहुसैन, वजीर खाँ (रामपुर), गुलाम नवी खाँ (शोरी), नवाब हैदरअली (रामपुर), पन्नालाल वाजपेयी (सितार), बुनियाद हुसैन खाँ (ध्रुपद और खयाल), मजरू खाँ (सरोद), मुहम्मद हुसैन (बीन) ।

(८) अली मुहम्मद खाँ-तारा प्रसाद घोष, नन्हे खाँ, पन्नालाल जैन, प्यारे नवाबखाँ (पटना), वैद्य अर्जुनदास, मिठाईलाल (वाराणसी)-शिष्य शिवेन्द्र नारायण, वसुमानि (संतु बाबू)-शिष्य एलन दान्यालु, श्रीपद बन्धोपाध्याय, मोर साहब (जलंधर), राजा सर सौरींद्र मोहन ठाकुर, राम सेवक मिश्र ।

(९) मुहम्मद अली कनाई लाल टेंडी (गया), गिरिजा शंकर चक्रवर्ती, ठाकुर नवाब अली खाँ-शिष्य कादिर बख्श (मुंशिदाबाद), नवाब सादतअली खाँ, (छम्मन साहब)-शिष्य सलामत खाँ नवाब हामिदअली (रामपुर), बिहारीलाल पंडा (गया), बीरेन्द्रकिशोर राय चौधरी (रबाब, सुरशृंगार), शौकत अली खाँ (रबाब, सुरशृंगार)

(१०) अमृतसेन-सुदर्शनचार्य शास्त्री (सितार) ।

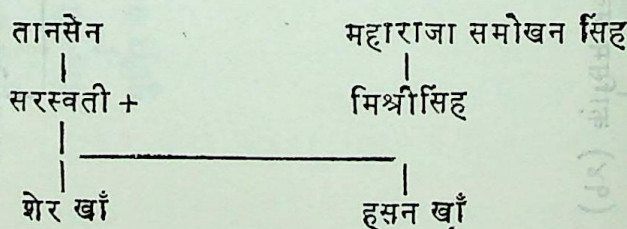
(११) सादिकअली-चिन्तामणी बापुली (सुरशृंगार), पन्नालाल वाजपेयी (सितार), महेशचन्द्र सरकार (बीन) ।

(१२) निसार अली-वजीर खाँ (बीन, रबाब, सुरशृंगार) रामपुर, पन्नालाल वाजपेयी (वादक) — शिष्य जीवनलाल महाराज, वैद्य अर्जुनदास ।

(१३) अमीर खाँ-बरकतुल्ला खाँ (सितार) ।

(१४) कासिम अली-यदु भट्ट ।

तानसेन का कन्या-वंश





हसन खाँ

हुसेन खाँ

वाजिद खाँ

नजीर खेसाल खाँ

लाल खाँ

(१) नियामत खाँ (सदारंग)

(१) नियामत खाँ (सदारंग)

फ़िरोज़ खाँ (अदारंग)

भूपत खाँ (महारंग)

जीवनशाह

प्यार खाँ (अंगली कट)

छोटा नौबत खाँ (रसबीन खाँ रंगारंग) (२) निमल शाह

तानसेन के वंश के (३) उमराव खाँ

कन्या

(१४) कासिम अली की बहन ;

(४) अमीर खाँ

(५) रहीम खाँ

(६) वाजिर खाँ (१८६१-१८२६ ई.) फ़ैयाली खाँ (फ़ैयद अली)

नाजीर खाँ

नासीर खाँ

(७) सगीर खाँ

शम्सुत खाँ

(८) दबीर खाँ (१८०२)

दिलदार खाँ

## २. तानसेन के कन्यावंश के शिष्य

(१) सदारंग-कव्वाल बालकद्वय, मुहम्मद खाँ, हद्दू खाँ, हस्सूखाँ, नत्थूखाँ के पूर्वपुरुष ।

(२) निमलशाह-उमराव खाँ, जाफ़र खाँ, नत्थन पीर बरुश ( मक्खन खाँ ), प्यार खाँ, बन्हे अली खाँ (बासत खाँ), मुसरंफ़ खाँ के पूर्व-पुरुष, मुराद खाँ, सक्कर खाँ, साहबदाद हुसैन खाँ (इमदादखानी घराना)

(३) उमराव खाँ-कुतुबबरुश (कुतुबुदौला), गुलाम मोहम्मदखाँ और उनके पुत्र, सज्जाद मुहम्मद खाँ, हशमत जंग (बाँदा के नवाब)



४. अमीर खाँ फ़िदाहुसैन खाँ (रबाब, सरोद), बुनियाद हुसैन (ध्रुपद, होरी), महम्मद हुसैन (बीन)

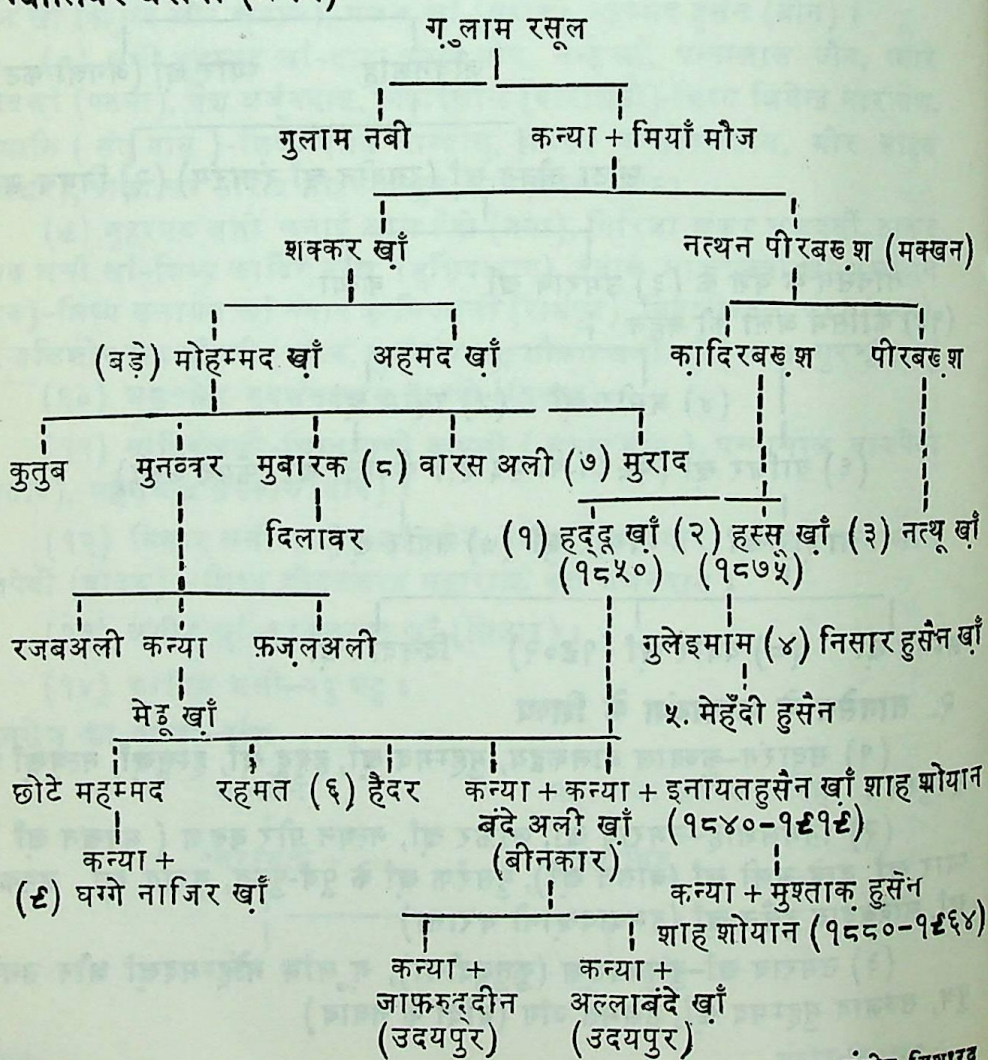
५. रहीम खाँ-असगर अली खाँ (सरोद), वजीर खाँ (बीन) ।

६. वजीर खाँ-अब्दार् रहीम (सितार), अल्लाउद्दीन खाँ (सरोद), ताराप्रसाद घोष (ध्रुपद) नवाब हामिद अली (रामपुर), नासिर अली (सुरबहार, सितार), प्रमथनार्थ वन्द्योपाध्याय (रुद्रवीणा), मोहम्मद हुसैन (बीन), यादवेन्द्र महापात्र (हारमोनियम), हाफिज़ अली (सरोद)।

७. सगीर खाँ-क्षेमेन्द्र मोहन ठाकुर, ज्ञानप्रकाश घोष, वीणापाणि मुखोपाध्याय,  
वीरेन्द्र किशोर राय चौधुरी ।

८. दबीर खाँ -कालीदास सन्याल, क्षेमेन्द्र मोहन ठाकुर, जयकृष्ण सन्याल, जितेंद्र मोहन सेनगुप्त, ज्योतिष चंद्र चौधरी, डॉली दे, डॉ. तुणा पुरोहित पी-एच.डी. (बीन), डॉ. दीना राय पी-एच.डी. (बीन), नंदगोपाल विश्वास, विपिन चन्द्र दास, वीणापाणि मुखोपाध्याय, वीरेन्द्र किशोर राय चौधुरी ।

ग्वालियर-घराना (प्रथम)





(१) हद्दू खाँ के शिष्य-बालागुरु, शिष्य कृष्णराव तेलंग, गंगाधर राव तेलंग, ठाकुर जयदेव सिंह ।

(२) हस्सू खाँ के शिष्य-विश्वेश्वर मुखोपाध्याय (काशी), बालकृष्ण बुआ, इचल करंजीकर, साहब दाद हुसैन खाँ (इमदादखानी-घराना) हद्दू खाँ और हस्सू खाँ के भी शिष्य ।

(३) नत्थू खाँ के शिष्य-निसार हुसैन, लक्ष्मीकांत भट्टाचार्य (लखनऊ) ।

(४) निसार हुसैन के शिष्य-भाऊराव जोशी, रामकृष्ण बुआ वझे, शंकरराव पंडित, शंकरराव हरदेकर ।

(५) मेहँदी हुसैन के शिष्य-बलदेवजी (राजा भैया) पूंछवाले के पिता ।

(६) हैदर खाँ के शिष्य-लक्ष्मीनारायण बाबाजी-शिष्य नगेन्द्र नाथ भट्टाचार्य, राजेन्द्र नाथ घोष, चैतन्यदास बाबाजी ।

(७) मुराद खाँ के शिष्य-रामदास गोस्वामी, यदुराय, यदु भट्ट, यदुराय का शिष्य आशुराय, शिष्य डॉ० शिवकुमार बंधोपाध्याय ।

(८) वारिस अली के शिष्य-घग्गे नजीर खाँ ।

(९) घग्गे नजीर खाँ (मेवाती घराना) के शिष्य पं० नाथूलाल ।

#### ४. ग्वालियर-घराना (द्वितीय)

चिन्तामणि मिश्र-शिष्य नारायण शास्त्री-शिष्य वामन बुआ-शिष्य चंदन चौबे

१८७०-१९४७

लाल बुआ

देवजी बुआ-शिष्य केशव गणेश टेक्ने-  
केशव गणेश टेक्ने के शिष्य-  
रवीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय  
(सुरकार)

#### ५. सहसवान-घराना

|                                                                                             |                                                                                                         |                                                                                                        |
|---------------------------------------------------------------------------------------------|---------------------------------------------------------------------------------------------------------|--------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| (१) इनायत हुसैन १८४९-१९१६<br>(हद्दू खाँ के दामाद)<br> <br>कन्या + मुश्ताक हुसैन<br>(रामपुर) | (२) अली हुसैन<br>(बीनकार)<br> <br>कन्या + फ़िदाहुसैन (रंगीले-घराना)<br> <br>निसार हुसैन<br> <br>कन्या + | (३) महम्मद हुसैन हैदर खाँ<br>(बीनकार) १८५७-१९२७<br>१८५३<br> <br>वारिस हुसैन खाँ<br> <br>गुलाम मुस्तफ़ा |
|---------------------------------------------------------------------------------------------|---------------------------------------------------------------------------------------------------------|--------------------------------------------------------------------------------------------------------|



कल्याण खाँ [इनायात सैन के ज्येष्ठ चाचा का लड़का]

(४) इसहाक हुसैन मुश्ताक हुसैन कन्या + बाबू खाँ  
(रामपुर) १८८०-१९६४ (इनायात हुसैन के चाचा का लड़का)

इश्तियाक हुसैन कन्या + (५) अशफाक हुसैन (६) सबदर हुसैन (७) अवरार हुसैन

(१) इनायात हुसैन के शिष्य निसार हुसैन [रंगीले-घराना], बशीर खाँ, हाफिज़ खाँ, शिवसेवक मिश्र ।

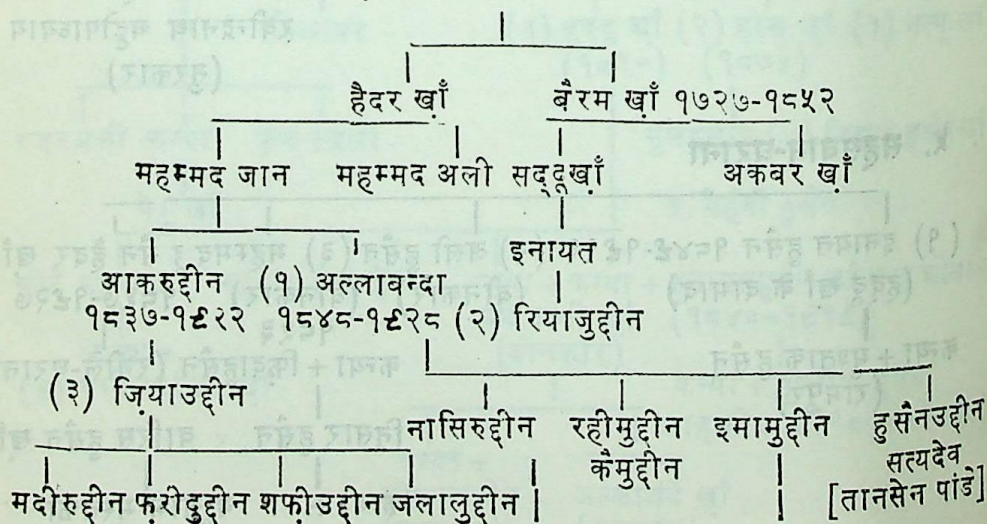
(२) अली हुसैन और ३. मुहम्मद हुसैन बीनकार-द्वय । दोनों ही [कुतुबख़ाश] कुतुबुद्दौला के जामाता । कुतुबुद्दौला वाजिद अली शाह के मन्त्री थे, बाद में रामपुर जाकर उमराव खाँ के शिष्य हुए । इनायात हुसैन, अली हुसैन और मोहम्मद हुसैन, तानसेन के वंशोद्भव [७] बहादुर खाँ से भी शिक्षा ली ।

(३) मुहम्मद हुसैन के शिष्य-पशुपति सेवक मिश्र, २. अली हुसैन के शिष्य गोपाल जय राजगीर ।

(४) इसहाक हुसैन-शिष्य-काशीनाथ चट्टोपाध्याय-शिष्य-अमरनाथ भट्टाचार्य पुलिन चन्द्र वंद्योपाध्याय, मनीन्द्र मोहन वंद्योपाध्याय [ मंटू बाबू ] (पुत्तन खाँ और उनके भाई मेहबूब खाँ [दरस पिया] के शिष्य) इन्होंने ५. अशफाक हुसैन, ६. सबदर हुसैन, ७. अवरार हुसैन और मुश्ताक हुसैन से भी शिक्षा प्राप्त की थी ।

## ६. उदयपुर--घराना

बाबा गोपालदास [इमाम खाँ] सम्राट् हुमायूँ के ज़माने में  
नायक हरिदास डागर की वंश-परंपरा में





आलिम    सालिंग    निजाम कयाम सैयद

(४) मैनुद्दीन (५) अमीनुद्दीन (७) ज़हीरुद्दीन फ़ैयाजुद्दीन  
(१६१६-१६६६) (१६२३)

रज़िया    सालिम डागर    सलमा रानी  
(१६५५) (१६५७) (१६६०)

(१) अल्लाबंदे खाँ के शिष्य-इनायत हसन खाँ (सितार), सुरेन्द्रनाथ गांगुली (काशी)। अल्लाबंदे एवं उनके बड़े भाई ज़ाकिरुद्दीन ने प्रथम ग्वालियर एवं तृतीय किराना घराने के बंदे अली खाँ की दो कन्याओं के साथ विवाह किया।

(२) रियासुद्दीन एवं (३) ज़ियाउद्दीन के शिष्य।

(४) नासिर मोइनुद्दीन डागर-इन्होंने अपने छोटे भाई अमीनुद्दीन को शिक्षा दी। नासिर मोइनुद्दीन डागर के शिष्य निमाई चाँद बड़ाल, गंगादास खँवर।

(७) ज़हीरुद्दीन के शिष्य-अनिमा दास गुप्त।

(८) तानसेन पांडे के शिष्य-केतकी घोष, निमाई चाँद बड़ाल।

## ७. जयपुर-घराना

‘मनरंग’ वंशज  
महम्मद अली खाँ  
हररंग

उशशक अली

मोहम्मद अली

मोहम्मद अली के शिष्य-पंडित विष्णुनारायण भातखंडे

## ८. आगरा-घराना

अलक दास    खलक दास    लवंग दास    मलक दास

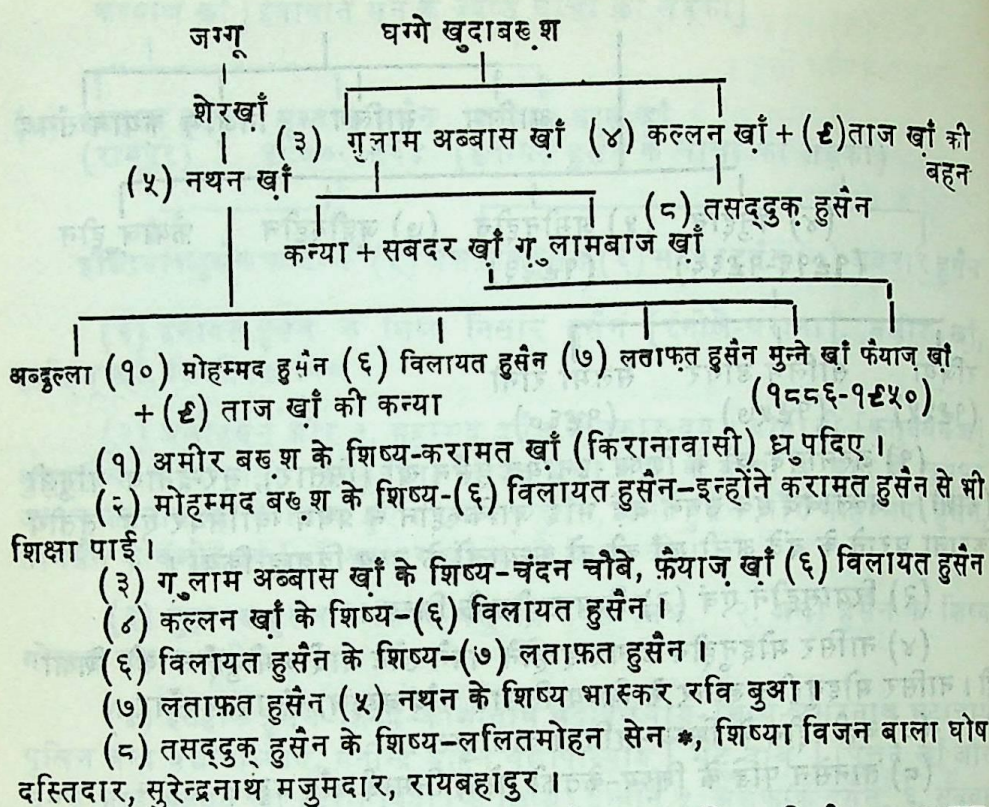
हाजी सुजान खाँ

सरसरंग

प्यामरंग

(१) अमीर बख़्श (२) मोहम्मद बख़्श  
जगू    सम्मु    गुलाब    घग्मे खुदाबख़्श

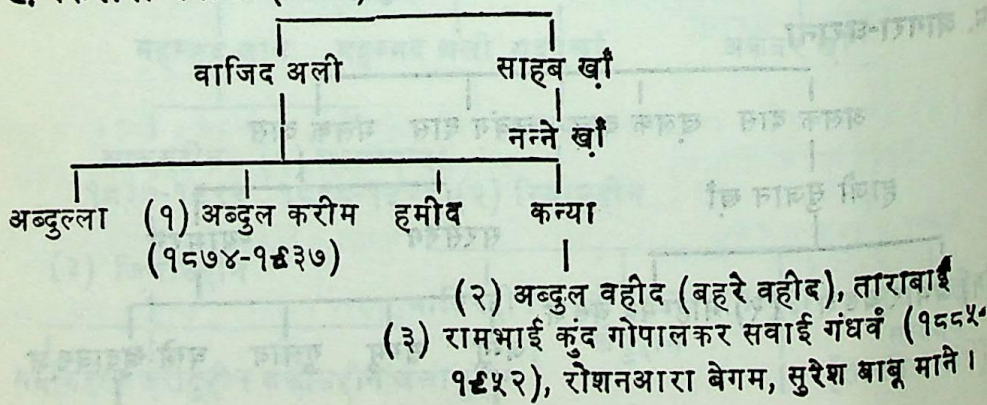




(१०) मोहम्मद हुसैन के शिष्य-बिस्मिल्लाह खाँ (शहनाई)।

\* ललितमोहन सेन और सुरेन्द्रनाथ मजुमदार के गुरु तसद्दुक् हुसैन वाराणसी एवं मटिया-बुर्जवासी स्वतंत्र व्यक्ति; कल्लन खाँ के पुत्र (८) तसद्दुक् हुसैन की शिष्या दीपाली नाग चौधरी। पूर्वोक्त तसद्दुक् हुसैन का कोई परिचय नहीं मिला। कुछ दिन वे नेपाल में भी रहे थे।

#### ६. किराना-घराना (प्रथम)





१. अब्दुल करीम के शिष्य २. अब्दुल वहीद, गणेशरामचन्द्र बहरे (बहरे बुआ)  
जन्म १८६० ।

२. अब्दुल वहीद की शिष्या-हीराबाई बड़ोदकर ।

३. रामभाई कुन्द गोपालकर के शिष्य-गंगूबाई हंगल, वासवराज राजगुरु,  
भीमसेन जोशी, सरस्वती बाई राणे ।

## १०. किराना-घराना (द्वितीय)

भास्कर राव बुआ  
(१८६६-१९२२)

हीराबाई

ताराबाई

(१) सुरेश बाबू माने (२) हीराबाई बड़ोदकर (३) सरस्वती बाई राणे  
(१९०७)

(१) सुरेश बाबू माने के शिष्य  
वासवराज राजगुरु

(२) हीराबाई बड़ोदकर की शिष्या  
(३) सरस्वती बाई राणे

माणिक वर्मा

(२) हीराबाई बड़ोदकर

## ११. किराना-घराना (तृतीय)

बंदे अली खाँ (बीनकार) १८३०-१८६०  
+ हद्दू खाँ की कन्या

कन्या + जाकिरुद्दीन (उदयपुर)

कन्या + अल्लाबंदे (उदयपुर)

बंदेअली खाँ तानसेन के कन्यावंशज

निर्मलशाह बीनकार के शिष्य एवं

वाद्य संगीत में किराना घराने के

प्रतिष्ठाता

बंदे अली खाँ के शिष्य-अब्दुल अजीज खाँ (विचित्र वीणा), इमदाद खाँ  
(इमदादखानी घराना), वहीद खाँ (बीनकार), चुन्नाबाई (बाद में बंदे अली खाँ की  
द्वितीय पत्नी)

जोहरा बाई बलवंतराव और उनके बड़े भाई ।

१. भैया साहब गणपत राव (गवालियर की चंद्रभागा बाई के पुत्र), मंगलू खाँ  
और उनके पुत्र ।



(२) मुराद खाँ (सितार), रजबअली (ध्रुपद, खयाल, वीणा), रहीम खाँ (वीन)

(३) शंभू ।

(४) हैदर बख्श (सारंगी) जमालुद्दीन-पुत्र आबिद हुसन (वीनकार) शिष्य—  
विमल मुखोपाध्याय ।

(१) भया साहब गणपत राव के शिष्य-गौहरजान बाई (कलकत्ता), गिरिजा  
कर चक्रवर्ती, गफ़र खाँ, जंगी, प्यारे साहब (मटिया बुर्ज), बड़ी मोती बाई  
(काशी), बशीर खाँ (हारमोनियम), मलिका जान (आगरा) ।

(२) मुराद खाँ के शिष्य-बाबू खाँ (सितार)-शिष्य अब्दुल हलीम जाफ़र खाँ ।

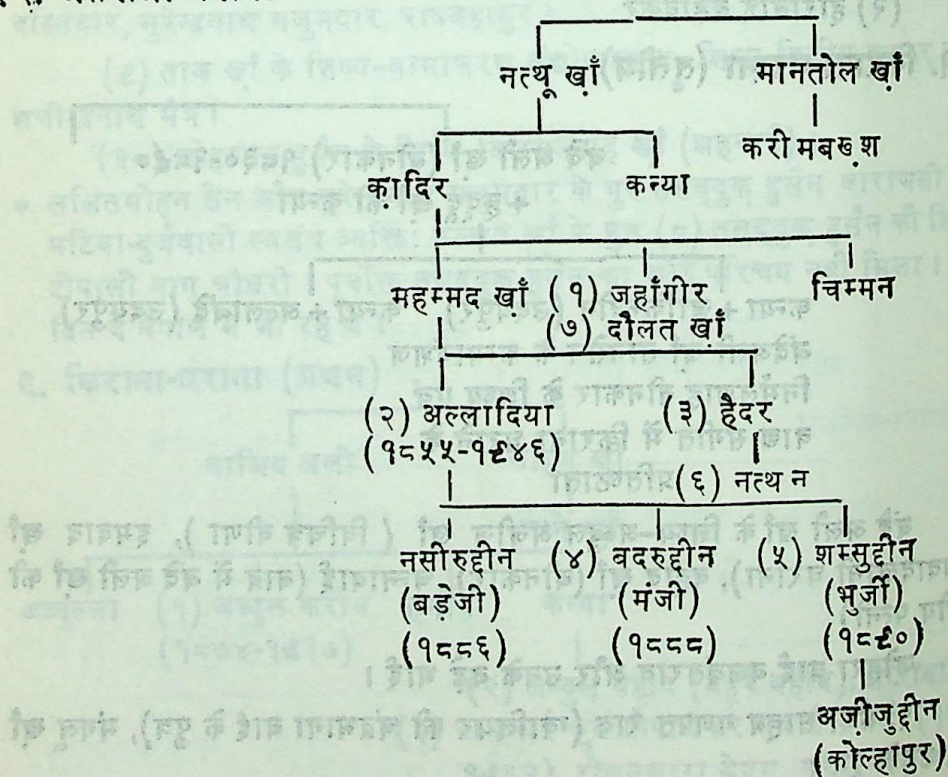
(३) शंभू खाँ के शिष्य-(६) अमान अली, अमीर खाँ (खयालिया) (शंभू खाँ  
के पुत्र) शिष्य ए. कानन, पूरबी मुखोपाध्याय, प्रद्युम्न मुखोपाध्याय, सुनीलकुमार  
वन्दोपाध्याय, रसूलन बाई (काशी) ।

(४) हैदर बख्श के शिष्य-वहीद खाँ (खयाल) एवं उनके बड़े भाई रजब अली

(५) मौजुद्दीन खाँ (ठुमरी), श्यामलाल क्षेत्री-शिष्य डॉ. अमीथनाथ सन्याल,  
शिष्या-रेवामुहुरी ।

(६) अमान अली के शिष्य-अमीर खाँ (खयालिया) (शंभू खाँ के पुत्र),  
शिवकुमार शुक्ल, मौजुद्दीन के शिष्य-नन्दलाल (शहनाई), बड़ी मोती बाई, शेर  
अली, सिद्धेश्वरी बाई ।

## १२. अतरौली-घराना





(१) जहाँगोर खाँ के शिष्य-(२) अल्लादिया खाँ ।

(२) अल्लादिया खाँ के शिष्य-इनायत हुसैन खाँ (सितार), केसरबाई केरकर, गोबिन्द बुआ शालिग्राम, शिष्या पद्मावती गोखले, दिलीपचन्द्र वेदी, (६) नत्थू खाँ, बरकतुल्ला खाँ (सितार), मोगू बाई-शिष्या किशोरी (कन्या), कौशल्या मंजेश्वर ।

(४) मंजी खाँ के शिष्य-मालिकार्जुन मंसूर ।

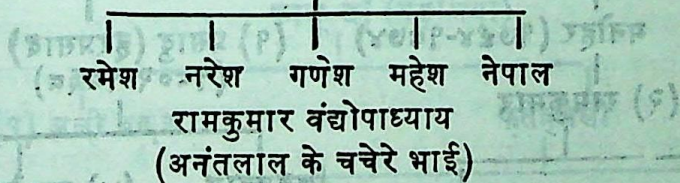
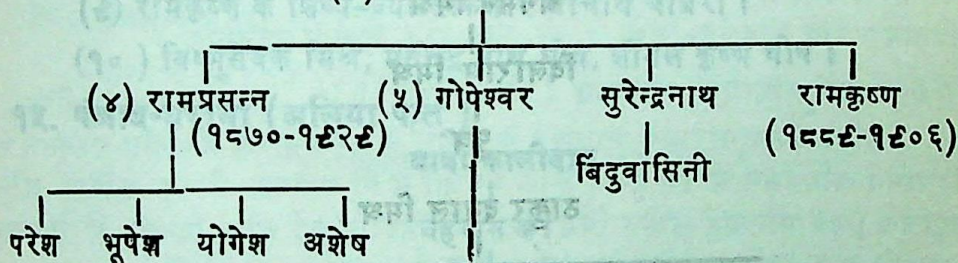
(५) भुर्जी खाँ के शिष्य-एम. एस. कर्नाटकर, दुर्गा बाई कुलकर्णी, मेनका बाई शिरोडकर ।

(७) दौलत खाँ के शिष्य-इनायत हुसैन खाँ ।

### १३. विष्णुपुर-घराना

तानसेन के वंशज (६) बहादुर खाँ-शिष्य गदाधर चक्रवर्ती ( विष्णुपुर आए ), उनके शिष्य-रामशंकर भट्टाचार्य, उनके शिष्य-१. अनंतलाल वंद्योपाध्याय, २. क्षेत्रमोहन गोस्वामी, ३. यदु भट्ट (१८३४-१८८०), रामकेशव भट्टाचार्य, केशवलाल चक्रवर्ती, दीनबन्धु गोस्वामी ।

(१) अनंतलाल वंद्योपाध्याय



श्रीपति चरण

सत्य किकर-शिष्य वीरेन्द्र मुखोपाध्याय

अभिनय कुमार

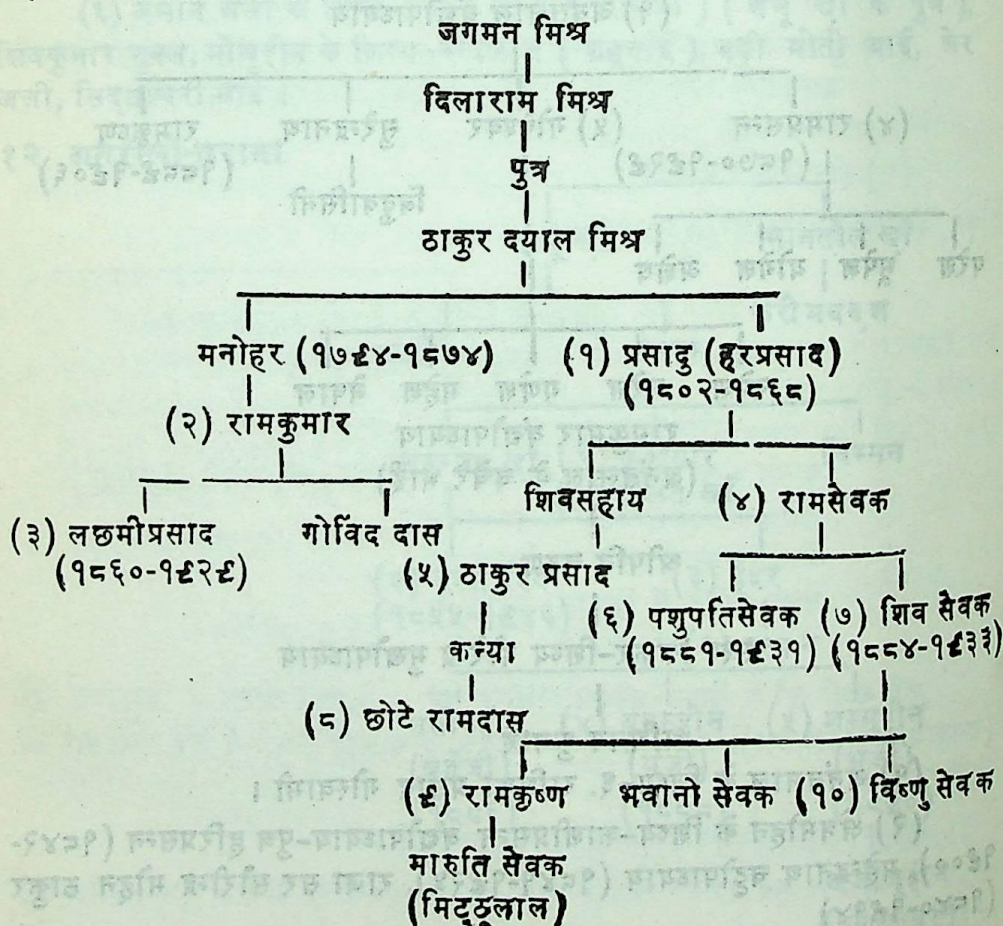
(१) अनंतलाल के शिष्य-६. राधिका प्रसाद गोस्वामी ।

(२) क्षेत्रमोहन के शिष्य-काशीप्रसन्न वंद्योपाध्याय-पुत्र हरिप्रसन्न (१८४२-१९००), महेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय (१८४१-१९२५), राजा सर सोरीन्द्र मोहन ठाकुर (१८४०-१९१४)



- (३) यदु भट्ट के शिष्य—हरिचरण कर्मकार  
 (४) रामप्रमन्न के शिष्य—अन्तुकृष्ण वंद्योपाध्याय, ६. गोकुलचन्द्र नाग (सितार)  
 गौरहरि कविराज  
 (५) गोपेश्वर के शिष्य—स्वामी प्रज्ञानानंद  
 (६) राधिकाप्रसाद के शिष्य—कादिर बख्श ( मुर्शिदाबाद ), गिरिजाशंकर  
 चक्रवर्ती, ज्ञानेंद्रप्रसाद गोस्वामी ( भाई का पुत्र ), महाराजा योगीन्द्र नाथ राय  
 ( नाटोर ), (७) महेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय (महिमा बाबू)  
 (७) महेन्द्रनाथ के शिष्य—भूतनाथ वंद्योपाध्याय, (८) योगीन्द्रनाथ वंद्योपाध्याय,  
 ललितमोहन मुखोपाध्याय  
 (८) योगीन्द्र मुखोपाध्याय के शिष्य—धीरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य, शिवदास मुखोपाध्याय,  
 (९) गोकुलचन्द्र नाग के शिष्य—विनोदकिशोर राय चौधरी, मणिलाल नाग  
 (पुत्र), (सितार) रविशंकर, सुरेन्द्रनाथ के शिष्य—नित्यानन्द अधिकारी ।

#### १४. बाराणसी-घराना





(१) प्रसाद (हरप्रसाद) ने गुलाबनबी (शोरी) के शिष्य-मियाँ गम्मु शादी खाँ से शिक्षा प्राप्त की।

(२) रामकुमार के शिष्य-कालीप्रसन्न घोष, चन्द्र वंदोपाध्याय, मधु वंदोपाध्याय, महेश वंदोपाध्याय, शंभु मुखोपाध्याय, सुरेन्द्रनाथ मजुमदार।

(३) लछमी प्रसाद के शिष्य-अनाथ बसु-शिष्य सुबोध नंदी, क्षेमैन्द्रमोहन ठाकुर, बूंदी मिश्र, माणिकलाल हालदार, सतीशचंद्र अर्णव।

(४) रामसेवक मिश्र के शिष्य-बूंदी मिश्र।

(५) ठाकुर प्रसाद मिश्र के शिष्य-(८) छोटे रामदास।

(६) पशुपति सेवक महम्मद हुसैन (सहसवान) बीनकार के शिष्य (७) शिवसेवक इनायत हुसैन (सहसवान) के शिष्य।

(७) शिवसेवक के शिष्य-नगेन्द्रचन्द्र लाहिड़ी, विजयदास पाकड़े (सितार), शिष्य-रविसेन, शिष्या-रेखासेन, महाराज कुमार शीतांशु कांत आचार्य, सुधीन्द्रनाथ मजुमदार।

(८) छोटे रामदास की शिष्या-सिद्धेश्वरी देवी।

(९) रामकृष्ण के शिष्य-ज्योतिकिशोर आचार्य चौधरी।

(१०) विष्णुसेवक मिश्र, मतोन्द्र नाथ घोष, शीतल कृष्ण घोष।

#### १५. पंजाब-घराना (अलिया फत्तू)

बाबा कालीबास

बहराम खाँ

कालू खाँ (बड़ेमिया)

(१) अली बख्श

फतेहअली

आशिक अली

(३) काले खाँ

अलीबख्श कसूरवाला

(४) गुलाम अली (सबरंग)

बरकत अली

मुबारक अली

अमान अली

(१९०२-१९६८)

मुनवर अली

(१) अली बख्श

(२) फतेहअली के गुरु-तानरस खाँ [सिकन्दराबाद चतुर्थे], बहराम, हद्दू खाँ,

हस्तू खाँ।



(३) काले खाँ के शिष्य गुलाम अली (बरंग), ताराप्रसाद घोष

(४) गुलाम अली के शिष्य-प्रसूनकुमार वंद्योपाध्याय, मीरा वंद्योपाध्याय, शैलेन्द्रनाथ वंद्योपाध्याय-शिष्य रमादत्त, संध्या मुखोपाध्याय

१६. विष्णु दिगंबर १८७२-१९३१

बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर के शिष्य-विष्णुदिगंबर

(ग्वालियर-घराना)

डी. वी. पलुस्कर (मृ० १९५५)

वसंतकुमार पलुस्कर

विष्णु दिगंबर के शिष्य—

अनन्त मनोहर जोशी-शिष्य-गजानन राव जोशी (पुत्र),——शिष्य-पार्श्वकर

ए. टी. हल्लेधर (पं०) नंदकिशोर-शिष्य-गोपालकृष्ण बी. जी., जोग,

शिष्या शिशिर कणाधर चौधरी,

ओंकारनाथ ठाकुर-शिष्या डा० प्रेमलता शर्मा,

नारायण राव व्यास,

बी. आर. देवधर,

विनायक राव पटवर्धन-शिष्य जे. बी. एस. राव, सुनन्दा पटनायक

१७. विष्णु नारायण भातखंडे (१८६०-१९३६)

पंडित विष्णुनारायण भातखंडे के प्रयास से समूचे भारत में संगीत-सम्मेलन के नियमित अधिवेशन आरंभ हुए। उनके प्रयासों से ही लखनऊ मैरिस कॉलेज ऑफ़ म्यूज़िक (अब भातखंडे संगीत विद्यापीठ) की स्थापना हुई और दिल्ली में नेशनल एकेडेमी ऑफ़ म्यूज़िक प्रतिष्ठित हुई।

भारतवर्ष के विभिन्न उस्तादों से स्वरलिपि-सहित अनेक गायन संग्रह कर छह खण्डों में 'क्रमिक पुस्तक मालिका' का प्रकाशन किया एवं प्राचीन शास्त्रों की गवेषणा व अध्ययन कर 'अभिनव राग मंजरी' तथा 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' (दोनों संस्कृत) ग्रंथों की रचना छद्म नाम 'चतुर पं.' से की। इन दोनों ग्रंथों के टीका-स्वरूप चार खण्डों में 'हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति' की रचना की। उनके शेषोक्त ग्रन्थ की प्रतिपादित वस्तु के सम्बन्ध में शास्त्रज्ञों में काफी मतभेद है।

छद्मनाम—चतुर पंडित, 'विष्णु शर्मा' एवं आजकल 'मंजरीकार' नाम प्रचलित हुआ है।

भातखंडे के गुरु—तानसेन-वंशज निसार अली, शिष्य-पन्नालाल वाजपेयी उनके शिष्य जीवनलाल महाराज तथा उनके शिष्य—

(१) सेठ वल्लभदास दमलजी, अली हुसैन (सहसवान) बीनकार के शिष्य

(२) गोपाल जयराजगीर

(३) तानसेन-वंशज मुहम्मद अली (ध्रुवपद, रबाव)

(४) जयपुर के मोहम्मद अली (हररंग) और उनके दो पुत्र



- (५) आशिक अली एवं
- (६) अहमद अली
- (७) मोहम्मद हुसैन (आगरा)
- (८) विलायत हुसैन (आगरा)
- (९) रावजी बुआ बेलवागकर

### पंडित भातखण्डे के शिष्य--

वादीलाल शर्मा, रजिन्द्रलाल राय, राजा भैया पूंछ वाले, श्रीकृष्ण नारायण रातंजंकर, हेमेलाल राय ।

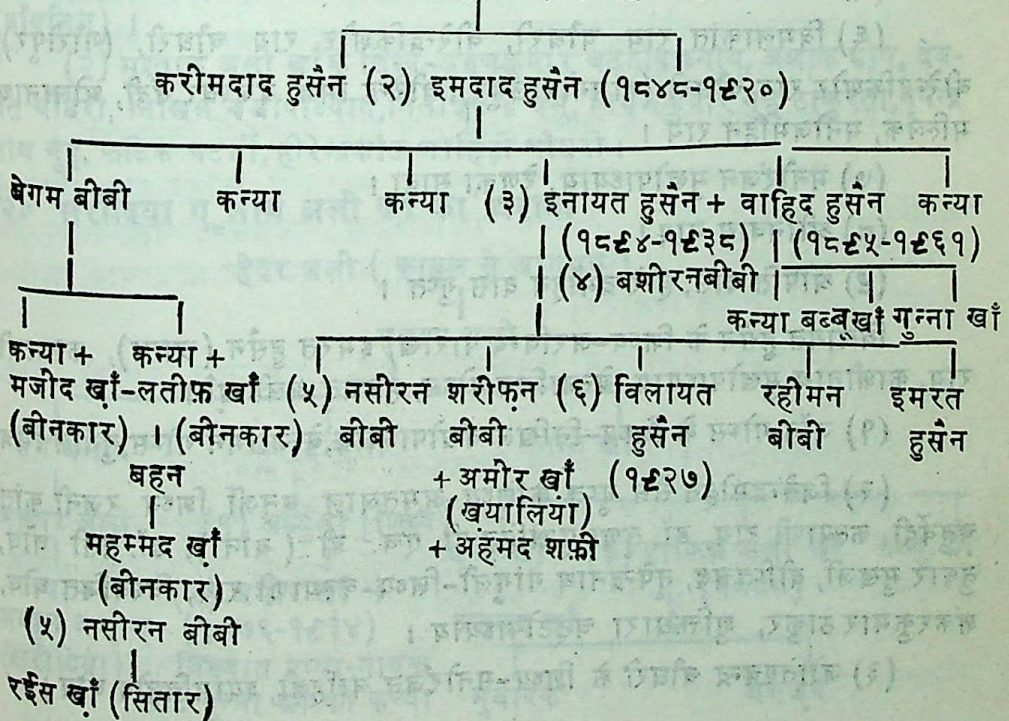
श्रीकृष्ण नारायण रातंजंकर-शिष्य कुमारेण वसु, क्षितीशचन्द्र वंद्योपाध्याय, गोपाल वंद्योपाध्याय, चिदानंद नागरकर, चिन्मय लाहिड़ी, नैनी गोपाल वंद्योपाध्याय, शिष्या-डॉ० तृणा पुरोहित पी-एच. डी. (वीन), सुनील वसु ।

चिन्मय लाहिड़ी के शिष्य-उमामित्र ( दे ), कालीपद दास, गौरचन्द्र बसाक, नीलरतन वंद्योपाध्याय, परवीन सुलताना, मीरा वंद्योपाध्याय, संध्या मुखोपाध्याय, सुधीश वंद्योपाध्याय ।

### १८. इमदादखानी घराना

इमदाद खाँ स्वयं घराना बन गये हैं । 'सुर और संगति' रचनाकार धुर्जटिप्रसाद मुखोपाध्याय के अनुसार—

#### १. साहबदाद हुसैन खाँ (हद्दू सिंह)





(१) साहबदाद खाँ के गुरु-नत्थू खाँ, निर्मल शाह, मियाँ मर्जि (?) हद्दू खाँ, हस्सू खाँ ।

(२) इमदाद हुसैन के गुरु-बंदे अली खाँ, रजब अली, सज्जाद, महम्मद खाँ ।

(३) इनायत हुसैन के गुरु-अल्लादिया खाँ, अल्ला बंदे खाँ, जाकिरुद्दीन खाँ, दीलत खाँ, सज्जाद मुहम्मद खाँ ।

(४) बशीरन ब्रीवी के पिता-खयालिया बंदे हसन खाँ (सहारनपुर), भ्राता-खयालिया जिंदा हसन खाँ (सहारनपुर) ।

### इमदादखानी घराने के शिष्य—

इमदाद हुसैन के शिष्य-डॉ. कल्याणी मल्लिक, डॉ. प्रकाशचंद्र सेन (इसराज) बृजेन्द्रकिशोर राय चौधरी, मम्मन खाँ (सारंगी) ।

इनायत हुसैन के शिष्य-अमियकांत भट्टाचार्य, क्षेमेन्द्रमोहन ठाकुर ।

(१) जॉन गोम्स ।

(२) जितेन्द्रमोहन सेन गुप्त ।

(३) ज्योतिषचन्द्र चौधरी (भवानीपुर), ज्ञानदाकांत लाहिड़ी चौधरी (कालीपुर), डॉ. कल्याणी मल्लिक, डॉ. प्रकाशचंद्र सेन ।

(४) ध्रुवतारा जोशी, नीरदाकांत लाहिड़ी चौधरी (कालीपुर) ।

(५) विपिनचंद्र दास ।

(६) विमलाकांत राय चौधरी, वीरेन्द्रकिशोर राय चौधरी, (गौरीपुर), वीरेन्द्रकिशोर राय चौधरी (रामगोपालपुर), वीरेन्द्र मित्र, बृजेश्वर नंदी, भोलानाथ मल्लिक, मनोजमोहन राय ।

(७) मनोरंजन मुखोपाध्याय, रेणुका साहा ।

(८) श्रीनिवास नाग ।

(९) श्रीपति दास, हीरेन्द्रमोहन दास गुप्त ।

विलायत हुसैन के शिष्य-अरविन्द पारीख, इमरत हुसैन (भ्राता), कल्याणी राय, कार्शीनाथ मुखोपाध्याय, बेन्जामिन गोम्स, हशमत अली खाँ ।

(१) जॉन गोम्स के शिष्य-निखिल बंधोपाध्याय, बेन्जामिन गोम्स, सुनील मित्र

(२) जितेन्द्रमोहन सेन गुप्त के शिष्य-अमृतलाल बनर्जी शिष्य रजनी कांत चतुर्वेदी, कल्याणी राय, डॉ. तृणा पुरोहित पी. एच. डी (बाँन), डॉ. सती घोष, तुषार मुखर्जी, दीप्तिचंद, नृपेन्द्रनाथ गांगुली-शिष्य-कल्याणी राय, विश्वजित घोष, शंकरकुमार ठाकुर, शुक्तिधारा चट्टोपाध्याय ।

(३) ज्योतिषचन्द्र चौधरी के शिष्य-मनोरंजन लाहिड़ी, श्यामविनोद घोष ।



(४) ध्रुवतारा जोशी के शिष्य—पुलिन विहारी देव बमन, विभूतिभूषण चट्टोपाध्याय (वाद्य विशारद) ।

(५) विपिनचंद्र दास के शिष्य—मतिलाल सरकार, यामिनीकांत पाल ।

(६) विमलाकांत राय चौधरी के शिष्य—अनिलकुमार वैरागी, उत्पल सरकार (वाद्य विशारद, संगीत प्रभाकर, संगीत अलंकार), एस० एन० गोर, कमलराय, काशीनाथ भट्टाचार्य, किशोरकांत बागची, कृष्णा सरकार, जी० जैकसैसून, दीपाली मल्लिक, दीपिका बोस, डॉ. तृणा पुरोहित (पी-एच. डी.), नाटू गोपाल मुखर्जी, निखिलेश भवानी, पृथ्वीश चंद्र भट्टाचार्य, फ्लोरेंस कॉक्रेन (फुलब्राइट स्कॉलरशिप), मतिलाल सरकार, मिनसि पाल, मीरा दे विश्वास, शुभकरन वच्छावत, रंजना राय राजगुह, संतोषकुमार मुखोपाध्याय—शिष्य—अरुणकुमार बसु मल्लिक, सुभाष चन्द्र, हीरेन्द्र राय ।

(७) मनोरंजन मुखोपाध्याय के शिष्य—चित्तरंजन मुखोपाध्याय (पुत्र) लक्ष्मी चक्रवर्ती ।

(८) श्रीनिवास नाग के शिष्य—अनिल राय चौधरी, काशी नाथ मुखोपाध्याय ।

(९) श्रीपति दास के शिष्य—दिलीप बसु ।

## १९. मुश्ताक अली खाँ (सितार)

सितारिया बरकतुल्ला खाँ के शिष्य—(१) आशिक अली खाँ, (२) मुश्ताक अली खाँ ।

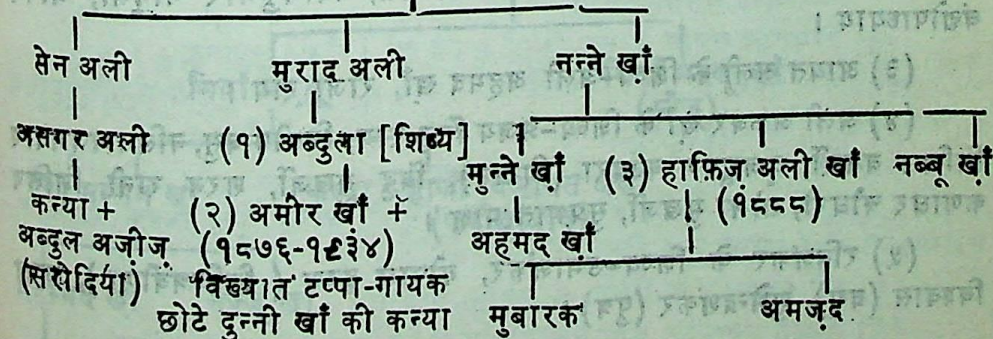
(१) आशिक अली के शिष्य—अमिय गोपालाभट्टाचार्य, गोपीनाथ गोस्वामी (बाँयलिन) ।

(२) मुश्ताक अली खाँ के शिष्य—अरुणकुमार चट्टोपाध्याय, अशोक घोष, देव-व्रत चौधरी, निखिल बंधोपाध्याय, नितार्चिन्द्र बसु, निर्मलकुमार गुह ठाकुरता, नृपेन्द्र नाथ गुह, फटिक चटर्जी, हीरेन्द्रकांत लाहिड़ी चौधरी ।

## २० सरोदिया गुलाम अली खाँ का घराना

हेदर अली (काबुल से आगमन)

गुलाम अली

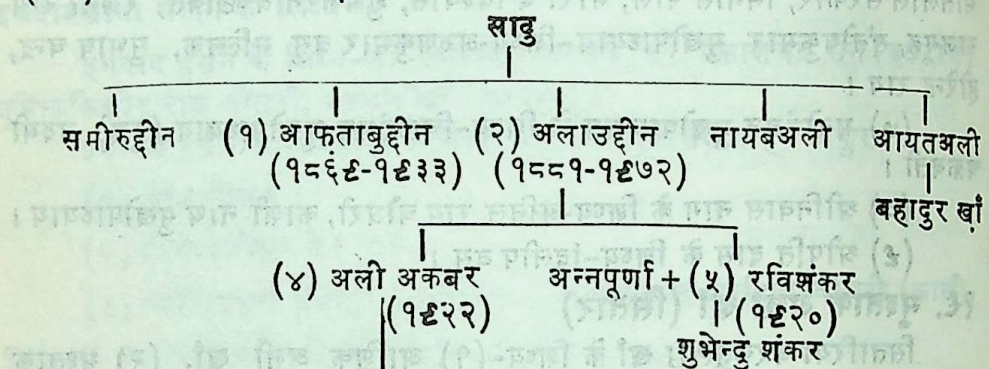




(१) अब्दुल खाँ के शिष्य-वीरेन्द्रकिशोर राय चौधरी, ब्रजेन्द्रकिशोर राय चौधरी  
 (२) अमीर खाँ के शिष्य-आशुतोष कुन्डु, कुमार जगतनाथ मित्र, तिमिरवरन भट्टाचार्य, नीरेन्द्र कृष्ण मित्र, पन्नालाल राय चौधरी, वाणीकुमार मुखोपाध्याय, विमलाकांत राय चौधरी, विश्वनाथ चक्रवर्ती, वीरेन्द्रकिशोर राय चौधरी, ब्रजेन्द्र किशोर राय चौधरी, राधिका मोहत मैत्र, शीतलचन्द्र मुखोपाध्याय ।

(३) हाफिज़ अली खाँ के अन्य गुरु-वजीर खाँ (रामपुर), गणेशीप्रसाद चौबे हाफिज़ अली खाँ के शिष्य-कुमार जगतनाथ मित्र, विषनचाँद बड़ाल ।

## (२१) सरोदिया अलाउद्दीन खाँ का घराना



आशीष ध्यानेश श्री(कन्या) प्राणश समरेश लाजवंती राजेश दिनेश शोभावती मीनू

(२) अलाउद्दीन खाँ के गुरु-अमृतलाल दत्त (हाबूदत्त), अहमद अली, वजीर खाँ (रामपुर), गोपालचन्द्र चक्रवर्ती (नूलो गोपाल) ।

(३) अलाउद्दीन खाँ, के शिष्य-अजय सिंह राय, अन्नपूर्णा (सुरबहार) ।

(४) अली अकबर खाँ आशीषखाँ, इन्द्रनील भट्टाचार्य, तिमिर बरन भट्टाचार्य, द्युतिकिशोर आचार्य चौधरी, निखिल वंद्योपाध्याय, पन्नालाल घोष-शिष्य-गौर गोस्वामी, वीन्द्रकिशोर राय चौधरी, मैहर महाराजा, ज्योतिन भट्टाचार्य, यामिनी कुमार चक्रवर्ती (संगीत विशारद) ।

(५) रविशंकर, राजा राय, शचीन्द्रनाथ दत्त, श्यामकुमार गांगुली, श्रीपद वंद्योपाध्याय ।

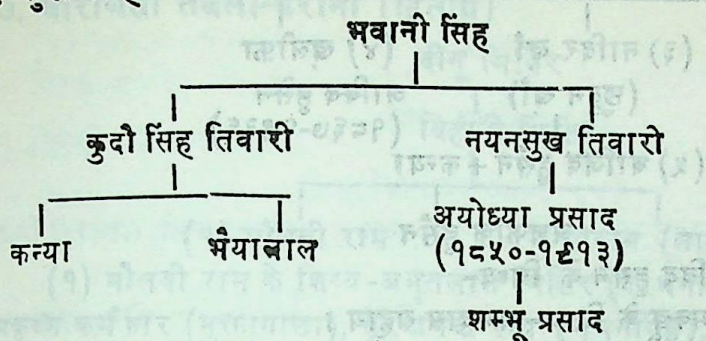
(३) आयत अली के शिष्य-अली अहमद खाँ, राजा राय ।

(४) अली अकबर खाँ के शिष्य-अजय सिंह राय, दिलीप बसु, नलिन मजुमदार निखिल बनर्जी, बृजभूषण काबरा (गिटार), बिंदु मुखर्जी, शरन रानी, शिशिर कणाधर चौधरी, शोला मुखर्जी, सुप्रभात पाल ।

(५) रविशंकर के शिष्य-उमाशंकर, गोपाल कृष्ण (विचित्रवीणा), जया विश्वास (बसु), शुभेन्द्रशंकर (पुत्र) ।



## २२. कुदौ सिंह पखावज-घराना



(१) कुदौ सिंह के शिष्य-मदमोहन ।

## २३. ग्वालियर का मुदंग-घराना

बाबा जोरावरसिंह

शुकदेव सिंह

पर्वतसिंह

माधीसिंह

## २४. नाना साहब पानसे पखावज-घराना

नाना साहब पानसे के शिष्य

सखाराम पन्त

अम्बादास पन्त

## २५. लखनऊ का तबला-घराना

सिद्दार खाँ (१३००)

कल्लू खाँ

मियाँ बख्शू

मियाँ मकबू खाँ  
(मोजू)

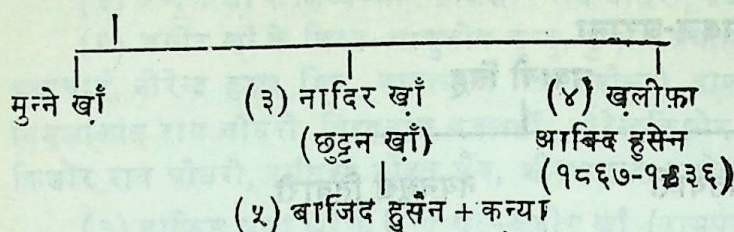
(२) मम्मन खाँ

कन्या + हाजी विलायत अली  
(फर्रुखाबाद)

महम्मद खाँ

नज्जू खाँ





अशफाक हुसैन

खलीफा आबिद हुसैन के शिष्य-

- (१) मियाँ मक्खू के शिष्य-रामदास सहाय ।
- (२) मम्मन खाँ के शिष्य-भैरों सहाय ।
- (३) छुट्टन खाँ के शिष्य-कृष्ण कुमार गांगुली (नाटू बाबू)
- (४) खलीफा आबिद हुसैन के शिष्य-अली कदर (मलिका जान कुलबुल के भाई)
- (५) बाजिद हुसैन, केशवचन्द्र बनर्जी रायबहादुर, क्षितीशचन्द्र लाहिड़ी, चुन्नीलाल गांगुली, देवीप्रसन्न घोष, बीरू मिसिर, मणीन्द्रमोहन बनर्जी (मंटू बाबू)-शिष्य महाराज बनर्जी (पुत्र), शिशिर शोभन भट्टाचार्य, हरेन्द्रकिशोर राय चौधुरी, हीरेन्द्रकुमार गांगुली ।

(५) बाजिद हुसैन के शिष्य-अनिल भट्टाचार्य

वाराणसी तबला-घराना (प्रथम)

(१) रामदास सहाय

(२) भैरों सहाय

(३) बलदेव सहाय

(५) कंठे महाराज

बहन

(४) दुर्गा सहाय (नन्ने)  
'सूरदास'

भगवती सहाय ननकू सहाय + कन्या

(६) किशन महाराज

(१८८३-१९२६)

शारदा सहाय

रामशंकर

अनिल पालित

—शिष्य वनमालीदास

- (१) रामदास सहाय के गुरु-मियाँ मक्खू खाँ (मौजू) लखनऊ ।
- (२) भैरों सहाय के शिष्य-अनोखेलाल-शिष्य-महापुरुष मिश्र-शिष्य-सच्चिदानंद मिश्र, पुत्र रामजी मिश्र, (४) दुर्गासहाय, प्रताप मिश्र, बीरू मिसिर ।
- (३) बलदेव सहाय के शिष्य-(५) कंठे महाराज ।
- (४) दुर्गा सहाय के शिष्य-कृष्णकुमार गांगुली, बाचा गुरु, बिककू महाराज, श्यामलाल जी (छम्मा गुरु) ।
- (५) कंठे महाराज के शिष्य-आशुतोष भट्टाचार्य ।
- (६) किशन महाराज, कृष्णकुमार गांगुली (नाटू बाबू), रामनाथ मिश्र



## २७. वाराणसी तबला-घराना (द्वितीय)

दीनू मिसिर

बिहारी मिसिर

(१) मौलवी राम मुन्शीराम (सारंगी)

(१) मौलवी राम के शिष्य-अमृतलाल मिसिर (दरभंगा), उपेन्द्रचन्द्र राय, रामकृष्ण कर्मकार (मुक्तागाछा), सुरेन्द्रचन्द्र राय (मैमनसिंह), हरेन्द्रकिशोर राय चौधरी (रामगोपालपुर) ।

## २८. वाराणसी तबला-घराना (तृतीय)

(१) प्रताप मिश्र

जगन्नाथ मिश्र

शिवसुन्दर

(२) बाचा गुरु

बलमोहन

(३) शाम्ता प्रसाद

(१) प्रताप मिश्र के गुरु-भैरों सहाय ।

(२) बाचा गुरु के गुरु-दुर्गा सहाय ।

(३) शाम्ता प्रसाद के गुरु-बीरू मिसिर ।

## २९. वाराणसी तबला-घराना (चतुर्थ)

(१) बूंदी मिश्र (तबला)

चमरू मिश्र

दुर्गा मिश्र

दामोदर मिश्र

(सारंगी)

(गायक)

(१) बूंदी मिश्र के गुरु-रामसेवक मिश्र, लछमी प्रसाद मिश्र, (ममेरा भाई), श्यामा प्रसाद मिश्र, बड़े चाचा ।

## ३०. फर्रुखाबाद तबला-घराना (प्रथम)

(१) हाजी विलायत अली

(२) हुसैन अली



(२) हुसैन अली

नन्ने खाँ

(३) मसीदुल्ला खाँ

(४) करामतुल्ला खाँ

(१) हाजी विलायत अली के शिष्य-इमामबख्श, मुबारक अली, सालारी मियाँ ।

(२) हुसैन अली के शिष्य-मुनीर खाँ ।

(३) मसीदुल्ला खाँ के शिष्य-आजिम खाँ-शिष्य-ज्ञानप्रकाश घोष, केदारनाथ हालदार, ज्ञानप्रकाश घोष, मणीन्द्रमोहन बनर्जी (मंटू बाबू), राईचौद बडाल, हरेन्द्र किशोर राय चौधुरी, हेमेन्द्रनाथ सरकार-शिष्य-विश्वनाथ दास ।

(४) करामतुल्ला के शिष्य-अनिलकुमार साहा, अनिल राय चौधुरी, विमल चट्टोपाध्याय, शंख चटर्जी ।

३१. (द्वितीय) फर्रुखाबाद तबला-घराना

काले खाँ

(१) मुनीर खाँ

(१८६३-१९३८)

कन्या + अहमद बख्श

(२) अमीर खाँ

(१) मुनीर खाँ के गुरु-गोली बख्श, हुसैन अली (फर्रुखाबाद) ।

(२) अमीर खाँ के शिष्य-आनन्द बोडस, निखिल घोष ।

(१) मुनीर खाँ के शिष्य-(२) अमीर खाँ, अल्ला मेहर, अहमद जान थिरकवा, गुलाम हुसैन, नजीर खाँ, निसार खाँ, बशीर खाँ, बाबा लाल, सादिक हुसैन, शम्सुद्दीन, सुब राव, हबीबुद्दीन खाँ-पुत्र सब्बन खाँ, हसन खाँ ।

३२. मौलाबख्श तबला-घराना

करम खाँ

रहीमबख्श

(१) मौलाबख्श

(१८७८)

(१) मौलाबख्श के गुरु-महम्मद हुसैन (मुरादाबाद)

३३. पंजाब तबला-घराना

सद्दुद्दुसैन बख्श

(१) फकीर बख्श

(२) कादिर बख्श



[ डुक्कर (दुग्गर) बाज ]

(१) फकीर बख्श के शिष्य-फ़िरोज़ खाँ ।

(२) कादिर बख्श के शिष्य-अल्लह रखा ।

शिष्य-शंखधर जी, लाल महम्मद साहब ।

### ३४. दिल्ली तबला-घराना

सिद्धार खाँ (१३९०)

बुगरा खाँ

घसीट खाँ

कल्लू खाँ  
(लखनऊ घराना)

सिताब खाँ

गुलाब खाँ

नज़रअली खाँ

महम्मद खाँ

बोली बख्श खाँ

छोटे काले खाँ

(१) नत्थू खाँ

गामी खाँ

(१८७५-१९४०)

नत्थू खाँ के शिष्य—

केशवचन्द्र बनर्जी रायबहादुर, डमरूपाणि भट्टाचार्य, हबीबुद्दीन, हरेन्द्रकिशोर राय चौधरी ।

### ३५. मेवाती घराना

धग्गे नज़ीर खाँ के शिष्य—

बहन

(१) नत्थूलाल (हद्दू खाँ के जामाता)

(२) पं० मोतीराम

(३) पं० ज्योतिराम

पं० पूरणचन्द्र

(४) पं० मणिराम पं० प्रतापनारायण पं० जसराज पं० राजाराम

(१) नत्थूलाल के शिष्य-(२) मोतीराम

(२) मोतीराम के शिष्य-चुन्नीलाल, (३) ज्योतिराम, धीरज लाल, मणिबेन

(आबिद हुसैन बीनकार के साथ विवाह), शंकर राव मेघे ।

(४) मणिराम के शिष्य-कृष्णकांत बोदकी, डॉ० भारती पिल्ले, डॉ० संतोष मुखर्जी, पुरुषोत्तम जालान, व्योम-व्योम चतुर्वेदी, वंशीलाल कपूर, मुकुन्दलाल लाट,

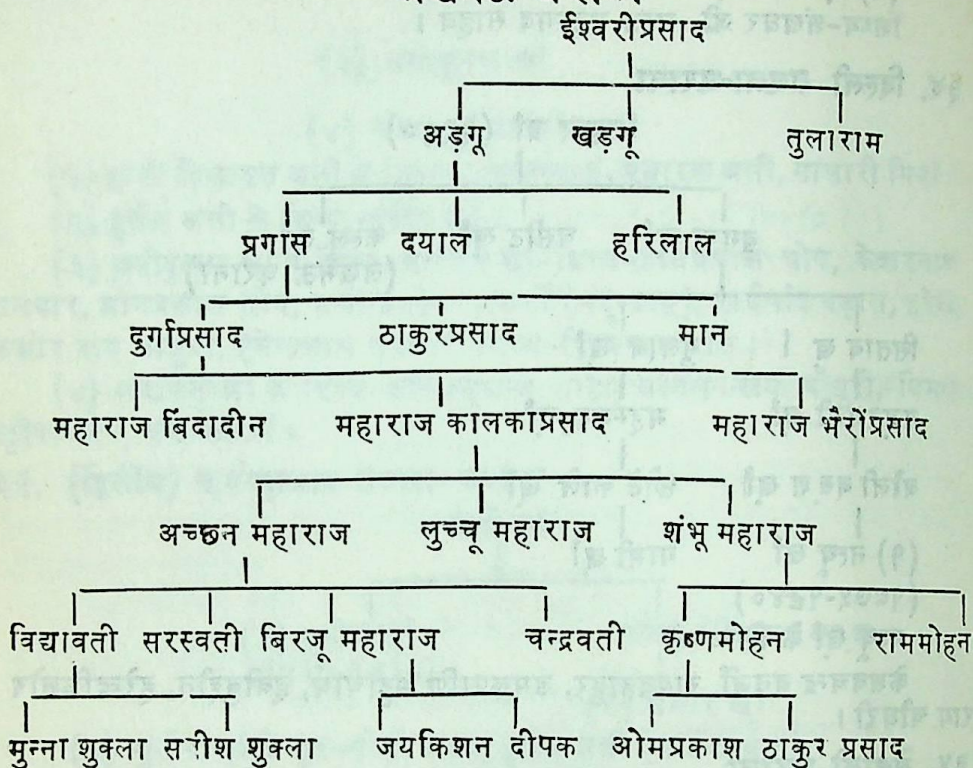
(४) जसराज, रवि वर्मन, लक्ष्मी बाई कृष्णमूर्ति, सोम तिवारी ।

(५) यशराज की शिष्या-डॉ० नीरजा रातोड़िया ।



# कथक नृत्य के घराने

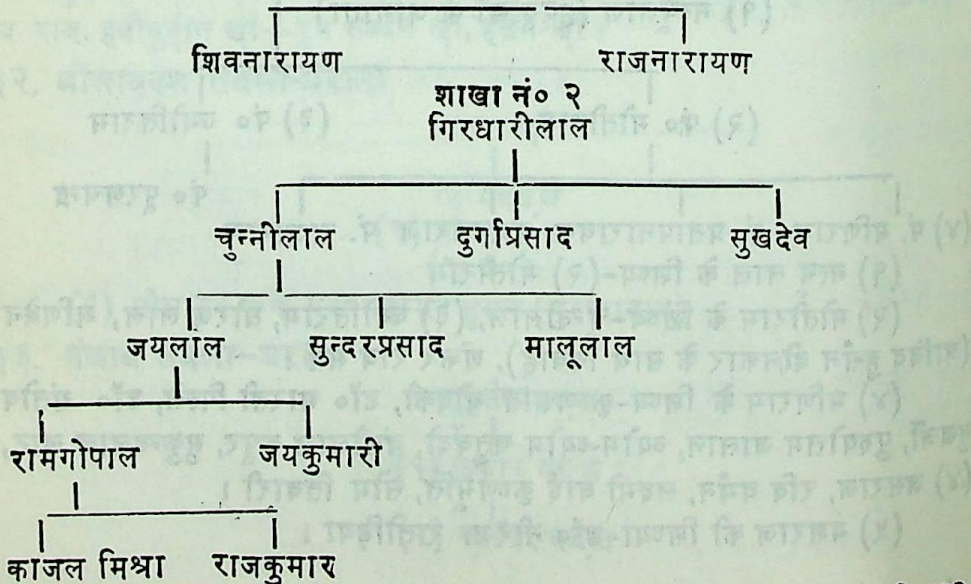
## लखनऊ घराना



## जयपुर घराना

शाखा नं० १

नायक नत्थलाल





शाखा नं० ३

शंकरलाल

सुपुत्री (नाम ज्ञात नहीं)

बद्रीप्रसाद

श्रीमोहन

ब्रजमोहन

शाखा नं० ४

पिता (नाम ज्ञात नहीं)

पूर्णराम

उदयराम

भानुरुदीन

नारायण राम

मुकुन्दलाल

राधेलाल

रमनलाल

हजारीलाल

रामकुमार

सागर

अनोखेलाल

विजय

धनराज

किशनकुमार

शाखा नं० ५

भानू जी

मालू जी

लालू जी

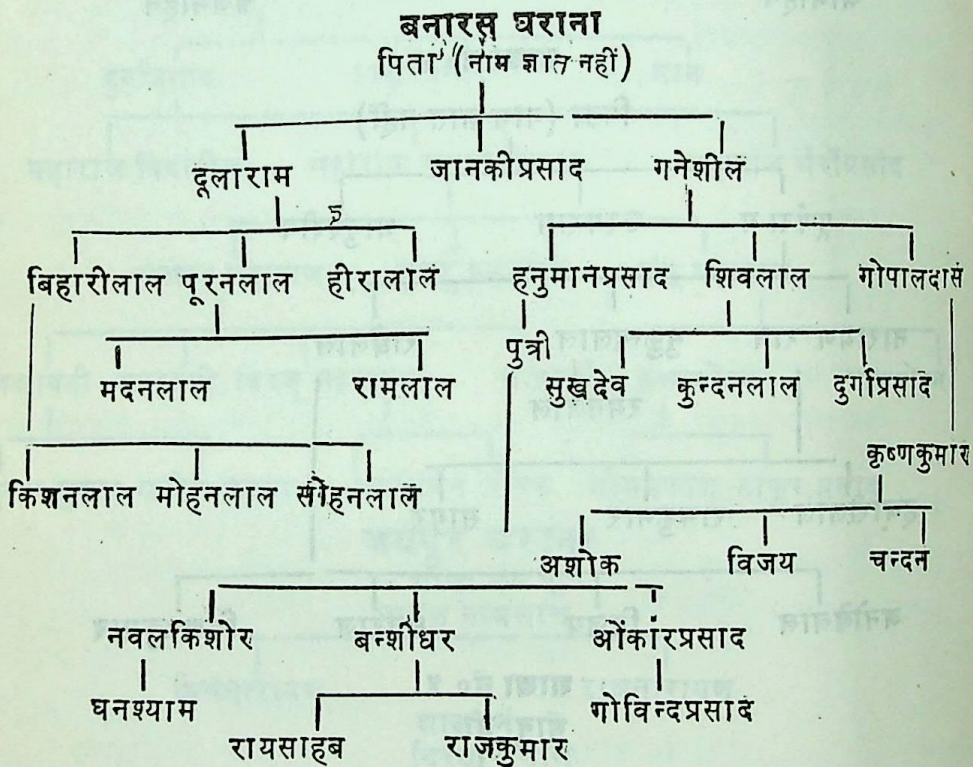
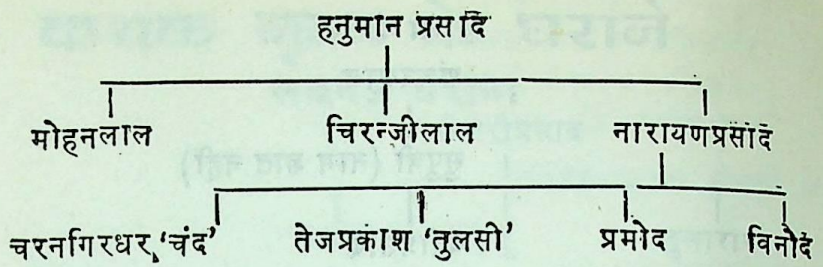
कानू जी

गीधा जी

शेजा जी

हूल्हा जी हरिप्रसाद हनुमानप्रसाद पुत्र (नाम ज्ञात नहीं) पुत्र (नाम ज्ञात नहीं)







# ताल-वाद्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

## और पखावज के घराने

एक मान्यता के अनुसार 'अवनद्ध' अर्थात् चमड़े से मढ़े हुए वाद्यों की उत्पत्ति शिव के डमरू से हुई है। भरत के 'नाट्यशास्त्र' में उल्लिखित दूसरी मान्यता के अनुसार स्वाति नामक मुनि को वर्षा-ऋतु में कमल पत्रों के ऊपर मन्द और तीव्र गति से गिरती हुई बूंदों के मधुर 'पट-पट' शब्द को श्रवण करने से ताल वाद्यों के आविष्कार की प्रेरणा मिली। जो भी हो, हमें यही मानकर चलना है कि मनुष्य को वाद्ययंत्रों की प्रेरणा प्रकृति की सहायता से मिली और आगे ज्ञान के विकास के साथ-साथ गायन तथा नर्तन की जरूरत के अनुसार 'अवनद्ध' वाद्यों का परिवार भी बढ़ता गया।

भरत के समय लगभग एक-सौ 'अवनद्ध' वाद्य प्रचलित थे, जिनमें पुष्कर और दूदुभि प्रमुख थे। इनके आधार पर अनेक वाद्यों की परिकल्पना की गई और लोक घरों और भिन्न-भिन्न ताल-वाद्य छा गए। अपनी-अपनी आकृति, संरचना, निर्माण-पदार्थ, मुख-विलेपन, ध्वनि-मार्जना, न्यास, वादन-प्रक्रिया और लोक-व्यवहार के आधार पर इनके अनेक भेद स्थापित हुए। पखावज तथा दक्षिण-भारतीय मृदंगम् उन्हीं 'अवनद्ध' वाद्यों के परिवार का परिवर्द्धित और समुन्नत रूप है जो स्वर-मार्जना, प्रहार, पांटाक्षर (बोल) तथा भाँति-भाँति की लयकारियों की दृष्टि से अवनद्ध वाद्यों में विशेष स्थान रखते हैं।

दो शताब्दी पूर्व जो नाम पखावज के क्षेत्र में मिलते हैं, उनमें श्री कृपाल राय तथा उनके शिष्य लाला भवानीदीन हैं। लाला भवानीदीन को 'दास जी' कहकर भी सम्बोधित किया जाता है। आप सम्भवतः बाँदा, वाराणसी अथवा इलाहाबाद के आस-पास के रहने वाले थे। लाला भवानीदीन अपने समय के सर्वाधिक चर्चित और तैयार पखावज-वादक थे। इनके कुछ शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं— श्री कोदर्यसिंह, श्री ज्योतिसिंह (जोधसिंह), उस्ताद फकीरबख्श, लाला केवलकृष्ण तथा उस्ताद ख़ुबे हुसैन ढोलक-वादक।



## पंजाब-घराना

उस्ताद फकीरबख्श ने पंजाब-घराने की नीव रखी, जिसमें उस्ताद कादिर-बख्श व उस्ताद मल्हन खाँ सर्वाधिक चर्चित हुए। वर्तमान में उस्ताद अल्लारखा खाँ तथा उनके पुत्र जाकिर हुसैन के नाम अग्रणी हैं। अब पंजाब-घराना केवल तबले का घराना रह गया है।

## कोदऊसिंह (दतिया)-घराना

श्री कोदऊ सिंह अपनी शिक्षा समाप्त करके रानी लक्ष्मीबाई के दरबार (झाँसी) में कुछ दिन रहे। फिर १८५७ के ग़दर के बाद दतिया के महाराज भवानी सिंह ने उन्हें अपने यहाँ रख लिया। अपने समय के सर्वाधिक विख्यात पखावज-वादक श्री कोदऊ सिंह सिद्ध पुरुष माने जाते थे। श्री शीतला जी इनकी आराध्या थीं। हाथी वश में करना, मुदंग उछालकर 'धा' लगाना इनकी विशेषता थी। कहा जाता है कि श्री कोदऊ सिंह ने जोधसिंह पखावजी को स्पर्धा में पराजित करके एक हजार तत्कालीन मुद्रा का पुरस्कार जीता था। इनके शिष्य-प्रशिष्यों की सूची बड़ी लंबी है। इनके प्रमुख शिष्यों में लाला झल्ली, पं० अयोध्या प्रसाद (बड़े), पं० मदनमोहन उपाध्याय, बाबा रामकुमार दास आदि एक-से-एक धुरंधर पखावजी हो गए हैं। वर्तमान में अयोध्या निवासी स्वामी पागलदास तथा छत्रपतिसिंह कोदऊसिंह-घराने के मुख्य प्रतिनिधि वादक हैं।

## नाना पानसे-घराना

नाना पानसे महाराष्ट्रीय कीर्तन-परंपरा के पखावज-वादक थे। एक बार वे काशी में जोधसिंह का पखावज-वादन सुनकर वहीं रुक गए और उन्होंने वर्षों तक श्री जोधसिंह से पखावज का प्रशिक्षण प्राप्त किया। फिर इलाहाबाद के माधव स्वामी, जो संभवतः लाला भवानीदीन से ही प्रभावित थे, से पुनः वर्षों तक शिक्षा लेकर अभ्यास किया। अंत में आत्मतुष्टि के लिए दतिया जाकर आपने श्री कोदऊसिंह का पखावज-वादन सुना और प्रसन्नता प्रकट की। फिर इन्दौर आकर वहाँ राज्याश्रय प्राप्त करके उसे ही अपना केन्द्र बनाया। आपकी परंपरा में अनेक विद्वान् हुए हैं, जिनमें श्री सखाराम पंत आगे सर्वाधिक प्रसिद्ध थे। इनके शिष्य-प्रशिष्यों में गोविंदराव बुरहानपुरकर, शंकरराव आलकूतकर, बलवंतराव पानसे, तथा नारायणराव कोली आदि अनेक विद्वान् हुए हैं। वर्तमान में कालीदास पंत, संजय पंत, अर्जुन सेजवाल, रमाकांत पाठक, गोस्वामी बन्धु, वैद्य बन्धु तथा राजखुशीराम के नाम उल्लेखनीय हैं।

## रामपुर-घराना

इस घराने में कोदऊसिंह के शिष्य गयासिंह, गयासिंह के पुत्र अयोध्या प्रसाद तथा श्री रामजीलाल शर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं।



## बाँदा-घराना

इस घराने में पं० अयोध्या प्रसाद (बड़े), उनके पुत्र शम्भूसिंह तथा वर्तमान में पं० रामदास के नाम उल्लेखनीय हैं।

## बंगाल-घराना

लाला केवल कृष्ण के बंगाल में बस जाने के कारण, वहाँ पखावज का प्रचार हुआ। इनके शिष्यों में दुर्लभदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। वर्तमान में राजीव-लोचन दे हैं। इनके शिष्यों की संख्या नगण्य है।

## दरभंगा-घराना

मदनमोहन जी के शिष्य देवकीनंदन पाठक ने कई शिष्य तैयार किए थे, जिनमें विशुनदेव पाठक, बासुदेव उपाध्याय, शत्रुंजय प्रसाद तथा केशव जी के नाम विशेष चर्चित हैं। दरभंगा-घराने के प्रतिनिधि वादक रामाशीष पाठक माने जाते हैं।

## गया-घराना

इस घराने में बासुदेव जी, छोटन पाठक और बलदेव जी उल्लेखनीय हैं। पन्नालाल तथा रामजी उपाध्याय प्रमुख हैं।

## बनारस-घराना

मन्तू जी द्वारा संचालित इस घराने में पं० अमरनाथ मिश्र सर्वाधिक चर्चित रहे। त्रिभुवन उपाध्याय और श्रीकान्त मिश्र प्रमुख हैं।

## अवधी (अयोध्या)-घराना

बाबा रामकुमार दास के शिष्य बाबा ठाकुरदास, श्री राममोहिनी शरण, स्वामी रामदास ( इन्होंने पहले मदनमोहन जी से शिक्षा ली ) ने अनेकों शिष्य तैयार किए, जिनमें स्वामी भगवानदास ने चार दशक पूर्व अवधी घराने की नींव रखी। इस घराने में पखावज के प्रत्येक पक्ष जैसे साहित्य, गणित, लयकारी, रचनाओं की विविधता, पढ़ंत, संगति तथा स्वतंत्र वादन आदि का सुन्दर समायोजन किया गया है। अवधी घराने के प्रतिनिधि वादक स्वामी पागलदास ने इस घराने को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया है।

## श्री नाथद्वारा-घराना

श्री नाथद्वारा-घराना एक शताब्दी पूर्व ही अस्तित्व में आ चुका था, जिसे श्री घनश्याम पखावजी ने प्रचलित किया। श्री पुरुषोत्तमदास इस घराने के विशिष्ट प्रतिनिधि सिद्ध हुए।

## मथुरा-घराना

इस घराने में श्री जोधसिंह के शिष्य-प्रशिष्यों में श्री गंगाराम, मोतीराम, मक्खन तथा छेदा नाम आते हैं। शंकरराव शिंदे अघागाँवकर ने इस घराने का विशेष प्रतिनिधित्व किया। □□



# छह राष्ट्रों का संगीत

[ चीन, जापान, ग्रीस, मिश्र, अरब, ईरान ]

## चीन का संगीत

पूर्वी एशियाई देशों में चीन एक विस्तृत एवं महत्त्वपूर्ण देश है। चीन की संस्कृति पुरानी है और संगीत वहाँ के निवासियों का अभिन्न अंग रहा है। चीन के महान् दार्शनिक कन्फ्यूशस के अनुसार, अच्छे संस्कार कविता से बनना शुरू होते हैं जो शालीनता के नियमों से दृढ़ होते हैं और संगीत के द्वारा पूर्णता को प्राप्त हैं।

चीनी किंवदंतियों के अनुसार, संगीत में चमत्कारिक शक्ति थी जो प्रकृति के नियमों को तोड़ सकती थी। चीन की शिक्षा प्रणाली में संगीत को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। संगीत के लिए चीन में यूवो (You) शब्द का प्रयोग होता है, जिसका अर्थ है पवित्रता। स्वरों को 'ल्यू' कहा जाता है। चीनी संगीत का स्केल पाँच स्वरों—कुंग, शेंग चिआओ, चिह तथा यू—का होता था, जो हिन्दुस्तानी संगीत के राग भूपाली के पाँच स्वरों—'सा, रे, ग, प, ध' से मिलता है।

चीनी संगीत की परम्परा पौराणिक है। इसके अनुसार सम्राट फ्यूसी (२८५२ ई० पू०) वहाँ की प्रारम्भिक संगीत-पद्धति के प्रवर्तक हैं। उन्हें कुछ वाद्यों का आविष्कार भी कहा जाता है। फ्यूसी के अतिरिक्त चार अन्य देवी शासक (Divine Rulers) हुए, किन्तु संगीत की दृष्टि से तृतीय शासक हुआंग-ती (२६८७ ई० पू०) का योगदान महत्त्वपूर्ण है। उसके आदेश पर उसके संगीत-मन्त्री लिंग-लुन, चीन की पश्चिमी सीमा पर गए और वहाँ एक विशेष बाँस की नली को चुना। फिर उस नली की ऐसे आकार में काँट-छाँट की कि उसमें से आधार-स्वर हुआंगचुंग की प्राप्ति हुई। उन्होंने फ्रेनक्स पक्षी के जोड़े को एक पर्वत के नीचे गाते हुए सुना और नर-मादा से क्रमशः छह-छह 'स्वर' चुन लिए। नर से प्राप्त स्वरों को 'यंग' और मादा से प्राप्त स्वरों को 'यिन' कहा गया।

इसके पश्चात् उल्लेखनीय काल सम्राट शुन (२२५५-२२०६ ई० पू०) का है, जिन्होंने स्केल के पाँच स्वरों का सांकेतिक सम्बन्ध ऋतुओं, तत्त्वों, राजनीति तथा वर्णों आदि से स्थापित किया जो इस प्रकार था :—



स्वर : कुंग, शेंग, चिआओ, चिह, यू,

वर्ग :—

|            |          |         |           |               |                    |
|------------|----------|---------|-----------|---------------|--------------------|
| राजनीतिक : | सम्राट्, | मंत्री, | प्रजा,    | राजकीय कार्य, | पदार्थ एवं उत्पादन |
| ऋतु :      | शरत्,    | वसंत,   | ग्रीष्म,  | शिशिर         |                    |
| तत्त्व :   | पृथ्वी,  | धातु,   | काष्ठ,    | अग्नि,        | जल                 |
| वर्ण :     | पीत,     | श्वेत,  | नील,      | लाल,          | कृष्ण              |
| दिशा :     | मध्य,    | पश्चिम, | पूर्व,    | दक्षिण        | उत्तर              |
| ग्रह :     | शनि,     | शुक्र,  | बृहस्पति, | मंगल,         | बुध                |

इन्होंने चीनी वाद्यों का आठ प्रकारों में वर्गीकरण किया। सम्राट शुन पौराणिक युग के अंतिम शासक थे। हिया काल के साथ वंशीय शासकों का युग शुरू हुआ। सम्राट यू (२२०५-२१६८ ई० पू०), जो उस युग के प्रवर्तक थे, ने जो संगीत पद्धति बनाई, वह 'ता-हिया' नाम से जानी जाती है।

इसके उपरांत दीर्घकालिक चाऊ-वंश (११३४-२४६ ई० पू०) उल्लेखनीय है। इसमें संगीत तीन प्रकारों में विभाजित था—१. कृषि उत्सव २. शाही दरबार तथा ३. धार्मिक कर्मकाण्ड। शाही दरबारों और धार्मिक अवसरों पर वाद्यों का प्रयोग बड़ी संख्या में होता था। कुलीन वर्ग के अपने स्वयं के वाद्यवृंद होते थे।

इस युग की अंतिम चार शताब्दियों में चीन की सभ्यता अपने शिखर पर थी। लाओसू (६०४-५१७ ई० पू०) तथा कुंगफूसू (५५१-४७६ ई० पू०) दो महान् दार्शनिक हुए। लाओसू 'ताओइज्म' के संस्थापक थे और कुंगफूसू 'कन्फ्यूशज्म' के (कुंगफूसू का लातीनी नाम 'कन्फ्यूशस' है)। कन्फ्यूशस की प्रतिभा विचित्र थी। वह एक प्रवीण संगीतज्ञ थे और अनेक वाद्यों पर उनका अधिकार था। उच्चस्तरीय संगीत के प्रति समर्पण भाव रखने वाले कन्फ्यूशस ने अनेक पुस्तकें लिखीं।

बौद्ध साधुओं का चीन में पदार्पण होने के साथ चीन के संगीत पर विदेशी प्रभाव ईसा की पहली शताब्दी से ही होने लगा था। धीरे-धीरे अन्य देशों के संगीतज्ञ और संगीत का प्रभाव वहाँ होने लगा।

### चीनी संगीत के स्केल (स्वर-ग्राम)

यह पहले ही कहा जा चुका है कि 'हुआंगचुंग' चीनी संगीत का आधार स्वर है, जिससे आरंभिक स्वर 'कुंग' (सा) की उत्पत्ति होती है। लिगलुन ने बारह स्वरों के लिए बारह नलियों को चुना और उससे बारह स्वरों की उत्पत्ति बताई। कृष्ण लेखकों ने इन बारह 'ल्यू' (स्वरों) को क्रोमेटिक स्केल समझा, जो भ्रांतिपूर्ण है। ('The twelve notes never formed a scale'.....resembling our chromatic scale.')

बारह स्वरों को 'यंग' (पुरुष) और 'यिन' (स्त्री) के सिद्धांत को मानते हुए उच्च तथा निम्न पंक्ति (Upper and lower row) के अनुसार सजाया गया है, अतः

१. 'राइज ऑफ़ म्यूजिक इन द ऐंशेंट वर्ल्ड' पृष्ठ ११८







यदि 'सा' की आंदोलन-संख्या २४० साइकिल प्रति सेकंड है तो षड्ज-पंचम-क्रम से पंचम की आंदोलन-संख्या  $p = 240 \times \frac{3}{2} = 360$  होगी। इसी विधि के अनुसार 'प' से तार-ऋषभ की आंदोलन-संख्या  $360 \times \frac{3}{2} = 540$  होगी, अर्थात् मध्य रे = २७०।

इस विधि को अपनाते हुए चीन के अन्य स्वरों की आंदोलन-संख्या निकाली जा सकती जो इस प्रकार है :—

| चीन | स्वरों की आंदोलन-संख्या— | सा  | प   | रे  | ध   | ग                 |
|-----|--------------------------|-----|-----|-----|-----|-------------------|
|     |                          | २४० | ३६० | २७० | ४०५ | ३०३ $\frac{3}{4}$ |

इस प्रकार गणित से आंदोलन-संख्या निकालने पर १३-वें स्वर की आंदोलन-संख्या प्रथम स्वर की आंदोलन-संख्या से दुगुनी अर्थात् ४८० होनी चाहिए, परन्तु चीनी संगीत में यह हमारे तार-सां से लगभग एक 'कौमा' ( $\frac{5}{4}$ ) से ऊँची होती है और इस प्रकार फिर से नवीन स्वरों के एक क्रम को बनाती है।<sup>१</sup>

चीन के पाँच स्वर हमारे (हिन्दुस्तानी) पाँच स्वरों से पूर्णतः नहीं मिलते।

### चीन के स्वर

|               |               |                     |               |                        |
|---------------|---------------|---------------------|---------------|------------------------|
| कुंग - शेंग,  | शेंग - चिआओ,  | चिआओ - चिह,         | चिह - यू,     | यू - कुंग <sup>२</sup> |
| सा - रे,      | रे - ग,       | ग - प,              | प - ध,        | ध - सां                |
| -----         | -----         | -----               | -----         | -----                  |
| $\frac{6}{4}$ | $\frac{6}{4}$ | $\frac{3}{2}$       | $\frac{6}{4}$ | $\frac{3}{2}$          |
| मेजर टोन      | माइनर टोन     | १ $\frac{1}{2}$ टोन | मेजर टोन      | १ $\frac{1}{2}$ टोन    |

'सा-रे' तथा 'रे-ग', इन स्वरों के अन्तर को देखते हुए यह ज्ञात होता है कि इन स्वरों के बीच की दूरी पूर्णतः एकसी है। किन्तु इसके ठीक विपरीत हिन्दुस्तानी संगीत में 'सा-रे', इन दो स्वरों के बीच की दूरी तीन श्रुतियों की तथा 'रे-ग' के बीच की दूरी दो श्रुतियों की है, फिर 'प' और 'ध' के बीच की दूरी तीन श्रुतियों की है, जबकि चीनी संगीत में 'प' तथा 'ध' के बीच की दूरी मेजर टोन की है।

चीनी संगीत में औडव स्वर-ग्राम का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके प्रत्येक स्वर को बदलकर मूर्च्छना-क्रम से चार नवीन स्वर-ग्रामों का निर्माण किया गया, जो हिन्दुस्तानी स्वरों में इस प्रकार समझा जा सकता है :—

- |                         |     |    |   |   |    |     |            |
|-------------------------|-----|----|---|---|----|-----|------------|
| (१) मूल स्केल           | —सा | रे | ग | प | ध  | सां |            |
| (२) 'रे' को 'सा' मानकर— | सा  | रे | म | प | नि | सां | (मध्यमादि) |
| (३) 'ग' को 'सा' मानकर—  | सा  | ग  | म | ध | नि | सां | (मालकोश)   |
| (४) 'प' को 'सा' मानकर—  | सा  | रे | म | प | ध  | सां | (दुर्गा)   |
| (५) 'ध' को 'सा' मानकर—  | सा  | ग  | म | प | नि | सां | (धानी)     |

(१) 'ग्रोव्स डिक्शनरी ऑफ़ म्यूजिक' (भाग २), पृष्ठ २२७

(२) वही, पृष्ठ २२७



चीनी संगीत में भारतीय संगीत के समान ही स्वरों के संबंध को पशु-पक्षी तथा प्राणियों से जोड़ा गया है; जैसे-शेर, खरहा, पंखवाला दानव, साँप, घोड़ा, भेड़, लंगूर, मुर्गा, कुत्ता, सूअर, चूहा, बैल आदि ।<sup>१</sup> पाँच स्वरों का सम्बन्ध रंग, ऋतु, ग्रह, नक्षत्र आदि से भी दर्शाया गया है । इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है ।

यद्यपि चीन में पाँच स्वरों के ग्राम को हमेशा से ही मूल स्वर-ग्राम माना गया है, किन्तु सात स्वरों का स्केल भी उसके साथ अस्तित्व में था, इस बात के निश्चित प्रमाण मिलते हैं । चाऊ-युग में प्रचलित बाँसुरी 'ती' से सात स्वर उत्पन्न होते थे, जिनमें पाँच मुख्य स्वर तथा दो सहायक स्वर थे । ये स्वर 'पिएन-चिह' तथा 'पिएन-कुंग' थे । स्वरों के अनुपात की दृष्टि से ये स्वर इस प्रकार हैं :--

### चीन के स्वर

|                                                              |               |                                       |  |                                       |               |
|--------------------------------------------------------------|---------------|---------------------------------------|--|---------------------------------------|---------------|
| कुंग - शैंग, शैंग - चिआओ, चिआओ-पिएनचिह, पिएनचिह-चिह, चिह-यू, |               |                                       |  |                                       |               |
| सा - रे रे - ग,                                              |               | ग - म,                                |  | म - प, प - ध,                         |               |
| <u>          </u> <u>          </u>                          |               | <u>          </u>                     |  | <u>          </u> <u>          </u>   |               |
| चीनी— $\frac{8}{8}$                                          | $\frac{8}{8}$ | $\frac{8}{8}$                         |  | $\frac{3}{2} \frac{4}{3} \frac{5}{2}$ | $\frac{8}{8}$ |
| भारतीय— $\frac{8}{8}$                                        | $\frac{9}{8}$ | $\frac{9}{8}$                         |  | $\frac{8}{8}$                         | $\frac{8}{8}$ |
| यू-पिएनकुंग,                                                 |               | पिएनकुंग-कुंग                         |  |                                       |               |
| ध - नि.                                                      |               | नि - सां                              |  |                                       |               |
| <u>          </u>                                            |               | <u>          </u>                     |  |                                       |               |
| $\frac{8}{8}$                                                |               | $\frac{3}{2} \frac{4}{3} \frac{5}{2}$ |  |                                       |               |
| $\frac{9}{8}$                                                |               | $\frac{9}{8}$                         |  |                                       |               |

ये सात स्वर अनुपात की दृष्टि से फिर हिन्दुस्तानी संगीत से नहीं मिलते । 'सा-रे' और 'रे-ग' के अंतर को हम पहले ही देख चुके हैं । यदि 'ग-म' और 'म-प' के बीच के अंतराल को देखा जाए, तो 'ग-म' के बीच में 'मेजर टोन' तथा 'म-प' के बीच में  $\frac{3}{2} \frac{4}{3} \frac{5}{2}$  अर्थात् 'लिम्मा' का अंतर है । किन्तु हिन्दुस्तानी पद्धति में 'म' तथा 'प', इन दोनों की ही चार-चार श्रुतियाँ हैं । उसी प्रकार 'ध' तथा 'नि' की क्रमशः तीन तथा दो श्रुतियाँ हैं । किन्तु चीन के स्वरों के बीच यह अंतर 'मेजर टोन' का है । चीन के दो स्वर 'पिएनचिह' तथा 'पिएनकुंग' सहायक स्वर हैं । ये स्वर चीन के स्वदेशी स्वर नहीं थे, इसका बोध इन स्वरों के नाम से भी होता है । इन स्वरों के नाम मुख्य स्वर 'चिह' तथा 'कुंग' से लिए गए हैं । 'पिएन' का अर्थ है 'नीचा' ।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध है कि चीन में पाँच स्वरों के स्केल को ही पारंपरिक रूप से स्वीकार किया जाता रहा है ।

१. 'द राइज ऑफ़ म्यूजिक', पृष्ठ ११० [हिन्दुस्तानी संगीत में मोर, चातक, मेंढक, कोयल आदि तथा विभिन्न वर्गों तथा रंगों आदि से स्वरों का सम्बन्ध दर्शाया है ।] देखिए—

'संगीत-रत्नाकर' (भाग १), पृष्ठ ३५, ३६ व ३७

२. 'फ़ाउंडेशन ऑफ़ चाइनीज़ म्यूजिकल आर्ट', पृष्ठ ६८-६९



फिर भी समय-समय पर वहाँ नवीन स्केलों की रचना हुई। इसके अन्तर्गत अलग-अलग विद्वानों के अनुसार ५३ स्वरों, ६० स्वरों, ६४ स्वरों तथा ३६० स्वरों में उसका विभाजन किया गया।

## चीन के वाद्य

जिस तरह भारतीय संगीत में कंठ-संगीत की प्रधानता है उसी तरह चीनी संगीत में वाद्यों की बहुलता एवं प्रधानता रही है। भारत में वाद्यों के वर्गीकरण की प्रणाली उनके ध्वनि-उत्पादन की रीति पर निर्भर है। लेकिन चीन में यह वर्गीकरण वस्तुओं के पदार्थ के आधार पर किया गया। जैसे—लकड़ी, रेशम, मिट्टी, धातु, बाँस, तूँबा, पत्थर और चमड़ा इत्यादि। वहाँ पाए जाने वाले वाद्यों की संख्या लगभग २०० है, जिनमें से घन वाद्यों के अन्तर्गत ते-चिंग, पिएन-चिंग (पत्थरों का समूह या प्रस्तर-तरंग), घंटी तथा समूह-घंटियाँ (बेल चाइम), पो-चुंग (एकल घंटी), पिएन-चुंग (समूह घंटियाँ), गौंग (घंटा) तथा अवनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत पो-फू (दायाँ-बायाँ), इगकू, टाओकू और पैंगूक आदि एवं सुषिर वाद्यों के अन्तर्गत पई-सिआओ, शेंग और ततवाद्यों के अन्तर्गत चिन तथा सेह आते हैं।

सन् १९१९ के मई-आंदोलन का प्रभाव चीनी संगीत पर भी पड़ा और इसके फलस्वरूप संगीत रचनाओं के विषय श्रमिकों और कृषकों की उन्नति एवं क्रांति से जुड़ गए। आधुनिक चीन में संगीत शिक्षण और प्रस्तुतियाँ राज्याश्रय में हो रही हैं जिनमें लोकसंगीत, गायन, वाद्यवृन्द, पियानो, ऑपेरा तथा संगीत-शास्त्र आदि प्रमुख हैं। इस समय प्राचीन संगीत को सुरक्षित रखने का प्रयास अपनी जगह पर है और पाश्चात्य संगीत का बढ़ता प्रभाव अपना अस्तित्व अलग से बना रहा है।

## जापान का संगीत

जापान के संगीत के उद्गम के विषय में कहा जाता है कि एक बार अभाते रासु (सुर-देवता की पत्नी) जब अन्य देवताओं द्वारा अपमानित हुईं तो उसने एक गुफा में जाकर शरण ली और हर प्रयत्न उसको बाहर निकालने में असफल रहा। अन्त में देवताओं ने संगीत के माध्यम से उन्हें प्रभावित किया। बस, तभी से जापान की भूमि पर संगीत ने जन्म लिया। 'Laronsse Encyclopedea of Music' में इस बात का उल्लेख मिलता है कि जापान के प्राचीन संगीत में शिन्टो-धर्म-सम्बन्धी पद गेय-स्वरूप में थे। बौद्ध धर्म के माध्यम से एक भारतीय नृत्य ७३६ ई० में बोद्धीसेन (भारतीय) और पैटरायट (अनम पुजारी) द्वारा जापान पहुँचा जो 'गागाकू' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार चीन, कोरिया तथा मंचूरिया के संगीत का प्रभाव भी जापान पर पड़ा। जापान की धुनों पर कम्बोडिया, जावा और बाली के संगीत का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। स्केल वाला पाँच स्वरों वाला स्वरूप चीन की परम्परा से जापान में स्वीकृत हुआ। इतना होने पर भी जापान के सांगीतिक तत्व अपनी मौलिक विशेषता लिए हुए हैं।



जापान का संगीत लोक से प्रारम्भ होकर मन्दिरों में पहुँचा और वहाँ से राज-दरबारों में आया। आठवीं शताब्दी में जापान में एक दरबारी ऑर्केस्ट्रा की स्थापना हुई। इसमें सात प्रकार के सुषिर वाद्य, तीन प्रकार के तत-वाद्य और सात प्रकार के लय-ताल-वाद्य होते थे। समाज के प्रतिष्ठित परिवार एवं राजाओं से सम्बन्धित परिवारों में संगीत की शिक्षा अनिवार्य थी। बारहवीं शताब्दी में जब सेना का शासन शुरू हुआ तब दरबारी संगीत की अवनति आरम्भ हुई, धीरे-धीरे संगीत नाट्यकला से जुड़ता गया। जापान की प्रसिद्ध नृत्य-नाट्य-शैली 'काबुकी' में भी गायन तथा वाद्य-संगीत का उपयोग होता है। इसमें नोगाकू (Nohgaku) के वाद्यों तथा अवनद्धवाद्य ओकीदो (Okedo) एवं घनवाद्यों गोंग (Gong), योत्सुदाके (yotsudake) अर्थात् कैस्टानेट्स (Castanets), मोक्किन (Mokkin) अर्थात् ज़ैलोफोन (Xylophone) आदि का प्रयोग होता है।

जापान के वाद्यों की अपनी अलग परम्परा रही है, परन्तु चीन का प्रभाव उन पर सबसे अधिक पड़ा। जापान में प्रचलित कुछ वाद्य इस प्रकार हैं—मो-कू-ग्यो (कपूर की लकड़ी से बना ढोल), चैंग (जापानी नाम मो-नो-कोटा), किन (कोटो), (चीन के 'पीपा' जैसा एक तार-वाद्य), बीवा (बुगाकू-बीवा), हिचिरिकी, गैकवान, शामीसेन।

नवीं शताब्दी से पहले जापान के राष्ट्रीय वाद्यों के रूप में 'बैगोन' और 'यामोटो' वाद्यों को मान्यता मिली थी। 'शामीसेन' वाद्य 'बीवा' वाद्य का ही परिवर्तित रूप है जो सोलहवीं शताब्दी में चीन से जापान आया। यह अधिकतर संगति-वाद्य के रूप में प्रयुक्त होता है और नाटकों में इसका प्रयोग काफ़ी होता है। 'शामीसेन' वाद्य की लोकप्रियता से जापान में एक संगीत परंपरा का निर्माण हुआ जिसे जोर-री कहकर पुकारा गया। इस वाद्य का प्रयोग लोक संगीत में भी हुआ और गीशा लड़कियों ने अपने नृत्यों में इसे स्थान दिया।

शामीसेन को मिलाने की चार विधियाँ हैं :--

हों चो सी = B, E, B'

नि आगुरी = B, F, B'

सन सागुरी = B, E, A'

इचि सागुरी = A, E, B'

जापानी संगीतकार 'ताके मोटो गिदायू' ने इस वाद्य को बहुत लोकप्रिय बनाया और अन्य कलाकार इशीमूरा तथा कंग्यो ने इसके विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया।

एक अन्य सुषिर वाद्य 'शाकुहाची' भी जापान में अत्यन्त लोकप्रिय हुआ जो चीन द्वारा भारत से आया। आज इसमें पाँच छिद्र हैं और आधार स्वर D है। सर्व-प्रथम आठवीं शताब्दी में यह वाद्य बौद्ध भिक्षुक द्वारा प्रचार में आया। जापान के बौद्ध विद्वान् काकूशियू (जो १२५४ ई० में चीन में थे) ने इसमें कुछ परिवर्तन किए।



कोटो, शामीसेन, तथा शाकुहाची; ये तीन वाद्य जापानी संगीत में सबसे अधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय हुए और इन तीनों को अधिकतर साथ-साथ ही बजाया जाता है। शाकुहाची द्वारा जो संगीत प्रचलित हुआ, वह 'क्योरे' कहलाता था। काकूशियू के अनुयायी 'कोमोसू' कहलाते थे, जो द्वार-द्वार जाकर शाकुहाची वाद्य की संगति के सहारे बौद्ध धर्म का प्रचार करते थे। मोजो युग (१८७६ ई०) के चार वर्ष बाद यह वाद्य जनमानस में बहुत अधिक लोकप्रिय हुआ। कुरुजावा किको अठारहवीं शताब्दी का सबसे प्रसिद्ध शाकुहाची-वादक रहा है। इसकी परंपरा को 'किको राईयू' के नाम से जाना गया। इसने तीन वाद्यों का सामूहिक वादन प्रचलित किया, जिसमें शाकुहाची, कोटो और शामीसेन बजते थे। सेफू दोशिदा इस वादन में बहुत सफल रहे। 'सा गु म प नि सां' स्वर इसमें सुगमता से बज जाते हैं। अन्य स्वरों को उँगलियों के सफल प्रयोग से निकाला जाता है। एक बहुत बड़ा ढोल 'ताइको' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके द्वारा स्वर के छोटे-छोटे समुदायों का सुंदर आघात मिलता रहता है। इस ढोल के ही द्वारा ऑर्केस्ट्रा में लय-परिवर्तन इंगित किया जाता है।

'कोक्यू' वाद्य लोक-संगीत में बहुत लोकप्रिय हुआ। यह गज-वाद्य चीनी 'ऐर-हू' से मिलता है। नीचे के तार चौथे स्वर में मिलाए जाते हैं और ऊपर के तार आधार-स्वर और उसके एक सप्तक ऊँचे स्वर में। सर सौरीन्द्रमोहन टैगोर ने अपनी पुस्तक 'यूनीवर्सल हिस्ट्री ऑफ़ म्यूज़िक' में जापान के संगीतज्ञों के चार वर्ग बतलाए हैं। 'गाक्युन' संगीतज्ञ केवल कंठ-संगीत का अभ्यास करते हैं और इनका संगीत धर्माश्रित है। 'गुयानिन' संगीतज्ञ व्यवसायी हैं और ये हर प्रकार के संगीत का अध्ययन अपनी जीविक-उपार्जन के लिए करते हैं। 'फ़ेकीत्विंड' संगीतज्ञ धार्मिक और सामाजिक, दोनों प्रकार के संगीत का अभ्यास करते हैं। 'ये' और 'चेका' अधिकतर पुरुष ही होते हैं। 'केको' श्रेणी में महिला संगीतज्ञ आती हैं और ये विभिन्न प्रकार के गीत गाती हैं। कुछ जापानी इतिहासकारों का कहना है कि 'केको' महिला कलाकारों के लिए धार्मिक गीतों को गाना निषिद्ध है। यदि यह सत्य है, तो कहा जा सकता है कि जापान में भी स्त्री-पुरुषों को समाज द्वारा भिन्न धरातल से देखा जाता है।

### जापानी संगीत के महत्त्वपूर्ण सांगीतिक तत्त्व

प्राकृतिक नियमों के आधार पर जापान और चीन में 'पाँच' संख्या का बहुत महत्त्व है। इस कारण दोनों ही देशों का प्रारंभिक स्केल, पाँच स्वरों से बना। प्राचीन काल में आधार-स्वर निश्चित नहीं था। शाकुहाची संगीत के आगमन से २५२ V P S का स्वर, आधार-स्वर निश्चित हुआ। चीन के 'लू' संगीत से प्रेरित हो कर जापान में 'रितसु' स्केल का रूप बना। इस स्केल में D E G A B D अथवा D F G A C D स्वर प्राप्त होते हैं। इस स्केल का आधार १-४ संवाद है। १-२; १-३ अनुपात नहीं है, जो चीन के 'रेईयो' स्केल में है। जापान में क्रमशः स्केल में पाँच से सात स्वर हो गए, परन्तु ये कैसे हुए और उनकी क्या स्थिति है, उसका



अधिक स्पष्टीकरण नहीं मिलता। अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि जापान के लोक-गीतों में बहुत समय पूर्व से ही द्विश्रुतिक अंतरालों का प्रयोग मिलता है। कोरिया में भी इस प्रकार के अंतराल मिलते हैं। कोरिया, कंबोडिया और जापान में यह धारणा है कि द्विश्रुतिक अंतराल मन को उत्तेजित कर देते हैं और उनके द्वारा आत्मिक संतोष का अनुभव नहीं होता।

आठवीं शताब्दी में संगीत की दो पद्धतियाँ प्रचार में आईं। राइट (Right) एवं 'लेफ्ट' (Left) संगीत। 'राइट संगीत' का उदगम कोरिया एवं मंचूरिया से जोड़ा जाता है। इसमें संगति के लिए 'साओ-नो-सुजुभी' एवं 'कोमि फुईए' का प्रयोग मिलता है। 'लेफ्ट संगीत' चीन और भारत से उद्भूत हुआ। इसमें संगीत के लिए 'ओ', 'लीको', 'शो' और 'काको' प्रयोग में लाए जाते हैं। 'हिचिरिकी', 'बीवा', 'सोनोकोटो' ('रायको' एवं 'शोके'), दोनों पद्धतियों में प्रयोग में लाए जाते थे। जापान के सप्त-स्वर के स्केल को 'मोडा-जोकू-त्राकू' नाम दिया गया। इसका साम्य ग्रीक डोरियन से है। सप्तक के विकास में यह क्रम रहा—'D G A D,' जो बाद में 'D E G A B D' के रूप में विकसित हुआ। आरोह—'सा ग प नि सा' और अवरोह—'सां ध प म रे सा' अपने अचल रूप में स्थिर रहते हैं। C E F B की विकृतियाँ होती हैं। दो प्रकार के स्केलों का उल्लेख मिलता है—हार्ड-स्केल एवं सॉफ्ट-स्केल। जापान का राष्ट्रीय गान हार्ड-स्केल में निबद्ध है। सॉफ्ट-स्केल में शामीसेन जैसे वाद्य की धुनें अच्छी निबद्ध होती हैं। इसके दो रूप हैं—'सा रे म प नि सां अथवा सां ध प म रे सा' कोमल स्वरों के कारण इस स्केल की धुनों में करुणा-जनक-भाव अभिव्यक्त होता है।

आधुनिक काल में जापान की संस्कृति पर विशेष रूप से इंग्लैंड और अमरीका का प्रभाव पड़ा है। जापान में पाश्चात्य संगीत-शिक्षा के कई केन्द्र खुल गए हैं और स्कूलों के पाठ्यक्रम में भी पाश्चात्य-संगीत एक विषय के रूप पढ़ाया जाता है। इम्पीरियल क्रॉउन म्यूजिक (Imperial Crown Music) भी आज पश्चिम के संगीत से अत्यधिक प्रभावित है। कितने ही जापानी संगीतज्ञों को पश्चिम के देशों में भेजा गया, जिससे वे वहाँ के संगीत को सीखें, समझें और अपने देश के संगीत में उसका उपयोग करें। १८७८ ई० में जापानी सरकार ने एक जाँच-आयोग नियुक्त किया, जिसका कार्य यह था कि वे अध्ययन कर कि पाश्चात्य संगीत और जापानी संगीत का संबंध कैसे रखा जा सकता है। कौन-से समान रांगीतिक बिन्दु हैं? इस लक्ष्य-हेतु 'नेशनल इस्टीट्यूट ऑफ म्यूजिक' की स्थापना भी की गई, जो इस साम्य को खोजने और नई परम्पराओं को विकसित करने में सफल हुई। इस प्रकार जापान के संगीत पर विभिन्न देशों की परम्पराओं ने अपना प्रभाव छोड़ा। परंतु फिर भी जापान के संगीत में अपनी एक विशेषता है, जिसके कारण पूर्व और पश्चिम में उसे बहुत आदर मिला। जापान के संगीत की सादगी और सरलता अपना अलग ही कलात्मक प्रभाव छोड़ती है।

संगीत-विशारद



## ग्रीस का संगीत

ग्रीस अर्थात् ग्रीक का दर्शन, साहित्य और कलाएँ बहुत उन्नत थीं। ग्रीस की राजधानी अलेग्जेंद्रिया (Alexandria) के सांस्कृतिक केन्द्र तथा विशाल ग्रन्थागार सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध थे जो विधर्मियों ने ध्वस्त कर दिए थे। ग्रीक में संगीत को अत्यंत उच्च दृष्टि से देखा जाता था। इसीलिए विभिन्न उत्सवों में इसकी प्रधानता रहती थी। प्राचीन ग्रीस व रोम के धार्मिक संगीत में केवल पाँच स्वरों का प्रयोग किया जाता था और कालांतर में सात स्वरों का विकास हुआ। वहाँ के मठ तथा मन्दिरों में विविध ज्ञान-विज्ञान के साथ-साथ संगीत की शिक्षा भी दी जाती थी।

प्राचीन ग्रीस के अधिकांश वाद्ययंत्र तथा संगीतकार एशिया के थे। वहाँ के ऐतिहासिक संगीतज्ञों में १३०० ईसा पूर्व के ऑर्फियस (Orpheus) का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने स्तोभ तथा गाथाओं की रचना की और बाँसुरी तथा लायर जैसे वाद्यों में परिष्कार किया। कहा जाता है कि वे संगीत के प्रभाव से हिसक जीव-जन्तुओं को प्रभावित कर सकते थे। उनके शिष्य लिनस (Linus) तथा थमिरिस (Thamyris) उत्तम लायर वादक थे। उनके पुत्र म्यूसैकस (Musacus) उत्तम संगीतज्ञ तथा हरक्युलिस (Hercules) के गुरु थे। जुपिटर और अन्टीओप (Jupiter and Antiop) के पुत्र अमफ़ियन (Amphion) लिडियन (Lydion) मोहु के आविष्कारक तथा उच्चकोटि के लायर वादक थे। कहा जाता है कि इनके संगीत के प्रभाव से पर्वत झूमते थे और पत्थरों ने नृत्य करते हुए अपने आप थिवस (Theves) की दीवारों को बनाया था।

अपोलो (Apollo) ग्रीक के सूर्य देवता थे, जो उत्तम लायर-वादक तथा संगीत संरक्षक के रूप में प्रसिद्ध थे। प्राचीन ग्रीस में वंशी सबसे अधिक लोकप्रिय थी।

होमर (Homer, c. 700 B. C.) रचित इलियड (Iliad) व ओडिसी (Odyssey) में केवल लायर, वंशी तथा वंशी-जातीय सिरिन्ज़ (Syrinx) के उल्लेख से प्रतीत होता है कि ट्रोजन युद्ध (Trojan War) के समय तक वहाँ केवल इन वाद्ययंत्रों का ही प्रचलन रहा होगा। इसीलिए प्राचीन ग्रीस में वंशी सर्वाधिक जनप्रिय थी। होमर व सफो (Sappho, 600 B. C.) के मध्यवर्ती संगीतज्ञों में क्रेट के थलेटस (Thaletes of Crete, 870) एक उत्तम गायक और वंशीवादक थे। फ़िजिया के ओलिम्पस (Olympus, 697 B. C.) एक उत्तम संगीतज्ञ थे, जो ओलिम्पस (ग्रीस की पर्वत श्रेणी का नाम, जहाँ देवताओं का निवास था) से आए थे। जिनके संगीत की प्लटो (Plato), एरिस्टोटल (Aristotle), प्लुटर्च (Plutarch) आदि ने उच्च प्रशंसा की है। तरपेडर (Terpeder 650 B.C.), एक व्याख्याकार के साथ-साथ संगीतलिपि आदि के भी उद्भावक थे। तत्कालीन अन्य लायर



वादकों तथा संगीतज्ञों में से अल्कमैन (Alcman), अलकुस (Alcaeus), अनक्रमैन (Anacreon), अरिओं (Arion), बक्किलिडस (Bacchylides), कैलिस्ट्रटस (Callistratus), इबिकस (Ibycus) स्टर्सिकोरस (Stersichorus) आदि उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने दो सौ वर्षों से अधिक समय तक ग्रीक-संगीत को समृद्ध बनाया। इसके अतिरिक्त तत्कालीन मनीषियों में से युरिपिडस (Euripides), हेरोडोटस (Herodotus), जेनोफोन (Xenophon) युक्लिड (Euclid), पाइथागोरस (Pythagoras, 580-500 B.C.), आदि उल्लेखनीय हैं। वहाँ के स्वर सप्तक, स्वर-सज्जा आदि के विकास में पाइथागोरस की मुख्य भूमिका रही है। कहा जाता है कि वे ईसा पूर्व छठी शताब्दी में भारत आए थे और यहाँ से साहित्य, गणित, दर्शन, संगीत आदि विषयों के अनेक उपादानादि ले गए थे। उन्होंने ही सर्वप्रथम पाश्चात्य स्वर सप्तक को षड्ज-पंचम भाव (The harmony of the fifth) के सूत्रानुसार स्थापित किया था, जिसका नाम था डायटॉनिक (Diatonic) स्केल। उन्होंने स्वरों की आन्दोलन संख्या तथा स्वरान्तरालों को निश्चित किया था। उनका कहना था कि विश्व की सभी वस्तुएँ संख्या-तत्त्व पर आधारित हैं। उन्होंने त्रिपोडियन (Tripodian) लायर का भी आविष्कार किया था, जिसे दोनों हाथों एवं पाँवों से बजाया जाता था और सुनने वालों को ऐसा प्रतीत होता था कि उसे तीन व्यक्ति मिलकर बजा रहे हों। कालान्तर में वहाँ अनेक प्रकार के वाद्य-यन्त्रों का प्रचलन हुआ। जैसे-फोर्मिक्स (Phorminx), सिथारा (Cithara), चेलिस (Chelys), टेसतुडो (Testudo), सम्बुका (Sambuka) आदि लायर; नब्ला (Nabla), बरबिटन (Barbiton), ट्राइगोन (Trigonon), मगदिस (Magadis), कवॉन्टो (Cavanto), बौज़ौकी (Bouzouki) आदि तार-वाद्य; पाइप (Pipe), डबल पाइप (Double pipe) फ्लोयेरा (Floyera), ट्रम्पेट (Trumpet), विन्ड ऑर्गन (Wind-Organ), बैग पाइप (Bag-pipe) आदि सुषिर वाद्य; परवुम (Parvum), तिम্পानुम (Tympanum) आदि ताल वाद्य तथा सिम्बलुम (Cymbalum), क्रोटालुम (Crotalum), कम्पानुम (Campanum) आदि धन व करताल जातीय वाद्ययन्त्र इत्यादि।

फ़िजियर, फ़ोनेशिया, इटोलिया, अयोनिया, डोरिस इत्यादि स्थानों से ग्रीक-संगीत का विकास होने के कारण उनके प्रधान स्केलों (Modes) का नामकरण इन देशों के नाम पर ही किया गया है। शहरों के नाम पर अन्य देशों में भी स्केल और रागों का नामकरण हुआ। जैसे-फ़ारस के संगीत में हिजाज, इराक, स्पहान इत्यादि मुकाम तथा भारतीय संगीत में मालवी, सौराष्ट्र, गुर्जरी, सैन्धवी, काम्बोजी और बंगाली इत्यादि राग।

ग्रीकवासी नृत्य में अधिक रुचि नहीं रखते थे फिर भी वहाँ शृंगारप्रधान और वीर रस प्रधान नाटक तथा नृत्य विविध अवसरों पर मनोरंजन के लिए प्रयुक्त होते



थे। ग्रीस के वर्तमान संगीतकारों में स्कलपोटस (१६०४-१६४६) का नाम उल्लेखनीय है जो ऑस्ट्रिया के प्रसिद्ध संगीतविद् शोएनबर्ग (Schoenberg) के शिष्य थे, जिन्होंने ऑर्केस्ट्रा तथा पियानों के लिए अनेक संगीत-रचनाएँ कीं। सन् १९२२ में जन्मे जैनिस् जेनाकिस (Jannis Xenakis) उच्च कोटि के संगीत स्रष्टा हुए जिन्होंने गणित के सूत्रानुसार अनेक लोकप्रिय संगीत रचनाएँ कीं।

## मिश्र का संगीत

मिश्र (Egypt) देश उत्तर अफ्रीका की प्रसिद्ध नदी के तट पर स्थित है। इस देश की संस्कृति बहुत प्राचीन है। वहाँ की गाथाओं से प्रतीत होता है कि ईसा पूर्व २२-८१ के बाद मिश्र के कुछ लोग जब पश्चिम के देशों में जा बसे तो उन्होंने मिश्र के उन्नत ज्ञान-विज्ञान का प्रचार किया। मिश्र की कुछ गृफ़ाओं में पशु-पक्षियों के अतिरिक्त नारी की नृत्यरत मूर्ति भी प्राप्त हुई है। ईसा पूर्व अठारहवीं शताब्दी में जब मिश्र ने दक्षिण-पश्चिम एशिया पर आधिपत्य स्थापित कर लिया तब स्थानीय नृपतिगणों ने मित्रता की स्थापना के प्रतीकस्वरूप उनको अनेक वाद्ययन्त्र एवं नारी कलाकार भेंटस्वरूप प्रदान किए। उसी समय से मिश्र के संगीत में परिवर्तन प्रारम्भ हुआ और भारतीय संगीत के साथ उसका आदान-प्रदान प्रारम्भ हुआ। सर सीरीन्द्र मोहन के अनुसार सातवीं शताब्दी में जब अरब ने मिश्र पर विजय प्राप्त की तबसे वहाँ अरबी संगीत एवं धर्म प्रविष्ट हुए। वर्तमान काल में वहाँ के निवासी अधिकांश रूप में मिश्र व अरब मिश्रित एक वर्ण-संकर जाति के हैं और वहाँ संगीत को भी अरबी भावयुक्त कहना अधिक उचित होगा।

मिश्र के धर्माचार्य संगीत की उन्नति के लिए सदैव अग्रगण्य रहे हैं। विभिन्न शोभायात्रा, धर्मानुष्ठान तथा क्रीड़ा इत्यादि में संगीत का अनुष्ठान आवश्यक था। क्रीड़ा प्रधान एवं व्यायामपरक नृत्य प्राचीन मिश्र में अधिक प्रचलित थे। मिश्र की नील नदी में नाविकों के द्वारा जो गीत गाए जाते हैं, वे उल्लेखनीय हैं। ये गीत एकाकी और समवेत रूप से गाए जाते हैं जिनमें ऋतु एवं परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की धुनों और शब्दों का उल्लेख किया जाता है। भारत में बंगाल में माँझियों के गीतों से इनकी समानता की जा सकती है।

मिश्र में पुरुष संगीतज्ञों को 'अलातीये' (Alateeyeh) तथा नारी संगीतज्ञों को 'अवालिम' (Awalim) कहते हैं। परम्परागत नर्तकियों को 'घवजी' (Ghawazee) कहा जाता है। मस्जिदों की प्रार्थना ईसाइयों की प्रार्थना के समान लय व स्वर में होती है। मिश्र के वाद्ययन्त्रों में हार्प (Harp) जिसे बेनी या बुनी कहते हैं, काफी प्रसिद्ध है जिसमें १०, १३ या २१ तार होते हैं। लायर (Lyre) वाद्य में तीन तार होते हैं जो तीन ऋतुओं को प्रतिबिम्बित करते हैं। तम्बोर (Tambour) को नफ़ेस



(Nofre) कहा जाता है जिसे कोण की सहायता से बजाया जाता है। इसमें कुछ सारिकाएँ (पदें) भी लगी रहती हैं, जिनका रूप आधुनिक गिटार से मिलता-जुलता है। मिश्र में बांसुरी का भी प्रचार है जिनमें अर्घूल ( Arghool ) तथा ज़ुम्मारः ( Zummarh ) उल्लेखनीय हैं। विविध प्रकार के ढोलों में बज़ ( Baz ), तबल ( Tabl ), दिवोल ( Devol ) तथा खंजरी और चंग की भाँति के वाद्य काफ़ी प्रचलित हैं।

अपनी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत और परम्परागत संगीत तथा नृत्य के कारण, मिश्र का संगीत यूरोप और अमेरिका तक में प्रसिद्ध है जिसमें मादकता एवं उपासनायुक्त भाव प्रचुरता से मिलते हैं। मिश्र के बैली नृत्य और भारतीय कथक नृत्य में काफी समान तत्त्व पाए जाते हैं जो शोध का विषय भी बन सकते हैं।



## अरब का संगीत

मुस्लिम राष्ट्रों और मुस्लिम जातियों का संगीत अरब, उत्तर अफ्रीका और पश्चिमी तक विस्तृत है। अरब संगीत के शास्त्रीय ग्रन्थों में नवीं शताब्दी के अल्किदी; अल्फरेबी; अविसेन्ना ( ११ वीं शताब्दी ); सैफुद्दीन ( १३ वीं शताब्दी ); अब्देल कादिर ( १५ वीं शताब्दी ) उल्लेखनीय हैं। इनमें उद और तम्बूर के पदों के आधार पर मुक़ाम की चर्चा करके मुक़ाम पद्धति को स्पष्ट किया गया है। अल्फरेबी से पूर्व तम्बूर के तारों को ४० बराबर हिस्सों में बाँटा गया था जिनमें से पहले पाँच मुख्य तारों को पदों के ऊपर बाँधकर वादन किया जाता था। अल्फरेबी पर प्राचीन ग्रीक शास्त्र का प्रभाव था।

सन् ६२२ ई० में हिजाज़ में इस्लाम का जन्म हुआ। क़ुरान शरीफ़ में संगीत के विरुद्ध कुछ नहीं कहा गया लेकिन मलाही (शराब, औरत और संगीत) से दूर रखने के लिए मुस्लिम कट्टरपंथियों ने संगीत को सुनना निषिद्ध कर दिया। इस प्रकार मुसलमानों की चार बड़ी परम्पराएँ—हनफ़ी, मालिकी, शाफ़ी और हन्बली संगीत के प्रति विमुख हो गईं। यहीं से विवादास्पद मुस्लिम साहित्य प्रचार में आया। तुबाइस (मृत्यु सन् ७१०) नामक व्यक्ति मुस्लिम संप्रदाय का पहला पुरुष संगीतकार हुआ। उसने फ़ारसी धुनों की नक़ल करके अच्छा यश प्राप्त किया जो हिजाज़ के गुलामों में लोकप्रिय हुआ। इस संगीत की लोकप्रियता के कारण अरबों को ईरान की इस कला से परिचित होने के लिए बाध्य होना पड़ा। इसी बीच नशीत जैसे ईरानी संगीतकारों को अपने अमीरों को खुश करने के लिए अरब के संगीत को अपने संगीत में समाहित करना पड़ा। इस प्रकार संगीत का यह आदान-प्रदान बढ़ते-बढ़ते भारत तक आ पहुँचा। इसके बाद याज़िद ( मृत्यु सन् ६८३ ) व अल्वाज़िद (मृत्यु सन् ७१५ में) के संरक्षण में अरब का संगीत पनपने लगा। उस समय इब्न सुराइज, इब्न मिसजा और माबद नामक संगीतकार बहुत प्रसिद्ध हुए।



फारमर को हिस्ट्री के अनुसार अरब को बदल नामक गायिका को ३०,००० गीत याद थे। उरैब को २१,००० और स्पेन की जियाब को १०,००० संगीत रचनाएँ याद थीं। गायक-वादक और संगीत रचयिताओं के जीवन चरित्र से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ रचे गए। अल्-इश्फहानी (मृत्यु सन् ८६७) ने ५० वर्षों की साधना से अल्-अघानी अल्-कबीर नामक किताब तैयार की, जिसे गीतों की एक बड़ी पुस्तक कहा गया। इसके २१ भाग थे और इसमें २० लाख शब्दों का प्रयोग किया गया था। इसमें दसवीं शताब्दी तक के अरेबियन संगीत के इतिहास और गीतों का समावेश किया गया था।

## अरबी संगीत का विकास

अरबों ने एक ऐसी सभ्यता को, जिसमें विभिन्न तत्त्वों का मिश्रण था, एक नया रूप दिया। दूसरी शताब्दी के पश्चात् अरबवासियों ने उत्तर की ओर जाकर बसना प्रारंभ कर दिया, जहाँ पर तीन महत्वपूर्ण प्रांतों ने उन्हें संगीत के विकास के लिए प्रेरित किया। वे थे—सीरिया, मेसोपोटामिया और उत्तरी अरब के कुछ भाग। उत्तरी अरब के इस्लाम के पूर्व के प्रांत अल-हिजाज़, यमन और मेसोपोटामिया में उनकी सहस्रों वर्ष पुरानी सभ्यता के चिह्न शेष रह गए थे, जिनका प्रभाव अरब के लोगों पर पड़ना स्वाभाविक ही था।

इस्लाम के प्रचार से पहले अरब में भक्ति-संगीत, लौकिक संगीत और लोक-संगीत मुख्यतः प्रचार में था। इस समय उनका संगीत गायन-प्रधान था। भक्ति-संगीत के माध्यम से वे लोग अपने देवी-देवताओं की पूजा गायन और नृत्य द्वारा करते थे। धार्मिक संगीत की अपेक्षा इतिहास में लौकिक संगीत के सम्बन्ध में अधिक वर्णन मिलता है। इसमें कैनात और मुगन्निया (स्त्री-गायिकाएँ और दासियाँ) का विशेष स्थान था। इस समय राजाओं के दरबार में, अरबी बद्दुओं के पड़ाव और मधु-शालाओं में काफी संख्या में गायक, गायिकाएँ और नर्तकियाँ उपलब्ध हुआ करती थीं। संगीत-गायन की पहली अवस्था तरजीह (आरंभ का विस्तार) होती थी। उसके बाद जवाब (प्रतिस्तर) और अंतिम भाग का विस्तार विभिन्न प्रकार की कंपन-क्रियाओं द्वारा किया जाता था। वाद्ययन्त्रों में तबल, दफ़, जंक, कदीब (छड़ी), कस्साबा (सुपिर वाद्य) और मिज़मार (रीड-पाइप) का वर्णन पाया जाता है।

उमय्यद (६६१-७५० ई०) और अब्बासी (७५०-८०८ ई०) खलीफाओं के समय में सीरिया और ईराक ललित कलाओं के केन्द्र बने तथा इन्होंने संगीत को बहुत प्रोत्साहन दिया। इन्होंने अपने दरबार सीरिया के दमिश्क में बनाए, जहाँ अनगिनत गायक, वादक और नर्तक रहे। इस समय का सबसे प्रसिद्ध संगीतज्ञ अबु उसमानबिन मिसजाह था। इसे इब्न मिसजाह के नाम से भी जाना जाता है। इसका पिता मिसजाह अब्दुल मलिक बिन मरदान (राज्य-काल ६८४-७०५ ई०) के समय में बहुत नाम कर चुका था। इब्न मिसजाह अब्दुल्ला बिन ज़बैर के शासन-काल का गवैया



था। इसे अरबी शास्त्रीय संगीत का पिता माना जाता है, क्योंकि यह पहला संगीतज्ञ था, जिसने अरबी संगीत को संहिताबद्ध किया। इसने सीरिया, ईरान आदि देशों की यात्रा की और संगीत-शास्त्र का गहन अध्ययन किया। यह एक उच्चक्रोडि का गायक और ल्यूट (वीणा) वादक भी था। उमय्यद खलीफ़ाओं के प्रसिद्ध कुछ संगीतकारों के नाम इस प्रकार हैं—दबीस मुगन्नी, सैयद बिन मिसजाह, इब्न आयशा अल्मदनी, अबु यह्या, हलाल अजा, हब्बाबा, सफ़रुल आलमीन।

अब्बासी वंश के शासन-काल में संगीत का प्रचार निरंतर बढ़ता ही रहा। यह समय अरबी संगीत के इतिहास में स्वर्ण-युग माना गया है। कहते हैं कि हारून रशीद ने 'बैतुल हिकमत' के नाम से एक संस्था कायम की थी, जिसमें यहूदी, ईसाई और हिन्दू विद्वान् शोध-कार्य करते थे। यहाँ अन्य भाषाओं की विभिन्न विषयों की पुस्तकों का अरबी में अनुवाद भी होता था, जिसमें संगीत भी शामिल था। इस समय बग़दाद संगीत का केंद्र बन गया था। अवसरप्राप्त और अवकाश-प्राप्त अमीर-वर्ग के प्रश्रय और प्राचीन सभ्यताओं के साथ संपर्क होने के कारण इस्लामी संस्कृति के विभिन्न अंगों का उदय हुआ। इस समय के संगीतज्ञों में इब्राहीम अल-मूसीली (मृत्यु : ८०४ ई०), इब्राहीम अल-महदी (७७८-८३८ ई०), इसहाक अल-मूसीली (७६७-८५० ई०) और वीणा-वादक जलजाल (मृत्यु : ७८१ ई०) के नाम उल्लेखनीय हैं। एक बार इब्राहीम ने एक लाख पचास हजार स्वर्ण-मुद्राएँ उपहार में प्राप्त की थीं। उसने लगभग आठसौ गीतों की रचना की, जिनमें से सौ गीतों का संकलन इब्न जामी के साथ मिलकर खलीफ़ा हारून अल-रशीद के लिए तैयार किया। इसहाक अल-मूसीली अपने समय का सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ और संगीत-शास्त्री रहा है। उसने संगीत पर अठारह पुस्तकें लिखीं। उसके शिष्य इब्न अल-मुनज्जिम ने संगीत-शास्त्र पर महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'रिसाला फ़िल मूसीकी' लिखी। इस पुस्तक के अनुसार, उस समय अरबी संगीत ग्रीक संगीत से बहुत प्रभावित हुआ। उस समय का अरबी स्केल ग्रीक पाइथागोरियन स्केल के समान था। अब्बासी वंश के समय के कुछ अन्य संगीतज्ञों के नाम इस प्रकार हैं—हम्माद बिन इसहाक, मुरवारिक, अब्दुल्ला, अबु इसहाक नदीम, अब्दुल्ला बिन मूसा, रहमान, इब्न जक्का, इब्न यज़ीद, जुबेर बिन रहमान आदि। गायिकाओं में—बारवस, उरैब, उबैदा, फ़रीदा, जमीला आदि नाम प्रसिद्ध हैं।

### अरब के संगीत-शास्त्री

अरबी संगीत-शास्त्रियों में अल-किदी (७८०-८७३ ई०) बहुत प्रसिद्ध विद्वान् है। इसका जन्म बसरा में हुआ था। इसने संगीत पर अनेकों पुस्तकें लिखी हैं। इनमें 'रिसाला फ़ी खबर', 'रिसाला मूसीकी फ़िल तरतीब तालीफ', 'रिसाला फ़िल इका' और 'किताब तरतीबुल नग़म' उल्लेखनीय हैं। इन्होंने लगभग बारह पुस्तकें संगीत के विषय पर लिखीं, जिनमें से कुछ की हस्तलिपि 'ब्रिटिश-म्यूज़ियम' में सुरक्षित हैं।



अबुनसर फ़ाराबी इस्लाम के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक और संगीत-शास्त्री माने जाते हैं। अल फ़ाराबी (मृत्यु : ८५० ई०) जन्म से तुर्क थे और बग़दाद में आकर बस गए थे। इनकी पुस्तक 'किताब अल-मूसीकी अल-कबीर' अरब संगीत की अत्यंत महत्वपूर्ण पुस्तकों में मानी जाती है। इसमें ध्वनि-स्वरांतर, स्वर-सप्तक, संगीत-जैलियाँ और वाद्ययंत्रों के संबंध में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। कुछ लेखकों के अनुसार, कानून वाद्य का आविष्कारक भी अल-फ़ाराबी ही था। पश्चिमी लेखकों ने अल-फ़ाराबी को 'अरेबियन आरफीयस' कहा है। अल-फ़ाराबी के अनुसार, उसके समय में अरबी संगीत पर उत्तरी सीरिया और खुरासान की कुछ अन्य पुस्तकों के नाम हैं—'किताब मरातिब उन्नूम', 'किताब अल-इका', 'किताब अली-मूसीकी' व 'किताब फ़ी अल-मूसीकी'।

ग्यारहवीं शताब्दी में इब्न सिना (जन्म : ८८० ई०, मृत्यु : १०३७ ई०) बहुत प्रभावशाली विद्वान् रहा है। वह बुख़ारा का रहनेवाला था। उसकी दो पुस्तकें 'किताब अल-शफ़ा' और 'अलनजात' में अरबी संगीत के शास्त्र-पक्ष और कला-पक्ष, दोनों पर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि ये पुस्तकें ईरानियों के लिए लिखी गई थीं, परंतु अरब इनसे बहुत अधिक प्रभावित हुए। इसका कारण यह था कि इसमें शुद्ध अरबी संगीत-शास्त्र का विवरण था। इन पुस्तकों में अरबी स्केल के बारे में विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है। कुछ विद्वानों के अनुसार, शहनाई और मिरचंग (मुँह से बजानेवाला वाद्य) भी इन्हीं का आविष्कार है।

बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में शफ़ी अलदीन अबद अल-मोमिन-अल-बग़दादी (मृत्यु : १२४१ ई०) हुआ, जिसने अरबी संगीत-प्रणाली को सुव्यवस्थित किया। उसे अपने समय के संगीतज्ञों का पथ-प्रदर्शक माना जाता है। यह अरब के अंतिम खलीफ़ा अल-मुस्तसीम (१२४२-१२५८ ई०) के दरबार में कार्य करता था। शफ़ी अलदीन ने दो पुस्तकें लिखीं—'किताब अल-अदवार' और 'रिसालात अल-शरफ़िया फ़िल नसब अल-तालीफ़'। इन दो पुस्तकों का वर्णन लगभग सभी लेखकों, विशेषकर तुर्की और ईरानियों ने किया है। उनके विचार में शफ़ी अलदीन ने अरबी संगीत-प्रणाली का नए ढंग से निरूपण किया है और यह उसका संगीत को बहुत बड़ा योगदान है। इन पुस्तकों में उसने मुख्यतः अरबी लय, ताल और स्केल को विस्तारपूर्वक समझाया है। इस विद्वान् ने उस समय के प्रचलित खुरासानी तुबुर के अरबी स्केल को वैज्ञानिक ढंग से सुव्यवस्थित किया और अरबी ल्यूट पर एक ऐसे स्केल की स्थापना की, जिसके बारे में कुछ पाश्चात्य लेखकों के विचार इस प्रकार हैं—सर ह्यूबर्ट पैरी के अनुसार, यह स्केल सर्वश्रेष्ठ व परिपूर्ण था। रोमेन के अनुसार, पाश्चात्य ईक्वल टेंपरामेंट स्केल की तुलना में शफ़ी अलदीन के स्केल में अधिक स्वर-साम्य था। हेल्महॉट्ज़ के विचार में, संगीत के इतिहास में इस स्केल का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अतिरिक्त यह पहला विद्वान् था, जिसने अरबी संगीत को लिपिवद्ध करने की प्रणाली निकाली। यह लिपि वर्णानुक्रमिक



और संख्यात्मक थी। इनके बताए हुए सिद्धांतों पर आगे चलकर अनेकों टीकाएँ और टिप्पणियाँ लिखी गईं। इन्होंने दो तारोंवाले दो वाद्ययंत्रों का भी आविष्कार किया था, जिनको 'नुजह' और 'मुगनी' नाम दिया। इसके अतिरिक्त मध्य-काल के कुछ अन्य विद्वानों और लेखकों के नाम इस प्रकार हैं—सावित बिन करह बिन ज़करिया, अबुल-हसनअली बिन इब्न अब्दुल्ला, हारून मुहम्मद बिन ज़करिया, अल-जहीज, यहिया अल-मक्का और बनाता आदि।

नवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इस्लाम की राजनैतिक शक्ति क्षीण होने लगी। सन् १७५८ ई० में बगदाद का वस्तुतः हलाकू की मुगल सेनाओं द्वारा विनाश हो गया। असंख्य विद्वान्, वैज्ञानिक, कलाकार और संगीतज्ञों का संहार हुआ। पुस्तकालय तथा शिक्षा-संस्थाओं में आग लगा दी गई।

आधुनिक काल में अरब-संगीत पाश्चात्य संगीत से बहुत प्रभावित हुआ, विशेषकर नेपोलियन की मिस्र पर विजय (१७९८-१८०१ ई०) के पश्चात्। पाश्चात्य वाद्ययन्त्र पियानो, माउथ ऑर्गन और अर्कोर्डियन अधिक प्रचलित होने लगे। मिस्र में 'कायरो ऑपेरा हाउस' की स्थापना हुई। अब विद्यालयों में अरब-संगीत के साथ-साथ पाश्चात्य संगीत की शिक्षा दी जाने लगी है।

### अरबी संगीत के पारिभाषिक शब्द—मक्रामात, आवाजात और ईका

'मक्राम' का शाब्दिक अर्थ है मंच जगह या संस्थान। परंतु अरबी संगीत के संदर्भ में 'मक्राम' शब्द विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसे हम भारतीय रागों का 'प्रतिरूप' कह सकते हैं। कुछ लेखक मक्राम-पद्धति की तुलना भारतीय ठाठ, अथवा मेल-पद्धति से भी करते हैं। आचार्य बृहस्पति के अनुसार, 'संस्थान' शब्द मक्राम का ठीक-ठीक अनुवाद है और पं० लोचन ने ठाठ के लिए 'संस्थान' शब्द का प्रयोग किया है। हर एक मक्राम का अपना स्केल एक या अधिक मूल स्वर और उसके प्रतिरूप स्वर-विस्तार होता है। मक्रामात (बहुवचन) में प्रारंभिक स्वर बहुत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि उसी के आधार पर एक राग से कई अन्य रागों की उत्पत्ति होती है, अर्थात् एक राग के सप्तक के निश्चित स्वरों पर षड्ज को मुक्राम देकर और उसके अनुरूप दूसरे स्वरों को नियमित करके पहले एक ही राग से छह-सात शक्लें पैदा होती हैं। इस प्रणाली की तुलना हम कुछ-कुछ राग-रागिनी-वर्गीकरण-व्यवस्था से कर सकते हैं। वास्तव में मक्राम-पद्धति का उदय ईरान में हुआ, परंतु अरब संगीतज्ञों में यह अधिक प्रचलित हुई। शफी अलदीन ने अपनी पुस्तक 'रिसालात अल शराफिया' में बारह मक्रामों के नाम दिए हैं :—

१. उश्शाक, २. नवा, ३. रास्त, ४. बुसालिक, ५. इसफ़हान, ६. जिराफकंद, ७. बर्क, ८. जंकुला, ९. रहावी, १०. हिजाज, ११. ईराक और १२. हुसैनी।

अरबों ने हर मक्राम का राशि-चिह्न और गाने का समय भी निश्चित किया है। उनका विश्वास है कि हर मक्राम अलग-अलग मनोभावों की उत्पत्ति करता है,



जैसे संतोष, क्रोध, भय, दुःख आदि। ऐसे प्रभाव को 'तासीर' कहा गया है। आवाजात भी मक्कामात के अनुपूरक हैं। 'आवाज़' ईरानी शब्द है। आवाजात के नाम फ़ारसी भाषा के हैं, जबकि मक्कामात के नाम अरबी हैं। उदाहरण के लिए कुछ आवाजात के नाम इस प्रकार हैं—'नौरोज़', 'शहनाज़', 'मुहैयर' और 'सलमाक' आदि।

ईका अरबी संगीत के ताल और लय के उसूल हैं। मकाम और ईका का सम्बन्ध भारतीय राग-ताल के जैसा ही है। मध्य-काल के पूर्वार्द्ध में ईका की संख्या केवल आठ थी, परन्तु आगे चलकर इनकी संख्या इक्कीस हो गई। ये ताल अरबी वाद्यों—दाइरा, तबल और नक्कारा आदि पर बजाए जाते रहे हैं।

### अरबी वाद्ययंत्र

प्राचीन काल से ही अरबी संगीत गायन-प्रधान रहा है, परन्तु इस्लाम के प्रचार के बाद वहाँ ईरानी, तुर्की, यूनानी, मुगल और खुरासानी संगीतज्ञ आए और अपने साथ विभिन्न वाद्ययंत्र भी लाए। इस प्रकार अरब के लोगों की रुचि वाद्य-संगीत में बढ़ने लगी। उस समय की प्रचलित शैली नौबा में गायन के साथ वादन को भी प्रधानता मिली। इसमें बड़ी संख्या में वाद्ययंत्र प्रयोग किए जाते थे। नौबा में गीत के हर भाग की समाप्ति पर साजिदों को वाद्य बजाने का पूरा अवसर दिया जाता था। इस क्रिया को 'तरीका' कहा जाता था। कुछ विद्वानों ने इसका 'तक्रसीम' नाम से वर्णन किया है। अरब के वाद्यों का संक्षिप्त वर्णन निम्न-लिखित है :—

### बारवत

यह अरब का सबसे पुराना वाद्य माना जाता है। अरबी संगीत के इतिहास में इसका वर्णन सातवीं शताब्दी की पुस्तकों में मिलता है। उस समय यह वाद्य सीरिया में बहुत प्रचलित था। यह तारोंवाला वाद्य था, जो भारतीय वीणा से मिलता-जुलता था। इसे अरब में 'उद' नाम से भी जाना जाता था। ग्रीक लोग इसे 'किथारा' कहते हैं।

### तुंबुर या तन्बूर

यह लकड़ी का विभिन्न आकारों का बना हुआ वाद्य है। इसमें तार लगे होते हैं। अल-फाराबी ने इस वाद्य के बारे में लिखा है कि उसके समय में पश्चिम सीरिया में तुंबुर-खुरासानी अधिक प्रचलित था और पूर्व तथा दक्षिण भाग में तुंबुर-बग़दादी। एक तुर्की तुंबुर भी प्रचार में है, जिसे 'तुंबुर कबीर तुर्की' कहा जाता है।

### कानून

कानून अरब के पुराने वाद्यों में से एक है। इसमें छब्बीस तार तीनों भागों में लगे हुए होते हैं। इसका आकार चौकोर होता है। इसके तार ताँत के बने हुए होते हैं। आजकल नायलॉन के तार भी प्रयोग में लाए जाते हैं। इसे धातु की बनी रिंग और छोटे मिज़राब से खींचकर तारों को श्रृंखला किया जाता है।

संगीत-विशारद



## रबाब

रबाब का वर्णन सर्वप्रथम अल फ़ाराबी की पुस्तक में मिलता है। उसके अनुसार यह वाद्य लगभग एक हजार वर्ष पुराना माना जा सकता है। यह वाद्य आज भी अरब के सभी भागों में प्रचलित है। इसके साउंड बॉक्स का आकार चौकोर होता है, जिसमें केवल एक तार लगा होता है और इसे धनुष के आकार की वस्तु ( गज़ ) से बजाया जाता है। यह दो प्रकार का होता है—एक रबाबे-शायर और दूसरा रबाबे-मुग़ान्नी।

## सुरनै

यह अरबी सुषिर वाद्यों में सबसे अधिक प्रचलित है। अरबी में इसे 'मिज़मार' भी कहा जाता है। दो पाइपवाले 'सुरनै' को 'दुनै' कहा जाता है।

सुरनै से मिलता-जुलता वाद्य कसाबा भी प्रचार में है। ताल-वाद्यों में तबल, नक्कारा, डफ, मज़हर, दमामा, ताशा, दाइरा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कमानचा पाश्चात्य वॉयलिन के समान होता है।

## ईरान का संगीत

लगभग २०० वर्ष पहले ईरान के पश्चिम प्रांत में स्थित दर उन्टशी जिसका आधुनिक नाम चोग जम्बिल है, एक उन्नत नगर था। वहाँ से उपलब्ध सामग्री के आधार पर ज्ञात होता है कि वे लोग शिल्प कला, धातुविद्या, वास्तुकला तथा वर्णलिपि इत्यादि में निपुण थे। ईरान की सभ्यता प्रायः ७००० वर्ष पुरानी है, इसका उल्लेख मिलता है। ईसा पूर्व छठी से चौथी शताब्दी में पश्चिम एशिया तथा फ़ारस (Persia) ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। सन् ३३० में पश्चिम एशिया में ग्रीस का आधिपत्य हुआ तो फ़ारस के सांस्कृतिक विकास में बाधा उत्पन्न हुई। उस समय एथेन्स विविध ज्ञान-विज्ञान में उन्नत था। उस समय फ़ारस, अरब, भारत, चीन, जापान आदि एशिया के देशों में संगीत का अच्छा विकास हुआ और इनमें पारस्परिक सम्पर्क भी बना रहा।

सातवीं शताब्दी में मुसलमानों ने फ़ारस पर विजय प्राप्त की। इसके बाद भारत में भी मुस्लिम संस्कृति बढ़ती गई और इस प्रकार फ़ारस और भारत के संगीत का आदान-प्रदान होने लगा। चांग ( Chang ), उद या ल्यूट ( Oud or Lute ), शितारेह कितारः ( Schtareh qitarah ), संतिर ( Santir ), तार ( Tar ), रेबाब ( Rebab ), कमंगेह ( Kemangeh ) तथा गज़ से बजाए जाने वाले कुछ वाद्ययंत्रों के नाम उल्लेखनीय हैं। 'Journey to Persia' नामक ग्रंथ में फ़ारस के शवयात्रा संगीतानुष्ठान का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। इस अनुष्ठान को करबला का शोक संगीत या ताजिया कहा जाता है जो हसन-हुसैन की करबला में मृत्यु की कथा पर आधारित होता है। विवाह संगीत और प्रेमपरक काव्य संगीत का भी ईरान में काफी प्रचार रहा है। गज़ल गायन इसी संस्कृति की देन है।



मुस्लिम आक्रमण से पहले ईरान के लोग अग्नि-पूजक थे। उनके पवित्र ग्रन्थ जिन्दावेस्ता में ऋग्वेद की कुछ ऋचाएँ जैसी की तैसी विद्यमान हैं, केवल 'सा' के स्थान पर 'ह' है। अरबों के आक्रमण और शासन ने ईरान को बहुत प्रभावित किया। ईरान स्वर शास्त्र पर अभारतीय प्रभाव भी है।

'मुकाम' शब्द 'प्रदेश' का वाचक है। ईरानी संगीत में इस शब्द का प्रयोग अष्टक या 'ऑक्टेव' के लिए होता है। सप्तक के स्थान पर अष्टक को स्वर प्राप्ति का आधार माना जाना यूनानी प्रभाव का द्योतक है जिसमें अंतिम स्वर कोई नया नहीं होता अपितु अष्टक के आरम्भक स्वर का ही द्विगुण रूप होता है। ईरान में मूर्च्छना पद्धति का लोप अरब या यूनानी प्रभाव से हुआ : उसी दोष से दूषित ईरानी प्रभाव ने भारत में 'इन्द्रप्रस्थ मत' को जन्म दिया और परिणाम यह हुआ कि 'प्रमाण-श्रुति' के सूक्ष्म अंतर को मूर्त करने वाली मूर्च्छना पद्धति लुप्त हुई और मुकाम सिद्धान्त का अपूर्ण रूप गले पड़ गया।

कुरआन के अनुसार हालाँकि संगीत त्याज्य है फिर भी सूफी मुसलमान भक्तिपरक संगीत को ग्राह्य मानते थे और ईश्वरीय प्रेम से सम्बन्ध रखने वाली रचनाएँ गाते-बजाते थे। मुस्लिम देशों में भी इन लोगों के संगीत प्रेम पर शासन की ओर से कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया।

मुहम्मद गौरी की सेनाओं के साथ चिश्तिया परम्परा के प्रसिद्ध सूफी सन्त शेख मुइनुद्दीन चिश्ती भारत आए और अजमेर में बस गए। इनके आश्रय में अनेक क़वाल गायक रहते थे, जो भारतीय भाषा में सूफी भावनाओं से युक्त गीत गाते और भारतीय जनता को आकृष्ट करते थे।

मुसलमान संगीत को गणित की एक शाखा मानते हैं, उनका अपना एक अलग संगीत शास्त्र है। इस शास्त्र ने भारतीय संगीत को इतना अधिक प्रभावित किया कि वह अपनी वैदिक परम्परा से विच्छिन्न हो गया। अमीर खुसरो की माँ हिन्दू थीं और पिता लाचीन प्रदेश के तुर्क थे। इनका जन्म भारत के एटा जिले के पटियाली गाँव में हुआ था। अमीर खुसरो की मातृभाषा ब्रजभाषा थी। भारतीय रीति-नीति से प्रगाढ़ परिचय, भारतीय कलाओं से प्रेम, ब्राह्मणों से निकट सम्पर्क इत्यादि विशेषताएँ खुसरो को मातृ-पक्ष से मिलीं। इस्लाम धर्म, अरबी, फ़ारसी तुर्की का ज्ञान, मुस्लिम आचार-विचार इत्यादि विशेषताएँ खुसरो के लिए पिता के पक्ष की देन थीं। सूफियों के समन्वयवाद के कारण वे शेख निज़ामुद्दीन चिश्ती के परम कृपा-पात्र रहे। मुस्लिम सुलतानों का आश्रय उन्हें पर्याप्त रूप से मिला। उन्होंने भारतीय और ईरानी कलाकारों की गोष्ठियाँ आयोजित कीं जिनमें उन्होंने विचार विनिमय किया और कराया। परिणाम-स्वरूप मुस्लिम संगीत सिद्धांतों को भारतीय जामा पहनाया गया और 'इन्द्रप्रस्थ मत' के नाम से एक नवीन संप्रदाय का सूत्रपात हुआ। इन्द्रप्रस्थ मत को राजा-श्रय भी मिला और सूफी कलाकारों के द्वारा इसका प्रचार जनता में भी हुआ।



मुस्लिम गुणी मन्त्र, मध्य और तार स्थानों में १२-१२ स्वतंत्र ध्वनियाँ मानते हैं, इनमें कोई ध्वनि किसी अन्य ध्वनि का विकार नहीं मानी जाती। एक स्थान में १२ ध्वनियों या स्वरों की सत्ता मानना भारतीयों के लिए एक नई बात थी, क्योंकि वे तो प्रत्येक स्थान में ७-७ स्वर ही मानते थे। समझौता यों हुआ कि पड़ज और पंचम को अचल मानकर अवशिष्ट ५ स्वरों के २-२ भेद मान लिए जाएँ। इससे स्थिति यों बनी—

आज 'ठाठ' या 'मेल' शब्द से हम जो अर्थ ग्रहण करते हैं, ईरानी लोगों के पास उसके लिए 'मुक्काम' शब्द था। मेल या ठाठ इस मुक्काम के ही पर्यायी शब्द हैं। मुक्काम, मेल या ठाठ में 'स' से 'सं' तक आठ स्वर होते हैं। इसीलिए मुक्काम, मेल या ठाठ 'ऑक्टैव' या 'अष्टक' है। 'सप्तक' नहीं।

'स-म' और 'प-सं', क्रमशः अष्टक के 'पूर्वार्द्ध' और 'उत्तरार्द्ध' के द्योतक हैं। 'पूर्वार्द्ध' ईरानियों के 'पस्ती' (निम्न भाग) शब्द के लिए है और 'उत्तरार्द्ध' ईरानियों के 'बुलन्दी' (उच्च भाग) शब्द का द्योतक है।

इन्द्रप्रस्थ के प्रभाव से भारत में सप्तक का स्थान अष्टक ने ले लिया। परिणाम यह हुआ कि भावी पीढ़ियों के लिए वे ग्रंथ दुर्बोध हो गए, जो इन्द्रप्रस्थ मत के जन्म से पूर्व भारत में लिखे गए थे।

ईरानी संगीत में एक स्थान के अन्तर्गत १७ स्वर हैं। अचल सारिका वाले वाद्यों में इनमें से बारह ले लिए गए। ये बारहों स्वर पृथक् स्वतंत्र स्वर हैं और इनके नाम पृथक्-पृथक् हैं। इन बारहों स्वरों के लिए जो भारतीय स्वर संज्ञाएँ गढ़ी गईं, उनमें पाँच को विकृत और सात को शुद्ध स्वर कहा गया। अर्थात् रास्त-पड़ज, शाहनवाज-कोमल ऋषभ, दोका-तीव्र ऋषभ, कुर्द-कोमल गांधार, सीका-तीव्र गांधार, गिरका-शुद्ध मध्यम, हिजाज-तीव्र मध्यम, नवा-पंचम, हिसार-कोमल धैवत, हुसेनी-तीव्र धैवत, अगनू-कोमल निषाद और नीम, माहुर-तीव्र निषाद। इस प्रकार विदेशी बारह स्वरों के चौखटे में भारतीय स्वर संज्ञाओं को ठोक-पीटकर बिठा दिया गया, जिसके दुष्परिणाम एक लम्बे समय तक भारत को भोगने पड़े हैं।



## पाश्चात्य स्वरलिपि-पद्धति

विश्व में चार स्वरलिपि-पद्धतियों पर ही अन्य सभी स्वरलिपि-पद्धतियाँ आधारित हैं। उन चारों के नाम इस प्रकार हैं :—

१. सोल्फा-स्वरलिपि-पद्धति (Solfa Notation)
२. न्यूम्स-स्वरलिपि-पद्धति (Neumes Notation)
३. चीव-स्वरलिपि-पद्धति (Cheve Notation)
४. स्टाफ-स्वरलिपि-पद्धति (Staff Notation)

### सोल्फा स्वरलिपि-पद्धति

जिस प्रकार भारतीय स्वरों के नाम 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि' हैं, उसी प्रकार पाश्चात्य देशों में सोल्फा स्वरलिपि पद्धति के अंतर्गत स्वरों के नाम 'डो (Do), रे (Re), मी (me), फा (Fa), सोल् (Sol), ला (La), सी (Si) हैं। अर्थात् 'सा, रे, ग, म, प, ध नि' को सोल्फा पद्धति में इस प्रकार लिखेंगे :—

डो, रे, मी, फा, सोल्, ला, सी।

सोल्फा स्वरलिपि-प्रणाली का आधुनिक स्वरूप मिस एस० ए० ग्लोवर तथा जॉन करवेन के प्रयासों का रूप है। प्रारम्भिक संगीत-शिक्षा के लिए इंग्लैंड में इस पद्धति का इस्तेमाल बड़े पैमाने पर होता है। तार-सप्तक के स्वर दिखाने के लिए इस पद्धति में ऊपर खड़ी या पड़ी रेखाएँ लगा दी जाती हैं। इसी प्रकार

मंद्र-सप्तक के स्वरों के नीचे पड़ी रेखाएँ होती हैं; जैसे— $\bar{d} \bar{r} \bar{m}$  या  $d \uparrow r \downarrow m$  (तार-सप्तक के स्वर) तथा  $d \downarrow r \downarrow m$  (मंद्र-सप्तक के स्वर)।



कोमल व तीव्र स्वरों के लिए केवल उच्चारण में ही परिवर्तन कर दिया जाता है; जैसे—डो रे, (Do, Re) के स्थान पर डा, रा (Da, Ra) लिखेंगे। इसी प्रकार तीव्र स्वरों के लिए डे, रे (De, Re) तथा अन्य चिह्नों को दर्शाने के लिए विभिन्न बिन्दुओं आदि का प्रयोग किया जाता है।

### न्यूम्स स्वरलिपि पद्धति

यह स्वरलिपि पद्धति धर्म की गोद में पली और रोम के चर्चों से विकसित हुई। चर्चों में गाए जानेवाले संगीत के प्रचार के लिए इस पद्धति का तीव्रता से प्रसार हुआ। धार्मिक गीतों का संकेत करने के लिए इस पद्धति का बेहद प्रचार हुआ। विराम, स्वल्प विराम तथा डैश और आड़ी-टेढ़ी रेखाओं से ही इस पद्धति में स्वर-स्थानों को इंगित किया जाता है। भारतीय संगीत में वेदकालीन ऋचाओं पर भी इसी प्रकार के चिह्न पाए जाते हैं।

### चीव स्वरलिपि पद्धति

अठारहवीं सदी में फ्रांस के ई० चीव नामक गणितज्ञ ने इस अभिनव स्वरांकन-पद्धति को जन्म दिया, इसीलिए यह 'चीव-नोटेशन' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसमें स्वरों को दिग्दर्शित करने के लिए गणित के अंक प्रयोग में लाए जाते हैं तथा ऊँचे-नीचे स्वर दर्शाने के लिए अंकों के ऊपर और नीचे बिन्दु लगा दिए जाते हैं। हमारे 'सामवेद' के मंत्रों पर भी १, २, ३, ४ स्वर-संकेत मिलते हैं।

### स्टाफ़ स्वरलिपि पद्धति

यह न्यूम्स-नोटेशन का ही परिवर्द्धित रूप है। पाँच समानान्तर आड़ी लकीरों का स्तम्भ (Staff) बनाकर उसके बीच में स्वरों को अंकित किया जाता है। स्वरों के लिए उसमें '○' यह चिह्न प्रयुक्त होता है। इस पद्धति की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें स्वर और ताल को एकसाथ दिखाया जाता है, अर्थात् एक ही चिह्न में स्वर, ताल और लय का संकेत मिल जाएगा। आजकल अधिकांश देशों में इसी पद्धति का प्रचार है। सूक्ष्मतम भावों को प्रकट करने के लिए यह पद्धति सर्वांगीण है, इसलिए अनेक भारतीय कलाकार भी, विशेषकर फ़िल्म-संगीत निर्देशक इसी को अपनाते चले आ रहे हैं।

पाश्चात्य संगीत-शास्त्र के विकास में सामूहिकता, पार्श्व-संगीत तथा साधारण प्रभाव (General Effects) मूल उपादान रहे। इन्हीं को लेकर पाश्चात्य स्टाफ़-स्वरलिपि पद्धति भी पुरःसर होती रही। गिरजाघरों के वृन्द-संगीत में समय-समय पर भिन्न-भिन्न कंठ-स्वरों का समावेश होता रहा। संगीत में शामिल होनेवाले सभी तरह के नादों का प्रतिनिधित्व करना स्टाफ़ स्वरलिपि पद्धति के लिए जरूरी था। स्त्री, पुरुष तथा बालकों के स्वाभाविक कंठ-स्वरों में परस्पर अंतर होता है। इनको भली-भाँति दिग्दर्शित करने के लिए स्टाफ़ स्वरलिपि पद्धति में एक पंक्ति (Staff) और बढ़ा दी गई। स्टाफ़ में पाँच पंक्तियों के स्थान पर अब छह हो गईं, फिर भी संगीत के संभाव्य स्वरों की विविधता तथा मानव-कंठ की विशालता इससे प्रकट न

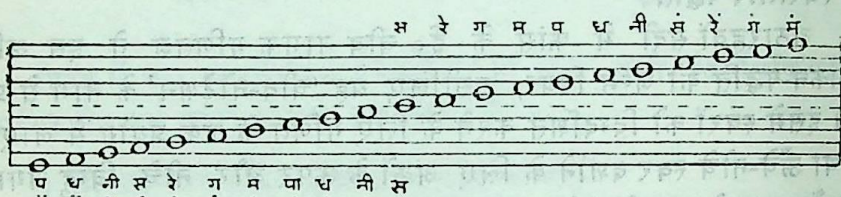


होती थी, इसलिए स्टाफ-स्वरलिपि-पद्धति में ग्यारह प्रंक्तियों ( Staves ) के एक विशाल स्टाफ की कल्पना की गई । इसको पाश्चात्य परिभाषा में ग्रांड स्टाफ ( Grand Staff ) के नाम से संबोधित किया गया ।

स्टाफ-स्वरलिपि-पद्धति को पढ़ने और समझने के लिए उसके स्वर-संकेतों ( Symbols ) से परिचित होना आवश्यक है, जो कि क्रमबद्ध दिए जाते हैं :—

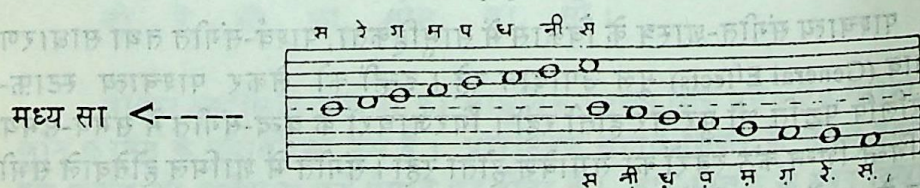
### शुद्ध स्वरों का लिखना

स्टाफ-नोटेशन-पद्धति में स्वरों को प्रकट करने के लिए अंडाकार-जैसे गोल चिह्न का प्रयोग किया जाता है । यह क्रिया ग्यारह सीधी रेखाओं की सहायता से की जाती है । स्वरों को प्रकट करनेवाला अंडे के आकार का चिह्न इन्हीं रेखाओं के ऊपर और मध्य में रखा जाता है; जैसे :—



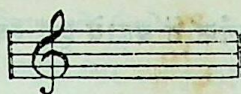
ध्यान से देखने पर मालूम होगा कि १. यदि एक स्वर रेखा के ऊपर है, तो दूसरा दो रेखाओं के बीच में । फिर, २. प्रत्येक स्वर को प्रदर्शित करने के लिए केवल एक ही चिह्न का आधार लिया गया है । ३. नीचे से छठी रेखा को पूरा न बनाकर बिंदु-रेखा की भाँति बना दिया गया है । और ४. इसी चित्र के नीचे के लिखे हुए स्वरों में अन्तिम 'सा' तथा ऊपर के लिखे स्वरों से प्रारम्भ 'सा' इसी बिंदु-रेखा पर स्थित है ।

अब यदि इस बिंदु-रेखा पर आनेवाले स्वर को 'मध्य-सप्तक का सा' मान लें, तो मध्य-सप्तक के स्वरों की ओर मंद्र-सप्तक के स्वरों को इस प्रकार लिखा जाएगा :—



आप पूछ सकते हैं कि यदि हमें कोई-सी रचना लिखनी है, जिसमें सबसे नीचा स्वर मध्य-सा तक ही हो, तब भी क्या ये ग्यारहों रेखाएँ खींचनी होंगी ? नहीं । उस स्थिति में हम केवल ऊपर की पाँच रेखाएँ खींच लेंगे और उन रेखाओं से पहले आगे दिए चिह्न को लगा देंगे :—

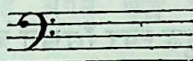




### ट्रेबिल क्लैफ

पाश्चात्य संगीत में इस चिह्न को ट्रेबिल क्लैफ (Treble Clef) का चिह्न कहते हैं और यह चिह्न इस बात को बताता है कि यदि इन रेखाओं में सबसे नीचे एक छोटी-सी रेखा खींचकर उसके ऊपर स्वर लिख दें, तो वह स्वर मध्य-सप्तक का 'सा' होगा।

इसी प्रकार यदि स्वर-रचना ऐसी है कि उसमें सबसे ऊँचा स्वर मध्य-सा है, तो इस चिह्न के स्थान पर निम्नांकित चिह्न को लगा देंगे:—



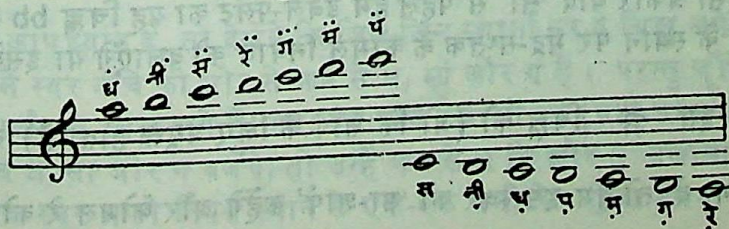
### बास क्लैफ

पाश्चात्य संगीत में इस चिह्न को बास क्लैफ (Bass Clef) का चिह्न कहते हैं। यह चिह्न इस बात को बताता है कि पाँच रेखाओं के ऊपर एक छोटी-सी रेखा खींचकर यदि उस रेखा पर स्वर लिख दें, तो वह मध्य-सा होगा।

अब यदि दोनों चिह्नों को एक स्थान पर लिख दें और मध्य-सा के स्थान पर कोई स्वर न लिखकर केवल बिंदु-रेखा खींच दें, तो इन दोनों क्लैफ पर लिखे जानेवाले स्वर इस प्रकार होंगे:—



यहाँ आप पुनः यह प्रश्न कर सकते हैं कि यदि ट्रेबिल क्लैफ में या बास क्लैफ में जितने स्वर लिखे जा सकते हैं, उनके अतिरिक्त भी कुछ स्वर लिखने हों, तब क्या करेंगे? इसके लिए जब हमें इन रेखाओं से अधिक ऊँचे या अधिक नीचे स्वर लिखने होते हैं, तो हम आवश्यकतानुसार छोटी-छोटी अन्य रेखाएँ खींच लेते हैं। इन रेखाओं को लैजर-लाइंस (Ledger Lines) कहते हैं। नीचे के ट्रेबिल क्लैफ के ऊपर और नीचे बढ़ाए हुए स्वर देखिए:—





इसी आधार पर बास क्लैफ में बढ़ाये हुए स्वर देखिए :—



### विकृत स्वरों को लिखना

अभी तक हमने आपको शुद्ध स्वर लिखने बताए हैं। अब हम आपको विकृत स्वर लिखना बताते हैं। किंतु विकृत स्वरों को लिखने से पूर्व आपको यह समझ लेना चाहिए कि पाश्चात्य संगीत में एक स्वर से उससे बराबर वाले स्वर की दूरी को सेमीटोन कहते हैं अर्थात् सा से रे या रे से रे, या ग से म, अथवा नि से सा के बीच की दूरी एक-एक सेमीटोन है। और जब दो सेमीटोन की दूरी मिल जाती है, तो उसे एक टोन की दूरी कहते हैं; जैसे—सा से शुद्ध रे अथवा शुद्ध रे से शुद्ध ग की दूरी एक टोन कहलाएगी। इसी प्रकार अन्य स्वरों के बारे में भी समझना चाहिए।

पाश्चात्य संगीत में दो बातें और ध्यान में रखनी चाहिए—१. प्रत्येक स्वर अपने शुद्ध स्थान से एक टोन ऊँचा या एक टोन नीचा हो सकता है और २. भारतीय संगीत की भाँति पाश्चात्य संगीत में षड्ज और पंचम अचल नहीं होते; वरन् वे भी एक टोन ऊँचे या नीचे हो सकते हैं।

अतः जब कोई शुद्ध स्वर अपने स्थान से एक सेमीटोन नीचा होता है, तो उसे फ्लैट (Flat) कहते हैं और उससे पहले इस  $b$  चिह्न को (जो कि फ्लैट का चिह्न कहलाता है) लगा देते हैं।

यदि हम चिह्न को मध्य-सप्तक के षड्ज से पहले लगा दें, तो फिर उसे 'सा' न कहकर 'सा-फ्लैट' कहेंगे और गाते या बजाते समय मंद्र-सप्तक की शुद्ध नि का प्रयोग करेंगे।

इसी प्रकार यदि 'सा' से पहले हम डबल-फ्लैट का यह चिह्न  $bb$  लगा दें तो अब 'सा' के स्थान पर मंद्र-सप्तक के कोमल निषाद को बजाएँगे या इसके विपरीत यदि हम इस  $\sharp$  चिह्न को (जो कि शार्प के लिए प्रयुक्त होता है) सा स्वर से पहले लगा दें, तो हम इस स्वर को 'सा-शार्प' कहेंगे और कोमल रे को बजाएँगे।

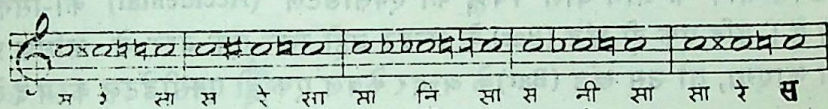


परन्तु यदि सा से पहले चिह्न को ( जो कि डबल-शार्प के लिए प्रयुक्त होता है ) लगा दें, तो अब 'सा' स्वर 'सा डबल-शार्प' कहलाएगा और बजाते समय शुद्ध रे बजेगा ।

**स्वरों को पुनः शुद्ध रूप देना**

जब किसी डबल-फ्लैट स्वर को अथवा डबल-शार्प स्वर को पुनः शुद्ध स्वर के स्थान पर लाना होता है, तो इस  $\flat$   $\sharp$  चिह्न को लगा देते हैं । इस चिह्न का

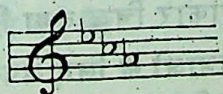
नाम नेचुरल (Natural) चिह्न है । कभी-कभी केवल एक चिह्न का प्रयोग होता है । इसका अर्थ यही होगा कि जो भी स्वर अपने स्थान से ऊँचा या नीचा किया गया है, इस चिह्न को लगाने के बाद वह अपने शुद्ध रूप में (Natural) ही बजेगा; जैसे :—



इस प्रकार आप देखेंगे कि रेखा के ऊपर आनेवाले अथवा दो रेखाओं के बीच में आनेवाले किसी स्वर को उसी स्थान पर रखते हुए भी, केवल चिह्नों द्वारा ही ऊँचा या नीचा किया जा सकता । फिर चिह्न द्वारा ही उसे पुनः शुद्ध रूप दिया जा सकता है ।

### की-सिगनेचर (Key-Signature)

यहाँ तक आपने देख लिया कि यदि हमें कोई स्वरलिपि ऐसी लिखनी है, जिसमें कोई स्वर विकृत लगता हो, तो हम जब भी उस स्वर को लिखेंगे, तभी हमें उससे पहले फ्लैट या शार्प का चिह्न लगाना होगा । इस प्रकार हमें बहुत-से स्थानों पर फ्लैट या शार्प के चिह्न लगाने होंगे । स्वर से पहले हर बार इस चिह्न को लगाने की परेशानी को ध्यान में रखकर ही पाश्चात्य संगीत में इस चिह्न को क्लैफ के तुरंत बाद ही लगा देते हैं; जैसे—



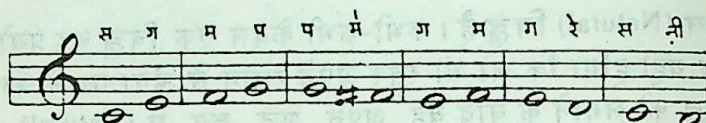
यदि आप ध्यान दें, तो देखेंगे कि जिन-जिन स्थानों पर ये चिह्न लगे हैं, वहाँ पर आनेवाले स्वर नीचे की ओर से क्रम से ध, सां और गं हैं । परन्तु चूँकि इनके स्थानों पर फ्लैट के चिह्न लगे हैं, अतः इन पाँच रेखाओं पर (चाहे ऊपर या नीचे) कहीं भी जब ध, सा और ग बजेंगे, तो उन्हें क्रम से ध नि और ग बजाना होगा । अर्थात् प्रत्येक स्वर अपने नियत स्थान से एक-एक सेमीटोन नीचा बजेगा ।



इस प्रकार जो फ्लैट या शार्प के चिह्न क्लैफ के तुरन्त बाद लगाए जाते हैं; उन्हें आवश्यक (Essential) की-सिग्नेचर कहते हैं और वे जिस स्वर के लिए प्रयोग किए गए हैं, वह स्वर जब भी आएगा, उससे प्रभावित होगा।

### आकस्मिक की-सिग्नेचर (Accidental key-Signature)

परन्तु यदि यह चिह्न क्लैफ के तुरन्त बाद न आकर किसी भी 'बार' (Bar) 'खंड' के बीच में ही आ जाए, तो उसका अर्थ होगा कि वह स्वर केवल उसी खंड (Bar) में उस चिह्न से प्रभावित रहेगा; जैसे :—



इस प्रकार किसी भी खंड (Bar) के बीच में 'फ्लैट', 'शार्प' या 'डबल फ्लैट' या 'डबल-शार्प' के आने वाले चिह्न को एक्सीडेंटल (Accidental) की-सिग्नेचर कहते हैं। यदि एक ही खंड (Bar) के अन्दर वही स्वर एक बार से अधिक प्रयोग किया जाएगा, तो उस खंड (Bar) के अन्दर केवल एक ही एक्सीडेंटल काम दे देगा।

### बार-लाइन्स (Bar-Lines)

भारतीय संगीत की भाँति ही पाश्चात्य संगीत में भी रचना को कुछ खंडों में विभाजित कर देते हैं, किन्तु पाश्चात्य संगीत में प्रत्येक विभाग के अन्दर मात्राओं का समान होना आवश्यक है। जैसे यदि एक खंड में तीन स्वर लिए गए हैं, तो अब प्रत्येक खंड (Bar) में तीन-तीन ही स्वर होंगे। इसी प्रकार यदि पहले खंड में चार, पाँच या छह स्वर हैं, तो जिस रचना में पहले खंड में चार स्वर हैं, उसके आगे भी उस रचना के प्रत्येक विभाग में चार-चार स्वर ही (समान मात्रा-काल के) होंगे। इसी प्रकार अन्य खंडों के विषय में भी समझना चाहिए।

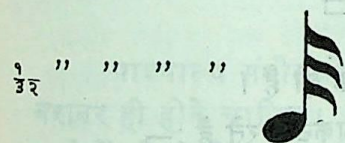
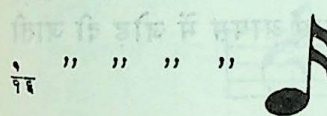
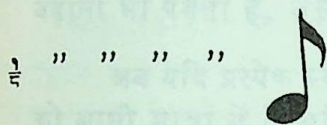
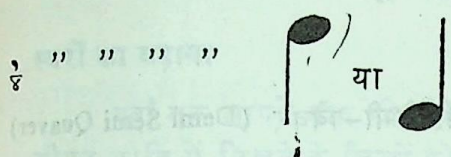
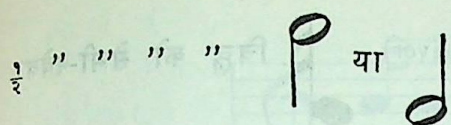
### ध्वनियों के समय को लिखना

एक मात्रा पर कितने काल तक ठहरा जाए इसके लिए हमारे संगीत में भातखंडे जी ने तो प्रत्येक स्वर को ही एक मात्रा के बराबर मानकर स्वरलिपि लिख दी। जब एक मात्रा में एक से अधिक जितने भी स्वर लिखने हुए, तो उन समस्त स्वर के नीचे एक चन्द्राकार चिह्न लगा दिया।


विष्णुदिगंबर जी ने मात्राओं के लिए अपने अलग-अलग चिह्न न बनाकर उन्हें प्रत्येक स्वर के नीचे रख दिया। परन्तु पाश्चात्य पद्धति में अक्षर न होने के कारण उन्होंने मात्राओं के अनुसार ही उनके रूप में थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन कर दिया; जैसे—

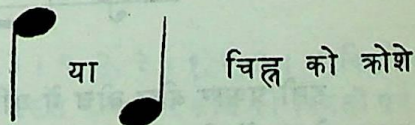
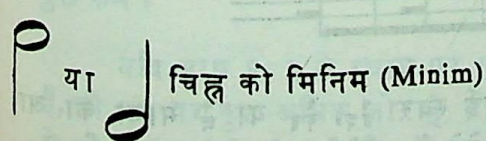
१ मात्रा को प्रकट करने के लिए ○





यहाँ आप देखेंगे कि एक मात्रा को प्रकट करनेवाला स्वर बीच में से खाली है। आधी मात्रा का बनाते समय उसमें एक रेखा जोड़ दी गई है। ये रेखाएँ ऊपर या नीचे, जिधर भी सुंदर लगें, लगाई जा सकती हैं। चौथाई मात्रा का स्वर लिखते समय, उसी आधी मात्रावाले बिंदु को स्याही से भर दिया गया है।  $\frac{1}{2}$  मात्रावाले में एक रेखा,  $\frac{1}{4}$  मात्रावाले में दो रेखाएँ, और  $\frac{1}{8}$  मात्रावाले में तीन रेखाएँ सीधे हाथ की ओर जोड़ दी गई हैं।

अंग्रेजी में इस  चिह्न का नाम सेमी-ब्रीव (Semi-breve) है।





(Crotchet);



चिह्न को क्वेवर (Quaver)



चिह्न को सेमी-क्वेवर

(Semi Quaver) और

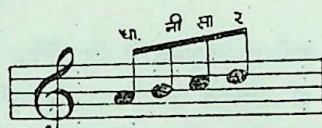


चिह्न को डेमी-सेमी-क्वेवर (Demi Semi Quaver)

कहते हैं।

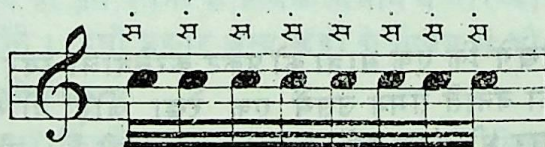
### विविध मात्राओं को लिखना

जब दो या दो से अधिक  $\frac{1}{2}$  या  $\frac{1}{4}$  या  $\frac{3}{8}$  मात्रावाले स्वरों को जोड़ा जाता है, तो उसमें सीधे हाथ की ओर लगाई हुई रेखाएँ आपस में जोड़ दी जाती हैं, जैसे :—

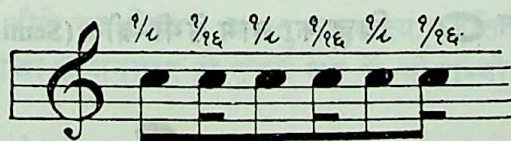


इसके अर्थ होंगे कि ये समस्त स्वर  $\frac{1}{2}$  मात्रा के ही हैं।

नीचे के चित्र में समस्त स्वर  $\frac{3}{8}$  मात्रा को प्रकट करते हैं :—

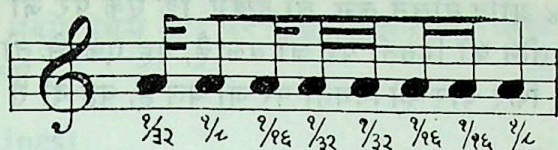


कभी-कभी ऐसा होता है कि  $\frac{1}{2}$  मात्रा के स्वर बजाते समय कोई-कोई स्वर बीच-बीच में  $\frac{1}{4}$  मात्रा का भी आ जाता है। उस समय उसी विशेष स्वर में एक रेखा अधिक जोड़कर काम में ले लिया जाता है, जैसे :—



इसी प्रकार बीच-बीच में यदि कोई स्वर  $\frac{3}{8}$ ,  $\frac{1}{4}$  या  $\frac{1}{2}$  मात्रा का आ जाए, तो उसमें तीन या दो रेखाएँ जोड़ देते हैं, जैसे :—

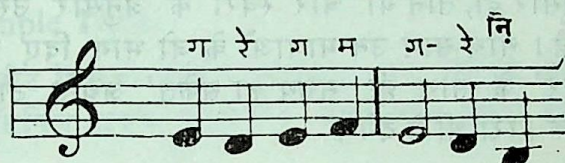




### स्वरों का बढ़ाना

यहाँ तक आपने नाद की ऊँचाई-नीचाई तथा स्वरों को बराबर, दुगुन, चौगुन आदि में लिखने के चिह्नों को समझ लिया। परन्तु स्वरों को कभी-कभी बढ़ाना भी पड़ता है, जैसे—ग रे ग म। ग - रे नि।

अब यदि प्रत्येक स्वर को चौथाई-चौथाई मात्रा में लिखें तो पाँचवें स्वर को आधी मात्रा में लिखने से वह काम हो जाएगा, जैसे :—



### सरल ताल-चिह्न

पाश्चात्य संगीतज्ञों का विश्वास है कि संगीत में ताल के भाग बराबर-बराबर ही होने चाहिए। ऐसा न हो कि किसी एक खंड में दो मात्राएँ हों, तो दूसरे में तीन; जैसा कि भारतीय संगीत के झप ताल आदि में १, २। १, २, ३। इस क्रम से स्वरों का विभाजन होता रहता है। उनके विचार से यदि एक खंड में दो स्वर आते हैं, तो प्रत्येक खंड में सदैव दो ही रहने चाहिए। यदि ये तीन या चार हैं, तो सदैव तीन या चार ही रखने चाहिए, अर्थात् प्रत्येक ताल के विभाग में स्वरों का वजन बराबर रहना चाहिए।

अब यहाँ फिर प्रश्न उपस्थित होता है कि यह किस भाँति समझा जाए कि कौनसी रचना कितनी गिनतियों के खंड में लिखी जाएगी। इसके लिए एक बात जो बड़े महत्त्व की है वह है नाद का छोटा-बड़ापन। जब आप क्रम से १, २। १, २, ३। १, २, ३। का उच्चारण करते हैं, तो ध्यान से सुनने पर आप देखेंगे कि आप एक की गिनती पर कुछ अधिक जोर देते हैं और दो की गिनती पर कुछ कम।

यदि आप १, २ के स्थान पर १, २, ३। १, २, ३। १, २, ३। आदि बोलते हैं, तो एक पर कुछ अधिक जोर है, दो पर उससे कम और तीन की गिनती पर दो से भी कम, क्योंकि गिनती तीन पर समाप्त हो रही है। इसी कारण जब आप १, २,



३, ४। १, २, ३, ४ आदि बोलने लगें, तो देखेंगे कि एक पर जो जोर है, दो पर उससे कम है और तीन की गिनती पर जो बल है, वह एक से तो कम है, पर दो से कुछ अधिक है। फिर चार की गिनती पर जो बल है, वह दो से भी कुछ कम है।

### एक्सेन्ट ( Accent )

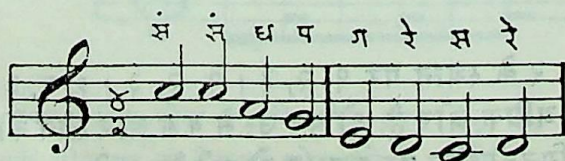
इस प्रकार विदित होगा कि साधारणतः प्रत्येक दो गिनतियों के उच्चारण में प्रथम गिनती पर जो बल या जोर रहता है, दूसरी पर उससे कुछ कम हो जाता है। इसी प्रकार यदि आप एक ही साँस में कुछ गिनतियाँ बोलते चले जाएँ, तो यही क्रम आता रहेगा, परन्तु सबसे अधिक बल एक की गिनती पर ही रहेगा। इस प्रकार के बल का नाम एक्सेन्ट (Accent) कहलाता है। अतः अब आप स्वयं ही यह देखें कि किस रचना को किस प्रकार की स्वरलिपि में लिखने पर सुन्दरता रहेगी, उसी के अनुसार दो, तीन या चार स्वरों के अनुसार उसकी स्वरलिपि लिखी जा सकती है। साथ-साथ उन मात्राओं के जो भाग दिए जाएँगे, उनका संकेत 'की-सिग्नेचर' के साथ ही 'समय का संकेत' अर्थात् टाइम सिग्नेचर (Time Signature) के द्वारा भी दे देंगे।

### टाइम-सिग्नेचर (Time Signature)

टाइम-सिग्नेचर को प्रकट करने के लिए दो गिनतियों का प्रयोग किया जाता है, जिसमें ऊपर की संख्या प्रत्येक खंड (Bar) में दिए गए स्वरों की गिनती को प्रकट करती है और नीचे की संख्या यह प्रकट करती है कि कितनी-कितनी मात्राओं के स्वर प्रयोग किए हैं। उदाहरण के लिए आगे के चित्र देखिए :—



इसका अर्थ हुआ कि एक खंड में दो-दो स्वर आधी-आधी मात्रा के हैं। इसके ही यदि चार-चार स्वरों के खंड करने हों, तो टाइम-सिग्नेचर को बदलना पड़ेगा, जो इस प्रकार होगा :—





स्वरों को विभाजित करते समय इस बात की ओर ध्यान रखा जाता है कि बार-लाइन (Bar Line) में सबसे प्रथम स्वर पर कुछ अधिक बल रहेगा और उसके अगले स्वर पर कुछ कम।

### बार-लाइन्स (Bar Lines)

ये रेखाएँ स्टाफ की रेखाओं के स्वरों को समानता से विभाजित करने वाली सीधी खड़ी रेखाएँ होती हैं।

### मैज़र (Measure)

जो विभाग इन बार-लाइनों के द्वारा बनते हैं, उन्हें मैज़र्स (Measures) कहते हैं। कुछ लोग उसे केवल 'बार' (Bar) कहते हैं। एक मैज़र या बार में जितने स्वर रखे जाते हैं, उन्हें बीट्स (Beats) कहते हैं।

### साधारण काल (Simple Time)

जब प्रत्येक बीट में सेमी-ब्रीव के साधारण भाग मिनिम, क्राँशे या क्वेवर आदि हों तो उसे 'सिपल टाइम' कहते हैं। इसके तीन प्रकार होते हैं, जो इस प्रकार हैं :—

#### ड्यूपल टाइम (Duple Time)

जब एक 'बार' (Bar) में दो स्वर (Beats) हों, तो उसे 'ड्यूपल टाइम' कहते हैं, जैसे :—

५ या २ के अर्थ हैं

३ " " "

२ " " "



#### ट्रिपल टाइम (Triple Time)

जब एक 'बार' (Bar) में तीन स्वर (Beats) हों तो उसे 'ट्रिपल टाइम' कहते हैं, जैसे :—



|                           |                                                                                   |
|---------------------------|-----------------------------------------------------------------------------------|
| $\frac{3}{2}$ के अर्थ हैं |  |
| $\frac{3}{4}$ " " "       |  |
| $\frac{3}{8}$ " " "       |  |

### क्वाड्रपल टाइम (Quadruple Time)

जब एक 'बार' (Bar) में चार स्वर (Beats) हों, तो उसे 'क्वाड्रपल टाइम' कहते हैं, जैसे :—

|                                         |                                                                                     |
|-----------------------------------------|-------------------------------------------------------------------------------------|
| $\text{C}$ या $\frac{4}{2}$ के अर्थ हैं |   |
| $\text{C}$ या $\frac{4}{4}$ " " "       |   |
| $\frac{4}{8}$ " " "                     |  |

### कॉमन टाइम (Common Time)

जब एक 'बार' (Bar) में चार क्रांति बीट्स हों (जैसे  $\frac{4}{4}$  में) तो उसे 'कॉमन टाइम' कहते हैं।

### 'कम्पाउंड टाइम' (Compound Time) अर्थात् यौगिक काल

अब तक आपने एक 'बार' (Bar) में एक-एक स्वर रखना सीख लिया; जैसे सा सा सा, परन्तु यदि आपको एक 'बार' (Bar) में सा S S को इस प्रकार लिखना है कि सा एक बजे और दो मात्रा के काल तक उसे लंबा किया जाए, तो ऊपर के क्रम को बदलना पड़ेगा। ऐसा करने के लिए पाश्चात्य संगीत में बिंदुओं का उपयोग किया जाता है। यदि किसी स्वर के आगे एक बिन्दु (Dot) लगा दिया जाए, तो उस स्वर का काल ड्योढ़ा हो जाता है। यदि उसी बिंदु के आगे एक बिंदु और रख दिया जाए तो उसमें पहले बिंदु से आधा काल और जुड़ जाता है अथवा यों कहो कि उस स्वर में  $\frac{3}{4}$  स्वर और जुड़ जाता है। आगे के पृष्ठ पर दी गई तालिका इसे स्पष्ट कर देगी।



०. बराबर होगा ० + ०

०.. " " ० + ० + ०

०. " " ० + ०

०.. " " ० + ० + ०

०. " " ० + ०

०.. " " ० + ० + ०

जब प्रत्येक स्वर (Beat) एक बिंदु-सहित (Dotted) स्वर के बराबर हो तो उसे कम्पाउंड टाइम (Compound Time) कहते हैं।

यौगिक काल (Compound Time) के भी तीन प्रकार होते हैं, जो यहाँ दिए जा रहे हैं।

कम्पाउंड ड्यूपल टाइम (Compound Duple Time)

६ के अर्थ हैं

८ " " "

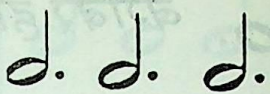


६ " " "

१६

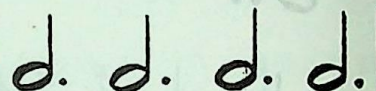


०. ०.  
०. ०.  
०. ०.



## कम्पाउंड ट्रिपल टाइम (Compound Triple Time)

|         |             |  |                                                                                   |
|---------|-------------|--|-----------------------------------------------------------------------------------|
| ६<br>४  | के अर्थ हैं |  |  |
| ६<br>८  | " " "       |  |  |
| ६<br>१६ | " " "       |  |  |

## कम्पाउंड क्वाड्रुपल टाइम (Compound Quadruple Time)

|          |             |  |                                                                                     |
|----------|-------------|--|-------------------------------------------------------------------------------------|
| १२<br>४  | के अर्थ हैं |  |   |
| १२<br>८  | " " "       |  |   |
| १२<br>१६ | " " "       |  |  |

इस आधार से हम यह कह सकते हैं कि यदि टाइम-सिग्नेचर में ऊपर की संख्या छह से कम है, तो सिपल टाइम (Simple Time) है। यदि यह छह या इससे अधिक है, तो कम्पाउंड टाइम (Compound Time) है।

जैसा कि हम पिछले अध्याय में बता चुके हैं कि 'बल' (Accent) 'बार-लाइन' (Bar) के प्रत्येक प्रारंभिक स्वर पर होता है, यह सिपल ड्युपल और सिपल ट्रिपल टाइम में ही लागू है। सिपल क्वाड्रुपल टाइम में प्रत्येक 'बार' (Bar) के प्रथम स्वर (Beat) पर अधिक 'बल' रहता है और तीसरे स्वर (Beat) पर यह 'बल' कुछ कम हो जाता है। यौगिक काल में प्रथम स्वर पर अधिक बल देकर शेष प्रत्येक 'बार' (Bar) के प्रथम स्वर पर मध्य 'बल' दिया जाता है।



## पाश्चात्य संगीत में 'रिदम' (Rhythm)

पाश्चात्य संगीत में नाद के काल का उपयोग 'रिदम' के द्वारा किया जाता है, किन्तु 'रिदम' 'मैलॉडी' के बिना भी पाई जाती है, जैसे कि ताल-वाद्यों पर या किसी पैसिल इत्यादि से मेज पर खट-खट करने पर या हाथों से तालियाँ बजाने पर। 'रिदम' शब्द की चाहे जैसी परिभाषा की जाए, किंतु अधिकांश संगीतज्ञ तो क्या, संगीत का अल्प ज्ञान रखनेवाले व्यक्ति भी इस परिभाषा से पूर्णतया सहमत नहीं हो सकेंगे। अतः संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि 'नाद के काल' से सम्बन्धित प्रत्येक बात 'रिदम' के अन्तर्गत आ जाती है। जैसे स्वरों का काल (Beats), किसी विशेष स्वर पर बल देकर उच्चारण करना (Accents), ताल के विभाग (Bar या Measures), अनेक स्वरों को मिलाकर 'बार' की रचना करना (Grouping of Beats into measures) या इन ताल-विभागों से संगीत की रचना (Grouping of Measures into phrases) इत्यादि सब-कुछ 'रिदम' के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार 'रिदम' के अन्तर्गत संगीत की वे समस्त बातें आती हैं, जो कि नाद के काल और किसी विशेष स्वर पर बल देकर उच्चारण करने से सम्बन्धित हैं।

नाद के काल से सम्बन्ध रखनेवाली 'रिदम' से हमारा आशय यह है कि जब भिन्न मात्रा-काल के स्वरों को किसी विशेष क्रम से मिला दिया जाय तो रिदम उत्पन्न हो जाती है; जैसे—'सा सा - सा' या 'सा - सा सा' इत्यादि।

किसी विशेष स्वर पर बल देकर उच्चारण करने से हमारा अभिप्राय यह है कि यदि हम क्रम से १, २। १, २। १, २। १, २। अथवा १, २, ३। १, २, ३। १, २, ३। १, २, ३ का उच्चारण किसी एक लय में, एक की गिनती पर हाथ से ताली देते हुए इस प्रकार करें कि जब भी एक का अंक आए, वहाँ उच्चारण में कुछ अधिक बल दे दें तो जो भाव यहाँ एक के अंक को सुनते समय उत्पन्न होगा, उस भाव को 'रिदम' कहा जा सकता है। अब यदि ताली तो एक के अंक पर ही देते रहें, परन्तु उच्चारण का बल दो या तीन की गिनती पर कर दें तो यही 'रिदम' का अन्य रूप होगा।

'रिदम' प्रायः तीन प्रकार की होती हैं, जो 'मैट्रिकल', 'मैज़र्ड' और 'फ्री-रिदम' कहलाती हैं। इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है :—



## मैट्रीकल रिदम

जब बलाघात साधारणतया प्रत्येक ताल-खंड (Bar) के आरंभ में आता हो और प्रत्येक ताल-खंड (Bar) में आनेवाले स्वर-समूह (Beats) समान हों, तो उसे मैट्रीकल रिदम कहते हैं। इस प्रकार के स्वर-समूह दो, तीन, चार और कभी-कभी पाँच स्वरों के होते हैं। इन्हें बार-रेखाओं (Bar Lines) के द्वारा पृथक् किया जाता है। किसी एक ताल-खण्ड (Bar) के अन्तर्गत आनेवाले सम्पूर्ण स्वर-समूह को 'मैज़र' (Measure) कहते हैं। जिस आधार पर मैज़र बनाया जाता है, उसे 'मीटर' (Metre) कहते हैं।

## मैज़र्ड रिदम

ऊपर बताई गई मैट्रीकल रिदम को स्वरों के आधार पर बनाया जाता है, जबकि मैज़र्ड रिदम को गायन-वादन की लम्बाई के विभाग करके बनाया जाता है। इस प्रकार इसमें स्वरों के स्थान पर भिन्न-भिन्न मैज़र्स का योग होता है। जैसे एक मैज़र दो स्वरों की है और दूसरी तीन स्वरों की, तो इनसे मिलकर २+३ या ३+२ की मिली हुई एक मैज़र बन सकती है। इसी प्रकार सात स्वरों के लिए २+२+३ या ३+२+२ या २+३+२ की एक मैज़र बनाई जा सकती है। ऐसा करने पर ताली देने का काम एक समान नहीं रहता। इस प्रकार की रिदम भारतीय संगीत में खूब मिलती है लेकिन ऐसी रिदम में तालियाँ देने का स्थान एकसमान नहीं रहता, इसलिए इस रिदम को पाश्चात्य संगीत में नहीं लिखा जा सकता।



## पाश्चात्य संगीत में हारमॉनी और मैलॉडी

संगीत के विद्यार्थी प्रायः विचार किया करते हैं कि भारतीय और पाश्चात्य संगीत में कौन अधिक उत्तम है ! यह बहुत दिनों से कहा जाता है कि भारतीय संगीत का आधार मैलॉडी (Melody) है और पाश्चात्य संगीत का हारमॉनी (Harmony) है । कुछ विद्वानों का मत है कि हारमॉनी, मैलॉडी का ही सुधरा हुआ रूप है । कुछ भी हो, यह कहना कठिन है कि दोनों में कौन अधिक उत्तम है । लेकिन यह सत्य है कि दोनों के कार्य पृथक्-पृथक् हैं ।

जब एक-एक स्वर को इस प्रकार रखा जाए कि स्वर-रचना चित्ताकर्षक बन जाए तो उसे मैलॉडी कहेंगे । परन्तु जब कम-से-कम दो अथवा दो से अधिक स्वरों को साथ-साथ बजाकर रचना की जाए तो उसे एक प्रकार से 'हारमॉनी' कह सकते हैं । जब हम किन्हीं दो अथवा दो से अधिक स्वरों को एकदम साथ-साथ बजाएँ तो जो सब स्वरों की सम्मिलित ध्वनि उत्पन्न होगी, उसे कॉर्ड (Chord) कहते हैं । जब इन्हीं कॉर्ड्स का मिश्रण धुनों के साथ लगातार बजाया जाए तो जो ध्वनि उत्पन्न होगी, उसे 'हारमॉनी' कहेंगे । इसे अधिक स्पष्ट यों कहा जा सकता है कि मैलॉडी की रचना में एक-के-बाद-एक स्वर का प्रयोग किया जाता है, जबकि हारमॉनी में स्वर के स्थान पर एक-के-बाद-एक स्वर-कॉर्ड्स बजाई जाती हैं । दूसरा उदाहरण स्वरों के आधार पर इस प्रकार दिया जा सकता है कि 'ग प नि सा' में हम जब स्वरों को एक-के-बाद-एक बजाते हैं तो इसे मैलॉडी कहेंगे । अब यदि जितने काल में हमने एक स्वर 'ग' बजाया है, उतने ही काल में हम तीन स्वरों 'सा ग प' को एकसाथ दबाकर बजा दें [चूँकि इन तीनों स्वरों को एकसाथ बजाना है, अतः हम इन्हें एक-के-ऊपर-एक लिखेंगे; जैसे—<sup>प</sup>ग] तो यही सा

हमारी एक कॉर्ड होगी । जब हम चार कॉर्ड्स की एक कल्पित रचना को किसी धुन के साथ उतने ही काल में बजा दें, जितने काल में कि चार स्वरों की धुन 'ग प नि सा' को बजाया है (अर्थात् एक कॉर्ड या तीन स्वरों को एकसाथ दबाकर एक स्वर के काल में बजाएँ, इस प्रकार चार कॉर्ड्स को चार स्वरों के काल में बजा दें); जैसे—<sup>प प नि रें</sup>ग ग प नि तो इस प्रकार से जो ध्वनि उत्पन्न होगी; उसे <sup>सा सा ग प</sup>'हारमॉनी' कहेंगे ।



अब यदि हम अपने भावों की ओर ध्यान दें, तो देखेंगे कि हममें दो प्रकार की भावनाएँ स्थित हैं। एक तो वे, जो हृदय से उत्पन्न होती हैं, जैसे प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, दया आदि। इन्हें आन्तरिक भावनाएँ कहा जा सकता है। दूसरी वे, जो बाह्य कारणों द्वारा ग्रहण की जाकर, शरीर पर प्रभाव उत्पन्न करती हैं, जैसे भय अथवा आश्चर्य आदि। जब हम कोई भयानक दृश्य देखते हैं तो डर से कांपने लगते हैं, आवाज़ नहीं निकल पाती और डर से पीले पड़ जाते हैं। इसी प्रकार आश्चर्य के दृश्य देखकर भी चकित हो जाते हैं। जिन बाह्य कारणों से हम पर प्रभाव उत्पन्न हुआ है, उन्हें हम बाह्य भावनाएँ भी कह सकते हैं।

आन्तरिक भावनाओं को उत्पन्न करने की शक्ति केवल भारतीय संगीत अथवा मैलॉडी में है, जबकि बाह्य भावनाओं को केवल हारमॉनी ही उत्पन्न कर सकती है। मैलॉडी हृदय से उत्पन्न होती है और हारमॉनी हृदय को प्रभावित करती है। मैलॉडी का कार्य हारमॉनी के कार्य से बिलकुल भिन्न है। किसी को भी एक-दूसरे से बड़ा नहीं कहा जा सकता। हारमॉनी बाहर से हृदय पर प्रभाव डालती है और मैलॉडी उसे अंदर से प्रकट करती है। हारमॉनी के द्वारा प्रभाव बाहर से अन्दर हृदय तक पहुँचता है, जबकि मैलॉडी उसे अन्दर से बाहर निकालती है। मैलॉडी दो हृदयों को मिलाती भी है और दूर भी कर सकती है, परन्तु हारमॉनी केवल प्राकृतिक रूप से उन्हें मिलाती ही है। अतः मैलॉडी में केवल एक ही ध्वनि यथेष्ट है, परन्तु हारमॉनी में एक से अधिक ध्वनियों का होना आवश्यक है। यही दोनों का मुख्य अन्तर है।

पाश्चात्य संगीत में भी जब हृदय के भाव उत्पन्न किए जा रहे हों तो हारमॉनी अधिक उपयुक्त नहीं जँचती। उससे एक प्रकार की गड़बड़ी ही उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए एक वीर सैनिक जब अपनी प्रियतमा से विदा लेते समय गाता है—‘विदा प्रिये, विदा’ (Good bye sweet heart Good bye) तो इनमें एक से अधिक स्वरों का मिश्रण अर्थात् हारमॉनी अधिक उत्तम न होकर कुछ भद्दी ही प्रतीत होगी। कारण कि यहाँ गायक केवल एक ही मनुष्य है, बहुत नहीं। इसी प्रकार जब कोई प्रेमी व प्रेमिका प्रेम-वार्तालाप में संलग्न हों तब, अथवा भक्त भगवान् की पूजा करने में तल्लीन हो तब, कोई भी अन्य ध्वनि, चाहे वह कितनी ही मधुर क्यों न हों, उनके ध्यान को खींचेगी ही। वह ध्वनि उस समय रुचिकर न होकर कुछ-न-कुछ व्यवधान ही उत्पन्न करेगी।

जब मनुष्य में क्रोध उत्पन्न होता है तो उसका नाद ऊँचा हो जाता है और वह अपने भावों को उच्चारण द्वारा ही प्रकट करता है। तब यह नितान्त असम्भव है कि मनुष्य एक समय में ही दो अथवा अधिक ध्वनियाँ गले से उत्पन्न कर सके। इसलिए भारतीय संगीत में हृदय के भावों को उत्पन्न करने के लिए केवल मैलॉडी का ही प्रयोग होता है। इसीलिए जब गायक के साथ संगति करने के लिए सारंगी आदि वाद्य बजाए जाते हैं तो वे वाद्य उसके द्वारा गाए हुए स्वरों को अधिक स्पष्ट और प्रभावशाली बनाने में सहायक होते हैं।



परन्तु इसके विपरीत जब एक मनुष्य समुद्र के किनारे खड़ा होकर, उसकी विशालता का आनन्द लेता है, तो उसका भी हृदय एक विशेष आनन्द से प्रफुल्लित हो जाता है। लहरें, एक-के-बाद-एक किनारे से टकरा रही हैं, भाँति-भाँति की चिड़ियाँ इधर-उधर चूँ-चूँ करती हुई ऊपर उड़ रही हैं। सनसनाती हवा बह रही है, कभी-कभी दूसरे लोगों की बातचीत की ध्वनि सुनाई देती है। हो सकता है कि एक मछेरा दूर बैठा हुआ जोर-जोर से कुछ गा भी रहा हो। क्या आप बतला सकेंगे कि इस भावना को प्रकट करने के लिए किस प्रकार के संगीत की आवश्यकता होगी ?

आपकी मैलॉडी इसे प्रकट करने में असमर्थ है। यहाँ तो हारमॉनी का ही, जिसमें एक से अधिक स्वरों को मिलाकर प्रभाव उत्पन्न किया जाता है, सहारा लेना पड़ेगा। किसी एक वाद्य द्वारा लहरों के लगातार किनारे से टकराने की ध्वनि उत्पन्न करनी होगी। किसी दूसरे वाद्य से चिड़ियों की चूँ-चूँ की ध्वनि उत्पन्न करनी होगी। किसी तीसरे से हवा के बहने की सनसनाहट की ध्वनि उत्पन्न करनी पड़ेगी। किसी चौथे से बीच-बीच में सुनाई देनेवाली मनुष्यों की बातचीत का प्रभाव भी उत्पन्न करना होगा। और, पाँचवें वाद्य से दूर से सुनाई देनेवाले मछेरे के गीत को प्रकट करने का भाव भी उत्पन्न करना होगा। इस प्रकार आप देखेंगे कि यहाँ अनेक वाद्यों अथवा ध्वनियों की सहायता के बिना आप इस भाव को उत्पन्न नहीं कर सकते। साथ-साथ ये सारी ध्वनियाँ अलग होते हुए भी एकसाथ ही बजेंगी और फिर भी मधुर लगेंगी। यही हारमॉनी की विशेषता है।

अब दैनिक जीवन की घटनाओं के कुछ उदाहरण ले लीजिए। मान लीजिए कि आप, किसी घर में आग लग जाने पर जब अनेक मनुष्य अपनी अलग-अलग आवाजों से चिल्ला रहे हों, अथवा समुद्र में एक जहाज डूब रहा हो, अथवा अनेक मनुष्यों द्वारा की जानेवाली लड़ाई इत्यादि को संगीत द्वारा प्रकट करना चाहते हैं तो चूँकि ये सारी ध्वनियाँ किसी कारणवश ऊँचे-नीचे अस्थिर नाद को ही प्रकट करती हैं, अतः संगीत के द्वारा प्रकट नहीं कर सकते। संगीत द्वारा प्रकट करने के लिए नियमित नाद और प्राकृतिक नाद ही अधिक उपयुक्त हैं। यदि नाद को हारमॉनी की सहायता से उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाएगा तो वह प्राकृतिक प्रतीत न होकर कृत्रिम ही दिखाई पड़ेगा।

यहाँ पर एक बात और स्पष्ट समझ लेनी चाहिए कि भारतीय संगीत में जब एक ही ध्वनि अनेक वाद्यों—जैसे सितार, सरोद, जलतरंग, सारंगी आदि—पर बजती है तो वह हारमॉनी नहीं है। कारण कि उससे तो एक ही ध्वनि के स्वरों को विभिन्न जाति के वाद्यों द्वारा प्रकट करके, उसके नाद को बड़ा किया जाता है, जबकि हारमॉनी में प्रत्येक वाद्य पृथक्-पृथक् स्वर बजाएगा और फिर भी मिश्रण प्राकृतिक ही प्रतीत होगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मैलॉडी द्वारा हृदय के भाव बाहर आते हैं और हारमॉनी द्वारा भाव बाहर से हृदय तक पहुँचते हैं, जो अन्य वाद्यों की संगति से अधिक प्रभावशाली बनते हैं।



यहाँ एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए कि जब हम हारमॉनी को सुनते हैं तो उसमें जो मैलॉडी की स्वर्णिम रेखा चलती है, हम उसे ही सुनते हैं। कोई भी हारमॉनी बिना मैलॉडी के नहीं बन सकती। हारमॉनी के रचयिता भी पहले एक मैलॉडी की रचना करते हैं, उसके उपरांत ही उसे हारमॉनाइज करते हैं, अर्थात् उसे अन्य स्वरों से सजाते हैं।

अब यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि जब हारमॉनी में भी मैलॉडी ही प्रधान है, तब समस्त यूरोप में हारमॉनी ही अधिक प्रिय क्यों है? यही नहीं, बल्कि यह बड़ी तीव्र गति से भारतीय संगीत में भी क्यों प्रवेश कर रही है? इसका उत्तर केवल यही हो सकता है कि जब कोई मस्तिष्क नवीन खोज करता है तो कुछ लोग उसमें भी आनन्द लेने ही लगते हैं। उदाहरण के लिए, ताश के पत्तों पर कुछ काली और लाल निरर्थक बूँदें और चित्र हैं, परन्तु फिर भी इनके प्रेमी जब ताश के पत्ते हाथ में लेकर बैठ जाते हैं तो सारी सुध-बुध भूल जाते हैं। यही नहीं, वरन् इन निरर्थक बूँदों के आधार पर ही हज़ारों का नफ़ा-नुक़सान भी उठाते हैं। फिर हारमॉनी में तो संगीत की बाह्य भावनाओं को व्यक्त करने का विशेष गुण भी है, तब इसकी ओर झुकना स्वाभाविक है।

आधुनिक युग में यह सिद्ध किया जा चुका है कि संसार में हारमॉनी के सिद्धांत की सर्वप्रथम खोज भारत ने की थी और इसका शुद्धतम रूप मैलॉडी है। जो रूप पाश्चात्य विद्वानों ने इसे दिया है, वह इतना शुद्ध नहीं है, जितना कि यह भारतीय रूप।

### सिपिल-हारमॉनी

हारमॉनी का जो रूप अबतक बताया गया है, उसे सिपिल हारमॉनी कहते हैं।

### काउंटर-पाइंट-हारमॉनी (Counter Point Harmony)

जब एकसाथ दो एक से अधिक (Melodies) को मिला दिया जाता है तो उसे काउंटर-पाइंट-हारमॉनी कहते हैं। उदाहरण के लिए, आप एक धुन गा रहे हैं। इधर रचयिता ने कोई दूसरी धुन (Melody) पृथक् निर्माण करके किसी अन्य वाद्य पर बजानी प्रारंभ कर दी, तो उसे काउंटर-पाइंट-हारमॉनी कहते हैं। यदि एक के स्थान पर एक से अधिक वाद्यों पर इस प्रकार की भिन्न धुनें बजाई जाएँ, तो आप देखेंगे कि उनके स्वरों से कॉर्ड्स बन जाएँगी और तभी हारमॉनी भी उत्पन्न हो जाएगी और यह समस्त काउंटर-पाइंट-हारमॉनी कहलाएगी।

### सिकोपेशन (Syncopation)

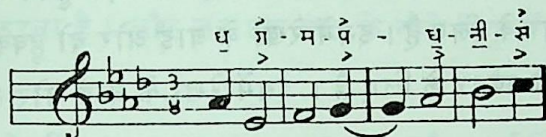
अभी तक आपने देखा कि 'बार' (Bar) के तुरन्त बाद में आनेवाले स्वर पर ही नाद कुछ बड़ा होता है। परन्तु यदि इस प्रारंभिक स्वर के अतिरिक्त किसी अन्य स्वर का नाद बड़ा कर दें, तो आप देखेंगे कि गति में कुछ वैचित्र्य-सा आ जाता है। इसे ही सिकोपेशन (Syncopation) कहते हैं। उदाहरण के लिए, आगे के पृष्ठ पर लिखे स्वरों पर जो मोटे टाइप में लिखे हैं, बड़ा नाद कर दीजिए। देखिए, कैसा प्रतीत होता है।



(क) नि सा नि रे सा रे नि सा

(ख) नि सा नि सा रे नि सा

इस प्रकार आप देखेंगे कि जिन स्वरों पर बल नहीं होता, उन स्वरों पर बल दे देने से 'सिकोपेशन' होता है। ऊपर (ख) उदाहरण में यह स्पष्ट करके दिखाया गया है। इसको प्रकट करने के लिए > या < या Δ चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। चन्द्र (Tie) चिह्न — के द्वारा भी यही क्रिया की जाती है। उदाहरण के लिए एक रचना देखिए :—



यहाँ जिन-जिन स्वरों पर > चिह्न हैं, उन सब पर नाद कुछ बड़ा करना है। साथ में 'प' स्वर को दूसरी और तीसरी 'बार' (Bar) में चन्द्र के द्वारा जोड़ दिया है। इस चन्द्र का अर्थ है कि प्रथम स्वर को उतने ही काल तक और रोकना है। चन्द्र का चिह्न सदैव दो या दो से अधिक समान नादों के स्वरों पर ही लगाया जाता है।

स्लर (Slur)

जब — यह चिह्न किन्हीं ऐसे दो या दो से अधिक स्वरों पर लगा हुआ हो, जिनका नाद ऊँचा-नीचा हो, तो उसका अर्थ होगा कि वे सारे स्वर मीड़ की भाँति ही निकलेंगे, अर्थात् बीच में क्रम टूटेगा नहीं। इस चिह्न को 'स्लर' (Slur) कहते हैं। यह सदैव दो-दो स्वरों के ऊपर अलग-अलग लगाना पड़ेगा, जैसे :—



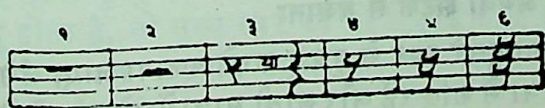
(ठीक तरीका)



(ग़लत तरीका)

टिकाव (Rest)

यहाँ तक हमने स्वरों को हर प्रकार से लिखने का ढंग बता दिया। इनके अतिरिक्त पाश्चात्य पद्धति में एक विशेष चिह्न और होता है, जो भारतीय पद्धति में नहीं है। वह चिह्न है, बिल्कुल शांत हो जाने का। अर्थात् जितने काल का वह चिह्न है, उतने समय तक न तो कुछ गाना ही है और न बजाना, किन्तु पूर्ण रूप से शांत रहना है। ये चिह्न कुल छह प्रकार के होते हैं, जो इस प्रकार हैं :—





नं० १ को सेमीब्रीव के काल की शांति के लिए प्रयोग करते हैं। यह रेखा के नीचे की ओर होता है।

नं० २ को सिनिम के लिए प्रयोग करते हैं। यह रेखा के ऊपर की ओर होता है।

नं० ३ क्रॉशे के लिए है। इसमें एक रेखा के सीधी ओर एक हुक्क-सा (मुड़ी हुई रेखा) होता है।

नं० ४ क्वेवर के लिए है। इसमें रेखा के बाईं ओर एक हुक्क-सा होता है।

नं० ५ सेमीक्वेवर के लिए है। इसमें रेखा के बाईं ओर दो हुक्क से होते हैं।

नं० ६ डेमी-सेमी-क्वेवर के लिए है। इसमें रेखा के बाईं ओर तीन हुक्क-से होते हैं।

इसमें सेमीब्रीव का टिकाव सदैव एक पूरी 'बार' (Bar) की शांति के लिए प्रयोग किया जाता है। यदि उसके ऊपर कोई अंक लिखा हो, तो उतनी ही 'बार्स' (Bars) की शांति के लिए प्रयोग किया जाता है, जैसे :—

| ३ | ५ |
|---|---|
|   |   |
|   |   |
|   |   |

टिकाव (Rest) को लम्बा करने के लिए उसके आगे भी बिन्दु रख देते हैं। जैसे यदि हम क्रॉशे के आगे एक बिन्दु रख देंगे, तो उसका मान तीन क्वेवर के टिकाव के बराबर हो जाएगा। आवश्यकता पड़ने पर किसी टिकाव के चिह्न के आगे दो बिन्दु भी रखे जा सकते हैं। इस प्रकार करने से उस टिकाव का काल और बढ़ जाता है। अर्थात् प्रथम बिन्दु लगाने से आधा और दूसरे बिन्दु के लग जाने से चौथाई काल और बढ़ जाएगा।

### लम्बा करना (Pause)

जब किसी स्वर अथवा टिकाव (Rest) के ऊपर  $\circ$  या नीचे  $\circ$  लम्बा टिकाव (Pause) का चिह्न लगा हो, तो उसका अर्थ है कि उस स्वर अथवा टिकाव को कुछ काल तक स्थिर रखना है। कितनी देर तक स्थिर करना है, यह संगीतज्ञ की इच्छा पर निर्भर है।

### अधिक लम्बा (Lunga Pause)


इसी प्रकार कभी-कभी जब अधिक काल के लिए स्वर अथवा टिकाव को लम्बा करना होता है, तो उसके लिए 'लंगा पोज़' (Lunga Pause) भी लिख देते हैं।

### स्टेकैटो (Staccato) अथवा झटके से बजाना


जब एक स्वर को दूसरे स्वर से पृथक् करके बजाया जाए, जैसे एक स्वर को बजाते समय आधी मात्रा में शांत रहें और आधी मात्रा में उसे बजाएँ तो उसे 'स्टेकैटो'



कहेंगे। इसको तीन प्रकार से बजाया जाता है। एक तो स्वरों के ऊपर डैश (Dash)

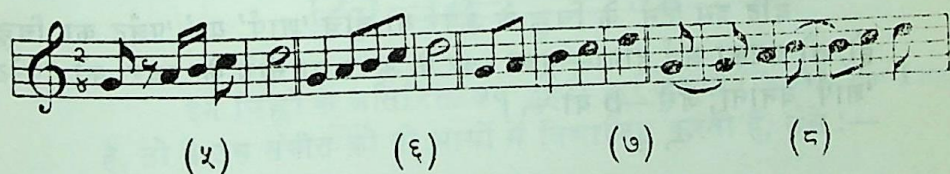
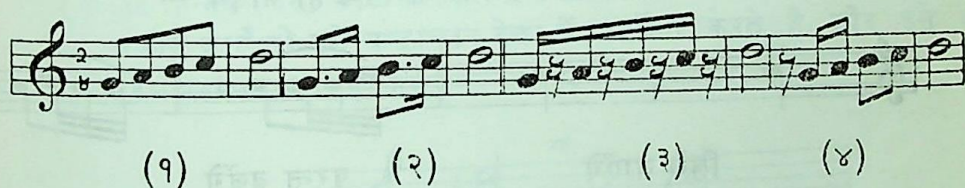
लगाकर; जैसे  इसका अर्थ यह है कि स्वरों को बहुत छोटा करना।

दूसरे बिन्दु (Dot) लगाकर; जैसे  इसका अर्थ यह है कि डैश-जितना

छोटा नहीं करना है। और जब एक चन्द्र के नीचे बिंदु हों; जैसे  तो

इसका अर्थ है कि लगभग आधा स्वर बजाना है। इसीलिए इसे 'मेज़ो-स्टैकैटो' (Mezzo Staccato) या 'हाफ़-स्टैकैटो' (Half Staccato) भी कहते हैं।

अब आप नीचे लिखे स्वरों को पढ़िए। प्रत्येक 'बार' (Bar) में केवल पाँच सीधे स्वर 'प ध नि सां रें' हैं। देखिए, केवल टिकाव से ही अथवा उनके काल को बदल-बदलकर कैसे-कैसे सुन्दर रूप बन सकते हैं।



## कण-स्वर और उनके प्रकार

जो छोटे-छोटे स्वर मुख्य स्वरों के अतिरिक्त उनके ऊपर लिखे रहते हैं, उन्हें कण-स्वर कहते हैं। उनके प्रयोग से स्वर में अधिक मिठास प्रतीत होती है। इनमें मुख्य-मुख्य इस प्रकार हैं :—

एपोगिएचुरा (Appoggiatura) स्वर, मुख्य स्वर के पहले छोटा-सा लिखा रहता है। यह प्रायः मुख्य स्वर का आधा काल स्वयं ले लेता है। यदि इस स्वर के आगे बिन्दु होता है, तो मुख्य स्वर का दो तिहाई काल ले लेता है। यही नहीं, यह मुख्य स्वर से नाद का बड़प्पन भी ले लेता है। अर्थात् इसका नाद मुख्य स्वर से कुछ बड़ा होता है; जैसे :—



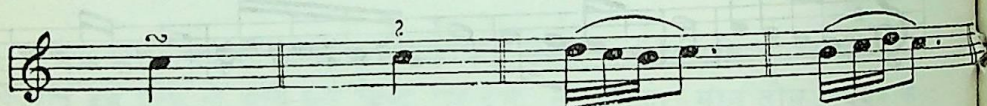


(लिखने का प्रकार) (बजाने का प्रकार) (लिखने का प्रकार) (बजाने का प्रकार)  
जब इस छोटे-से स्वर में एक रेखा का चिह्न और लगा दिया जाए अथवा

इससे छोटे स्वर का रूप यह <sup>A</sup>J कर दिया जाए, तो इसे 'एक्कीएकचुरा' (Acciacatura) कहते हैं। इसका अर्थ है कि इस स्वर को जितनी भी जल्दी हो सके, बजा देना चाहिए। यह स्वर मूल स्वर 'एपोगिएचुरा' (Appoggiatura) से उसके नाद को भी नहीं लेता अर्थात् इस स्वर पर नाद बड़ा नहीं किया जाता है।

### टर्न (Turn)

जब किसी स्वर के ऊपर यह चिह्न न लगा हो, तो इसका अर्थ होगा कि मुख्य स्वर से ऊपर का स्वर, मुख्य स्वर, इससे नीचे का स्वर और मुख्य स्वर बजेगा; जैसे नि का अर्थ है कि 'सा नि ध नि', इसे 'टर्न' (Turn) कहते हैं। जब यह उल्टा (Inverted) अर्थात् इस प्रकार का होता है, तो उसका अर्थ है कि पहले मुख्य स्वर से नीचे का स्वर बजेगा। ये दोनों नीचे के चित्र से स्पष्ट हो जाएँगे :—



लिखे जाएँगे

परन्तु बजेंगे

यदि इस 'टर्न' के चिह्न के ऊपर या नीचे 'शार्प' या 'फ्लैट' का चिह्न लगा हो, तो इसका अर्थ होगा—मुख्य स्वर के ऊपर या नीचे के स्वर को 'फ्लैट' या 'शार्प' बनाना; जैसे—b या ♯।



जब एक स्वर के बाद दूसरे स्वर को शीघ्रता से बजाना हो, तो उसे 'ट्रिल' या 'शेक' (Trill या Shake) कहते हैं। इसमें लिखा हुआ स्वर तथा उससे ऊपर का स्वर बजेगा; जैसे :—

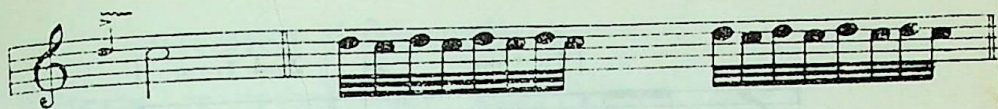


लिखा जाएगा

परन्तु बजेगा

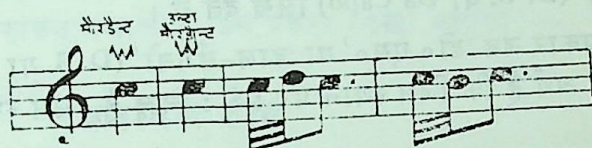
जब यह 'ट्रिल' ऊपर के स्वर से प्रारम्भ होगा, तो ऊपरवाला स्वर छोटा-सा ऊपर लिखा होगा; जैसे :—





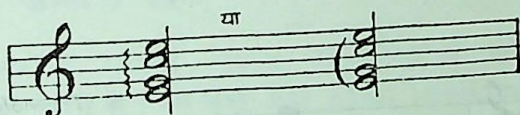
लिखा जाएगा परन्तु बजेगा

जब एक लम्बी ट्रिल बजाकर समाप्त की जाती है, तो वह मोरडेंट (Mordent) से समाप्त होती है। मोरडेंट में चार के स्थान पर जल्दी से तीन स्वर बजाए जाते हैं। यह उलटा (Inverted) भी होता है। इसमें (उलटे में) लिखा स्वर, नीचे का स्वर और फिर मुख्य स्वर बजाया जाता है। इसका चिह्न W यह है। इनवर्टेड मोरडेंट का चिह्न W यह है; जैसे :—

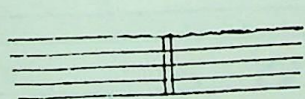


लिखा जाएगा परन्तु बजेगा

जब किसी कॉर्ड के स्वर नीचे से ऊपर की ओर शीघ्रता से एक क्रम में बजाए जाएँ तो उसे चन्द्राकार रेखा में प्रदर्शित करते हैं और इसे आरपेजो (Arpeggion) कहते हैं, जैसे :—



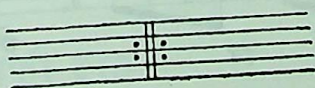
इन चिह्नों के अतिरिक्त जब दुहरी वार-रेखाएँ (Double Bar Lines) आती हैं, तो ये उस संगीत को दो भागों में विभाजित करती हैं, जैसे :—



यदि इन दुहरी बार्स (Double Bars) के किसी ओर

बिन्दु रख दिए जाएँ तो जिस ओर बिन्दु होंगे, उधर की ओर के संगीत को पुनः

बजाना है, जैसे :—

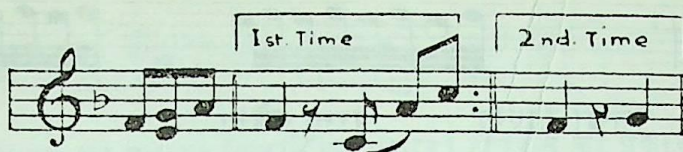


इसके अतिरिक्त जिस टुकड़े को

दो बार बजाना होता है, उसके ऊपर कभी-कभी 'फर्स्ट टाइम' (1st. Time) और 'सैकंड टाइम' (2nd. Time) भी लिख देते हैं, जैसे :—

संगीत-विशारद





यहाँ जब इस टुकड़े को दुबारा बजाएँगे, तो जिस भाग पर (Ist. Time) लिखा है, उसे न बजाकर, उसके स्थान पर उस भाग को, बजाएँगे जिस पर (2nd. Time) लिखा है।

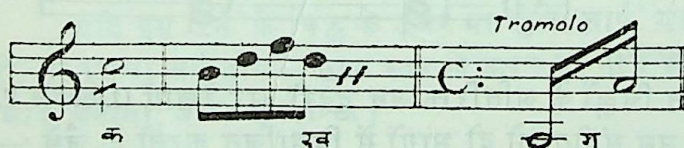
जब किसी भाग की प्रारम्भ से ही पुनरावृत्ति करनी होती है, तो 'डी० सी०' या 'डा-कैपो' (D. C. या Da Capo) लिख देते हैं।

इसी प्रकार जब 'डी० एस०' या 'डाल-सैगनो' (D. S. या Dal segno) लिखा हो तो उसका अर्थ है कि जिस स्थान पर : \$ : चिह्न है, उस स्थान से पुनरावृत्ति करनी है।

कभी-कभी दो बार्स (Bars) के अन्त में समाप्त 'टाइम' (Time) शब्द लिखा रखता है। उसका अर्थ है कि गीत का भाग यहाँ समाप्त हो गया।

कभी-कभी दाहिने हाथ से बजने वाले संगीत के आगे (R. H. या M. D.) और बाएँ हाथ से बजनेवाले के आगे (R. H. या M. F.) लिखा रहता है।

इसके अतिरिक्त कुछ चिह्न नीचे और दिए जा रहे हैं। ये निम्न-प्रकार से लिखे जाएँगे :—



किन्तु बजेंगे इस प्रकार :—

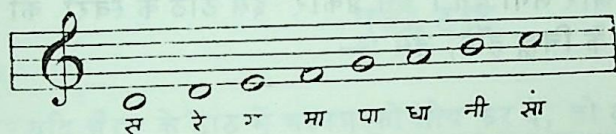




# पाश्चात्य संगीत-पद्धति में ठाठ व रागों का स्वरांकन

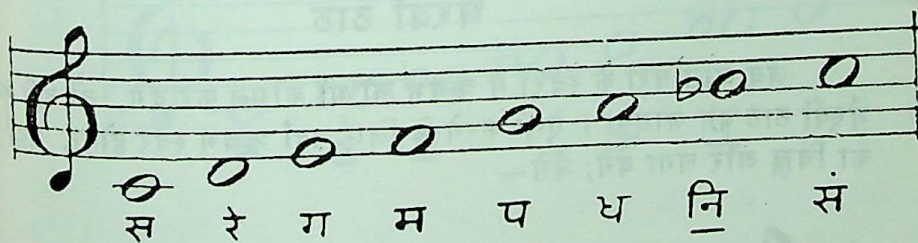
अब तक आपने वे समस्त बातें जो पाश्चात्य संगीत में आवश्यक थीं, समझ लीं। क्योंकि पाश्चात्य पद्धति में हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति की भाँति या थाट नहीं हैं, अतएव जो भी गीत-रचना अथवा धुन जिस स्वर से प्रारम्भ होती है, उस धुन का 'की नोट' प्रारम्भ में दे दिया जाता है। परन्तु हमारे यहाँ षड्ज को ही प्रत्येक धुन-रचना अथवा गीत के लिए आरंभिक स्वर मानते हैं, अतः हम उसी आधार से अपने ठाठों की रचना करते हैं। सर्वप्रथम बिलावल ठाठ को ही लीजिए जिसे पाश्चात्य स्वरांकन प्रणाली में इस प्रकार लिखा जाएगा :—

## बिलावल ठाठ



## खमाज ठाठ

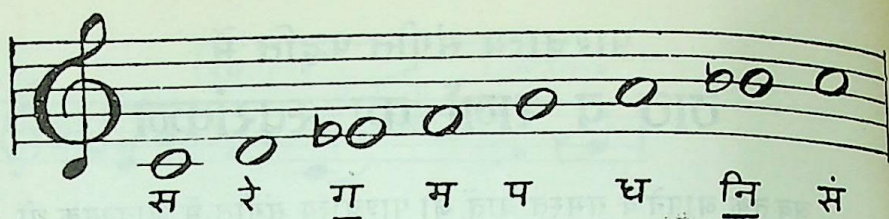
जब बिलावल ठाठ के स्वरों में कोमल निषाद आ जाता है, तो वह खमाज ठाठ बन जाता है। ऐसा करने के लिए जहाँ-जहाँ कोमल निषाद का स्वर आएगा, वहीं-वहीं उससे पहले फ्लैट (अर्थात् कोमल) का चिह्न लगा देंगे, जैसे :—



## काफ़ी ठाठ

काफ़ी ठाठ के स्वर लिखने के लिए अब गांधार स्वरवाले स्थान पर फ्लैट का चिह्न और लगा देंगे। इस प्रकार इस ठाठ में दो फ्लैट के चिह्न लगाने होंगे, जैसे :—

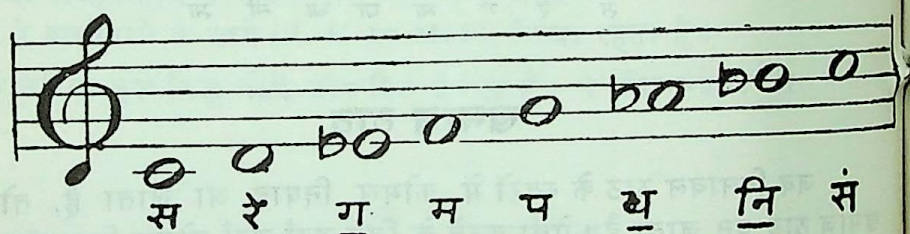




खमाज ठाठ के अन्दर आनेवाले ऐसे राग, जिनमें कि दोनों निषाद लगते हों, या काफी ठाठ के अन्दर आनेवाले ऐसे राग, जिनमें कि दोनों गांधार या दोनों निषाद प्रयुक्त होते हों, उनमें जब भी शुद्ध गांधार या शुद्ध निषाद प्रयोग में लाना होगा, तभी उन स्वरों से पूर्ण नेचुरल का चिह्न लगा देंगे।

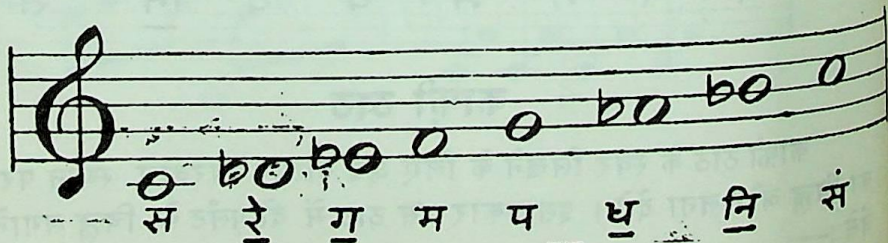
### आसावरी ठाठ

इस ठाठ के स्वर लिखने के लिए अब धैवत स्वर के स्थान पर एक फ्लैट का चिह्न और लगा देंगे। इस प्रकार इस ठाठ के स्वरों को लिखते समय कुल तीन फ्लैट के चिह्न होंगे; जैसे :—



### भैरवी ठाठ

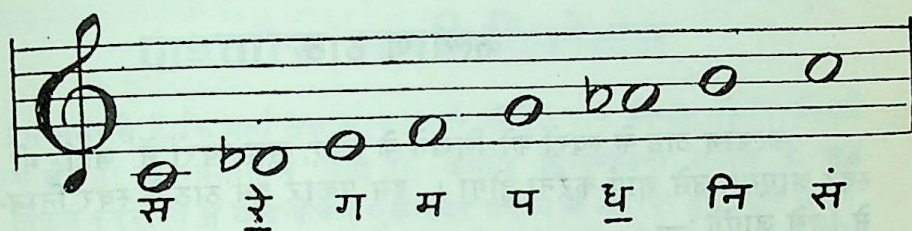
जब आसावरी के स्वरों में ऋषभ को भी कोमल कर देंगे, तो वही हमारा भैरवी ठाठ बन जाएगा। ऐसा करने के लिए जहाँ ऋषभ स्वर होगा, वहाँ फ्लैट का चिह्न और लगा देंगे; जैसे—





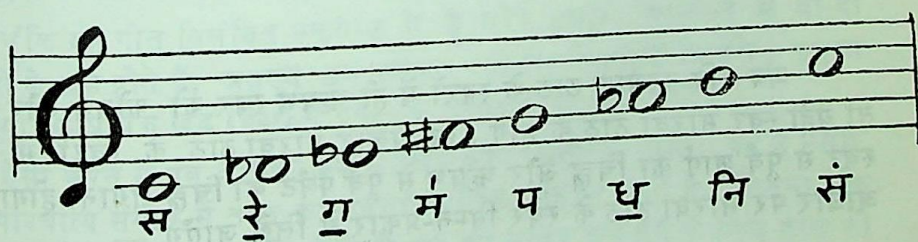
## भैरव ठाठ

भैरव ठाठ में रे और ध कोमल स्वर हैं, अतः इस ठाठ के स्वरों को लिखते समय जहाँ-जहाँ ऋषभ व धैवत स्वर आएँगे, वहीं-वहीं उनसे पहले फ्लैट के चिह्न लगा देंगे; जैसे :—



## पूर्वी ठाठ

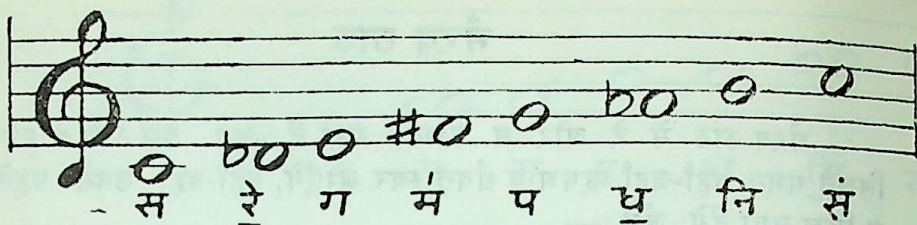
यदि भैरव के ठाठ में मध्यम को तीव्र कर दें, तो यही हमारा पूर्वी ठाठ हो जाएगा। अतएव रचना को लिखते समय जब-जब ऋषभ अथवा धैवत स्वर आएँगे, तब-तब उनसे पहले फ्लैट (कोमल) चिह्न और जहाँ तीव्र मध्यम आएगा, उससे पूर्व शार्प (तीव्र) का चिह्न लगा देंगे। इस प्रकार इस ठाठ को निम्न-प्रकार से लिखा जाएगा :—



## तोड़ी ठाठ

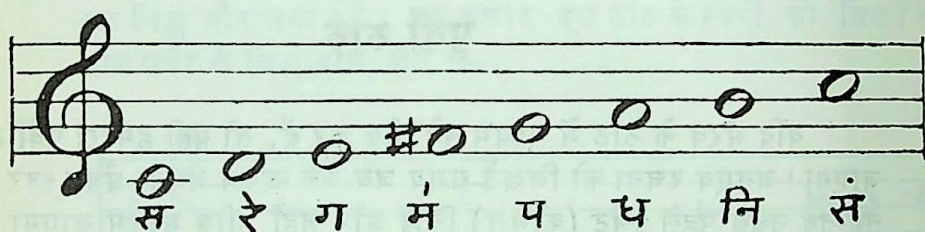
पूर्वी ठाठ के स्वरों में यदि गांधार स्वर को और फ्लैट कर दें, तो यही हमारा तोड़ी ठाठ होगा। इस आधार पर तोड़ी ठाठ के स्वर निम्न-प्रकार से लिखे जाएँगे :—





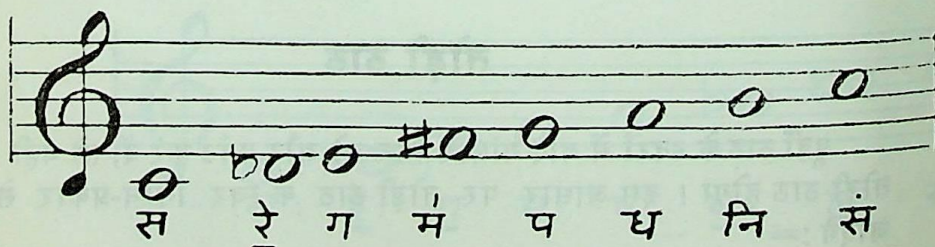
### कल्याण ठाठ

कल्याण ठाठ के स्वरों को लिखने के लिए, शुद्ध स्वरों में जहाँ भी मध्यम स्वर आएगा, उसे शार्प करना होगा। इस प्रकार इस ठाठ के स्वर निम्न-प्रकार से लिखे जाएँगे :—



### मारवा ठाठ

अब यदि कल्याण ठाठ के स्वरों में ही ऋषभ स्वर को कोमल और कर दें, तो यही स्वर मारवा ठाठ के होंगे। इस प्रकार मारवा ठाठ के स्वरों में मध्यम स्वर से पूर्व शार्प का चिह्न और ऋषभ से पूर्व फ्लैट का चिह्न लगाना होगा। इस आधार पर मारवा ठाठ के स्वर निम्न-प्रकार से लिखे जाएँगे :—





## पाश्चात्य स्वरलिपि-लेखन

हम समझते हैं कि यहाँ तक आप किसी भी ऐसे राग की स्वरलिपि, जिसमें सदैव एक-जैसे ही स्वर प्रयोग में आते हों, अर्थात् हिन्दुस्तानी संगीत के शुद्ध अथवा विकृत स्वरों में से यदि केवल एक स्वर प्रयोग में आ रहा हो, लिख सकेंगे; किन्तु आप सोचते होंगे कि जिन रागों में एक ही स्वर के दोनों रूप (शुद्ध और विकृत) प्रयुक्त होते हों, जैसे अल्हैया में दोनों निषाद, बिहाग में दोनों मध्यम; खमाज, पीलू और जैजैवंती आदि अनेक रागों में दोनों निषाद, तब आप क्या करेंगे ?

ऐसे रागों की स्वरलिपि लिखते समय जब भी कोमल रे, ग, ध और नि आएँगे तभी उनसे पूर्व फ्लैट का चिह्न और तीव्र मध्यम जहाँ भी आएगा, उससे पूर्व शार्प का चिह्न लगाना होगा।

उदाहरण के लिए एक रचना जैजैवंती की लीजिए। आप देखेंगे कि इस राग में दोनों गांधार व निषाद का प्रयोग होता है, अतः उन्हें लिखने के लिए हमें आकस्मिक की-सिगनेचर के चिह्नों का सहारा लेना पड़ेगा।

चूँकि यह गीत विलंबित एकताल में है और हमारी एकताल में दो-दो मात्राओं के खंड होते हैं, अतएव हम इसका 'की-सिगनेचर'  $\frac{1}{2}$  लिखेंगे। इसका अर्थ होगा कि प्रत्येक खंड (Bar) में एक-एक मात्रा के दो स्वर होंगे।

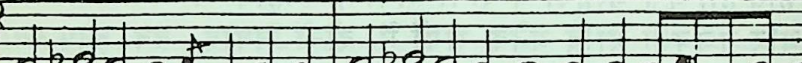
ऐसा करने से पूर्व आपको एक अड़चन और उत्पन्न होगी, वह है 'सम' की। पाश्चात्य संगीत में ताल का उतना अधिक महत्त्व नहीं है, जितना कि भारतीय संगीत में है। उनके यहाँ किसी धुन को सुन्दर रूप देने के लिए ताल की आवश्यकता होती है। फिर प्रत्येक खंड (Bar) में सम की भाँति प्रारम्भिक स्वर पर 'बल' देना होगा। इसलिए इसी एकताल को  $\frac{1}{2}$  की-सिगनेचर में भी लिखा जा सकता है। जिसका अर्थ यह होगा कि एक बार (Bar) में एक-एक मात्रा के बारह स्वर हैं।

इसी विभाग-पद्धति को स्व० विष्णुदिगंबर पलुस्कर ने भी अपनाया प्रतीत होता है। उन्होंने मात्राओं के चिह्नों को दक्षिण की ताल-पद्धति से लिया प्रतीत होता है। क्योंकि जो चिह्न दक्षिण-ताल-पद्धति में चार मात्राओं के लिए है, उसे



राग जैजैवंती, एकताल (विलंबित)

रे-ग-मा-रे'-सा-सा-धां-नी  
रे-ग-रे-रे-ग-रे-ग-म-पा-पा-पा-मा-ग-रे-  
६-... बि-आ-छी-ब-नी-...-ब-न-वा-...-री-की-.


  
 S - ग-रे-स रे नीं-सा-सा- रे-ग्-रे-स-स-स-सा-रे-नीं-सा-स-नीं-
   
 . . . . मो . र मु कु ट . . म क रा . . . .
   
 ११

धं पं ऽ धं पं रे रे रे ग रे  
० ० - ० ० ० ० ० - ०  
कृ त . कुं . ड ल .  
ग रे ग रे ग म नी ऽ प ध प म म  
० ० ) ) ) - - ० ०  
अ ल का . . . धूं . ध र

ग रे ग रे सा सा

० - ० ० ० -

वा . . रि की .



## भारतीय वृन्दवादन का ऐतिहासिक विवेचन

मन्दिरों की परम्परा में देव-आराधना के समय शंख, घड़ियाल, घंटा, झाँझ, मृदंग, ढोल, ताल, मँजीरे, करताल, मुरज, नागस्वरम्, वीणा तथा विभिन्न ध्वनियों की घण्टियों का प्रयोग कितने काल से चला आ रहा है, यह बताना कठिन है। परन्तु नित्य-प्रति प्रातः और सायंकाल का यह वाद्य-प्रयोग भारत के अत्यन्त पौराणिक ऑर्केस्ट्रा की दृढ़ आधारभूमि को आज भी सिद्ध करता है। तब, घन, सुषिर और अवनद्ध वाद्यों के सभी प्रकार भारतीय-मन्दिरों में उपलब्ध रहे हैं। आराधना का विषय होने के कारण, मन के बाह्य रंजन की दृष्टि से इनका परिष्कार करना उचित न समझा गया। आराधना के काल को छोड़कर भगवान् की सेवा में अतिरिक्त रात्रिकालीन गायन, वादन और नर्तन जो उत्तर तथा दक्षिण भारतीय मन्दिरों में चलता रहा, उसमें स्वतन्त्र वाद्य-वादन तथा नृत्य के साथ सामूहिक वाद्य-वादन (ऑर्केस्ट्रा) को लगातार प्रथम मिलता रहा और आज का 'ऑर्केस्ट्रा' उसी प्रेरणा का प्रतिफल है।

यथार्थ में कुछ काल से हमारे यहाँ स्वतन्त्र दृष्टि का प्रायः अभाव-सा हो गया है, इस कारण हमें अपने अतीत में झाँकने का अवसर प्राप्त नहीं होता।

'नाट्यशास्त्र' भारतीय संगीत का प्रामाणिक आदि ग्रन्थ है। इसके आलोच्य-प्रकरण में महर्षि भरत ने विस्तार से 'वृन्द' की चर्चा की है और वृन्द-विशेष को 'कुतप' (ऑर्केस्ट्रा) की संज्ञा दी है।

'कुतप' को भरत ने 'ततकुतप', 'अवनद्ध-कुतप' और 'नाट्याश्रय कुतप' इन तीन भागों में वर्गीकृत किया है। शाङ्गदेव ने 'संगीत रत्नाकर' में 'ततकुतप' को घोषवती, चित्रा, विपंची, परिवादिनी, वल्लकी, कुब्जिका, ज्येष्ठा, नकुलोष्ठी, किन्नरी, जया, कूर्मी, पिनाकी, हस्तिका, शततंत्रिका, औदुम्बरी, रावणहस्ता, पट्कर्णा, साङ्गी एवं आलापिनी आदि वीणाओं के वादक; वंश, शंश, पाविक, पाव,



काहल, मुहरी एवं शृंग वाद्यों के वादक तथा अन्य उत्तम ताल-धारियों से युक्त बताया है।

‘अवनद्ध कुतप’ को मृदंग, पणव, दर्दुर, डक्का, मण्डिडक्का, डक्कुली, पट्ट, करटा, ढक्का, ढवस, हुडुक्का, डमरू, संजा-कुडुक्का, कुडुवा, निसाण, त्रिवली, भेरी, तुम्बकी, बोम्बडी, पट्ट, पट, कर्मा, झल्लरी, भाण, सेल्लुका, जयघण्टा, कांस्यताल, घण्टा तथा किरिकिट्टक आदि वाद्यों से युक्त और ‘नाट्यकुतप’ को विभिन्न देशीय अभिनय तथा नृत्य-कला में सिद्धहस्त पण्डितों से युक्त बताया है।

भरतकाल में संगीत, नाट्य के ही आश्रित था इसीलिए ‘कुतप’ का आयोजन भी नाट्य के ही अन्तर्गत किया जाता था। नाट्य से विलग ‘कुतप’ विशेष अवसरों पर ही आयोजित होता था। जैसे कि, जब सम्राट् अशोक तीर्थ-यात्रा पर निकलते थे तो वाद्य-वादकों का समूह उनके साथ रहता था। गुप्त-काल में युद्ध के समय ‘अवनद्धकुतप’ का प्रयोग किया जाता था।

बाण ने ‘हर्षचरित’ में लिखा है कि जब सम्राट् हर्ष अपने स्नानागार में प्रवेश करते थे तब शृंग, वीणा तथा ढोल आदि वाद्यों से सम्मिलित वादन किया जाता था। वाद्यों का विशेष प्रचलन होने का प्रमाण हमें उस काल के उन सिक्कों से भी मिलता है जिनपर वीणा या वीणा-वादक राजा की मूर्ति अंकित है।

मुगल-काल में ‘कुतप’ की संज्ञा ‘नौबत’ को प्रदान की गई थी जिसके अन्तर्गत दमामा, नक्कारा, ढोल, कर्ना, सुर्ना, नफ़ीरी, सींग, साझ तथा झाँझ इन नौ वाद्यों का वादन किया जाता था। ‘आइने अकबरी’ में इन वाद्यों का विस्तृत उल्लेख मिलता है।

मुरसली और बरदाश्त—ये दो प्रकार की धुनें थीं जो सम्पूर्ण वृन्द द्वारा प्रस्तुत की जाती थीं। इखलाती, इब्तदाई, सिराजी और कलन्दरी, निगार क़तर् या नुखुद क़तर्-इन धुनों के वादन में पूरा एक घण्टा लगता था।

‘खवारिज़मिन्’ नामक प्राचीन धुनें भी बजाई जाती थीं, अकबर ने स्वयं दो सौ से अधिक रचनाएँ की थीं जिनमें जलालशाही, महामीर करकत और नवरोज़ी विशेष रूप से सुन्दर एवं मनोरंजक थीं।

पाणिनि काल में वाद्य के लिए ‘तूर्य’ शब्द का प्रयोग किया जाता था। ‘तूर्य’ में भाग लेनेवाले ‘तूर्याङ्ग’ कहलाते थे। जातकट्ठाकथा में ‘पंचंगिक तुरीय’ का उल्लेख आता है। भरहुत-स्तूप के एक शिलापट पर अंकित दृश्य में गायकों के साथ चार स्त्रियाँ नृत्य कर रही हैं और वाद्यवृन्द में वीणावादिनी-स्त्री, पाणिवादक, माड्डुकिक और झार्झरिक अंकित किए गए हैं।

पाँच सौ से अधिक वाद्ययंत्रों के नाम हमारे प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। प्रत्येक वाद्य के निर्माण में इसका विशेष प्रयोजन निहित था। भिन्न-भिन्न भावों की अभिव्यक्ति के लिए विशेष-विशेष वाद्यों का आयोजन किया जाता था; जैसे ईश्वरो-



पासना के लिए शंख, घड़ियाल, झाँझ, मुदंग एवं घण्टा आदि रवयुक्त वाद्य ही प्रयुक्त किए जाते थे। सौन्दर्य एवं मादकता की सृष्टि के लिए वेणु और वीणा आदि का और युद्धभूमि के लिए दमामा, धोंसा, पटह और दुन्दुभी आदि घोषयुक्त वाद्यों का संयोजन किया जाता था।

भारतीय वाद्यवृन्द में अवनद्ध वाद्यों का प्रमुख स्थान रहा है क्योंकि उनके बिना वृन्दवादन निर्जीव रहता है जबकि पाश्चात्य देशों में तत और सुषिर वाद्यों की प्रधानता रहती है। भारतीय संगीत में शोक की अभिव्यक्ति के समय ही अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग वर्जित किया जाता है और कहीं-कहीं जनजातियों में अवनद्धवाद्य का वादन शोक की अभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध होता है।

१८ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और २० वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में 'ऑर्केस्ट्रा' के लिए 'वाद्यभाण्ड' जैसी यथोचित संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता था जो 'दिल्ली दरबार दर्पण' आदि कतिपय प्राचीन ग्रंथों से प्रकट है। कर्नाटक में 'वाद्य-कचहरी' (वाद्य-कचहरी) नाम का प्रचार मिलता है जो आज भी प्रचलित है।

जिस प्रकार भिन्न-भिन्न मनुष्यों की वाणी भिन्न-भिन्न प्रभाव पैदा करती है उसी प्रकार भिन्न-भिन्न वाद्यों की ध्वनियों से अलग-अलग प्रभाव पैदा होते हैं। इसीलिए वाद्यवृन्द के द्वारा जब कोई दृश्य या गाथा प्रस्तुत की जाती है तो वाद्यों की अलग-अलग ध्वनियों से ही साकार किया जाता है, उसे मूर्त रूप दिया जाता है। जैसे-जैसे वाद्यों का विकास होता गया, वाद्यवृन्द में उन्हें स्थान मिलता गया। पाश्चात्य जगत् में वाद्यों को छः भागों में वर्गीकृत किया गया है। १. तत् वाद्य (तार वाले String instruments), २. लकड़ी के सुषिर वाद्य (फूंक वाले Wood wind instruments), ३. पीतल के सुषिर वाद्य (फूंक वाले Brass instruments), ४. घन वाद्य (ठोकर से बजने वाले Percussion instruments), ५. की-बोर्ड वाद्य (पट्टियों वाले Key Board instruments) और ६. इलेक्ट्रॉनिक वाद्य (बिजली द्वारा संचालित Electronic instruments)। कहा जाता है कि पाश्चात्य ऑर्केस्ट्रा का विकास ग्रीक नाटकों के जन्म के साथ ही हुआ जिसका मुख्य आधार उस समय ईश्वर आराधना था। इसे 'डायनोसिस' का थियेटर कहा जाता था जो ईसा से ५०० वर्ष पूर्व शुरू हुआ था। इसके सामने एक छोटा चक्राकार थियेटर निर्मित किया गया और उसे 'ऑर्केस्ट्रा' नाम दिया गया। बाद में गायक और वादकों के बैठने वाले प्रत्येक स्थान को ऑर्केस्ट्रा कहा जाने लगा।

जिस तरह पाश्चात्य जगत् में वाद्यवृन्द का विकास तेजी से हुआ वह भारत में नहीं हो पाया। दरबारों में प्रयत्न किए गए लेकिन जनता में वह लोकप्रिय न हो सका। इसका मनोवैज्ञानिक कारण यह भी है कि भारत में शास्त्रीय और लोक संगीत की इतनी विधाएँ प्रचलित हैं कि लोग उन्हीं से आनन्दित होते रहते हैं। दूसरा



कारण यह है कि वाद्ययन्त्रों के विभिन्न आकार-प्रकार, उनके वादन की विभिन्न शैलियाँ तथा स्वरांदोलनों की भिन्नता के कारण समूहीकरण हो पाना मुश्किल रहता है। नोटेशन पद्धति को न समझना, एक जैसे एवं पूरक वाद्यों का अभाव, अशिक्षा और घराने का अहम् की वजह से भी भारतीय वाद्यवृन्द का विकास न हो सका। इसीलिए नाटक या फ़िल्म में विभिन्न प्रभाव उत्पन्न करने के लिए, कोलाहल को शान्त करने के लिए अथवा नृत्य-नाटिकाओं को प्रभावोत्पादक बनाने के लिये ही अधिकतर भारतीय वाद्ययन्त्रों को इस्तेमाल किया गया।

वाद्यवृन्द को कलात्मक दृष्टि से जन समूह के लिए प्रस्तुत करने की परिपाटी प्राचीन भारत में तो थी लेकिन जब राज्य और नरेशों की संख्या बढ़ती गई तो वाद्य-वृन्दों को मांगलिक अवसरों पर प्रस्तुत करने की प्रथा प्रबल रही। इसीलिए राजाओं के जागने पर, आगमन पर, राज्याभिषेक के समय, युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय या किसी कुतूहल के लिए ही उसका प्रयोग किया गया। भारत के स्वतंत्र होने पर वाद्यवृन्द के महत्त्व और उसके कलात्मक स्वरूप पर ध्यान देने का अवसर मिला।

पिछले दिनों में फ़िल्म संगीत का व्यापक प्रचार होने के कारण गीत और धुन के साथ-साथ सामूहिक वाद्य वादन की आवश्यकता को बल मिला। परिणामस्वरूप विभिन्न निर्देशकों द्वारा उत्तर भारतीय तथा कर्नाटक पद्धति पर आधारित अनेक वाद्यवृन्द रचनाएँ आकाशवाणी द्वारा तैयार कराई गईं और उन्हें लोकप्रियता भी मिली। इनमें सारंगी, वायलिन, तार शहनाई, वायोला, सैलो, डबल, बास, सन्तूर, बैजो, पियानो, सितार, वीणा, सरोद, विचित्र वीणा, नगाड़ा, मृदंग, सिंथेसाइजर, तबला, गटम्, खोल, तबला तरंग, डुग्गी तरंग सुर मण्डल, छोटी-बड़ी वंशी, शहनाई, सुंदरी, ओवो, जैलोफोन, हॉर्न, गौंग, नागस्वरम्, तबिल, मेंडोलिन, दोतारा, सारंगा, सुरबहार, नलतरंग, चैंडा, मादल, गोटुवाद्यम्, शंख, डमरू, डफ, चंग, खंजरी, गिटार, घंटी, मुखचंग, जलतरंग, काष्ठतरंग, कठताल, झाँझ, कंजीरा, हारमोनियम, ढोल, मँजीरा, तानपूरा, नक्कारा, क्लारनेट, घुँघरू, ढोलक तथा नाल इत्यादि वाद्यों का यथोचित प्रयोग किया गया। वी. शिराली, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, तिमिर बरन, पं० रविशंकर, टी. के. जैराम अय्यर, अनिल विश्वास, पन्नालाल घोष, जुबीन मेहता, ऐमनी शंकर शास्त्री, विजयराघव राव, आनंद शंकर तथा फिल्म के क्षेत्र में शंकर-जयकिशन, लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल, एच० डी० बर्मन, आर० डी० बर्मन, कल्याणजी-आनंदजी, पं० लालमणि मिश्र इत्यादि ने अपने-अपने क्षेत्र में भारतीय ऑर्केस्ट्रा (वाद्यवृन्द) को लोकप्रिय बनाने में बड़ा योगदान दिया है।

वृन्दीकरण (ऑर्केस्ट्रेशन) की दिशा में प्रगति करने के लिए हमें निम्नोक्त तथ्यों को ध्यान में रखना होगा :—

१. समान प्रकृति वाले वाद्यों का समुचित विकास करके उनकी एकरूपता पर ध्यान दिया जाए।



२. विभिन्न टोनल क्वालिटी के वाद्य और उनके वादकों को एकत्रित किया जाए ।

३. ऑर्केस्ट्रा और उसके संचालन की कला को संगीत सम्बन्धी विषयों के अन्तर्गत पढ़ाया जाए ।

४. भारतीय मिलिट्री तथा कॉन्वेंट स्कूलों में अभी तक विदेशी वाद्यों का प्रचलन है । अतः उनके स्थान पर धीरे-धीरे भारतीय वाद्यों का समावेश किया जाना चाहिए ।

५. केवल वाद्यवृन्द सम्बन्धी संगीत समारोह आयोजित किए जाएँ और प्रस्तुतीकरण से पूर्व जनता को वाद्यवृन्द के आधार, रचना की विशेषता एवं उससे सम्बद्ध विषय और भाव इत्यादि की जानकारी दी जाए ।

६. ऑर्केस्ट्रा सम्बन्धी वर्कशाप और सेमिनारों का आयोजन किया जाए ।

७. भारत के उन प्राचीन वाद्यों को विकसित किया जाए जो आज लुप्त हो चुके हैं अथवा संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रहे हैं ।

८. शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत और लोक संगीत पर आधारित वाद्यवृन्द के लिए उपयोगी रचनाओं का निर्माण किया जाय तथा संगीतज्ञों को भारतीय तथा पाश्चात्य स्वरलिपि समझने में दक्ष किया जाए ।

९. भारतीय संगीत की मैलॉडी में पाश्चात्य संगीत की हारमनी का ऐसा प्रयोग किया जाए जो भारतीय संगीत एवं उसके श्रोताओं को स्वीकृत हो ।

संगीत का मुख्य लक्ष्य रस परिपाक है, इसलिए वाद्यवृन्द के द्वारा शब्द या दृश्य के बिना केवल वाद्यों के द्वारा हृदयगत भावों को उभारना एक बहुत बड़ी कला है, जिसमें वाद्यवृन्द के निर्माता और उसके निर्देशक को अत्यन्त निपुण होना चाहिए ।

□ □ □



## संगीत के कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थ

### नाट्य-शास्त्र

कनिष्क काल के उपरान्त ही भरत ने संगीत का प्रसिद्ध ग्रंथ 'नाट्य-शास्त्र' लिखा। भरत-मुनि के नाट्य-शास्त्र का काल कुछ विद्वान् २०० ई० पू० से ४०० ई० के मध्य में मानते हैं। विद्वानों की मान्यता है कि 'भरत' शब्द का अर्थ अभिनय करने वाले (Actor) व्यक्ति से है। इसलिए 'भरत' नाम नाट्य के शास्त्र-कारों के साथ जुड़ा हुआ है, ऐसा भी माना जा सकता है। इस आधार पर कुछ विद्वानों का कथन है कि यह ग्रन्थ किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं है। कुछ भी हो, आज नाट्य-शास्त्र के तीन संस्करण (बम्बई, बड़ौदा और बनारस के) प्राप्त होते हैं। इनमें पाठ-भेद तथा अध्यायों एवं श्लोकों की संख्या और क्रम-भेद से यह स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ में काफ़ी परिवर्तन होते रहे होंगे। परन्तु फिर भी अधिकतर विद्वान् इसी पक्ष में हैं कि यह एक ही व्यक्ति की रचना है।

नाट्य-शास्त्र के छह अध्याय (२८ से ३३ तक) संगीत से सीधा सम्बन्ध रखते हैं। इनमें अट्ठाईसवें अध्याय में वाद्यों के चार भेद, स्वर, श्रुति, ग्राम-मूर्च्छनाएँ, अठारह जातियाँ; उनके ग्रह, अंश, न्यास इत्यादि का विवरण है। उन्तीसवें अध्याय में जातियों का रसानुकूल प्रयोग तथा विभिन्न प्रकार की वीणाएँ और उनकी वादन-विधि दी गई है। तीसवें अध्याय में सुषिर वाद्यों का वर्णन; इकत्तीसवें में कला, लय और विभिन्न तालों का विवरण; बत्तीसवें में ध्रुवा के पाँच भेद, छन्द-विधि तथा गायक-वादकों के गुण दिए हैं और तेतीसवें में अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति, भेद, वादन-विधि, इनके वादन की अठारह जातियाँ और वादकों के लक्षणों का वर्णन है।

इस प्रकार २८ व २९ वें अध्याय तो बहुत ही महत्त्व के हैं। इनके अतिरिक्त छठे अध्याय में रस का लक्षण और व्याख्या, भाव का लक्षण और व्याख्या, आठ रसों का उनके उपकरणों सहित वर्णन, रसों के देवता और वर्ण तथा सातवें में भाव, विभाव, अनुभाव आदि की सामान्य व्याख्या; स्थायी, व्यभिचारी और सात्त्विक भावों का विवरण दिया हुआ है। साथ में १९ वें अध्याय में स्वरों का रसों में विनियोग, तीन स्थान, काकु, अलंकार आदि का वर्णन है।



## मतंगकृत 'बृहद्देशो'

८ वीं शताब्दी में मतंग को 'बृहद्देशो' लिखी गई। इसमें भरत के 'नाट्य-शास्त्र' में आई हुई लगभग सभी बातों का उल्लेख है। इस ग्रन्थ के प्रकाशित संस्करण में अध्यायों की संख्या नहीं दी गई है। केवल अन्तिम अध्याय के लिए लिखा है कि यह छठा अध्याय है। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसमें देशी, नादोत्पत्ति, श्रुति-निर्णय, स्वर-निर्णय, अलंकार, गीतियाँ, राग-भाषा, लक्षण और प्रबन्धाध्याय का वर्णन है।

मतंग का कथन है कि रागों के सम्बन्ध में तो भरत ने और न अन्य विद्वानों ने ही कुछ कहा है। इसलिए रागों के विषय में जैसा प्रचलित है, उसी के अनुसार वे उनके लक्षण बताते हैं। इस आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि मतंग के समय में रागों का प्रचार अच्छी प्रकार से समाज में हो चुका था। मतंग ने उन्हीं प्रचलित अर्थात् देशी रागों के सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए इस ग्रन्थ को लिखा। इसके नाम से ही यह स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ में 'बृहद्' रूप से 'देशी रागों की व्याख्या की गई है। देशी शब्द का ही यह अर्थ है कि जो साधारण लोगों, स्त्रियों, बच्चों तथा समाज के सब व्यक्तियों में प्रचलित हो। यही नहीं, बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि मतंग के समय में न केवल जातियों का स्थान रागों ने ले लिया था वरन् अनेक प्राचीन रागों के स्थान पर कुछ नवीन राग भी प्रचलित हो गए थे।

मतंग के मतानुसार जातियों से ही ग्राम रागों की उत्पत्ति हुई है तथा स्वर और श्रुतियों से जातियों का जन्म हुआ है। 'राग-जाति' की परिभाषा देते समय मतंग लिखते हैं कि 'स्वरों का ऐसा आकर्षक मेल जो चित्त को प्रसन्नता दे, राग कहलाता है।' जातियों के विषय में उन्होंने वे ही दस लक्षण (ग्रह, अंश, तार, मन्द्र, षाडव, औडव, अलपत्व, बहुत्व, न्यास, और अपन्यास) बताये हैं जो कि आज भी रागों में प्रयुक्त होते हैं।

अनुमान किया जाता है कि जाति-गायन भरत मुनि से पूर्व भी प्रचलित था, जो भरत काल में अपने पूर्ण उत्कर्ष पर था। कारण कि मतंग के मतानुसार 'मध्यम ग्राम' की जातियाँ नाटक के मुख (आरम्भ) में, 'षड्ज ग्राम' की प्रतिमुख (नाटक प्रारम्भ होने के उपरान्त) में, 'साधारित' जातियों का प्रयोग नाट्य के विकास के समय में और 'पंचम' जाति का प्रयोग विमर्श (बातचीत के समय) में किया जाता था। मतंग ने सर्वप्रथम संगीत के साहित्य में 'राग' शब्द का प्रयोग किया है। उन्होंने लिखा है कि उनसे पूर्व जातियों के पाँच भेद थे, जिन्हें क्रम से 'शुद्धा', 'भिन्ना', 'वेसरा', 'गौड़ी' और 'साधारित' कहते थे। परन्तु उनके समय में वे सात हो गए, जिन्हें क्रम से 'शुद्धा', 'भिन्ना', 'गौड़ी', 'राग-जाति', 'साधारणी', 'भाषा-जाति' और 'विभाषा-जाति' कहते हैं। उनके मतानुसार, शुद्धा और भिन्ना के आठ-आठ भेद हैं। इसी प्रकार गौड़ी के तीन, राग के आठ, साधारणी के सात,



भाषा के सोलह और विभाषा के बारह भेद हैं। उन्होंने अपनी जातियों के नाम भी भिन्न दिए हैं।

### नारद-कृत 'नारदीय शिक्षा'

सातवीं शताब्दी के लगभग 'नारदीय शिक्षा' नामक एक ग्रंथ नारद का लिखा हुआ मिलता है। यहाँ पाठकों को यह बता देना भी उचित होगा कि ये वे नारद नहीं हैं, जो 'देवर्षि नारद' के नाम से प्रसिद्ध हैं, वरन् ये अपने समय के दूसरे ही नारद हैं। इस ग्रंथ में भी सामवेदीय स्वरों को विशेष महत्त्व देते हुए सात ग्राम-रागों का वर्णन किया गया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं :—

१. षाडव, २. पंचम, ३. मध्यम, ४. षड्ज-ग्राम, ५. साधारित, ६. कैशिक-मध्यम, ७. मध्यम-ग्राम।

सातवीं और आठवीं शताब्दियों में दक्षिण-भारत में भक्ति-आन्दोलन का विशेष जोर रहा, अतः भक्ति और संगीत के सामंजस्य द्वारा जगह-जगह कीर्तन और भजन गाए जाने लगे। इस प्रकार धार्मिक भावना का बल पाकर इस काल में संगीत का यथेष्ट प्रचार हुआ।

### नारद-कृत 'संगीत मकरंद'

आठवीं शताब्दी में नारद का एक और ग्रंथ 'संगीत मकरंद' प्रकाश में आया। इस ग्रंथ में प्रथम बार पुरुष राग, स्त्री राग और नपुंसक रागों का वर्गीकरण मिला। परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि उन्होंने 'रागिनी' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। इसमें २० पुरुष राग, २४ स्त्री राग और १३ नपुंसक राग गिनाए हैं साथ में स्वर, मूर्च्छना, राग, ताल आदि विषयों को लिया गया है। रागों के इस वर्गीकरण का आधार उनका रस है। उनका कहना है कि रौद्र, अद्भुत तथा वीर रस के लिए पुरुष राग, शृंगार तथा करुण के लिए स्त्री राग और भयानक, हास्य तथा शांत रस की उत्पत्ति के लिए नपुंसक रागों को प्रयोग में लाना चाहिए। इस ग्रंथ में राग की जातियाँ (संपूर्ण, षाडव, औडव) तथा गान-समय भी बताया गया है।

श्रुतियों के नाम प्रचलित परंपरा से भिन्न हैं। भरत मुनि ने जहाँ तैत्तिरीय अलंकारों का वर्णन किया है, वहाँ इस ग्रंथ में केवल उन्नीस अलंकारों का निरूपण है। नखज, वायुज, चर्मज, लोहज और शरीरज नाम से नाद के पाँच भेदों का उल्लेख है तथा वीणा के अठारह भेदों का वर्णन है। कहा जाता है कि इसी के आधार पर आगामी ग्रंथकारों ने राग-रागिनी-वर्गीकरण किए हैं।

### जयदेव-कृत 'गीतगोविन्द'

१२-वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 'गीत-गोविन्द' नामक संस्कृत के एक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना हुई। इसके रचयिता प्रसिद्ध कवि और संगीतज्ञ जयदेव थे, जिन्हें उत्तर-भारत का प्रथम गायक होने का सम्मान प्राप्त था। 'गीत-गोविन्द' में राधा-कृष्ण-सम्बन्धी प्रबन्ध-गीत हैं, जिन्हें आज भी अनेक गायक ताल-स्वरों में बाँधकर

संगीत-विशारद



गाते हैं। जयदेव कवि का जन्म बंगाल में बोलपुर के निकटस्थ केंडुला नामक ग्राम में हुआ था, जहाँ अब भी प्रतिवर्ष संगीत-समारोह होता है।

‘गीत-गोविन्द’ की विशेषता पर मुग्ध होकर एडविन अर्नाल्ड ने अंग्रेजी में इसका अनुवाद ‘द इन्डियन सॉंग ऑफ़ सौगस’ अर्थात् ‘गीतों का भारतीय गीत’ नाम से किया है।

### शाङ्गदेव-कृत ‘संगीत-रत्नाकर’

शाङ्गदेव का समय १२१० से १२४७ ई० के मध्य का माना जाता है। ये देवगिरि (दौलताबाद) के यादव-वंशीय राजा के दरबारी संगीतज्ञ थे।

१३-वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पंडित शाङ्गदेव ने ‘संगीत-रत्नाकर’ ग्रन्थ की रचना की। इसमें नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति इत्यादि का विवेचन भली प्रकार किया गया है। दक्षिणी और उत्तरी संगीत-विद्वान् इस ग्रन्थ को संगीत का आधार-ग्रंथ मानते हैं। आधुनिक ग्रंथों में भी ‘संगीत-रत्नाकर’ के अनेक उद्धरण पाठकों ने देखे होंगे। शाङ्गदेव ने अपने इस ग्रंथ में मतंग से अधिक विवरण अवश्य दिया है, किन्तु सैद्धांतिक दृष्टि से मत लगभग एकसा है। इसमें गायन वादन तथा नृत्य, तीनों का विवरण है। इसमें स्वराध्याय, राग-विवेकाध्याय, प्रकीर्णकाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय और नर्तनाध्याय के अंतर्गत प्रथम अध्याय में नाद का स्वरूप, नादोत्पत्ति और उसके भेद, सारणाचतुष्टय, ग्राम, मूर्च्छना, तान-निरूपण, स्वर और जाति-साधारण, वर्ण-अलंकार तथा जातियों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में ग्राम-राग व उनके विभाग तथा रागांग, भाषांग शब्दों का स्पष्टीकरण और देशी राग व उनके नाम आदि दिए गए हैं।

तृतीय अध्याय में वाग्गेयकार के लक्षण, गीत के गुण-दोष, गायक के गुण-दोष और स्थायी इत्यादि का विवरण है।

चतुर्थ अध्याय में गान के निबद्ध और अनिबद्ध भेद, धातु व प्रबंध के भेद तथा अंगों इत्यादि का विवरण प्राप्त होता है।

पंचम अध्याय में ताल विषय तथा छठे अध्याय में तत, सुषिर, अनबद्ध और घन वाद्यों के भेद वादन-विधि तथा वाद्यों और वादकों के गुण-दोष दिए गए हैं।

सप्तम अध्याय नृत्य, नाट्य और नृत्त पर है। इसमें नर्तन-सम्बन्धी प्रत्येक बात को स्पष्ट किया गया है।

इस ग्रंथ में कुल २६४ रागों का वर्णन दिया गया है। इन रागों का वर्गीकरण राग, उपराग आदि के आधार पर किया गया है। इस वर्गीकरण का आधार क्या है, यह विदित नहीं होता। वर्गीकरण इस प्रकार है :—



|                                      |      |                                   |         |
|--------------------------------------|------|-----------------------------------|---------|
| ग्राम-राग                            | .... | ३० उपराग                          | ८       |
| राग                                  | .... | २० पूर्व-प्रसिद्ध रागांग राग      | ८       |
| पूर्व-प्रसिद्ध भाषांग राग            | ...  | ११ अधुना-प्रसिद्ध रागांग राग      | १२      |
| पूर्व-प्रसिद्ध उपांग राग             | ...  | ३                                 |         |
| पूर्व-प्रसिद्ध भाषा-राग              | .... | ६६ पूर्व-प्रसिद्ध विभाषा-राग      | .... २० |
| अंतर्भाषा-राग                        | .... | ४ उनके काल में प्रचलित राग        | १.      |
| उनके काल में प्रचलित क्रियांग राग... |      | ३ उनके काल में प्रचलित भाषांग राग | ६       |
| उनके काल में प्रचलित उपांग राग ....  | २७   |                                   |         |

शाङ्गदेव ने यद्यपि अपने ग्रंथ की नीवें भरत के 'नाट्य-शास्त्र' तथा 'बृहद्देशी' पर रखने की चेष्टा की है, परन्तु यह स्पष्ट है कि इनके समय में भरत की जातियाँ नष्ट हो चुकी थीं तथा मतंग के काल के देशी रागों के स्थान पर अनेक नए रागों ने स्थान ले लिया था, जिन्हें 'अधुना-प्रसिद्ध राग' कहा जाता था। इसलिए शाङ्गदेव को इन अधुना-प्रसिद्ध रागों के विषय में ही कुछ कहना आवश्यक था। परन्तु उन्हें अपने रागों का क्रम पीछे के सिद्धांतों से भी जोड़ना था, इसलिए उन्होंने अपने रागों का संबंध पुराने रागों से और पुराने रागों का संबंध जातियों से जोड़ने का प्रयत्न किया है। परन्तु जातियों का बिलकुल लोप हो जाने के कारण यह संबंध सुचारु रूप से न जुड़ सका। फलस्वरूप यह ग्रंथ संगीतज्ञों के लिए कुछ दुर्बोध-सा हो गया। इस प्रकार यद्यपि शाङ्गदेव ने श्रुति, स्वर, ग्राम जाति आदि के वर्णन में भरत का ही अनुकरण किया है, फिर भी उनकी पद्धति में प्रगति और विकास के लक्षणों का अभाव नहीं है। मूर्च्छनाओं की मध्य-सप्तक में स्थापना, विकृत स्वरों की कल्पना, मध्यम-ग्राम का लोप और प्रति-मध्यम की उत्पत्ति इत्यादि विषय 'संगीत रत्नाकर' की मौलिकता को प्रकट करते हैं।

### 'स्वरमेलकलानिधि'

इन्हीं दिनों (१५४६-५०) दक्षिणी संगीत-विद्वान् रामामात्य ने इस ग्रन्थ की रचना की। इस छोटे से ग्रंथ में पाँच प्रकरण हैं। इनके नाम उपोद्घात प्रकरण, स्वर प्रकरण, वीणा प्रकरण, मेल प्रकरण और राग प्रकरण हैं। उपोद्घात प्रकरण में पुस्तक की प्रारंभिक भूमिका मात्र है। स्वर प्रकरण में 'गार्ध्व' तथा 'गान' के अंतर्गत संगीत को विभाजित करके इन दोनों पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण किया गया है। स्वर प्रकरण में सात शुद्ध तथा सात विकृत स्वर माने हैं। वीणा प्रकरण में वीणा के दण्ड पर अपने चौदह स्वरों को स्थापित किया है। मेल प्रकरण में बीस ठाठों का शुद्ध तथा विकृत स्वरों-सहित वर्णन है। राग प्रकरण में, ऊपर के बीस ठाठों के अन्तर्गत ६३ जन्यरागों का उल्लेख है। यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि जिन ठाठों तथा रागों का उल्लेख इस ग्रंथ में किया गया है वे प्रचलित हिंदुस्तानी संगीत पद्धति में अपने मूल रूप में प्रचलित नहीं हैं। कहीं ठाठों के नाम बदल गए हैं तो कहीं रागों के स्वर ही परिवर्तित हो गए हैं। परन्तु संस्कृत-ग्रंथों के अध्ययन की दृष्टि से यह एक उत्तम ग्रन्थ है।

संगीत-विशारद



### ‘मानकुतूहल’

इस समय में अर्थात् अकबर के सिंहासनाखंड होने से पूर्व ही (१४८६-१५१६ ई०) ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने ध्रुवपद तथा धमार-गायकी का ढंग प्रारम्भ किया। राजा मानसिंह की आज्ञा से मानकुतूहल नामक ग्रन्थ भी इन दिनों में संकलित किया गया।

### ‘राग-तरंगिणी’

१४ वीं शताब्दी में हमें संगीत की प्रसिद्ध पुस्तक लोचन द्वारा लिखित ‘राग तरंगिणी’ प्राप्त होती है।

लोचन मिथला ज़िले में किसी स्थान पर रहते थे। अभी तक इनका काल संदिग्ध है। किन्तु इस ग्रन्थ में ‘ईमन’ तथा ‘फ़रोदस्त’ रागों का वर्णन यह स्पष्ट करता है कि इसका संपादन १४ वीं शताब्दी के आस-पास हो गया था। लोचन ग्राम, मूर्च्छना और जाति-गायन के स्थान पर ‘जन्य-जनक’ अथवा ‘ठाठ-पद्धति’ का वर्णन करते हैं। आपने ‘निबद्ध’ और ‘अनिबद्ध’ प्रकारों का वर्णन करने के उपरान्त तुरन्त श्रुतियों के प्रश्न को ले लिया है। उन्होंने अपने जन्यरागों का वर्गीकरण बारह ठाठों में किया है। इन बारह ठाठों से ७५ जन्यराग बनाए हैं। बारह ठाठों के स्वर बताकर रागों का गायन-समय भी दिया है। लोचन ने मिश्रित रागों पर भी एक अध्याय लिखा है।

इस ग्रन्थ में ७५ जन्यरागों की सूची देखने से विदित होता है कि इसमें आए हुए लगभग सभी राग आज के हिन्दुस्तानी संगीत में प्रचलित हैं। इसीलिए यह ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व का है। परन्तु साथ में यह भी जानना बड़ा रोचक है कि इन जन्यरागों में से अनेक स्वर यवन काल में परिवर्तित कर दिए गए हैं। परन्तु कुछ के रूप आज भी ज्यों-के-त्यों पाये जाते हैं।

## पुण्डरीक विट्ठल के ग्रन्थ

पुण्डरीक विट्ठल ने ( १६०० ई० के लगभग ) संगीत-सम्बन्धी ग्रन्थ सद्भाग-चन्द्रोदय, रागमाला, राग मंजरी और नर्तन निर्णय इसी काल में लिखे। इनमें नर्तन निर्णय नृत्य-कला से सम्बन्ध रखता है और शेष तीन में रागादि का वर्णन है। इन ग्रन्थों में बार्डस श्रुतियों पर स्वरों को स्थापित करके वीणा के तार मिलाने का ढंग तथा परदों के स्थानों को बताया गया है। इसके अन्दर १८ ठाठों के अंतर्गत ५८ रागों का वर्गीकरण है। इसी प्रकार रागमाला के अंतर्गत स्वर-स्थान तो वहीं हैं, जो कि चन्द्रोदय में हैं, परन्तु उनके विकृत नाम इसमें नहीं दिए हैं। उनके स्थान पर ‘एकगतिक नि’ ‘द्विगतिक नि’ ‘त्रिगतिक नि’ आदि का प्रयोग किया है। प्रत्येक ‘गति’ का माप एक श्रुति माना है। स्वर-स्थान बताने के उपरान्त वादी, संवादी, अनुवादी, विवादी, ग्रह, अंश, न्यास की परिभाषाएँ दी हैं। रागाध्याय में



रागों के तीन वर्ग पुरुष राग, स्त्री राग और पुत्र राग कर दिए हैं। इनमें छह पुरुष राग देकर प्रत्येक की पाँच-पाँच भार्या-राग और पाँच-पाँच पुत्र-रागों के नाम दिए हैं। रागों के स्वर बताने के उपरान्त रागों के स्वरूपों (चित्रों) की कल्पना की है तथा उनका गायन-समय भी बताया है।

‘राग मंजरी में ‘राग माला’ की भाँति ही स्वर-स्थान बताए गए हैं। इसमें पुण्डरीक ने अपने जन्यरागों का वर्गीकरण बीस ठाठों में किया है। इस ग्रंथ के अंत में उन्होंने कुछ ऐसे फ़ारस के रागों का भी उल्लेख किया है जो यवनों द्वारा हिंदु-स्तानी संगीत में प्रचलित किए गए थे; जैसे हुसैनी, यमन, सरपरदा, बाख़रेज़, हिजाज़, उश्शाक़ इत्यादि। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि उन्होंने अपना शुद्ध ठाठ दक्षिण के शुद्ध ठाठ को ही माना है।

#### सोमनाथ—कृत ‘राग विबोध’

सोमनाथ द्वारा लिखित ‘राग-विबोध’ भी इसी काल (१६१० ई०) की रचना है। इन्होंने २२ श्रुतियों पर सात शुद्ध स्वर स्थापित करने के उपरान्त १५ विकृत स्वरों का वर्णन किया है। इन्होंने अपने ७५ जन्य रागों का वर्गीकरण २३ मेलों के अन्तर्गत किया है। आज भी अनेक रागों का रूप इन प्राचीन रागों के समान ही प्रतीत होता है। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रंथ उत्तरी संगीतज्ञों के लिए विशेष महत्त्व का है।

#### दामोदर—कृत ‘संगीत दर्पण’

संगीत का दूसरा उत्तम ग्रंथ ‘संगीत-दर्पण’ पं० दामोदर मिश्र का इसी काल (सन् १६२५ ई०) में और लिखा गया था। इसका अनुवाद फ़ारसी, हिन्दी तथा गुजराती में हो चुका है। इसमें दो अध्याय हैं। पहला स्वराध्याय है तथा दूसरा रागाध्याय। स्वराध्याय में नादोत्पत्ति, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना तथा ३२ तानों का वर्णन है। कूटतानों को बनाने का क्रम तथा खण्डमेरु तानों में ‘नष्ट’ और ‘उद्दिष्ट’ को खोजने का क्रम विस्तार से समझाया है। इसी अध्याय में स्वर साधारण, वर्ण, अलंकार आदि का भी संक्षिप्त वर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है कि मार्ग संगीत तो ‘संगीतरत्नाकर’ के समय में ही नष्ट हो गया था, परन्तु पुरानी बातों को ग्रंथों में लिखने की प्रथा चली आ रही थी, इसलिए इसमें अनेक बातों को केवल लिखकर छोड़ दिया गया है। उन्हें समझाने का प्रयत्न नहीं किया गया (जैसे जाति, लक्षण इत्यादि)।

रागाध्याय में रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग को संक्षेप में समझाकर मतंग के मतानुसार रागों के तीन भेद शुद्ध, छायालग और संकीर्ण बताकर ‘संगीतरत्नाकर’ से २० रागों के नाम उद्धृत कर दिए हैं और तुरन्त शिवमत के अनुसार राग-रागिनी का वर्णन प्रारम्भ कर दिया है। फिर रागों का गायन-समय और ऋतुओं का संक्षिप्त वर्णन है। इसके उपरान्त हनुमन्मत तथा रागार्णव मत से राग-रागिनियों के नाम बताये हैं। इस ग्रंथ के लोकप्रिय होने का कारण इसमें दिए गए राग-रागिनियों के ‘ध्यान’ हैं। जिस प्रकार रीतिकालीन कविता का नायिकाभेद



अभी तक रसिक जनों के मनोरंजन का साधन बना हुआ है, ठीक उसी प्रकार 'संगीत-दर्पण' में दिए गए 'ध्यानों' के कारण यह ग्रन्थ भी लोकप्रिय बन गया।  
**अहोबल-कृत 'संगीत पारिजात'**

यह संगीत का एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसका रचना-काल लगभग १६६५ ई० का उत्तरार्ध माना जाता है। सन् १७२४ ई० में पं० दीनानाथ द्वारा इसका अनुवाद फ़ारसी में हो चुका था। इस ग्रंथ में अनेक ऐसे रागों का वर्णन है जो कि उत्तरी भारत में तो प्रचार में नहीं हैं, किन्तु दक्षिण-भारत में विशेष रूप से प्रचलित हैं। परन्तु जिस संगीत-पद्धति की विवेचना इसमें की गई है, वह ठीक उत्तरी संगीत-पद्धति ही है। इस आधार पर कुछ लोगों का अनुमान है कि अहोबल वास्तव में दक्षिण के निवासी थे और उत्तर भारत में आकर उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की थी।

इन्होंने अपने स्वरों की स्थापना ठीक 'हृदय कौतुक' के अनुसार ही की है। इस प्रकार इसका शुद्ध सप्तक हमारे काफ़ी ठाठ की भाँति ही है। इन्होंने शुद्ध-विकृत कुल मिलाकर २६ स्वर बताए हैं। इन्होंने अपने रागों का वर्गीकरण ठाठों में नहीं किया है, किन्तु यदा-कदा ठाठों के नाम दे दिए हैं। इस ग्रन्थ में लगभग १२२ रागों का वर्णन मिलता है। प्रत्येक राग में लगने वाले स्वरों की आरोही, अवरोही तथा ग्रह, न्यास और मूर्च्छना के स्वरों का वर्णन प्राप्त होता है। उनका कहना है कि जहाँ उन्होंने न्यास और अंश स्वर का उल्लेख नहीं किया है, वहाँ इन स्वरों के स्थान पर षड्ज को ही मानना चाहिए। जिस स्वर समूह से राग प्रारम्भ होता है उसे 'उदग्राह कारक' तान कहा है। इस प्रकार की उदग्राह कारक तान प्रत्येक राग की परिभाषा के बाद में दी गई है।

### हृदयनारायणदेव-कृत 'हृदय कौतुक' और 'हृदय प्रकाश'

इन दोनों पुस्तकों के लेखक, गदा देस पर सन् १६६० ई० में राज्य करने वाले अंतिम राजा, हृदय नारायण देव हैं। इन्होंने इन ग्रन्थों में शुद्ध और विकृत स्वरों के स्थान, ठीक पं० अहोबल के 'संगीत-पारिजात' के अनुसार वीणा के तार की लम्बाई पर बताये हैं। अब यहाँ यह नहीं कहा जा सकता कि यह इन्होंने पारिजात से नकल किया है या पारिजात ने इनकी पुस्तक से उसे लिया है। स्वर-प्रकरण में भी अनेक श्लोक 'तरंगिणी' से लिए गए हैं। इन्होंने तरंगिणी के ही बारह ठाठों को लेकर, एक नवीन राग 'हृदय-रमा' और जोड़कर एक ठाठ और बढ़ा दिया है। इस नवीन राग में उन्होंने दो नए स्वर त्रिश्रुति 'म' और त्रिश्रुति 'नि' और जोड़ दिए हैं। साथ में रागों का परिचय देने वाले श्लोक, स्वरों का वर्ज्यावर्ज्य बताते हुए, रागों के स्वर-स्वरूप को भी बताया है। वादी, संवादी, अनुवादी, विवादी को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि राग में पाँच से कम स्वर नहीं होने चाहिए। जो मेल दो, तीन, चार स्वरों का है उसे राग न कहकर 'तान' कह सकते हैं। इन दोनों ग्रन्थों में जन्य-रागों का वर्गीकरण एक समान है।



## अनूपसिंह-कृत 'अनूप संगीत विलास'

भावभट्ट, बीकानेर के राठौर राजा अनूपसिंह के यहाँ नौकर थे। इनके तीन ग्रन्थ 'अनूप संगीत विलास' 'अनूप संगीत-रत्नाकर' और 'अनूपांकुश' प्राप्त होते हैं। 'अनूप संगीत विलास' का लगभग समस्त स्वराध्याय, शाङ्गदेव के 'संगीत रत्नाकर' से लिया गया है। इसमें स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति, शुद्ध तान, कूट तान और अलंकार की समस्त परिभाषाएँ 'रत्नाकर' और 'पारिजात' से ली गई हैं। इन्होंने २२ श्रुतियों पर ४२ स्वर नाम रखे हैं, किन्तु राग-वर्णन में वे इस विषय में शान्त हैं। इसमें लगभग ७० रागों की व्याख्या प्राप्त होती है।

### 'अनूप संगीत-रत्नाकर'

इसमें पुनः श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, तान, वर्ण और अलंकार आदि के विषय में 'रत्नाकर' से ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर लिया गया है। परिभाषाओं के उपरांत रागाध्याय में कुछ प्रचलित रागों के भेदों को भी बताया है (जैसे नट के भेदों के अन्तर्गत शुद्ध नट, सालंग नट, छाया नट, केदार नट, कल्याण नट, वराटी नट, सारंग नट, विभास नट, हमीर नट, पूरिया नट इत्यादि)। इसके उपरान्त कुछ रागों के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन है। फिर पुण्डरीक की राग मंजरी से उसके ठाठों, स्वरों व जन्य रागों को ज्यों-का-त्यों नकल कर लिया गया है। इसमें सैकड़ों प्राचीन ध्रुपदों का भी उल्लेख किया है, परन्तु उनकी स्वरलिपियाँ नहीं दी गई हैं।

### 'अनूपांकुश'

इसमें श्रुतियों का वर्णन करके रागाध्याय में राग-वर्गीकरण को 'संगीत-दर्पण' के अनुसार रखा है। परन्तु उस पुस्तक में जिसमें इन रागों की परिभाषा दी गई है, उसकी कुछ भी चिन्तान करके हुए, प्रत्येक राग में 'पारिजात' 'हृदय प्रकाश' और 'राग मंजरी' के मतों का उद्धरण दिया है। इस प्रकार अनेक परिभाषाएँ परस्पर विरोधी हो गई हैं और पाठकों को उलझा देती हैं।

### वेंकटमखी-कृत 'चतुर्दंडप्रकाशिका'

इसका रचना काल लगभग १६४०-१६५० ई० के मध्य माना जाता है। वेंकटमखी निश्चित रूप से दक्षिणी विद्वान् थे। इस ग्रन्थ में उन्होंने सर्वप्रथम ७२ मेलकर्ता अथवा ठाठों को स्थापित किया और दक्षिण में बारह स्वर वाली स्वर-पद्धति को अंतिम रूप दिया था। उन्होंने अपने ४८ जन्यरागों का वर्णन करते समय केवल १५ जनक मेलों का ही आश्रय लिया है। बारह स्वरों में जिन पाँच विकृत स्वरों को उन्होंने लिया है, वे साधारण गांधार, अंतर गांधार, वराली मध्यम, कैशिक निषाद और काकली निषाद हैं। इनमें वराली मध्यम तथा नाम है। यह सोमनाथ का मृदु-पंचम है जो पंचम स्वर की तीसरी श्रुति पर स्थित है। इसमें वर्णित ७२ ठाठ-पद्धति उत्तरी संगीत के लिए भी ठाठ-पद्धति का सिद्धान्त बताती है, इसलिए यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।



### श्रीनिवास-कृत 'रागतत्त्वविबोध'

(लगभग १८-वीं शताब्दी) यद्यपि यह एक छोटा सा ग्रंथ है, परन्तु इसमें वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना की गई है, इसलिए इसका बहुत महत्त्व है। मेल, ओडव, षाडव तथा सम्पूर्ण की परिभाषा देकर, मूर्च्छना के विषय में कुछ कम समझाते हैं। उनका कहना है कि राग के चार भाग होते हैं। इन्हें क्रम से उद्ग्राह (वह भाग जिससे राग का आलाप प्रारम्भ होता था), स्थायी, संचारी और मुक्तयी कहते हैं। (आलाप का तृतीय भाग संचारी और अंतिम भाग मुक्तयी होता था)। इन्होंने अपने मेलों के वर्णन में केवल बारह श्रुतियों का ही प्रयोग किया है। रागाध्याय का समस्त विवरण 'संगीत पारिजात' से लिया है।

### मुहम्मद रजा-कृत 'नगमाते-आसफ़ी'

आधुनिक काल में सर्वप्रथम बिलावल को शुद्ध ठाठ मानकर १८१३ ई० में पटना के रईस मुहम्मद रजा ने 'नगमाते-आसफ़ी' नामक पुस्तक लिखी। इन्होंने पूर्व-प्रचलित राग-रागिनी-पद्धति का संशोधन करके अपना एक नवीन मत चलाया, जिसमें छह राग और छत्तीस रागिनियाँ मानकर उनका नए ढंग से विभाजन किया।

### सवाई प्रतापसिंह-कृत 'संगीत-सार'

१७७६-१८०४ ई० में जयपुर के महाराजा सवाई प्रतापसिंह ने एक विशाल संगीत-समारोह का आयोजन करके बड़े-बड़े संगीत-कलाविदों को इकट्ठा किया और उनसे विचार-विनिमय करने के पश्चात् 'संगीत-सार' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें बिलावल ठाठ को ही शुद्ध ठाठ स्वीकार किया गया है।

### कृष्णानन्द व्यास-कृत 'संगीत-राग कल्पद्रुम'

१८४२ ई० में कृष्णानन्द व्यास ने 'संगीत-राग-कल्पद्रुम' नामक एक बड़ी पुस्तक लिखी, जिसमें उस समय तक के हजारों ध्रुवपद, खयाल तथा अन्य गीत (स्वरलिपि-रहित) दिए गए हैं।

उत्तर-भारत में इस समय राग-वर्गीकरण की नई पद्धति बनाने की योजना चल रही थी और उधर तंजौर दक्षिणी संगीत का विशाल केन्द्र बन गया था, जहाँ अनेक प्रसिद्ध संगीत-विद्वान्-त्यागराज, श्यामा शास्त्री, सुब्बराव दीक्षित—आदि संगीत-कला का प्रचार कर रहे थे।

इस परिवर्तन-काल में भी बंगाल के राजा सुरेन्द्रमोहन टैगोर तथा अन्य कुछ विद्वानों ने राग-रागिनी-पद्धति का ही समर्थन करते हुए कुछ पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ़ म्यूज़िक' पुस्तक का नाम उल्लेखनीय है।





## संगीतकारों का संक्षिप्त परिचय

### जयदेव

‘गीतगोविन्द’ के यशस्वी लेखक जयदेव का नाम साहित्य और संगीत-जगत् में आदर के साथ लिया जाता है। आप उच्च कोटि के कवि होने के साथ-साथ वाग्गेयकार और संगीतज्ञ भी थे। भारतीय संगीत में आपको उच्च स्थान प्राप्त है।

जयदेव कवि का जन्म बंगाल के केंडुला ग्राम में ईसा की बारहवीं शताब्दी में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री मजीयदेव था। उस युग के वैष्णव-संप्रदाय के सुप्रसिद्ध महात्मा श्री यशोदानंदन के आप शिष्य थे। आपके गुरु ब्रज में निवास करते थे।

बाल्य-काल में माता-पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण अल्पायु में ही जयदेव घर-बार छोड़कर जगन्नाथपुरी चले गए और वहाँ के पुरुषोत्तम धाम में निवास करने लगे। इसके पश्चात् आपके अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तीर्थ-स्थानों की यात्रा की और कुछ दिनों ब्रज-भूमि में भी भ्रमण किया। कुछ समय बाद आपका विवाह हो गया और अपनी पत्नी के साथ आपने देश का पर्यटन किया। तत्पश्चात् आपने ‘गीतगोविन्द’ नामक प्रसिद्ध संस्कृत-ग्रन्थ की रचना की।

‘गीतगोविन्द’ जयदेव की एक अमर कलाकृति है। इसके अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में तो हो ही चुके हैं, साथ ही लेटिन, जर्मन और अंग्रेजी भाषाओं में भी इसके भाषांतर हो गए हैं। इससे भली-भाँति विदित होता है कि यह ग्रन्थ कितना महत्त्वपूर्ण है।

संगीत-विशारद





१८८० ई० में नेपाल नरेश ने बंगरी (नेपाल) में म्यूजिक-कान्फ्रेंस की थी, जिसमें चोटी के भारतीय संगीतज्ञ एकत्र हुए थे । उसी अवसर का एक दुर्लभ चित्र ।  
 बैठे हुए बाएँ से— १. श्री गुलाम हुसेन खाँ (धुपद), २. श्री सादिक अली खाँ (टप्पे वाले), ३. श्री इनायत हुसेन खाँ (रामपुर वाले खयालियाँ), ४. श्री ताऊ खाँ (धुपद), ५. उ० ग्रगे नज़ीर खाँ (मेवाती घराने के प्रवर्तक), ६. उ० फ़तह अली खाँ (तानकप्तान), ७. श्री रहमत खाँ (ग़वालियर के खयालियाँ)।  
 खड़े हुए बाएँ से— १. उ० छोटा नियामत, २. श्री बलदेव शाह, ३. श्री जगदीप, ४. श्री वीनकार भट्ट, ५. उ० जीन खाँ, ६. उ० मोहम्मद अली, ७. हैदर खाँ, ८. मिश्रा जी पखावजी के पुत्र, ९. उ० आफ़ताप, १०. मिश्रा जी पखावज-वादक, ११. मिश्रा जी के पुत्र, १२. उ० रहमत अली, १३. हुसेन बरुण मौला, १४. उ० प्यार अली खाँ, १५. उ० रसूल, १६. उ० बड़ाजमीरुद्दीन, १७. उ० गुलाम रसूल खाँ ।



जयदेव कवि गायन तथा नृत्य के भी प्रेमी थे, इसलिए 'गीतगोविंद' में प्रत्येक अष्टपदी पर राग व ताल के निर्देश मिलते हैं। उनकी कविताएँ आज भी अनेक वैष्णव-मंदिरों में राग और ताल-सहित गाई जाती हैं। दक्षिण के कुछ मंदिरों में तो नृत्य के साथ आपकी अष्टपदियाँ अभिनीत भी की जाती हैं, जिनमें ताल और लय के साथ-साथ भाव प्रदर्शन होता है। 'गीतगोविंद' की मूल रचना संस्कृत में करके आपने कुछ संगीत-प्रबन्ध हिन्दी भाषा में भी रचे, जिसका प्रमाण आपके बनाए हुए कुछ ध्रुवपदों द्वारा मिलता है।

कहा जाता है कि आप एक राज-दरबार में सम्मानपूर्वक रहते थे, किन्तु अपनी पत्नी (पद्मावती) का स्वर्गवास हो जाने के बाद, राज्याश्रय छोड़कर अपने गाँव में चले आए थे और कुछ समय तक साधु-जीवन व्यतीत करते-करते अपनी जन्म-भूमि में ही परलोकवासी हो गए। उस गाँव में आपकी एक समाधि है, जहाँ प्रतिवर्ष मकर संक्रान्ति के दिन अब भी मेला लगता है।

## शारंगदेव

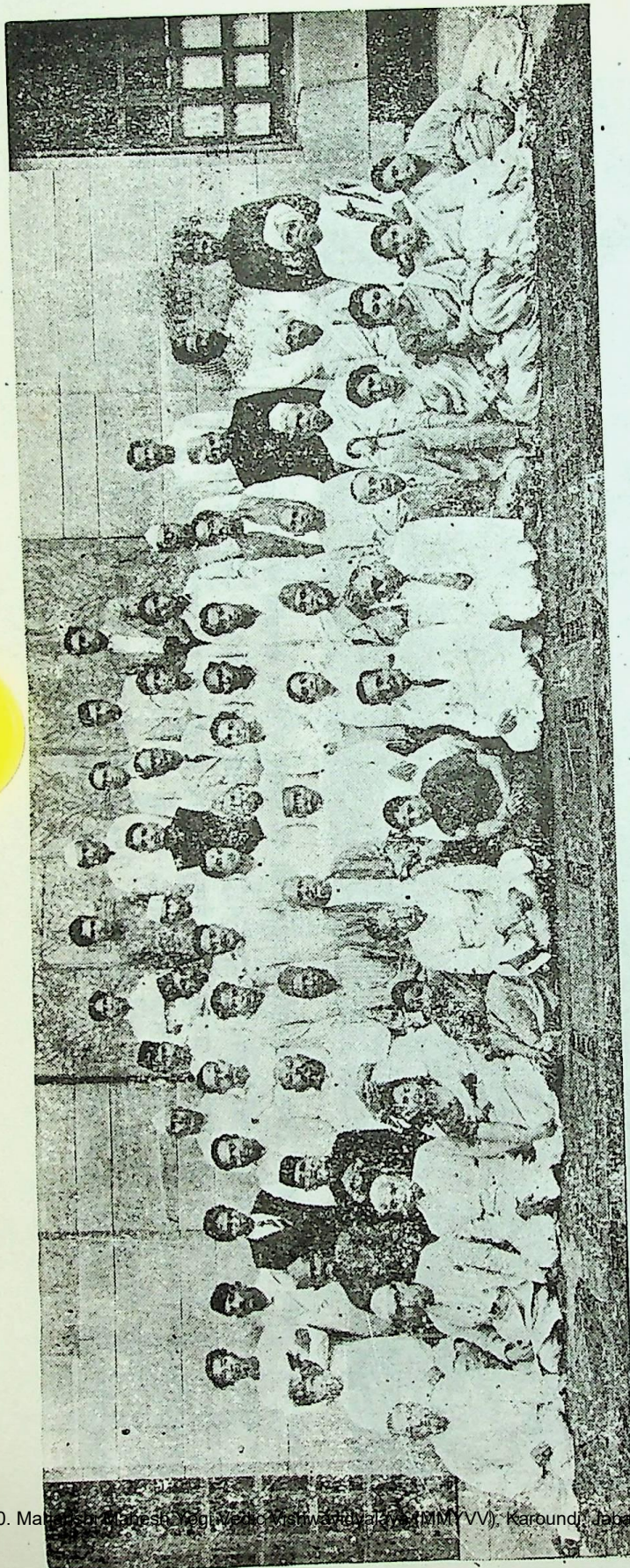
भारतीय संगीत के प्राचीन व प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संगीत-रत्नाकर' के रचयिता शार्ङ्गदेव १३-वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (१२१०-१२४७) में देवगिरि (दक्षिण) के बादशाह के दरबार में रहते थे। आपके बाबा कश्मीरी ब्राह्मण थे जो बाद में आकर देवगिरि में बस गए।

इनके पिताश्री सोढल, यादव राजा भिल्लम (११८७-११८९) और सिंहण (१२१०-१२१७ ई०) के दरबार में उच्च पद पर आसीन थे। शार्ङ्गदेव के प्रति राजा का भी प्रेम था। इसीलिए आपकी शिक्षा-दीक्षा राज्याश्रय में ही हुई।

आपने 'संगीत-रत्नाकर' नामक ग्रंथ में नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति इत्यादि का भली-भाँति विवेचन किया है। अनेक पूर्व-लिखित ग्रंथों की सामग्री लेकर तत्कालीन उत्तरी-दक्षिणी संगीत का समन्वय किया है। आपने कुल बारह स्वर माने हैं। सात शुद्ध और ग्यारह विकृत इस प्रकार अठारह जातियाँ मानी हैं। इन जातियों का विस्तृत वर्णन करने के बाद ग्राम-रागों को जातियों से उत्पन्न बताया है और ग्राम-रागों से ही अन्य राग विकसित बताए हैं।

शार्ङ्गदेव के स्वर और राग आधुनिक स्वर तथा रागों से मेल नहीं खाते। कारण यह है कि उन्होंने जो श्रुत्यंतर कायम किए थे, वे आज के श्रुत्यंतरों से भिन्न हैं। यद्यपि 'संगीत-रत्नाकर' में वर्णित राग आज उपयोग में नहीं आते, तथापि पुस्तक के अन्य भागों में विस्तृत विवरण इस विद्वान ने दिया है, उससे आधुनिक समय में बड़ी सहायता मिलती है। कुछ विद्वानों ने शार्ङ्गदेव का शुद्ध ठाठ 'मुखारी' जिसे आधुनिक कर्नाटिक-संगीत में 'कनकांगी' भी कहते हैं, स्वीकार किया है। 'संगीत-रत्नाकर' भारतीय संगीत का आधार ग्रन्थ है। कल्लिनाथ और सिंहभूपाल नाम के आचार्यों ने इसकी टीका की जिसके कारण 'संगीत-रत्नाकर' को समझना आज संभव हो सका है।





सन् १९५१ में दिल्ली में राष्ट्रपति द्वारा आमंत्रित भारत के महान् संगीतकारों का दुर्लभ चित्र ।

नीचे से पहली पंक्ति (बाएँ से) — १. अज्ञात, २. बद्रीप्रसाद शंगलू, ३. लाला हंसराज गुप्ता, ४. अज्ञात, ५. श्रीमती शोला भरतराम, ६. पं० हक्सर, ७. श्रीमती सुमित्रा चरानस, ८. डॉ० एन० महु, ९. वालकृष्ण राव, १०. शिवराज वहादुर, ११-१२ अज्ञात, १३. शरन रानी वाकलोवाल, १४. निर्मला जोशी ।

दूसरी पंक्ति (कुर्सी पर बैठे हुए) — १. वामनराव पाध्ये (पं० विष्णुदिगम्बर जो के शिष्य), २. निसारहुसन खाँ, ३. अहमदजान शिरकवा, ४. हाफिजअली खाँ, ५. महेताक हुसेन खाँ, ६. ओम्कारनाथ ठाकुर, ७. डॉ० राजेन्द्रप्रसाद (तत्कालीन राष्ट्रपति), ८. केसरवाई केरकर, ९. अलाउद्दीन खाँ, १०. कंठे महाराज, ११. गोविंदराव बुरहमपुरकर (पखावजी), १२. मिरासी बुवा, १३. अनन्तमनोहर जोशी ।

तीसरी पंक्ति — १. गुलाममुस्तफा, २. अलताफ़हसेन, ३. गोविंदप्रसाद (जयपुरवाले), ४. करामतुल्ला खाँ, ५. राधिकामोहन मोइत्रा, ६. इलियास खाँ (सितार-वादक), ७. विसमिललाह खाँ, ८. किशन महाराज, ९. अलताफ़हुसन (खुर्जावाले), १०. रविशंकर, ११. अलीअकबर खाँ, १२. विलायत खाँ, १३. ज्ञानप्रकाश घोष, १४. नारायणराव व्यास, १५. नितायकराव पटवर्धन, १६. डॉ० वी० पलुस्कर ।

चौथी पंक्ति — प्रथम पंक्ति अज्ञात, ६. वी० आर० देवधर, ७. अज्ञात, ८. नबीजान (शिरकवा के पुत्र), ९. शंकरराव मोडक, १०. शंकरराव बोडस ।

पाँचवीं पंक्ति — १. रामजी भाई मलिक, २. विनयकद मोडगाकर, ३. वसुधोषम गांधी (महात्मा गांधी के पोत्र), ४. प्राणलाल शाह, ५. नंकरराव सरे, ६. वसंतराव राजोपाध्ये ।



## अमीर खुसरो

अमीर खुसरो का पिता अमीर मुहम्मद सैफुद्दीन बलबन का निवासी था। हिंदुस्तान में आने के पश्चात् इसके यहाँ अमीर खुसरो का जन्म हुआ। एक लेखक के मतानुसार खुसरो का जन्म ६५३ हिजरी (१२३४ ई०) है। अन्य लेखक १२५३ ई० मानते हैं। खुसरो का जन्म-स्थान एटा ज़िले में 'पटियाली' नामक स्थान माना जाता है। वह अत्यन्त चतुर और बुद्धिमान था। उस काल के मान से योग्य शिक्षा पाने के पश्चात् अमीर खुसरो गुलाम-घराने के दिल्लीपति गयासुद्दीन बलबन के आश्रय में रहा। किंतु कुछ दिनों बाद गुलाम-घराने का अंत हो गया और सल्तनत खिलजी वंश के कब्जे में आ गई, अतः खुसरो भी खिलजी वंश का नौकर हो गया।

अलाउद्दीन खिलजी ने १२६४ ई० में जब देवगिरि के राजा पर चढ़ाई की, उस समय अमीर खुसरो भी उसके साथ था। इस लड़ाई में देवगिरि के राजा की पराजय हुई। देवगिरि में उस समय गोपाल नायक नामक संगीत का एक उत्कृष्ट विद्वान रहता था। खुसरो ने एक छत्रपूर्ण प्रस्ताव रखकर राज्य-दरबार में उससे संगीत-प्रतियोगिता माँगी और उसे अपने चातुर्य-बल से पराजित कर दिया। किंतु वह गोपाल नायक की कला का हृदय से आदर करता था, इसलिए दिल्ली लौटते समय गोपाल नायक को भी उसके साथ आना पड़ा।

दिल्ली आकर खुसरो ने संगीत-कला में अपूर्व क्रांति पैदा की। उसने दक्षिण के शुद्ध स्वर-सप्तक की योजना कर उसे प्रचलित किया और लोक-रुचि के अनुकूल नए-नए रागों की रचना की। राग-वर्गीकरण का एक नवीन प्रकार राग में गृहीत स्वरों से निकाला। उसने रागों के गाने योग्य तद्देशीय भाषा में नए-नए गीतों की रचना की। यही गीत आगे चलकर 'खयाल' के नाम से प्रसिद्ध हुए; अतः खयाल का जन्मदाता भी खुसरो को मानते हैं।

अमीर खुसरो ने संगीत-विषय पर फ़ारसी में कई पुस्तकें लिखीं। भारत और फ़ारस के संगीत के मिश्रण से कई राग भी ईजाद किए, जिनमें साज़गिरी, उश्शाक़, ज़िला, सरपदा आदि स्मरणीय हैं। खुसरो ने गाने की एक नवीन विधा को भी जन्म दिया, जिसे कव्वाली कहते हैं। इस प्रकार संगीत के क्षेत्र में चिरस्मरणीय, कार्य करके, लगभग ७२ वर्ष की आयु में अमीर खुसरो का देहान्त हो गया। कुछ लोगों ने भ्रमवश इन्हें सितार और तबले का जन्मदाता भी कह डाला है।

## गोपाल नायक

अलाउद्दीन खिलजी ने सन् १२६४ ई० में देवगिरि (दक्षिण) पर चढ़ाई की थी। उस समय वहाँ रामदेव नामक राजा राज्य करता था। इसी राजा के आश्रय में गोपाल नायक दरबारी गायक रहता था। इसी समय गोपाल नायक और अमीर खुसरो की संगीत-प्रतियोगिता हुई। खुसरो के छल और चातुर्य द्वारा गोपाल नायक को पराजित होना पड़ा और उसने अपनी हार स्वीकार कर ली। किन्तु अमीर



खुसरो हृदय से इसकी विद्वत्ता का लोहा मानता था, अतः दिल्ली वापस आते हुए उसने गोपाल नायक को भी साथ ले लिया। दिल्ली में गोपाल नायक को गायक के रूप में सम्मान प्राप्त हुआ। गोपाल नायक के विषय में एक किंवदन्ती अबतक चली आ रही है कि ये जब दिल्ली से बाहर जाते थे, तब अपनी गाड़ी के बालों के गले में समयानुसार रागवाचक ध्वनि पैदा करनेवाले घंटे बाँध दिया करते थे। चतुर कल्लि-नाथ ने भी 'संगीत-रत्नाकर' ग्रन्थ के तालाध्याय की टीका में ताल-व्याख्या के अन्तर्गत गोपाल नायक के नाम का उल्लेख किया है। इससे प्रमाणित होता है कि उस समय संगीत-विद्वानों में गोपाल नायक का काफ़ी सम्मान था।

इतिहास के संकेतानुसार गोपाल नायक सन् १२६४ और १२६५ ई० के बीच दिल्ली पहुँचे। उस समय के उपलब्ध संस्कृत-ग्रन्थों में 'ध्रुवपद' नामक प्रबन्ध का उल्लेख नहीं मिलता। इससे सिद्ध होता है कि गोपाल नायक ध्रुवपद नहीं गाते थे। उनके समय में संभवतः अन्य प्रबन्ध प्रचलित थे, जो संस्कृत, तमिल, तेलगू आदि भाषाओं में थे।

गोपाल नायक जाति के ब्राह्मण थे। देवगिरि के पश्चात् आपके जीवन का शेष भाग दिल्ली में ही व्यतीत हुआ और वहीं इनकी मृत्यु भी हो गई।

## स्वामी हरिदास

जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास को हिन्दी-साहित्य का संक्रांतिकालीन माधव कहा जाता है, उसी प्रकार स्वामी हरिदास को भी भारतीय संगीत का रक्षक कहना पड़ेगा।

स्वामी हरिदास का जन्म भाद्रपद शुक्ला अष्टमी, संवत् १५६६ (सन् १६१२ ई०) में, उत्तर-प्रदेश के अलीगढ़ ज़िले में, खैरवाली सड़क पर एक छोटे से गाँव में हुआ था।

इसी कारण उस गाँव का नाम भी हरिदासपुर हो गया। आपके पिता का नाम श्री आशुधीर था, जो कि मुलतान ज़िले के उच्च ग्राम-निवासी थे। आप सारस्वत ब्राह्मण-कुल के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। हरिदास जी की माता का नाम गंगा था।





बाल्यकाल से ही संगीत के संस्कार स्वाभाविक रूप से आपके अन्दर विद्यमान थे। आगे चलकर ये संस्कार एकदम विकसित हुए और कृष्ण-भक्ति में लीन हो गए। २५ वर्ष की तरुण अवस्था में आप वृन्दावन आ गए और निधिवन-निकुंज की एक झोंपड़ी में निवास करने लगे। यहाँ पर एक मिट्टी का बर्तन और एक गुदड़ी, यही स्वामी जी की सम्पत्ति थी।

ब्रज-रेणु के कण-कण में यमुना के नीर में, गगन-मंडल के चाँद-तारों में आप भगवान् कृष्ण की लीलाओं की मनोरम झाँकियाँ करने लगे। चारों ओर से गुंजित होने वाले मुरली के मधुर नाद ने स्वामी जी को आत्मविभोर कर दिया।

वृन्दावन में निवास करके स्वामी जी ने ब्रज-भाषा में अनेक ध्रुवपद-गीतों की रचना की तथा उन्हें शास्त्रोक्त राग व तालों में गाकर जिज्ञासुओं को तृप्त किया।

यों तो स्वामी जी का संगीत-प्रसाद अनेक व्यक्तियों को मिला होगा, किंतु इनके मुख्य शिष्यों के नाम 'नादविनोद' नामक ग्रन्थ में इस प्रकार पाए जाते हैं :-

बैजू, गोपाललाल, मदनराय, रामदास, दिवाकर पंडित, सोमनाथ पंडित, तन्ना मिश्र (तानसेन) और राजा सौरसेन।

मद्रास प्रांत को छोड़कर समस्त देश में वर्तमान प्रचलित शास्त्रीय संगीत स्वामी जी व उनके शिष्यों की ही विभूति है। 'संगीत-कल्पद्रुम' में बहुत-सी रचनाएँ स्वामी जी की ही रची हुई प्रतीत होती हैं। आजकल ब्रज में जो रास-लीला प्रचलित है, उसको स्वामी हरिदास की ही देन समझना चाहिए। रास के पदों की गायन-युक्त परिपाटी के प्रवर्तक आप ही थे, जो आज तक लोकप्रिय होकर धार्मिक भावनाओं को कलात्मक रूप दे रही है।

नाभादास जी के एक छप्पय से प्रतिध्वनित होता है कि स्वामी हरिदास के संगीत को सुनने के लिए बड़े-बड़े राजा-महाराजा उनके द्वार पर खड़े रहते थे। एक बार सम्राट् अकबर ने भी तानसेन के साथ आकर गुप्त रूप से स्वामी जी का गायन सुना था।

अंत में संवत् १६६४ वि० (सन् १६०७ ई०) में, अर्थात् ६५ वर्ष की अवस्था पाकर, आप इस भौतिक शरीर को त्यागकर सदैव के लिए निधिवन के कुंजों में विलीन हो गए।

## तानसेन

निरसंदेह, संगीत शब्द से जिन व्यक्तियों को थोड़ा भी प्रेम होगा; वे तानसेन के नाम से भली-भाँति परिचित होंगे। यद्यपि इस महापुरुष की मृत्यु हुए लगभग चारसौ वर्ष हो चुके हैं, फिर भी संगीत-संसार में इसकी विमल कीर्ति आकाश के सूर्य के समान प्रदीप्त हो रही है। आगे की पंक्तियों में हम इस महान् संगीतकार का संक्षिप्त जीवन-परिचय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।—



सन् १५०० ई० के लगभग की बात है, ग्वालियर में मुकुंदराम पांडे नामक ब्राह्मण निवास करते थे। कोई-कोई इन्हें मकरंद पांडे के नाम से भी पुकारता था। पांडित्य और संगीत-विद्या में लोकप्रिय होने के साथ-साथ आपको धन-धान्य भी यथेष्ट रूप से प्राप्त था। यदि कोई चिंता थी तो संतान होने की। आपका पत्नी पूर्ण साधवी व कर्मनिष्ठ थीं। दम्पति को संतान की चिंता हर समय व्यग्र बनाए रहती। आखिरकार वह समय भी आ गया, जबकि इनकी चिंता एक दिन हमेशा के लिए समाप्त हो गई। मुहम्मद ग़ौस नामक एक सिद्ध फ़कीर के आशीर्वाद से १५३२ ई० में ग्वालियर से सात मील दूर एक छोटे-से गाँव 'देहट' में इन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। बालक का नाम 'तन्ना' मिश्र रखा गया। •

बच्चे का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से हुआ। एकमात्र संतान होने के कारण माँ-बाप ने किसी प्रकार का कठोर नियंत्रण भी नहीं रखा। फलस्वरूप दस वर्ष की अवस्था तक बालक 'तन्ना' मिश्र पूर्णरूपेण स्वतंत्र, सैलानी व नटखट प्रकृति का हो गया। इस बीच इसके अन्दर एक आश्चर्यजनक प्रतिभा देखी गई, वह थी आवाजों की हू-ब-हू नक़ल करना। किसी भी पशु-पक्षी की आवाज़ की नक़ल कर लेना इसका खेल था। शेर की बोली बोलकर अपने बाग़ की रखवाली करने में इसे बड़ा मज़ा आया करता था।

एक दिन वृन्दावन के महान् संगीतकार सन्यासी स्वामी हरिदास जी अपनी शिष्य-मंडली के साथ उक्त बाग़ में होकर गुज़रे, तो बालक 'तन्ना' ने एक पेड़ की आड़ में छुपकर शेर जैसी दहाड़ लगाई। डर के मारे सब लोगों के दम फूल गए। स्वामी जी को उस स्थान पर शेर रहने का विश्वास नहीं हुआ और तुरन्त खोज की। दहाड़ता हुआ बालक मिल गया। बालक के इस कौतुक पर स्वामी जी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने जब अन्य पशु-पक्षियों की आवाज़ भी बालक से सुनी, तो मुग्ध हो गए और उसके पिताजी से बालक को संगीत-शिक्षा देने के निमित्त माँग-कर अपने साथ ही वृन्दावन ले आए।

गुरु की कृपा से १० वर्ष की अवधि में ही बालक तन्ना धुरंधर गायक बन गया और यहीं से इसका नाम 'तन्ना' की बजाय 'तानसेन' हो गया। गुरुजी का आशीर्वाद पाकर तानसेन ग्वालियर लौट आए। इसी समय इनके पिताजी की मृत्यु हो गई। मृत्यु से पूर्व पिता ने तानसेन को उपदेश दिया कि तुम्हारा जन्म मुहम्मद ग़ौस नामक फ़कीर की कृपा से हुआ है इसलिए तुम्हारे शरीर पर पूर्ण अधिकार उसी फ़कीर का है। अपनी ज़िन्दगी में उस फ़कीर की आज्ञा की कभी अवहेलना मत करना।

पिता का उपदेश मानकर तानसेन फ़कीर मुहम्मद ग़ौस के पास आ गए। फ़कीर साहब ने तानसेन को अपना उत्तराधिकारी बनाकर अपना अतुल वैभव आदि सब कुछ उन्हें सौंप दिया और अब तानसेन ग्वालियर में ही रहने लगे। थोड़े दिनों बाद राजा मानसिंह की विधवा पत्नी रानी मृगनयनी से तानसेन का परिचय हुआ।

• तानसेन की जन्म तिथि तथा सन् के बारे में विविध मत पाए जाते हैं। कुछ लेखक इनका जन्म सन् १५०६ ई० और कुछ १५२० ई० बताते हैं।



रानी मृगनयनी भी बड़ी मधुर तथा विदुषी गायिका थीं। वे तानसेन का गायन सुनकर बहुत प्रभावित हुईं। उन्होंने अपने संगीत-मंदिर में शिक्षा पानेवाली हुसैनी ब्राह्मणी नामक एक सुमधुर गायिका लड़की के साथ तानसेन का विवाह कर दिया।

विवाह के पश्चात् तानसेन पुनः अपने गुरु जी के आश्रम (वृन्दावन) में शिक्षा प्राप्त करने पहुँचे। इसी समय फ़कीर मुहम्मद ग़ौस का अंतिम समय निकट आ गया। फ़लस्वरूप गुरु जी के आदेश पर तानसेन को तुरंत ग्वालियर वापस आना पड़ा। फ़कीर साहब की मृत्यु हो गई और अब तानसेन एक विशाल संपत्ति के अधिकारी बन गए। अब वे ग्वालियर में रहकर आनंदपूर्वक गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने लगे। तानसेन के चार पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ। पुत्रों का नाम—सुरतसेन, तरंगसेन, शरतसेन, और विलास खाँ तथा लड़की का नाम सरस्वती रखा गया। तानसेन की सभी संतानें संगीत-कला के संस्कार लेकर पैदा हुईं। सभी बच्चे उत्कृष्ट कलाकार हुए।

संगीत-साधना पूर्ण होने के बाद सर्वप्रथम तानसेन को रीवा-नरेश रामचन्द्र (राजाराम) अपने दरबार में ले गए। इन्हीं दिनों तानसेन का सौभाग्य-सूर्य चमक उठा। महाराजा ने तानसेन-जैसे दुर्लभ रत्न को बादशाह अकबर की भेंट कर दिया। सन् १५५६ ई० में तानसेन अकबर के दरबार में दिल्ली गए। बादशाह ऐसे अमूल्य रत्न को पाकर अत्यंत प्रसन्न हुआ और तानसेन को उसने अपने नवरत्नों में सम्मिलित कर लिया।

यह तानसेन का शौर्यकाल था। बादशाह का अटूट स्नेह और सम्मान पाकर तानसेन की यश-पताका उन्मुक्त होकर लहराने लगी। अकबर तानसेन के संगीत का गुलाम बन गया। कला-पारखी अकबर तानसेन की संगीत-माधुरी में डूब गया। बादशाह पर तानसेन का ऐसा पक्का रंग सवार देख कर दूसरे दरबारी गायक जलने लगे और एक दिन उन्होंने तानसेन के विनाश की योजना बना डाली। किंवदन्ती है कि ये सब लोग बादशाह के पास पहुँचकर कहने लगे—“हुजूर, हमें तानसेन से ‘दीपक’ राग सुनवाया जाए और आप भी सुनें। इसको तानसेन के अलावा और कोई ठीक-ठीक नहीं गा सकता।” बादशाह राजी हो गए। तानसेन द्वारा इस राग का अनिष्टकारक परिणाम बताए जाने और लाख मना करने पर भी अकबर का राजहट नहीं टला और उसे दीपक राग गाना ही पड़ा। राग जैसे-ही शुरू हुआ, गर्मी बढ़ी व धीरे-धीरे वायुमंडल अग्निमय हो गया। सुननेवाले अपने-अपने प्राण बचाने को इधर-उधर छिप गए, किंतु तानसेन का शरीर अग्नि की ज्वाला से जल उठा। उसी समय तानसेन अपने घर भागे। वहाँ उनकी लड़की तथा एक गुरुभगिनी ने मेघ राग गाकर उनके जीवन की रक्षा की। इस घटना के कई मास पश्चात् तानसेन का शरीर स्वस्थ हुआ। अकबर भी अपनी गलती पर बहुत पछताया।

कहा जाता है कि तानसेन के जीवन में पानी बरसाने, जंगली पशुओं को मंत्र-मुग्ध करने तथा रोगियों को ठीक करने आदि की अनेक संगीत-प्रधान चमत्कारी



घटनाएँ हुईं। यह निर्विवाद सत्य है कि गुरु-कृपा से उन्हें बहुत-सी राग-रागनियाँ सिद्ध थीं और उस समय देश में तानसेन-जैसा दूसरा कोई संगीतज्ञ नहीं था। तानसेन ने व्यक्तिगत रूप से कई रागों का निर्माण भी किया, जिनमें दरबारी कान्हड़ा, मियाँ की सारंग, मियाँ मल्लार आदि उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार अमर संगीत की सुखद वैखरी बहाता हुआ यह महान् संगीतज्ञ मृत्यु के निकट भी आ पहुँचा। दिल्ली में ही तानसेन ज्वर से पीड़ित हुए। अंतिम समय जानकर उन्होंने ग्वालियर जाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु बादशाह के मोह और स्नेह के कारण तानसेन फ़रवरी, सन् १५८५ ई० में दिल्ली में ही स्वर्ग-वासी हो गए। इच्छानुसार तानसेन का शव ग्वालियर पहुँचाया गया और मुहम्मद ग़ौस की क़ब्र के बराबर उनकी समाधि बनादी गई। तानसेन की मृत्यु के पश्चात् उनका कनिष्ठ पुत्र विलास खाँ तानसेन के संगीत को जीवित रखने व उनकी कीर्ति को प्रसारित करने में समर्थ हुआ।

### बैजू बावरा

यह सुप्रसिद्ध गायक तानसेन का मित्र व एक दृष्टि से तानसेन का प्रतिद्वन्द्वी भी था और अकबर बादशाह के समय (१५५६-१६०५ ई०) में दिल्ली में रहता था। यह उसी काल के प्रसिद्ध गायक गोपाललाल का गुरु भी था। बैजू ने अनेक ध्रुवपद बनाए थे, जिनमें गोपाललाल, तानसेन और बादशाह अकबर का नामोल्लेख मिलता है। विद्यार्थियों को यह भी मालूम होना चाहिए कि 'नायक बैजू, और 'बैजू बावरा' ये दो भिन्न-भिन्न गायक थे व भिन्न-भिन्न काल में हुए। बैजू बावरा ने कभी बादशाह की नौकरी स्वीकार नहीं की। ये १६-वीं शताब्दी में अकबर के राज्य-काल में ही स्वर्गवासी हो गए।

### सदारंग-अदारंग

खयाल की बहुत-सी चीज़ों में 'सदारंगीले मौमदसा' ऐसा नाम कई बार देखने में आता है। १८-वीं शताब्दी में न्यामत खाँ नाम के प्रसिद्ध बीनकार हो गए हैं। ये अपनी बनाई हुई चीज़ों में उस समय के बादशाह मुहम्मद शाह का नाम दे दिया करते थे। बादशाह को प्रसन्न करने के लिए ही वे ऐसा किया करते थे। न्यामत खाँ अपना उपनाम 'सदारंगीले' रखकर, साथ में बादशाह का नाम भी जोड़ दिया करते थे। 'सदारंगीले' को ही 'सदारंग' भी कहा जाता था। न्यामत खाँ (सदारंग) के खानदान के बारे में बताया जाता है कि ये तानसेन की पुत्री के खानदान में दसवें व्यक्ति थे। इसके पिता का नाम लाल खाँ सानी और बाबा का नाम खुशाल खाँ था।

यद्यपि खयाल-रचना का कार्य सर्वप्रथम अमीर खुसरो ने शुरू किया था किन्तु उस समय खयाल-रचना विशेष लोकप्रिय नहीं सकी। इसके बाद सुल्तान हुसैन शर्की बाज़बहादुर, चंचलसेन, चाँद खाँ, तथा सूरज खाँ ने भी ग्रहण करने की चेष्टा की किन्तु उन्हें भी विशेष सफलता नहीं मिल सकी। न्यामत खाँ ने उनकी इन असफलताओं



का कारण ढूँढ़ निकाला। इन्होंने अनुभव किया कि जब तक कविताओं में बादशाह का नाम नहीं डाला जाएगा, तब तक वे अच्छी तरह प्रचलित नहीं हो सकेंगी। साथ ही इन्हें रूठे हुए बादशाह को भी खुश करना था, क्योंकि वेश्याओं को तालीम न देने पर एक बार बादशाह इतने नाराज़ हो गए थे, अतः वे उपनाम 'सदारंगीले' के साथ बादशाह का नाम तो डालने लगे, किंतु इसकी खबर बादशाह को न होने दी कि यह कविता किसकी बनाई हुई है और सदारंग कौन है! इस प्रकार बहुत-सी कविताएँ न्यामत खाँ ने तैयार करके अपने शागिर्दों को भी याद कराईं। जब बादशाह को ये कविताएँ खयाल में गाकर सुनाई गईं, तो वे बड़े प्रभावित हुए और यह ज्ञानने की इच्छा प्रकट की कि यह 'सदारंगीले' कौन हैं। न्यामत खाँ के शागिर्दों ने जवाब दिया कि हमारे उस्ताद, जिनका असली नाम न्यामत खाँ है, उनका तख़ल्लुस (उपनाम) 'सदारंगीले' है। बादशाह ने कहा—'अपने उस्ताद को बुलाकर लाओ।' न्यामत खाँ दरबार में उपस्थित हुए, तो मुहम्मदशाह ने उनके पुराने अपराधों को क्षमा करके, उन्हें पुनः आदरपूर्वक अपने दरबार में रख लिया और वे वीणा बजाकर गायकों का साथ करने के लिए स्थायी रूप से दरबार में रहने लगे। इस प्रकार सदारंग ने पुनः अपना रंग जमाकर गुणियों में आदर प्राप्त कर लिया।

सदारंग के खयालों में विशेष रूप से शृंगार-रस पाया जाता है। कहा जाता है कि सदारंग ने स्वयं अपनी ये चीज़ें महफ़िलों में नहीं गाईं। उनका कहना था कि खुद अपने लिए या अपने खानदान के लिए मैंने ये चीज़ें नहीं बनाई हैं, बल्कि बादशाह सलामत को खुश करने के उद्देश्य से ही इनकी रचना की गई है। इतना होते हुए भी इनकी रचनाएँ समाज में काफ़ी फैल गईं। खयाल-गायक और गायिकाओं ने इनकी चीज़ें अपनाईं।

सदारंग के साथ-साथ कुछ चीज़ों में अदारंग का नाम भी पाया जाता है। इसके बारे में इस इतिहासकार का कथन है कि न्यामत खाँ के दो पुत्र थे, जिनका नाम फीरोज़ खाँ और भूपत खाँ था। 'अदारंग' फीरोज़ खाँ का ही उपनाम था। भूपत खाँ का उपनाम 'महारंग' था। इस प्रकार पिता के साथ-साथ दोनों पुत्र भी संगीत के क्षेत्र में अपना नाम सदा के लिए अमर कर गए।

## बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर

बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर अखिल-भारतीय संगीत कलाकोविदों में एक उच्च श्रेणी के गायक हो गए हैं। प्रसिद्ध संगीतचार्य पं० विष्णुदिगंबर पुलस्कर इन्हीं के शिष्य थे। बालकृष्ण बुआ का जन्म सन् १८४८ ई० (शाके १७७१) में कोल्हापुर के पास चंदूर नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता रामचन्द्र बुआ स्वयं एक अच्छे गायक थे, इस कारण बाल्य-काल से ही इनके अन्दर भी संगीत की अभिरुचि उत्पन्न हो गई। भाऊ बुआ, देवजी बुआ, हद्दू खाँ आदि विद्वानों से इन्होंने ध्रुवपद-धमार खयाल और टप्पा की शिक्षा पाई। अतः इन चारों अंगों के आप कलावंत थे।

संगीत-विशारद



## संगीत-विशारद



१६वीं शताब्दी के मध्यकाल का दुर्लभ चित्र जिसमें अनेक प्राचीन संगीतकारों के बीच में दतिया के प्रसिद्ध कुदऊसिंह पखावजी बैठे हैं। उनके दाहिनी ओर संभावित कलाकार हैं गायक शंकरराव पंडित तथा उनके दाहिनी ओर हैं राजाभैया पूछवाले।



वाद्य संगीत के प्राचीन कलाकारों का एक दुर्लभ चित्र



( नाम अज्ञात )



कुछ समय बाद इन्हें जोशी बुआ नामक प्रसिद्ध संगीतज्ञ से भी संगीत-शिक्षा प्राप्त हुई और अपने परिश्रम तथा रियाज के द्वारा थोड़े समय में ही बालकृष्ण बुआ गायनाचार्य बन गए। आपने समस्त हिंदुस्तान व नेपाल का भ्रमण किया तथा अनेक संगीत-सम्मेलनों में भाग लिया। बम्बई में आपने 'गायन-समाज' की स्थापना की और 'संगीत-दर्पण' नामक एक मासिक पत्र भी चलाया; किंतु श्वास रोग के कारण आपको बम्बई छोड़नी पड़ी। कुछ समय बाद आप औध स्टेट के गायक हो गए। वहाँ प्रातःकाल अपना रियाज करते और फिर शिष्यों को पढ़ाते थे।

कुछ समय बाद आपने इचलकरंजी नामक रियासत में स्थायी रूप से राज-गायक की पदवी स्वीकार करली, तभी से आप इचलकरंजीकर के नाम से प्रसिद्ध हो गए और पुनः समस्त भारत का भ्रमण करके आपने संगीत का प्रचार किया। इसी बीच आपके एकमात्र सुपुत्र का निमोनिया से यकायक देहान्त हो गया और फिर एक सुपुत्री भी चञ्च बसी। इन आघातों से आपके स्वास्थ्य को विशेष धक्का पहुँचा। फलस्वरूप सन् १९२६ ई० में इचलकरंजी में ही आप स्वर्गवासी हो गए।

### पं० रामकृष्ण वझे

आपका जन्म सन् १८८१ ई० में सावंतवाड़ी के ओंका नामक ग्राम में हुआ था। दस मास की शिशु व्यवस्था में ही आपको छोड़कर आपके पिताजी स्वर्गवासी हो गए; अतः इनका पालन-पोषण माता के द्वारा हुआ। ४ वर्ष की अवस्था में इनकी माता जी इन्हें लेकर 'कागल' नामक स्थान में आकर अन्ना साहब देशपांडे के यहाँ रहने लगीं।

बाल्य-काल में विद्याध्ययन के समय आपका रुचि-प्रवाह संगीत की ओर मुड़ गया। अध्यापकों के अनुरोध पर आपकी माता जी ने आर्थिक दशा प्रतिकूल होने पर भी, किसी प्रकार आपको संगीत शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध किया। उस समय भाग्य से इन्हीं के गाँव में बलवंतराव पोहरे नामक दरबारी गायन करते थे। उनसे आपने दो वर्षों तक संगीत शिक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् मालवन में विठोवा अन्ना हड़प के पास रहकर उनकी गायकी सीखी।

बारह वर्ष की अवस्था में ही आपका विवाह कर दिया गया। विवाह होते ही आपके सामने आर्थिक समस्या खड़ी हो गई। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप पूना होते हुए पैदल ही बम्बई जा पहुँचे। बम्बई में गा-गाकर दस-बारह रुपये कमाए। वहाँ आपको बंदेअली तथा चुन्ना के गाने और उनकी वीणा सुनने का अवसर भी मिला।

तत्पश्चात् आपने ग्वालियर में रहकर अनेक कष्ट उठाते हुए भी अपनी संगीत-शिक्षा जारी रखी। ख़ाँ साहब निसारहुसैन पर आपकी काफ़ी श्रद्धा थी। उनकी फटकारें खाकर भी आपने बहुत कुछ संगीत-शिक्षा उन्हीं से प्राप्त की। इस बीच इन्हें प्राचीन उस्तादों की संकीर्ण मनोवृत्तियों के बड़े कटु अनुभव हुए।

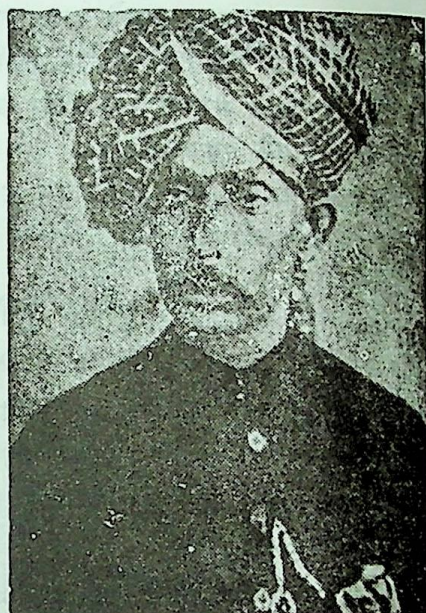


फलस्वरूप आपने संगीत-शिक्षा देने व संगीत-सम्बन्धी पुस्तकें प्रकाशित करने का संकल्प कर लिया ।

अन्त में आपका आर्थिक जीवन भी सुखमय हो गया था । शारीरिक गठन सुन्दर तथा स्वास्थ्य अच्छा होने के कारण आपका व्यक्तित्व भी प्रभावशाली था । किन्तु अन्तिम दिनों में आपको मधुमेह जैसी दुष्ट बीमारी ने निर्बल बना दिया । फलस्वरूप आप शनैःशनैः अधिक निर्बल होते गए और ५ मई, सन् १९४५ ई० को पूना में आपका देहावसान हो गया ।

## अब्दुलकरीम खाँ

खाँ साहब अब्दुलकरीम खाँ किराना के निवासी थे । इनके घराने में प्रसिद्ध गायक, तंत्रकार व सारंगी-वादक हुए हैं । इन्होंने अपने पिता काले खाँ व चाचा अब्दुल्ला खाँ से संगीत-शिक्षा प्राप्त की थी । ये बचपन से ही बहुत अच्छा गाने लगे थे । कहा जाता है कि पहली बार जब इन्हें एक संगीत-महफ़िल में पेश किया गया तब इनकी उम्र केवल ६ वर्ष की थी । पन्द्रहवें वर्ष में प्रवेश करते-करते इन्होंने संगीतकला में इतनी उन्नति कर ली कि आपको तत्कालीन बड़ौदा-नरेश ने अपने यहाँ दरबार-गायक नियुक्त कर लिया । बड़ौदा में तीन वर्ष तक रहने के पश्चात् १९०२ ई० में प्रथम बार आप बम्बई आए और फिर मिरज गए । मधुर और सुरीली आवाज तथा हृदयग्राही गायकी के कारण दिनों-दिन इनकी लोकप्रियता बढ़ती गई ।



सन् १९१३ ई० के लगभग पूना में आपने 'आर्य-संगीत-विद्यालय' की स्थापना की । विविध संगीत-जलसों के द्वारा धन इकट्ठा कर आप इस विद्यालय को चलाते थे । गरीब विद्यार्थियों का सभी खर्च विद्यालय उठाता था । इसी विद्यालय की एक शाखा १९१७ ई० में खाँ साहब ने बम्बई में स्थापित की और तीन वर्षों तक बम्बई में आपको रहना पड़ा । इन दिनों आपने एक कुत्ते को बड़े विचित्र ढंग से स्वर देने के लिए सिखा लिया था । बम्बई में अब भी ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं, जिन्होंने अमरौली-हाउस बम्बई के जल्से में उस कुत्ते को स्वर देते हुए सुना था । कई कारणों से सन् १९२० में यह विद्यालय उन्हें बन्द कर देना पड़ा । फिर खाँ साहब मिरज आकर बस गए और अन्त तक वहीं रहे ।

खाँ साहब गोबरहारी वाणी की गायकी गाते थे । महाराष्ट्र में मीड़ और कण-युक्त गायकी के प्रसार का श्रेय खाँ साहब को ही है । इनके आलापों में अखंडता



व एक प्रवाह-सा प्रतीत होता था। सुरोलेपन के कारण आपका संगीत अंतःकरण को स्पर्श करने की क्षमता रखता था। 'पिया बिन नाही आवत चैन' आपकी यह ठुमरी बहुत प्रसिद्ध हुई। इसे सुनने के लिए कला-मर्मज्ञ विशेष रूप से फरमाइश किया करते थे। यद्यपि आप शरीर से कमजोर थे, किंतु आपका हृदय बड़ा विशाल और उदार था। आपका स्वभाव अत्यन्त शान्त और सरस था। आप एक फ़कीरी वृत्ति के गायक थे।

खाँ साहब की शिष्य-परंपरा बहुत विशाल थी। प्रसिद्ध गायिका हीराबाई बड़ोदेकर ने खाँ साहब से ही किराना-घराने की गायकी सीखी। इनके अतिरिक्त सवाई गंधर्व, रोशनआरा बेगम आदि अनेक शिष्य व शिष्याओं द्वारा आपका नाम रोशन हो रहा है।

एक बार वार्षिक उर्स के अवसर पर आप मिरज आए थे। कुछ लोगों के आग्रह से एक जलसे में वहाँ से मद्रास जाना पड़ा, वहाँ पर आपका एक संगीत-कार्यक्रम में गायन इतना सफल रहा कि उपस्थित जनता ने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। फिर एक संस्था की सहायतार्थ जलसे करने के लिए वहाँ से पांडिचेरी जाने का निश्चय हुआ। इस यात्रा में ही खाँ साहब की तबियत खराब हो गई और रात्रि के ११ बजे शिगपोयमकोलम स्टेशन पर उतर गए। बेकली बढ़ती गई; कुछ देर इधर-उधर टहलने के बाद बिस्तर पर बैठ गए; नमाज़ पढ़ी और फिर दरबारी कानड़ा के स्वरों में खुदा की इबादत करने लगे। इस प्रकार गाते-गाते २७ अक्टूबर, १९३७ ई० को आप हमेशा के लिए उसी बिस्तर पर लेट गए।

### अल्लादिया खाँ

अल्लादिया खाँ महाराष्ट्र के विख्यात गायक हुए हैं। इनका जन्म १८५५ ई० में हुआ था। आपके पिताश्री भी उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे तथा ख्वाजा अहमद खाँ साहब के शिष्य थे। अल्लादिया खाँ ने उ० जहाँगीरखाँ से संगीत की तालीम ली थी।

कोल्हापुर के छत्रपति साहू महाराज ने अल्लादिया खाँ को अपना दरबारी संगीतज्ञ नियुक्त किया था। आपकी गायकी कण्ठसाध्य थी। कठिन रागों के गायन में आप प्रवीण थे। इनकी शिष्य परंपरा में भास्कर बुआ, केसरबाई केरकर, गोविंदराव टेंबे, गंगूबाई हंगल, भुर्जी खाँ (पुत्र), मोघूबाई कुर्डीकर जैसे प्रख्यात गायक-कलाकार हुए हैं। खाँ साहब का निधन १६ मार्च, १९४६ को कोल्हापुर में ही हुआ।

### बड़े गुलाम अली खाँ

आपका मूल निवास-स्थान पंजाब प्रांत में 'कसूर' नामक ग्राम था, किंतु जन्म सन् १९०२ में, लाहौर में हुआ। इनके पिताजी अलीबख्श तथा चाचा काले खाँ प्रसिद्ध संगीतकार थे। गुलामअली खाँ के तीन छोटे भाई बरकत अली खाँ, मुबारक अली खाँ तथा अमानअली खाँ भी श्रेष्ठ कलाकार बने।



गुलाम अली खाँ ने बाल्यकाल में अपने चाचा काले खाँ से संगीत-शिक्षा प्राप्त की। पारिवारिक परिस्थितियों के कारण इन्हें सारंगीवादन सीखना पड़ा, किंतु गाने का अभ्यास निरंतर चला रहा। कुछ दिनों बाद बम्बई में आकर उ० सिंधी खाँ से तालीम हासिल की, फिर देश के कई बड़े नगरों में आयोजित संगीत-सम्मेलनों में भाग लिया। आपका प्रिय वाद्य 'क्रानून' था। कण-स्वर लगाने में आपको कमाल हासिल था। मधुर आवाज के धनी, स्थूलकाय उ० गुलाम अली खाँ अनूठे गायक थे।

सन् १९६१ में आपको लक़वे की बीमारी ने घेर लिया और २३ अप्रैल, १९६८ को हैदराबाद में आपका निधन हो गया।

संगीत-नाटक अकादमी पुरस्कार-प्राप्त, पद्मभूषण उ० बड़े गुलामअली खाँ ऐसे मीठे गायक थे, जिन्हें लोग अभी तक याद करते हैं।

### विनायकराव पटवर्धन

पं. विष्णुदिगंबर पलुस्कर के शिष्यों में श्री विनायकराव पटवर्धन अपने समय के महान् गायक हुए हैं। आपका जन्म २२ जुलाई, १८९८ ई० को मिरज (महाराष्ट्र) में हुआ था। संगीत की प्रारंभिक शिक्षा आपने अपने चाचा श्री केशवराव से प्राप्त की। तत्पश्चात् ६ वर्ष की आयु से पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर से शिक्षा लेना शुरू किया।

प्रारंभ में बालगंधर्व की नाटक-मंडली में काम किया। तत्पश्चात् सन् १९३२ में गांधर्व महाविद्यालय, पूना की स्थापना करके आजीवन संगीत-सेवा की। कई पाठ्य पुस्तकें भी लिखीं, जिनमें 'राग-विज्ञान' प्रमुख है। सन् १९७२ में आपको सरकार द्वारा 'पद्मभूषण' उपाधि से विभूषित किया गया।

श्री पटवर्धन तराने के सिद्ध गायक थे, साथ ही चारों पट की गायकी में दक्ष थे। आपने रूस आदि देशों में जाकर भारतीय संगीत का प्रचार भी किया। अंततः २३ अगस्त, सन् १९७५ को पूना में ही इस महान् गायन-मनीषी का स्वर्गवास हो गया।

### श्रीकृष्ण नारायण रातांजन्कर

आप पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे के प्रमुख प्रतिनिधि एवं उनकी सांगीतिक विचारधारा के प्रबल पोषक के रूप में जाने जाते थे। संगीत-सृष्टि एवं शीर्ष संगीत-शिक्षक के रूप में भी आपकी विशेष ख्याति थी। महाराष्ट्रीय सारस्वत ब्राह्मण श्री नारायण गोविंद जी के पुत्र-रूप में, ३१ दिसम्बर, सन् १९०० को आपका जन्म हुआ था। सात वर्ष की आयु से ही श्री कृष्णकांत भट्ट के द्वारा रातांजन्कर जी की संगीत-शिक्षा प्रारंभ हो गई थी। बाद में कुछ दिनों श्री अनंतमनोहर जोशी बुवा से सीखा, तत्पश्चात् १३ वर्ष की आयु में आपने पं० विष्णुनारायण भातखंडे का शिष्यत्व ग्रहण किया। राज्य-छात्रवृत्ति के अन्तर्गत आपने पाँच वर्ष तक उ० फ़ैयाज खाँ से भी संगीत की तालीम पाई।



ठोस सांगीतिक ज्ञान प्राप्त करने के बाद श्री रातांजन्कर ने भारत के बड़े नगरों में आयोजित संगीत-सम्मेलनों में भाग लेकर ख्याति अर्जित की। सन् १९२६ में, लखनऊ में जब मैरिस म्यूजिक कॉलेज की स्थापना हुई, तभी से आपने उसमें शिक्षण-कार्य प्रारंभ कर दिया और सन् १९२८ में उस कॉलेज के प्रिन्सीपल बन गए। सन् १९५६ में वहाँ से सेवामुक्त होने के बाद १९५७ में इन्दिरा कला-संगीत-विश्व-विद्यालय के प्रथम कुलपति नियुक्त हुए तथा तीन वर्षों तक इस पद पर आसीन रहे।

भारत-सरकार ने आपकी सांगीतिक सेवाओं के लिए 'पद्मभूषण' उपाधि से आपको अलंकृत किया तथा अन्य अनेक प्रतिष्ठित संगीत-संस्थाओं ने आपको सम्मानित किया। श्री रातांजन्कर ने अनेक संगीत-ग्रंथ भी लिखे तथा संस्कृत के कई संगीत-ग्रन्थों का अनुवाद भी किया। आपके 'तान-संग्रह' और 'अभिनव गीत मंजरी' ग्रन्थ अधिक उपयोगी सिद्ध हुए।

श्री रातांजन्कर का संपूर्ण जीवन संगीत के लिए समर्पित रहा। वे जीवन-भर शास्त्रीय संगीत के पोषक तथा हिमायती रहे। कई संगीत-संस्थानों के निर्देशक भी रहे। १४ फ़रवरी, १९७४ को आपका निधन हो गया।

### भास्कर बुवा बखले

आपका जन्म रियासत बड़ौदा के कठोर नामक ग्राम में १७ अक्टूबर सन् १८६९ ई० को हुआ। पारिवारिक स्थिति आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण आपको स्कूल और कॉलेजों की शिक्षा न मिल सकी। बड़ौदा की एक संस्कृत पाठशाला में प्रारम्भिक शिक्षा मिली। बचपन से ही इन्हें संगीत का शौक था। संस्कृत के श्लोकों को लय व स्वर के साथ गाया करते थे। पढ़ाई में मन नहीं लगता था, फलतः आपको संगीत-शिक्षा के निमित्त तद्वर्ती प्रसिद्ध गायक विश्व बुवा पिंगले के पास भेज दिया गया। तत्पश्चात् उस्ताद फ़ैजमुहम्मद खाँ से आपने संगीत की तालीम हासिल की।

शनैः शनैः भास्कर बुवा प्रकाश में आने लगे। एक नाटक कम्पनी में इन्दौर के खाँ साहब उस्ताद वन्दे अली खाँ ने इनके गायन पर प्रसन्न होकर इन्हें संगीत की तालीम देने का खुद ही प्रस्ताव रखा। फिर कुछ समय तक आप धारवाड़ के ट्रेनिंग कॉलेज में संगीत शिक्षक रहे। मैसूर के दरबारी गायक उ० नत्थन खाँ, उनके बाद उ० अल्लादिया खाँ साहब से भी आपने संगीत की गूढ़ और गहन शिक्षा प्राप्त की।

इस प्रकार अनेक शीर्ष उस्तादों से संगीत-ज्ञान प्राप्त करके पं० भास्कर बुवा अपने समय के महान् संगीतकार बन गए। देश भर में इनकी ख्याति फैल गई। आपने संगीत की दुनिया को अपने शिष्य रूप में मास्टर कृष्णराव, पं० दिलीपचन्द वेदी, गोविंदराव टेम्बे, भाई लालमुहम्मद-जैसे विख्यात संगीतकार दिए।

८ अप्रैल, १९२२ को रक्तक्षय की बीमारी से आपका पूना में स्वर्गवास हो गया।



## ओम्कारनाथ ठाकुर

पंडित विष्णुदिगम्बर पलुस्कर के प्रमुख शिष्य पंडित ओम्कारनाथ ठाकुर का जन्म २४ जून १८६७ को गुजरात प्रान्त में बड़ौदा के जहाज गाँव में उनेवाल ब्राह्मण श्री गौरीशंकर ठाकुर के पुत्र रूप में हुआ था। आपके पिता प्रणव (ओम्) के परम उपासक थे, अतः उन्होंने अपने इस पुत्र का नाम ओम्कारनाथ रखा।

देश-विदेश में भारतीय संगीत की कीर्ति फैलाने वाले संगीतमार्तण्ड पं० ओम्कारनाथ ठाकुर का व्यक्तित्व बड़ा भव्य था। ईश्वर प्रदत्त मधुर आवाज के धनी पंडित जी संगीत की प्रत्येक महफ़िल में एक सिंह की तरह विजयी रहे। बाल्यकाल से ही संगीत के प्रति विशेष लगाव होने के कारण आर्थिक परिस्थितियाँ प्रतिकूल होते हुए भी आप सेठ शाहपुर जी मंचेरे डुंगी की सहायता से पंडित विष्णुदिगम्बर जी का शिष्यत्व ग्रहण करने में समर्थ हुए। अनवरत परिश्रम, गुरु जी की सेवा और संगीत के प्रति दृढ़ आस्था होने से आप शीघ्र ही संगीत के आकाश पर जाज्वल्यमान नक्षत्र की भाँति चमकने लगे। सन् १९१७ ई० में लाहौर के गांधर्व महाविद्यालय में आपने प्रिन्सीपल पद ग्रहण किया जिसे आपने सफलता पूर्वक निभाया। पंडित जी का गायन स्वर प्रधान एवं भावना प्रधान होते हुए भी उनकी आवाज में इतना ओज था कि साथ में बजने वाले दो तानपूरों की आवाज फीकी मालूम होती थी। गायन के साथ-साथ व्याख्यान देने की कला में भी आप निष्णात थे और वाग्गेयकार के रूप में आपकी एक अलग पहचान थी। आपने संगीत सम्बन्धी कई पुस्तकें भी लिखीं जिनमें 'प्रणव भारती' तथा 'संगीतांजलि' विशेष उल्लेखनीय हैं। एच० एम० वी० ने आपके अनेक डिस्क रिकॉर्ड तैयार किए जो आज भी आकाशवाणी से प्रसारित होते रहते हैं।

सन् १९५५ ई० में भारत सरकार ने आपको पद्मश्री की उपाधि देकर सम्मानित किया। सन् १९३३ ई० में आपने यूरोप की यात्रा की थी। आप कई वर्ष तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत-विभाग के प्रमुख रहे। आपका गान विचित्र तासीर रखता था। जिस समय आप 'मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो' पद गाते थे तो उस समय श्रोताओं की आँखों से आनन्दाश्रु बहने लगते थे। आपने अपने जीवन में संगीत सम्बन्धी विविध परीक्षण भी किए थे। जिनमें इटली के शासक मुसोलिनी को अनिद्रा से मुक्ति दिलाना एक प्रमुख घटना है।

जीवन के अन्तिम दिनों में आपको पक्षाघात हो गया था और उसी रोग ने २८ दिसम्बर, १९६७ को यह संगीत विभूति भारतीय संगीत-जगत् से हमेशा के लिए छीन ली।



## फ़ैयाज़ खाँ

सन् १८८६ ई० में आगरा के पास सिकन्दरा नामक स्थान पर अपने मामू के घर फ़ैयाज़खाँ का जन्म हुआ था। पिताश्री सफ़्फ़दर हुसैन आपके जन्म से तीन-चार महीने पहले ही जन्मतनशील हो गए थे, अतः ननसाल में ही नाना गुलाम अब्बास खाँ साहब ने इनका पालन-पोषण किया और बाल्यकाल से २५ साल की उम्र तक उन्होंने ही इन्हें संगीत की तालीम दी। आपके सम्बन्धी नत्थन खाँ तथा चाचा फ़िदाहुसैन खाँ कोटा वालों से भी आपको संगीत की तालीम हासिल हुई। कुछ दिनों बाद आप मैसूर चले गए, वहीं सन् १९११ में 'आफ़ताबे मूसीक़ी' की उपाधि मिली। तत्पश्चात् आप बड़ौदा के दरबारी गायक नियुक्त हुए, जहाँ उन्हें 'ज्ञान रत्न' की उपाधि प्राप्त हुई।

उस्ताद फ़ैयाज़ खाँ ध्रुपद तथा खयाल-शैली के श्रेष्ठतम गायक थे। श्रोताओं के आग्रह पर कभी-कभी ग़ज़ल भी बड़ी खूबी के साथ पेश करते थे। ठुमरी भी लाजवाब तरीक़े से गाते थे। आपका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावंशाली था। ६ फीट ऊँचे, छल्लेदार मूँछें, पुष्ट शरीर, शेरवानी और साफ़े की पोशाक में उनकी शस्त्रियत अपना अलग मुकाम रखती थी। आवाज़ सुरीली, बुलंद और भरावदार थी। स्वरों पर स्थिर हो जाना, आपके गायन की प्रमुख विशेषता थी। आपके कुछ रिकॉर्ड भी बने। आपकी शिष्य-परम्परा बहुत विशाल है। उसमें कुछ नाम इस प्रकार हैं—दिलीप चन्द वेदी, उस्ताद ज़िया हुसैन, अज़मत हुसैन, श्रीकृष्ण नारायण राताजन्कर इत्यादि। इनका घराना रेंगीले घराने के नाम से प्रसिद्ध था। आपको नोम् तोम् के आलाप की सिद्धि थी। ५ नवम्बर, १९५० को बड़ौदा में आपका निधन हो गया।

## नारायण मोरेश्वर खरे

पंडित विष्णुदिगम्बर पलुस्कर के प्रमुख शिष्यों में नारायण मोरेश्वर खरे का नाम विशेष उल्लेखनीय है। महाराष्ट्र के सतारा ज़िले के अन्तर्गत तास नामक गाँव के एक साधारण ब्राह्मण परिवार में आपका जन्म हुआ था। खरे जी के नाना श्रीकेशव बूआ एक प्रख्यात गायक थे। अतः आपको अपनी माताजी के द्वारा संगीत के आनुवंशिक संस्कार प्राप्त थे। कंठ बहुत मधुर पाया था। मिरज के एक जलसे में संयोगवश पंडित विष्णुदिगम्बर पलुस्कर ने किशोरवय के पंडित खरे के भजन सुने तो उन्होंने इन्हें शिष्य-रूप में ग्रहण कर लिया। सन् १९१२ में गुरुजी की आज्ञा से आपने बम्बई के गांधर्व विद्यालय की व्यवस्था सँभाली। सन् १९१८ में अहमदाबाद स्थित महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आश्रम में आकर वहाँ के प्रार्थना-संगीत का परिष्कार एवं परिवर्द्धन किया। आपके द्वारा निर्मित लगभग ४०० भजनों का संग्रह 'आश्रम भजनावली' के नाम से इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। आपके प्रयास से गुजरात में संगीत-कला का काफ़ी प्रचार हुआ। सन् १९१२ में, अहमदाबाद में आपने 'संगीत-मण्डल' की स्थापना की।



बापू की ऐतिहासिक दाण्डी यात्रा में भी आप उनके साथ रहे तथा जेलयात्रा भी की। सन् १९३१ में गुरु विष्णुदिगम्बर पलुस्कर के देहावसान के बाद आपने 'गांधर्व महाविद्यालय मण्डल' की स्थापना कराई तथा उसके अध्यक्ष चुने गए। सन् १९३३ में पुनः जेल जाना पड़ा। १९३५ में, अहमदाबाद में गांधर्व महाविद्यालय का उद्घाटन किया। सन् १९३८ ई० में, हरिपुरा के काँग्रेस अधिवेशन में आपको सर्दी लग गई, फलतः निमोनिया हो गया। एक सप्ताह की बीमारी के बाद ४६ वर्ष की आयु में ६ फ़रवरी, १९३८ को हरिपुरा में ही आपका निधन हो गया।

### डी० वी० पलुस्कर

प्रख्यात गायनाचार्य श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के सुपुत्र श्री दत्तात्रय विष्णु पलुस्कर (डी० वी० पलुस्कर) का जन्म १८ मई, १९२१ को महाराष्ट्र के कुरंदवाड़ में हुआ था।

प्रारम्भ में कुछ दिनों आपको अपने पिताजी द्वारा संगीत की शिक्षा मिली; किंतु सन् १९३१ में उनकी मृत्यु के बाद स्व० पलुस्कर जी के प्रधान शिष्य-श्री वि० राव पटवर्धन ने डी० वी० पलुस्कर को यथोचित संगीत-शिक्षा दी। पं० नारायण राव व्यास तथा मिराशी बुवा आदि से भी इन्हें संगीत के गुरु प्राप्त हुए। फलतः कुछ वर्षों में ही डी० वी० पलुस्कर निष्णात गायक बन गए। कंठ अत्यन्त मधुर, गौर वर्ण, भव्य आकृति तथा गुरु-पुत्र होने के कारण शीघ्र ही संगीत-संसार में इनकी धूम मच गई।

मुद्रादोष से परे, चेहरे पर मुस्कराहट रहना तथा सच्चे स्वरों का लगाव, आदि गुणों के कारण आपका गायन श्रोताओं को आत्म-विभोर कर देता था। आपके भजन-गायन में तो साक्षात् जादू था। प्रसिद्ध फ़िल्म 'बैजू बावरा' में भी आपने पार्श्व-संगीत दिया था। 'ठुमक चलत रामचन्द्र' तथा 'चलो मन गंगा-जमुना तीर' आपके भजनों के रिकॉर्ड आज भी स्वरानन्द में निमग्न कर देते हैं।

भारतीय संगीत-जगत् का इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि ऐसे अलभ्य गायक की युवावस्था में ही २६ अक्टूबर १९५५ ई० को मृत्यु हो गई।

### अमीर खाँ

इन्दौर के दरबारी कलावंत उस्ताद शाहमीर खाँ के सुपुत्र अमीर खाँ का जन्म सन् १९१२ में, इन्दौर में ही हुआ। अपने पिता के संरक्षण में २५ साल की उम्र तक आपने संगीत शिक्षा पाई। घनघोर परिश्रम, अटूट लगन तथा दृढ़ आत्म-विश्वास के कारण आप शीघ्र ही भारतीय संगीताकाश के प्रखर नक्षत्र बन गए। सम्पूर्ण भारत में इनकी चैनदार खयाल-गान-शैली की सुगंध फैल गई, फलतः संगीत की अनेक संस्थाओं से आपको सम्मान मिला। इन्हें भारत सरकार ने 'पद्म भूषण' से अलंकृत किया।

१३ फ़रवरी, १९७४ को कलकत्ता में एक मोटर-दुर्घटना में इस युगपुरुष का असामयिक अवसान हो गया।

संगीत-विशारद



उ० अमीर खाँ की गायकी पारखी श्रोताओं के लिए शरबत का घुँट थी। वे शनैः शनैः बड़ी चैनदारी के साथ राग-विस्तार करते तथा राग में खो जाया करते थे। वे किसी परम्परा से चिपके हुए नहीं थे, बल्कि नए रास्तों के निर्माता थे। उनके प्रमुख शिष्य पं० अमरनाथ के गायन में उस्ताद का रंग झलकता था।

## गिरिजादेवी

सुरीली, मधुर और शुद्ध घरानेदार गायिकाओं में वाराणसी की गिरिजादेवी अपना शीर्ष स्थान रखती हैं। आपके पिता बा० रामदास राय संगीत के प्रसिद्ध कलाकार थे। इसी सांगीतिक माहौल में अप्रैल, सन् १९२६ में गिरिजादेवी का जन्म हुआ। बाल्य-काल से ही आपकी संगीत-शिक्षा प्रारम्भ हो गई थी। लगभग १५ साल की उम्र तक पं० सूरजप्रसाद मिश्र ने आपको संगीत की शिक्षा दी। उनके निधनोपरान्त आपने पं० श्रीचन्द मिश्र का शिष्यत्व ग्रहण किया।

आकाशवाणी, लखनऊ के सर्वप्रथम कार्यक्रम से ही आपकी ख्याति रजनी-गंधा की सुगन्ध की भाँति सारे देश में फैल गई। भारत के बड़े-बड़े नगरों में आयोजित अखिल-भारतीय संगीत-सम्मेलनों से निमन्त्रण मिलने लगे, श्रोता आपकी गायकी से मन्त्रमुग्ध होने लगे। आकाशवाणी, दिल्ली के राष्ट्रीय कार्यक्रमों में भी आपने अनेक बार भाग लेकर श्रोतृवृन्द को तृप्त किया।

खयाल, ठुमरी, टप्पा आदि की गायकी के अतिरिक्त आप पूर्वी लोकगीत, भजन, होरी, कजरी, दादरा तथा काव्य-संगीत के गायन में भी निष्णात हैं। मोहक और गंभीर आलाप, तैयार तानें तथा सच्चा स्वर-लगाव आपकी साधना के परिचायक हैं। आपकी गायकी का सम्बन्ध सेनीय घराने से है।

गिरिजादेवी को संगीत की मूर्तिमान देवी कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। भारत सरकार ने सन् १९७२ में आपको पद्मश्री अलंकरण से विभूषित किया है।

## कृष्णराव शंकर पंडित

पंडित कृष्णराव का जन्म २६ जुलाई, सन् १८९४ ई० में ग्वालियर के एक दक्षिणी ब्राह्मण-परिवार में हुआ। आपके पिता स्वर्गीय पं० शंकरराव एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे, जिन्होंने ग्वालियर के प्रसिद्ध कलाकार हदद्दु खाँ और नत्थू खाँ से संगीत की शिक्षा पाई थी और बाद में उ० निसार हुसेन खाँ की देख-रेख में १२ वर्ष तक संगीतकला की कठोर साधना की। इस प्रकार पं० शंकरराव जी तत्कालीन संगीत के प्रसिद्ध आचार्यों द्वारा पूर्ण ज्ञान और अनुभव प्राप्त करके अपने समय के महान् संगीतज्ञ सिद्ध हुए। आज भी ग्वालियर निवासी आपका गर्व के साथ स्मरण करते हैं।

अपने पिता पं० शंकरराव से कृष्णराव ने संगीतशिक्षा प्राप्त की। आपके शास्त्रीय ज्ञान और स्वर-ताल पर पूर्ण अधिकार को देश के बड़े-से-बड़े



विद्वानों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया। लयकारी के कार्य में तो आप अद्वितीय समझे जाते थे।

पंडित जी के संपर्क में आने का जिन लोगों को सौभाग्य प्राप्त हुआ, वे आपकी निस्पृहता और सरल स्वभाव से अत्यन्त प्रभावित रहे। आपने देश के कोने-कोने में अपने कला-ज्ञान की धाक जमाई। संगीतोद्धारक सभा, मुल्तान ने 'गायक-शिरोमणि', अहमदाबाद आ० इ० संगीत-विभाग ने 'गायन-विशारद' और ग्वालियर-दरबार ने 'संगीत-रत्नालंकार' उपाधि देकर आपको सम्मानित किया।

आपने संगीत-विषयक साहित्य भी लिखा। हारमोनियम, सितार, जलतरंग और तबला-वादन पर आपने अलग-अलग पुस्तकें लिखीं। आपकी रचनाओं में 'संगीत-सरगम-सार', 'संगीत-प्रवेश', 'संगीत-आलाप-संचारी' आदि पुस्तकें प्रसिद्ध हैं।

आपने अपना कार्य-क्षेत्र आरम्भ से ही ग्वालियर रखा। सन् १९१३ ई० में महाराज सतारा ने आपको शिक्षक के रूप में अपने यहाँ रखा, परन्तु एक वर्ष बाद ही आपने यह कार्य छोड़ दिया। इसके उपरांत महाराज ग्वालियर ने आपको पाँच वर्ष तक अपने दरबार में रखा। इस बीच आपने आधुनिक ग्वालियर-नरेश (तत्कालीन-युवराज) और उनकी बहन सुश्री कमला राजा को संगीत-शिक्षा दी। परिस्थितियों से विवश होकर आपने दरबार छोड़ दिया और देशाटन के लिए निकल पड़े। तभी से आपके मन में एक संगीत-विषयक अच्छी संस्था स्थापित करने की इच्छा जाग्रत हुई। फलतः सन् १९१४ ई० में आपने 'गांधर्व-महाविद्यालय' नाम से ग्वालियर में एक संस्था स्थापित की। सन् १९१७ ई० में उक्त संस्था का नाम अपने पिता की स्मृति में 'शंकर गांधर्व विद्यालय' रखा।

सन् १९२६ ई० में ग्वालियर आलिया कौन्सिल द्वारा आपको तथा म० उमराव खाँ को दरबारी गायक नियुक्ति किया गया।

पंडित जी की गायन-शैली की विशेषता यह थी कि उसमें आरंभ से ही लय क्रायम करके स्थायी के साथ ही आलापचारी रहती थी। इस प्रकार अलग से आलापचारी करने की आवश्यकता नहीं होती। फिर धीरे-धीरे बाँट शुरू होता है। बाँट में बोलतान, फिरततान, छूटतान, गमक, जमजमा, खटके, झटके, मीड़ों की तानें, लागडाट, लड़ंत और लड़गुथाव आदि प्रायः सभी आलंकारिक तानें एक-के-बाद-एक यथाक्रम आती हैं। इन अलंकारों का एक खास क्रम है, जो इनके घराने की अपनी शैली है।

सन् १९४७ ई० में ग्वालियर-महाराज (श्रीमन्त जयाजीराव शिंदिया) ने आपको स्थानीय माधव संगीत महाविद्यालय में सुपरवाइजर अलाउन्स देकर नियुक्त किया था। सन् १९५६ ई० में आपको राष्ट्रपति-पुरस्कार तथा सनद प्रदान

संगीत-विशारद



किए गए। सन् १९६२ ई० में खैरागढ़ विश्वविद्यालय ने डॉक्टरेट की उपाधि दी। १९७३ में भारत-सरकार ने आपको 'पद्मभूषण' के अलंकार से विभूषित किया।

आपके चार सुपुत्रों में प्रो० नारायणराव पंडित, प्रो० लक्ष्मणराव पंडित, चंद्रकांत व सदाशिव और शिष्यों में प्रो० विष्णुपंत चौधरी, रामचंद्रराव सप्तऋषि, पुरुषोत्तमराव सप्तऋषि, दत्तात्रय जोगलेकर, प्रो० केशवराव सुरंगे, एकनाथ आरोलकर, वि० पु० मानवलकर तथा सदाशिवराव अमृतमुले के नाम उल्लेखनीय हैं।

पं० कृष्णराव ग्वालियर घराने के प्रतिनिधि कलाकार थे, जिनका देहावसान २२ अगस्त, १९८६ को हुआ।

### कुमार गन्धर्व

कुमार गन्धर्व का जन्म बेलगाम जिले के सुले भावी ग्राम में ८ अप्रैल, १९२४ को एक लिंगायत परिवार में हुआ। इनका मूल नाम शिवपुत्र था। आपके पिता श्री सिद्रामप्पा कोमकली भी एक अच्छे गायक थे।

आयु के पाँचवें वर्ष में ही एक दिन यकायक कुमार की प्रतिभा दृष्टिगोचर हुई। यह बालक उस दिन सवाई गन्धर्व के एक गायन-जल्से में गया था। वहाँ से लौटकर जब घर आया तो सवाई गन्धर्व द्वारा गाई हुई वसन्त राग की बंदिश तान और आलापों के साथ ज्यों-की-त्यों नक़ल करके गाने लगा। यह देखकर इनके पिताजी आश्चर्यचकित रह गए। लोगों ने कहा, 'इस बालक में पूर्वजन्म के संगीत-संस्कार हैं, अतः इसकी संगीत भावना को बल देने के लिए इसे शास्त्रीय संगीत अवश्य सिखाइए।' फलस्वरूप कुमार की संगीत-शिक्षा प्रारंभ हो गई। दो वर्ष की तालीम में ही कुमार के अन्दर यह विलक्षण शक्ति पैदा हो गई कि बड़े-बड़े गायकों के ग्रामोफोन रिकार्डों की हू-व-हू नक़ल करके गाने लगे। ७ वर्ष की आयु में एक मठ के गुरु ने उन्हें 'कुमार गन्धर्व' की उपाधि प्रदान की।

६ वर्ष की उम्र में कुमार गन्धर्व का सर्वप्रथम गायन-जल्सा बेलगाँव में हुआ। इसके पश्चात् बम्बई के प्रोफेसर देवधर ने कुमार को अपने संगीत-विद्यालय में रख लिया। फ़रवरी, सन् १९३६ में, बम्बई में एक संगीत-परिषद् हुई। उसमें कुमार गन्धर्व की कला का सफल प्रदर्शन हुआ, जिससे श्रोतागण मुग्ध हो गए और इनका नाम संगीतज्ञों तथा संगीत-कला-प्रेमियों में प्रसिद्ध हो गया।

२३ वर्ष की उम्र में, अर्थात् मई, सन् १९४७ ई० में कराँची की एक संगीत निपुण महिला भानुमती से आपका विवाह हो गया। लेकिन उनका देहान्त हो गया और कुमार को दूसरा विवाह करना पड़ा।

दुर्भाग्यवश कुछ समय बाद कुमार गन्धर्व तपेदिक-जैसी बीमारी के शिकार हो गए। वायु-परिवर्तन के लिए वे परिवार के साथ मालवा की एक सुन्दर पहाड़ी देवास पर निवास करने लगे। पत्नी ने छाया की तरह साथ रहकर इनकी सेवा की और



परिणाम स्वरूप कुमार स्वस्थ हो गए, तब से देवास को ही उन्होंने अपना निवास बना लिया।

कुमार गन्धर्व केवल मधुर गायक ही नहीं, अपितु एक प्रखर कल्पनाशील कलाकार थे। नवीन रागों के निर्माण में आपके द्वारा निर्मित राग अहिमोहिनी, मालवती, सहेली तोड़ी, निंदियारी, भावमतभैरव, लगनगांधार आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उनको रचनाओं का संकलन उनके ग्रंथ 'अनूपरागविलास' के नाम से प्रकाशित हुआ। लोक गीतों में शास्त्रीय संगीत का मधुर मिश्रण करके कुमार ने परम्परा की लीक से हट कर एक नई शैली को जन्म दिया जो श्रोताओं को भाव-विभोर करती थी। १२ जनवरी, १९६२ को आपका देहावसान हुआ।

## किशोरी अमोणकर

श्रीमती किशोरी अमोणकर की मान्यता है कि किसी घरानेविशेष से चिपके रहना अथवा अन्य सुन्दर चीजें लेने पर प्रतिबन्ध लगाना संगीत के विकास और अपनी विशिष्ट चीजें बनाने में बाधक है।

प्रगतिशील विचारधारा की किशोरी अमोणकर सदैव सौन्दर्य की उपासक रहीं। स्वर और श्रुतियों में डूब कर उन्हें मूर्त कर लेने को ही वे संगीत की सच्ची उपासना मानती हैं। अन्य शैलियों से अच्छी चीजें ग्रहण कर लेने को वे दोष नहीं मानती।

श्रीमती अमोणकर ने सभी घराने सुने हैं। सबकी अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं, किन्तु उन्हें जयपुर-घराना विशेष पसंद है। उनके कथनानुसार बोल-तान करना तथा शब्दों को लय के साथ बिठाना हार पिरौने के समान होना चाहिए और दोहरी तान में भी सौंदर्य कायम रहना चाहिए।

श्रीमती किशोरी अमोणकर का जन्म १० अप्रैल, १९३१ को हुआ था। इन्होंने बाल्यकाल से ही अपनी माता श्रीमती मोघूबाई कुर्डीकर (उस्ताद अल्लादिया खाँ की शिष्या) से संगीत की शिक्षा ग्रहण की और माता के साथ ही गाती रहीं। १९५७ में इनका प्रथम कार्यक्रम अमृतसर में हुआ। बाद में आपने श्री बालकृष्ण बुवा पर्वतकर और श्री मोहनराव पालेकर से भी सीखा। भारत की एक श्रेष्ठतम गायिका के रूप में आप शीघ्र ही प्रख्यात हो गईं।

## पं० भीमसेन जोशी

पं० भीमसेन जोशी बाल्यकाल से ही संगीत की ओर आकर्षित हुए। भीमसेन के दादा श्री भीमाचार्य साधक थे, प्रवचनकार थे और स्वर-साधना करते थे। भीमाचार्य के देहावसान के बाद भीमसेन ने अपने सातवें वर्ष में धूल से भरा तानपूरा निकाला। भीमसेन के पिता श्री गुरुनाथ जोशी को भीमसेन के रूप में पुत्र-लाभ होना एक अद्भुत घटना थी। उन्होंने एक स्वप्न देखा था कि वीर नारायण सामने



हैं। उनके आंसू बह चले, कंठ भर आया, उनके मुंह से निकला नारायण और तीसरे ही दिन १४ फरवरी, १९२२ (रथसप्तमी) को भीमसेन का जन्म हुआ। तीन माह बाद पिता ने पुत्र का मुंह देखा। पिता ने उसी समय समझ लिया था कि वह बड़ा संगीतज्ञ होगा।

भीमसेन को सबसे पहले 'रामाय रामभद्राय' सिखाया गया। इससे उसकी उन्नति होने लगी। भीमसेन घर के पास ही बहने वाली नदी, मस्जिद में होने वाली प्रार्थना तथा वाद्यों की आवाज़ के प्रति आकर्षित होते और घर से निकल पड़ते। दस वर्ष की आयु में हारमोनियम की शिक्षा अगसक चन्नप्पा (कुर्तफोटी) द्वारा राग भीमपलासी से शुरू हुई। भीमसेन इसमें मग्न हो गए। यह सिलसिला ७-८ महीनों तक चला। फिर पं० भीमसेन घर से भाग गए, बम्बई में गायन से कुछ पैसे कमाकर जीजापुर आ गए और बाद में संगीत सीखने के लिए पुनः घर से भागे। उनका विश्वास था कि दूर निकल जाने पर ही उनकी इच्छा पूरी होगी। वे नए-नए स्थानों पर जाते रहे और प्रत्येक बड़े कलाकार से कुछ न कुछ ग्रहण करते रहे। रामाभाऊ कुंदगोलकर 'सवाई गंधर्व' के सम्पर्क में आकर इन्हें सन्तोष मिला और उन्हीं से संगीत की उच्च शिक्षा इन्होंने ग्रहण की।

१९४४ में भीमसेन का विवाह हुआ। भीमसेन की संगीत-निष्ठा दिन-प्रति-दिन बढ़ती रही। भीमसेन किराना घराने के एक श्रेष्ठ गायक के रूप में जाने जाते हैं। बुलंद आवाज़, स्वर का सच्चा लगाव, राग-विस्तार, तान में विविधता और अद्भुत सुर-सौंदर्य के प्रदर्शन के बल पर पं० भीमसेन भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय और श्रेष्ठ गायक सिद्ध हो गए। सन् १९७२ में पं० भीमसेन जोशी को 'पद्मश्री' अलंकार से विभूषित किया गया।

## हद्दू खाँ

आपकी जीवनी आपके बड़े भाई हस्सू खाँ के साथ-साथ चलती है। ये मूलतः लखनऊ के निवासी थे। इनके बाबा का नाम नत्थन पीर बख्श और पिता का नाम कादिर बख्श था। बड़े भाई हस्सू खाँ के साथ ये भी ग्वालियर-दरबार में रहे। महाराजा ग्वालियर की इन पर बिलकुल उसी प्रकार कृपा थी, जैसी कि इनके बड़े भाई हस्सू खाँ पर।

एक बार ग्वालियर के राजा जयाजीराव आपको जयपुर ले गए, उस समय इनके साथ हस्सू खाँ भी थे। जयपुर के दरबार ने संगीत की महफ़िल जोड़ी गई, उसमें जयपुर-राज्य के लगभग सभी संगीतज्ञ और विद्वान् उपस्थित हुए। हद्दू खाँ और हस्सू खाँ का गायन इस अवसर पर सर्वश्रेष्ठ माना गया और इन्हें यथेष्ट पुरस्कार दिया गया।

अपने भाई हस्सू खाँ की मृत्यु के पश्चात् हद्दू खाँ कुछ महीनों के लिए विशिष्ट से हो गए। उस समय ग्वालियर में भी कुछ दिनों के लिए गायन-वादन आदि की



चर्चा थम गई। इधर किसी बात पर महाराज से अनबन हो जाने के कारण मियाँ हद्दू खाँ लखनऊ आकर बस गए। यहाँ इन्होंने बड़ी कीर्ति एवं लोकप्रियता अर्जित की। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय इनके जोड़ का तैयार और सुरीला गायक सारे भारतवर्ष में नहीं था।

यद्यपि हद्दू खाँ की आवाज़ अपने भाई हस्सू खाँ के समान ईश्वरप्रदत्त नहीं थी, फिर भी इन्होंने अपने परिश्रम से आवाज़ को बहुत मधुर तथा आकर्षक बना लिया था। हद्दू खाँ प्रमुखतः मियाँ-मल्हार, यमन, मालकोष, टोड़ी, बिहाग दरवारी कान्हड़ा आदि रागों को गाना पसन्द करते थे।

आपको संयोगवश दो शादियाँ करनी पड़ीं। पहली स्त्री से दो पुत्र मुहम्मद खाँ और रहमत खाँ हुए और दूसरी से दो लड़कियाँ हुईं। पहली लड़की का विवाह इनायत खाँ और दूसरी का प्रसिद्ध वीनकार वन्दे अली खाँ के साथ हुआ। वृद्धावस्था में हद्दू खाँ के शरीर का नीचे का भाग शिथिल हो गया था। उस हालत में भी आपको ग्वालियर-दरबार में गायन-प्रदर्शनार्थ उठाकर लाया जाता था।

मृत्यु के एक मास पूर्व तक आप छः घण्टे प्रतिदिन रियाज़ करते रहे। सन् १८७५ ई० में ग्वालियर में ही आपका निधन हो गया। इस कलाकार की मृत्यु पर न केवल ग्वालियर ने, अपितु सारे उत्तरी भारत ने मातम मनाया।

## हस्सू खाँ

वैसे तो इस भारत-भूमि पर अनेक कलाकार विभूतियाँ उत्पन्न हुईं और होती रहेंगी; किन्तु हस्सू खाँ जैसा गायक कदाचित् ही पैदा हो सके। अपने युग में ग्वालियर की गायकी को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने वाला यही वह प्रतिभावान् कलाकार था, जिसका नाम सुनकर आज के प्रत्येक संगीत-प्रेमी तथा गायक का हृदय सम्मान और श्रद्धा से झुक जाता है।

आपके पिता का नाम क़ादिर बख़्श और पितामह (बाबा) का नाम नत्थन पीरबख़्श था। क़ादिर बख़्श इन्हें अल्पायु में ही छोड़कर चल बसे थे, इसलिए इनका पोषण-पोषण इनके बाबा के द्वारा ही हुआ। ये प्रारम्भ में लखनऊ रहते थे, परन्तु जब इनके पिता की मृत्यु हो गई तो इनके बाबा विरोधियों से भयभीत होकर तथा अपने दोनों नाती हस्सू खाँ और हद्दू खाँ के जीवन की सुरक्षा के लिए ग्वालियर आकर बस गए। उस समय ग्वालियर की गद्दी पर श्री दौलतराव शिंदे आसीन थे। ये संगीत-कला के अनन्य प्रेमी एवं संगीत-कलाकारों के पोषक थे। इनके ज़माने में ग्वालियर भारतवर्ष में गायकी का सर्वश्रेष्ठ केन्द्र बन चुका था। उच्च कोटि के ख़याल-गायक, ध्रुवपद-गायक एवं तंत्री-वादक इनके दरबार में उपस्थित रहते थे। आपने नत्थन पीरबख़्श और उनके दोनों नातियों को अपने यहाँ प्रेमपूर्वक आश्रय दिया।

हस्सू खाँ को आवाज़ की ईश्वरीय देन थी। इनकी आवाज़ में एक विशेष प्रकार का चमत्कार था, जिससे प्रभावित होकर महाराज ने इन्हें अन्य कलाकारों के



मुक़ाबले विशेष सुविधाएँ प्रदान कीं। उस समय ग्वालियर नरेश के दरबार में बड़े मुहम्मद खाँ नामक बहुत उच्च कोटि के खयाल-गायक थे। उस समय सारा भारत उनकी तैयार, मधुर और आकर्षक गायकी का लोहा मानता था। महाराज की कृपा से किसी प्रकार इन दोनों बालकों को छुपकर लगभग छह महीने तक मुहम्मद खाँ की गायकी सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। क्योंकि मुहम्मद खाँ कुछ पुराने विरोध के कारण इन बच्चों को किसी भी मूल्य पर अपनी गायकी सुनाने के लिए तैयार न थे, इसीलिए यह युक्ति सोची गई। छह महीने की अवधि प्रतिभाशाली कलाकारों के लिए कम नहीं होती, अतः हद्दू खाँ और हस्सू खाँ ने इस घराने की गायकी और चमत्कारपूर्ण तानों को बड़ी सफ़ाई के साथ अपने कंठ में ढाल लिया। इनका यश बढ़ने लगा, लेकिन मुहम्मद खाँ के हृदय में दरारें पड़ गईं और वे अपने प्रतिद्वन्द्वियों को नीचा दिखाने की योजना बनाने लगे।

एक दिन संगीत-महफ़िल के आयोजन में मुहम्मद खाँ ने हस्सू खाँ की प्रशंसा करते हुए उनसे मियाँ-मल्लार गाने की फ़रमाइश की। इस फ़रमाइश में एक गहरा षड्यंत्र छिपा हुआ था। हस्सू खाँ इस षड्यंत्र को तनिक भी न समझ पाए और उन्होंने सरल स्वभाव से गायन प्रारंभ किया। इस राग के अन्तर्गत एक विशेष प्रकार की तान, जिसका नाम 'कड़क बिजली की तान' था, ली जाती थी। यह बड़ा मुश्किल कार्य था। इसको कोई भी दमदार गायक अधिक-से-अधिक एक बार ले सकता है, वह भी बड़ी कठिनता और कलेजे की ताक़त से। हस्सू खाँ ने जवानी के जोश में यह तान ले ली और मुहम्मद खाँ की ओर देखा। मुहम्मद खाँ ने प्रशंसात्मक शब्दों में कहा—“शाबाश बेटे, एक बार और!” हस्सू खाँ ने बड़े जोश के साथ दुबारा इसी तान को लिया, किंतु अवरोह करते समय एकदम उनकी बाईं पसली चढ़ गई और मुख से रक्त आने लगा। पसली चढ़ने के बाद भी हस्सू खाँ ने तान को पूरा किया। उक्त घटना के फलस्वरूप कुछ समय पश्चात् उनकी मृत्यु हो गई। दरबार में मातम छा गया। लोग हाहाकार करते रह गए। यह घटना सन् १८५६ ई० के लगभग हुई। हस्सू खाँ ने अपने पीछे एक पुत्र भी छोड़ा।

## शिवकुमार शर्मा

जम्मू-निवासी श्री शिवकुमार शर्मा को कश्मीर के लोक-वाद्य संतूर को भारतीय शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में लाने तथा उसे लोकप्रिय बनाने का श्रेय प्राप्त है। पिता पं० उमादत्त शर्मा स्वयं गायक, तबला-वादक और दिज़रुवा-वादक होने के नाते इस होनहार संगीत-प्रेमी को अच्छा ज्ञान मिला और इसकी प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो गया।

संतूर-वादक शिवकुमार ने बताया कि 'शततंत्री वीणा' का ही नाम उस समय संतूर हो गया, जब यह वाद्य कश्मीर से फ़ारस चला गया। इन्होंने बताया कि मेरे पिता ने इसमें सुधार कर इसे झाला, जोड़ और गतकारी के योग्य बनाया। शिवकुमार की मान्यता है कि इसमें जोड़, झाला और गतकारी अच्छी हो सकती है। पहले



इसमें १०० तार थे, किन्तु अब इसमें ११६ तार कर लिए गए हैं, जो इसके वादन में सहायक हैं। इसमें २५ 'ब्रिज' हैं और एक पर चार तार रहते हैं, जो एक सुर से मिले रहते हैं। इस वाद्य को मिलाना ही एक बड़ा काम है, जिसे कण्टसाध्य कहा जा सकता है।

शिवकुमार का जन्म सन् १९३३ में हुआ। उन्होंने ७ वर्ष की उम्र में अपने पिता से कण्ठसंगीत सीखना आरम्भ किया और बाद में कंठसंगीत छोड़कर तबलावादन अपना लिया। शिवकुमार का प्रथम कार्यक्रम सन् १९५५ में बम्बई में हुआ। उसके कुछ वर्ष बाद वे बम्बई में ही बस गए और शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों के अलावा फ़िल्म संगीत को भी अपनी सेवाएँ देते रहे। बाँसुरीवादक हरिप्रसाद चौरसिया के साथ मिलकर उन्होंने शिवहरि के नाम से संगीत निर्देशक के रूप में ख्याति पाई है। विश्व में नाम करने के बाद शीघ्र ही वे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कलाकारों में गिने जाने लगे।

## अल्लारखा खाँ

अल्लारखा खाँ का जन्म जम्मू में पंजाबी किसान हाशिमअली के यहाँ सन् १९१९ ई० में हुआ था।

लगभग १५-१६ वर्ष की आयु से ही अल्लारखा पठानकोट की एक नाटक कम्पनी में कार्य करने लगे। गाने-बजाने की रुचि इनमें पहले से विद्यमान थी ही, अतः वहीं पर आप उस्ताद कादिरबख्श के शागिर्द लालमुहम्मद से तालीम प्राप्त करने लगे। बाद में जब आप गुरदासपुर लौटे तो वहाँ पर एक संगीत-पाठशाला भी खोल दी।

कुछ समय बाद आप अपने चाचा के साथ लाहौर चले गए। वहाँ पर उस्ताद कादिरबख्श से तबला की तालीम लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

कुछ समय तक आप लाहौर, दिल्ली आदि स्थानों में रेडियो पर अपना कला-प्रदर्शन करने के पश्चात् सन् १९३७ में बम्बई आए। १९४२ में आपने रेडियो की नौकरी छोड़ दी। इसके पश्चात् आपका झुकाव फ़िल्म-क्षेत्र की ओर हुआ। जिसके फलस्वरूप सनराइज पिक्चर, मोहन स्टूडियो, सादिक प्रोडक्शन आदि में कार्य किया और इसके बाद रंगमहल स्टूडियो में संगीत निर्देशन का पद संभाल लिया। पंजाब-घराने की विशेषताओं से आपकी कला ओत-प्रोत है। अपूर्व तैयारी के साथ-साथ खुदा की दुआ से आपने दिमाग भी अद्भुत पाया है, अतः तंत्रकारों की संगति में आपके सवाल-जवाब चकित कर देने वाले होते हैं। वर्षों से यह अद्भुत कलाकार पं० रविशंकर के साथ विदेशों में अपनी कला का प्रदर्शन कर रहा है। इनके सुपुत्र जाकिर हुसैन खाँ ने भी तबला वादन के क्षेत्र में विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त की है।



## अहमदजान थिरकुवा (तबला वादक)

पटियाला के स्व० उस्ताद अब्दुल अजोज़ खाँ कहा करते थे कि अहमदजान जब छोटी उम्र से ही तबला सीखा करते थे तो इनका हाथ तबले पर एक विचित्र प्रकार से थिरका करता था। इसलिए इनका नाम 'थिरकू' पड़ गया। ऐसा भी कहा जाता है कि छात्र-जीवन में नटखट होने के कारण यह नाम 'थिरकवा' उस्ताद मुनीर खाँ के पिता उस्ताद काले खाँ द्वारा दिया गया।

उस्ताद अहमदजान थिरकुवा का जन्म मुरादाबाद (उ० प्र०) में सन् १८६१ में हुआ। उनके नाना बाबा कलंदर बख्श और उनके भाई इलाही बख्श (नाटोरी-वाले), बोली बख्श, करीम बख्श सभी मुरादाबाद के प्रसिद्ध तबला-वादक थे। अहमदजान के चाचा शेर खाँ, मामा फैयाज़ खाँ, बसवा खाँ और फज़ली खाँ प्रसिद्ध तबला नवाज़ थे।

मेरठ-निवासी उस्ताद मुनीर खाँ से आपने तबला सीखा था। मुनीर खाँ तालविद्या के उत्कृष्ट विद्वान् हो गए हैं। इनको सैकड़ों बोल और परनें याद थीं। यद्यपि थिरकुवा के घर में भी तबले का प्रबन्ध था, क्योंकि आपके चाचा उस्ताद शेर खाँ एक नामी तबलिए हो गए हैं; किन्तु तबले की नियमित शिक्षा के लिए आपको उस्ताद मुनीर खाँ के पास ही जाना पड़ा।

लखनऊ, मेरठ, अजराड़ा, फर्रुखाबाद आदि सभी घरानों का बाज आपको याद था; किन्तु विशेष रूप से आप दिल्ली और फर्रुखाबाद का बाज बजाने में सिद्धहस्त थे। तबला बजाते समय जिन संगीत-प्रेमियों ने उस्ताद थिरकुवा के मुँह के बोल सुने हैं, उन्हें ज्ञात होगा कि जितना सुन्दर आप बजाते थे, उतने ही सुन्दर और स्पष्ट बोल उनके मुख से निकलते थे। कठिन तालें भी आप बड़ी सुगमता से बजाते थे।

थिरकुवा साहब काफ़ी समय तक रामपुर दरबार में रहे, बाद में लखनऊ आकर बस गए। यहीं १३ जनवरी, १९७६ को आपका इन्तक़ाल हो गया। सन् १९५३-५४ में आपको राष्ट्रपति पुरस्कार मिला तथा सन् १९७० में भारत सरकार द्वारा 'पद्मभूषण' उपाधि प्राप्त हुई।

## नाना पानसे (पखावज वादक)

ये इन्दौर के निवासी थे। किशोरावस्था में एक बार इन्हें कीर्तन-मण्डली में अपने पिता जी के साथ काशी जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहाँ इनकी भेंट एक राजपूत ब्राह्मण से हुई, जिसका नाम जोधसिंह था। देवालियों में रामचरितमानस का पाठ, भजन-कीर्तन आदि इस ब्राह्मण के जीविकोपार्जन के साधन थे। शेष समय एकांत में पखावज-वादन में व्यतीत होता था। नाना साहब इस ब्राह्मण के पखावज-वादन को सुनकर बड़े प्रभावित हुए और उनके हृदय में इस कला को सीखने की प्रबल उत्कंठा जाग्रत हो गई। अपने पिताजी से विशेष आग्रह करके पानसे ने इस



ब्राह्मण से पखावज-वादन की शिक्षा पाने की स्वीकृति प्राप्त कर ली और समस्त शक्तियों को केन्द्रित करके कला की आराधना में जुट गए। मौखिक शिक्षा के अतिरिक्त लगभग छह घंटे तक आप दैनिक क्रियात्मक अभ्यास किया करते थे। काशी में नाना साहब का यह क्रम लगभग बारह वर्ष तक अविरल गति से चला। तपश्चर्या फलीभूत हुई और नाना साहब पानसे पखावज-वादन में पूर्णरूपेण दक्ष होकर अपने निवास-स्थान को लौट पड़े।

इन्दौर आने पर नाना साहब ने प्राप्त विद्या में अपनी बुद्धि के अनुसार अनेक आवश्यक संशोधन किए। गणित की दृष्टि से जिन परन और बोलों में कुछ न्यूनता रह गई थी, उन्हें शास्त्र-मर्यादानुसार शुद्ध किया। स्वयं भी बहुत-से नवीन ठेकों, बोलों, टुकड़ों, परनों आदि की रचना की और उन्हें अपने शिष्य-वर्ग को सिखाया। नाना साहब उद्भट और अद्वितीय वादक होने के साथ-साथ उच्च कोटि के शिक्षक भी थे। इनका शिक्षा देने का ढंग बड़ा सरल और सुबोध था, इसीलिए पानसे का शिष्य-सम्प्रदाय विशाल तथा विस्तृत है। पखावज के अतिरिक्त तबला-वादन और नृत्य-कला में भी प्रवीण थे। अपने कुछ शिष्यों को इन्होंने नृत्य की शिक्षा भी दी। निजाम-सरकार की इच्छानुसार वामनराव चांदवड़कर को आपने तबला की शिक्षा देकर प्रवीण कर दिया। अपने एक पुत्र तथा लड़की के पुत्र को भी आपने अपनी कला में पारंगत कर दिया था।

नाना साहब निरभिमानी और सरल स्वभाव के व्यक्ति होने के साथ-साथ बड़े संतोषी जीव थे। आपको इन्दौर का राज्याश्रय प्राप्त था। योग्यतानुसार राज्यकोष से आपको बहुत कम वेतन मिलता था, इसपर भी उन्हें असंतोष न था। एक बार ग्वालियर-नरेश महाराज जयाजीराव इन्दौर आए। उन्होंने नाना साहब का पखावज-वादन सुना और अत्यंत प्रभावित हुए। इन्दौर-नरेश श्री तुकोजीराव होल्कर से उन्होंने नाना साहब को ग्वालियर ले जाने की मांग की। इन्दौर-नरेश ने यह प्रश्न नाना साहब की मर्जी पर छोड़ दिया, परन्तु नाना साहब ने अधिकाधिक आर्थिक प्रलोभन होते हुए भी ग्वालियर जाने के लिए अपनी स्वीकृति नहीं दी। इस घटना से आपकी संतोषी प्रवृत्ति का प्रमाण मिलता है।

तत्कालीन विज्ञ जनों के मतानुसार नाना साहब पानसे-जैसा ताल-मर्मज्ञ, मधुर और तैयार वादक एवं ताल-शास्त्री कोई दूसरा नहीं हुआ। आपको ताल-शास्त्र का नायक कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। आपका १६-वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इन्दौर नगर में ही निधन हो गया।

### अयोध्याप्रसाद (पखावज वादक)

पखावज के धुरंधर वादक स्व० पं० गयाप्रसाद जी के सुपुत्र पं० अयोध्या-प्रसाद को पखावज का प्रशिक्षण अपने दादा, (जोकि कुदऊसिंह जी के अनुज थे) से प्राप्त हुआ। उनकी मृत्यु के पश्चात् पिता श्री गयाप्रसाद जी से शिक्षा मिली। उत्कृष्ट गायक-वादकों के साथ संगति करके आपको अपूर्व ख्याति मिली।



पंडित अयोध्याप्रसाद की धारणा थी कि जब तक पखावजी को सौ-दोसो ध्रुवपद याद न हों, तब तक वह अपने कार्य में पूर्ण दक्ष नहीं हो सकता। स्वर्गीय उस्ताद वजीर खाँ एवं नवाब छम्मन साहब से प्राप्त हुए अनेक ध्रुवपदों का संग्रह अयोध्याप्रसाद जी के पास था तथा पूर्वजों की डायरी के रूप में प्राचीन ध्रुवपदों का एक विशाल और अद्वितीय संग्रह भी आपके पास सुरक्षित था।

पं० अयोध्याप्रसाद जी मृदंग-वादन-परंपरा के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। आपके चार पुत्र शीतलप्रसाद, नारायणप्रसाद, कुन्दनप्रसाद और रामजीदास हुए। इनमें से नारायणप्रसाद तथा कुन्दनप्रसाद पर अयोध्याप्रसाद ने वर्षों परिश्रम करके उन्हें पूर्वजों की थाती सुरक्षित रखने योग्य बनाया; किन्तु काल के निर्मम प्रहार से दोनों ही अल्पायु में दिवंगत हो गए।

आपके वर्तमान यशस्वी शिष्यों में आचार्य कैलासचन्द्र देव बृहस्पति (अब स्वर्गीय) का नाम उल्लेखनीय है। २६ दिसंबर, १९७७ को आप स्वर्गवासी हो गए।

### स्वामी पागलदास (पखावज वादक)

१५ अगस्त, १९२० को उत्तरप्रदेश के देवरिया जिले में स्थित ग्राम मझौली में आपका जन्म हुआ था। संगीत कला के प्रति प्रबल अभिरुचि होने से तेरह वर्ष की किशोरावस्था में ही घर से निकल पड़े। जिस प्रकार भी जीवनयापन हो सका, अयोध्या में रहकर संगीत की प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। बिहार की रामलीला नाटक मंडलियों में काम किया। पटना के नेपालीसिंह (अब स्वर्गीय) का प्रथम ताल-गुरु के रूप में शिष्यत्व ग्रहण किया। तत्पश्चात् अयोध्या लौटकर स्वामी भगवानदास फिर बाबा ठाकुरदास व श्री राममोहिनी शरण के निर्देशन में बीस वर्षों तक सतत मृदंग-साधना की। साथ ही कई वर्ष तक पं० सन्तशरण मस्त से तबला और गायन की शिक्षा भी प्राप्त की।

शिक्षा की सीढ़ियाँ समाप्त करके पागलदास पखावज के गौरव को पुनः प्रतिष्ठापित करने के लिए संगीत-यात्रा पर निकल पड़े। देश-भर में घूम-घूमकर पखावज के स्वर को बुलंद किया। मृदंग-तबला प्रभाकर, तबला कौमुदी आदि पुस्तकों का प्रणयन किया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में ताल-सम्बन्धी बहुत से लेख छपवाए। सारा संगीत-जगत् इनकी साधना का लोहा मान गया। अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित व पुरस्कृत हुए।

आजकल अपनी संस्था 'हनुमंत विश्व कला संगीताश्रम', अयोध्या में रहकर संगीत के अध्ययन-अध्यापन कार्य में संलग्न हैं। मृदंग-वादन-कला को पुनरुज्जीवित करने में स्वामी रामशंकरदास 'पागलदास' का असाधारण योगदान है, इसमें संदेह नहीं।



## अलाउद्दीन खाँ (सरोद वादक)

भारतीय संगीत की श्रीवृद्धि में उ० अलाउद्दीन खाँ का सहयोग अविस्मरणीय है। आपका सम्पूर्ण जीवन संगीत कला के लिए समर्पित था। आपके पिता साधू खाँ भी संगीत के अनन्य प्रेमी तथा त्रिपुरा-दरबार के प्रसिद्ध रबाब-वादक उ० काज़िम अली खाँ के शार्गिद थे। फलस्वरूप बालक अलाउद्दीन को शैशव काल से ही सांगीतिक वातावरण मिला। आठ वर्ष की आयु में ही इन्हें ताल-स्वर का अच्छा ज्ञान हो गया। इसी समय अलाउद्दीन खाँ को कलकत्ता जाकर संगीत सीखने की धुन सवार हुई और किसी-न-किसी प्रकार ये कलकत्ता पहुँच ही गए। वहाँ पहुँचकर आपने हांबूदत्त से फ़िडिल, लोबो मास्टर से स्टाफ़ नोटेशन तथा एक अन्य उस्ताद से शहनाई-वादन सीखा। १५ वर्ष की उम्र होने तक आपका संगीत-ज्ञान काफ़ी अच्छा हो गया था। स्टाफ़ नोटेशन पढ़कर ये आसानी से अपने साज़ बजाने लगे।

एक दिन संयोगवश मुक्तागाछा में रामपुर के सरोद-नवाज़ उ० अहमद अली का सरोद-वादन इन्होंने सुना और उसपर आसक्त हो गए तथा अहमद अली के शार्गिद बनकर सरोद सीखा। तत्पश्चात् आप उ. प्र. की रियासत रामपुर में आए। रामपुर उन दिनों संगीत का प्रसिद्ध केन्द्र था। यहाँ के नवाब लोग संगीत के मर्मज्ञ व अनन्य प्रेमी तथा उ० वज़ीर खाँ के शार्गिद थे। उ० वज़ीर खाँ संगीत के महान् कलाकार थे। बड़ी कठिनाई से नवाब साहब की सिफारिश पर इन्हें वज़ीर खाँ का शिष्यत्व प्राप्त हुआ। कई वर्षों की सेवा-सुश्रूषा तथा इनकी ग्राह्य शक्ति को परखकर उस्ताद ने अलाउद्दीन खाँ को संगीत की उच्च स्तरीय शिक्षा प्रदान की। शिक्षा पूर्ण होने के उपरांत उस्ताद की ओर से इन्हें अपनी कला के प्रदर्शन की आज्ञा भी मिल गई। अतः ये भ्रमण पर निकल पड़े। कुछ दिनों कलकत्ता रहे, तत्पश्चात् स्थायी रूप से १५०/- माहवार की नौकरी पर मैहर रियासत में रहने लगे। यहाँ के राजा ब्रजनाथ भी बाक्रायदा इनके शिष्य बन गए। यहाँ इन्होंने 'मैहर-बैंड' की स्थापना भी की।

निष्कर्षतः उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ऐसे संगीत-ऋषि थे, जिन्होंने मुक्त हृदय से शिष्यों को सिखाया। फलस्वरूप अली अकबर, रविशंकर, पुत्री अन्नपूर्णा, अली अहमद, तिमिर बरन, इन्द्रनील, आशिष खाँ, पन्नालाल घोष, वीरेन्द्रकिशोर राय चौधरी, शरन रानी तथा ज्योतिन भट्टाचार्य जैसे संगीतकार भारतीय संगीत-जगत् को प्राप्त हुए।

उ० अलाउद्दीन खाँ धार्मिक प्रवृत्ति के, दयालु, दृढ़ एवं कठोर संगीत-शिक्षक थे। अनुशासनहीनता आपको कतई बर्दाश्त नहीं था। आपका जन्म त्रिपुरा ज़िले के शिवपुर गाँव में, सन् १८८१ ई० में हुआ था। कुछ लोग सन् १८६२ भी मानते हैं। ६ सितम्बर, १९७२ को आपका देहावसान हो गया।



## अली अकबर खाँ (सरोद-वादक)

भारतीय सरोद-वादकों में उस्ताद अली अकबर खाँ का नाम अग्रगण्य है। आपके पिता उस्ताद अलाउद्दीन खाँ न केवल सरोद-वादक थे, अपितु उन्हें संगीत की प्रायः सभी विधाओं का भरपूर ज्ञान था। इसी सांगीतिक माहौल में १४ अप्रैल १९२२ को बंगाल के सिवपुर नामक स्थान पर अली अकबर का जन्म हुआ। पिताजी के द्वारा बाल्यकाल में ही आपकी संगीत-शिक्षा प्रारम्भ हो गई। १४-१५ वर्ष की आयु में ही अली अकबर सरोद-वादन में काफ़ी निपुण हो गए। शिक्षा का नियंत्रण इतना कठोर था कि बन्द कमरे में इन्हें प्रतिदिन छह-छह घंटे रियाज़ करना पड़ता था। तालीम की सख्ती से घबराकर एक दिन आप रस्सी के सहारे अपने दोमंजिला मकान से कूदकर बंबई भाग गए। वहाँ रेडियो स्टेशन पर बुखारी साहब की सहायता से इन्हें काम मिल गया। लगभग एक सप्ताह बाद बंबई रेडियो से इनके सरोद-वादन का कार्यक्रम प्रसारित हुआ; यह कार्यक्रम मैहर में भी सुना गया। फलस्वरूप उस्ताद अलाउद्दीन खाँ को पता चल गया और बंबई से पकड़वाकर पुनः अली अकबर को मैहर बुला लिया गया। अब अली अकबर की तालीम और आगे बढ़ी। पहला-सा कठोर निर्णय भी नहीं रहा। धीरे-धीरे आप अपनी कला में निष्णात हो गए।

सफाई, सुरीलापन, मीढ़ का काम, स्वर-विस्तार की गहराई और बारीकी अली अकबर के सरोद-वादन की मुख्य विशेषताएँ हैं। विश्व के प्रमुख देश-अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, बेल्जियम, अफ़गानिस्तान आदि देशों में आपने भारतीय संगीत का नाम खूब रोशन किया है। 'आँधियाँ' नामक फ़िल्म में भी आप प्रभावशाली संगीत दे चुके हैं। भारत सरकार ने इनकी सांगीतिक उपलब्धियों के फलस्वरूप इन्हें सन् १९६७ में 'पद्मभूषण' उपाधि से अलंकृत किया है। आपके शिष्यों में निखिल बनर्जी, शरनरानी, शिशिर कर्णाधर चौधरी, दामोदर लाल काबरा, बीरेन बनर्जी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कलकत्ता तथा अमेरिका में आपके 'अली अकबर कालेज ऑफ़ म्यूज़िक' संगीत-शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं।

## रविशंकर (सितार-वादक)

मैहर के बाबा उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के प्रमुख शिष्य तथा प्रख्यात नृत्यकार उदयशंकर के अनुज पं० रविशंकर न केवल भारत के, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय जगत के शीर्षस्थ सितार-वादक हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत को विदेशों में लोकप्रिय बनाने का सर्वाधिक श्रेय आप ही को है। आपके पिता पं० श्यामाशंकर बड़े विद्वान् तथा संगीत-प्रेमी थे। नृत्य-कला से उन्हें विशेष प्रेम था। जीवन के अंतिम बीस वर्षों का समय उन्होंने यूरोप और अमेरिका में ही व्यतीत किया था। वहाँ उन्होंने कानून तथा राजनीति की उच्च शिक्षा प्राप्त की थी एवं केलिफोर्निया यूनिवर्सिटी में वेदांत-दर्शन का निःशुल्क अध्यापन भी किया।

पं० रविशंकर का जन्म ७ अप्रैल, १९२० को वाराणसी में हुआ। चार भाइयों में आप सबसे छोटे हैं। प्रारंभ में रविशंकर को नृत्य की शिक्षा मिली और



१८ वर्ष की आयु तक ये अपने भ्राता उदयशंकर की नृत्य-मण्डली में कार्यरत रहे। यहीं आप (सन् १९३५ में) मैहर के उ० अलाउद्दीन खाँ के सम्पर्क में आये। उस्ताद इनकी कार्यदक्षता, कुशाग्र बुद्धि और संगीत के प्रति गहन रुचि देखकर बहुत प्रभावित हुए। सन् १९३८ में रवि जी मैहर आ गए और उ० अलाउद्दीन खाँ का शिष्यत्व ग्रहण करके संगीत की कठोर साधना में लग गए। छह वर्षों की घनघोर तपस्या के बाद ये सितार-वादन में पूर्णतः दक्ष हो गए। इनकी गुरु भक्ति, लक्ष्य के प्रति जागरूकता तथा संगीत में आश्चर्यजनक उन्नति देखकर सन् १९४१ में उ० अलाउद्दीन खाँ ने अपनी सुपुत्री अन्नपूर्णा (सुरबहार की अन्यतम कलाकार) के साथ इनका विवाह कर दिया। रवि जी की सांगीतिक प्रतिभा दिनोंदिन बढ़ती ही गई। श्रोता इनका सितार-वादन सुनकर सम्मोहित होने लगे। आकाशवाणी के लिए इन्होंने अनेक वाद्यवृन्द-रचनाएँ कीं तथा राष्ट्रीय वाद्यवृन्द के प्रमुख संचालक पद पर कुछ समय कार्य भी किया। क्लाबुलीवाला, गोदान, अनुराधा आदि फ़िल्मों में संगीत भी इन्होंने दिया। सन् १९६२ में, बंबई में 'किन्नर स्कूल ऑफ़ म्यूज़िक' की स्थापना की। आपके प्रमुख शिष्यों में उमाशंकर मिश्र, गोपाल कृष्ण, जया वोस, शंभूदास, शमीम अहमद, शंकर घोष, कार्तिक कुमार तथा जॉर्ज हैरिसन (बीटल गायक) के नाम उल्लेखनीय हैं। सन् १९६७ में भारत सरकार ने 'पद्मभूषण' से आपको अलंकृत किया था। विश्व-भर के संगीत-प्रेमी इनकी शतायु होने की कामना करते हैं।

### विलायत खाँ

अपने युग के सर्वप्रसिद्ध सितार-वादक उ० इनायत खाँ के सुपुत्र विलायत खाँ का जन्म सन् १९२८ को पूर्वी बंगाल की गौरीपुर स्टेट में हुआ। आपके पितामह (बाबा) उ० इमदाद खाँ अपने युग के महान् संगीतकार तथा सितार और सुरबहार-वादन के प्रथम आचार्य थे। विलायत खाँ के नाना बंदे हसन खाँ तथा माता जी भी संगीत मर्मज्ञ थीं। इस प्रकार अपने तथा ननिहाल के आनुवंशिक संस्कार इन्हें प्राप्त हुए। शैशव काल से सांगीतिक माहौल मिला। प्रारंभिक तालीम पिताश्री उ० इनायत खाँ से हासिल हुई। ११ साल की उम्र में ही वालिद का साया सर से उठ गया और बाद में दिल्ली आकर नानाजी से गायन तथा सुरबहार की तालीम हासिल की। तत्पश्चात् अपने चाचा वहीद खाँ से सीखा। उ० फ़ैयाज़ खाँ ने खयाल की तालीम दी। उ० अल्लादिया खाँ, उ० मुश्ताक हुसैन खाँ तथा उ० अमीर खाँ जैसे दिग्गजों की गायकी का भी इन पर प्रभाव पड़ा। इस प्रकार सितार-वादन के साथ-साथ गायकी का रंग भी उ० विलायत खाँ के कलाकार में भर गया।

सन् १९४४ में बंबई के एक संगीत-सम्मेलन में विलायत खाँ के सितार-वादन ने तहलका मचा दिया। इस सम्मेलन के द्वारा सारे देश में इनकी ख्याति हो गई। फलस्वरूप बड़े-बड़े संगीत-सम्मेलनों में भाग लेकर आप रसिक श्रोताओं के चहेते कलाकार बन गए।



उ० विलायत खाँ के सितार-वादन में गायकी अंग स्पष्ट झलकता है। आलाप, जोड़, मीड़, कृतन और तानों का काम लाजवाब है। माधुर्य, चैनदारी और सुरीलापन अद्वितीय है। आपके प्रमुख शिष्यों में अरविंद पारीख, कल्याणी राँय, काशीनाथ मुखर्जी, बेंजामिन गोम्स तथा श्रीमती बिन्दू झबेरी उल्लेखनीय हैं।

विश्व के प्रायः सभी प्रमुख देशों का भ्रमण करके उ० विलायत खाँ ने भारतीय संगीत का प्रसार-प्रचार किया। कई भारतीय फ़िल्मों जैसे 'क्षुदिध पाषाण', 'गुरु' आदि में आपने संगीत भी दिया है। आपके कई ग्रामोफ़ोन रिकार्ड भी बन चुके हैं। आप बड़े शौकीन मिज़ाज एवं पान तथा इत्र के विशेष प्रेमी थे।

## अब्दुल हलीम जाफ़र खाँ

अब्दुल हलीम जाफ़र को संगीत की दुनिया में 'सितार का जादूगर' नाम से पुकारा जाता है। इनका चामत्कारिक सितार-वादन संगीत से अनभिज्ञ श्रोताओं को भी रसमग्न कर देता है। इनके वादन की अपनी अलग शैली है, जिसे लोग 'जाफ़रखानी बाज' कहने लगे हैं। इसमें मिज़राब का काम कम तथा बाएँ हाथ का काम ज्यादा होता है। कण, मुर्की, खटका आदि का काम भी अधिक रहता है। प्रस्तुतीकरण में बीन तथा सरोद-अंग का आभास होता है।

अब्दुल हलीम के पिता उ० जाफ़र खाँ भी सितार के अच्छे ज्ञाता थे। हलीम साहब का जन्म इन्दौर के निकटस्थ जावरा ग्राम में सन् १९२६ में हुआ। कुछ समय बाद इनका परिवार बंबई चला गया। बचपन से ही सांगीतिक वातावरण मिलने से संगीत के प्रति लगाव हो जाना स्वाभाविक था। आपकी प्रारंभिक सितार-शिक्षा प्रसिद्ध बीनकार उ० बाबू खाँ से शुरू हुई। तत्पश्चात् उ० महबूब खाँ से सितार की उच्चस्तरीय तालीम हासिल की। अब तक आप अपने फ़न में पूरी तरह माहिर हो चुके थे। पिताजी का इन्तक़ाल होने की वजह से आपके सामने आर्थिक समस्या खड़ी हो गई, परिणामतः आपको फ़िल्मी क्षेत्र में जाना पड़ा। यहाँ आपको काफ़ी कामयाबी मिली, साथ ही सारे भारत में आपके सितार-वादन की धूम मच गई। आकाशवाणी के राष्ट्रीय कार्यक्रमों तथा अखिल-भारतीय संगीत-सम्मेलनों में अपने सितार-वादन से आपने लाखों श्रोताओं को आनन्द-विभोर तथा आश्चर्य-चकित किया है। आपने चक्रधुन, कल्पना, मध्यमी तथा खुसरूबानी-जैसे मधुर राग निर्मित किए हैं। कुछ दक्षिणी रागों को भी उत्तर-भारत में लोकप्रिय बनाया है। सांस्कृतिक प्रतिनिधि-मण्डल के माध्यम से कई बार विदेश-भ्रमण कर चुके हैं। भारत सरकार ने आपको 'पद्मश्री' उपाधि से अलंकृत किया है।

## निखिल बनर्जी

अली अकबर म्यूज़िक कालेज कलकत्ता के प्रोफ़ेसर श्री निखिल बनर्जी का जन्म १४ अक्तूबर, १९३१ को कलकत्ता में हुआ। आपके पिताश्री जे० एन० बनर्जी



भी संगीतज्ञ थे। प्रारंभिक शिक्षा पिताजी से मिली, तत्पश्चात् गौरीपुर के महाराजा से सीखा। फिर महाराज के सहयोग से उस्ताद अलाउद्दीन खाँ का शिष्यत्व ग्रहण किया। सन् १९५२ तक इनसे शिक्षा प्राप्त करने के बाद सन् १९५६ तक उस्ताद के सुपुत्र अली अकबर खाँ से संगीत की उच्चस्तरीय तालीम हासिल की। सितार वादन के क्षेत्र में आपने अपना एक अलग स्थान बना लिया था। परिश्रम और लगन के आधार पर वे गुणियों द्वारा सदैव प्रशंसित होते थे। २७ जनवरी, १९८६ को आपका निधन हो गया।

### मुश्ताक अली खाँ (सितार-वादक)

वारिस अली खाँ वीनकार, निसारअली खाँ ध्रुपद-गायक, अकबर अली खाँ टप्पा-गायक तथा सादिक अली खाँ खयाल-गायक-जैसे दिग्गज कलाकारों के वंशज मुश्ताक अली खाँ ने १५-१६ वर्ष की आयु से ही सितार-वादन में शोहरत हासिल करली थी। सुरबहार पर भी आपका अच्छा-खासा अधिकार था। संगीत की प्रारंभिक तालीम आपको अपने पिता उ० आशिक अली खाँ से प्राप्त हुई थी। आशिक अली खाँ सेनी घराने के वरिष्ठ कलाकार उ० बरकत उल्लाह के शागिर्द और प्रसिद्ध सितार-वादक थे।

मुश्ताक अली खाँ भारतीय सितार-वादकों में अच्छा मुकाम रखते थे। आकाशवाणी दिल्ली से प्रसारित होने वाले राष्ट्रीय कार्यक्रम के अलावा स्वदेश में होने वाले बड़े-बड़े संगीत-सम्मेलनों में भाग लेकर आपने अपने संगीत-प्रेमियों को रसमग्न किया। संगीत-नाटक अकादमी ने आपकी सांगीतिक सेवाओं के लिए सन् १९६८ में अकादमी पुरस्कार भी प्रदान किया था। कलकत्ता में २१ जुलाई, १९८६ को आपका निधन हो गया।

### इलियास खाँ (सितार-वादक)

अपने युग के प्रख्यात संगीतकार सरोद नवाज उ० सखावत खाँ के सुपुत्र उ० इलियास खाँ वर्तमान सितार-वादकों में अपना अलग ही मुकाम रखते थे। दूसरे शब्दों में उन्हें तानसेन-परंपरा का प्रखर नक्षत्र कहा जा सकता है। बासंत खाँ, प्यार खाँ और ज़फ़र खाँ जैसी महान् सांगीतिक विभूतियों द्वारा इलियास खाँ को संगीत की तालीम मिली थी। आपके नाना उ० करामतुल्ला खाँ और असदुल्ला खाँ कौकब अपने ज़माने के दिग्गज सरोद-वादक थे तथा इन्होंने भी इलियास खाँ को संगीत की उच्चस्तरीय शिक्षा दी थी।

इलियास खाँ जीवन-भर संगीत के लिए समर्पित रहे। भातखंडे संगीत-महा-विद्यालय लखनऊ में सितार के प्रोफेसर पद पर रहकर आपने छात्रों को खुले दिल से शिक्षा प्रदान की तथा आकाशवाणी, दूरदर्शन और बड़े-बड़े संगीत-सम्मेलनों भाग लेकर पर्याप्त ख्याति अर्जित की। अनेक विदेशी संगीतकारों ने भी उस्ताद से संपर्क किया और सीखा।

संगीत-विशारद



आपका जन्म सन् १९२४ के लगभग हुआ था। २ मार्च, १९८६ को लखनऊ में ही उ० इलियास खाँ अल्ताह को प्यारे हो गए। आपके एकमात्र पुत्र इदरीस खाँ भी योग्य संगीतकारों में स्थान रखते हैं।

### मसीत खाँ (सितार-वादक)

जयपुर के उ० मसीत खाँ अपने जमाने के निष्णात तंत्रीवादक हुए हैं। इनके पिता फ़ीरोज़ खाँ भी माने हुए संगीतकार थे। मसीत खाँ ने मूल त्रितंत्री (सेहतार या सितार) में चार तार और जोड़कर उसे सप्ततंत्री वाद्य का नवीन रूप दिया। परदों की संख्या २३ तक बढ़ाकर सितार को अचल ठाठवाला बना दिया। साथ ही ध्रुपद-धमार के आधार पर विलंबित गत का एक नया स्वरूप ईजाद किया, जिसे वर्तमान काल में 'मसीतखानी गत' कहते हैं। इसे 'दिल्ली बाज' या 'पश्चिमी बाज' भी कहा जाता है।

उ० मसीत खाँ के सुपुत्र बहादुर सेन भी एक अच्छे संगीतकार हुए।

### रज़ा खाँ (सितार-वादक)

लखनऊ के उ० रज़ा खाँ एक प्रसिद्ध सितार-वादक हुए हैं। ये उ० मसीत खाँ के शार्गिद थे। इन्होंने भी अपने उस्ताद की राह पर चलकर, ठुमरी-शैली के के आधार पर द्रुतलय में गत का एक नया स्वरूप कायम किया, जिसे आजकल 'रज़ाखानी गत' कहते हैं। इसे 'लखनऊ-बाज' की संज्ञा भी दी जाती है।

### अन्नपूर्णा देवी (सुरबहार-वादक)

संगीत-महर्षि उ० अलाउद्दीन खाँ की सुपुत्री अन्नपूर्णा का जन्म मध्यप्रदेश की रियासत मैहर में सन् १९२७ में हुआ था। पुत्री-जन्म के समय खाँ साहब नर्तक उदयशंकर की नृत्य-पार्टी के साथ भ्रमण पर थे। चूँकि लड़की का जन्म पूर्णिमा के दिन हुआ था, अतः मैहर के महाराज द्वारा उसका नाम अन्नपूर्णा रखा गया।

अन्नपूर्णा को अपने पिता द्वारा प्रारम्भ में कई वर्षों तक सितार की शिक्षा मिली, तत्पश्चात् उस्ताद ने इन्हें सुरबहार का अभ्यास कराया। १३-१४ वर्ष की आयु तक अन्नपूर्णा अपने फ़न में काबिल कलाकार बन गईं। इसके बाद इष्टा कम्पनी के साथ इन्होंने भारत-भ्रमण किया तथा 'डिस्कवरी ऑफ़ इण्डिया' नाटक में पार्श्व-वादन किया।

अन्नपूर्णा देवी (भू. पू. पत्नीपं० रविशंकर) का आलाप और जोड़ का काम बेमिसाल है। सार्वजनिक रूप में आप बहुत ही कम कार्यक्रम प्रस्तुत करती हैं। उ० अलाउद्दीन खाँ के कथनानुसार आपका संगीत स्वांतःसुखाय है। वर्तमान में आप मुम्बई में रहकर विद्यार्थियों को संगीत की उच्चस्तरीय (क्रियात्मक) शिक्षा प्रदान कर रही हैं। संगीतकारों के कथनानुसार अन्नपूर्णा देवी का सुरबहार-वादन रूह की ग़िज़ा है।



## एन० राजम् (वाँयलिन-वादक)

प्रसिद्ध वाँयलिन-वादक श्री ए० नारायण अय्यर की सुपुत्री एन० राजम् का जन्म सन् १९३८ में हुआ। बाल्यकाल से ही संगीत-शिक्षा प्रारम्भ हो गई। पाँच वर्ष तक पिताजी से वाँयलिन की शिक्षा लेने के उपरांत श्री मूसिरी सुब्रह्मण्यम् से राग-विस्तार आदि की उच्चस्तरीय शिक्षा प्राप्त की तत्पश्चात् मद्रास में श्री एल० आर० केलकर से हिंदुस्तानी संगीत की शिक्षा ग्रहण की। सन् १९५५ में वाराणसी में आपको पं० ओंकारनाथ ठाकुर की शिष्या बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। संगीत-शिक्षा के साथ-साथ स्कूली पढ़ाई भी एम. ए., एम. भ्यूज तक चलती रही। सन् १९५६ में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में वाँयलिन के लेक्चरर का पद संभाला और इसी अवधि में पी० एच० डी० भी किया।

श्रीमती एन० राजम् भारत की श्रेष्ठतम वाँयलिन-वादिकाओं में हैं। आपके वादन पर पं० ओंकारनाथ ठाकुर की गायकी का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कर्नाटक-संगीत तथा उत्तर-भारतीय संगीत, दोनों पद्धतियों पर आपका अधिकार है।

## शरण रानी (सरोद-वादिका)

वर्तमान सरोद-वादकों में शरण रानी का अपना अलग स्थान है। आप उ० अलाउद्दीन खाँ की प्रमुख शिष्या रही हैं तथा कुछ समय उस्ताद अली अकबर खाँ से भी शिक्षा लेने का सुअवसर मिला है।

६ अप्रैल, १९२६ को दिल्ली में आपका जन्म हुआ। बाल्यावस्था में अच्छन महाराज से कथक और नवकुमार सिन्हा से मणिपुरी नृत्य की शिक्षा प्राप्त की तथा कुछ दिनों कंठ-संगीत का अभ्यास भी किया। सन् १९६०-६१ में आपने विश्व के प्रमुख देशों में सरोद के कार्यक्रम प्रस्तुत किए। तत्पश्चात् विदेश-यात्राओं का क्रम चलता रहा। इन्होंने भारतीय तथा विदेशी संगीतज्ञों के साथ अनेक बार जुगलबंदी के कार्यक्रम भी पेश किए। आकाशवाणी, दिल्ली से प्रसारित होनेवाले राष्ट्रीय कार्यक्रमों में भी अनेक बार आपने भाग लिया। सन् १९६८ में भारत सरकार ने आपको 'पद्मश्री' उपाधि से सम्मानित किया।

## जरीन दारुवाला शर्मा (सरोद-वादिका)

इस प्रतिभाशाली सरोद-वादिका का जन्म ६ अक्टूबर, १९४६ ई० को मुंबई में हुआ। शैशव-काल से ही संगीत के प्रति इनका लगाव रहा है। श्री हरिपति घोष, पं० भीष्मदेव वेदी, पं० वी० जी० जोग, पं० लक्ष्मण प्रसाद जयपुरवाले, डॉ० एस० एन० रातांजन्कर और पं० एस० सी० आर० भट्ट जैसे दिग्गज संगीतकारों से संगीत-शिक्षा प्राप्त करने का इन्हें सुअवसर प्राप्त हुआ। प्रारंभ में अपने पिता द्वारा इन्हें हारमोनियम की शिक्षा मिली। गायन भी सीखा तथा इसके बाद उस्ताद अली अकबर

संगीत-विशारद



बाँ का सरोद सुनकर आप सरोद के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित हो गईं। इन्होंने देश के बड़े-बड़े संगीत-सम्मेलनों में तथा विशिष्ट उच्चाधिकारियों, विदेशी कूटनीतिज्ञों एवं सन् १९६१ में इंग्लैण्ड की महारानी के समक्ष अपने कार्यक्रम प्रस्तुत किए हैं। फ़िल्मी क्षेत्र अपनाने के कारण इनकी वादन-शैली विशिष्ट है तथा हाथ भी सुरीला है।

### बिस्मिल्लाह खाँ (शहनाई-वादक)

शहनाई-जैसे वाद्य को लोकप्रिय बनाकर उसे उच्च शिखर तक पहुँचाने का कार्य उ० बिस्मिल्ला खाँ ने ही किया। आपके पूर्वज भोजपुर-दरबार में शहनाई-वादक रहे थे तथा पिता उ० पैगम्बर बख्श भी अपने युग के श्रेष्ठ संगीतज्ञ रहे।

बिस्मिल्लाह खाँ का जन्म सन् १९०८ के लगभग हुआ। मामा उस्ताद अली बख्श से इन्होंने शहनाई सीखी। खयाल-गायकी की शिक्षा लखनऊ के उस्ताद मुहम्मद हुसैन से प्राप्त की। आपके भाई शम्सुद्दीन खाँ भी उच्चकोटि के शहनाई-वादक थे, जिनका निधन हो गया। सन् १९५६ में आपको राष्ट्रपति द्वारा पदक देकर सम्मानित किया गया और सन् १९६७ में भारत-सरकार ने 'पद्मभूषण' से अलंकृत किया। शहनाई के सिरमौर बिस्मिल्ला खाँ अपनी विद्या के श्रेष्ठतम कलाकार हैं, जो समस्त विश्व में लोकप्रिय एवं प्रतिष्ठित हैं।

### किशन महाराज (तबला-वादक)

३ सितम्बर, सन् १९२३ को कृष्णाष्टमी के दिन पं० किशन महाराज का जन्म हुआ। प्रसिद्ध तबला-शिरोमणि पं० कंडे महाराज ने किशन महाराज को दत्तक पुत्र के रूप स्वीकार किया और पं० रामसहाय मिश्र के घराने की लय-प्रधान तबला-पद्धति का ज्ञान कराया, जिसे बनारस-बाज के नाम से भी जाना जाता है। किशन महाराज ने तबला के क्षेत्र में बहुत यश अर्जित किया और सन् १९७३ में भारत सरकार से 'पद्मश्री' अलंकरण प्राप्त किया।

### जाकिर हुसैन (तबला-वादक)

आप विश्वप्रसिद्ध तबला-वादक उस्ताद अल्लारखा खाँ के यशस्वी पुत्र हैं। इन्हें बचपन से क्रमबद्ध तालीम मिली और पिता के साथ विश्वभ्रमण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आज के युवा तबला-वादकों में जाकिर हुसैन खाँ को भारतीय तबला के गौरव के रूप में देखा जाता है। पं० रविशंकर जैसे उच्चकोटि के लगभग समस्त कलाकारों के साथ संगति करके जाकिर हुसैन ने अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है।

### करामतुल्ला खाँ (तबला-वादक)

प्रसिद्ध तबला-वादक करामतुल्ला खाँ का जन्म सन् १९१८ ई० के लगभग रामपुर में हुआ। इनके पिता उस्ताद मसीत खाँ फर्रुखाबादी बाज के प्रसिद्ध तब-



लिये थे। करामत खाँ ने भारत के सभी संगीतकारों के साथ संगति की और अच्छा यश अर्जित किया। फर्रुखाबादो बाज के श्रेष्ठ तबला-वादकों में इनका नाम लिया जाता है।

### अनोखेलाल (तबला-वादक)

सन् १८१४ ईसवी में अनोखेलाल मिश्र का जन्म काशी में हुआ। श्री रामसहाय जी बनारस के नाम से इनका घराना प्रसिद्ध हुआ। पिता श्री बुद्धप्रसाद एक श्रमिक थे, अतः बड़ी कठिनाइयों में बचपन बीता। तबले की शिक्षा पं० भैरोंप्रसाद मिश्र से ली। ठेके की तैयारी में अनोखेलाल बेजोड़ थे, इसलिए 'ना धिन् धिन् ना' के जादूगर कहलाते थे। सरल प्रकृतिवाले अनोखेलाल का निधन १० मार्च १८६८ को हो गया।

### अमीर हुसैन खाँ (तबला-वादक)

हैदराबाद (दक्षिण) में तबला नवाज़ उस्ताद अमीर हुसैन खाँ का जन्म सन् १८०१ के लगभग हुआ। पिता अहमद बरूण सारंगी-वादक थे। बम्बई में मामा मुनीर खाँ से इन्हें तबले की शिक्षा मिली। ये अधिकतर सोलो-वादन ही करते थे। अपने पुत्र फ़कीर हुसैन (पापा ख़ान) को भी अमीर हुसैन ने तबले की अच्छी शिक्षा प्रदान की।

### बीरू मिश्र (तबला-वादक)

पं० भगवानप्रसाद के सुपुत्र बीरू मिश्र का जन्म सन् १८८६ ईसवी में वाराणसी के पियरी नामक मोहल्ले में हुआ। आपको तबले की प्रारम्भिक शिक्षा पिता के द्वारा, फिर पंडित विश्वनाथ जी से, तत्पश्चात् लखनऊ के उस्ताद आबिद हुसैन खाँ से मिली। उस्ताद छुन्नू खाँ (बरेली) से भी कुछ दिनों आपने सीखा था। संगीत की दुनिया में आप एक चमत्कारी तबला-वादक हुए। बड़े-बड़े संगीत-सम्मेलनों में अपने तबला-वादन से श्रोताओं को मुग्ध करके आपने बहुत से पदक प्राप्त किए।

### पं० बाचा मिश्र (तबला-वादक)

वर्तमान भारत के प्रसिद्ध तबला-वादक सामताप्रसाद (गुदई महाराज) के पिता पं० बाचा मिश्र की गणना वाराणसी के महान् कलाकारों में की जाती है। आपके पितामह प्रताप महाराज के बारे में कहा जाता है कि विन्ध्यवासिनी देवी ने तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हें तबला-वादन में विश्व-विजयी होने का वरदान दिया था। पं० बाचा मिश्र ने भी देवी की उपासना करते हुए अपनी कला में सिद्धि प्राप्त की। सन् १८२६ ई० के लगभग केवल ५० वर्ष की आयु में आप स्वर्गवासी हो गये।

संगीत-विस्तार



बनारस-बाज के प्रवर्तक पं० रामसहाय जी का जन्म सन् १८३० ईसवी के लगभग बनारस में हुआ था। ८ वर्ष की आयु में ही आप उस्तादों की तरह तबला बजाने लगे। आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर लखनऊ के उस्ताद मोदुखाँ ने आपको अपना शागिद स्वीकार कर लिया।

### पण्डित रामसहाय (तबला-वादक)

नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में लखनऊ में पं० रामसहाय ने एक बार ऐसा तबला-वादन प्रस्तुत किया था, जिसे सुनकर सम्पूर्ण भारत के बड़े-बड़े कलाकार यहाँ तक कि कुदरुसिह और भवानी सिंह-जैसे कलाकार भी आश्चर्य-चकित हो गये और इन शीर्ष कलाकारों ने इनकी भुजाओं पर फूल चढ़ाये। नवाब साहब ने प्रसन्न होकर इन्हें दो मोतियों की मालायें, चार हाथी तथा सहस्रों रुपये पुरस्कारस्वरूप दिये। ऐसे महान् कलाकार का देहावसान केवल ४६ वर्ष की आयु में ही हो गया।

### इनाम अली (तबला-वादक)

दिल्ली-घराने के प्रसिद्ध तबलानवाज स्व० गामे खाँ के सुपुत्र इनामअली खाँ ने अपनी वादन-शैली को उच्च स्तर तक पहुँचा कर दिल्ली घराने का नाम रोशन किया और एक उच्चस्तरीय तबला-वादक के रूप में ख्याति अर्जित की। सन् १८६० के लगभग वाराणसी के गुदई महाराज के साथ दिल्ली में इनकी जुगलबन्दी भी हुई, जिसमें दोनों कलाकारों ने चार-चार घण्टे तक अपने-अपने घराने की विशेषताओं को प्रदर्शित करके लोगों को चमत्कृत कर दिया था।

### नत्थू खाँ (तबला-वादक)

कुशल तबला-वादक नत्थू खाँ का जन्म सन् १८७५ में हुआ था। उस्ताद काले खाँ के पौत्र और उस्ताद वली बख्श खाँ के पुत्र नत्थू खाँ काफ़ी समय तक कलकत्ता में रह कर तबले की परम्परागत शिक्षा देते रहे और अपनी वादन-कला से यश अर्जित करते रहे। इनके शिष्यों में हबीबुद्दीन खाँ, हरेन्द्र किशोर राय चौधुरी तथा केशवचन्द्र बनर्जी के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्हें चमत्कारिक तबला-वादक कहा जाता था। सन् १९४० में, ६५ वर्ष की आयु में इनका निधन हुआ।

### रवीन्द्रनाथ टैगोर (कवि-संगीतकार)

६ मई, १८६१ ई० को जिस दिन पं० मोतीलाल नेहरू का जन्म हुआ, उसी दिन रवीन्द्र संगीत के प्रतिष्ठाता रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म कलकत्ता में हुआ। महर्षि देवेन्द्रनाथ के चौदह बच्चों में ये सबसे छोटे थे जिनके चारों ओर भारतीय संस्कृति का एक समृद्ध वातावरण था। उनके घर में ईसाई धर्म की प्रधानता होने के कारण पाश्चात्य संगीत का प्रभाव था, लेकिन रवीन्द्रनाथ तो प्रकृति के ऐसे संगीत में अवगाहन कर रहे थे जो सम्पूर्ण विश्व का संगीत है।



टैगोर बचपन से ही पहाड़, झरने और समुद्र के प्रति आकर्षित रहे। प्रकृति इन्हें एक गुरु की तरह कला की गहराइयों में उतारती गई। वे कभी न तो स्कूल गए और न कोई उन्होंने उपाधि अर्जित की। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, मधुसूदन और बंकिमचन्द्र के साहित्य ने उन्हें प्रभावित किया। जदुभट्ट, मोला बख्श, विष्णुराम चक्रवर्ती और राधिका गोस्वामी जैसे शास्त्रीय गायकों से वे प्रायः अपने घर पर संगीत सुना करते थे। वे कभी वाद्य-संगीत की ओर प्रभावित नहीं हुए, क्योंकि गीत से धुन और धुन को गीत से वे कभी अलग करके देख ही नहीं सकते थे। १४ वर्ष की आयु में रवीन्द्रनाथ की रचनायें प्रकाशित होना प्रारम्भ हो गयीं। वैष्णव गायकों और भक्ति-संगीत से प्रभावित होकर उनका झुकाव चेतन सत्ता की ओर होने लगा। इंग्लैण्ड-प्रवास के बाद रवीन्द्रनाथ की रचनाओं पर वायरन, शैली, कीट्स, टैनीसन और वर्ड्सवर्थ का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा। शेक्सपियर और मिल्टन के भी वे बहुत प्रशंसक थे।

रवीन्द्रनाथ ने १८ वर्ष की आयु तक ७ हजार छन्दों की रचना कर ली थी। वे प्रकृति के गायक कहलाने लगे। काव्य और संगीत, दोनों दृष्टियों से उनकी रचनाओं ने सम्पूर्ण बंगाल में बहुत शीघ्र लोकप्रियता हासिल कर ली। भोगवादी ज़मींदार से लेकर गरीब मछियारे तक को उनकी रचनायें कंठस्थ हो गयी थीं। रवीन्द्र-गान प्रस्तुत करनेवाले गायकों की सृष्टि होने लगी, जिसका प्रभाव भारतीय फ़िल्म संगीत में भी रायचन्द्र बोरल, अनिल विश्वास, पंकज मलिक, के. सी. डे., मन्नाडे और हेमन्तकुमार जैसे बंगाली संगीत निर्देशकों द्वारा आने लगा। आपकी पुस्तक 'गीतांजलि' एक अमर कृति के रूप में विख्यात हो गयी। सन् १९१३ में रवीन्द्रनाथ टैगोर शान्तिनिकेतन लौट आये तो उन्हें 'नोबल प्राइज़' मिलने का समाचार प्राप्त हुआ। वे बंगाल ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारत के ऐसे प्रतिनिधि थे, जिन्होंने मानव-सभ्यता और समाज को एक संगीतमय चेतना से आप्लावित कर दिया।

वे भारतीय संगीत से प्रभावित थे, परंतु जटिलता के सदैव विरोधी रहे, इसी लिए अनेक रागों को उन्होंने अपने ढंग से परिवर्तित कर लिया। उनके अनेक गीत, ध्रुपद शैली पर आधारित हैं। ख्याल-गायन ने उन्हें कभी आकर्षित नहीं किया, क्योंकि द्रुतलय के प्रवाह और शब्दों की हत्या से उन्हें सख्त नफ़रत थी। उन्होंने पूर्वी और यमन, तोड़ी और आसावरी, तोड़ी और देसी, केदार और हमीर के संयोग से नये मिश्ररागों की रचना की, जिनमें लोक-संगीत का प्राधान्य था।

उत्तर-भारतीय संगीत से ही उन्हें लगाव था और वे चाहते थे कि उसकी विकृतियों को समाप्त कर शब्द और स्वर के बीच में एक ऐसा सेतु बाँधा जाय जो दोनों को एक-दूसरे से कभी अलग न होने दे। शब्द और सुरों से भी अधिक महत्व वे उनमें अन्तर्निहित शोष और लय को देते थे। रवीन्द्रनाथ कवि थे या गायक या



एक रचयिता, यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित है, फिर भी उन्हें एक ऐसे बिन्दु के रूप में देखा जा सकता है जहाँ केवल सृजन होता है, संहार नहीं।

नृत्य को वे किसी प्रान्तीय या देशीय बंधन में बाँधना उचित नहीं समझते थे, बल्कि ऐसे स्वयंभू पक्ष के समर्थक थे जो देश और काल की सीमाओं से परे होता है, जिसमें प्रकृति की गुणगुनाहट और संवेदनायुक्त सहज उछाल होती है। इसी आधार पर उन्होंने अनेक गीत-नाट्य और नृत्य-नाटिकाओं की रचना भी की। सन् १९२० में उन्होंने शान्तिनिकेतन में विश्वभारती यूनीवर्सिटी की स्थापना की। उन्होंने अपने गीतों को स्वर तो प्रदान किये ही, अनेक अनुभूतियों को चित्रों के माध्यम से भी साकार किया। महात्मा गाँधी ने प्रभावित होकर उन्हें 'कवि-कुलगुरु' कहा तो रवीन्द्रनाथ ने महात्मा गाँधी को 'बापू' नाम दिया। आज सम्पूर्ण विश्व में रवीन्द्र-कृतियाँ गायी-बजायी जाती हैं और रवीन्द्र-संगीत की एक अजस्र धारा बहती दिखायी पड़ती है, जिसमें भारत की वैदिक सभ्यता, संस्कृति और मानव के उन्मुक्त मन का सहज स्पन्दन है। ७ अगस्त, सन् १९४१ को कलकत्ता में ही इस युगपुरुष का अवसान हो गया। 'जन-गण-मन अधिनायक' रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा ही रचा गया था जो भारत का राष्ट्रीय गीत है।

### इनायत खाँ (सुर बाहर-वादक)

इनायत खाँ का जन्म सन् १८८५ ई० में इटावा में हुआ था। अपने समय में सुर-बहार के आप एक प्रसिद्ध कलाकार हो गए हैं। इनके बाबा साहबदाद खाँ ध्रुवपद, खयाल और गज़ल-शैली के विशेषज्ञ थे; साथ ही वे जलतरंग और सारंगी-वादन में भी कुशल थे।

इनायत खाँ के पिता इमदाद खाँ हिंदुस्तान के प्रसिद्ध सुरबहार और सितार-वादक थे। जोड़, गत, तोड़ा और झाला में वे अपना सानी नहीं रखते थे। महाराजा नौगाँव तथा महाराजा बनारस के यहाँ दरबारी गायक के रूप में रहने के पश्चात् आप कलकत्ता में महाराजा सर यतीन्द्रमोहन टैगोर के यहाँ रहे। इसके बाद इमदाद खाँ ३००) मासिक वेतन पर अवध के नवाब वाजिदअली शाह के कोर्ट म्यूज़िशियन नियुक्त हुए। फिर कुछ समय बड़ौदा-दरबार में रहने के बाद अंत में अपने दो पुत्रों के साथ इन्दौर रहे। इनकी मृत्यु सन् १९२० ई० में, ७२ वर्ष की आयु में हो गई। आपने अपने पीछे दो पुत्र और पाँच पुत्रियाँ छोड़ीं।

इमदाद खाँ के दो पुत्रों में इनायत खाँ छोटे और वहीद खाँ बड़े थे। इनायत खाँ ने छोटी उम्र से ही ध्रुवपद, खयाल और ठुमरी आदि की तालीम अपने पिता से प्राप्त की थी। इसके पश्चात् आपने विभिन्न रागों के बारे में जानकारी हासिल की और अपने पिता से ही सुरबहार व सितार-वादन भी सीखते रहे। अपने सतत परिश्रम और अभ्यास के फलस्वरूप शीघ्र ही इनकी गणना अच्छे कलाकारों में होने लगी। काठियावाड़, मैसूर, बड़ौदा और इन्दौर में अपनी संगीत-सेवाएँ अर्पित करने के बाद आप कुछ समय तक गौरीपुर के ब्रजेन्द्रकिशोर राय चौधरी की संगीत-सेवा में रहे।



इसके पश्चात् इनायत खाँ ने विविध संगीत-सम्मेलनों में भाग लेकर अनेक स्वर्णपदक प्राप्त किए। इनके सितार-वादन में जो मिठास थी, वह सुनते ही बनती थी। मैमनसिंह ज़िले के कई स्थानों में आपका शिष्य-समुदाय फैला हुआ है। सन् १९३८ ई० के लगभग आपका शरीरांत हो गया। इनके पुत्र विलायत खाँ आजकल एक सफल सितार-वादक के रूप में गौरीपुरी-घराने का नाम रोशन कर रहे हैं।

## पं० विष्णुनारायण भातखंडे (शास्त्रकार-गायक)

पं० विष्णुनारायण भातखंडे का जन्म मुम्बई के 'बालकेश्वर' नामक स्थान पर १० अगस्त, १८६० ई० को हुआ। इन्होंने १८८३ ई० में बी० ए० और १८९० ई० में एल-एल. बी. की परीक्षा पास की। इनकी लगन आरंभ से ही संगीत की ओर थी। १९०४ ई० में आपकी ऐतिहासिक संगीत-यात्रा आरंभ हुई जिसमें आपने भारत के सैकड़ों स्थानों का भ्रमण करके संगीत-सम्बन्धी साहित्य की खोज की। आपने बड़े-बड़े गायकों का संगीत सुना और उनकी स्वरलिपि तैयार करके 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तक-मालिका' के नाम से एक ग्रंथमाला प्रकाशित कराई, जिसके छह भाग हैं। शास्त्रीय (Theory) ज्ञान के लिए आपने हिन्दुस्तानी 'संगीत-पद्धति' (जो हिन्दी में 'भातखंडे संगीत शास्त्र' के नाम से छपी) के चार भाग मराठी भाषा में लिखे। संस्कृत भाषा में भी आपने 'लक्ष्य-संगीत' और 'अभिनव राग-मंजरी' नामक पुस्तकें लिखकर प्राचीन संगीत की विशेषताओं तथा उसमें फैली हुई भ्रांतियों पर प्रकाश डाला। श्री भातखंडे ने अपना शुद्ध ठाठ 'बिलावल' मानकर ठाठ-पद्धति स्वीकार करते हुए दस ठाठों में बहुत से रागों का वर्गीकरण किया।

१९१६ ई० में आपने बड़ौदा में एक विशाल संगीत-सम्मेलन किया, जिसका उद्घाटन महाराजा बड़ौदा द्वारा हुआ। इसमें संगीत के विद्वानों द्वारा संगीत के अनेक तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक विचार हुआ और एक 'ऑल इण्डिया म्यूजिक-एकेडेमी' की स्थापना का प्रस्ताव भी स्वीकार हुआ। इस संगीत-सम्मेलन में भातखंडे जी के संगीत-सम्बन्धी जो महत्त्वपूर्ण भाषण हुए, वे अँग्रेजी में 'ए शॉर्ट हिस्टोरीकल सर्वे ऑफ़ दी म्यूजिक आफ़ अपर इण्डिया' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं।

बाद में आपके प्रयत्नों से अन्य कई स्थानों पर संगीत-सम्मेलन हुए तथा संगीत-विद्यालयों की स्थापना हुई, जिनमें लखनऊ का 'मैरिस म्यूजिक-कॉलेज' (अब 'भातखंडे संगीत विद्यापीठ'), ग्वालियर का 'माधव संगीत-महाविद्यालय' तथा बड़ौदा का 'म्यूजिक-कॉलेज' विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार इन्होंने अपने अथक परिश्रम द्वारा संगीत की महान् सेवा की और भारतीय संगीत को एक नए प्रकाश से आलोकित करके १९ सितम्बर, १९३६, को ये परलोकवासी हो गए।



## पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर

पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर का जन्म १८७२ ई० में श्रावणी पूर्णिमा के दिन कुरुदवाड़ (बेलगाँव) में हुआ। आपको गायनाचार्य पं० बालकृष्ण बुवा से संगीत शिक्षा प्राप्त हुई। १८९६ ई० में आपने संगीत-प्रचार हेतु भ्रमण आरम्भ किया। पलुस्कर जी ने अपने सुमधुर आकर्षक संगीत के द्वारा संगीत-प्रेमी जनता को आत्म-विभोर कर दिया। पंडित जी के व्यक्तित्व के प्रभाव से सभ्य समाज में संगीत की लालसा जाग उठी, जिसके फलस्वरूप संगीत के कई विद्यालय स्थापित हुए; जिनमें लाहौर का 'गांधर्व महाविद्यालय' सर्वप्रथम ५ मई, १९०१ ई० को स्थापित हुआ। बाद में बम्बई में 'गांधर्व महाविद्यालय' स्थापित हुआ और यही मुख्य केन्द्र बन गया। पंडित जी का कार्य आगे बढ़ाने के लिए उनके शिष्यों के सामूहिक प्रयत्न से 'गांधर्व महाविद्यालय-मण्डल' की स्थापना हुई, जिसके अन्तर्गत विभिन्न नगरों में अनेक केन्द्र स्थापित हुए।

१९२० ई० से पलुस्कर जी कुछ विरक्त-से रहने लगे थे, अतः १९२२ ई० में आपने नासिक में 'रामनाम-आधार-आश्रम' खोला। तब से आपका संगीत भी रामनाममय हो गया। इस प्रकार संगीत को पवित्र वातावरण में स्थापित करके, संगीत का यह पुजारी २१ अगस्त, १९३१ ई० को मिरज में प्रभु-धाम को प्रस्थान कर गया।

पंडित जी द्वारा संगीत की कई पुस्तकें भी प्रकाशित हुई थीं, जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—संगीत-बालबोध, स्वल्पालाप-गायन, संगीत-तत्त्व-दर्शक, राग-प्रवेश तथा भजनामृतलहरी इत्यादि।

आपकी स्वरलिपि-पद्धति भातखंडे-स्वरलिपि-पद्धति से भिन्न है। श्री डी० वी० पलुस्कर, जो अपने समय के गायकों में एक अच्छे गायक माने जाते थे, आपके ही सुपुत्र थे।



## पाश्चात्य संगीतकार

### बाख (Bach)

पाश्चात्य संगीतकारों में जोहन सैबस्टियन बाख का नाम बड़ा सम्माननीय है। २१ मार्च, १६८५ ई० को जर्मनी के ईसेनाक (EISENACH) नगर में आपका जन्म हुआ तथा २२ जुलाई, १७५० ई० को लीपज़िग (जर्मनी) में आप स्वर्गवासी हुए।

बाख ने अपने जीवन-काल में जो सांगीतिक रचनाएँ कीं, उनमें अनेक सोनाहटाह, सिम्फॉनी ऑर्केस्ट्रा, स्वीट्स, चर्च कनटाटाज़, टावकाटाज़, मोटेट्स, आदि उल्लेखनीय हैं। आपकी अधिकांश रचनाएँ गिरिजा (चर्च) से सम्बद्ध हैं, जिनमें आध्यात्मिक रंग झलकता है। बाख का सम्पूर्ण जीवन संगीत के लिए ही समर्पित रहा। जीवन के अन्तिम चरण में अचानक आपकी आँखों की रोशनी चली गई तथा पक्षाघात की बीमारी ने भी जकड़ लिए।

### मोजार्ट (Mozart)

मोजार्ट (मोट्सार्ट) का जन्म २७ जनवरी, १७५६ को आस्ट्रीया के साल्ज़बर्ग में हुआ। उस समय के प्रसिद्ध संगीतकार हीडिन् ने मोजार्ट के पिता से कहा था, 'मैंने ऐसा उत्तम संगीत-रचयिता कभी नहीं सुना।' तीन वर्ष की आयु में ही मोजार्ट संगीत के पाठों को बजाने लगे थे और पाँच वर्ष की आयु में छोटी-छोटी रचनाएँ करने लगे थे। पूरे योरोप में इनकी ख्याति हो गई। इनके अन्तिम ऑपेरा का नाम है 'दि मैजिक फ्ल्यूट'। मोजार्ट की समस्त संगीत-रचनाएँ प्रत्येक संगीतज्ञ के गले का हार हैं। रोज़ने-जैसे महान् व्यक्तित्व के ये शब्द संगीत-जगत् में सदैव गूँजते रहेंगे कि 'मोट्सार्ट केवल एक ही हुआ है।' मोट्सार्ट के गीत, धुनें, ऑर्केस्ट्रा, सिम्फॉनी तथा वाद्य-संगीत के लिए की गई रचनाएँ आज भी बड़े आदर के साथ सुनी और सुनाई जाती हैं। ५ दिसम्बर, १७८१ को विएना में इस महान् संगीतकार का देहावसान हो गया।

### बीथोवन (Beethoven)

आपका पूरा नाम लुदविग वैन बीथोवन (Ludwing Van Beethoven) है। १६ दिसम्बर, १७७० ई० को बोन (जर्मनी) में आपका जन्म हुआ। चार वर्ष की आयु



में ही आपके पिताश्री ने आपको प्यानो की शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया था। बीस वर्ष की आयु में आप प्यानो के श्रेष्ठ कलाकार बन गए। इन्हीं दिनों आप विएना (Vienna) गए। वहाँ के लोग इनकी प्रतिभा से आश्चर्यचकित रह गए।

बीथोवन ने पाश्चात्य संगीत-जगत् में क्रांति मचा दी। आपने प्यानो तथा सिम्फॉनी ऑर्केस्ट्रा को जितना सुगम और स्पष्ट कर दिया, उतना किसी भी संगीतज्ञ ने नहीं किया। आपने क्वार्टेट, क्विन्टेट, सैप्टेट, ट्रायो, सोनाटाह, कॉन्शियरटो, प्रील्यूड, सिम्फॉनी, मार्च, आर्केस्ट्रा फ़ग, कनटाटा ऑक्टेड, कोरस इत्यादि की इतनी अधिक रचनाएँ की हैं जितनी कोई अन्य संगीतज्ञ नहीं कर पाया।

इस अमर संगीतकार पर जीवन के उत्तर-काल में कई भयानक रोगों ने आक्रमण किया, फलतः २६ मार्च, १८२७ को वियेना में ही आप काल-कवलित हो गए।

### शूबर्ट (SCHUBERT)

मैलॉडी के विशेषज्ञ, लगभग छह सौ गीतों, पंद्रह क्वार्टेट्स (तार-वाद्यों के लिए), आठ सिम्फॉनी, प्यानो के लिए अनेक रचनाएँ, कॉन्शियरटोज़ तथा जर्मन-नृत्य आदि के रचनाकार शूबर्ट का जन्म ३१ जनवरी, १७९७ ई० को वियेना (आस्ट्रीया) में एक स्कूल मास्टर के पुत्र के रूप में हुआ। परन्तु खेद का विषय है कि यह प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार केवल ३१ वर्ष की आयु (१९ नवम्बर, १८२८ ई०) में ही स्वर्गवासी हो गया।

शूबर्ट बीथोवन के परम भक्त थे। संयोग की बात है कि उनकी मृत्यु के केवल बीस महीने बाद ही शूबर्ट की मृत्यु हो गई, और बीथोवन के निकट ही उन्हें समाधिस्थ किया गया। आपकी समाधि पर एक पत्थर लगा है, जिस पर अंकित वाक्य इस प्रकार है :—‘यहाँ संगीत का खज़ाना गड़ा है।’

□ □ □



## संगीत और जीवन

सृष्टि के स्वर्णिम विहान से लेकर प्रलय की काली संध्या तक संगीत का अस्तित्व स्वीकार करना ही पड़ता है। जीवन-ग्रंथ के पृष्ठों को कहीं से भी पलटिए, कोई भी अध्याय तो ऐसा नहीं जिसे संगीत से शून्य कह दिया जाए। युगस्रष्टा मानव ने जन्म लेते ही गीत सुने और मृत्यु होने पर भी गीत सुनते-सुनते उसने श्मशान-यात्रा की ! घंटे-घड़ियाल और 'राम-नाम सत्य है' की ध्वनियों के साथ उसका स्थूल शरीर भी शून्य में खो गया :—

क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा । पंच रचित यह अधम शरीरा ॥

इन्हीं पाँच तत्त्वों से मिलकर मानव-शरीर का निर्माण होता है और यही तत्त्व जीवन के आधार माने गए हैं। इनमें जहाँ किसी एक की भी कमी हुई कि जीवन-लीला समाप्त हुई। यही पाँच तत्त्व प्रकृति का आधार माने जाते हैं। जड़ और चेतन की सृष्टि का अस्तित्व इन्हीं पर है। इधर वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि उक्त पाँचों तत्त्वों में संगीत प्रचुर मात्रा में विद्यमान है, उधर भावुक व्यक्ति प्रकृति के कण-कण में संगीत के निहित होने का दावा करते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राणी-मात्र की उत्पत्ति संगीतमय वातावरण एवं संगीतमय तत्त्वों से परिपूर्ण होती है। स्वर आत्मा का नाद है और आत्मा परमात्मा का स्वरूप। जिस प्रकार आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से माना जाता है, उसी प्रकार स्वर का सम्बन्ध आत्मा से मानना पड़ेगा। इस युक्ति से संगीत और आत्मा का सम्बन्ध भी सुदृढ़ सिद्ध होता है।

भावुकता से हीन कोई कैसा भी पाषाण-हृदय क्यों न हो, किंतु संगीत से विमुख होने का दावा उसका भी नहीं माना जा सकता। कहावत है कि गाना और रोना सभी को आता है। संगीत की भाषा में जिन व्यक्तियों ने अपने विवेक, अभ्यास और तपश्चर्या के बल से स्वर और ताल पर अपना अधिकार कर लिया है, उनका विज्ञ समाज में आदर है, उन्हें बड़ा गवैया समझा जाता है। परंतु अधिकांश जन-समूह ऐसा होता है, जो इस ललित कला की साधना और तपस्या से सर्वथा वंचित रह जाता है। ऐसे व्यक्तियों को गायक नहीं कहा जाता और न वे गायक कहलाने के पात्र ही होते हैं, परंतु गाना ऐसे लोग भी गाते हैं। इन लोगों के जीवन का संबंध भी



संगीत से प्रचुर मात्रा में होता है। गाँव में गाए जानेवाले लोक-गीतों के विभिन्न प्रकार, कपड़े धोते समय धोबियों का गीत, भीमकाय पाषाणों को ऊपर चढ़ाते समय श्रमिकों का गाना, खेतों में पानी देते समय किसानों द्वारा गाए जानेवाले गीत, पनघट को ग्रामीण युवतियों के गीत तथा पशु चराते समय भ्वालों का संगीत, इस कथन की पुष्टि के लिए यथेष्ट प्रमाण हैं। इस प्रकार के गीत तो दैनिक चर्या में गाये जाते हैं। किसी विशेष अवसर पर विवाह तथा पुत्र-जन्मोत्सव पर अथवा किसी धार्मिक या सार्वजनिक समारोहों के अवसरों पर होनेवाले कार्यक्रम तो गीत और नृत्य से परिपूर्ण होते ही हैं।

संगीत में जादू-जैसा असर है, इस वाक्य को चाहे जिस व्यक्ति के सम्मुख कह दीजिए, वह स्वीकृति-सूचक उत्तर ही देगा, नकारात्मक नहीं। यद्यपि उसने इस वाक्य को परीक्षा की कसौटी पर कभी नहीं कसा है, तब भी अनुभवहीन होने पर भी वह ऐसा क्यों कहा जाता है, यह विचारणीय प्रश्न है। उसकी यह स्वीकृति संगीत और आत्मा के संबंध की पुष्टि करती है। आत्मा सत्य का स्वरूप है, अतः वह सत्य की सत्ता को तुरन्त ही स्वीकार कर लेता है। इसका एक कारण संगीत की व्यापकता का रहस्य तथा संगीत के सम्बन्ध में कुछ सुनी हुई बातों का अनुभव भी हो सकता है।

पावस की लाजवंती संध्याओं को श्वेत-श्याम मेघ-मालाओं से प्रस्फुटित नहीं-नहीं बूंदों का रिमझिम-रिमझिम राग सुनते ही कोयल कूक उठती है, पपीहे गा उठते हैं, मोर नाचने लगते हैं तथा मँजीरे बोल उठते हैं। लहलहाते हरे-भरे खेतों को देखकर कृषक आनंद-विभोर हो जाता है और वह अनायास ही अलाप उठता है किसी परिचित मल्हार के बोल। यही वह समय होता है जबकि प्रकृति के कण-कण में संगीत की सजीवता भासमान होती है। इन चेतनामय घड़ियों में प्रत्येक जीवधारी पर संगीत की मादकता का व्यापक प्रभाव पड़ता है। कालरूप विषधर इन्हीं दिनों बीन की स्वर-लहरियों में खोकर बरुओं की पिटारी में बंदी बन जाते हैं। हरियाली तीजों का लोक-प्रसिद्ध त्यौहार इसी ऋतु में सम्पन्न होता है। गाँव-गाँव और गली-गली में झूले के गीत, जिन्हें ग्रामीण भाषा में मल्हार भी बोलते हैं, गुंजरित होते रहते हैं। इन दिनों गरीब की कुटिया से लेकर अमीरों के गगनचुंबी धवल प्रासादों तक लगभग इसी प्रकार का वातावरण देखने को मिलता है।

जीवन-पथ के किसी भी मोड़ पर रुक कर देख लीजिए, वहीं आपको संगीत मिलेगा। दुःख से सुख से, रुदन से हास से, योग से वियोग से, मृत्यु से जीवन से, सारांश यह है कि जीवन की प्रत्येक अवस्था से येन-केन-प्रकारेण संगीत की कड़ी अवश्य जुड़ी रहती है। युद्ध के मोर्चों पर उत्साह-वृद्धि के लिए वर्तमान युग में भी विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के सैनिक विभिन्न प्रकार के संगीत का ही प्रयोग करते हैं। अट्टहास करती हुई मृत्यु के उस बीभत्स वातावरण में सैनिकों के मस्तिष्क का सन्तुलन ठीक रखने एवं गगनभेदी तोपों के भयावने गर्जन में कर्तव्य की कसौटी पर खरे उतरने की शक्ति संगीत ही प्रदान करता है।



विभिन्न देशों में संगीत के प्रकार चाहे भिन्न-भिन्न हों, किंतु प्रचार और गुणों का रूपांतर नहीं होता। संगीत का मौलिक रूप एवं उसके सृजनात्मक तत्त्व सभी स्थानों के संगीत में समान होते हैं। संगीत के परमाणुओं में मानव की वृत्तियों को प्रशस्त करने के साथ-साथ आत्मिक शक्ति का आविर्भाव करने की शक्ति भी निहित है। चारित्रिक उत्थान एवं वासनाओं पर विजय प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन भी संगीत ही है। इस ललित कला की गहराई नापी नहीं जा सकती। आप इसकी गहराइयों में ज्यों-ज्यों उतरते जाएँगे, त्यों-त्यों आपका पथ प्रशस्त एवं परिमार्जित होता जाएगा। परन्तु इसमें सिद्धि प्राप्त करने के लिए आपको कठिन तपस्या करनी होगी। एक योगी के समान स्थिर हृदय से आपको संगीत के विशाल कक्ष में प्रविष्ट होना पड़ेगा, तभी आप यथार्थ शब्दों में महान् बन सकेंगे।

प्रसन्नता की बात है कि आजकल विश्व के कुछ विशेषज्ञ एवं डाक्टर संगीत के रहस्यपूर्ण तत्त्वों के अनुसंधान में संलग्न हैं। आजकल के परीक्षणों में अनेक ऐसी चमत्कारपूर्ण बातें मिली हैं, जिनके द्वारा अनुसंधानकर्ताओं का उत्साह बढ़ता ही चला जा रहा है। मानसिक रोगों पर, पक्षाघात अथवा फ़ालिज की बीमारी पर संगीत की स्वर-लहरियों ने आशातीत लाभ किया है। आस्ट्रेलिया के 'बुम्बीज' (एक प्रकार के जंगली घोड़े) संगीत की सहायता से भारी संख्या में पालतू बन गए हैं। लंदन के एक अस्पताल में गूँगे, बहरे तथा पागलों पर किए जानेवाले संगीत के प्रयोगों में अच्छी खासी सफलता प्राप्त हुई है। इटली की कुमारी ऐलबोल लोरा के प्रति भारतीय एवं कुछ विदेशी समाचार-पत्रों ने इस प्रकार के समाचार प्रकाशित किए थे, जिन्हें पढ़कर बरबस ही संगीत के चमत्कार को नमस्कार करना पड़ता है। पत्रों का कथन था कि यह कुमारी भोजन नहीं करती, वह केवल संगीत पर ही जीवित रहती है।

अनुसंधान के वर्तमान युग में वह दिन अधिक दूर नहीं जबकि विज्ञान-वेत्ताओं द्वारा संगीत की छिपी हुई अनंत शक्ति का भंडार सर्वसाधारण के समक्ष प्रकट हो जाएगा और मानव-जीवन के सृजनात्मक कार्यों में इसके तत्त्वों का अधिकाधिक प्रयोग होगा। तब हमारा मानव-समाज जीवन और संगीत के संबंधों को और भी अधिक स्पष्ट रूप में समझ सकेगा, ऐसी आशा की जाती है।

□ □ □



## संगीत की शक्ति

ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण मानव-जगत् में नित नए प्रयोग हो रहे हैं। जब ये प्रयोग जीवन के अभिन्न अंग बन जाते हैं, तब मानव फिर अभिनव अनुसंधान में प्रवृत्त हो जाता है। यद्यपि संगीत स्वयं एक विज्ञान है, किन्तु अभी उसकी सिद्धि के लिए वर्षों की तपस्या अपेक्षित है। इधर कुछ समय से वैज्ञानिकों का ध्यान संगीत की ओर गया है, लेकिन संगीत के क्रियात्मक ज्ञान के अभाव के कारण हर वैज्ञानिक इस ओर ध्यान नहीं दे सकता।

संसार परमाणु की सत्ता स्वीकार कर चुका है और नाद के गुण से भी वह परिचित है। किन्तु नाद की विलक्षण शक्ति अभी अप्रकट है। जिस दिन वह प्रकट हो जाएगी, संसार एक मत से संगीत को सर्वोपरि विज्ञान स्वीकार कर लेगा। अणु और परमाणु का अस्तित्व उसके समक्ष नगण्य हो जाएंगे। प्राचीन काल में ध्वनि के भौतिक प्रभाव पर जो प्रयोग किए गए थे, वे आज केवल किंवदंती के रूप में अवशिष्ट हैं। किन्तु जो भी उन किंवदंतियों को सुनता है, वह भविष्य में उनकी सफलता के लिए आज के वैज्ञानिक उत्कर्ष को देखकर आस्थावान हो जाता है। हमारे प्राचीन आचार्य और महर्षियों ने हाइड्रोजन बम निश्चय ही नहीं बनाए थे, किन्तु ध्वनि विज्ञान पर उन्होंने जो विचार व्यक्त किए थे, वे आज भी कसौटी पर खरे उतरते हैं। नाद की शक्ति पर विवेचन करनेवाले अनेक ग्रंथ आज लुप्त हैं।

विज्ञान द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि द्रव्य (मैटर) और शक्ति (एनर्जी), ये दोनों एक ही वस्तु हैं। 'मैटर' को 'एनर्जी' और 'एनर्जी' को 'मैटर' में परिवर्तित किया जा सकता है, अर्थात् परम तत्त्व एक ही है। अतः शब्द का प्रभाव बड़ा विलक्षण है। जिस प्रकार मिट्टी का गुण 'गंध' और अग्नि का गुण 'उष्णता' है, उसी प्रकार आकाश का गुण 'शब्द' है। वह सदा आकाश में विद्यमान रहता है। इस सत्य को जान लेने पर कुछ वैज्ञानिकों का दावा है कि वे शीघ्र ही किसी उपकरण की सहायता से तानसेन का गायन अथवा भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से कही गई गीता को आकाश से ग्रहण कर उन्हीं की आवाज में सुनवा सकेंगे।

इंग्लैंड की एक महिला एलियस ने संगीत द्वारा टेलीविजन पर गिलास तोड़ने का आश्चर्यजनक प्रदर्शन किया था। स्टूडियो में काँच के चार गिलास रखे गए,



जोकि मिस एलियस द्वारा तोड़े जानेवाले थे। एलियस ने गायन प्रारम्भ किया। हजारों मनुष्य अपने-अपने घरों में टेलीविजन पर यह कमाल देख रहे थे। किन्तु एलियस स्टूडियो में रखे गिलासों को न तोड़ सकी। बाद में एक औरत ने टेली-विजन को पत्र लिखा कि 'एलियस के ऊँचे स्वर ने मेरे घर के चार गिलासों को चटका दिया।' इसके पश्चात् अन्य लोगों से टूटे हुए गिलासों के २१ नमूने प्राप्त हुए, जो कि उनके घरों में एलियस के एक विशेष ऊँचे स्वर से टूट गए थे। स्टूडियो के कमरे विशेष प्रकार के बने होने के कारण ध्वनि का प्रभाव वहाँ के गिलासों पर पूर्णरूपेण नहीं पड़ सका था, इसीलिए वे नहीं टूटे किन्तु अन्य लोगों ने जब अनेक पत्र टूटे गिलासों के नमूने-सहित भेजे, तब प्रयोग की सफलता पर अत्यन्त आश्चर्य और हर्ष हुआ।

युद्ध-काल में फ्रौजी बैंडों को आदेश दिया जाता था कि पुल के ऊपर से गुजरते समय वे बैंडों को न बजाते हुए तथा पदचापों में समानता न रखते हुए खामोशी के साथ चलें, क्योंकि स्वर के प्रभाव से पुल टूटने की आशंका रहती थी।

'ट्रुथ' की ८-वीं वॉल्यूम में एक स्थान पर कहा गया है कि कैप्टेन ओवर्न ने एक बार तिब्बत की एक अन्धकारपूर्ण गुफा में प्रवेश किया था। उनका साथी एक लामा अपने साथ धातु-निर्मित गोंग वाद्य ले गया था। जब वे लोग अन्धकार में प्रविष्ट हुए, तब लामा ने अपने वाद्य को लकड़ी के 'हैमर' से बजाना शुरू किया। कैप्टेन का कहना है—'मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वाद्य की टंकार से आधी दर्जन के लगभग हरे प्रकाश की किरणें प्रस्फुटित हुईं, जिनका प्रकाश ५०० कैण्डल पावर से किसी भी प्रकार कम नहीं था।' तिब्बत में अन्धकार को ध्वनि-कम्पनों द्वारा दूर करने की यह क्रिया काफ़ी प्रचलित है। इस प्रकार संगीत की रोशनी में उन्होंने कई गुफाएँ देखीं। सम्भव है, प्राचीन काल में अजन्ता और एलोरा की गुफाओं की बारीक कला के निर्माण में भी संगीत का ही आश्रय लिया गया हो, क्योंकि कई स्थलों पर इतनी बारीक चित्रकारी देखने को मिलती है, जो साधारण प्रकाश में पूर्ण करना असम्भव है और आग के प्रकाश द्वारा इसलिए सम्भव नहीं कि उसके धुएँ से उसके नष्ट और खराब होने का भय रहता है।

भारतीय संगीत-साहित्य में तानसेन से सम्बन्धित कई चामत्कारिक किंवदन्तियाँ हैं, जिनमें से दीपक राग द्वारा दीपक जला देना, मेघ राग द्वारा वृष्टि कराना और स्वर के प्रभाव से हिरन आदि पशुओं को पास बुला लेना मुख्य रूप से प्रचलित हैं। इसी प्रकार ग्रीक साहित्य में ऑर्फेन्स का वर्णन मिलता है, जो संगीत के प्रभाव से चराचर जगत् को हिला देता था, समुद्र की उताल तरंगों को शांत कर देता था और वायु के वेग को रोककर पर्वतों को गति दे सकता था।

मिल्टन ने 'पैराडाइज़ लास्ट' में लिखा है कि जब ईश्वर ने सृष्टि रची, तब उसने पहले बिखरे हुए महाभूतों को संगीत द्वारा एकत्र किया, तत्पश्चात् सृष्टि रचना



की। ट्राइडन इसी बात को अपने सैन्ट असीलिया की प्रार्थना के गीत में दिखाता है। वह कहता है कि संगीत में केवल वस्तु के सृजन की ही नहीं, लय उत्पन्न करने की भी शक्ति है; जिस प्रकार जगत् की उत्पत्ति संगीत से है, उसी प्रकार उसका लय भी संगीत से ही होता है। जैसे संगीत भौतिक तत्त्वों का समन्वय करता है, वैसे ही आध्यात्मिक तत्त्वों का भी। स्थूल और सूक्ष्म, दोनों ही सृष्टि संगीत की शक्ति के अधीन हैं, इस सत्य को स्टीवेन्सन ने भी स्वीकार किया है। उसने अपने 'पैस पाइप्स' नामक लेख में वंशी बजाते हुए प्रकृति-देव की कल्पना की है।

आजकल कुछ वैज्ञानिक पशु-पक्षी और कीड़े-मकोड़ों के संगीत को भी रिकॉर्ड कर रहे हैं। इससे इन्हें संगीत-प्रभाव के अनुसंधान में सहायता मिलती है। ७२ वर्षीय लुडविगकौश पिछले ६४ वर्षों से पक्षियों के स्वरों का अध्ययन कर रहे हैं। चीन के चांग पो ने कीड़ों के संगीत के अनेक रिकॉर्ड तैयार किए हैं। उनका कहना है कि मच्छरों को संगीत से बेहद प्रेम होता है। गर्मी के दिनों में बिजली पैदा करनेवाले यन्त्र की मधुर आवाज पर असंख्य मच्छर अपने प्राणों की भेंट चढ़ा देते हैं। मकड़ियाँ अच्छा संगीत सुनकर उसके पास खिसक कर आ जाती हैं। पेलीसिन नामक फ्रेंच लेखक जेल में बाँसुरी बजा-बजा कर मकड़ियों को अपने काफ़ी निकट तक बुला लिया करता था।

चीन के प्रमुख समाचार पत्र 'पीपुल्स डेली' की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि तैयुआन के एक डेरी फ़ार्म में कोमल और हलके संगीत का आयोजन करने से गाएँ अधिक दूध देने लगी हैं। शांसी प्रांत के श्रमिक-डेरी फ़ार्म ने दूध देनेवाली अपनी ४५ गायों के दूध का दैनिक औसत ४४४.५ किलोग्राम से ५१४.५ किलोग्राम कर लिया है। उनकी चारा वगैरह की अन्य सुविधाओं में कोई परिवर्तन नहीं किया गया था। सर्वोत्तम परिणाम एक मिश्रित नस्ल की गाय से प्राप्त हुए। दस दिन की परीक्षा में यह देखा गया कि संगीत की व्यवस्था करने पर वह प्रतिदिन औसत १६.५ किलोग्राम, अर्थात् पहले की अपेक्षा २.५ किलोग्राम अधिक दूध देती है।

कुछ समय पूर्व शेर-जैसे हिंसक पशु पर भारतीय संगीत के आचार्य पं० ओंकारनाथ ठाकुर ने लखनऊ के चिड़ियाघर में एक प्रयोग किया था। शेर के निकट जाने पर उसका हिंसक भाव स्पष्ट परिलक्षित हो रहा था, किंतु कोमल गांधार के विशिष्ट प्रयोग द्वारा उसकी आँखों में कुछ ही देर बाद परिवर्तन आ गया। कुत्ते की तरह वह अपनी पूंछ हिलाने लगा और उसकी आँखों से वात्सल्य प्रकट होने लगा।

सर जे. सी. बोस ने वनस्पति-शास्त्र संबंधी विशेष अनुसंधान के द्वारा प्रमाणित कर दिया था कि वनस्पति में भी जीव हैं। पं० ओंकारनाथ ठाकुर ने उनकी प्रयोगशाला में जाकर एक बार भैरवी गाई थी। गाने से पूर्व यंत्रों द्वारा पौधों व पत्ती की अवस्था देख ली गई थी और गायन के पश्चात् उन पर आई हुई नई चमक का दर्शन भी लोगों ने किया था। मधुर स्वर सुन कर वृक्षों के 'प्रोटोप्लाज्म' के कोष में स्थित 'क्लोरोप्लास्ट' विचलित और गतिमान हो उठता है।



दक्षिण की प्रसिद्ध अन्नामलाई यूनिवर्सिटी में बॉटनी-विभाग के कुछ छात्रों ने संगीत द्वारा पौधों पर अद्भुत प्रभाव डाला। एक ही क्रिस्म के दो पौधे तैयार किए गए। एक पौधे को स्वरों द्वारा कई दिन तक प्रभावित किया गया और दूसरे को प्राकृतिक अवस्था में स्वतंत्र रहने दिया गया। प्रयोग के पश्चात् देखा गया कि जिस पौधे को संगीत सुनवाया गया था, वह दूसरे की अपेक्षा सवागुनी गति से बढ़ रहा था।

प्राचीन मिश्र में संगीत की शक्ति के द्वारा पागलों का उपचार किया जाता था। डॉ० जे० पॉल ने अपनी पुस्तक 'संगीत चिकित्सा' में विभिन्न रोगों द्वारा विभिन्न बीमारियों का उपचार करने पर विस्तृत प्रकाश डाला है। क्लोरोफार्म की अपेक्षा किसी भी गंभीर नाद द्वारा मस्तिष्क की नाड़ियों को सुषुप्त किया जा सकता है। इस प्रकार औषधि और शक्ति, दोनों ही रूपों में यह कला प्रयोज्य है।

संगीत के प्राचीन ग्रंथों में राग-रागनियों के स्वरूप और उनके ध्यान की चर्चा मिलती है। उनका अभिप्राय है कि राग-रागनियों का शुद्ध रूप से ध्यान और गान करने पर उनका रूप साकार हो उठता है। श्रीमती वाट्स ह्यूग ने वर्षों के अनुसंधान द्वारा हाल ही में लॉर्ड लीटन के स्टूडियो में ध्वनि-आकृतियों का सजीव चित्रण भाषण के साथ-साथ दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत किया था। उन्होंने एक साधारण वाद्य 'ईडोफोन' पर विशेष गायन प्रारंभ किया तो दर्शकों ने देखा कि प्रस्तुत प्रत्येक स्वर एक विशेष आकृति में सामने आता है। भाषण के पश्चात् हवाई कंपनों में उन्होंने छोटे-छोटे बीज फेंक कर मारे, परिणामस्वरूप आकृतियों में हलचल होने लगी। इन हिलती-डुलती आकृतियों ने फिर कई रूप धारण कर लिए। एक प्रत्यक्ष-दर्शी संवाददाता ने बताया कि आकृतियों में सितारे, साँप तथा पहिए की भाँति की अनेक शक्लें बन गई थीं।

एक बार श्रीमती ह्यूग एक स्वर का प्रसारण कर रही थीं। उसी समय आँखों के सामने एक फूल की आकृति आई और अदृश्य हो गई। इस अनुसंधान को जनता के समक्ष उपर्युक्त लेबोरेटरी में फिर से उन्होंने जब रखा, तब फूलों की कई क्रिस्में सामने आईं और दर्शकों ने उन्हें पसन्द किया। किसी-किसी दर्शक के मुँह से तो यह भी निकला कि कितने प्यारे फूल हैं ! इस प्रकार अनेक वृक्षों की आकृतियों को भी स्वर-संधान द्वारा रूप प्रदान किया गया और उसमें सफलता भी मिली।

प्राचीन काल में साम-गान के मन्त्रों द्वारा देवताओं का आह्वान किए जाने की कथाएँ प्रचलित हैं। उन पर बिल्कुल विश्वास न किया जाए, यह भी संभव नहीं अतः आवश्यकता तो गंभीर चिंतन, श्रद्धा और खोज की है।

□ □ □



## संगीत और छन्दशास्त्र

अक्षर या वाक् का लयात्मक स्वरूप जब निश्चित मात्राओं में विभक्त होता है तो वही 'छन्द' कहलाता है। ताल-जगत् में इसी को निश्चित मात्राओं में आबद्ध 'ताल' कहते हैं। एक प्रकार से काल की नियमित गति ही ताल या छंद को जन्म देती है। अक्षरों के नियमित कम्पन, स्वर को जन्म देते हैं। संगीत में स्वर, छन्द और ताल का विशेष महत्त्व है।

भरत ने अत्यन्त व्यापक रूप में वाक् तत्त्व को 'शब्द' और काल तत्त्व को 'छन्द' कहा है। उन्होंने कहा है कि कोई शब्द (ध्वनि) छन्द रहित नहीं और न कोई छन्द, शब्द रहित है; क्योंकि ध्वनि काल के बिना व्यक्त नहीं होती और काल का ज्ञान ध्वनि के बिना संभव नहीं। काल सीमा रहित है अतः उसका ज्ञान तभी सम्भव है जबकि उसे खण्ड बनाकर बाँध लिया जाए। इसके बिना काल की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं होगी। भूत, भविष्य और वर्तमान की गणना, माने गए काल-खण्डों (कल्पित) पर ही अवलम्बित है।

जिस पदबंध में यति, छेद इत्यादि नियत प्रमाण के आधार पर 'पाद' बनते हैं, तभी वह 'निबद्ध' और 'पद्य' कहलाता है, अन्यथा वह गद्य की श्रेणी में आता है, जिसमें नियमित लय या गति नहीं होती।

ह्रस्व-दीर्घ या लघु-गुरु इकाइयों के आधार पर लय की विशेष आकृति से छंद के रूप का निर्माण होता है। लय का प्रयोजन काल का नियमित विभाजन मात्र है जबकि छंद का प्रयोजन विभाजित काल को निश्चित स्वरूप और आकार देना है। लय के निश्चित स्वरूप से ही छंद साकार होता है। जैसे—राम, राम, राम, राम या सीताराम, सीताराम, सीताराम, सीताराम अथवा जयजयराम, जयजयराम अलग-अलग लय में दिखाई पड़ते हैं। लय के इन्हीं विभिन्न आकारों के आधार पर भाषाशास्त्र में विभिन्न छंदों का नामकरण कर दिया गया है। जिस प्रकार ताल के नाम से ताल के स्वरूप की जानकारी होती है उसी प्रकार छन्द के नाम से छन्द के



स्वरूप का ज्ञान होता है। रामलाल, रमालाल, रामलला, तीनों शब्दों में लय के निश्चित स्वरूप के कारण भिन्नता है। इसी से इनका स्वतंत्र स्वरूप निश्चित होता है। अक्षर एक जैसे हैं लेकिन लय के आघात अलग-अलग हैं। ये आघात ही प्रत्येक नाम का अलग-अलग बोध कराते हैं।

छन्द का अनुभव केवल सुनने से सम्बन्ध रखता है क्योंकि वह शब्द रचना, स्वर रचना या पद रचना के अन्दर रहनेवाला विशेष तत्त्व है। अक्षर, स्वर और पद की उलट-पुलट से छन्द का स्वरूप बदलता रहता है। शब्दात्मक छन्द और स्वरात्मक छन्द में एक विशेष अन्तर यह होता है कि शब्दों का विशेष नियोजन निश्चित छन्द का निर्माण करता है परन्तु स्वर के प्रवेश द्वारा उस छन्द का स्वरूप बदला जा सकता है। तब इसे संगीतात्मक छन्द कहते हैं जिसका आधार शब्द न होकर स्वर होते हैं। हिन्दी काव्य में शब्दात्मक छन्द की बहुलता मिलती है और फ़िल्मी काव्य अधिकांश रूप में संगीतात्मक छन्द पर निर्भर रहता है। इसीलिए जब किसी फ़िल्मी गाने को बिना धुन के काव्यरूप में बोला जाए तो उसमें शब्दों की कोई निश्चित लय दिखाई नहीं पड़ती। उर्दू शायरी में भी साहित्यिक छन्द की अपेक्षा संगीतात्मक छन्द का अधिक प्रयोग पाया जाता है।

छन्द कहीं भी हो, आनन्द की अनुभूति कराने में समर्थ होता है। स्वर और शब्द इन्द्रियगोचर हैं। लेकिन लय और छन्द की केवल सूक्ष्म मानस अनुभूति ही होती है। इसीलिए तबला, सितार जैसे वाद्य और नृत्य के पदाघात हमें अपने आघातों द्वारा लय के रस में डुबाते हुए आनन्द प्रदान करते हैं। नीचे ताल और स्वर से सम्बन्धित आघात प्रदान करने वाले बोल दिए जा रहे हैं ताकि छन्द की स्थिति स्पष्ट समझ में आ सके।

### वीणा और सितार

भरत ने वीणावादन की धातुओं के रूप में आघातों के जो प्रकार कहे हैं और जिसके लघु-गुरु क्रम भी निर्दिष्ट किए हैं उनके आधार पर कुछ विभिन्न छन्दों के प्रमाण प्रस्तुत किए जा रहे हैं जिनके साथ सितार के बोल (समान वजन वाले) भी दिए जा रहे हैं।

| धातु का नाम | लघु गुरु क्रम | छन्द नाम       | सितार के बोल       |
|-------------|---------------|----------------|--------------------|
| रिभित       | । । S         | रजनी           | दिर दा             |
| उच्चय       | । । । S       | कमलमुखी        | दिर दिर दा         |
| नीरटित      | । । । । S     | चपला, द्रुतगति | दिर दिर दिर दा     |
| ह्लाद       | । । । । । S   | मणिगुणनिकरकृता | दिर दिर दिर दिर दा |

सितार में अत्यधिक प्रयुक्त होने वाले मिजराब के बोलों में २ से ८ मात्रा तक के मात्रिक छन्दों के कुछ प्रचलित नमूने प्रस्तुत हैं :—

२ मात्रा के : दा दिर, दिर दा ।



३ मात्रा के : दा दिर दा, दिर दिर दा, दिर दा रा ।

४ मात्रा के : दा दिर दा रा, दिर दिर दा रा, दा रा दा दिर ।

५ मात्रा के : दा दिर दा रा दा, दा -र दा दा रा ।

६ मात्रा के : दा दिर दिर दा -र दा ।

७ मात्रा के : दा -र दा दा रा दा रा, दिर दा रा दा रा दा रा ।

८ मात्रा के : दा रा दा दा रा दा रा, दा दिर दिर दिर दा

रदा -र दा, दा रदा -र दा रदा -र दा रा, दा दा -र  
दा दा रा दा रा ।

झाला के बोलों में—

३ मात्रा के : दा चि चि<sup>५</sup>

४ मात्रा के : दा चि चि चि, दिर दा चि चि, रा दा चि चि

चि दा दा दा, दा दा चि चि ।

६ मात्रा के : दिर दा • चि चि चि ।

८ मात्रा के : दा चि चि चि • चि चि चि, दा चि चि दा चि चि दा चि,  
चि दा • दा चि दा • दा, चि • दा • चि दा • दा, दा रा  
दा दा रा दा दा चि, दिर दिर दा • दा चि चि चि, चि चि

चि दा चि चि दा चि ।

गायन में प्रयुक्त होनेवाले छोटे-छोटे स्वर सन्निवेशों में वर्णगणों<sup>५</sup> के रूप देखे जा सकते हैं । मालकौंस राग में प्रयुक्त होने वाले कुछ अत्यन्त सामान्य प्रकार नीचे दिए जा रहे हैं । ह्रस्वाक्षर लघु (अर्थात् एक मात्रा) का और दीर्घाक्षर गुरु (अर्थात् दो मात्रा के बराबर कालमान) का सूचक है—

जगण (।।५।)—स गा स, ग मा ग, म घा म, घ नी घ, नि सा नि ।

सगण (।।५)—स ग मा, ग म घा, म घ नी, घ नि सा ।

नगण (।।।)—ग ग स, म म ग, घ घ म, नि नि घ, स स नि, ग ग स ।



मात्रिक खण्डों के आधार पर बननेवाले छन्द के कुछ रूप निम्न सरगमों में देखें—

त्रिमात्रिक—नि स नि, स ग स, ग म ग, म ध म, ध नि ध ।

चतुर्मात्रिक—नि स ग स, स ग म ग, ग म ध म, म ध नि ध ।

पंचमात्रिक—नि स ग म ग, स ग म ध म, ग म ध नि ध, म ध नि स नि ।

षण्मात्रिक—नि स ग म ग स, स ग म ध म ग, ग म ध नि ध म, म ध नि स नि ध ।

उपर्युक्त उदाहरणों में छंद की अनुभूति के लिए छंद के प्रति जागरूकता अपेक्षित है ।

तालांश में छन्द का स्वरूप देखने से पहले छन्द और ताल के सम्बन्ध को समझना जरूरी है । काव्य में जो स्थान छन्द का है वही स्थान संगीत में ताल को दिया जाता है, क्योंकि छन्द और ताल दोनों मापक, प्रतिष्ठापक हैं । छन्द के द्वारा काव्य का और ताल के द्वारा गेय का ज्ञान होता है । छन्द वर्ग पर और ताल हाथ अथवा वाद्य की क्रियाओं पर अवलम्बित कहा जा सकता है । दोनों का अति निकट का सम्बन्ध है, लेकिन ये दोनों समान स्तर पर नहीं हैं, क्योंकि मूलतः छन्द अक्षर में या संगीत की क्रिया में अनुस्यूत होकर रहता है उससे अलग नहीं । जैसे काव्य में छंद शब्द-रचना में ही रहता है, उससे अलग उसकी सत्ता नहीं होती, उसी प्रकार संगीत में भी मात्रिक और वार्णिक गणों के रूप में ऊपर जो उदाहरण दिए हैं उनमें भी उन क्रियाओं में ही छन्द है । किन्तु ताल ठीक इसी रूप में यानी संगीत की क्रिया से अभिन्न रूप में नहीं, बल्कि उससे अलग रह कर ही क्रिया का माप करता है । यह इस बात से ही स्पष्ट है कि कोई गीत तालबद्ध रूप में यानी ताल की क्रियाओं के साथ भी गाया जा सकता है और ताल के बिना भी । लेकिन किसी रचना से उसके छन्द को अलग नहीं किया जा सकता । संगीत में भी इस रूप में मूल छन्द हमेशा रहता है जिसे संगीत-क्रिया से अलग करना सम्भव नहीं है । ताल अपने छन्द को उस छन्द पर आरोपित करके माप करता है ।

काव्य में छन्द के अनुसार क्रियाएँ की जाएँ तो वह ताल बन जाएगा और संगीत में क्रिया न हो, केवल लघु-गुरु क्रम हो तो छन्द बन जाएगा । इसीलिए गेय सम्बन्धी ताल रहित लघु-गुरु क्रमों के विशिष्ट सन्निवेशों को भरत ने 'ध्रुवा' (गेयवृत्त) कहा है ।

४. 'चि' का अर्थ चिकारी के तार पर आघात और \* (पुष्प चिन्ह) का अर्थ १ मात्रा चुप रहना यानी कोई आघात न करना है । 'दा' और 'रा' बाज के तार पर क्रमशः सीधे और उल्टे आघात के सूचक हैं ।

५. तीन-तीन अक्षरों के ऐसे समूह जिनके लघु-गुरु क्रम नियत होते हैं और जिनके आधार पर वर्णवृत्त बनते हैं, गण हैं जो ८ होते हैं; यथा यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण और सगण ।



ह्रस्व-दीर्घ और लघु-गुरु शब्द-युग्म साहित्य और संगीत में प्रायः पर्याय के रूप में प्रयुक्त होते हैं लेकिन इनमें सूक्ष्म अन्तर है। प्रथम युग्म व्याकरण का और दूसरा तालशास्त्र व छंदःशास्त्र का पारिभाषिक युग्म है। ह्रस्व-दीर्घ का सम्बन्ध मात्रा अर्थात् अ, इ, उ आदि स्वरों के उच्चारण काल से है। लेकिन छंद की रचना स्वरयुक्त व्यंजन से होती है, केवल स्वर से नहीं। व्यंजन का रूप उसके साथ संयुक्त स्वर के ह्रस्व-दीर्घ रूप से निश्चित होता है। ह्रस्व स्वर से युक्त होने पर 'लघु अक्षर' और दीर्घ स्वर से युक्त होने पर 'गुरु अक्षर' कहलाता है। लेकिन कभी-कभी ह्रस्व स्वरयुक्त वर्ण भी दीर्घ बन जाता है जब उसके बाद संयुक्त व्यंजन, विसर्ग या अनुस्वर हो। जैसे—मत्तकोकिला में 'म', पटहः में 'ह', और वंशी में 'व'।

छन्द का लघु-गुरु सामान्यतः ह्रस्व-दीर्घ मात्रा के समकक्ष होता है लेकिन ताल का लघु-गुरु ह्रस्व-दीर्घ मात्रा के या लघु-गुरु के समकक्ष नहीं होता। प्राचीन तालशास्त्र में लघु का काल ५ ह्रस्वाक्षर का उच्चारण-काल और गुरु का काल १० ह्रस्वाक्षर का उच्चारण-काल माना गया। मात्रा-काल का भेद होते हुए भी छन्द और ताल दोनों के निरूपण में एक ही भाषा का इस्तेमाल इनके अदृष्ट सम्बन्ध का सूचक है।

छन्द मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं—१. वर्णवृत्त—जिनमें ह्रस्व या दीर्घ—हर इकाई की स्वतन्त्र सत्ता है और जो परस्पर परिवर्तित नहीं हो सकती। जैसे—भुजंगप्रयात, तोटक आदि। २. मात्रावृत्त—जिनमें मात्रा संख्या निश्चित है और मात्रिक खण्ड भी नियत हैं लेकिन लघु-गुरु का क्रम निश्चित नहीं। जैसे—हरिगीतिका, चौपाई, आदि। इसी प्रकार तालों के भी दो भेद हैं—१. मार्ग-देशी ताल जिनमें लघु-गुरु आदि इकाई निश्चित और अपरिवर्तनीय है और २. वर्तमान ताल—जिनमें मात्रासंख्या व उनके विभाजन का नियम है, लघु-गुरु का अस्तित्व नहीं। मार्ग तालों में चच्चत्पुट नामक ताल का स्वरूप S S। S (गुरु, गुरु, लघु, प्लुत) है, इसलिए इसमें क्रियाएँ भी इसी माप से की जाएँगी, कुल मिला कर ८ मात्रा के रूप में नहीं। वर्तमान पद्धति में ताल में सभी मात्रा या इकाइयाँ समान होती हैं इसलिए कुल मात्रा संख्या और विभागों का ही नियम है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आधुनिक कविता में भी वर्णवृत्तों के स्थान पर मात्रिक छन्दों का ही प्रयोग ज्यादा हुआ है। जटिलताओं से सरलता की ओर जाने की प्रवृत्ति ने ही दो भिन्न क्षेत्रों में एक-से विकास को प्रोत्साहन दिया है।

जैसे गणों की समानता होते हुए भी लय-भेद के कारण छंद भिन्न हो जाते हैं उसी प्रकार ताल में भी भेद होता है। जैसे, तोटक और दुमिल सबैद्ये में सगण ही होते हैं लेकिन तोटक की लय द्रुत होने से वीरछन्द माना गया है और सबैद्या मध्य-विलम्बित होने के कारण अन्य रसों के उपयुक्त माना गया। इसी प्रकार तिलवाड़ा-तीनताल, झूमरा-दीपचन्दी, तीव्रा-रूपक, इन ताल युग्मों में क्रमशः १६, १४ और ७ मात्राएँ समान हैं लेकिन इन द्विकों के पहले-पहले तालों की गति स्थिर व प्रौढ़ है और दूसरे तालों की तरल तथा चंचल।



# पिंगल-शास्त्र (छन्द-शास्त्र) और ताल

किसी छन्द को ताल की मात्राओं में लाने के लिए पिंगल-शास्त्र की जानकारी अनिवार्य होती है। पिंगल-शास्त्र को समझने के बाद ही संगीतज्ञ छन्द को संगीत से जोड़ पाते हैं। खासकर तबले पर देवस्तुति बजाने में उस स्तुति (छन्द) की मात्राओं के अनुसार ही बोलों को लयबद्ध किया जाता है।

पिंगल-शास्त्र के अन्तर्गत अष्ट पिंगल को पूर्णरूपेण समझने के लिए व्याकरण में एक सूत्र दिया गया है, जो इस प्रकार है:-

‘य मा ता रा ज भान स ल गा’

यह गणों को सुविधापूर्वक याद रखने का सूत्र है। इसके अंतिम वर्ण (ल गा) छन्दशास्त्र में दशाक्षर कहलाते हैं। जिस गण का स्वरूप जानना हो, उस गण का प्रथम अक्षर सूत्र से ले लें, उसमें उस प्रथम अक्षर के आगे वाले दो अक्षर और जोड़ दें तो गण पूरा हो जाएगा; जैसे :-

(क) यगण का स्वरूप जानने के लिए सूत्र से ‘य मा ता’ (य+मा+ता)=य से लघु ‘ल’, मा से गुरु ‘S’+ता से गुरु ‘S’= १+२+२=५ मात्राएँ हुईं। अतः यह यगण का सूत्र हुआ।

(ख) तगण का स्वरूप जानने के लिए ‘ता रा ज’ ता से गुरु ‘S’, रा से गुरु ‘S’ एवं ज से लघु ‘ल’ अर्थात् २+२+१=५ मात्राएँ हुईं।

(य) भगण का स्वरूप जानने के लिए ‘भान स’ अर्थात् भा+न+स=२+१+१=४ मात्राएँ हुईं।

(घ) सगण का स्वरूप जानने के लिए ‘स ल गा’=१+१+२=४ मात्राएँ हुईं, इत्यादि।

**ज्ञातव्य :** गणों की रचना गुरु और लघु से होती है, इनके चिह्न ‘S’ और ‘ल’ हैं। जो दीर्घाकार होते हैं, उन्हें गुरु ‘S’ से तथा जो ह्रस्वाक्षर होते हैं, उन्हें लघु ‘ल’ से प्रकट करते हैं। संगीत-शास्त्र में हम गुरु को दो मात्राओं का तथा लघु को एक मात्रा का बोल मानेंगे।

गणों को प्रकट करने के लिए दूसरा सूत्र इस प्रकार है :-

मस्त्रि गुरुस्त्रि लघुश्च नकारो।

आदि गुरुः पुनरादि लघुषु।

जो गुरु मध्य गतो रत्न मध्यः

सोऽन्त गुरुः कथितोऽन्त लघुस्तः॥

आठों गणों की मात्राओं का पूर्ण विवरण इस प्रकार है :-

| गण  | वर्णन        | धुगुरु-चिह्न तबला के बोल |
|-----|--------------|--------------------------|
| मगण | तीनों गुरु   | S S S धा धा धा           |
| नगण | तीनों लघु    | । । । कतक                |
| भगण | आदि गुरु     | S । । धाकत               |
| यगण | आदि लघु      | । S S कघटे               |
| जगण | गुरु बीच में | । S । कतान               |
| रगण | लघु मध्य में | S । S तानधा              |
| सगण | अन्त गुरु    | । । S कतधा               |
| तगण | अन्त लघु     | S S । क्राघान            |

उपर्युक्त सूत्रों को भलीभाँति समझ लेने पर बात स्पष्ट हो जाती है एवं छंदों के विषय में कठिन से कठिनतर बात भी हृदयंगम हो जाती है।

छंदों को ताल में ढालने के लिए तालों की प्रकृति एवं प्रवृत्ति से अवगत होना संगीत के लिए खासकर ताल वाद्यों के



छात्रों के लिए अत्यन्त अनिवार्य हो जाता है। तालों की मुख्यतः तीन प्रकृतियाँ हैं—

**१. समपदी :** उन तालों को 'समपदी' कहा जाता है, जिनके सभी पद या विभाग अपने में समान मात्राओं का नियोजन रखते हैं; जैसे—तीनताल, कहरवा, एकताल, दादरा आदि। इन तालों के सभी विभागों में समान मात्राएँ हैं।

**२. विषमपदी :** 'विषमपदी' तालों के विभागों में मात्राओं का आयोजन एक समान न होकर अपितु दो अलग प्रकार से होता है; जैसे—झपताल, झूमरा, दीपचंदी आदि। झपताल में २-३ का खंड विभाजन है तो झूमरा, दीपचंदी में ३-४ का खंड विभाजन है।

**३. मिश्रपदी या उभयपदी :** 'मिश्रपदी' या 'उभयपदी' उन तालों को कहा जाता है, जिनके विभागों में मात्राओं का आयोजन कहीं भी एक समान नहीं होता, अपितु प्रत्येक विभाग में मात्राओं की संख्या पृथक्-पृथक् होती है, जैसे धमार ताल। इस ताल में चार विभाग हैं, किंतु चारों की मात्राएँ अलग-अलग हैं, इसका खंड-विभाजन ५-२-३-४ का है। कुछ छंद विशेषों का परिचय आगे दिया जा रहा है :—

## १. शिखरिणी

**लक्षण :** रसं रनेब्रेष्ठिन्ता यमन सम-  
लागः शिखरिणी ।

अर्थात् 'शिखरिणी' ऐसा छंद जिसके प्रत्येक चरण में यगण, मगण, नगण, भगण और एक लघु एवं एक गुरु हो तथा जिसकी यति छठे और ग्यारहवें अक्षर पर हो, उसे 'शिखरिणी' कहते हैं, इसके हर चरण में १६ वर्ण होते हैं। यह वर्णिक

छंद है। जैसे-मनोभावों के हैं, शतदल जहाँ शोभित सदा कला हंस श्रेणी, सरस रस त्रीड़ा निरत है। जहाँ हृतंत्री की, स्वर-लहरिका नित्य उठती पधारो है वाणी, बनकर वहाँ मानस प्रिया। अब इसी को लघु गुरु के अनुसार देखा जाए। आगे छांदस् नियमों में इसे परखा जाता है :—

प्रत्येक चरण में एक ही जैसा समझना चाहिए और आगे इसके आधार पर तबले की बोल संरचना देखें :—

| यगण        | मगण     | नगण   | सगण   |
|------------|---------|-------|-------|
| । S S      | S S S   | । । । | । । S |
| धिनाधा     | तीधाती  | धिकिट | तकधी  |
| त्रिधिन्ना | धाकिङनग | धगिन  | तकधा  |
| किनाता     | तीताती  | तकिट  | तकती  |
| त्रिधिन्ना | धाधिङनग | धगिन  | तकधा  |

| भगण     | लघु | गुरु |
|---------|-----|------|
| S । ।   | ।   | S    |
| ताधिकि  | ट   | धा   |
| धानकि   | ड   | नग   |
| त्रातकि | ट   | ता   |
| धानधि   | ड   | नग   |

इस बोल को वर्ण के आधार पर यदि बजाया जाय तो यह शिखर या १६ मात्रा के किसी भी ताल में बज सकता है या फिर मात्रा के अनुसार बजाने पर १६, ६, १४, ८ आदि में भी बजाया जा सकता है।

## २. भुजंगप्रयात

**भुजंग प्रयातं भवेद्यं रचतुभिः ।**

अर्थात्—चार-चार यगणों से युक्त चरणवाले छंद को ही 'भुजंगप्रयात' कहा जाता है। यह समपदी छंद है। इसके पदांत में विराम होता है और इसके प्रत्येक चरण में बारह वर्ण होते हैं, जैसे :—



अरी व्यर्थ है व्यंजनों की बड़ाई, ४ यगण  
हटा बाल तू क्यों इसे साथ लाई । ४ यगण  
वही पार है जो बिना झूख भावे, ४ यगण  
बता किंतु तू ही उसे कौन खावे । यगण

अब इसी छंद में बोल संरचना निम्न  
प्रकार से होगी :—

|         |        |         |         |
|---------|--------|---------|---------|
| 1 S S   | 1 S S  | 1 S S   | 1 S S   |
| धिनाधा  | रधाती  | कृधाती  | क्रधाती |
| क्रधाती | धिनाधा | रधाति   | क्रताती |
| किनाता  | रताती  | क्रताती | क्रताती |
| क्रधाती | धिनाधा | रधाधि   | क्रधाती |

यह बोल तीनताल, एकताल आदि तालों  
में बजाया जा सकता है ।

### ३. तोटक

मुनिना सस तोटक सौ कथितम् ।

यह वर्णिक छन्द है । इसके प्रत्येक  
चरण में ४-४ सगण होते हैं । यानी १२  
वर्णों वाले चरण से युक्त यह छन्द तोटक  
कहलाता है । इसके पदान्त में भी विराम  
होता है; जैसे :—

जय राम सदा सुख धाम हरे,  
रघुनायक सायक चाप धरे ।  
भव बारन बारन सिंह प्रभो,  
गुण सागर नागर नाथ विभो ।

इसी छन्द के आधार पर बोलों का  
उठान देखें :—

|       |       |       |       |
|-------|-------|-------|-------|
| 1 1 S | 1 1 S | 1 1 S | 1 1 S |
| धिटधा | धिटधा | कतधा  | कतधा  |
| कतधा  | नकृधा | नकृधा | नकृधा |
| तिटता | तिटता | कतधा  | कतधा  |
| कतधा  | नकृधा | नकृधा | नकृधा |

यह बोल भी तीनताल, एकताल आदि में  
वादनीय है ।

### ४. शालिनी

आदि ततो शालिनी द्वौ गुरु चेत् ।

अर्थात्—जिसके प्रत्येक चरण में  
भगण, नगण, तगण और दो गुरु हों उसे  
शालिनी छन्द कहते हैं, इसमें ४ एवं ६  
अक्षरों पर विभाग होता है । यह भी  
वर्णिक छन्द है; जैसे :—

कूद पड़ी आग में जो सती जी,  
आग्निक ज्वाला बनी हैं जहाँ में ।  
गुलर डाली पड़ी थी वहाँ ही,  
आहुति दी जा रही थी जहाँ में ।

शालिनी छन्द में बोलों की रचना :—

|          |             |           |         |
|----------|-------------|-----------|---------|
| S 1 1    | S S 1       | S S 1     | S S     |
| धातिट    | धातीग       | धातीग     | धि त्रा |
| क्रांतिट | त्रिधिन्न   | त्रिधिन्न | किट तक  |
| तातिट    | तातीग       | तातीग     | ति त्रा |
| धातिट    | त्रि, धिन्न | त्रिधिन्न | किट तक  |

यह छंद भी त्रिताल में बजाने योग्य है ।

### ५. भड़ोवा (भरौआ) छन्द

इसी छन्द को दादरा छन्द भी कहते  
हैं । यह शृंगार रस प्रधान छन्द होता है ।  
भड़ोवा ही इसका प्राचीन नाम है । यह  
पूर्ण मात्रिक वृत्त होता है । इसके प्रत्येक  
चरण में तीन-तीन मात्राएँ होती हैं ।  
तबले के जन्म के साथ ही यह दादरा  
कहा जाने लगा । मृदंग पर इसे प्राचीन  
भड़ोवा कहकर विद्वान लोग प्रस्तुत करते  
थे । कुछ लोग इस छन्द को 'अमृतध्वनि'  
कहकर भी पुकारते हैं ।

उदाहरणार्थ :—

निखिल जगत् ध्यान धरत मेरो घर आए हैं ।  
अब ताल में भड़ोवा में चलन देखें ।  
धा किट तक धुम किट तक  
धुम किट तक गदि न्ना ऽऽ



दादरा के दो भेद होते हैं। पहले भेद को खेमटा दादरा और दूसरे भेद को भड़ौवा दादरा कहा जाता है। खेमटा में चार चरण होते हैं और चारों समान होते हैं, किन्तु भड़ौवा दादरा में दो पद (चरण) होते हैं तथा दोनों चरण समान होते हैं। प्रत्येक चरण में छह लघु या तीन गुरु वर्ण होते हैं। इसका एक और प्राचीन उदाहरण देखें :—

तक धिन नक तक तिन नक  
नोट : भड़ौवा छंद की वास्तविकता के लिए पिगल शास्त्र में गाथा छंद देखें।

#### ६. मालिनी

ननमयय युतेयं मालिनी भोगि लोकैः।

अर्थात्—जिस छंद के प्रत्येक चरण में दो नगण, मगण, दो यगण हों, उसे मालिनी छंद कहते हैं। यह वर्णिक छंद के अन्तर्गत आता है।

उदाहरणार्थ :—

पल-पल जिसके मैं पंथ को देखती थी,  
निश दिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती।  
उस पर जिसके है सोहती मुक्तमाला,  
वह नवलिनी-सी नैनबाला कहाँ है।

अब इस पंक्ति में लघु, गुरु के अनुसार गणों का क्रम भी देखें :—

नगण नगण मगण यगण यगण  
।।। ।।। SSS ।SS ।SS  
घिड़न गतग धित्ता, धी गधिधीं गधित्रा  
घगघ गधग धाक्रांधा डधाता डगदिगन  
किड़न गतग तित्ता, ती गतींती गतित्रा  
तगत गतग तक्रांधा डधाधा डगदिगन  
यह बोल मतानुसार एकताल में बज

सकता है एवं त्रिताल आदि में भी गणित लयकारी के द्वारा बजाया जा सकता है।

#### ७. गायत्री

वंदिक से लेकर लौकिक तक गायत्री छंद का एकाधिकार है। यह २४ अक्षरों तथा कई चरणों वाला छंद होता है। जैसे—एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी, चतुष्पदी आदि।

उदाहरणार्थ :—

उड़त फिरत बन तट पर मधुकर,  
जल फुल मुसकाए।

मात्रिक छन्दों के लक्षण मतानुसार ही होते हैं, किन्तु वर्णिक में लघु, गुरु का विचार नहीं होता अपितु व्यंजन वर्णों की गिनती की जाती है। गायत्री वर्णित वृत्त है अतः चारताल के सभी बोल गायत्री के अन्तर्गत आ सकते हैं; जैसे :—

तक घिड़ नग तक घिड़ नग  
तक किड़ नग तक घिड़ नग  
यह त्रिपदी गायत्री है और गायत्री में भी सिर्फ २४ अक्षरों की ही प्रधानता रहती है। विभाग या चरण जितने हो जाएँ। छन्द में इसका वर्णों पर प्रभाव नहीं पड़ता।

#### ८. देव-घनाक्षरी

यह घनाक्षरी छन्द का एक प्रभेद है। सभी घनाक्षरी दण्डक के ही अन्तर्गत आ जाते हैं। देव-घनाक्षरी में ३२ से ज्यादा वर्ण होते हैं। प्रायः ३३ वर्ण के ही उदाहरण देखने में आते हैं। इसमें ८, ८, ८ और ८ वें पर यति होती है। अन्तिम वर्णों का लघु होना भी विहित है।



उदाहरणार्थ :—

झिल्ली झनकारे पिक, ८ वर्ण  
घातक पुकारे वन, ८ वर्ण  
मोरिन गुहारि उठे, ८ वर्ण  
जुगनु चमकि-चमकि, ६ वर्ण

कुल ३३ वर्ण

इस तरह देव-घनाक्षरी में तबले के बोल इस प्रकार होंगे :—

किड़न गतग ताऽति रकिट । ८ वर्ण  
तकत कतक तकति रकिट । ८ वर्ण  
किड़न गतग ताऽति रकिट । ८ वर्ण  
तकत कतक तकता तिरकि टतक । ६ वर्ण

कुल ३३ वर्ण

#### ६. रूपघनाक्षरी

इसमें ३२ वर्ण होते हैं। इसकी यति १६, १६ या ८, ८, ८, ८ पर होती है। तीनताल का कोई भी क्रायदा या बाँट आदि इसके उदाहरण हो सकते हैं। इसी छन्द का उदाहरण 'केशवदास' की एक पद्य-रचना है। देखिए :—

ब्रज की कुमारिका वे, ८ वर्ण  
लीनें चुक सारिका, ८ वर्ण  
बढ़ावे कोक कारिकानि, ८ वर्ण  
'केसव' सबे निबाहि, ८ वर्ण

कुल ३२ वर्ण

इसी में तबले के बोलों का गठन देखें—

घिड़ किट तक ताऽ, ८ वर्ण  
घिड़ किट गदि गन, ८ वर्ण  
तिर किट तक ताऽ, ८ वर्ण  
घिड़ किट गदि गन, ८ वर्ण

कुल ३२ वर्ण

धाऽते ऽटेऽ धाऽते ऽटेऽ ।  
धाऽगे ऽघिऽ नाऽगि ऽनऽ  
ताऽते ऽटेऽ ताऽते ऽटेऽ ।  
धाऽगे ऽघिऽ नाऽगि ऽनऽ

यह भी 'रूपघनाक्षरी' का ही एक उदाहरण है।

#### झूलना

यह दंडक के अन्तर्गत का एक छन्द-विशेष है। शृंगारिक होने के नाते एवं भाव-प्रवणता के कारण इसका नाम 'झूलना' पड़ गया। इस छंद को पढ़ने के समय ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कि यह झूला है; कभी इधर, कभी उधर। सम्भवतः इसी गुण-विशेष के कारण इसका नाम 'झूलना' पड़ गया। गीता, गीतिका, गीति, उद्गीति आदि छंद इसी झूलने के प्रकार कहे जाते हैं। यह हिन्दी-साहित्य का एक लब्धप्रतिष्ठ वृत्त है, किंतु इसमें गणों का क्रम पिगल मतानुसार ही जान पड़ता है। इसके प्रत्येक चरण में भगण, नगण, नगण, यगण, नगण, सगण, नगण, नगण, सगण और भगण होते हैं। यह एक पौराणिक औपचारिकता है, जबकि झूलना एवं इसके सभी भेद-प्रभेद मात्रिक छंद होते हैं, न कि वर्णिक। इसी लिए इसमें वर्णों या गणों का विचार नहीं करना चाहिए।



गोस्वामी तुलसीदास-रचित एक  
झूलना पद्य देखिए :—

पंखमुख छहमुख भृगुमुख्य भट असुर—सुर  
सर्व सरि समर समरतथ सूरौ ।

बाँकुरो वीर विरूपैत विरुदावली,  
बेद बंदी बबत पैज पूरौ ॥

जासु गुण गाय रघुनाथ कह जासु बल  
विपुल जल भरति जग जलधि भूरौ ।

बुबल दल दमन को कौन 'तुलसी' सहै  
पवन को पूत रजपूत रूरौ ॥

इस छन्द के प्रत्येक चरण में ३७-३७ मात्राएँ हैं। अतः १४८ मात्राओं के बोल-समूह अथवा ३७ मात्राओं से युक्त चरण-वाले सभी छन्द झूलना कहे जाएँगे। इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः २० एवं १७ मात्राओं पर यति होती है। अब इस मात्रिक छन्द में बोलों की गठनात्मकता इस प्रकार से होगी :—

धा ऽ ति र कि ट त क ति  
र कि ट धा ऽ ति र कि ट  
त क, धा ऽ ऽ ति र कि ट  
त क, धा ऽ ति र कि ट त क,  
३७ मात्राएँ ।

क ऽ धि र कि ट त क  
धि र कि ट क ऽ धि र कि  
ट त क, धि र धि र कि ट  
त क धे धि र धि र कि ट  
त क, ३७ मात्राएँ ।

ता ऽ ति र कि ट त क  
ति र कि ट ता ऽ ति र कि  
ट त क ता ऽ ति र कि ट त  
क ता ऽ ऽ ति र कि ट त क,  
३७ मात्राएँ ।

क ऽ धि र कि ट त क  
धि र कि ट क ऽ धि र कि  
ट त क धि र धि र कि ट  
त क धे धि र धि र कि ट  
त क, ३७ मात्राएँ ।

ये बोल तबले पर किसी भी ताल में लयकारी बदल कर बजाए जा सकते हैं ।

## १०. गीतांगी

यह झूलना के अन्तर्गत का एक छन्द-विशेष है। संस्कृत-साहित्य से यह हिन्दी-साहित्य में विरासत के रूप में आया है। हिन्दी-जगत् में इसका अत्यधिक प्रचलन है। यह मात्रिक छन्द है, इसलिए इसमें मात्राओं की गणना होती है, गणों या वर्णों की नहीं। संगीत-जगत् में इसे 'सात का छन्द' भी कहा जाता है। कविवर हरिवंश राय बच्चन-रचित एक गीतांगी छन्द का उदाहरण देखें :—

आ रही रवि की सवारी—१४ मात्रायें ।  
नव किरण का रथ सजा है—१४ मात्रायें ।  
कलि कुसुम से पथ सजा है—१४ मात्रायें ।  
बादलों से अनुचरों ने—१४ मात्रायें ।  
स्वर्ण की पोशाक धारी—१४ मात्रायें ।

गीतांगी छन्द में ही एक तीनताल का टुकड़ा द्रष्टव्य है :—

घाऽण घेढेढे घेन घेढेढे, १४ मात्रायें  
घेन घेढेढे कतेढे तागेतेढे, १४ ,,  
कतेढे तागेतेढे घाऽक घाऽतिऽ, १४ ,,  
घाऽक घाऽती घाऽक घाऽतिऽ, १४ ,,  
घाऽऽ तागेतेढे घाऽक घाऽतीऽ, १४ ,,  
घाऽक घाऽतीऽ घाऽक घाऽतीऽ, १४ ,,  
घाऽऽ तागेतेढे घाऽक घाऽतीऽ, १४ ,,  
घाऽक घाऽतीऽ घाऽक घाऽतीऽ, १४ ,,  
घा (सम) ।

इसी तरह अन्य बोल भी बनाए जा सकते हैं ।



इस प्रकार काव्य और संगीत तथा छन्द और ताल का अभिन्न सम्बन्ध है। छन्द के स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूप हैं। वह किसी भी सार्थक अथवा निरर्थक ध्वनि रचना में रह सकता है। वास्तव में छन्द ध्वनि में अंतर्निहित शक्ति है जिसका स्वरूप आनन्द है और जो अपनी चेतना से संसार के क्रिया-कलापों का आधार बनता है। विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति छन्द शक्ति के कारण ही सम्भव होती है। उर्दू में छन्द को बहर कहा जाता है। छन्द

की शक्ति के कारण ही कोई भी नाम या रूप स्मृति में सुरक्षित रहता है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में केवल सात छन्दों का प्रयोग हुआ। १. गायत्री, २. उष्णिक्, ३. अनुष्टुप, ४. बृहती, ५. पंक्ति, ६. त्रिष्टुप् और ७. जगती। इन सात से ही अनेक लौकिक छन्दों का निर्माण हुआ। पिंगलाचार्य ने अपने महाग्रन्थ में एक करोड़ सड़सठ लाख सतहत्तर सहस्र दो सौ सोलह प्रकार के वर्णवृत्तों का उल्लेख किया है।

□ श्री रामनरेश राय द्वारा प्रस्तुत

□



## रागों का रस एवं भावों से सम्बन्ध

शास्त्र में उस स्वर सन्दर्भ को राग का नाम दिया गया है जो मधुर स्वर और वर्ण से विभूषित होकर हृदय का रंजन करे। किसी एक स्वर से तब तक भाव या रस की उत्पत्ति नहीं होती जब तक कि उसमें अन्य स्वरों का सहयोग न हो। जब अनेक स्वर मिलकर किसी धुन में बँध जाते हैं तो वह धुन रस का संचार करने में समर्थ होती है। इसी धुन को 'राग' कहते हैं।

रागों के स्थूल स्वर स्वरूपों के साथ-साथ सूक्ष्म भाव रूपों की भी कल्पना की गई है। मनुष्य के हृदय में स्थित भाव जब किसी राग-धुन से प्रभावित होकर जागते हैं तब राग से तत्सम्बन्धी रस का संचार होता है। रागों को अनेक श्रेणियों में बाँटा गया है, जैसे—दिन और रात्रि के अनुसार निश्चित समय के राग, मनो-भावों के अनुसार निश्चित स्वरों के राग, ऋतुओं के अनुसार तारतम्य स्थापित करने वाले राग। नीचे की तालिका से यह बात और स्पष्ट हो जाएगी कि भारतीय रागों को किस प्रकार वर्गीकृत किया गया है।

सूर्योदय के पूर्व—विभास एवं ललित इत्यादि।

सूर्योदय के बाद—भैरव और उसके प्रकार।

पूर्वाह्न में—बिलावल और उसके प्रकार।

मध्याह्न में—सारंग और उसके प्रकार।

अपराह्न में—भीमपलासी, पटदीप इत्यादि।

सन्ध्या काल में—कल्याण और उसके प्रकार।

रात्रि के पूर्व—पूरिया और मारवा इत्यादि।

रात्रि के बढ़ने पर—बिहाग और उसके प्रकार।

मध्य रात्रि को—मालकौंस, बागेश्री और दरबारी इत्यादि।

उत्तर रात्रि को—वसन्त, परज और सोहनी इत्यादि।

इसी प्रकार वर्षा में मल्हार और उसके प्रकार; वसन्त में वसन्त या वहार का प्रचलन है। दरबारी, अड़ाना तथा आसावरी रागों को सिखाते समय उनकी समान स्वरता के कारण उनका पृथक्-पृथक् व्यक्तित्व समझाया जाता है। दरबारी राग का प्रौढ़ और धीर-गम्भीर व्यक्तित्व, अड़ाना का तीखा उद्दामतरल व्यक्तित्व तथा आसावरी का कोमल-कान्त-कमनीय व्यक्तित्व सदैव दृष्टिगोचर होता है।



राग-रागिनियों के रूप में पुरुष और स्त्री रूपों की कल्पना भी की गई है। कुशल कलाकारों द्वारा अपने-अपने घरानों से उपलब्ध राग-रूपों को जब प्रस्तुत किया जाता है तो रागों से तत्सम्बन्धो रस एवं भाव की सृष्टि होती है जो कुशल कलाकार की क्षमता पर निर्भर करता है।

### राग-रागिनियों के चित्र और राग-ध्यान परम्परा

सोलहवीं शताब्दी में जब कवियों ने नायक-नायिकाओं की कल्पना पर आधारित कविताएँ कीं तो चित्रकारों ने उन्हें अपने चित्रों में अंकित किया और संगीतकारों ने अपने संगीत द्वारा उनकी अभिव्यक्ति करनी चाही। संगीत के नायक-नायिकाओं का राग-रागिनियों के रूप में अवतरण हो गया। कल्पना के आधार पर ही राग के भावानुसार कवियों ने कविताएँ तैयार कीं और श्लोकों की रचना भी की। उन्हीं को राग-ध्यान या राग-रागिनियों का स्वरूप बताया गया। राग-ध्यान माला या राग-रागिनी चित्रावली नाम से अनेक पुस्तकों का निर्माण हुआ। अलग-अलग कलाकारों को रागों द्वारा जैसी अनुभूति हुई, उसी के अनुसार उन्होंने राग-ध्यान तैयार किए। इसलिए एक ही राग के अनेक ध्यान रूप मिलते हैं जिनमें कोई समानता नहीं। राग-ध्यान-परम्परा सबसे पहले मतंग की 'बृहद्देशी' में दिखाई देती है।

राग-रागिनियों के ध्यान की तरह ही राग-रागिनी का पुरुषवाचक और स्त्रीवाचक निरूपण भी वास्तव में कोई अर्थ नहीं रखता। यह भी वर्गीकरण प्रक्रिया को सरल बनाने की दृष्टि से काल्पनिक उपज मात्र है। उत्तर-प्रदेश में जिसे राग कहा जाता है उसी को हरियाणा और राजस्थान में रागिणी कहा जाता है। जब चम्पा और चमेली रोट और रोट्टी या बाजरा और बाजरी नर और नारी नहीं हैं तो किसी धुन में नर और नारी की कल्पना कैसे की जा सकती है। फिर भी प्राचीन काल में जो मान्यता उस युग की स्थिति के अनुरूप थी, आज विद्यमान नहीं है।

राग-रागिनी वर्गीकरण में मुख्य रूप से चार मत अधिक प्रचलित हैं; यथा-शिवमत, कृष्णमत, भरतमत और हनुमन्तमत। शिवमत और कृष्णमत में ६ राग और ३६ रागिनियोंवाला वर्गीकरण प्राप्त होता है और भरतमत तथा हनुमन्तमत में ६ राग एवं ३० रागिनियोंवाला वर्गीकरण प्राप्त होता है जिनके आधार पर रागों को पुरुष (नायक) के रूप में तथा रागिनियों को स्त्री (नायिका) के रूप में चित्रित किया गया है। चित्रकला की काँगड़ा, राजपूत, मुगल और दक्षिणी शैलियों में शैलीगत विविधता के साथ बड़ आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है जो भारत तथा विदेशों के अनेक संग्रहालयों में आज भी उपलब्ध हैं तथा इनमें से 'रागमाला पेन्टिंग्स' के नाम से प्रकाशित भी हो चुकी हैं।



अभी वैज्ञानिक कसौटी पर रागों के ध्यान अथवा उनके ध्यान के अनुसार गायन के परिणाम को नहीं जाँचा गया है। इसीलिए सैद्धान्तिक रूप से राग-रागिनी वर्गीकरण अथवा संगीत के भावपक्ष और कलापक्ष पर विचार करते समय हम ठीक-ठीक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते। यह तभी सम्भव है जब कि भारतीय संगीत में एकरूपता लाई जाए और उसके बिखरे हुए सिद्धान्तों को वैज्ञानिक ढंग से समायोजित किया जाए।

अधिकांशतः दरबारी को प्रौढ़, गंभीर तथा राजसी व्यक्तित्व वाला, जौनपुरी को कोमल करुणायुक्त कामिनी के रूप में, तोड़ी को प्रगल्भा नायिका की वेदना की मूर्ति के रूप में, मारवा को अपने में वेदना-पान करनेवाले पुरुष के रूप में, माल-कौंस को शान्त-गम्भीर-सौम्य स्वरूप में, हिंडोल को आवेशयुक्त-उग्र-उद्धत सुभट-समान, खमाज को मुग्धा-कामातुर-जोवन मदमाती नखरीली नारि(संयोग-शृंगार) या विरहिणी-वियोगिनी (वियोग शृंगार) के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

यहाँ कुछ राग-ध्यान उदाहरण के लिए दिए जा रहे हैं—

१. पान की बीरी करै कर एक धरै कर एक सरोज सुभायो ।  
ताल ददै कर वेनु बजावत, बोलत है मृदु बोल सुहायो ॥  
शीश किरिट लसै पट पीत, ललाट विराजत टीको बनायो ।  
चंदन चारु शरीर है (नारद ?) 'पंचम' राग को रूप जनायो ॥
२. कृपाणपाणिस्तिलकं ललाटे सुवर्णवेशः समरे प्रविष्टः ।  
प्रचण्डमूर्तिः किल रक्तवर्णः 'कल्याणनाटः' कथितो मुनीन्द्रे ॥
३. तुषारकुंदोज्ज्वलदेह्यष्टिः काश्मीरकर्पूरविलिप्तदेहा ।  
विनोदयंतीहरिणैर्वनांते वीणाधरा राजति 'टोड़िकेयम्' ॥
४. 'मालकोश' नीले बसन, श्वेत छरी लिए हाथ ।  
मोतियन की माला गरे, सकल सखी हैं साथ ॥
५. एक नारि द्वै पुरुष संग, कवल सीस तन क्रांत ।  
रंग गौर करनन पुहप, 'श्रीराग' यह भाँत ॥
६. तन सीतल कटि छीन अति, कवल करन मध स्याम ।  
अंग सँवारत पीत रंग, 'मालसिरी' कलवाम ॥
७. शिव को स्वरूप शशि भालु सुरसरी जटा से ।  
लसे बसन रुण्डमाल नैन तीन हैं ॥  
कँवल डरग मृग चरम बिछौना पर ।  
सोहत सहज सिद्धि सो महा प्रवीन हैं ॥  
'ध नि स रि ग म प' सुर ओडव की जाति जानि ।  
प्रात ही सरद रति गावत गवीन है ॥  
धैवत है सुर ग्रह सिव तें प्रगट होत ।  
नाम याको 'भैरव' सु महागुन लीन है ॥

'राग विवेक'

'संगीत दर्पण'



## राग और ऋतुएँ

संगीत के समय-सिद्धान्त की तरह राग और ऋतुओं का सम्बन्ध भी प्राचीन संगीत में मिलता है जिसे ऋतु-सिद्धान्त कहा जा सकता है। भारत के सभी प्रदेशों में ऋतुओं के अनुसार लोकमय गीतों का प्रचलन रहा है। अनेक लोकगीत और लोकधुनें शास्त्रीय संगीत में ग्रहण की गईं, इसीलिए शास्त्रीय संगीत में अनेक रागों का ऋतुओं के अनुसार गाने-बजाने का सूत्रपात हुआ। वास्तव में गीत के शब्द, उनसे उत्पन्न भाव, समाज की परिस्थितियाँ और समय, एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। पुत्र जन्मोत्सव पर विरह-व्यथा के गीत नहीं गाए जाते, किसी के निधन पर बधाई के गीत नहीं गाए जाते। इसी प्रकार लूँ से तपती दुपहरी में अथवा माघ-पूष की ठंड में मयूर-नृत्य की कल्पना नहीं होती और न ठण्ड के दिनों में वर्षा की फुहारें अच्छी लगती हैं। मल्हार के गीत तो वर्षा में ही सुहावने लगते हैं और वसन्त एवं बहार रागों की बंदिशें होली के अवसर पर उपयुक्त लगती हैं। वेद-कालीन संगीत में साम की उपासना ऋतुओं के अनुसार बताई गई है।

राग गायन के अच्छी प्रकार से प्रचार में आने के बाद संगीतकारों ने रागों के साथ भावानुसार गायन और ऋतुओं से सम्बन्ध स्थापित किया था। जब शास्त्रीय संगीत अलंकारों के बोझ से दबने लगा तो राग-रागिनी वर्गीकरण, समय-सिद्धान्त एवं रस और भाव, सभी की हत्या हो गई। परिणाम यह हुआ कि स्थिति या समय कुछ भी हो, गायक या वादक तान लगाने से बाज नहीं आते। 'दरवारी' की गंभीरता हो या 'ललित' का लालित्य, संगीतकार गायन के पद को विकृत करके तान-बाजी पर उतर आते हैं जिसके कारण राग, ताल, पद, भाषा, भाव, रस, समय, इत्यादि सबकी हत्या हो जाती है और वह संगीत लोक-मानस की अरुचि का कारण बनता है।

शाङ्गदेव ने अपने ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर' में प्रत्येक वर्ग के रागों का सम्बन्ध ऋतुओं से स्थापित किया है; जैसे—गौड़पंचम ग्रीष्म ऋतु में, भिन्न-षड्ज हेमन्त ऋतु में, हिंदोल वसन्त ऋतु में और रगन्ती शरद ऋतु में। इसी प्रकार दिन तथा

संगीत-विशारद



रात्रि में गाए-बजाए जानेवाले राग एवं भिन्न-भिन्न ऋतुओं में गाए जानेवाले रागों का उल्लेख भी शाङ्गदेव ने किया है। प्राचीन ग्रंथों में मांगलिक अवसर पर, युद्ध के समय, भक्तों के समक्ष तथा नारियों, विद्वानों एवं प्रौढ़ व्यक्तियों के समक्ष गाए जानेवाले गीतों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है, परन्तु नरेशों की आज्ञा और रंगभूमि के प्रचार ने उन सिद्धान्तों को पूरी तरह ताक पर उठा कर रख दिया। आज संगीत के अत्यधिक प्रचार ने किसी भी समय बिना विचार किए, किसी भी प्रकार के गीत का रिकार्ड बजा कर समय-सिद्धान्त, राग-रागिनी वर्गीकरण, इत्यादि की मान्यता या भावना को बिल्कुल ही निरस्त कर दिया है।

स्व० श्री भातखंडे जी ने रागों के समय-सिद्धान्त को एक व्यवस्था देकर उसके महत्त्व पर गम्भीरता से प्रकाश डाला है और आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में रागों का गायन समय, दिन और रात्रि के चौबीस घंटों के दो भाग करके बाँट दिया है। पहला भाग दिन के बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक और दूसरा भाग रात्रि के बारह बजे से दिन के बारह बजे तक स्वीकार करके उन्हें पूर्व-राग तथा उत्तर-राग के नाम से बाँटा है। जिन रागों के वादी स्वर, सप्तक के पूर्वांग में होते हैं उन्हें दिन के पूर्व भाग में और जिन रागों के वादी स्वर, सप्तक के उत्तरांग में होते हैं उन्हें दिन के उत्तर भाग में गाया जाता है। स्वर और समय की दृष्टि से हिन्दुस्तानी रागों के तीन वर्ग मान कर कोमल और तीव्र (विकृत) स्वरों के अनुसार उनका विभाजन किया गया है। पहले वर्ग में कोमल ऋषभ और धैवत-वाले राग संधिप्रकाश रागों की श्रेणी में आते हैं, जिनके साथ तीव्र गांधार होता है। संधिप्रकाश राग उन्हें कहते हैं जो दिन और रात्रि के संधिकाल के समय गाए-बजाए जाते हैं; जैसे-भैरव, मारवा, पूर्वी और कालिगड़ा, इत्यादि। इन संधिप्रकाश रागों के भी दो भाग माने गए हैं-१. प्रातःकालीन संधिप्रकाश राग और २. सायंकालीन संधिप्रकाश राग। इनकी चर्चा इस पुस्तक में अन्यत्र की जा चुकी है।

आधुनिक संगीत में राग-रागिनी और राग ऋतु-सिद्धान्त का विशेष महत्त्व नहीं रहा है परन्तु फ़िल्म, दूरदर्शन एवं सामाजिक उत्सवों के कारण भावानुकूल संगीत के प्रति लोगों में आस्था जगी है। शास्त्रीय संगीत के शिक्षित कलाकारों का ध्यान भी अब इस ओर जा रहा है, इसलिए वह भी नए सिरे से लोकप्रिय होता जा रहा है, जिसे शास्त्रीय संगीत की वापसी कहा जा सकता है।

□ □ □



## संगीत और रस

मानव-जाति के अन्तःकरण में निवास करनेवाली विशिष्ट भावनाओं के मतोगुण प्रधान परमोत्कर्ष को ही शास्त्रज्ञों ने 'रस' कहा है; अथवा जब कोई स्वाभाविक वस्तु कुछ परिवर्तित हो कर मन के अन्दर एक असाधारण नवीनता उत्पन्न कर देती है, तब उसे 'रस' कहते हैं।

साहित्य में नव-रस माने गए हैं; यथा :—

शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।

बीभत्साद्भुत इत्यष्टौ रस शान्तस्तथा मतः ॥

१. शृंगार, २. हास्य, ३. करुण, ४. रौद्र, ५. वीर, ६. भयानक, ७. बीभत्स, ८. अद्भुत, ९. शान्त।

महर्षि भरत के अनुसार प्रधान रस चार हैं—शृंगार, रौद्र, वीर एवं बीभत्स। इन्हीं से क्रमशः हास्य, करुण, अद्भुत एवं भयानक रसों की उत्पत्ति होती है। शृंगार की अनुकृति हास्य, रौद्र का कर्म करुण, वीर का कर्म अद्भुत एवं बीभत्स का दर्शन भयानक रस है। इस प्रकार नाट्य में आठ रसों का आविर्भाव होता है एवं विभावों, अनुभावों और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

संगीत में भी केवल शृंगार, वीर, करुण और शान्त, इन चार रसों में उपर्युक्त नव रसों का समावेश माना गया है। हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने सप्त-स्वरों के रस इस प्रकार बताए हैं :—

सरो वीरेद्भुते रौद्रे धा बीभत्से भयानके ।

कायौ गनी तु करुणाहास्यशृंगारयोर्मणौ ॥

'नाट्यशास्त्र'

अर्थात्—

सा, रे—वीर, रौद्र तथा अद्भुत रसों के पोषक हैं।

घ—बीभत्स तथा भयानक रसों के पोषक हैं।

ग, नि—करुण रस के पोषक हैं।

म, प—हास्य व शृंगार रसों के पोषक हैं।

संगीत-विशारद



पंडित भातखंडे जी ने 'हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति' में स्वरों के अनुसार रागों के जो तीन वर्ग नियत किए हैं, उन तीनों वर्गों में पंडित जी ने रसों का समावेश इस प्रकार करने का सुझाव दिया है, यथा :—

रे-ध कोमलवाले संधिप्रकाश रागों में—शांत व करुणरस ।

रे-ध तीव्रवाले रागों में—शृंगाररस ।

ग-नि कोमलवाले रागों में—वीररस ।

यद्यपि प्राचीन ग्रंथकारों ने किसी एक स्वर से ही एक रस की सृष्टि बताई है, किंतु वास्तव में देखा जाए, तो केवल एक ही स्वर से किसी विशेष रस की उत्पत्ति होना सम्भव नहीं ।

उदाहरणार्थ—षड्ज स्वर को उन्होंने वीर-रस-प्रधान बताया है तथा पंचम को शृंगार-रस का स्वर माना है और हमारे प्रायः सभी रागों में षड्ज व पंचम स्वर अवश्य मिलते हैं, तो इसका अर्थ हुआ कि सभी राग वीर-रस या शृंगार-रस-प्रधान होने चाहिए थे; किंतु वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। अनेक रागों से विभिन्न रसों की सृष्टि होती है। निष्कर्ष यही निकलता है कि एक स्वर अपने अन्य सहयोगी स्वरों के साथ मिल कर ही रसोत्पत्ति करने में सफल होता है। कोई वादी स्वर अपने संवादी, अनुवादी या विवादी स्वर के सम्पर्क से ही किसी रस की सृष्टि करता है। शास्त्रीय स्वर-योजना के अनुसार निश्चित ऋतु में योग्य वातावरण को देखकर श्रोताओं की मनोभावना को समझते हुए कोई राग जब किसी योग्य गायक द्वारा गाया जाए तथा उसके गीत का काव्य भी उस रस के अनुकूल हो, तो रस की उत्पत्ति अवश्य होगी, इसमें कोई संदेह नहीं। इसके विपरीत यदि कोई गायक बीभत्स-रस की स्वरावली में शांत-रस का गीत गाने लगे, तो रसोत्पत्ति कदापि नहीं हो सकती। जहाँ केवल स्वरों द्वारा ही रस की सृष्टि करनी है, वहाँ गीत को छोड़ कर केवल स्वर-लहरी द्वारा भी रसोत्पत्ति की जा सकती है। स्वर और शब्दों से ही गीत का निर्माण होता है और जब गीत में स्वर ही न रहेंगे, तो वह शब्दों की एक नीरस रचना-मात्र रह जाएगी, जो बिना स्वरों की सहायता के आवश्यक रस की सृष्टि करने में असफल रहेगी। किसी एक ही शब्द द्वारा स्वरों की सहायता से विभिन्न रसों को उत्पन्न किया जा सकता है। जैसे—'आओ', यह शब्द लीजिए। इसे जब करुण स्वरों में कहा जाएगा, तो ऐसा मालूम होगा, मानो कोई सहायता के लिए पुकार रहा है, इस प्रकार करुण-रस की सृष्टि होगी। और, जब इसी शब्द को शृंगारिक स्वरों में कहा जाएगा, तो ऐसा प्रतीत होगा मानो कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका को बुला रहा है; यहाँ शृंगार-रस की सृष्टि होगी। कठोरता के स्वरों में इसी शब्द को कहा जाए, मानो लड़ने के लिए दुश्मन को चुनौती दी जा रही है, तब इसी 'आओ' से वीर-रस की सृष्टि होगी।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह भली-भाँति प्रकट है कि एक ही शब्द से विभिन्न रसों की सृष्टि केवल स्वर-भेद के कारण हुई, अतः रसोत्पत्ति का मूल कारण स्वर ही



माना जाएगा। काव्य द्वारा भी रुदन, क्रोध, भय, आश्चर्य तथा हास्य इत्यादि भावों की सृष्टि तभी होती है, जब कि उस कविता का उच्चारण भावानुसार हो और भावानुसार उच्चारण में स्वरों का कुछ-न-कुछ अस्तित्व अवश्य ही होगा। वास्तव में देखा जाए तो प्रत्येक उच्चारण का सम्बन्ध नाद, स्वर और लय से है।

‘संगीत-रत्नाकर’ के स्वरगताध्याय के तीसरे प्रकरण में आचार्य शाङ्गदेव ने कहा है—

आत्मा विवक्षमाणो ऽयं मनः प्रेरयते मनः ।  
 देहस्थं वह्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।  
 ब्रह्मग्रन्थिस्थितः सो ऽथ क्रमादूर्ध्वपथे चरन् ।  
 नाभिहृत्कठमूर्धास्येष्वाक्षिर्भाविष्यति ध्वनिम् ॥

अर्थात्—जब आत्मा को बोलने की इच्छा होती है, तब वह मन को प्रेरित करता है; मन देहस्थ अग्नि को प्रेरणा देता है; अग्नि वायु का चलन करती है; तब ब्रह्मग्रन्थिस्थित वायु क्रमशः ऊपर चढ़ती हुई नाभि, हृदय, कंठ, मूर्धा और मुख इन स्थानों से पाँच प्रकार के नाद (ध्वनि) उत्पन्न करती है। इन नादों का सम्बन्ध स्वर से है और स्वरों की सहायता से भाव तथा रस की उत्पत्ति होती है।

जिस प्रकार स्वरों द्वारा रस की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार नृत्य तथा ताल के द्वारा भी हमें विभिन्न प्रकार के रस प्राप्त होते हैं। एक सफल नर्तक अपने नृत्य में विभिन्न प्रकार के भावों द्वारा रसोत्पादन करने में सफल होता है; जैसे—तांडव नृत्य से वीर तथा रौद्र-रस, लास्य नृत्य से शृंगार-रस तथा नृत्य की विभिन्न भाव-भंगिमाओं द्वारा शृंगार, हास्य, करुण और शांत रसों की उत्पत्ति सफलतापूर्वक की जा सकती है। यहाँ पर न स्वर है, न शब्द, फिर भी रस-सृष्टि होती है। यही नृत्य या अभिनय-कला की विशेषता है।

इस प्रकार गायन, वादन और नर्तन में स्वर, ताल और लय के संयोग से समस्त रसों की सृष्टि सम्भव है।

□ □ □



## ताल और रस

शब्द, स्वर, लय और ताल मिल कर संगीत में रस की उत्पत्ति करते हैं। साहित्य में छन्द की विविधता और संगीत में ताल एवं लय के सामंजस्य द्वारा विभिन्न रसों की सृष्टि की जाती है।

तालविहीन संगीत नासिकाविहीन मुख की तरह बताया गया है। ताल से अनुशासित होकर ही संगीत विभिन्न भाव और रसों को उत्पन्न कर पाता है। ताल की गतियाँ स्वरों की सहायता के बिना भी रस-निष्पत्ति में सक्षम होती हैं।

साहित्य में नौ रसों का उल्लेख किया गया है—१. शृंगार, २. करुण, ३. वीर, ४. भयानक, ५. हास्य, ६. रौद्र, ७. बीभत्स, ८. अद्भुत तथा ९. शान्त। नाट्य में शान्त को अलग न मानते हुए आठ रसों का प्रतिपादन किया गया है। संगीत में शृंगार, वीर, करुण और शान्त इन चार रसों में अन्य समस्त रसों का समावेश मानते हुए ताल और लय को भी रसों से सम्बन्धित माना गया है, यथा—

‘लया हास्यशृंगारयोर्मध्यमाः । बीभत्सभयानकयोर्विलम्बितः ॥ वीररौद्राद्भुतेषु च द्रुत ।’  
अर्थात् मध्यलय—हास्य एवं शृंगार रसों की पोषक है, विलम्बित लय—बीभत्स और भयानक रसों की पोषक है तथा द्रुतलय—वीर, रौद्र, एवं अद्भुत रसों की पोषक है।

किसी भी कला के लिए यह जरूरी है कि उससे मानव-हृदय में स्थित स्थायी भाव जगें और उन भावों से तत्सम्बन्धी रस की उत्पत्ति होती हो; तभी मनुष्य आनन्द की अनुभूति कर सकता है। इसी को सौन्दर्य-बोध कहते हैं।

महर्षि भरत ने ‘नाट्यशास्त्र’ के वाद्याध्याय में कहा है—

“ऐसा कोई वाद्य नहीं जिसका उपयोग नाट्य में न होता हो। अतः किसी भी वाद्य का विधिवत् प्रयोग विचारपूर्वक रस तथा भावों को देखते हुए करना चाहिए।”



‘नाट्यशास्त्र’ में किसी रूपक के विभिन्न पात्रों और उनकी विविध अवस्थाओं में प्रयुक्त होनेवाले तालवाद्यों द्वारा अनुकूल रस की सृष्टि के लिए कुछ निर्देश इस प्रकार दिए गए हैं:—

“अब विविध अवस्थाओं में किया जानेवाला वाद्यवादन बतलाता हूँ। पात्रों की शीघ्रता से चलने की दशा में वाद्यवादन में ‘वं वं घे घे टां’ रखा जाए और इसे अँगुलियों के विषम प्रहारों से प्रस्तुत किया या निकाला जाता है, जिसे हमने अँगुलियों के द्वारा वादन में की जानेवाली गति के प्रकरण में बतला दिया है। यहाँ पुनः मैं अन्य दशाओं में होनेवाली वाद्यवादन से सम्बद्ध आवश्यक विधियों का वर्णन करूँगा।

(सम्बद्ध पात्रों के) गतिप्रचार और अन्य व्यक्तिगत हलचलों में नाट्यवेत्ता जन को लय और गति के विधान आदि सभी बातों पर विचार कर तीन या चार कलाओं के ताल प्रमाण से वाद्यवादन प्रस्तुत करना चाहिए।

ध्रुवाओं के बीच में होनेवाले वाद्यवादन में एक या दो कलाओं के विराम नहीं होते, इसलिए वाद्यवादन के साथ गतिप्रचार को रखा जाए, गीत के साथ नहीं।

पात्रों की शीघ्र गतियों में ताल के पात्र वे ही रखे जाएँ जिन्हें गतिप्रचार के प्रकरण में बतलाया था। इस समय वाद्यवादन में निकाले जानेवाले प्रहार ये हैं—  
ध्रं ध्रं घें घें।

नौका के (पानी में) चलने, रथ या विमान की गति, पक्षी, जलचर और आकाशचारी पात्र की गति के समय किया जानेवाला वाद्यवादन अँगुलियों के (मृदंग आदि वाद्यों के) मुख पर दौड़ाते हुए या चतुष्क में दोनों हाथों से क्रमशः प्रहार करते हुए रखा जाता है।

दुःख व्याधि से पीड़ित होने, शाप, प्रियजन के वियोग होने, सम्पत्ति नाश, वध, कारागार प्राप्ति (बन्धन) होने, व्रत होने, नियम या उपवास करने आदि की दशा में उत्थापन में किया जानेवाला अवनद्ध वाद्यों का वादन पूर्ववर्णित आलपति मार्ग के अनुसार करना चाहिए। दैत्य, दानव, यक्ष, राक्षस, ग्रह जैसे पात्रों की चलने की दशा में वाद्य-वादन में जिन करणों का समावेश किया जाता है, उनका स्वरूप यह है ‘धृङ् धृङ् खद’ से संयुक्त करते हुए ‘घटुतु तं तं ते तो द्दाम’ को रखना। लंगड़े, लूले, बौने या लुंज पात्र के चलने की स्थिति में ‘घेतां कटकां’ जैसे करणों से वाद्यवादन रखा जाता है। यति, मुनि, पशुपत तथा शाक्य (बौद्धभिक्षु) जैसे पात्रों के चलने की दशा में रहनेवाले वाद्यवादन में, ‘दो खो द्वित्विखि दुगुवो वलन्दो यति कि तिकि’ जैसे करण रखे जाते हैं। विदूषक, निर्मुण्ड उपस्थापक, वर्षवर (नपुंसक) आदि पात्रों के चलने की दशा में होने वाले वाद्यवादन में ‘घें घें स्तानों णों दोणं णास’ का प्रयोग करना चाहिए। वृद्धश्रोत्रिय, कंचुकी और स्थूलकाय पात्रों के चलते समय वाद्यवादन में ‘ध्रां ध्रां ध्रां ध्रां धिङ् द्रोणां खो खों णा’ का प्रयोग करना चाहिए।

संगीत-विचार



हाथी, घोड़े, ऊँट, गधे, रथ, विमान तथा किसी भी यान के चलने की दशा में वंकिटि से युक्त वाद्यवादन रखा जाए। उत्तम, मध्यम तथा अधम पुरुषों की गति के समय उनकी स्थिति के अनुरूप रस, भाव आदि पर विचार कर उनकी गति के अनुसार वाद्यवादन की योजना करनी चाहिए। इस प्रकार पुरुष पात्रों की दशा में होनेवाला वाद्यवादन (विस्तार से) बतलाया गया।”

स्त्रीपात्रों की दशा में होनेवाले वाद्य-वादन का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—“उत्तम तथा दिव्य स्त्रीपात्र की दशा में होनेवाले वादन में प्रायः वंगति किपि घमेत प्रथि घे रखा जाता है। महारानी होने पर इसमें किथि किथि मथि दो दो खु खु—का प्रायः प्रयोग रखा जाता है। ब्राह्मण-स्त्री होने पर चं किति घटभट थि घे रहता है। मध्यम स्त्रीपात्रों के अन्तर्गत वेश्या, शिल्पक स्त्री तथा अभिनेत्री की दशा में ध खु खु धिकिट मत्थि टोणां किण धो से युक्त वाद्यवादन रखा जाता है। अधम स्त्रीपात्रों की दशा में वादन मरथिकुले कुडखु खि खि को अधिकांश रखा जाता है। इस प्रकार स्त्रीपात्रों की दशा में होनेवाले वाद्य-वादन के विषय में संक्षेप में बतलाया गया।

इनकी विशेष दशा या अन्य अवस्था प्राप्त करने की दशा में पुरुष की अवस्था में होनेवाले वाद्य-वादन को रखा जाता है और इनसे सामान्य रूप में भय, क्लेश, शोक, क्रोध आदि विभावों की उत्पत्ति होती है। अतः ऐसी स्थिति में वहाँ भी रस और भावों से संबद्ध उचित मार्ग में वाद्यवादन का प्रयोग करना चाहिए।”

रस और भाव की उत्पत्ति के लिए स्वर तो समर्थ होते ही हैं, परन्तु लय और ताल के विविध रूप भी कम सक्षम नहीं होते। तबला या अन्य किसी ताल-वाद्य से जब स्वरों का अनुगमन किया जाता है तो भावोद्रेक शीघ्रता से होता है। अतिविलंबित, मध्य, द्रुत और अतिद्रुत गतियों के द्वारा ताल के विभिन्न रूप अलग-अलग रसों को उत्पन्न करते हैं। विविध लय-स्वरूपों का जन्म मानव-सभ्यता के दीर्घकालीन चिन्तन का परिणाम है और समृद्ध वैचारिक संपत्ति का परिचायक है।

ताल के रथ पर स्वरों की सवारी सजा कर कुशल संगीतकार श्रोताओं को भावविभोर कर देते हैं, इसीलिए ठुमरी, दादरा, ध्रुवपद, धमार, खयाल, टप्पा और तराना इत्यादि संगीत के सभी प्रकार ताल और लय के आश्रित रह कर यथोचित प्रभाव डालने में समर्थ होते हैं। ध्रुवपद की गंभीरता और ठुमरी की चपलता तालाश्रित न हो तो अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ सकता।

अन्नामलाई विश्वविद्यालय के अनुसंधान-विभाग में स्वरों के साथ-साथ ताल-वाद्यों और नृत्य के पदाघातों से पौधों तथा खेतों पर अनेक सफल प्रयोग किए जा चुके हैं, जिनके द्वारा उत्पादन-क्षमता में दुगुनी वृद्धि तक की गई।

जहाँ ताल है, वहीं उसमें रस अंतर्निहित है। ताल के आघात की गति वज्रन और घनत्व मिल कर ताल के द्वारा अलग-अलग रसों को उत्पन्न करते हैं। देखने में आता है कि अनेक पशु-पक्षी निश्चित आघातों की ध्वनि सुन कर मनुष्य के इशारे पर कार्य करने लगते हैं। उनमें ध्वनि से अर्थ ग्रहण करने की क्षमता मनुष्य से अधिक होती है।



थपकियों से शिशु को नींद आ जाती है, घोड़ों की थकान मिट जाती है और कुत्तों में साहस जागता है। थपकी और सहलाने का अंतराल इतना सुखकर हो सकता है कि मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी तक सुखकर तंद्रा में लीन हो जाते हैं।

सैनिकों को साहस प्रदान करने के लिए ताल के गंभीर आघात प्रस्तुत किए जाते हैं। मार्च-पास्ट की लयबद्ध प्रक्रिया, सैनिकों में साहस और अनुशासन की भावना के प्रति उन्हें सतर्क रखती है। लेकिन मार्ग में कोई पुल आ जाए तो मार्च-पास्ट भंग कर के निःशब्द रूप में वहाँ से गुज़रना पड़ता है, क्योंकि लयबद्ध पदाघातों के अनुनाद से पुल टूटने का खतरा बना रहता है।

बिजली तो कड़कती ही रहती है, लेकिन कभी-कभी किसी गर्जना से दरवाजों के काँच तक टूट जाते हैं। ध्वनि की तरंगावित सत्ता का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। मेघों का गम्भीर घोष, नवोढ़ा नायिका के कोमल हृदय को अज्ञात भय से कंपा देता है, कबूतरों के झुण्ड उड़ जाते हैं और जंगल के मोर बोल उठते हैं।

स्वर यदि मन पर प्रभाव डालता है तो ताल हृदय और मस्तिष्क को प्रभावित करती है, इसीलिए ताल का पहला प्रभाव हृदयगत धमनियों द्वारा रक्त में प्रकंपन उत्पन्न करता हुआ सम्पूर्ण शरीर को प्रभावित करता है।

असंतुलित और वेगपूर्ण तालाघातों से हिंसक वन्य जीव तक भयभीत हो जाते हैं। इसीलिए शिकार के समय हरकारों द्वारा ढोल, कनस्तर पीटते हुए जंगल में घुसने की प्रथा आदिकाल से चली आ रही है।

साँप को बंदूक से और शेर को लाठी से नहीं मारा जाता। बंदूक और लाठी दोनों की अपनी-अपनी शक्ति और क्षेत्र होते हैं। इसी प्रकार स्वर और ताल के भी अलग-अलग प्रभाव होते हैं। अतिशय शोक की अभिव्यक्ति के लिए आकाशवाणी पर तालवाद्यों का बहिष्कार तुरन्त कर दिया जाता है, ताकि करुण रस की उचित अभिव्यक्ति हो सके।

भाव की किसी अभिव्यक्ति में स्वर आगे रहते हैं और कहीं ताल पीछे तथा कहीं ताल आगे रहता है और स्वर उनका अनुसरण करते हैं। गीत में शब्द और भाव के अनुकूल जब ताल का प्रस्तुतीकरण किया जाता है तो भावोद्रेक में तनिक भी विलंब नहीं होता और उसका प्रभाव अमिट होता है, क्योंकि ताल के आश्रय से स्वर स्थायित्व को प्राप्त होते हैं।

अबोध शिशु को झुनझुना बजा कर किसने आकर्षित नहीं किया? जब शिशु के रुदन की गति बढ़ती है तो झुनझुने की लय भी उतने ही वेग से बढ़ानी पड़ती है। परिणामस्वरूप बच्चा तालाघातों में लीन होते हुए शान्त हो जाता है। सम्मोहक लय-आघातों के द्वारा रोगियों का इलाज करने के लिए अनेक देशों में प्रयोग किए जा रहे हैं। प्रायः देखने में आता है कि लोहे के डिब्बे या पत्थर की दो गिट्टियों को बजा कर भिखारियों के बच्चे रेल के डिब्बे या सड़क पर ऐसा समा बाँधते हैं कि हर व्यक्ति का ध्यान खिंच जाता है और कुछ काल के लिए वे रसमग्न हो जाते हैं।



आदिवासी क्षेत्रों में आज भी सामाजिक सुख-दुःख की अभिव्यक्ति ढोल और नगाड़े-जैसे तालवाद्यों द्वारा की जाती है। गाँव में किसी आगंतुक के आने पर ढोल की ताल से गाँव वालों को संकेत भेज दिये जाते हैं। उत्सव के समय दुःख और विषाद की सूचना के लिये अन्य ताल संकेतों का उपयोग किया जाता है। संचार-माध्यम के अभाव में तुरही या ढोल ही उनकी सूचनाओं के आदान-प्रदान का अवलम्ब बनता है। मुहर्रम के दिन मुसलमानों का शिया सम्प्रदाय ताजियों का जुलूस निकालते समय केवल ढोल-ताँसे के वादन द्वारा सामाजिक शोक की अभिव्यक्ति करता है। उस समय ढोल-ताँसे का वादन करबला के युद्ध और विभीषिका की स्मृति दिलाता हुआ भयमिश्रित शोक को सजीव कर देता है।

किसी भी देश में विशिष्ट राजकीय सम्मान की प्रतीक तोपों की सलामी होती है। इन तोपों की ध्वनियों के अन्तराल में समानता होने से जयजयकार और असमानता होने से युद्ध की गर्जना का संकेत मिलता है। केवल लय के अन्तराल से प्यार और भय, दोनों की अभिव्यक्ति का यह एक प्रत्यक्ष उदाहरण है।

ध्वनि जब कहीं टकराती है तो उसकी प्रतिध्वनि भी अवश्य होती है, क्योंकि सम्पूर्ण प्रकृति ध्वनि के प्रति संवेदनशील होती है। कुएँ में आवाज़ दें या जंगल में, प्रतिध्वनि सदैव सुनाई पड़ती है। चमगादड़ जैसा पक्षी इस प्रतिध्वनि की तरंगों में अपने इर्द-गिर्द के वातावरण की अनुभूति करता रहता है।

निश्चित अन्तराल पर किसी छोटे हथौड़े से आघात किया जाये तो बड़ा पत्थर भी आसानी से टूट जाता है। यह आघात के अन्दर छिपी उस अव्यक्त शक्ति को प्रकट करता है, जिसे हम ताल-जन्य रस कह सकते हैं। किसी अधिक वजनी वस्तु को ढोने के लिए जब बहुत सारे कुली लगाए जाते हैं तो निश्चित अंतराल की ध्वनियों के सहारे उनका कार्य सुगम हो जाता है।

शब्द की यही शक्ति छंदोबद्ध हो कर विविध मंत्रों के रूप में भौतिक और आध्यात्मिक प्रभाव उत्पन्न करने में सफल सिद्ध होती थी। इस पर आज वैज्ञानिक अनुसंधान भी किए जा रहे हैं।

भारतीय मान्यता के अनुसार शंकर के डमरू से चौदह सूत्रों का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे विविध स्वर, वर्ण, शब्द, वाक्य और मंत्रों की सृष्टि हुई है। आधुनिक काल में तार (दूरभाष) भेजने के लिए आघातों की विभिन्न लय और उनके प्रकार बनाकर संदेश भेज दिया जाता है। दूसरी ओर उन आघातों का अर्थ समझ कर उन्हें वाक्य में प्रत्यक्ष कर लिया जाता है और जब निश्चित व्यक्ति तक वह संदेश पहुँचाना है तो वह किसी वाणी की सहायता के बिना ही तत्सम्बन्धी व्यक्ति को प्रसन्न कर सकता है और रुला सकता है। ताल-आघातों की यह क्रिया सामान्य जीवन में अर्थ प्रकट करके रसोद्रेक में कारण बनती है, यह सर्वविदित है।

भाषा वैज्ञानिकों ने उच्चारण-स्थान की दृष्टि से व्यंजन ध्वनियों के दस भेद किए हैं, यथा—स्वर यंत्रमुखी, काकल्य, उहलि जिब्हीव, कण्ठ्य, लूर्ध्न्ध, तालव्य, वत्सर्ग, दंत्य, दंतोष्ठ्य और द्वयोष्ठ्य। इसी प्रकार संगीत के वाद्याचार्यों ने विविध



तालवाद्यों से उत्पन्न होनेवाले पाटाक्षरों का निर्माण करके प्रयोग की विधि बताई है।

जिस प्रकार व्यंजनों से शब्द और शब्दों से वाक्य की रचना होती है और वाक्य का अर्थ रसोद्रेक में कारण होता है, उसी प्रकार पाटाक्षरों के संयोग से ताल-वाद्यों के बोल बनते हैं और बोलों से विभिन्न गतियों या चालों का स्वरूप निर्मित हो कर एक निश्चित रस का आविर्भाव होता है। उत्कृष्ट तबला-वादक इन चालों के सम्यक् प्रयोग से गीत के विश्राम काल और उत्थान काल में ऐसा सौंदर्य भर देते हैं कि गीत और उसके अनुवर्ती अन्य वाद्यों को समुचित भाव और रस उत्पन्न करने में सहायता मिलती है। श्रोताओं के मुख से वाह और हृदय से आह निकल पड़ती है। पाटाक्षरों के अधिक जटिल और परिष्कृत रूप से तबला-वादन में चमत्कार की सृष्टि होने लगती है। श्रोता आनन्द-सागर में डूबते हुए स्तब्ध रह जाते हैं।

कुछ प्रचलित तालों को नीचे दी गई तालिका के अनुसार नौ रसों में विभक्त किया जा सकता है :—

| रस         | ताल                                                                                      | गति                                   |
|------------|------------------------------------------------------------------------------------------|---------------------------------------|
| १. शृङ्गार | तीन, सात और आठ मात्रावाली तालें, जैसे—दादरा, रूपक, कहरवा, दीपचंदी, धुमाली आदि            | मंद, ललित और कोमल गति स्वच्छंद भाव।   |
| २. करुण    | सात मात्रावाली तालें, जैसे—रूपक, दादरा आदि।                                              | विलम्बित लय प्रधान शिथिल गति युक्त।   |
| ३. वीर     | दस, बारह और चौदह मात्रावाली तालें, जैसे—रुद्रताल, मतताल, सूल, चारताल और आड़ा चारताल आदि। | गौरव गति से युक्त आवेगपूर्ण द्रुत लय। |
| ४. भयानक   | बारह और चौदह मात्रावाली तालें, जैसे—चारताल, धमार आदि।                                    | भयत्रासित स्थलित गति-युक्त मध्य लय।   |
| ५. हास्य   | चार व पाँच मात्रावाली तालें, जैसे दादरा, प्राचीन एकताल, चक्रताल और द्रुत कहरवा आदि।      | विषम और विक्षिप्त गति।                |
| ६. रौद्र   | बारह और चौदह मात्रावाली तालें, जैसे—चारताल, धमार आदि।                                    | अति द्रुत लययुक्त प्रचण्ड गति।        |
| ७. बीभत्स  | अनिश्चित मात्राओंवाला कोई भी सम-विषम ताल-स्वरूप।                                         | संकोच गतियुक्त अति-मंत्रित लय।        |
| ८. अद्भुत  | ग्यारह, पन्द्रह और सोलह मात्रावाली तालें, जैसे—कुम्भ, गजमंषा, तीनताल आदि।                | आश्चर्य गति प्रधान लङ्घड़ाती लय।      |
| ९. शान्त   | बारह और चौदह मात्रावाली तालें, जैसे—एकताल व धूमरा आदि।                                   | स्थिर या अचंचल गति।                   |



पूर्वांकित तालिका एक सुझाव-मात्र है। तबले के बोलों का वज्रन, ताल की गति, खाली-भरी के स्थान-परिवर्तन, दाएँ-बाएँ के परिवर्तित स्वरूप, अवग्रह, पात-निपात की प्रक्रिया, लचीले वादक की उँगलियों के समुचित स्पर्श और तात्कालिक सूक्ष्मबुद्धि से किसी भी ताल को इच्छित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए इच्छित रस के अनुकूल बनाया जा सकता है। हास्य उत्पन्न करने के लिए तबला-वादक कभी-कभी दाएँ तबले की स्याही पर हथौड़ी का स्पर्श करा कर विचित्र-सी ध्वनि पैदा कर देते हैं। इसी प्रकार चमत्कार उत्पन्न करने के लिए अति द्रुत लय के रूप-विधान की प्रस्तुति की जा सकती है।

ताल के आघात रक्त में कम्पन उत्पन्न करते हैं। वे कम्पन मस्तिष्क में संवेदनाओं के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। रक्त का प्राण से और प्राण का मन से परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। जो रक्त में घटता है उसका सीधा प्रभाव प्राण और मन पर पड़ता है और जो मन पर घटता है उसका प्रभाव रक्त तथा प्राण पर पड़ता है। इस प्रकार ताल और लय की गतियाँ रस संचार करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। दर्शकों को एकाग्र रखनेवाले सकंश के सभी करतब ताल और लय के आश्रित होते हैं। वहाँ क्रीड़ाओं की विविधता के अनुसार समस्त रसों का आविर्भाव-तिरोभाव होता रहता है।

आदिवासी क्षेत्रों के अनेक नृत्य केवल ताल पर आधारित होते हैं। जैसे-जैसे ताल के आघात पड़ते हैं, नर्तक या नर्तकी में उत्साह का भाव जाग्रत होता है। ताल की गति बढ़ने पर नृत्य की गति भी बढ़ती जाती है। नर्तक के ऊपर रखा हुआ भारी वज्रन उसे महसूस तक नहीं होता। सिर के ऊपर आठ-आठ घड़ों का संतुलन बनाए रखने में नर्तक को केवल ताल और उसकी गति से ही सहायता मिलती है। सारे वातावरण में अद्भुत रस का संचार हो जाता है। दर्शक, नर्तक और ताल-वादक के बीच ऐसा तारतम्य स्थापित हो जाता है कि विभिन्न मानसिक अवस्थाओं में से गुजरते हुए सब लोग रसोद्रेक की अन्तिम स्थिति आनन्द में लीन हो जाते हैं। यही कलाजन्य अलौकिक रस कहलाता है।

लय और ताल के द्वारा समग्र प्रकृति की व्यवस्था का लघु चित्रण किया जा सकता है। प्राचीन काल में रंगमंच पर जब कोई नाटक खेला जाता था तो अकेला तबला-वादक दृश्य और अभिनेता के अभिनय के अनुसार दाएँ-बाएँ तबले पर आघातों द्वारा प्रत्येक भाव और रस को सफलता के साथ प्रदर्शित कर दिया करता था। नायक-नायिका की अवस्था, आँधी-तूफान और आग लगने का प्रभाव, विदूषक की क्रीड़ाएँ, युद्ध का कोलाहल, राजा, चोर, देव-दानवों का प्रादुर्भाव, हास्य, रुदन सभी कुछ ढोल, नक्कारा या तबला-वादक की कुशलता से सजीव कर दिए जाते थे। उनका तबला बजता नहीं था, बल्कि बोलता था।

माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुण से सम्पन्न तबला-वादन द्वारा स्वर की सहायता के बिना भी रस उत्पन्न किया जा सकता है। अनेक तबला-वादकों का वादन सुन कर



श्रोता प्रायः कहते देखे जाते हैं कि अमुक वादक के वादन में जो मिठास है, वह अन्य में नहीं। यह मिठास ही वादन से उत्पन्न रस है, जो श्रोता को तन्मय कर देता है।

वादन में पाटाक्षर (तबला या मृदंग के बोल) शुद्ध और स्पष्ट हों, ध्वनि में निरंतरता बनी रहे, दाब-खाँस (उपयुक्त वजन) का ध्यान रहे और भावना में डूब कर लचीली उँगलियों का प्रहार किया जाए तो किसी भी तालवाद्य के वादन से रस की सृष्टि की जा सकती है। अनुद्रुत, द्रुत, लघु, गुरु, प्लुत और काकपद नामक तालाङ्गों एवं त्र्यस्र, चतुरस्र, खंड, मिश्र और संकीर्ण नामक ताल-जातियों का सम्यक ज्ञान भी वादक को होना चाहिए जो ताल और रस के अवलम्ब हैं। जैसे भोजन में एक कंकड़ी उसे बेस्वाद कर देती है, उसी प्रकार वादन में एक गलत जरब (आघात) कला को किसकिसा कर सकती है। जिस तरह बच्चे को लोरी गाकर झुलाया जाता है और लययुक्त थपकी देकर सुलाया जाता है, उसी तरह एक श्रेष्ठ वादक श्रोताओं को झुमाता हुआ उन्हें ब्रह्मानन्द सहोदर आनन्द में गोते लगवाता है।

शास्त्र में काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति और प्रस्तार ये ताल के दस प्राण बताए गए हैं। इन सबके समुचित प्रयोग का मर्मज्ञ ही तालज्ञ कहलाता है।

□ □ □



## ललित कलाओं में संगीत का स्थान

हमारे यहाँ मुख्य रूप से ६४ कलाएँ मानी गई हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं :—

१. गीत, २. वाद्य, ३. नृत्य, ४. नाट्य, ५. आलेख्य ( चित्रकारी ) ६. विशेष-कच्छेद्य ( ललाट पर तिलक बनाना ), ७. तण्डुल-कुसुमकलि-विकार ( चावल तथा फूलों का चौक बनाना ), ८. पुष्पातरण ( फूलों की सेज बनाना ), ९. दशनवसनांगराग ( दाँतों, कपड़ों तथा अंगों को रँगना ), १०. मणिभूमिका-कर्म ( घर सजाना ), ११. शयन-रचना, १२. उदक ( जलतरंग ) वाद्य बजाना, १३. उदकघात ( गुलाब जल आदि छिड़कना ), १४. चित्रायोग ( जवान को बूढ़ा, बूढ़े को जवान बनाना ), १५. माल्यग्रन्थ विकल्प (माला गुँथना ), १६. केश-शेखरापीड-योजन ( सिर पर फूल सजाना ), १७. नेपथ्य योग ( वस्त्र भूषणादि पहनना ), १८. कर्णपत्रभंग ( कर्ण फूलादि बनाना ), १९. गंधयुक्ति ( इत्र फुलेल बनाना ), २०. भूषण योजन, २१. इन्द्रजाल, २२. कौचुमार योग (कुरूप को सुन्दर बनाने का उबटनादि तैयार करना ), २३. हस्तलाघव, २४. चित्रशाकाकूपमक्ष्य-विकारक्रिया ( तरह-तरह के शाक, पुष्प पकवानादि बनाना ), २५. पानकरस-रागासव-योजन ( शरबत आसवादि बनाना ), २६. सूचीकर्म ( सीने का काम ), २७. सूत्रक्रीड़ा ( बेलबूटे काढ़ना ), २८. प्रहेलिका, २९. प्रतिमाला ( अन्त्याक्षरी ), ३०. दुर्वाचकयोग ( कठिन पदों का अर्थ करना ), ३१. पुस्तकवाचन. ३२. नाटिकाख्यायिका-दर्शन ( नाटक देखना दिखलाना ), ३३. काव्यसमस्यापूरण ( समस्या पूर्ति ), ३४. पट्टिकावेत्र-बाण-विकल्प ( नेवार, बाँध आदि से चारपाई बुनना ), ३५. तर्कुर्म, ३६. तक्षण, ३७. वास्तुविद्या, ३८. रूप्यरत्न परीक्षा, ३९. धातुवाद ( कीमियागिरी ), ४०. मणिराग-ज्ञान ( रत्नों के रंग जानना ), ४१. आकर ज्ञान ( खानों की विद्या ), ४२. वृक्षायुर्वेदयोग, ४३. मेष-कुकुट-लावक-युद्धविधि, ४४. शुकसारिका-प्रलापन, ४५. उत्सादन ( उबटन लगाना ), ४६. केशमार्जन-कौशल, ४७. अक्षरमुष्टिका-कथन ( उँगलियों के संकेत बोलना ), ४८. म्लेच्छितक विकल्प ( विदेशी भाषाएँ जानना ), ४९. देश-भाषाज्ञान, ५०. पुष्प-शकटिका-निमित्तज्ञान ( देवी लक्षण देखकर भविष्य कथन ), ५१. यंत्र-मातृका ( यंत्र-बनाना ), ५२. धारण-मातृका ( स्मरण बढ़ाना ), ५३. सम्पाद्य ( किसी के कुछ पढ़ने पर उसी प्रकार पढ़ देना ), ५४. मानसीकाव्य क्रिया ( मन में काव्य कर सुनाते जानना ), ५५. क्रियाविकल्प



( क्रिया का प्रभाव बदल देना ), ५६. छलितकयोग ( ऐयारी करना ), ५७. अभिधान-  
 कोषछंदोज्ञान, ५८. वस्त्रगोपन ( कपड़ों की रक्षा ), ५९. छूत-विशेष, ६०. आकर्षण-  
 क्रीड़ा ( पासा फेंकना ), ६१. बालक्रीड़ाकर्म ( बच्चों को खिलाना ), ६२. वैन्यायिकी  
 विद्याज्ञान ( विनय तथा शिष्टाचार ), ६३. वंजयिकी विद्याज्ञान ६४. वंतालिकी  
 विद्याज्ञान ( गाना-बजाना, सुन्दर-रचना, व्यास, स्त्री का रज, अणु, भ्रूण, लगाव, नौका,  
 छल, कपट, चाल, युक्ति लीला, मात्रा व छंद, यंत्र, ज्योति, तेज, छटा, शोभा ) ।

मानव सभ्यता के साथ-साथ ही विभिन्न कलाओं का विकास हुआ है। ६४ कलाओं में—‘संगीत-कला’, ‘चित्र-कला’ और ‘काव्य-कला’ विशेष महत्व रखती हैं। इनमें भी संगीत-कला अधिक प्रभाव डालनेवाली कला है। मनुष्य के हृदय में सोए हुए भावों को जगाने में संगीत जितना सक्षम है, उतनी और कोई विद्या नहीं। जो कुछ चित्र से नहीं कहा जा सकता, वह काव्य या भाषा से कह दिया जाता है और जिन भावों को व्यक्त करने में भाषा भी असमर्थ रहती है, उन्हें संगीत के जरिए आसानी से समझा जा सकता है। लाटरी खुलने की प्रसन्नता, न भाषा से व्यक्त की जा सकती है और न चित्र से। उसकी अभिव्यक्ति नाचने-कूदने और उन्मत्त-गान से ही संभव है। इसी प्रकार पुत्र-शोक, प्रिय-विछोह और समर्पण इत्यादि के भाव, संगीत के द्वारा शीघ्र जाग्रत हो जाते हैं।

ललित कला के लिए आवश्यक है कि उसमें सौंदर्य, माधुर्य, सहजता, सरलता प्रसाद, प्रवाह और ओज हों। लयात्मकता लालित्य का प्रमुख गुण है। संगीत, काव्य और चित्र-कला में ये सभी गुण पाये जाते हैं। कुछ विद्वानों ने इन तीनों कलाओं को एक समान माना है, जबकि अधिकांश विद्वानों के मत में संगीत सर्वश्रेष्ठ कला है। वास्तव में कलाओं का लक्ष्य मनुष्य को भौतिक सुख-दुःख से ऊपर उठा कर, अलौकिक आनन्द प्राप्त कराना है। उसी को रसानुभूति की चरम अवस्था कहा जाता है। सभी कलाएँ मन को शांति, आनन्द और प्रेरणा प्रदान करती हैं। संगीत-कला में एक विशेष गुण और भी है कि वह मनुष्य के अतिरिक्त पशु-पक्षियों को भी आकर्षित करती है। अन्य ललित कलाओं में यह सामर्थ्य नहीं होती। काव्य, चित्र, वास्तु-कला एवं शिल्प-कला, बुद्धि के संयोग से ही भावों का उत्कर्ष कराने में सफल होती है।

शॉपेन हॉवर का कहना है—“केवल संगीत ही ऐसी कला है जो श्रोताओं से सीधा सम्बन्ध रखती है। इसे किसी भी माध्यम की आवश्यकता नहीं होती।”

गीत, वाद्य और नृत्य, तीनों संगीत-कला के अन्तर्गत आते हैं। इनके सम्मिलित प्रयोग से संगीत में भाव-संप्रेषण की शक्ति और बढ़ जाती है। आंगिक चेष्टा, शब्द और स्वर, इन तीनों की सम्मिलित शक्ति, संगीत-कला को अन्य किसी भी कला की अपेक्षा अधिक समर्थ बना देती है; इसीलिये संगीत को ब्रह्मानन्द-सहोदर आनन्द प्रदान करनेवाली कला कहते हैं। वास्तव में देखा



जाए तो चित्र, काव्य और संगीत, तीनों ललित-कलाएँ एक दूसरे से अलग होते हुए भी, आपस में इस प्रकार जुड़ी हुई हैं, जैसे—कपड़ा और सूत। संगीतकार धुन बनाते समय किसी चित्र की कल्पना करता है, कवि अपने काव्य की रचना करते समय अमूर्त स्वरों को छन्द का वाहन बनाता है। चित्रकार या शिल्पकार शब्द के आश्रय से विषयवस्तु को अपने मस्तिष्क में कोई आकार देता है और तब उसे मूर्त रूप प्रदान करता है। इन सबके अतिरिक्त कभी-कभी संगीत, शब्दों के आधार पर धुन का निर्माण करता है। कवि किसी चित्र की कल्पना करके काव्य का सृजन करता है और चित्रकार काव्य सुन कर या किन्हीं स्वर-लहरियों में खो कर अपनी कृति का निर्माण करता है। इसीलिए कभी किसी चित्र में काव्य फूट पड़ता है, किसी काव्य-धारा से संगीत उमड़ने लगता है, तो कहीं कोई राग या रागिनी सजीव होकर सामने खड़ी हो जाती है।

संगीत, काव्य और चित्र तीनों ललित-कलाओं में, केवल एक चीज़ सामान्य है और वह है—लय। लय पर ही तीनों कलाओं का सौंदर्य अवलंबित होता है। संगीत में लय उसका प्रधान तत्व है, इसलिए लय की सम्पूर्ण शक्ति संगीत-कला में निहित रहती है। इस दृष्टि से भी संगीत-कला अन्य ललित-कलाओं में अग्रणी हो जाती है, जिसे अपने अस्तित्व के लिए किसी भौतिक उपादान की आवश्यकता नहीं होती।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि ललित-कलाओं में संगीत का स्थान सर्वोपरि है, क्योंकि वह गतिशील है, आनन्दानुभूति कराने और भावाभिव्यक्ति में सक्षम है, चर और अचर पर प्रभाव डालने में समर्थ है, लोकरंजक है और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करनेवाला है।

□ □ □



# विभिन्न प्रदेशों की लोकप्रिय गीत-शैली (धुनें) व नृत्य

| प्रदेश                          | गीत शैली                                                                                                                                                                                                                                                                                           | लोकनृत्य                                                                                                                                                                                                                                                      |
|---------------------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| असम<br>उड़ीसा या उड़िया         | बिहू, कीर्तन, करमा ।                                                                                                                                                                                                                                                                               | बिहू नृत्य, लाइहारोवा, कबई, रासलीला, चऊ या छऊ, घुमूरा, भात्रा, भूइया, जोंग, करमा, सावरा, कोंड, घोटुल, मुड़िया, हुलकी ।                                                                                                                                        |
| माघ                             | कुम्मी                                                                                                                                                                                                                                                                                             | कुचिपुड़ी, डप्पुवाद्यम्, माथुरी, बथकम्मा, कोलाट्टम, लम्बाडी, सिद्दी, चेनचू, गडाबा, पोरोजा, कौंड ।                                                                                                                                                             |
| अण्डमान-निकोबार<br>उत्तर प्रदेश | मांगल, संस्कार, जागर, वसन्ती, गणगौर, झाँझी-टेसू, समाज, सरिया, मूड़न वरुआ, कजली, बिदेसिया, होली, वारह मासा, थड़या, चौफुला, चाँचरी, झोड़ा, बाजूवन्द, छोपती, छपेली, चैती, घूगूटी, फुलारी, लावनी, रसिया, लाँगुरिया, सोहर, वन्ना, चैताघाटो, जैतसार, रोपनी, बिरहा, बधावा, मल्हार, नौटंकी, ठुमरी, दादरा । | बैरोंग, जंगेर, लेगोंग, रंगड़ा ।<br>पांडव, थाली, जैता, जद्धा, जागर, घड़ियाला, नागरजा, आछरी, थाड्या, झुमैलो, चौफुला, छोपती, छपेली, चैतीपसारा, चांचरि, (झोड़ा), चौलिया, रासलीला, कथक, तालरासक, दंडरासक, कजरी, मंडलरासक, होली, डण्डा(चट्टा), दीवाली, कर्मा, भगत । |



|        |                                                                                     |                                                                                                                                                                                                                    |
|--------|-------------------------------------------------------------------------------------|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| केरल   | तिरुओडम, वंचिप्पाट्टु,<br>यक्षगान, छथू,<br>कुराथिपट्टम ।                            | संघकाली, कथू-प्रबन्धम, नान-<br>गियर, कूरियाट्टम, कथकलि,<br>थुलाल, यक्षगान, मोहिनीअट्टम,<br>काइकोट्टिकली, तुंबितुल्लल् ।                                                                                            |
| गुजरात | गरबा या गरबी ।                                                                      | गरबा, स्वास्तिकरास, हल्लेसा,<br>मंजीरा, मटकी, कापणी, गरबी,<br>रास ।                                                                                                                                                |
| कश्मीर | रोफ, छकर, सूफियाना ।                                                                | रोफ, बचनगमा ।                                                                                                                                                                                                      |
| जम्मू  | अन्नो ।                                                                             | फुम्मनी लहाख-शोड् रचेस,<br>कोशेड् रचेस, श्रूपलारचेस,<br>न्यावोपेरचेस, छम, जन्नो, कुड्ड ।                                                                                                                           |
| पंजाब  | टप्पा, हीर, जिन्दुआ ।                                                               | भंगड़ा, गिद्धा, झूमर, कीकी,<br>लूढ़ी, कुल्लूघाटी-नाटी, पदरागी-<br>फेटीनाटी, दोहरी, वुशैहरी,<br>ठाकुरी, तिणकी, चाइलु, उजग-<br>जमा, गढ़गढ़कर, पंदरावली<br>बांठडा, लाहुली, लूड़ी, मगेल,<br>खड़ायत ।                   |
| बंगाल  | जात्रा, चटका, कीर्तन,<br>भटियाली, सारी, बाउल,<br>भवइया, जारी, झूमर,<br>गंभीरा ।     | रायवंशी, ढाली, काठी, लाठी,<br>झूमर, धमाइल, बरन, आरती,<br>व्रत ( व्रताचारी ), मेघरानी,<br>कीर्तन ।                                                                                                                  |
| बिहार  | खेलौना, सगुन, अठंगर,<br>घटारो, वज्जिका, बैसाली,<br>सोहर, पवारा, डोमकच,<br>मुरलिया । | रामलीला, कीर्तनियौ, कुंजवासी<br>भगत, पूजाआरती, झिझिया,<br>जाटजाटिन, समचक्का, सतूरी,<br>भाको, ब्रजवासी, वंशीलीला,<br>कदमलीला, नागलीला, संधाल,<br>बुरू, दसई, मुन्डाओं, जादुर,<br>करमा, जात्रा, पैका, नचनी,<br>नटवा । |



मध्य प्रदेश

निन्दायी, उंडा, देवार,  
बांस, कर्मा, भोजली, नव-  
रात, आल्हा, फाग, स्वांग,  
सावनी, राछरे, रसिया,  
खयाल, बिलवारी, सैतम,  
जस, होरी, अचरी, मल्हार,  
बन्ना, बधावा, गरबा,  
साँजी, सुआ, ददरिया,  
गौरा, गणपति ।

भील, पाली, भौली, नवताली,  
जोड़ी, फूलपाती, मालवा का  
गरबा, गबर, सैलारिना ।

मणिपुर

होइरोहया, राओथाईशै,  
नुपीपाला ।

लाइहारोबा, कबुइ, कीर्तन,  
रासलीला, इशरीचोलम, खबक,  
पुगचोलम, ओग्रीहैगल, कुक्केकर  
या थावलसांडवी, करतालचलम,  
नटपाला, पांथोइबीजगोई,  
आनोईरोल, खुवाकइशै, थावन  
चोंगबां, थांगता ।

महाराष्ट्र

ओवी, मंगलागौर, लावनी ।

दिण्डी, काला ( दहीकाला या  
दधिहांडी ), टिपरी, गोफ,  
गौरीचा अथवा गौरी गणपति-  
चानृत्य, ढोलाचा, टारपी, दशा-  
वतार अथवा बोहादा, शिभगा,  
भगत, वीर, मंगलागौर, दशरा,  
फुगडी, गोधूम, किस बाइ किस,  
पिंगा, कोम्बडा, सालुंकी,  
काथोट, काणा, अगोगा-फागोट-  
झिझोटा, जिम्मा, पासोद्या ।



तमिसनाडु

कर्नाटक.

राजस्थान

साँझ्याँ, माँड, लूबर या  
धूमर, बींदली, गोरबंद  
पणिहारी, पीपली, भूमल  
कलाली, कसुमो, केवड़ो,  
धूधरी, कूँजा, लालर,  
माँछर, पटेल्या, बीचीयो,  
मोंमल ।

तिरिक्कम

हिमाचल प्रदेश

धुधती, बनजारा ।

कुरवंजी, कारागम, कावडी ।

कुगं का फसल नृत्य, चक्के तथा  
जाडे कोलाट्ट, पुरवीअट्टम ।

धूमर, झूमर, डाँडिया, गींदड़,  
रसिया, तेरा-ताली, कच्छीघोड़ी,  
गैर, धूमर, वालर, ढोल, गौरी,  
मटका, कालबेलिया ।

शाप-दोह ।

बनजारा तथा गड़रिया, धुधती,  
लावलीबगावली, चौराहा ।

□ □ □



## लोक संगीत का भाव पक्ष

विभिन्न प्रांतों में प्रादेशिक संस्कृति की आवश्यकता के अनुसार भिन्न-भिन्न अवसरों पर जो गीत गाए जाते हैं, उसे लोक-संगीत कहा गया है। लोक-संगीत के संस्कारयुक्त संस्करण को शास्त्रीय संगीत की संज्ञा दी गई है। क्लिष्टता बढ़ जाने के कारण शास्त्रीय संगीत समाज के लिए अरंजक और दुरूह होता चला गया।

कलाओं का उद्देश्य भावनाओं के उत्कर्ष द्वारा रसानुभूति कराना है। यह रसानुभूति क्रिकेट के खेल में तन्मय होने अथवा नृत्य-गीत आदि में एकाग्र होने से भी होती है। स्वर, ताल और लय, मन और मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं, इसलिए संगीत को श्रेष्ठ कलाओं या क्रीड़ाओं में गिना जाता है। शास्त्रीय संगीत में तकनीकी विशेषताएँ अधिक आ जाने से वह लोक-संगीत के समान जन-मन को आकर्षित करने की क्षमता नहीं रखता। इसके विपरीत लोक-संगीत सहज ग्राह्य होने के कारण शीघ्रता से हर उम्र के इन्सान को आकर्षित करता है। जीवन से जुड़ी हुई स्थितियाँ जब लोक-गीतों के माध्यम से फूट पड़ती हैं, तो वे अनायास ही रस की वर्षा करने लगती हैं। सरल शब्दावली प्रत्येक की समझ में आ जाती है, जो अपने अर्थ से श्रोताओं को तन्मय कर देती है। लोक-संगीत में धुन छोटी होती है, किंतु शब्दों का अर्थ विशाल होता है। शास्त्रीय संगीत में शब्दावली छोटी होती है और धुन के फ़ैलाव की कोई सीमा नहीं रहती। इसी लिए लोक-संगीत मनुष्य को अधिक आकर्षित करता है। अलग-अलग अवसरों के अलग-अलग गीत अपनी सरल स्वरावली और सरल शब्दावली के कारण इन्सान की आत्मा से जुड़ जाते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक के गीत इतनी स्वच्छंदतापूर्वक प्रकट होते हैं कि मनुष्य अपने समाज और अपनी मिट्टी से अनायास ही जुड़ जाता है। व्यक्ति और समाज के सुख तथा दुःख का प्रतिबिंब लोक-संगीत है, यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं।

लोक-संगीत का छंद यद्यपि संक्षिप्त होता है, परन्तु भाव के अनुकूल होने से वह मन-मस्तिष्क पर पूरा प्रभाव डालता है। भावों की सनातनता के कारण लोक-संगीत कभी पुराना नहीं पड़ता, वह सदाबहार है। गायक और श्रोता के बीच सीधा जुड़ाव होने के कारण भाव सम्प्रेषण की प्रक्रिया में लोक-संगीत सबसे अधिक सक्षम



है। सशक्त भाव पक्ष के कारण ही लोक-संगीत अन्य सभी शैलियों में अग्रणी है। लोक-संगीत से प्रभावित होकर ही रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शास्त्रीय संगीत के धरातल पर हृदय को छूनेवाले स्वरों को शब्दों का चोला पहनाकर, एक नई गान-पद्धति का निर्माण किया था, जो रवीन्द्र-संगीत के नाम से जानी जाती है।

माँ की ममता, मृत्यु का विशाद, दीन की करुणा, ईर्ष्या, राग-द्वेष, उल्लास, कामना, क्रोध, अहम्, मद, लोभ, मोह, आशा, निराशा, सभी का दिग्दर्शन लोक-संगीत में सहजता से होता है। अपने इस भाव पक्ष की प्रधानता के कारण लोक-संगीत पूरे संसार में लोकप्रिय है।

लोक-संगीत के भाव पक्ष का विश्लेषण किया जाय तो उसमें निहित निम्नांकित तथ्य सामने आते हैं—

**१. अनुशासन :** लोक-संगीतकारों का उद्देश्य अपनी परंपरागत कला को जीवित रखना होता है, अतः किसी अहं की भावना को, वे उसमें नहीं आने देते और परिपाटी के अनुसार मुक्त हृदय से उसका प्रदर्शन करते हैं।

**२. प्रेरक शक्ति :** जाति, समुदाय, धर्म, पर्व और राष्ट्रीयता की चेतना कायम रखते हुए लोक-संगीतकार अपने भावों को उत्साह के साथ प्रकट करते हैं। लोक-संगीत की यही प्रेरक शक्ति सामाजिक उत्थान में सहायक सिद्ध होती है।

**३. सृजनात्मक शक्ति :** लोक-संगीत किसी बौद्धिक विश्लेषण या बौद्धिक सम्प्रेषण की अपेक्षा नहीं रखता, अतः कलाकार सहज मन से प्रेरित होकर शीघ्रता से संवेदनशील हो उठता है और भौतिक सुख-दुःख भूलकर, एक अद्वितीय आनन्द से पूरित हो जाता है। यहीं उसका मानसिक धरातल, सृजनात्मक शक्ति से ओत-प्रोत होकर नव स्फूर्ति एवं नव-रस का संचार करने में समर्थ हो जाता है।

**४. स्वर ताल और लय तत्त्व :** नीचे स्वर से उच्च स्वरों की ओर या उच्च स्वरों से नीचे के स्वरों की ओर बढ़त करते हुए लोक-संगीतकार छोटी-से-छोटी धुन में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि उन्हें भाव प्रदर्शन करने के लिए नवीन स्वर, नवीन ताल या नवीन लय की विचित्रताओं का दिग्दर्शन, अलग से कराने की जरूरत नहीं होती। उनकी समस्त भावनाएँ बँधी-बँधाई लोक-धुन में घनीभूत होकर, रसों का स्वयं संचार और संचालन करती है।

**५. दिव्यत्व :** आत्म-समर्पण की भावना लोक-संगीतकार के हृदय में कला प्रदर्शन के पूर्व से ही विद्यमान रहती है, अतः सभी कलाकारों का मानसिक धरातल लोक-धुनों पर तैरता हुआ एकत्व की अनुभूति कराने में सफल सिद्ध होता है। उनका भौतिक अस्तित्व उन दिव्य क्षणों में तिरोहित हो जाता है और उनका यही एकत्व, दिव्यत्व की कसौटी सिद्ध होता है।





## भारतीय वाद्य-परम्परा

भारतीय शास्त्रकारों के मत में वाद्यों की उत्पत्ति का कारण देवाधिदेव शंकर हैं। दक्ष के यज्ञ का विध्वंश करने के पश्चात् उद्वेग को शान्त करने के लिए भगवान् शंकर ने नन्दी, नारद, तुम्बुरु इत्यादि को वाद्य-निर्माण के लिए प्रेरणा दी, फलस्वरूप वाद्यों का जन्म हुआ।

गीत, वाद्य और नृत्य तीनों मिलकर 'संगीत' कहलाते हैं। संगीत का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति है। वाद्य भी संगीत का मुख्य अंग है, इसलिए उसकी महिमा भी कम नहीं। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि श्रुति तथा शास्त्र प्रमाण को जानने वाला, वीणा वादन में संलग्न तथा ताल से अभिज्ञ पुरुष मोक्ष को अनायास प्राप्त कर लेता है।

राजाओं के अभिषेक तथा यात्रा के समय, विवाह, उपनयन आदि संस्कारों के अवसर पर उत्पात, सम्भ्रम तथा युद्धकाल में, वीर, रौद्ररस-प्रधान नाटकों के प्रयोग में, साधारण मंगल कृत्यों में, गाने-नाचने वाले रंगस्थ व्यक्तियों के विश्राम के समय वाद्य बजाए जाते हैं। इन अवसरों पर इन वाद्यों का बजाया जाना उत्साह-वर्धन और मंगल करता है तथा दुःख का उन्मूलन करके हृदय में स्फूर्ति भर देता है।

स्वरूप की दृष्टि से भारतीय वाद्यों को चार प्रकारों में विभक्त किया गया है। इन चारों प्रकारों के नाम तत, सुषिर, अवनद्ध और घन हैं। जिन वाद्यों में तन्त्री अर्थात् तार का प्रयोग होता है, वे 'तत' कहलाते हैं और जिन वाद्यों में वायु किसी छिद्र में होकर शब्द उत्पन्न करता है उन वंशी आदि वाद्यों का नाम 'सुषिर' है। वीणा इत्यादि 'तत' तथा वंशी इत्यादि 'सुषिर' वाद्यों का कार्य गीत का पूर्णतया अनुकरण करना है। गायक के द्वारा प्रयुक्त स्वर, श्रुति, राग, मूर्च्छना और अलंकार इत्यादि का आदर्श अनुकरण वीणा इत्यादि तत वाद्यों में भी गीत की उत्पत्ति कर देता है।

जो वाद्य चमड़ा, डोरी या बद्धी से बंधे होते हैं, वे 'अवनद्ध' वाद्य कहलाते हैं। तत और सुषिर वाद्यों का कार्य जहाँ गीत का उत्पादन और अनुकरण है, वहाँ



मृदंग इत्यादि अवनद्ध वाद्यों का कार्य गीत में प्रयुक्त भाषा सम्बन्धी ध्वनियों 'क, ख, ड' इत्यादि का अनुकरण है। इस प्रकार मृदंग इत्यादि अवनद्ध वाद्य गीत का उप-रंजन करते हैं।

कांसा इत्यादि धातुओं से बने हुए वे वाद्य जिनमें दो धातु खण्डों के परस्पर आघात से ध्वनि उत्पन्न होती है, घन अथवा मूर्ति वाद्य कहलाते हैं। झाँझ और मंजीरा इत्यादि की गणना इनमें है। इन घन वाद्यों का कार्य लय की दृष्टि से गीत और वादन का नापना है। घन वाद्य गति का अनुकरण भी करते हैं।

गीत का अनुकरण भी तीन प्रकारों में विभक्त है। ये प्रकार क्रमशः 'तत्त्व', 'अनुगत' और 'ओघ' कहलाते हैं। गीत के साथ-साथ मिलकर उसका पूर्ण अनुकरण मात्र 'तत्त्व' है। विलम्बित लय में गाये जाते हुए गीत के अनुकरण के साथ ही साथ वाद्य में द्रुत लय का प्रयोग चतुरतापूर्वक करके दिखाना और गीत से भिन्न स्थानों पर भी स्थितियों का प्रदर्शन 'अनुगत' कहलाता है तथा गीत के अन्त के विभिन्न वादकों के समुदाय के द्वारा गीत का भागशः सामूहिक अनुकरण 'ओघ' कहलाता है।

लय के भेद से तत और सुषिर वाद्यों की वादन-शैली में अन्तर पड़ता है। ये शैलियाँ तीन हैं और 'वृत्ति' कहलाती हैं। 'चित्र' नामक वृत्ति का प्रयोग द्रुतलय में होता है इस वृत्ति में वाद्य की प्रधानता और गीत की अप्रधानता रहती है। 'वृत्ति' नामक वृत्ति का प्रयोग मध्यलय में होता है। इसके प्रयोग के समय गति और वाद्य का महत्व समान रहता है तथा 'दक्षिणा' नामक वृत्ति का प्रयोग विलम्बित लय में होता है, जिसमें गीत प्रधान और वाद्य अप्रधान रहता है।

जहाँ वाद्यों का कार्य उत्पादन, उपरंजन और मान द्वारा गीत का अनुगमन है, वहाँ केवल वृत्त द्वारा सम्मिलित गीत वाद्य का अनुगमन भी है। यही नहीं, वाद्यों का स्वतंत्र महत्व भी है। वाद्यों के बजाने की स्वतंत्र शैली में केवल वादन होता है, गीत और नृत्त की चर्चा तक नहीं होती। अभिनययुक्त नर्तन 'नृत्य' तथा अभिनय रहित गात्र-विक्षेप 'नृत्त' है। वाद्यों का स्वतंत्र वादन 'निर्गीत' वादन कहलाता है, इसे 'गोष्ठवादन' अथवा 'शुष्कवादन' भी कहते हैं।

संगीत-दामोदर-कार शुभंकर के मत में वीणा के उनतीस प्रकार हैं, नारद के मत में वीणाएँ उन्तीस प्रकार की हैं और निःशंक शार्ङ्गदेव ने ग्यारह प्रकार की वीणाओं का निर्देश किया है। निःशंक शार्ङ्गदेव के द्वारा निर्दिष्ट भेदों में एक निशंक वीणा भी है, जिसके निर्माता स्वयं शार्ङ्गदेव थे। इस सम्बन्ध में शार्ङ्गदेव की व्यवस्था है कि जिस प्रकार भी स्वर में स्पष्टता एवं आकर्षण की उत्पत्ति हो, उसी प्रकार का आश्रय लेकर नये तंत्री वाद्यों का भी निर्माण कर लेना चाहिए।

स्वरों की उत्पत्ति का स्थान होने के कारण गायक के शरीर को भी शास्त्र-कारों ने 'गात्रवीणा' कहा है, मनुष्य निमित्त वीणाएँ तो इस ईश्वर निर्मित वीणा का अनुकरण मात्र है। तत वाद्यों में वीणा प्रमुख है। वीणा का अर्थ यहाँ तार का बाजा है।



मुख्यतः वीणा के दो भेद हैं श्रुति-वीणा और स्वर-वीणा। श्रुति-वीणाएँ केवल छेड़ो जाती हैं। इनका कार्य गीत अथवा लय का अनुकरण नहीं है। एकतारे, दोतारे और तानपूरे इत्यादि की गणना श्रुति-वीणाओं में की जा सकती है। प्राचीनकाल में एक तोसात तार वाली श्रुति-वीणा होती थी जिसे 'चलवीणा' कहा जाता था और दूसरी बाईस तार वाली श्रुति-वीणा होती थी जिसे 'ध्रुववीणा' कहते थे। श्रुति-वीणा में सारें नहीं होती थीं।

गीत का अनुकरण करने वाली अथवा स्वतंत्र वादन में प्रयुक्त की जाने वाली वीणाएँ 'स्वर वीणाएँ' कहलाती हैं। जिनमें बाएँ हाथ से सारों पर तारों को बजाकर विभिन्न स्वरों की सृष्टि की जाती है।

एकतंत्री वीणा में एक तार, नकुलवीणा में दो, त्रितन्त्रिका में तीन, चित्रा में सात, विपंची में नौ तथा मत्तकोकिला में इक्कीस तार होते हैं। शाङ्गदेव के मत में इक्कीस तार वाली मत्तकोकिला तीनों सप्तकों तथा सातों स्वरों से स्वभावतः सम्पन्न होने के कारण सब वीणाओं में प्रधान है। अन्य वीणाएँ तो इसके साथ बज कर इसका उपरंजन मात्र करती हैं। वीणा वादकों के वृन्द में समस्त वीणा वादक मत्तकोकिला वादक का सहयोग और उसका अलंकरण करते हैं। कल्लिनाथ के मत में मत्तकोकिला का दूसरा नाम 'स्वरमण्डल' है।

वीणाओं में मन्द ध्वनि को उत्पन्न करने वाले तार बाँस की छाल तथा स्नायु के भी हुआ करते थे। प्रायः गृध्र ( गिद्ध या गीध ) के वक्षस्थल की एक अंगुल से अधिक मोटी नली की 'सारें' रहती थीं। लम्बाई, चौड़ाई, तोंबों की संख्या, निर्माण तथा आकार सम्बन्धी तथा ध्वनि सम्बन्धी भेदों के कारण वीणाओं के अनेक प्रकार संभव हैं। साधारणतया वीणाओं की डाँड खैर अथवा रक्त चन्दन की लकड़ी से बनाई जाती थी, परन्तु आलापिनी नामक वीणा की डाँड बाँस की होती थी और इसमें तोंबे तीन होते थे। लघु किन्नरी वीणा की लम्बाई केवल तीन बित्ता (बालिष्ठ) होती थी और इसमें हाथी के बालों के बराबर मोटे लोहे के तार हुआ करते थे। बृहत् किन्नरी वीणा के तार स्नायु निर्मित होते थे। पिनाकी वीणा में डाँड का काम इक्तालीस अंगुल लम्बे धनुष से होता था, जिसके दोनों कोने घोडे के बालों से बनी इक्कीस अंगुल की डोरी से बँधे रहते थे। बीच में धनुष की चौड़ाई सवा दो अंगुल होती थी, धनुष के नीचे तोंबे बँधे रहते थे।

एकतन्त्री वीणा की डाँड तीन हाथ लम्बी और इसकी गोलाई एक बित्ता होती थी। एकतन्त्री वीणा के माहात्म्य का वर्णन करते हुए शाङ्गदेव ने कहा है कि इसके दर्शन और स्पर्श से भोग, स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है और मनुष्य ब्रह्महत्यादिक पापों से मुक्त होता है। वीणा का दण्ड शिव है, तन्त्री पार्वती है, ककुभ विष्णु है, पत्रिका लक्ष्मी है, तुम्ब ब्रह्मा है, नाभि सरस्वती है, दोरक वासुकि है, जीवा चन्द्रमा है और दोरिका सूर्य है। इस प्रकार सर्वदेवमयी होने के कारण यह वीणा सर्वमंगला है।



संस्कृत साहित्य में नारद और सरस्वती तो वीणाधर प्रसिद्ध ही हैं, परन्तु अनेक साहित्यकारों ने जिस अवन्तिराज उदयन के चरित्र का वर्णन करके अपनी वाणी को प्रसिद्ध किया है, उसकी जगद्वशीकारिणी वीणा घोषवती की कथा भी अमर है। घोषवती ने ही महासेनपुत्री वासवदत्ता को उदयन के प्रणय-बन्धन में बाँध दिया था। श्रुति का कथन है कि अश्वमेध यज्ञ में सामवेदी लोग वीणा के साथ सामगान करें।

वीणावादन में दाहिने हाथ के व्यापार नौ, बाएँ हाथ के दो तथा दोनों के मिश्रित व्यापार तेरह होते हैं और बाज के प्रकार दस हैं और बोल चौबोस हैं। कुछ वीणाएँ अंगुलियों और कुछ काष्ठ के कोण नामक उपकरण से बजाई जाती थीं।

एक कुशल वीणावादक को श्रुति, स्वर, ग्राम, जाति, राग और ताल इत्यादि का वेत्ता, सुशारीर, स्थिरासन का अभ्यस्त, जितेन्द्रिय, निर्भर, बुद्धिमान, सावधान और गीतवादन-कोविद होना चाहिए। दोनों हाथ भी पूर्णतया इच्छानुसारी होने आवश्यक हैं।

सुषिर वाद्यों का महत्त्व तत् वाद्यों के समान ही है, क्योंकि दोनों का प्रयोजन एक है। शाङ्गदेव ने सुषिर वाद्यों के दस भेद बताए हैं—वंश, पाव, पाविका, मुरली, मधुकरी, काहला, तुंडुडकिनी, चुक्का, शृंग और शंख।

सुषिर वाद्य बाँस, ताँबे, चाँदी, लोहे या सोने के, चन्दन, रक्तचन्दन, खैर की लकड़ी, नीलकड़ी, हाथी दाँत के होते थे। सुषिर वाद्यों में प्रथम वंश (वंशी) है।

वंश का महत्त्व भी अद्वितीय है। शाङ्गदेव का कथन है कि वंश, वीणा और शरीर ये तीन स्वरोत्पत्ति के स्थान हैं; इन तीनों में ललित, मधुर और स्निग्ध होने के कारण वंश सर्वश्रेष्ठ है। यही नहीं, वंश को संगीत का प्रधान उपकरण बताते हुए शाङ्गदेव कहते हैं कि मनुष्य, वीणा और वंश के सहयोग से जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसके आकर्षण को विद्वान लोग जानते हैं।

प्राचीन आचार्यों के मत में वंश के सोलह भेद हैं परन्तु शाङ्गदेव ने इनके उन्नीस भेद माने हैं। वंशी की नली में सिर से दो, तीन या चार अंगुल छोड़कर एक छेद होता है। इस छेद को मुखरन्ध्र कहते हैं। मुखरन्ध्र से एक अंगुल दूर एक छेद होता है, जिसके खुले रहने पर वंश की सर्वोच्च ध्वनि होती है, इसे ताररन्ध्र कहते हैं। ताररन्ध्र से आध-आध अंगुल की दूरी पर सात छिद्र और होते हैं, जिनका आकार बेर की गुठली के समान होता है। एक आठवाँ छिद्र वायु के निकलने के लिए बनाया जाता है। नीचे दो अंगुल नली छूटी रहती है। वंश के इस प्रकार का नाम 'एकधीर' है। प्रत्येक प्रकार के वंश की नली का छिद्र कनिष्ठिका की मध्यग्रन्थि के बराबर चौड़ा होता है। मुखरन्ध्र और ताररन्ध्र के मध्य का अन्तर जितना-जितना बढ़ता जाएगा, वंश की ध्वनि उतनी ही गम्भीर होती जाएगी। मुखरन्ध्र और ताररन्ध्र का यह अन्तर बाईस अंगुल तक हो सकता है, परन्तु अतितार और अतिमंद्र ध्वनि वाले वंश अनुपयोगी होते हैं।



मतंगाचार्य का मत है कि पथिकों के प्रवास, प्रिया-विरह तथा शोकांत दशा के प्रदर्शन के समय मध्यलय में वंश की मृदु ध्वनि का प्रयोग किया जाना चाहिए, शृंगार के प्रदर्शन में द्रुत इत्यादि ललित ध्वनियों का प्रयोग उचित है तथा क्रोध व अभिमान के अवसरों पर वंश के द्वारा द्रुतलय में कम्पित तथा स्फुरित ध्वनियों का प्रयोग प्रभावोत्पादक होता है।

वंश के इन प्रभावों को जानकर ही मुरलीमनोहर (कृष्ण) ने इसे अपना प्रिय वाद्य बनाया था, व्यास से लेकर सूरदास तक सभी कवि मोहन की जादू-भरी वंशी के प्रभाव का वर्णन करते रहे हैं।

पाव, पाविका, मुरली और मधुकरी भी सुषिर वाद्यों के ही भेद हैं। काहली ताँबे, लोहे या सोने की बनती है, इसकी लम्बाई तीन हाथ होती है। इसमें 'हा हू' इत्यादि ध्वनियाँ निकलती हैं। काहली का प्रयोग वीरों के विरुदोच्चारण के लिए होता है, यदि काहली की लम्बाई दो हाथ हो तो इसे तुण्डकिनी कहते हैं। तुण्डकिनी का नाम तुरुतुरी या तित्तिरी भी है, इसका जोड़ा बजता है। चार हाथ की तुंडकिनी चुक्का कहलाती है। काहली के ये प्रकार वीरों के उत्साह का वर्द्धन करते हैं।

भैंस के सींग में बैल के सींग को फँसाकर शृंग नामक सुषिर वाद्य बनाया जाता था। इसकी ध्वनि गंभीर होती थी। यह वाद्य ग्वाल लोग प्रयोग में लाते थे।

'शंख' नामक वाद्य की बनावट साधारण शंख से कुछ पृथक् होती थी। 'हुम, युम, थो, दिगदित्' इत्यादि गंभीर और भयंकर ध्वनियों को उत्पन्न करके वीर योद्धा शत्रुओं के हृदय को कँपा देते थे।

अवनद्ध अर्थात् खाल से मढ़े हुए वाद्यों का कार्य गीत के शब्दों में प्रयुक्त अक्षरों का अनुकरण है। खंजरी जैसे कुछ अवनद्ध वाद्य केवल एक हाथ से बजाए जाते हैं। दोनों ओर मढ़े हुए वाद्य दोनों ओर दोनों हाथों से अथवा बायीं ओर हाथ से और दाहिनी ओर चोब से बजाए जाते हैं।

व्याकरणशास्त्र के आचार्यों का मत है कि भगवान् शंकर ने नृत्त के अन्त में ढक्का नामक वाद्य को चौदह बार बजाकर व्याकरण के आदिम चौदह सूत्र उत्पन्न किए। इन चौदह सूत्रों में सभी स्वर और व्यंजन हैं। इसलिए कुशल ढक्कावादक कोण अर्थात् वादनदण्ड के द्वारा ढक्का में सभी ध्वनियाँ उत्पन्न कर सकता है।

इन ध्वनियों के समूह जब अवनद्ध वाद्यों में उत्पन्न किए जाते हैं, तब वे पाट कहलाते हैं।

अवनद्ध वाद्यों में सबसे पहला पटह है। मार्ग पटह ढाई हाथ लंबी खैर अथवा लालचन्दन की लकड़ी से बनाया जाता था। इसकी परिधि साठ अंगुल होती थी, बीच में मोटाई अधिक रहती थी। दायीं मुहार की चौड़ाई साढ़े ग्यारह अंगुल तथा बायीं मुहार की दस अंगुल होती थी। दोनों ओर खाल से मढ़ा होता था। इसमें 'क ख ग घ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, र और ह' वर्ण निकलते थे। बायीं ओर



हाथ से इसमें 'देङ्' तथा दायीं ओर से 'झेङ्' ध्वनि उत्पन्न की जाती थी। पटह वादन दण्ड तथा हाथ दोनों से किया जाता था। पटह में निकलने वाले बोलों की संख्या अट्ठासी है।

मर्दल पटह से छोटा होता था। मर्दल का ही नाम मुरज तथा मृदंग भी है। पटह में निकलने वाले अक्षर तो मृदंग में निकलते ही हैं, उनके अतिरिक्त तत्, धी, थो, टें, हैं, न तथा दें भी निकाले जाते हैं। कुछ लोगों के मत में मृदंग में म, झ और भ भी निकाले जाते हैं, पटह में नहीं निकलते। कुछ आचार्यों के मत से मृदंग में केवल बत्तीस पाट हैं। पटह और मृदंग का प्रयोग गीत के अनुकरण में तो होता ही था, नाटक तथा युद्ध में भी इसका वादन संस्कृत साहित्य में वर्णित है।

अवनद्ध वाद्यों में मृदंग बजाने वालों के चार प्रकार होते हैं। वादिक, मुखरी, प्रतिमुखरी और गीतानुग। वादिक का काम मुख्यतया अपने पक्ष का मण्डन होता था। मुखरी रंगमंच पर प्रयोग के समय अन्य मृदंगिकों का नायक होता था, जिसके संकेतों का आश्रय लेकर अन्य मार्दङ्गिक गीत और नृत्त की संगत करते थे। प्रति-मुखरी मुखरी का सहायक होता था तथा गीतानुग का कार्य गीत का अनुकरण होता था। मार्दङ्गिकों के वृन्द में दो से चार तक मार्दङ्गिक होते थे जो मुखरी के संकेतों पर चलते थे।

मृदंग वादक के हाथ वादक की इच्छानुकूल आचरण करने वाले और छोटे होने चाहिए। नख दृढ़ हों, अंगुलियाँ चलने पर भी न पसीजें, चिकने हों, फँस सकने वाले, न थकने वाले और उपयुक्त आघात करने वाले हों।

वादक को हस्त तथा वादनदण्ड के प्रहार को जानने वाला, गीतवादन में चतुर, यति ताल और लय से अभिज्ञ, पाटज्ञ, हस्तगण-युक्त, पात्र के मनोनुकूल वादन में समर्थ, वाद्य ध्वनियों का मर्मज्ञ, सम इत्यादि ग्रहस्थानों में निपुण, गीत वादन तथा नृत्य के दोषों को छिपाने में सफल, गीत तथा नृत्त के प्रमाण को जानने वाला एवं ग्रह मोक्ष के अवसरों को समझने वाला होना चाहिए।

आकार, स्वरूप, ध्वनि, प्रयोग इत्यादि की भिन्नता के कारण अवनद्ध वाद्यों के अनेक भेद हैं। कुछ छोटे अवनद्ध वाद्यों को स्वयं बजाती हुई नर्तकियाँ नाचती थीं। शार्ङ्गदेव ने तेईस प्रकार के अवनद्ध वाद्यों का वर्णन किया है। इसमें भेरी तथा निस्सारण प्रधानता युद्ध वाद्य थे। भेरी दाहिनी ओर वादनदण्ड से तथा बायीं ओर हाथ से बजाई जाती थी। इसका शब्द शत्रुओं के लिए भयंकर होता था। निस्सारण के शब्द से कायरों के हृदय फट जाते थे, दुन्दुभि अर्थात् धौंसा वादनदण्ड के द्वारा किया जाता था। इसकी ध्वनि मेघगर्जन के समान गंभीर होती थी। मंगल कृत्यों के अवसर पर मंदिरों में तथा विजयोत्सवों में तो यह बजाया ही जाता था। युद्ध के समय जब सहस्रों भेरियाँ तथा सैकड़ों ढक्काएँ बजती थीं, तब उस भयंकर शब्द समूह में भी दुन्दुभि-घोष स्पष्ट सुनाई देता था। 'वेणी-संहार' नाटक में दुन्दुभि-ध्वनि को सुनकर भीम कहता है कि यह दुन्दुभिवादन किसने किया, जिसकी ध्वनि सागर-



मथन के समय, मंथन के कारण उछल-उछल कर गुफाओं में भरे हुए जल से युक्त और घूमते हुए मंदराचल की भयंकर ध्वनि के समान है, गर्जन करते हुए प्रलय-कालीन मेघों के पारस्परिक संघर्षण के शब्द से समता करती है, द्रोपदी के क्रोध की अग्रइतिका है और दुर्योधन इत्यादि की मृत्यु का पूर्व संदेश देने वाली उस निर्धारित ध्वनि के समान है, जो मेघ और पवन के घोर संघर्ष से उत्पन्न हुई है।

घनवाद्य प्रधानतया कांसे के होते हैं। शाङ्गदेव ने घनवाद्यों के आठ भेद बताए हैं—ताल, कांस्यताल, घंटा, क्षुद्रघण्टिका, जयघंटा, कभ्रा, शुक्ति और पट्टवाद्य। ताल इसमें प्रधान वाद्य है। जिसमें सभी पाट निकलते हैं। इसका प्रधान कार्य ताल का धारण करना है। कांस्य-ताल में निकलने वाले मुख्य शब्द झ, न, क ट हैं।। घण्टा का वादन देवार्चन के समय होता है। युद्धवाद्यों में भी इसकी गणना है। इसके शब्द से सैनिक मूर्छित हो जाते थे। क्षुद्रघण्टिकाओं का प्रयोग नृत्य में होता है। नर्तकियाँ इन्हें बाँधकर नाचती हैं, ये एकसाथ बजती हैं। जयघंटा डण्डे से बजाई जाती है। कभ्रा लकड़ी की होती है, एक-एक हाथ में दो-दो लेकर बजाई जाती हैं। शुक्ति लोहे के वादनदंड से बजाई जाती थी इसे किरकिट भी कहते थे। पट्टवाद्य गोद में रख कर हाथ से बजाया जाता था।

प्राचीन काल में रंगमंच पर आकर अभिनय करने वाले एक पात्र के अभिनय के साथ करने के लिए इकसठ व्यक्ति होते थे। पात्र सहित बासठ व्यक्तियों को सम्प्रदाय कहा जाता था। सम्प्रदाय के एक पात्र, दो प्रधान गायक, आठ सहगायक दो वंश-वादक, दो काहला-वादक, एक मुखरी, दो प्रतिमुखरी, बत्तीस मारदंगिक, दो कटरा बजाने वाले, दो तालधर तथा आठ कांस्यतालधर होते थे तथा वीणा बजाने वालों की संख्या इन बासठ से पृथक् होती थी।

भारतीय रंगमंच के लुप्तप्राय हो जाने के कारण इनमें से बहुत से वाद्य केवल इतिहास की वस्तु रह गए। उत्तर भारत में तो इनके प्रयोग में भी अन्तर आ गया है। वीणा जैसे वाद्य से गीतानुकरण सर्वथा छूट गया है। भारतीय संगीत में सर्व-मोहकता को पुनः लाने के लिए परिश्रमपूर्वक खोज की आवश्यकता है। पिछले प्रायः एक सहस्र वर्षों में संगीत के क्षेत्र में हमने पाया कम और खोया बहुत अधिक है।

□ □ □





## लोक-संगीत के वाद्ययंत्र

प्राचीन काल से मनुष्य भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए गीत, वाद्य और नृत्य को माध्यम बनाता आ रहा है। शिक्षा या ज्ञान की दृष्टि से मनुष्य वर्ग के चार भेद किए जा सकते हैं—१. अपठित, २. अल्प पठित, ३. पठित और ४. पूर्ण पठित।

सभी वर्गों की भाषा, कला और संस्कृति एक-दूसरे से भिन्न होती है इसीलिए उनके उत्पादन भी अलग-अलग होते हैं। इन सबके गीत, नृत्य और वाद्ययंत्र समाज, देश और काल के अनुसार अपना अलग अस्तित्व और अलग सौन्दर्य रखते हैं। आदिवासी समूह के मंडलाकर नृत्य पश्चिम के बॉलरूम या बैले नृत्य तक पहुँचकर मानो आदिम सभ्यता की कहानी खुद-ब-खुद सुनाने लगते हैं।

सारंगी एक तार पर बजती है, तीन तारों पर बजती है और १५ तारों से सज्जित होकर भी बजती है। व्यावहारिक ज्ञान के साथ-साथ वाद्ययंत्रों के तार, आकृति और वादन-तकनीक का विकास भी स्वयं होता जाता है। इसी लिए 'नाट्यशास्त्र' के रचयिता महर्षि भरत ने कहा है कि जो कुछ भी शास्त्र में निहित है, वह सब लोक से लिया गया है।

लोक-संगीत की सहजता और उसका सौन्दर्य किसी से छिपा नहीं है। भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियों के लिए लोक में अनगिनत वाद्ययंत्र पाए जाते हैं। रासलीला के एक दुर्लभ पद में अनेक वाद्ययंत्रों के नाम गिनाए गए हैं, जो दृष्टव्य है :—

डोर डोल डफ टडंकार डिमडिमि खंजरि नगार झांझ मंजरि झंकार, बिगुल  
बैन बीन तास तूरतूरा ताम्बूर तोरही, तरंग नसतरंग जलतरंग बीन रसबीन  
फूंकबीन प्यान पखावज मृदंग मुरलि मुहनाल ताल करताल, तबल तबला तोंबी तयूस  
सहनाई, सितार सुरबहार सुरसिंगार सीठी सिरोंद सारंगी सरंदा सदा फरियाद,  
चंग मुरचंग दारा चिकारा घड़ोच घूंघरु नफीरि घंट विजयघंट घरियाल कानुन  
सितार, शंख शंखबीन भेरी दुन्दुभी रबाब येते येते बाज बाजे-बाजे, साजे सब नीके  
साज, मोद गोद ही के सब ही नन्दलाल प्रभा पेखि ब्रह्मादिक नारद शारद शंकर  
सुर सुरेश शेषनाग नर किन्नर गन्धर्व वारत हिय हरष प्रान ।

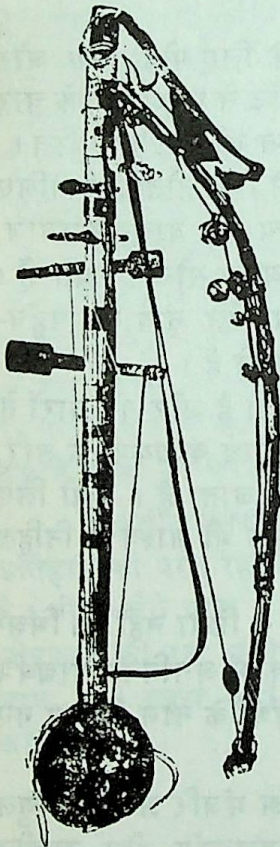
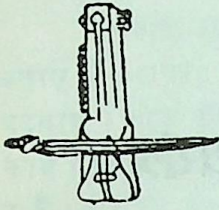
संगीत-विशारद



इस पद में निहित वाद्ययंत्रों में से अनेक वाद्य आज लुप्त हो चुके हैं इसलिए कुछ प्रचलित लोक-वाद्ययंत्रों की चर्चा यहाँ की जाएगी, जिनका ज्ञान आज के शास्त्रीय संगीतकार को अवश्य होना चाहिए।

## तत लोक-वाद्य

### सारंगी



शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त होने वाली सारंगी से यह कुछ छोटी होती है, जिसमें एक, दो या तीन तार होते हैं। गीत के बोलों के अनुसार अल्प स्वर-समुदाय को वादन के द्वारा इतना मुखर कर दिया जाता है कि लगता है, जैसे सारंगी के स्वर और गीत के शब्द एकरूप हो गए हों। राजस्थान में प्राचीन कथा सुनाने वाले या देवी के मन्दिर में स्तुति गाने वाले भगत इसका उपयोग करते हैं। इसे गज से बजाया जाता है, जिसमें घुँघरू भी लगे होते हैं।

### रावणहत्था

यह राजस्थान का प्राचीनतम लोकवाद्य है, जिसे नारियल के ऊपर बाँस लगाकर बनाया जाता है। कसे हुए चमड़े पर सुपाड़ी की लकड़ी की घोड़ी या घुड़च लगाकर नौ तार लगाए जाते हैं। गज से सारंगी की भाँति इसका वादन किया जाता है। राजस्थान के भोपे इसके वादन से प्रायः पाबूजी की लोककथा का गायन करते हैं। गज के तार और रावणहत्था का प्रमुख वाज का तार घोड़े की पूँछ के बालों का होता है। गज में ताल देने के लिए घुँघरू बँधे होते हैं। रावणहत्था को आदि वीणा भी कहा जाता है।

### कामाडचा

यह सारंगी की तरह का वाद्य है, जिसकी तबली गोल होती है। इसमें सत्ताईस तार होते हैं। स्वरों में गूँज और गम्भीरता के कारण कामाडचा की ध्वनि का प्रभाव कुछ अलग प्रकार का होता है। मराठी सारंगी से यह मिलता-जुलता वाद्य है। नाथ-पंथी साधु कामाडचा पर भर्तृहरि एवं गोपीचन्द की कथा के ही गीत गाते हैं। यह राजस्थान का प्रमुख वाद्य है।



## रबाब



सर्वप्रथम अहोबल के 'संगीत पारिजात' में 'रबाब' का उल्लेख मिलता है। इसका पेट सारंगी से कुछ लंबा त्रिभुजाकार तथा डेढ़गुना गहरा होता है। शास्त्रीय संगीत का वर्तमान सरोद इसी का परिष्कृत रूप है। इसमें तीन से सात तार तक होते हैं। यह बाद्य अफ़-गानिस्तान से पंजाब तक प्रचलित रहा है और अनेक उत्कृष्ट रबाबियों की परम्परा में एक प्रतिष्ठित लोक-बाद्य के रूप में इसकी ख्याति रही है। इसे जवा से बजाया जाता है।

## इकतारा



किसी तूँबे पर दो-तीन हाथ का बाँस जोड़ दिया जाता है तो इकतारा बन जाता है। तूँबे को आधा काटकर चमड़े से मढ़ दिया जाता है। इसके बाद बाँस में लगी खूँटी के आश्रय से एक तार या दो तार लगाकर इसे बना लेते हैं। घुमक्कड़ साधुओं के पास प्रायः इकतारा होता है, जिस पर वे स्वान्तःमुखाय भजन गा लिया करते हैं। एकतार लगा हो तो 'इकतारा' और दो तार लगे हों तो उसी को 'दोतारा' कहते हैं।

## सुषिर वाद्य

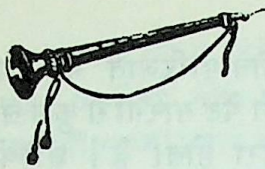
### अलगोज़ा

तीन या चार छिद्रों वाली बाँस से बनी 'बाँसुरी' को 'अलगोज़ा' या 'मुरली' कहते हैं। 'अलगोज़ा' प्रायः दो होते हैं, जिन्हें एक साथ मुँह में दबाकर फूँक से बजाया जाता है। दोनों अलगोज़े एक-दूसरे के पूरक होते हैं। जानवरों को चराते समय या किसी मेला इत्यादि के अवसर पर अलगोज़े की ध्वनि गूँज उठती है, मानो 'अलगोज़ा' उत्सव का प्रतीक हो।

### सिगी

सिगी, सींग या शृंग एक ही बात है। यह भैंसे और हिरन के सींग का होता है अथवा धातु से बनाया जाता है। कंठ से उत्पन्न ध्वनि को दबाकर वायु के सहारे से सिगी द्वारा वादन करने पर तीन-चार स्वर निकल आते हैं। लोक-जीवन में सिगी-वादन के द्वारा अलग-अलग अवसरों पर इच्छित प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। युद्ध के समय बजने पर इसे 'रण-सिगा' भी कहते हैं।





## नफ़ीरी

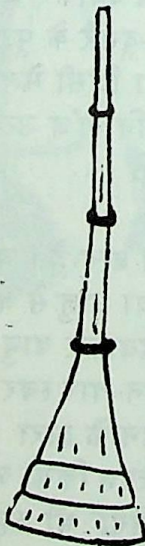
‘नफ़ीरी’ को ‘सहनाई’ या ‘सुन्दरी’ भी कहते हैं। इसका शुद्ध नाम है ‘शहनाई’। यह एक हाथ लम्बी लाल चन्दन की लकड़ी की बनी होती है, जिसमें आठ छेद होते हैं। इसका मुख चार अँगुल लम्बा होता है, जिसमें हाथी-दाँत के पत्ते लगे रहते हैं, इन्हें मुख में दबाकर फूँक के माध्यम से मधुर स्वर बजाये जाते हैं, इसलिए इसे ‘सुनादी’ भी कहते हैं। दक्षिण में इसके अनेक आकार-प्रकार मिलते हैं। वहाँ ‘शहनाई’ के कुछ लम्बे रूप को ‘नागस्वरम्’ के नाम से जाना जाता है। लोक में सभी मांगलिक पर्व ‘नफ़ीरी’ या ‘शहनाई’ से आरम्भ होते हैं।

## नड़

माता या भैरव का गुण-गान करने के लिए राजस्थान के भोपे लोग मशक की तरह के जिस वाद्य को फूँक द्वारा बजाते हैं, उसे ‘नड़’ कहते हैं। उत्तर-भारत में इसे भोपे का ‘बीन’ पुकारा जाता है। मुँह की फूँक द्वारा मशक में पहले पूरी हवा भर ली जाती है, फिर बाँसुरी की तरह उसमें लगी हुई नली के तीन छिद्रों पर अँगुली के संचालन से स्वर पैदा किए जाते हैं। एक बार भरी हुई हवा काफी देर तक काम देती है।

## तुरही

लगभग चार हाथ लम्बी ‘तुरही’ धातु से बनी होती है, जो प्रायः मांगलिक पर्वों पर बजाई जाती है। महाराष्ट्र में इसका बहुत प्रचार है। इसमें कोई छिद्र नहीं होता, केवल हवा फूँककर उसके विभिन्न दबावों से ऊँचे-नीचे स्वरों की उत्पत्ति की जाती है, इसीलिए इसमें दो-तीन स्वर बहुत तेज़ आवाज़ से निकलते हैं। इसकी आकृति अर्धचन्द्राकार रूप में होती है।





## बोन



यह सँपेरों का मुख्य वाद्य है, जिसे 'पुंगी' भी कहते हैं। इसकी छोटी तुम्बी में बाँस की दो नलिकाएँ लगी रहती हैं और वजानेवाले हिस्से में काठ की एक पोली नली रहती है। इसमें तीन या चार सुराख होते हैं और उन्हीं पर वादन करके सँपेरे साँप को झुमाते हैं। लगभग सवा हाथ की लम्बाई होती है।

## शंख



यह एक आदि वाद्य है, जिसे प्रकृति ने मनुष्य को दिया है। सागर-तल के समुद्री जीव का ढाँचा ही 'शंख' कहलाता है। मन्दिरों में पूजा के समय इसका प्रयोग किया जाता है। प्राचीन काल में युद्ध की शुरुआत शंख-वादन से ही होती थी। इसका पेट बारह अँगुल का होता है। हवा फूँककर शंख-वादन किया जाता है जिसमें वायु के दबाव और होठों की गति से एक ही स्वर को तुरही-वादन की तरह ऊँचा-नीचा करके प्रसारित किया जाता है। कुछ लोग अपनी कुशलता से इसमें विभिन्न स्वर बजा देते हैं। 'शंख' अनेक आकार-प्रकार के होते हैं जिनमें सभी वादन के योग्य नहीं होते।

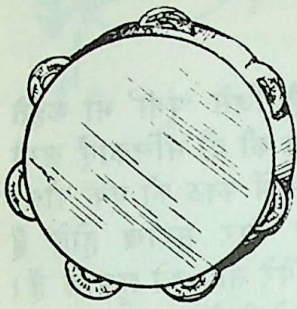
## अवनद्ध वाद्य

### डमरू



शिवजी का डमरू जग-प्रसिद्ध है। बन्दर नचाने-वाले नट, जादूगर तथा जोगी लोगों का यह एक प्रतीक वाद्य है। एक से दो बालिशत तक लम्बा 'डमरू' दोनों सिरों पर चमड़े से मढ़ा होता है। इसके दोनों मुख रस्सी से कसे रहते हैं। इसके बीच का हिस्सा एकदम पतला होता है, जिसमें एक रस्सी अलग से लटकी रहती है और रस्सी के मुख पर घुण्डी बनी होती है। हाथ को इधर-उधर घुमाने से घुण्डीदार रस्सी डमरू के दोनों मुखों पर चोट करती है तो 'डिम-डिम' डिम-डिम ध्वनि निकलती है। इसके छोटे स्वरूप को 'डुग-डुगी' या 'डिम-डिमी' कहते हैं।





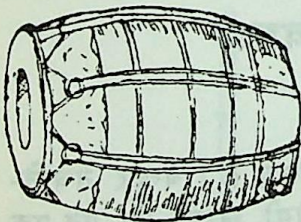
### चंग (डफ़)

चार अँगुल चौड़े लकड़ी के घेरे पर चमड़े से मढ़ा हुआ यह चक्राकार वाद्य १६ से २० अँगुल व्यास तक का होता है। इसे बाएँ हाथ से पकड़कर हृदय के समीप स्थित कर दाहिने हाथ की थाप द्वारा बजाते हैं। इसके छोटे स्वरूप को 'डफली' या 'ढपली' कहते हैं। 'चंग' के जरिए लोक-गाथाओं और शैरो-शायरी की प्रस्तुति भी की जाती है। होली पर ग्रामीण लोग इसके साथ लोक-गीत गाते हैं। 'चंग' के बड़े स्वरूप 'डफ़' कहलाते हैं।



### ढोल

'ढोल' का आकार बेलन के समान होता है, जो अन्दर से पोला रहता है और दोनों ओर चमड़े से मढ़ा रहता है। इसे दाहिने हाथ की हथेली से विवाह इत्यादि के अवसरों पर बजाते हैं। एक हाथ में लकड़ी लेकर आघात किया जाता है और दूसरे हाथ में अँगुलियों तथा हथेली-पंजे से ताड़न किया जाता है। शायद ही कोई ऐसा प्रान्त होगा जहाँ 'ढोल' का कोई न कोई रूप प्रचलित न हो। 'ढोल' की अनेक आकृतियाँ पाई जाती हैं, जिन्हें 'मादल' आदि नामों से पुकारा जाता है।



### ढोलक

यह 'ढोल' की भाँति छोटे आकार की होती है, जिसे दोनों हाथों से बजाया जाता है। मांगलिक पर्वों पर स्त्रियों के गीत प्रायः 'ढोलक' की ताल पर ही गाए जाते हैं।

### ताशा

यह मुगलकालीन वाद्य है। मिट्टी की दो बालिशत व्यास की कटोरी जैसे वाद्य को जब चमड़े से मढ़ दिया जाता है तो उसे 'ताशा' कहते हैं। दोनों हाथों में दो डन्डियाँ (खपच्चियाँ) लेकर तड़बड़-तड़बड़ जैसे शब्द निकाले जाते हैं। 'ताशा' को गले में लटका लिया जाता और 'ढोल' के आश्रय से विभिन्न लयकारियाँ प्रस्तुत की जाती हैं।



## खंजरी



‘डफली’ के घेरे में तीन या चार जोड़ी झाँझ लगे हों तो उसे ‘खंजरी’ कहते हैं। इसका वादन ‘चंग’ की तरह हाथ की थाप से किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों का यह प्रसिद्ध वाद्य है। ‘बाँसुरी’ के साथ इसका वादन मनोहारी होता है।

## नगाड़ा (नक्कारा)



ढोल की थाप और ‘नगाड़े’ की चोट मशहूर है। प्याली-नुमा मिट्टी या लकड़ी की कुण्डी को चमड़े से मढ़कर ‘नगाड़ा’ बनता है। दो नुकीली लकड़ियों से लोक-गीत में, प्रायः नौटंकी के तमाशे में, नगाड़ा-वादन किया जाता है और ताल-लय के विविध रूप प्रस्तुत किए जाते हैं। इसे ‘नक्कारा’ भी कहते हैं। ‘ढोल’ और ‘नक्कारा’ के सम्मिलित वादन को ‘नौबत’ कहते हैं। ‘नगाड़े’ का छोटा रूप ‘दमामा’ कहलाता है।

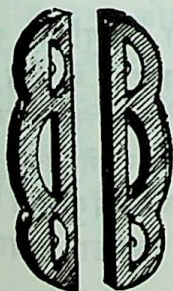
## घन वाद्य

### घण्टा (घड़ियाल)



एक बालिशत से दो बालिशत के व्यास वाला पीतल या अन्य धातु का गोलाकार टुकड़ा ‘घण्टा’ कहलाता है, जिसे एक डोरी से लटकाकर लकड़ी के हथोड़े से चोट करके बजाया जाता है। इसका प्रयोग मंदिरों में पूजा-अर्चना के समय किया जाता है। आकृति की विविधता से छोटे-बड़े ‘घण्टे’ होते हैं। लटकने वाले ‘घण्टे’ जो केवल डोरी हिला देने से बज जाते हैं, प्रायः देवालयों में लटके रहते हैं। ‘घड़ियाल’ भी इसी परिवार का धातु-निर्मित वाद्य होता है।

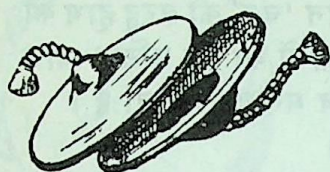
### कठताल (खड़ताल)



लकड़ी के बने हुए ग्यारह अँगुल लम्बे गोल डण्डों को ‘कठताल’ कहते हैं। दोनों टुकड़े हाथ में ढीले पकड़कर बजाए जाते हैं, जिससे कट-कट की ध्वनि निकलती है। अन्य वाद्यों के साथ केवल ताल और लय में चमक पैदा करने के लिए ‘कठताल’ बजाते हैं। लकड़ी के दो डण्डों से भी इस प्रकार जब वादन किया जाय तो उन्हें डण्डा (चट्टा) कहते हैं। कठताल-वादन के प्रभाव में तीव्रता और बिचित्रता के लिए लकड़ी की कंधी और अनाज फटकने वाले सूप को भी गाने के साथ प्रयोग में लाया जाता है, जिसके वादन में केवल इच्छित मात्राओं पर ताल देना ही वादन का लक्ष्य रहता है।



## झाँझ (मँजीरा)



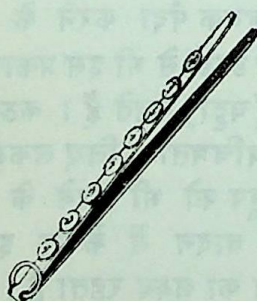
आठ से सोलह अँगुल व्यास तक के धातु के गोल टुकड़े 'झाँझ' कहलाते हैं। इनके मध्य में डोरी निकालकर तथा उस पर कपड़ा बाँधकर हाथ से पकड़ने योग्य कर लेते हैं और फिर एक-एक हाथ में एक-एक टुकड़ा पकड़कर दोनों को एक-दूसरे के आघात से बजाते हैं, जिससे मनचाही झंकार निकाली जाती है। झाँझ का छोटा स्वरूप 'मँजीरा' कहलाता है। प्रायः देवी-देवताओं की स्तुति के समय 'झाँझ-मँजीरा' का वादन किया जाता है। धातु की 'थाली' पर भी लकड़ी से चोट लगाकर झाँझ-जैसी ध्वनि पैदा कर लेते हैं।

## घुँघरू



धातु के पोले गोल टुकड़े 'घुँघरू' कहलाते हैं, जिनके अन्दर लोहे या कंकड़ की छोटी-छोटी गुटिकाएँ डाल दी जाती हैं। बहुत सारे घुँघरूओं को इकट्ठा करके किसी डोरी से बाँधकर एक लड़ी बना ली जाती है। इसी लड़ी को पैरों में बाँधकर नर्तक लोग नृत्य करते हैं। कुछ लोग तबला-वादन के समय एक हाथ में 'घुँघरू' बाँधकर इस तरह वादन करते हैं, मानो दो व्यक्ति अलग-अलग बजा रहे हों। छोटे आकार के चाँदी के 'घुँघरूओं' से पैरों का जो ज़ेवर बनाया जाता है उसे 'पायल', 'पायज़ेब' या 'पेंजनियाँ' कहते हैं। घुँघरूओं को 'घर्घरिका' और 'क्षुद्रघण्टिका' नामों से भी पुकारा जाता है। 'घुँघरू' के बिना किसी भी नृत्य की कल्पना नहीं की जा सकती।

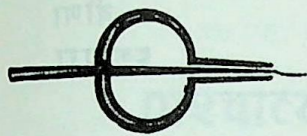
## चिमटा



लोहे की दो-तीन हाथ लम्बी दो पट्टियों को मिलाकर 'चिमटा' बनता है। पट्टियों के बीच में झंकार के लिए लोहे की गोल-गोल पत्तियाँ लगा दी जाती हैं। बाएँ हाथ में एक ओर से चिमटा पकड़कर दाहिने हाथ से अँगूठा और अँगुलियों के झटके से भजन-कीर्तन के समय 'चिमटा' बजाए जाने का रिवाज है।



## मुखचंग



इसे 'मुंहचंग' या 'मोरचंग' भी कहते हैं। इसका आकार त्रिशूल की तरह होता है। इसकी लम्बाई पाँच अंगुल की होती है। 'मुखचंग' को दाँतों से दबा कर बीच की पत्ती को अँगुली द्वारा स्प्रिंग की तरह झटकारकर बजाते हैं। मुख द्वारा हवा में फेंकने से जु-जु की ध्वनि पत्ती के कम्पनों से मिलकर ऊँची-नीची आवाज़ में गूँजती रहती है। इसे सुषिर वाद्य भी कह सकते हैं और अवनद्ध वाद्य भी। लोक-वाद्यों को सम्मिलित रूप में बजाते समय उनमें 'मुखचंग' की ध्वनि अपना एक अलग ही आकर्षण रखती है।

## मटका



पानी रखने वाला या दाल पकाने वाला मिट्टी का बड़ा 'मटका' स्वयं में एक प्रभावशाली तालवाद्य है, जिसका सबसे अधिक प्रचार दक्षिण-भारत में है। 'मटका' को गोद में रखकर दोनों हाथों की अँगुलियों तथा हथेलियों के आघात से वादन किया जाता है। उत्तर-भारत में 'मटका' लोक-वाद्य की श्रेणी में गिना जाता है और दक्षिण में 'घटम्' के नाम से शास्त्रीय वाद्यों में गिना जाता है।

इस प्रकार लोक-संगीत के सभी वाद्ययंत्र हमारी ऐसी धरोहर हैं, जिनमें समाज की भावनाएँ अभिव्यक्त होती हैं। हर्ष-शोक, राग-विराग सभी की सहज अभिव्यंजना लोक-वाद्यों के माध्यम से सरलता पूर्वक होती है।

काल के प्रभाव से अनेक लोक-वाद्य और उनके वादक समाप्त हो चुके हैं, क्योंकि उन्हें कोई प्रश्रय कभी नहीं मिल पाया। संतूर-जैसे कुछ लोकवाद्य शास्त्रीय संगीत की श्रेणी में आ गए हैं और हारमोनियम-जैसे कुछ पाश्चात्य तथा भारतीय वाद्य लोक-संगीत में प्रचलित हो गए हैं। बैजो-जैसे वाद्य अधर में ही लटके हुए हैं, जिनकी इज्जत न शास्त्रीय संगीतज्ञ करते हैं और न लोक संगीतकार।

□ □ □



## वाद्य-वर्गीकरण

### तत्त वाद्य

सारंगी  
सितार  
वाँयलिन

कामाडचा  
तानपूरा  
गिटार

इसराज  
वीणा  
इकतारा

### सुषिर वाद्य

अलगोज़ा  
बाँसुरी  
सिंगी

नफ़ीरी  
शहनाई  
बुरही

हारमोनियम  
शंख  
क्लार्नेट

### भवनद्र वाद्य

मृदंग  
खंजरी  
ढोल

तबला  
नगाड़ा  
चंग

ढोलक  
डमरू  
ताशा

### घन वाद्य

अलतरंग  
करताल  
घण्टा

मँजीरा  
घंटातरंग  
घुंघरू

झाँझ  
पियानो  
संतूर

□ □ □



## पाश्चात्य संगीत के वाद्ययंत्र

पाश्चात्य देशों में स्वरांकन प्रणाली का विकास तो हुआ ही है, वाद्ययंत्रों के क्षेत्र में भी अच्छी प्रगति हुई है। वैज्ञानिक ढंग से उनका विकास और प्रचार हुआ है।

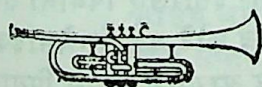
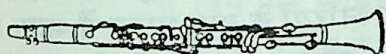
हारमोनियम और वॉयलिन जैसे पाश्चात्य वाद्य तो भारतीय संगीत जगत् में घुल-मिल गए हैं लेकिन कुछ अन्य पाश्चात्य वाद्ययंत्र भी काफी लोकप्रिय हुए हैं, जिनका विवरण निम्नवत् है :—

### क्लैरीनेट (Clarinet)

यह एक विदेशी सुषिर वाद्य है। बाँसुरीनुमा इस वाद्य के अन्दर मुक्तपत्ती (रीड) होती है। मन्द्र सप्तक और तार सप्तक के सभी स्वरों को क्लैरीनेट पर आसानी से बजाया जा सकता है। किसी भी बैण्ड में क्लैरीनेट मुख्य वाद्य के रूप में रहता है। दक्षिण भारत में क्लैरीनेट पर आज भी शास्त्रीय तथा लोक धुनें बजायी जाती हैं।

### ट्रम्पेट (Trumpet)

यह एक सुषिर वाद्य है। जो विदेशी वाद्यों के बैण्ड का एक प्रमुख वाद्य-यंत्र है। इस पर ऊँची और तीखी स्वरावलियों को प्रस्तुत किया जाता है। जागरण और युद्ध सम्बन्धी पृष्ठभूमि के लिए निर्मित संगीत में ट्रम्पेट महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसीलिए मिलिटरी बैण्ड में इसको प्रमुख स्थान दिया गया है।



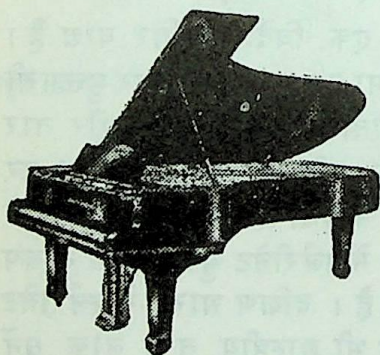


## गिटार (Guitar)



भारतीय सुगम संगीत में गिटार महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह एक विदेशी तत वाद्य है। गिटार दो प्रकार के होते हैं—१. हवाईन गिटार (Hawaiian Guitar) और २. स्पेनिश गिटार (Spanish Guitar)। 'हवाईन गिटार' 'स्टील' की रोड (Bar) को तारों पर रखकर बजाया जाता है और 'स्पेनिश गिटार' पदों पर उँगलियाँ रखकर बजाया जाता है। वैसे दोनों प्रकार के गिटारों की बनावट प्रायः एक जैसी होती है। गिटार का एक तीसरा प्रकार भी होता है जिसे 'इलेक्ट्रिक गिटार' कहते हैं। बिजली से बजने के कारण इसे अन्दर से पोला रखने की जरूरत नहीं होती। इसीलिए इसकी शक्ल हवाईन और स्पेनिश गिटार से भिन्न होती है। भारत के संगीतकार गिटार पर शास्त्रीय संगीत भी प्रस्तुत करते हैं।

## पियानो (Piano)



यह एक विदेशी घन वाद्य है। जो लगभग १८वीं शती से प्रयोग में आने लगा है। यह हारमोनियम की तरह का एक वृहद मेज़नुमा वाद्य होता है जो ईसाई मिशनरियों के साथ भारत में आया। इसमें ७ या ७½ सप्तक तक होते हैं और ८५ के लगभग परदे होते हैं। तारों पर टंकोर (आघात) से बजने के कारण इसकी आवाज़ बहुत मधुर होती है। बड़े-बड़े गिरजाघर, नाचघर और अँग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पियानो की प्रमुखता रही, लेकिन विज्ञान की उन्नति और विद्युत शक्ति के प्रयोग की वजह से बड़ी वस्तुओं का स्थान छोटी वस्तुएँ लेती जा रही हैं। इसीलिए पियानो तथा ऑर्गन जैसे बड़े वाद्य अब छोटे-बड़े सिन्थेसाइजर्स के रूप में विकसित होकर आ गए हैं जिससे पियानो ही नहीं, बल्कि सैकड़ों इच्छित वाद्ययन्त्रों की आवाज़ निकाली जा सकती है। पियानो दोनों हाथों से बजाया जाता है जिसमें सभी उँगलियों का प्रयोग होता है। शान्तिदायक मधुर संगीत के लिए इसका प्रयोग आज भी किया जाता है।





## मण्डोलिन (Mandolin)

यह एक विदेशी तंतु वाद्य है जिसमें कुल १८ परदे और आठ तार होते हैं। मण्डोलिन को एक सैल्यूलाइड के पत्ते जैसी वस्तु से बजाते हैं जिसे 'जवा' 'प्लैक्टम' या 'स्ट्राइकर' भी कहते हैं। प्रायः सरल संगीत के कार्यक्रमों में गिटार और मण्डोलिन जैसे वाद्यों का प्रयोग प्रचुरता से किया जाता है। फ़िल्मी गीतों में इससे एक अलग प्रकार का सौंदर्य बढ़ जाता है। अतः पचास प्रतिशत से अधिक गीतों में मण्डोलिन का प्रयोग मिलता है। इसे बैठकर या खड़े होकर दोनों प्रकार से बजाया जा सकता है। इसे सीने से सटाकर, सीधे हाथ को मण्डोलिन के निचले हिस्से की ओर से ( जहाँ कि तार लगाने की कीलें-सी लगी रहती हैं ) घुमाकर पकड़ना पड़ता है। हाथ का अगला भाग वाद्य के ऊपर होता है जो तारों से सीधी रेखा में होता है। हाथ की कलाई, घुड़च (ब्रिज) के ऊपर मुड़ी रहती है। वाद्य की गर्दन, बाएँ हाथ के अँगूठे और तर्जनी के अन्तिम जोड़ के मध्य में रहनी आवश्यक है।

## माउथ ऑर्गन (Mouth Organ)

यह एक विश्व प्रसिद्ध विदेशी सुषिर वाद्य है जो १८३० ई० में प्रचार में आया। इसे हारमोनिका, क्रोमैटिक हारमोनिका या क्रोमोनिका इत्यादि नामों से पुकारते हैं। यह इतना छोटा वाद्य है जिसे एक हथेली से पकड़ मुख द्वारा बजाया जाता है और आसानी से जेब में रखा जा सकता है, यह लकड़ी का बना होता है जिसमें हारमोनियम वाले मुक्त पत्ती के रीड्स लगे होते हैं। इसके अनेक छिद्रों में जब बाँसुरी की तरह फूँक मारी जाती है अथवा बाहर की हवा मुँह से ही खींची जाती है तो शुद्ध और कोमल सभी स्वर बारी-बारी से प्राप्त हो जाते हैं। संवादी तथा कॉर्ड बनाने वाले स्वर-समूहों को एकसाथ बजाने से इस वाद्य की ध्वनि बड़ी आकर्षक हो जाती है। उस समय ऐसा नहीं लगता कि किसी छोटे वाद्य द्वारा ऐसा संगीत भी प्रस्तुत हो सकता है। माउथ ऑर्गन को बाएँ हाथ से इस प्रकार पकड़ना पड़ता है कि मन्द्र सप्तक के स्वर बायीं ओर रहें। इसके नीचे की ओर अँगूठा रहता है और ऊपर की ओर तर्जनी। जिह्वा के दबाव और मुख के अन्दर आने-जानेवाली वायु को नियन्त्रित करके इस वाद्य के द्वारा किसी भी ध्वनि या गीत को आसानी से पेश किया जा सकता है। विदेश में इसके एकाकी वादन एवं बैण्ड बनने की पद्धति प्रचलित हो गई है।





## मैण्डोलिन (Mandolin)

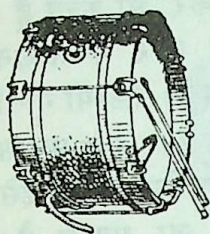
यह एक विदेशी तत वाद्य है जिसमें कुल १८ परदे और आठ तार होते हैं। मैण्डोलिन को एक सैल्यूलाइड के पत्ते जैसी वस्तु से बजाते हैं जिसे 'जवा' 'प्लैक्ट्रम' या 'स्ट्राइकर' भी कहते हैं। प्रायः सरल संगीत के कार्यक्रमों में गिटार और मैण्डोलिन जैसे वाद्यों का प्रयोग प्रचुरता से किया जाता है। फ़िल्मी गीतों में इससे एक अलग प्रकार का सौंदर्य बढ़ जाता है। अतः पचास प्रतिशत से अधिक गीतों में मैण्डोलिन का प्रयोग मिलता है। इसे बैठकर या खड़े होकर दोनों प्रकार से बजाया जा सकता है। इसे सीने से सटाकर, सीधे हाथ को मैण्डोलिन के निचले हिस्से की ओर से ( जहाँ कि तार लगाने की कीलें-सी लगी रहती हैं ) घुमाकर पकड़ना पड़ता है। हाथ का अगला भाग वाद्य के ऊपर होता है जो तारों से सीधी रेखा में होता है। हाथ की कलाई, घुड़च (ब्रिज) के ऊपर मुड़ी रहती है। वाद्य की गर्दन, बाएँ हाथ के अँगूठे और तर्जनी के अन्तिम जोड़ के मध्य में रहनी आवश्यक है।

## माउथ ऑर्गन (Mouth Organ)

यह एक विश्व प्रसिद्ध विदेशी सुषिर वाद्य है जो १८३० ई० में प्रचार में आया। इसे हारमोनिका, क्रोमैटिक हारमोनिका या क्रोमोनिका इत्यादि नामों से पुकारते हैं। यह इतना छोटा वाद्य है जिसे एक हथेली से पकड़ मुख द्वारा बजाया जाता है और आसानी से जेब में रखा जा सकता है, यह लकड़ी का बना होता है जिसमें हारमोनियम वाले मुक्त पत्ती के रीड्स लगे होते हैं। इसके अनेक छिद्रों में जब बाँसुरी की तरह फूँक मारी जाती है अथवा बाहर की हवा मुँह से ही खींची जाती है तो शुद्ध और कोमल सभी स्वर बारी-बारी से प्राप्त हो जाते हैं। संवादी तथा काँड बनाने वाले स्वर-समूहों को एकसाथ बजाने से इस वाद्य की ध्वनि बड़ी आकर्षक हो जाती है। उस समय ऐसा नहीं लगता कि किसी छोटे वाद्य द्वारा ऐसा संगीत भी प्रस्तुत हो सकता है। माउथ ऑर्गन को बाएँ हाथ से इस प्रकार पकड़ना पड़ता है कि मन्द्र सप्तक के स्वर बायीं ओर रहें। इसके नीचे की ओर अँगूठा रहता है और ऊपर की ओर तर्जनी। जिह्वा के दबाव और मुख के अन्दर आने-जानेवाली वायु को नियन्त्रित करके इस वाद्य के द्वारा किसी भी ध्वनि या गीत को आसानी से पेश किया जा सकता है। विदेश में इसके एकाकी वादन एवं बैण्ड बनाने की पद्धति प्रचलित हो गई है।

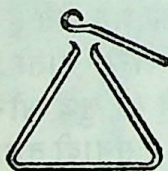


## साइड ड्रम (Side Drum)



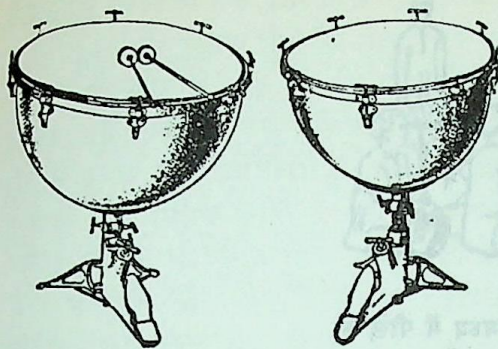
यह एक विदेशी ताल-वाद्य है जो घनवाद्यों की श्रेणी में आता है। यह पीतल का बना खाल से मढ़ा हुआ होता है। चारों ओर पेंच लगे रहते हैं जिन्हें कसने से या ढीला करने से वाद्य की आवाज़ को ऊँचा-नीचा करके एकसमान किया जा सकता है। जिस तरह भारत में 'तबला' वाद्य प्रसिद्ध है उसी तरह विदेशों में 'साइड ड्रम' प्रचलित है। यह छोटे-बड़े अनेक प्रकार के होते हैं जो संगीत की विविध विधाओं या अनुकूल भाव की दृष्टि से प्रस्तुत की जानेवाली शैलियों के साथ यथावसर ताल-लय के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं। अंग्रेजी बैण्ड के साथ ही इसका भारत में आगमन हुआ। दक्षिण भारत में अनेक अवसरों पर उसी तरह इसका प्रयोग किया जाता है जिस तरह उत्तर भारत में ढोल का। भारी ध्वनि उत्पन्न करने के लिए 'साइड ड्रम' का बड़ा रूप 'बेस ड्रम' (Bass Drum) कहलाता है।

## ट्राईएंगिल (Triangle)



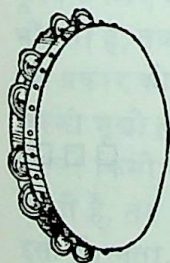
यह एक विदेशी तालवाद्य है जो घनवाद्यों की श्रेणी में आता है। त्रिकोणाकार में बना हुआ यह वाद्य लोहे की मोटी छड़ से बना होता है जिसे बाएँ हाथ से पकड़कर लोहे की अन्य सीधी छड़ से बजाया जाता है। प्रत्येक आघात पर घण्टी-जैसी मधुर आवाज़ आती है। त्रिकोण के अन्दर दो छड़ों के बीच में टंकोर देने वाली छड़ से द्रुतलय के अनेक प्रकार उसी तरह प्रस्तुत किए जाते हैं जैसे भारतीय मँजीरे द्वारा दिखाए जाते हैं। ध्वनि की मधुरता के कारण इसके ताल आघात बड़े आकर्षक प्रतीत होते हैं और मन अनायास भक्ति भावमय हो जाता है। भारत में नाटकों के अन्तर्गत 'ट्राईएंगिल' का काफी प्रयोग हुआ है। बाएँ हाथ के दबाव से इसकी ध्वनि खुली हुई या बन्द स्थिति में रखते हुए अनुकूल प्रभाव उत्पन्न किया जाता है।





## केटिल ड्रम्स (Kettle Drums)

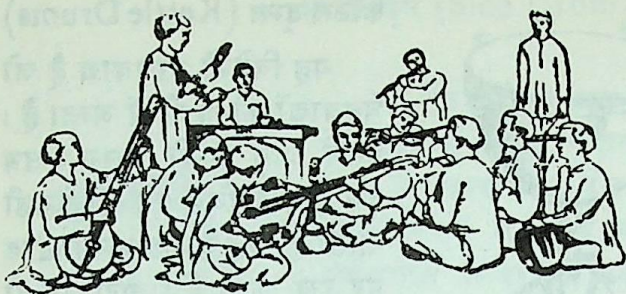
यह विदेशी तालवाद्य है जो घनवाद्यों की श्रेणी में आता है। इसमें धातु के दो अलग-अलग ड्रम होते हैं जिन पर खाल मढ़ी रहती है। यह अलग-अलग स्टैंड पर रखे जाते हैं। गद्दीदार दो मुखवाली छड़ियों से इनको बजाया जाता है। आकार में यह भारतीय छोटे नगाड़े की तरह होते हैं। ऊपर पुड़ी के चारों ओर स्कू-टाइप की चाबियाँ लगी रहती हैं। किसी बड़े ऑर्केस्ट्रा में ताल और लय के विभिन्न रूपों को दिखाने के लिए और अनुकूल प्रभाव उत्पन्न करने के लिए 'केटिल ड्रम्स' का उपयोग किया जाता है। विदेशी रॉक संगीत, पॉप संगीत और ज़ाज़ संगीत में इनका कलात्मक रूप प्रकट होता है। भारत के बड़े होटलों में जहाँ पाश्चात्य ढंग का भोजन परोसा जाता है, वहाँ पाश्चात्य संगीत की धुनें बजाते समय भी इनका प्रयोग किया जाता है।



## टेम्बोराइन (Tambourine)

यह एक विदेशी तालवाद्य है जो घनवाद्यों की श्रेणी में आता है। यह भारतीय खंजरीनुमा वाद्य होता है जो चंग की शकल का होता है तथा खाल से मढ़ा रहता है। बाएँ हाथ से पकड़कर सीधे हाथ से इस पर वादन किया जाता है। इसके गोल कक्ष में धातु के मँजीरेनुमा गोल-गोल टुकड़े लगे रहते हैं जो वादन करते समय ऐसे प्रतीत होते हैं मानो दो वाद्य बज रहे हों। मिश्र और ईरान की ओर टेम्बोराइन का प्रयोग बहुत होता है। रूस की ओर के अनेक लोकगीत और नृत्यों में भी इसकी प्रमुखता देखी जाती है।





रेखाचित्र में भारतीय ऑर्केस्ट्रा के मध्य में पीछे की  
ओर ज़ायलोफोन वादक दृष्टव्य है

### ज़ायलोफोन (Xylophone)

यह एक विदेशी स्वर वाद्य है जो घनवाद्यों की श्रेणी में आता है। चार पैरों वाले लोहे के स्टैंड पर रखा हुआ यह वाद्य भारतीय काष्ठतरंग या काँचतरंग की तरह होता है जिसमें स्टील की अनेक पट्टियाँ होती हैं। इसे गद्देदार मुखवाली दो छड़ियों से टंकोर देकर बजाया जाता है। हारमोनियम की पट्टियों की तरह इस पर लगी लोहे की पट्टियाँ छोटी-बड़ी होती हैं जिनसे अलग-अलग स्वरों की आवाज़ निकलती है। इन पट्टियों को आगे-पीछे करके इच्छित स्वरों में सैट कर लिया जाता है। गीत-संगीत में निश्चित स्थलों पर इसकी चोट से स्वर की जो गुंज उत्पन्न होती है उसका प्रयोग तो ताल-आघात की तरह होता है लेकिन वह संगीत की मधुरता को चौगुना कर देता है।

तकनीकी प्रगति के कारण पाश्चात्य वाद्ययन्त्र भारत के वाद्ययन्त्रों की अपेक्षा अधिक विकसित अवस्था में पाए जाते हैं। मन्द्रतम स्थान से लेकर अतितार स्थानीय ध्वनियों तक को उत्पन्न करने के लिए उनकी संख्या बहुत बड़ी है।

आजकल अनेक विदेशी वाद्य भारत में आ चुके हैं तो अनेक भारतीय वाद्ययन्त्र विदेश में भी पहुँच चुके हैं। सांस्कृतिक आदान-प्रदान की यह परम्परा सदियों से चलती आई है और चलती रहेगी। भारतीय फ़िल्म संगीत में ज़ायलोफोन का सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है।

□ □ □



## संगीत में काकु

भिन्नकंठध्वनिधोरैः काकुरित्यभिधीयते ।

अर्थात्—कंठ की भिन्नता से ध्वनि में जो भिन्नता पैदा होती है, उसे 'काकु' कहते हैं। ध्वनि या आवाज़ में मनोभावों को व्यक्त करने की अद्भुत शक्ति होती है। कंठ में जो ध्वनि-तंत्रियाँ हैं, उनके स्पंदन से ध्वनि निकलती है। इसी तरह तंतुवाद्यों में तारों के छेड़ने से ध्वनि पैदा होती है। हारमोनियम, बाँसुरी, शहनाई, क्लेरिनेट आदि सुषिर वाद्यों में वायु के कंपन से ध्वनि उत्पन्न होती है।

ध्वनि में मनोभावों को व्यक्त करने की विचित्र शक्ति है। शोक, भय, प्रसन्नता, प्रेम आदि भावों को व्यक्त करने के लिए जब ध्वनि या आवाज़ में भिन्नता आती है, तब उसे 'काकु' कहते हैं। 'काकु' का प्रयोग मानव तो करते ही हैं, पशुओं में भी 'काकु' प्रयोग भली-भाँति पाया जाता है। उदाहरणार्थ, एक कुत्ता जब किसी चोर के ऊपर भौंकता है, तो उसके भौंकने की ध्वनि में एक प्रकार की भयंकरता या कठोरता होती है; वही कुत्ता जब अपने मालिक के साथ घूमने के लिए व्यग्रता प्रकट करता हुआ, अपनी बँधी हुई जंजीर से मुक्ति पाने के लिए भौंकता है, तब उसकी आवाज़ या काकु बदल जाती है। उस समय उसकी आवाज़ में एक प्रकार की विवशता तथा विनय का भाव पाया जाता है। इसी प्रकार जब बिल्ली भूखी होती है, तो उसकी म्याऊँ में कुछ और ही बात होती है और वही बिल्ली किसी के द्वारा अपने बच्चे को छेड़ते समय विरोध प्रकट करती हुई म्याऊँ करती है, तब उसकी म्याऊँ में कुछ दूसरे प्रकार की ध्वनि होती है। ध्वनि की इसी भिन्नता, शैली या शक्ति को 'काकु' कहते हैं।

पशुओं की अपेक्षा मानव-जाति में 'काकु' का प्रयोग विशेष रूप से पाया जाता है। एक शब्द है—जाओ। इस शब्द को 'काकु' के विभिन्न प्रयोगों से देखिए—एक अफसर अपने चपरासी को कहीं भेजने के लिए 'जाओ' कहता है, तब उसकी 'जाओ'



में आज्ञा देने की भावना पाई जाती है और यही शब्द जब एक विद्यार्थी छुट्टी पाते समय अपने गुरु के मुख से सुनता है, तब उसमें कुछ और ही प्रकार की 'काकु' होती है। यहाँ हम कहेंगे कि उस अफसर का और गुरु जी का शब्द तो एक ही है, किंतु काकु पृथक्-पृथक् हैं। इसी प्रकार गायन में काकु-प्रयोग सुनने में आते हैं। प्रसिद्ध गायनाचार्य पं० ओमकारनाथ ठाकुर जब सूरदास का लोकप्रिय पद 'मैया, मैं नहि माखन खायो' गाते थे, तब 'मैया' शब्द में वे विभिन्न काकु-प्रयोग इस खूबी से करते थे कि श्रोतागण कभी तो हँसने लगते और कभी आनंदाश्रु बहाने लगते। एक ही शब्द में कहीं तो रोष तथा झुंझलाहट का भाव होता और कहीं माता के प्रति विनम्रता होती थी। कभी उसमें करुणा होती थी, तो कभी उससे वेदना निःसृत होती थी। यह काकु का ही चमत्कार था।

नाटक में जब किसी पात्र के सम्वादों द्वारा कोई विशेष भाव व्यक्त कराया जाता है, तब वहाँ काकु बहुत सहायक होता है। जो अभिनेता काकु का प्रयोग करने में जितनी कुशलता से समर्थ होगा, वह अपने अभिनय को भी उतना ही सफलतापूर्वक निभा सकेगा। 'नाट्य-शास्त्र' के १७-वें अध्याय में 'काकु' की विशद व्याख्या पाई जाती है। उसमें छाती, कंठ, सिर आदि काकु के स्थान बताए गए हैं। साथ ही यह भी बताया है कि किस काकु से कौन-कौन-से रस की सृष्टि होती है। 'संगीत रत्नाकर' के प्रकीर्णध्याय में काकु के छह प्रकार बताए गए हैं; यथा :—

**छायाकाकुः षट्प्रकारा स्वररागान्यरागजा ।**

**स्याद्देशक्षेत्रयंत्राणां तल्लक्षणमथोच्यते ॥**

अर्थात्—'छाया काकु' छह प्रकार के होते हैं—१. स्वर-काकु, २. राग-काकु, ३. अन्यराग-काकु, ४. देश-काकु, ५. क्षेत्र-काकु, ६. यंत्र-काकु।

**स्वर-काकु**

श्रुति को कुछ अधिक या कम कर देने से एक स्वर की दूसरे स्वर में जो छाया दिखाई देती है, वह 'स्वर-काकु' है।

**राग-काकु**

किसी राग की जो अपनी मुख्य छाया है, वह 'राग-काकु' कहलाती है।

**अन्यराग-काकु**

जब किसी राग की छाया अन्य राग में दिखाई देती है तो उसे 'अन्यराग-काकु' कहते हैं।

**देश-काकु**

जो किसी अन्य राग का सहारा न लेकर अपने देश और स्वभाव से अपने राग में ही सम्मिलित रहता है, उसे 'देश-काकु' कहते हैं।



### क्षेत्र-काकु

क्षेत्र का अर्थ है 'शरीर' अर्थात् शरीर को ही 'क्षेत्र' कहा जाता है। 'कंठ' शरीर का अवयव है लेकिन प्रत्येक कंठ से निकलने वाली आवाज़ में भिन्नता रहती है। इस भिन्नता के कारण ही हम पहचान लेते हैं कि यह अमुक व्यक्ति की आवाज़ है। आवाज़ के गुण धर्ग शरीर या कंठ की बनावट इत्यादि के ऊपर निर्भर करते हैं। इस प्रकार शरीर से उत्पन्न होने के कारण आवाज़ का परिवर्तन 'क्षेत्र-काकु' के अन्तर्गत माना जाता है।

### यंत्र-काकु

वीणा और बांसुरी आदि वाद्य-यन्त्रों से उत्पन्न ध्वनि का जो अपना काकु होता है, उसे 'यंत्र-काकु' कहते हैं। इस यंत्र-काकु के द्वारा ही हमारे कान वाद्ययंत्रों की परस्पर भिन्नता करके उन्हें बिना देखे ही केवल श्रवण-मात्र से पहचान लेते हैं कि यह ध्वनि अमुक वाद्य की है।

ध्वनि की भिन्नता एवं विभिन्न अर्थ का बोध कराने में जो शक्ति कार्यरत होती है, उसी को 'काकु' कहा जाता है।

'अमरकोष' के अनुसार 'काकु' ध्वनि के उस विकार को कहते हैं, जिसके द्वारा किसी भाव की अभिव्यक्ति हो। हमारी सम्मति में 'काकु' को यह व्याख्या बहुत-कुछ ठीक है। वास्तव में काकु के अन्दर एक विचित्र शक्ति है, जिसके द्वारा भावों की अभिव्यंजना में स्निग्धता, माधुर्य और रस की सृष्टि होती है। संगीत के लिए तो काकु का प्रयोग बहुत ही महत्त्व रखता है।

□ □ □



## भारतीय संगीत में सौंदर्य-बोध

राग की व्याख्या करते हुए शास्त्रों में कहा गया है कि मनुष्य के चित्त का जो रंजन करे, वह 'राग' है। इसका अभिप्राय यही है कि राग में रंजन करनेवाले सभी गुण विद्यमान होने चाहिए। जिस संगीत रचना में इन तत्त्वों की कमी होगी, वह स्वयं में कोई राग नहीं होगा और न श्रोताओं का उसके प्रति कोई अनुराग ही होगा; बल्कि ऐसी रचनाओं से सदैव विराग या विरक्ति ही उत्पन्न होगी।

संगीत रचना के उपकरणों में पद, छंद, तत्सम्बन्धी भाव, लय तथा ताल का महत्त्व है। ऐसी रचनाओं को आलाप, तान, अलंकार, मीड़, घसीट, आंदोलन, गमक तथा आकस्मिक स्वर-संदर्भ-रूपी अलंकरणों से सजाया जाता है और तब वह रचना रक्तिदायक बनती है। इन सभी उपकरणों तथा अलंकरणों का संतुलित और समुचित प्रयोग ही राग को रक्ति प्रदान करता है। यह 'रक्ति' ही संगीत का सौंदर्य-तत्त्व है। दूसरे शब्दों में इसे 'राग से उद्भूत रस' की संज्ञा दे सकते हैं।

रस और सौंदर्य एक ही बात है। लय में जो ताल का महत्त्व है, वही रस में सौंदर्य का है। 'रस' भाव से उत्पन्न अनुभूतिपूर्ण वह तत्त्व है, जो झरने की सतत-प्रवाहित जलराशि के समान कला-सुमेरु से फूटकर बहता रहता है। इस भाव में जहाँ उद्रेक की अवस्थाएँ आती रहती हैं, वहीं सहृदय को सौंदर्य की अनुभूति होती है। छंद की लय-रूपी-धारा में ताल के आघातों से भी वही सौंदर्य प्रकट होता है। इसी लिए किसी संगीत-रचना में जहाँ स्वर, अलंकार एवं तान इत्यादि क्रियाओं का महत्त्व है, वहीं गीत के शब्द, छंद, लय और ताल का भी महत्त्व है। इस प्रकार संगीत-रचना एवं गीत, दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। किसी राग में निबद्ध संगीत-रचना एक ऐसे सागर के समान है, जिसमें, सौंदर्य-रूपी तरंगें उठती रहती हैं।

गीत, वाद्य और नृत्य तीनों ही संगीत-कला की श्रेणी में आते हैं। 'नाट्य' में नृत्य के साथ गीत का गान हो और वाद्य उसका अनुसरण करें तो यह संगीत-कला का सर्वोत्कृष्ट और पूर्ण रूप है। दूसरे शब्दों में, शब्द, स्वर और चेष्टा मिलकर मन की भावनाओं को उजागर करते हैं। भाव हृदय में सोए पड़े रहते हैं और अवसर आने पर ही वे जगते हैं। व्यक्तिगत जीवन में मनुष्य की इच्छाओं का जन्म होते ही अलग-अलग भाव उत्पन्न होते हैं और उन भावों से रस उत्पन्न होता है। जन्म-जन्मान्तरीय संस्कारों से समय-समय पर जिन भावों का उद्रेक होता है, उन्हें 'स्थायी भाव' कहा जाता है। भिन्न-भिन्न भावों को प्रकाशित करनेवाली ध्वनियाँ ही संगीत के स्वर्गों को जन्म देती हैं; क्योंकि किसी भाव को प्रकट करने में जब भाषा असमर्थ रहती है तो संगीत का जन्म होता है। जैसे किसी के नाम कोई 'लाटरी' खुल जाए



और वह व्यक्ति हर्षातिरेक में पागल होकर भाषा द्वारा अपने आनन्द को प्रकट करना चाहे तो किसी भी प्रकार शब्दों द्वारा उस आनन्द की अनुभूति का अहसास दूसरों को नहीं करा सकता। इस अहसास को कराने के लिए उस व्यक्ति को नाचना पड़ेगा या चीख-चीखकर विविध स्वर निकालने पड़ेंगे। ठीक इसी प्रकार यदि उस व्यक्ति का कोई आत्मीय स्वर्ग सिधार जाए तो अपनी व्यथा व्यक्त करने के लिए भी उसे संगीत का सहारा लेना पड़ेगा, तभी श्रोताओं को उसकी मर्मतिक पीड़ा का ठीक-ठीक अनुमान हो सकेगा। तात्पर्य यह है कि ध्वनि का जो उतार-चढ़ाव वाक्य में भाव का बोधक होता है, वही सन्तुलित होने पर या नियत अवधान देने पर संगीत के स्वरों का स्थान ले लेता है। शब्द का अनुकरण रूप ही 'स्वर' कहलाता है। श्रुतियों के लगातार उत्पन्न होते रहने से वह मूल स्वर विभिन्न अवस्थाओं को प्राप्त होता हुआ पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती स्वरों को जन्म देता है। प्रसाद और दीप्ति के साथ स्वरों का उच्चारण करने पर उसमें रंजन उत्पन्न होता है। स्वर-प्रयोग के समय विशिष्ट भाव का बोध करानेवाली श्रुति को कुछ अधिक काल तक अथवा पुनः-पुनः प्रयुक्त करना पड़ता है।

शास्त्रकारों ने स्वरों के निश्चित स्थायी भाव और रस बताए हैं। इसी प्रकार श्रुतियों की दीप्ता, आयता, मृदु, मध्या तथा करुणा नामक जातियाँ बताई हैं। संगीत-रचना में जब स्वर अपने स्थायी भाव को लेकर श्रुतियों की जातियों के संसर्ग द्वारा व्यक्ति के संकल्प की शक्ति से समन्वित होकर प्रस्तुत होते हैं तो वहीं नूतन सौंदर्य की सृष्टि होती है। यही संगीत का सौंदर्य या रस-तत्त्व है। शब्दों की सहायता के बिना केवल स्वर-सन्दर्भ-मात्र उस सौंदर्य की सृष्टि कर देता है, जो श्रोता को अलौकिक आनन्द में निमग्न करने की क्षमता रखता है। इसी लिए संगीत-कला का स्थान अन्य कलाओं में सर्वोच्च है।

स्वरों के स्थायी रसों के अनुसार, षड्ज और ऋषभ को वीर, अद्भुत तथा रोद्र-रस-प्रधान कहा गया है; धैवत, बीभत्स और भयानक रस का अभिव्यंजक है; गान्धार और निषाद करुण-रस-प्रधान हैं एवं मध्यम और पंचम हास्य तथा शृंगार-रस-प्रधान हैं। जब समान रस वाले दो स्वर एक ही स्वर-समूह में पास-पास प्रयुक्त हों तो वे परस्पर रक्तिवर्द्धक होते हैं। संगीत की भाषा में उन्हें परस्पर वादी एवं संवादी कहा जाता है। स्वर समूह के प्रारम्भ या अन्त में मूल स्वर का संवादी रहने से ही स्वर-समूह रंजकता को प्राप्त होता है। ऐसे दो स्वरों के मध्य में नौ या तेरह श्रुतियों का अन्तर होता है।

जिस प्रकार मूल रंग सात होते हैं अथवा मूल रसना-रस छह होते हैं, परन्तु नेत्र और जिह्वा केवल उनसे तृप्त नहीं होते, अपितु उनके असंख्य भेदों की इच्छा रखते हैं; ठीक उसी प्रकार मनुष्य के कान भी केवल मूल सात स्वरों की ध्वनियाँ सुनकर पूर्ण तृप्त नहीं होते, अपितु नित्य नूतन स्वर-संदर्भों के उद्भव से ही सन्तुष्ट होते हैं। हर्ष, शोक इत्यादि चित्तवृत्तियों का जब नाद के स्पंदन में स्थित श्रुतियों से



तादात्म्य होता है तो मनुष्य की चेतना स्थिर होती है और उस स्थिर अवस्था में ही सौंदर्य-बोध होता है। उस समय श्रोताओं का मन व्यक्तिगत राग और द्वेष के भार से मुक्त हो जाता है।

जब कोई करुणा-व्यंजक राग हमें सुनाई पड़ता है तो हमारे अंतःकरण में स्थिति करुणा के साथ उसका स्वाभाविक संवाद होने लगता है। परिणामतः उस समय हमें आनन्द की अनुभूति होने लगती है। राग द्वारा उत्साह, विनोद, मादकता इत्यादि किसी भी भाव की सृष्टि हो, परन्तु उसका परिणाम आनन्द ही होता है। यह आनन्द ही 'रस' या 'सौंदर्य' है। मन में स्थित रजोगुण और तमोगुण इस स्थिति में सर्वथा तिरोहित हो जाते हैं और अन्तःकरण में सत्त्व का उदय होता है।

किसी राग से भाव-विशेष की सृष्टि की तो जा सकती है, परन्तु श्रुतियों का उचित प्रयोग किए बिना रस-परिपाक नहीं हो सकता। यदि स्वरों को शब्द की सहायता और मिल जाए तो रस-परिपाक पूर्ण रूप से होता है। कलाओं से प्राप्त इस आनन्द को अलौकिक कहा गया है।

नंदिकेश्वर रस-सिद्धान्त के सर्वप्रथम आचार्य हैं। इनके सिद्धांतों के प्रतिपादक ग्रंथ 'नंदिकेश्वर-कारिका' पर उपमन्यु की टीका मिलती है। राग के द्वारा भाव-प्रकाशन अथवा नाद के द्वारा रस-प्रक्रिया में ग्रंथों का आज सर्वथा अभाव है। इस प्रकार के ग्रंथों का उल्लेख तेरहवीं शती अथवा उससे पूर्व मिलता है, परन्तु वे भी आज अनुपलब्ध हैं। तेरहवीं शती के बाद जब राग एवं तालों में रस एवं भाव का अभाव होने लगा तो राग के रूप और ध्यान विकसित हुए। परन्तु क्लिष्टता एवं चमत्कार की होड़ से उनकी कल्पना भी लुप्त होती गई। फलतः आज के युग में राग और उससे उत्पन्न रस-तत्त्व के बारे में आज अधिकांश संगीतकारों को कोई बोध नहीं।

गीत में किसी भी राग का प्रयोग करते समय अंश स्वर (आधार-स्वर या 'की-नोट') की प्रधानता होती है। अंश स्वर के ध्वनित होने के कारण ही गीत में रंजकता उत्पन्न होती है और राग का स्वरूप अभिव्यक्त होता है। अंश स्वर के आश्रय से ही उसके संवादी तथा अन्य स्वरों का प्रयोग किया जाता है। राग में प्रयुक्त सभी स्वरों के साथ अंश स्वर की संगति होती है और उनके निरंतर ध्वनित तथा उद्दीप्त होने के कारण, मन में विविध भावों की सृष्टि करने में वे सहायक सिद्ध होते हैं। अंश स्वर से संवाद करनेवाले स्वर स्थूल रूप में नाद-सौंदर्य को जन्म देते हैं और इष्ट स्वरों के प्रयोग से वह सौंदर्य अनुकूल रस की सृष्टि करता है। 'इष्ट स्वर' वे कहलाते हैं, जो एकसाथ छिड़ने पर भी भले लगें। इष्ट स्वरों के दो प्रकार हैं—१. परम इष्ट और २. सामान्य इष्ट। परम इष्ट स्वरों को 'संवादी' भी कहा जाता है और सामान्य इष्ट स्वरों को 'अनुवादी'। इनके विपरीत एकसाथ छेड़े जाने पर जो स्वर भले प्रतीत नहीं होते, वे 'अनिष्ट स्वर' कहलाते हैं। उनसे राग स्वरूप का विघटन हो जाता है और उनसे किसी कल्याण की उपलब्धि नहीं



होती एवं नाद-सौंदर्य को अपार क्षति पहुँचती है। यह दृष्टिकोण केवल भारतीय संगीत-सिद्धांत में ही पाया जाता है, अन्यत्र नहीं।

संगीत-सृजन के समय कलाकार के अन्तःकरण में ज्ञान, भाव और क्रिया का संचार क्रम से होता रहता है। भूत और वर्तमान काल के संस्कारों का ज्ञान उदित होता है। उस ज्ञान के साथ आँख, नाक, कान, त्वचा, जिह्वा इन पाँचों ज्ञानेंद्रियों से सम्बन्धित संस्कारों से युक्त रूप, गंध, शब्द, स्पर्श और रस की स्मृति साकार होती है, जिसके साथ मन की तद्रूपता होती है और उस तद्रूपता के फलस्वरूप नाद के माध्यम से कलाकार अपने भावों को प्रकट करता है। उन भावों से विविध रसों की सृष्टि होती है, जिससे संगीत के सौंदर्य-तत्त्व का उद्घाटन होता है। गायन या वादन के समय एक ही राग में कलाकार के मन में किन संस्कारों का उदय होगा और वह क्या प्रदर्शित करेगा, यह स्वयं कलाकार भी नहीं जानता। तात्कालिक सृजन-शक्ति का यह गुण केवल भारतीय संगीत में ही है, विश्व की अन्य किसी संगीत-प्रणाली में नहीं। मन से सुख और दुःख जब संगीत के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं तो काल्पनिक होने के कारण एक सिहरन अथवा आनन्द प्रदान करते हुए एवं श्रोताओं को उस रस से सिक्त करते हुए, पुनः अपनी स्थाई भाव-भूमि में लौट-कर अवस्थित हो जाते हैं।

रस-परिपाक में राग और वाणी के अतिरिक्त लय भी एक प्रमुख तत्त्व है। भाव के अनुकूल शब्दों की प्रकृति जानकर उचित लय का प्रयोग संगीत के सौंदर्य-वर्द्धन में होता है। ठीक उसी प्रकार, जैसे करुणा की अभिव्यंजना के समय मनुष्य की क्रियाओं में ठहराव आ जाता है और चपलता नष्ट हो जाती है, परन्तु उत्साह और क्रोध के अवसर पर उसकी क्रियाओं में तोव्रता आ जाती है। इसी लिए करुण रस के परिपाक के लिए विलंबित लय, हास्य और शृंगार के लिए मध्य लय तथा वीर, रौद्र, अद्भुत एवं बीभत्स रस के लिए द्रुत लय का प्रयोग प्रभावशाली सिद्ध होता है। गीत की रसमयता, छंद और ताल का सामंजस्य, गायक-वादकों की परस्पर अनुकूलता तथा स्वर और लय की रसानुवर्तिता इत्यादि विशेषताएँ मिलकर संगीत में सौंदर्य-बोध का कारण बनती हैं।

भारतीय संगीत में भिन्न-भिन्न रागों की उत्पत्ति उनके रचयिताओं की विशेष मानसिक सृष्टि का उदाहरण है। जबतक अनुसरणकर्ता उस रचयिता की भाव-भूमि का स्पर्श नहीं करेगा और अपने चित्त में उन्हीं संस्कारों को नहीं जगाएगा, तबतक वह भारतीय संगीत के लक्ष्य आहत से अनाहत की प्राप्ति, आनन्द से परमानन्द की प्राप्ति, साकार से निराकार की प्राप्ति, सावरण से निवारण की प्राप्ति, खण्ड से अखण्ड की प्राप्ति अथवा सविकल्प से निर्विकल्प की प्राप्ति से वंचित रहेगा। सौंदर्य-तत्त्व एक है और माध्यम अनेक, जिनमें संगीत सर्वाधिक सरल, समर्थ एवं लोक-रंजक माध्यम है।

□ □ □



## काव्य और संगीत

काव्य और संगीत दोनों ही ललित कलाएँ हैं तथा एक-दूसरे की पूरक हैं। काव्य सापेक्ष है और संगीत निरपेक्ष। दोनों की अपनी सीमाएँ हैं। जहाँ तक अभिव्यक्ति का प्रश्न है, वहाँ अनेक स्थल ऐसे आते हैं, जहाँ भाषा अथवा कविता उन्हें स्पष्ट करने में असमर्थ रहती है, किन्तु संगीत के द्वारा यह कार्य सुगमता से सम्पन्न हो जाता है। उदाहरणार्थ युद्ध में विजय प्राप्त करने का उल्लास कविता द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति संगीत द्वारा सहज ही हो जाती है। इसी प्रकार कोई इच्छित वस्तु हमें प्राप्त करनी हो अथवा उसके विषय में किसी विवादास्पद उद्देश्य को प्रकट करना हो तो यह कार्य काव्य अथवा भाषा द्वारा ही सम्पन्न होगा, संगीत द्वारा नहीं। इसके विपरीत यदि काव्य और संगीत, दोनों संयुक्त रूप में किसी विषय की अभिव्यक्ति करें तो निःसन्देह वह बहुत ही शक्ति होगी।

पाश्चात्य विद्वान् कॉरलाइल के अनुसार संगीतमय विचार ही काव्य है। कविता मनोवेगपूर्ण और संगीतमय भाषा में मानव अन्तःकरण की मूर्त तथा कलात्मक व्यंजना करती है। आलफ्रेड, ऑस्टिन के कथनानुसार, संगीत से रहित तथा अर्थ की रमणीयता से विहीन शब्दाडम्बर को कविता नहीं कहा जा सकता। फूलर के मतानुसार काव्य शब्दों के रूप में संगीत तथा संगीत ध्वनि के रूप में कविता कहा जा सकता है। माधुर्य संयोजन में निहित होता है। जिस प्रकार निश्चित आन्दोलन-संख्या तथा नीतियों के गठन से मधुर स्वर की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार नियमित ध्वनि-प्रकम्पनों तथा वर्णों के आधार पर मधुर शब्द, मधुर छंद और मधुर अर्थ की उत्पत्ति होती है। वास्तव में रसालंकारयुक्त काव्य स्वर, ताल एवं लय से आबद्ध रचना ही संगीत है। ऐसा संगीत हृदय की कोमल-तम भावनाओं एवं स्पंदन को स्वरों में व्यक्त कर अपने प्रवाह से मानव की आन्तरिक भावनाओं को भौतिक लोक से परे एक ऐसे लोक में ले जाने की क्षमता रखता है, जहाँ शिव है, सुन्दर है और सत्य है।

लय, संगीत का अनिवार्य तत्व है। इसमें भावों को संगठित करने की अद्भुत सामर्थ्य है। काव्य के लिए भी वह प्रायः अनिवार्य ही है। चित्त के समाहित होने से वह उत्पन्न होती है और अन्ततः चित्त की समाप्ति में ही वह पर्यवसित हो जाती है। संगीत भी चित्त की समाप्ति से ही उद्भूत होता है, अतः काव्य और संगीत का इस रूप में घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

□ □ □



## शास्त्रीय संगीत और लोक-संगीत

मोटे तौर पर शास्त्रीय संगीत उसे कहते हैं जो शास्त्र के नियमानुसार प्रस्तुत किया जाय। लोक संगीत उसे कहा जा सकता है, जिसे कोई भी व्यक्ति उन्मुक्त रूप से गुनगुना उठे। दोनों में अन्तर केवल इतना है कि शास्त्रीय संगीत ने विभिन्न राग-रागनियों की सुसज्जित पोशाक पहन रखी है और लोक-संगीत केवल ध्वनि और लय के अचले बाँधे हुए मस्ती भरे अन्दाज़ में उन्मुक्त भ्रमण कर रहा है; किन्तु वास्तव में संगीत की इन दोनों विधाओं के महल ध्वनि और लय के आधार पर ही खड़े हुए हैं। शास्त्रीय संगीत में स्वर की प्रधानता है, तो लोक-संगीत में ताल और लय का प्राधान्य है।

आज का तथाकथित शास्त्रीय संगीत स्वामी हरिदास, तानसेन, बैजू बावरा इत्यादि महान् संगीतकारों की विरासत या अग्नावशेष है, तो भारत के विभिन्न प्रान्तों के ग्रामीण अंचलों में फैला हुआ लोक-संगीत मानवीय उल्लास की चटक-चाँदनी है। शास्त्रीय संगीत, घरानों की शक्लें इख्तियार करके विशृंखल हो गया है, किन्तु लोक-संगीत आज भी सामूहिक रूप में अपने-अपने चौपालों, खेत-खलियान और गली-गलियारों में विद्यमान है। शास्त्रीय संगीत को 'मार्ग संगीत' और लोक संगीत को 'देशी संगीत' भी कहते हैं।

संगीत के अनेक मूर्धन्य शास्त्रकारों अथवा विद्वानों के मतानुसार लोक-संगीत, शास्त्रीय संगीत का बीजरूप है। किसी भी कला अथवा विद्या के शास्त्र का सृजन तभी सम्भव होता है, जबकि वह अस्तित्व में आकर विकसित हो। यही बात संगीत पर भी पूर्णरूपेण लागू होती है।

निष्कर्ष के रूप में इतना ही कहा जा सकता है कि शास्त्रीय संगीत मनुष्य द्वारा निर्मित सिद्धान्तों की बंदिश में रहता है जबकि लोक संगीत का निर्माण प्रकृति की प्रेरणा से या मानव हृदय से निःसृत सुख अथवा दुख के भावों से होता है। शास्त्रीय संगीत (गायन, वादन और नृत्य) शास्त्र पर आधारित है लेकिन लोक-संगीत सामाजिक परम्पराओं से जुड़ा हुआ है, जिसमें मनचाहा परिवर्तन नहीं किया जाता। एक शास्त्र प्रधान है तो दूसरा समाज प्रधान।

□ □ □



## कंठ संस्कार (Voice Culture)

### भारतीय परम्परा

मानव शरीर को 'गात्र वीणा' या 'शारीरी वीणा' कहा गया है। जब शरीर से कोई ध्वनि निकलती है तो उसकी प्रक्रिया वही होती है जो एक वाद्य के द्वारा सम्पन्न होती है। शरीर से निकलने वाली ध्वनि को 'शब्द' और वाद्य से निकलने वाली ध्वनि को 'स्वर' कहा जाता है। जब शरीर के द्वारा निकलने वाली ध्वनि को संगठित करके किसी निश्चित 'पिच' (Pitch) पर प्रसारित किया जाता है तो माधुर्य के कारण उसे भी 'स्वर' की संज्ञा प्राप्त हो जाती है।

कंठ संस्कार या कंठ साधना को अँग्रेजी में 'वॉयस कल्चर' (Voice Culture) कहते हैं। इसकी परिभाषा के लिए कहा गया है "Properly trained voice which is useful for music" अर्थात् संगीतोपयोगी परिष्कृत आवाज़। मनुष्य की आवाज़ कैसी भी मोटी, पतली, कर्कश या विशृंखल हो, उचित साधना और संयम के द्वारा उसे सुरीला और आकर्षक बनाया जा सकता है। वैदिक काल में छोटे बच्चे को जब वेदपाठ की शिक्षा दी जाती थी तो उसी के माध्यम से उसका कंठ स्वतः संस्कारित हो जाता था। उदात्त (ऊँचा), अनुदात्त (नीचा) और स्वरित (सम) स्वरों के प्रयोग द्वारा उच्चारित किए जाने वाले मन्त्र तभी सार्थक होते थे जब उन्हें निश्चित ध्वनियों पर, निश्चित परिमाण में और निश्चित वलय घातों द्वारा प्रयुक्त किया जाए, इसीलिए कंठ संस्कार का कोई अलग शास्त्र विकसित करने की आवश्यकता नहीं समझी गई। ध्वनि विज्ञान के पूरे तथ्य, सामगान में निहित थे। 'हिकार' के स्वरूप में 'होम्' का उच्चारण गति और ओज प्रदान करता था। उद्गीथ के स्वरूप 'ओम्' के उच्चारण से लय व्यवस्थित होती थी; इस प्रकार स्वर की ऊर्जा और गति नियंत्रित होकर गायन को प्रभावशाली बनाती थी। इससे आधार स्वर घनीभूत होता था, जिसके गर्भ में समाये सम्बन्धित सभी स्वर और श्रुतियाँ परिपक्व होती थीं। समुचित स्वर और वर्णों से विहीन मन्त्र का प्रयोग अनर्थकारक माना जाता था।



पतंजलि के अनुसार 'स्वर' वे हैं, जो स्वयं विराजित होते हैं :—“स्वयं राजन्ते इति स्वराः” ।

यज्ञ प्रयोगों में ऋचाओं का गान एक ही स्वर के आश्रय से बताया गया है तथा साम गान में प्रमुख रूप से तीन स्वरों का प्रयोग होता है । नाद के तीन गुण-धर्म माने जाते हैं । १. उच्चनीचता (Pitch), २. स्थूलता अथवा पृथुता (Magnitude) ३. जाति (Timbre) । वैदिक काल में स्वर का प्रयोग मुख्यतः अ, इ, उ इत्यादि वर्णों के लिए किया गया है और गौण रूप में संगीत मूलक ध्वनियों के लिए । वर्ण साधना से ही स्वर को नियंत्रित करने की प्रथा भारत में रही ताकि संगीत-प्रधान स्वर और साहित्य-प्रधान वर्ण एक-दूसरे के पूरक बनकर ओजस्वी बन सकें । 'नारदीय शिक्षा' के अनुसार स्वरों का विकास एक, दो तथा तीन स्वरों से क्रमशः होता रहा है । एक स्वर से युक्त गान 'आचिक' कहलाता है, दो स्वरों से युक्त गान 'गाथिक' कहा जाता है एवं तीन स्वरों से युक्त गान 'सामिक' कहलाता है । इन्हीं से आगे चलकर संगीत के क्रमशः सात स्वरों का विकास हुआ है । इन सातों को वैदिक काल में 'यम' कहा जाता था । आज इसे 'सप्तक' कहते हैं ।

सृष्टि की उत्पत्ति का मूल 'वाक्' को माना गया है । इसके चार प्रकार हैं—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी । इसी वाक् को भारतीय वाङ्मय में शब्द, ध्वनि, नाद आदि संज्ञाओं से अभिहित किया गया है । वाक् के आधार पर समस्त संसार का व्यवहार होता है । इसके दो रूप हैं—नादात्मक और वर्णात्मक । नादात्मक वाक् आवेग रूप चित्तवृत्ति का सूचक है और वर्णात्मक वाक् वर्ण से सम्बन्धित होने के कारण विचार का निदेशक है । नादात्मक वाक् मुखराग, पुलक आदि के स्तर का है । अर्थात् जिस तरह भावों के आवेग में अश्रु, पुलक, कम्प, स्वेद इत्यादि सात्विक भाव शरीर में बिना प्रयत्न के स्वतः ही प्रकट होते हैं, उसी प्रकार हर्ष, शोक और क्रोध आदि के आवेग में उन चित्तवृत्तियों की सूचक ध्वनियाँ, शब्द रहित होकर केवल ध्वनियों के रूप में मनुष्य के मुँह से स्वतः निकल पड़ती हैं । इसी प्रकार की ध्वनियाँ संगीत के मूल में भी हैं । उन्हीं के कारण दूर से सुनकर पता लग जाता है कि ध्वनि हर्ष की सूचक है या शोक की । इन ध्वनियों से उनके प्रयोक्ता की चित्त-वृत्ति का बोध भी होता है ।

सामगान करने वालों को 'सामग' कहा जाता था । प्रत्येक वर्ण पर स्वर का कितना वजन देना है तथा ध्वनि की एकरूपता कायम रखने के लिए अन्तिम वर्ण पर कितनी देर तक उच्चारण करना है इत्यादि की जानकारी बाल्यकाल से ही कराई जाती थी । समाज में अधिकतर गायन करने वाली स्त्रियाँ होती थीं जिनका कण्ठ स्वभाव से ही मधुर होता है । अतः कण्ठ साधना के क्षेत्र में कण्ठ संस्कार की विशेष आवश्यकता न समझी गई । पाश्चात्य देशों में प्राचीन काल में पुरुष ही गायन करते थे । मनोरंजक बात यह है कि जब भारत में पुरुषों द्वारा गायन का प्रचार हुआ तो



यहाँ षड्ज साधन पर बल दिया गया और पाश्चात्य देशों में इसी समय स्त्रियों के गायन का प्रचलन हुआ तो वहाँ उनके अनुसार कण्ठ साधना के क्षेत्र में अलग शास्त्र की आवश्यकता समझी गई ।

भारत के विभिन्न संगीत घरानों में अलग-अलग ढँग से स्वर-विकास की परम्पराएँ विकसित हुईं । जैसे—किराना घराना में आवाज़ की मिठास कायम रखने के लिए खुली हुई आवाज़ लगाने की अपेक्षा कृत्रिम आवाज़ लगाने पर अधिक जोर दिया गया । जयपुर घराने की गायकी में लयकारी की प्रधानता के कारण विभिन्न लय के पलटों का अभ्यास कराया जाता रहा, उसी से आवाज़ में खासियत पैदा की जाती रही है । आगरा घराने में ध्रुपद-धमार का प्रचार अधिक होने से दमदार आवाज़ की ओर ध्यान दिया गया, इसलिए वे नोम-तोम और लम्बी साँस पर विशेष ध्यान देते हैं । ग्वालियर घराने में षड्ज-साधना और गायकी में प्रयुक्त आलापचारी, बदिशों एवं तानों की प्रकृति के अनुसार कण्ठ-साधना की आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल किया जाता रहा है । कुछ अन्य घरानों ने अपने-अपने ढँग से लोक में प्रचलित स्वर-लगाव और स्वर-साधना को अपनाया । इसीलिए ओंकार नाथ ठाकुर, बड़े गुलामअली खाँ, अमीर खाँ, फ़ैयाज़ खाँ, अब्दुल करीम खाँ, कुमार गंधर्व, भीमसेन जोशी, केसरबाई केरकर, किशोरी अमोनकर, विनायकराव पटवर्धन, नारायणराव व्यास, कृष्णराव शंकर पंडित इत्यादि सभी गायकों के कण्ठ स्वर में अलग-अलग विशेषताएँ दिखाई देती हैं और उनका प्रभाव भी अलग ढँग से पड़ता है । एक प्रकार से जितने घराने बने उतनी ही कण्ठ संस्कार से सम्बन्धित पद्धतियाँ विकसित हुईं । लेकिन इतना निश्चित है कि भारतीय कण्ठ संस्कार का मूल ओंकार-की ध्वनि में निहित है जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्राण है । यह ओंकार साधना ही भारतीय 'षड्ज या खरज साधन' कहलाती है, जिस पर सभी एकमत हैं । पाणिनि, याज्ञवल्क्य शिक्षा, नारदीय शिक्षा, भरत-नाट्यशास्त्र, स्वरवर्ण-शास्त्र, संगीत रत्नाकर, लिङ्ग पुराण, स्थानांग सूत्र, चारुदत्त, जीवक चिन्तामणी (तमिल) पदेशशास्त्र, कल्लदं (तमिल), तिरुविलयदपुरणं (तमिल), तैत्तरीय, प्रतिशाख्य, संगीतराज, ऋग्वेद प्रतिशाख्य, ऋक्तन्त्र व्याकरण, कात्यायन प्रतिशाख्य और अथर्ववेद प्रतिशाख्य तथा पातंजलि महाभाष्य आदि ग्रन्थों में भारतीय कण्ठ-संस्कार से सम्बन्धित पर्याप्त सामग्री मिलती है ।

### पाश्चात्य परम्परा

तेरहवीं शताब्दी के लगभग पाश्चात्य जगज में ध्वनि की विविधता और उसके विज्ञान की ओर ध्यान गया । तेरहवीं शताब्दी में मैगिस्टर लैम्बर्ट के अनुसार गले को सिकोड़कर और फ़ैलाकर संगीत प्रस्तुत किया जाता था ।

सन् १४५० में फ्लैमिश स्कूल का उदय होने पर सबसे पहले मंद और अति मंद सप्तक की गंभीर ध्वनि को खोजा गया । सत्रहवीं शताब्दी में ऑपेरा के प्रचार के



साथ ध्वनि के विविध रूप भी प्रचलित हुए। उन्नीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक ढँग से ध्वनि का अध्ययन किया गया जिसके प्रवर्तक मैनुअल भारशिया (१८०५-१८०६) थे। १८४० में इन्होंने अपनी विचारधारा फ्रैन्च इंस्टीट्यूट के समक्ष रखी, जिसका प्रचार १७४७ से इनके शिष्य जैनीलिड, मैथिलदे मार्चेशी और जूलियस स्टॉकहॉसेन आदि के द्वारा हुआ। गरशिया ने १०१ वर्ष की उम्र पाई, अतः उन्होंने उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के बड़े संगीतकारों के उदय और अस्त को देखा। ध्वनि विज्ञान से सम्बन्धित इनके अनुसंधान का लाभ संगीतकारों की अपेक्षा शरीर-शास्त्रियों को अधिक मिला। परिणाम यह हुआ कि संगीत जगत् में इनकी शिक्षा-प्रणाली और अनुभवों को इनके सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक मान्यता मिली।

वास्तव में भावना प्रधान स्थितियों का वैज्ञानिक विश्लेषण सम्भव न हो सका। इसलिए कंठ-संस्कार से सम्बन्धित शिक्षकों के उपदेश अधिक कारगर सिद्ध नहीं हुए। हाथ को कंधे तक उठाने की बात तकनीकी ढँग से बताई जा सकती है, लेकिन उसमें जो लोच पैदा करना है, उसे भाषा या तकनीकी ढँग द्वारा ठीक प्रकार नहीं समझाया जा सकता। एक बच्चा जब रोता है तो उसकी ध्वनि कर्कश होती है लेकिन प्रसन्नता के समय उसकी वही आवाज़ मधुर हो जाती है। कर्कशता और मधुरता का केन्द्र उसके मस्तिष्क में है जो सहज रूप से बिना किसी प्रयास के स्वयं संचालित होता रहता है। यह केन्द्र सभी में होता है इसलिए तनावरहित होकर स्वर निकाला जाए तो निश्चय ही वह मधुर निकलेगा। उसे सुधारने की आवश्यकता ही महसूस न होगी। यदि ध्वनि हमारे मन-मस्तिष्क का प्रतीक है तो हमारे मन-मस्तिष्क भी ध्वनि के प्रतीक हैं।

लेकिन प्रश्न यह पैदा होता है कि यदि उपरोक्त कथन ठीक है तो सभी लोग मधुर आवाज़ में क्यों नहीं गाते? इसका उत्तर यही है कि स्नायविक तनाव हमारी खराब आवाज़ के लिए जिम्मेदार है। इसी प्रकार खराब ध्वनि से हमारे स्नायुओं का तनाव और बढ़ता है। अर्थात् दोनों में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध स्थापित होकर एक दूसरे को हानि पहुँचाते रहते हैं। इसीलिए स्वर-साधना में तनाव रहित एकाग्रता आवश्यक है। जब आपके मन में यह इच्छा होती है कि आप गा सकते हैं लेकिन केवल इसका विचार ही करते रहते हैं तो समझिए कि आप अपने मन में तनाव को जन्म दे रहे हैं। इसके विपरीत गाने की इच्छा होले ही आप गा पड़ते हैं तो आपको लगेगा कि आप में वाकई गायन की प्रतिभा है और आपका स्वर मधुर है। इस गुण को पहचानकर स्वर का विकास बहुत तेज़ी से किया जा सकता है। शरीर सदैव विचारों से संचालित रहता है और कभी-कभी शरीर की स्थितियों के अनुसार हमारे विचार बन जाया करते हैं। जब कभी विचार और शरीर में एकरूपता नहीं आ पाती, तभी किसी न किसी उलझन या रोग का जन्म होता है। आवाज़ निकालते समय केवल ध्वनि में लीन होने का अभ्यास होना चाहिए, न कि ध्वनि को किस प्रकार निकाला जा रहा है इसका चिन्तन किया जाए। आवाज़ का सुरीलापन बढ़ाने के लिए यह एक हितकर सुझाव है।



पाश्चात्य विद्वानों ने गाते समय साँस लेने की अलग-अलग विधियाँ बताई हैं। जैसे—‘अपर चैस्ट ब्रीदिंग’ (Upper Chest Breathing), ‘मिडिल चैस्ट ब्रीदिंग’ (Middle Chest Breathing) तथा ‘डायफ्रामिक ब्रीदिंग’ (Diaphragmic Breathing)। इनमें ‘डायफ्रामिक ब्रीदिंग’ को सर्वश्रेष्ठ माना गया है जिसे भारतीय ‘नाभिगत श्वाँस’ का पर्याय कह सकते हैं।

भारत में प्रायः बँठकर गाने की प्रथा है। इसमें शरीर स्वतः कुछ आगे को झुक जाता है। इससे पेट की मांसपेशी सिकुड़ जाती हैं और फेंफड़े दब जाते हैं। शरीर में एक अनावश्यक तनाव पैदा हो जाता है। यदि मेरुदण्ड सीधा रखा जाय तो फेंफड़ों को पूरी तरह फैलने का अवसर मिलता है जिससे गायन सहज हो जाता है। पाश्चात्य पद्धति में खड़े होकर गाने की प्रथा है, इसलिए वहाँ यह कठिनाई नहीं होती।

भारतीय पद्धति में गायक तरह-तरह की मुखाकृतियाँ बनाता है। हाथ-पैर इत्यादि का संचालन करता है। राग व ताल की शुद्धता का ध्यान रखता है, और पैर के अँगूठे, आँख के इशारे या ठोड़ी हिलाकर लय को संचालित करता है। तबला या सारंगी वादक की ओर ध्यान देता है और व्यर्थ की बातों में अपने विचारों को उलझाए रखता है। इसलिए उसके स्नायु सदैव तनावग्रस्त रहते हैं। स्वर माधुर्य पर इसका अच्छा असर नहीं पड़ता। पाश्चात्य संगीतकार इन झंझटों से मुक्त रहकर केवल अपने संगीत में खोया रहता है। इसीलिए उसकी आवाज़ अधिक प्रभावशाली सिद्ध होती है। अन्तर इतना ही है कि भारतीय संगीतकार नई सृष्टि करने में दिलचस्पी रखता है जबकि पाश्चात्य संगीतकार पूर्व निश्चित बंदिश को हू-ब-हू प्रस्तुत करता है। लेकिन यहाँ हमारा आशय आवाज़ से है।

ईसाई धर्म के प्रचार के साथ पश्चिम में कण्ठ-संस्कार या कंठ-साधना (Voice Culture) का प्रादुर्भाव हो गया था। शरीर विज्ञानियों की सहायता से उन्हें कण्ठ की रचना का ज्ञान हो गया था, किंतु ध्वनि-निर्माण और उससे उत्पन्न गुण-दोषों के बारे में वे प्रायः अनभिज्ञ रहे। वैज्ञानिक संगीतज्ञों में एमिल बेंके, अर्नेस्ट जी० व्हाइट, एच० एच० हलबर्ट तथा जे० लुइस ओर्टेन के नाम उल्लेखनीय हैं, लेकिन कंठ संस्कार के बारे में इन सबके पश्चात् डॉ० डी० स्टेनले ने जिस सिद्धान्त को प्रस्तुत किया वह अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। चिकित्सा विज्ञान के कारण यह सिद्ध हो गया था कि आवाज़ का निर्माण भी शारीरिक क्रियाओं की तरह ही संचालित होता है। प्रत्येक मांसपेशी अपनी विरोधी मांस-पेशी (Antagonistic Muscle) की मदद से ही कार्य करती है। दोनों में से कोई यदि थोड़ी सी भी निष्क्रिय या चपल हो जाए तो प्रत्येक शारीरिक क्रिया कष्टप्रद हो जाती है।

आवाज़ के निर्माण में सहयोग देने वाले अवयवों को डॉ० स्टेनले ने तीन हिस्सों में बाँटा है—१. गति देने वाला (Actuator), २. आंदोलन पैदा करने वाला



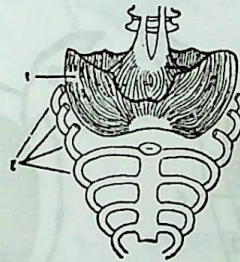
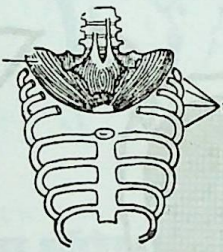
(Vibrator), ३. गूँज पैदा करने वाला (Resonator)। गति देने वाले अवयवों में श्वसन संस्थान के सभी अंग प्रमुख हैं। डायफ्राम एवं पीछे की निचली पसलियाँ गहरी साँस लेने में बहुत मदद करती हैं। फेंफड़े छाती के अन्दर पसलियों के पिंजड़े में बन्द रहते हैं। जहाँ पर पसलियाँ समाप्त होती हैं वहाँ से पेट का भाग शुरू होता है और यहीं पर डायफ्राम (Diaphragm) होता है जो फेंफड़े और उसके आस-पास के अवयवों को पेट के अवयवों से अलग करता है। जब व्यक्ति साँस लेता है तो फेंफड़े फूलकर अधिक स्थान लेते हैं। डायफ्राम फेंफड़ों के फूलने से दबकर नीचे आ जाता है। पीछे की निचली पसलियाँ भी अन्दर के दबाव से बाहर की ओर आ जाती हैं। यहाँ डायफ्राम तथा नीचे की पिछली पसलियों को एक-दूसरे के विरोध में कार्य करने वाली पेशियों के रूप में ले सकते हैं। जैसे ही श्वास बाहर निकलता है तो पसलियाँ अपने स्थान पर लौट आती हैं और उनके दबाव से डायफ्राम भी अपने पूर्व स्थान पर आ जाता है। जैसा कि चित्र नं० १ व २ में दिखाया गया है।

(चित्र नं० १)

(चित्र नं० २)

विराम की स्थिति में डायफ्राम

आवाज उत्पत्ति के समय डायफ्राम



१. डायफ्राम (श्वास-पटल)

१. सिकुड़ा हुआ डायफ्राम

२. नीचे की पसलियाँ (आगे की)

२. नीचे की पसलियाँ (आगे की)

ये दोनों स्नायु-समूह, जो एक दूसरे के विरोध में कार्य करते हैं, यदि आवाज-निर्मिति के समय पूर्णतः संतुलित रहें तो कार्य सहज और कष्ट-रहित होता है। यह तभी सम्भव है, जब उच्छ्वास और निःश्वास के समय तनाव सही रूप में रहे।

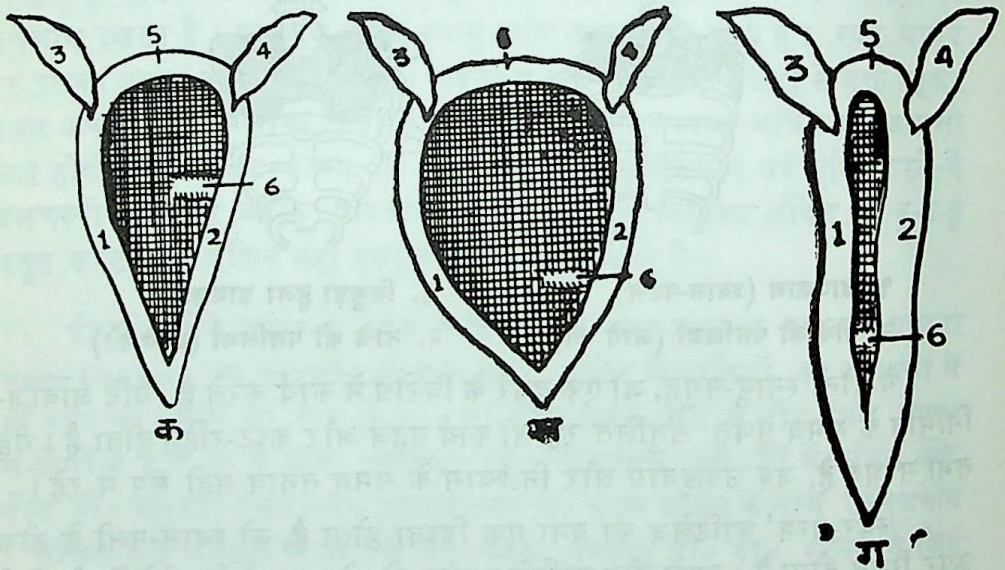
‘स्वर-यन्त्र’ कार्टिलेज का बना एक डिब्बा होता है, जो श्वास-नली के ठीक ऊपर स्थित होता है। इसमें तीन कार्टिलेज ओर दो वोकल कॉर्ड्स होते हैं। ये तीनों कार्टिलेज क्रमशः थाइराइड, क्रीकाइड और एरिटेनाइड हैं। एरिटेनाइड कार्टिलेज भी संख्या में दो होती हैं, तथा वोकल कॉर्ड्स एक सिरे पर इनसे जुड़े रहते हैं। इसका दूसरा सिरा थाइराइड कार्टिलेज के साथ मजबूती से जुड़ा रहता है। थाइराइड कार्टिलेज को हम गले पर छूकर महसूस कर सकते हैं। ‘स्वरयंत्र’ थाइराइड कार्टिलेज द्वारा पूरी तरह से ढका रहता है। इस कार्टिलेज के नीचे अँगूठी के आकार की क्रीकाइड कार्टिलेज स्थित है। सामने की ओर क्रीको थाइराइड मांस-पेशी द्वारा यह थाइराइड कार्टिलेज से जुड़ी रहती है तथा आवश्यकतानुसार इन्हीं मांसपेशियों की



सहायता से थाइराइड कार्टिलेज के पास पहुँच जाती है। थाइराइड कार्टिलेज और क्रीकाइड कार्टिलेज के बने डिब्बेनुमा स्थान के भीतर पीछे की ओर दोनों एरिटेनाइड कार्टिलेज स्थित हैं। वोकल कॉर्ड इन्हीं के साथ जुड़े रहते हैं। दोनों एरिटेनाइड कार्टिलेज के मध्य में एरिटेनाइड मांसपेशी है, जो थाइरो-एरिटेनाइड की विरोधी पेशी है। एरिटेनाइड मांसपेशी के खिंचाव के कारण वोकल कॉर्ड खिंचते हैं और करीब आ जाते हैं। वोकल कॉर्ड के मध्य का भाग, जो 'ग्लोटिस' कहलाता है, इनके करीब आने पर बंद हो जाता है और श्वास का अन्दर का आना या बाहर निकलना असंभव हो जाता है। इस प्रकार ग्लोटिस एक वाल्व का काम करता है (चित्रनं० ३)। जब हम गाते या बोलते हैं तो ग्लोटिस करीब-करीब बन्द हो जाता है और वोकल कॉर्ड कुछ ऐसे सन्तुलन में खिंचे रहते हैं कि स्वर-नियंत्रण स्वतः ही हो जाता है।

## ग्लोटिस की विभिन्न अवस्थाएँ

चित्रनं० ३



- 1 2. वोकल कॉर्ड
- 3-4. एरिटेनाइड कार्टिलेज
5. एरिटेनाइड मांसपेशी
6. ग्लोटिस

- (क) विराम की अवस्था में ग्लोटिस
- (ख) श्वासोच्छ्वास के समय ग्लोटिस
- (ग) आवाज-निर्मिति के समय ग्लोटिस

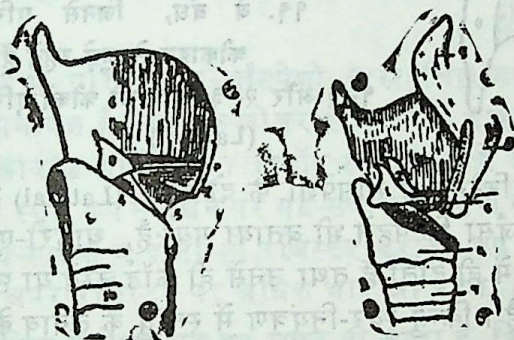
यहाँ यह ध्यान रखना जरूरी है कि वोकल कॉर्ड स्वयं कुछ नहीं करते। उनको गति देनेवाली थाइरो-एरिटेनाइड मांसपेशियाँ हैं जो 'वोकल कॉर्ड' में ही स्थित होती हैं।



तथा स्वर-नियंत्रण में सर्वाधिक सहायता करती हैं। यदि ये मांसपेशियाँ गलत तनाव ले लें, तो आवाज दोषपूर्ण निकलती है। यह गले के लिए भी हानिप्रद है। एरिटेनाइड मांसपेशी के तनाव लेने पर वोकल कॉर्डों के खिंचने से ग्लोटिस बन्द हो जाता है तथा श्वास-नली में से आने वाली वायु के दबाव से वोकल कॉर्ड बांदोलित होते हैं और आवाज उत्पन्न होती है। (चित्र नं० ४)

## स्वर-यंत्र की रचना

चित्र नं० ४



१-८. एरिटेनाइड कार्टिलेज

२-३. थाइरो-एरिटेनाइड मांसपेशी

४-५. क्रीको एरिटेनाइड मांसपेशी

६. थाइराइड कार्टिलेज

७. ऊपरी हॉन

८. क्रीकाइड कार्टिलेज

९. श्वास-नली

१-२. एरिटेनाइड कार्टिलेज

३. थाइराइड कार्टिलेज

४. क्रीकाइड कार्टिलेज

५. एपिग्लोटिस

६. वोकल कॉर्ड

७. श्वास-नली

स्वर-यंत्र में निम्नलिखित प्रमुख स्नायु-समूह होते हैं, जैसा कि चित्र नं० ५ में दिखाया गया है।

१. क्रीको थाइराइड मांसपेशी

(Crico Thyroid Muscle)

२. थाइरो-एरिटेनाइड मांसपेशी

(Thyro Arytenoid Muscle)

३. क्रीको एरिटेनाइड मांसपेशी

(Crico Arytenoid Muscle)

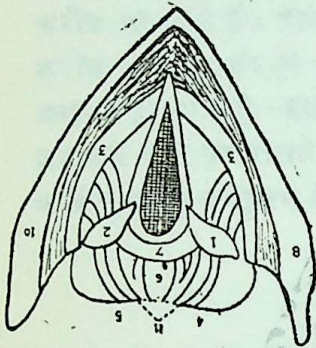
४. एरिटेनाइड मांसपेशी

(Arytenoid Muscle)



## स्वर-यंत्र का ऊपरी दृश्य

चित्र नं० ५



१-२. एरिटेनाइड कार्टिलेज

३-६-३. क्रीकाइड कार्टिलेज

४-५. पीछे की क्रीको एरिटेनाइड मांसपेशियाँ (Posterior)

७. एरिटेनाइड मांसपेशी

८-९-१०. थाइराइड कार्टिलेज

११. वे बंध, जिनसे एरिटेनाइड कार्टिलेज क्रीकाइड से जुड़े रहते हैं।

१-३ और २-३. आगे की क्रीको एरिटेनाइड मांसपेशी (Lateral)

इसमें क्रीको एरिटेनाइड मांसपेशी के दो भाग (Lateral) और (Posterior) किए गए हैं। जैसा कि पहले भी बताया गया है, थाइरो-एरिटेनाइड मांसपेशियाँ वोकल कॉर्डों में ही होती हैं तथा उनसे ही कॉर्ड लम्बे या छोटे और आवाज़ ऊँची या नीची होती है। किन्तु स्वर-नियंत्रण में स्नायु के तनाव के साथ-साथ वायु का उचित नियंत्रण भी जरूरी है।

हमारे मुख से जो आवाज़ बाहर निकलती है, उसमें एक प्रकार की गूँज होती है। डॉ० स्टेनले के अनुसार, गूँज ही सही आवाज़-निर्मिति का सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व है।

सृष्टि ने हमारे लिए कुछ गुंजन-कक्ष (Resonating Cavities) बनाए हैं :—

१. मुख (Mouth)

२. नासा-विवर (Nasal Cavity)

३. खोपड़ी में स्थित खोखले भाग (Head Sinuses)

४. फेरिक्स (Pharynx), जिनमें 'नेज़ल' (Nasal), 'ओरल' (Oral) तथा 'लेरिजियल' (Laryngeal Pharynx) आते हैं।

जब वायु आन्दोलित होकर स्वर-यंत्र से बाहर निकलती है तो वह नाक आदि से सह-आन्दोलित होकर मुख द्वारा बाहर निकलती है और इसी कारण आवाज़ में गूँज होती है। जब फेरिक्स कार्यरत होते हैं तो कंठ की स्वर-गुहा (Laryngeal Cavity) तन जाती है। इस गुहा अर्थात् 'केवटी' (Cavity) का आकार स्वर की ऊँचाई-निचाई के साथ बदलता रहता है। गले का आकार जीभ के उद्गम (Root of the Tongue) पर आए हुए तनाव से महसूस किया जा सकता है। इस प्रकार गूँज लाने में सही रूप से जीभ की पेशियाँ सहायक होती हैं। इनके

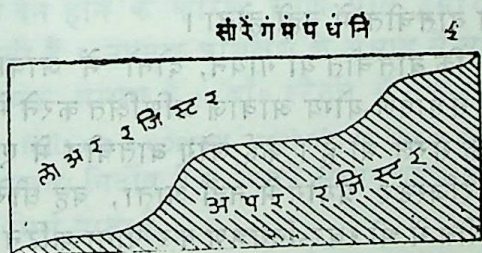


सुचारु कार्य से न केवल गुंजन-कक्ष सही आकार में रहता है, वरन् स्वर-यन्त्र भी ठीक रहता है। कभी-कभी जब जीभ अत्यन्त कड़ी हो जाती है तो जो आवाज़ निकलती है, उसे 'थ्रोटी आवाज़' (Throaty Voice) कहते हैं।

पाश्चात्य कंठ-साधना में 'रजिस्टर' एक महत्त्वपूर्ण शब्द (Term) है, जिसके निर्दोष और विकसित होने पर गायन की अधिकांश सफलता निर्भर करती है। रजिस्टर को अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग तरीकों से परिभाषित किया है। डॉ० स्टेनले के शब्दों में—“स्वर-यंत्र के स्नायु-समूहों का समायोजन, जिसमें कोई एक स्नायु-समूह अधिक प्रभावशाली हो, 'रजिस्टर' कहलाता है।” वोकल कॉर्ड्स को नियन्त्रित करनेवाले केवल दो स्नायु-समूह होते हैं, इसलिए डॉ० स्टेनले दो रजिस्ट्रों का अस्तित्व ही स्वीकार करते हैं—१. अपर रजिस्टर तथा २. लोअर रजिस्टर।

अपर रजिस्टर में एरिटेनाइड मांसपेशी द्वारा लिए गए तनाव व उससे उत्पन्न आवाज़ का समावेश है, जब कि लोअर रजिस्टर में थाइराइड मांसपेशी के तनाव द्वारा उत्पन्न आवाज़ शामिल है। निर्दोष स्वरोत्पत्ति में दोनों ही रजिस्ट्रों का प्रयोग जरूरी है। स्थूल रूप से देखने पर मंद्र-सप्तक के स्वरों में लोअर-रजिस्टर प्रबल होता है, मध्य-सप्तक में दोनों ही रजिस्टर बराबर रूप से कार्यरत होते हैं और तार-सप्तक में अपर-रजिस्टर पर अधिक भार आ पड़ता है।

नीचे के रेखाचित्र में देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि आवाज़ निकलते समय दोनों रजिस्टर सही रहें तो रजिस्ट्रों का सन्तुलन किस प्रकार होगा :—



डॉ० स्टेनले के अनुसार सही शुरुआत, जिसे वे तकनीकी भाषा में 'अटैक' (Attack) कहते हैं, गायन की तकनीक में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। सही श्वसन-क्रिया तथा स्वरयंत्र की मांसपेशियों व गुंजन-कक्ष की मांसपेशियों का ठीक समायोजन उत्तम आवाज़ निकालने के लिए जरूरी है। ये सभी क्रियाएँ पूरी तरह अनैच्छित हैं। स्वर-यंत्र और फोरिक्स के पूर्णतया विकसित हो जाने पर अनेक दोषों का बचाव स्वयं ही हो जाता है। किन्तु सही शुरुआत (Attack) के लिए जहाँ इन सभी में सही समायोजन जरूरी है, वहीं इन-सबका अलग रूप में दोष-रहित होना भी जरूरी है। शुरुआत या (Attack) का सही तरीका डॉ० स्टेनले ने इस प्रकार



बताया है—“सबप्रथम गायक को यह सोच लेना चाहिए कि उसे क्या गाना है। फिर गुंजन-कक्ष को आवश्यकतानुसार तैयार रखकर बिना किसी हिचकिचाहट के, ग्लोटिस को धक्का पहुँचाए बिना स्वर लगाना चाहिए। फॉरिक्स के खोखले भाग (Pharyngeal Cavity) को तैयार करना, वोकल कॉर्ड का खिंचना तथा स्वर लगाना, सब एक-साथ होना चाहिए।”

डॉ० स्टेनले ने साँस लेने और गाते समय खड़े होने की शारीरिक अवस्था (Posture) के बारे में काफ़ी विस्तार से लिखा है। कई लोग साँस लेते समय शरीर की स्वाभाविक अवस्था को बेकार ही बिगाड़ लेते हैं। कुछ लोग श्वास-नियंत्रण के लिए जानबूझकर शरीर को तानते हैं तथा कुछ छाती फुलाकर गहरी साँस लेना चाहते हैं। इससे शरीर का सन्तुलन बिगड़ता है और गले की मांसपेशियाँ हानिकारक रूप से तन जाती हैं।

डॉ० स्टेनले ने बातचीत और गायन में उपयुक्त आवाज़ को अलग-अलग माना है। वे इनमें चार अन्तर बताते हैं :—

१. गायन में उच्चारित स्वर बातचीत के स्वर की अपेक्षा अधिक लम्बा किया जाता है।

२. गायन में जिस प्रकार का वाइब्रेटो (Vibrato) प्रयुक्त होता है, वैसा बातचीत में नहीं होता।

३. गायन में शब्द और स्वर जिस प्रकार जुड़े (Articulated), रहते हैं, वैसे संभाषण में नहीं होते।

४. गायन में स्वर की ऊँचाई-नीचाई में जल्दी-जल्दी परिवर्तन (Pitch Variation) होता है, जो बातचीत में नहीं होता।

यह तो स्पष्ट है कि बातचीत या गायन, दोनों में आवाज़ की उत्पत्ति एक ही प्रकार से होती है। संभाषण-योग्य आवाज़ प्रशिक्षित करने में कम समय लगता है तथा यह कार्य अधिक सरल भी है। कई लोग बातचीत में एक ही रजिस्टर का प्रयोग करते हैं। जो रजिस्टर प्रयोग में नहीं आता, वह धीरे-धीरे कमज़ोर हो जाता है और तब बातचीत में भी स्वर-नियंत्रण कर पाना कठिन हो जाता है। यही कारण है कि संभाषण-योग्य आवाज़ प्रशिक्षित करते समय, नीचे के रजिस्टर पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

विदेशों में बातचीत को भी बहुत महत्त्व दिया जाता है। वहाँ इस क्षेत्र में आवाज़ के माधुर्य को समान रूप से परखा जाता है। आवाज़ को प्रशिक्षित करने का सीधा-सा अर्थ यह है कि हम उन दोषों को हटाएँ, जो ग़लत तकनीक के कारण आ जाते हैं; साथ ही उन मांसपेशियों को शक्तिशाली बनाएँ, जो आवाज़ की उत्पत्ति में सहायक होती हैं। तकनीकी दोष प्रायः अनावश्यक मांसपेशियों के हस्तक्षेप के कारण होते हैं।

निर्दोष आवाज़ की उत्पत्ति में बाधक कुछ आम धारणाओं का उल्लेख भी डॉ० स्टेनले करते हैं :—



१. श्वास-नियंत्रण हम श्वसन-संस्थान की पेशियों की सहायता से करते हैं।

२. स्वरोत्पत्ति के समय गला पूर्णतया शिथिल होना चाहिए। इस समय स्वर यन्त्र और फॉरिक्स को एक स्थिति में स्थिर रहना ही पड़ता है, जो बिना पेशीय तनाव के असंभव है। गर्दन आदि की पेशियाँ शिथिल हों, यह जरूरी है। गले के सम्बन्ध में सजगता (Consciousness of Throat) बहुत जरूरी है। आवश्यकता-नुसार स्वर को आकार देना गायक पर निर्भर रहता है।

३. आवाज़ के उत्पत्ति-स्थान के विषय में भी कुछ विचित्र धारणाएँ पाई जाती हैं। किसी के अनुसार यह स्थान सिर में है, तो किसी के अनुसार मुख में, कोई तालु के विरुद्ध दिशा में इसका होना जरूरी मानता है। यह भी कहा जाता है कि इस स्थान को चेहरे के सामने, नाक के पास या होठों के पास महसूस किया जा सकता है।

स्वरोत्पत्ति-स्थान (Placing) एक ऐसा तत्त्व है, जिस पर ज़रा भी जोर देना अन्य अंगों को उपेक्षित करने के लिए काफ़ी है। डॉ० स्टेनले के अनुसार, ये स्थान कुछ भी नहीं है; क्योंकि आवाज़ वायु के सिवा कुछ भी नहीं, जो वोकल कॉर्ड में से आंदोलित होती है।

४. इन-सबके अतिरिक्त सबसे विचित्र धारणा यह है कि अच्छी आवाज़ प्रकृति की देन है। प्रकृति की ओर से तो सभी को एकसी आवाज़ मिलती है; किंतु उसका उपयोग कैसे किया जाता है, यह विचारणीय है। प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से उत्तम आवाज़ पा सकता है।

आवाज़-शास्त्र का प्रचार धीरे-धीरे अब हमारे देश में भी होने लगा है। यह शास्त्र विदेशों की देन होने के कारण इसके प्रति हमारे यहाँ अनेक प्रकार की भ्रांतियाँ पाई जाती हैं। उपयुक्त प्रशिक्षण के अभाव में आवाज़ की दृष्टि से हमारे यहाँ कुछ ही गायक सम्पन्न हैं। डॉ० स्टेनले ने एक स्थान पर कहा है—“One who accidentally falls on a correct technique has a good voice”। इस प्रकार जिसका गला स्वभावतः निर्दोष है व जिसने अंधानुकरण से नहीं सीखा, ऐसा कोई एकाध गायक ही मिल पाता है।

डॉ० स्टेनले के बाद इस क्षेत्र में लगातार नए-नए संशोधन होते रहे हैं। फिर भी इस शास्त्र का वैज्ञानिक और तर्कशुद्ध स्वरूप सबसे पहले डॉ० डगलस स्टेनले ने ही हमारे सामने रखा, अतः आधुनिक आवाज़-शास्त्र के प्रणेता के रूप में उनका नाम श्रद्धा से लिया जा सकता है।

□ □ □



## कंठ-साधना और पार्श्व-गायन

### Voice Training and Playback Singing

गायन के लिए कंठ में कौन-कौनसे गुण होने चाहिए और दोष कौन-कौनसे हैं, इसकी चर्चा पहले हो चुकी है। यहाँ इसी बात पर विचार करना है कि कंठ को किस प्रकार संस्कार-युक्त और मधुर बनाया जाए, ताकि वह लोगों को प्रभावित कर सके।

पाश्चात्य देशों में कंठ-साधन (Voice-Culture) के ऊपर बहुत विचार हुआ है और किसी भी आवाज़ को प्रशिक्षित करने के लिए वहाँ बड़े वैज्ञानिक ढंग से परिश्रम किया जाता है तथा यह वर्गीकरण भी किया जाता है कि कौनसी आवाज़ किस गान-पद्धति को अपनाने के लिए उपयुक्त रहेगी। जबकि भारत में इसका उल्टा है अर्थात् यहाँ जिन व्यक्तियों को अन्य कोई कला नहीं आती या जिन लड़कियों की शादी नहीं होती, उनके अभिभावक उन्हें संगीत सीखने का सुझाव देते हैं। इसी का परिणाम है कि कंठ-गुण से युक्त गायकों का भारत में सदैव अभाव रहता है। जिस पर न उस्ताद विचार करते हैं और न चेले। इसी लिए भारत का शास्त्रीय संगीत क्रमशः अपना प्रभाव खोता जा रहा है।

कंठ-साधना का ध्यान रखकर कंठ-माधुर्य की ओर ध्यान दिया जाय और भिन्न-भिन्न आवाज़ों को संगीत की उपयुक्त विधाओं के योग्य बनाया जाय तो उन विधाओं के प्रचार के साथ-साथ संगीत की लोकप्रियता में भी वृद्धि होगी। जो आवाज़ ध्रुपद-गायन के योग्य हो उससे ठुमरी-गायन की आशा नहीं करनी चाहिए और जो ठुमरी के लिए अनुकूल हो उससे ध्रुपद की आशा नहीं रखनी चाहिए। विकृति तभी आती है, जब किसी विधा को उपयुक्त कंठ-स्वर उपलब्ध नहीं होते। यदि कोई कोमलांगी पुरुष जैसी मोटी आवाज़ में बात करे तो कैसा लगेगा? और यदि कोई भारी भरकम पुरुष नारी जैसी पतली आवाज़ में बोले तो कैसा प्रतीत होगा?



किसी नारी का अभिनय कोई पुरुष कर रहा है, यह पता लगते ही अभिनेता से अरुचि होने लगती है, भले ही वह भगवान् राम की पत्नी सीता हो। तात्पर्य यही है कि विविध गान-शैलियों के लिए विविध कंठ-स्वर ही प्रयुक्त किए जाने चाहिए। जिस प्रकार कोई पतला-दुबला आदमी किसी राजा या सेठ के अभिनय के उपयुक्त सिद्ध नहीं होता, उसी प्रकार चित्रासिंह या परवीन सुल्ताना से ध्रुपद-धमार गाने की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। यह बहुत स्वाभाविक बात है।

आवाज़ को उपयुक्त आकार देकर उसे निश्चित विधा के अनुकूल बनानेवाली प्रक्रिया को कंठ-साधना या कंठ-संस्कार ( Voice-culture ) कहा जाता है। संगीत-तोषयोगी नाद-साधना के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

1. स्वर पर स्वभाव का बहुत प्रभाव पड़ता है। क्रोधी और चिड़-चिड़े व्यक्तियों का स्वर प्रायः कर्कश और अप्रिय होता है, जबकि सहृदय व्यक्तियों का स्वर मधुर पाया जाता है। अतः व्यक्तित्व को सन्तुलित बनाना चाहिए ताकि कंठ के स्नायुओं पर अधिकार रहे और स्वर के सन्तुलन में सहायता मिले।
2. अन्य मधुर और प्रभावशाली स्वर तथा ध्वनियों को सुनकर अपने स्वर से उसकी तुलना करके उनका अनुकरण करना चाहिए।
3. व्यक्ति का हृदय-प्रदेश, नासिका-प्रदेश, गला और होंठ, स्वर की गूँज को निर्धारित करते हैं, अतः गाते समय अथवा बोलते समय गूँज उत्पन्न करनेवाले हिस्से का संतुलित प्रयोग करना चाहिए, जिससे आवाज़ मधुर और गोल बन सके।
4. स्वर के उत्पादन में नासिका-गुंजन की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसके लिए नथुनों के विकास का ठीक-ठीक अभ्यास करना चाहिए।
5. श्वास पर नियंत्रण रखने के लिए प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए, क्योंकि स्वर-यंत्र एक प्रकार का सुषिर-वाद्य है। जिस प्रकार फूँक से बजने वाले वाद्यों में सन्तुलित फूँक देकर मधुर स्वर की उत्पत्ति की जाती है, उसी प्रकार कंठ से आवाज़ निकालते समय साँस पर नियंत्रण रखना चाहिए।
6. श्वास को घटा-बढ़ाकर आवश्यकतानुसार स्वर को छोटा-बड़ा किया जा सकता है, अतः श्वास नियंत्रण के व्यायाम करने चाहिए।
7. एक अनुभवी पाश्चात्य संगीतकार का कहना है कि दाहिनी टाँग ही स्वर का ध्वनि-बोर्ड है। यदि वजन सीधे पैर पर हो तथा घुटना सीधा रहे तो वक्ष-उदर मध्यपेशी ( Diaphragm ) का श्वसन आसान होगा और प्रतिध्वनि की क्रिया भी ठीक होगी। इसलिए जब खड़े होकर गाना हो तो सीधे पैर पर शरीर का भार छोड़कर बाएँ पैर को पाँच-छह इंच की दूरी पर पीछे की ओर रख लेना चाहिए और उसका भार केवल पंजे पर रखना चाहिए। यदि बैठकर गायन करना हो तो दोनों घुटने पीछे की ओर मोड़कर वज्रासन में अथवा बायाँ पैर पीछे की ओर मोड़कर तथा दायाँ पैर आगे रखकर वीरासन में बैठना चाहिए।



जैसे कि प्राचीन काल में राजाओं के बैठने की प्रथा थी अथवा पालथी मारकर सुखासन में बैठना चाहिए। ध्यान रहे कि बैठने या खड़े होने की अवस्था में छाती बिल्कुल सीधी रहेगी।

८. गले को भींचकर या दबाकर नहीं गाना चाहिए। इसके लिए ध्यान रखना चाहिए कि आवाज़ मुक्त कंठ से निकले और गाना जीभ से प्रस्तुत हो। गाते समय जीभ और कंठ ठीक उस स्थिति में रहें जैसे कि किसी से फुसफुसाते हुए बातें की जाती हैं।

९. तेजी से साँस लेने और उसे धीरे-धीरे छोड़ने का अभ्यास होना चाहिए। साँस लेने में आवाज़ बिल्कुल न सुनाई दे, इसका विशेष ध्यान रखना है। इससे पसलियों की पेशियों में लोच भी पैदा होगा।

१०. प्राणायाम किसी जानकार व्यक्ति के निर्देशन में होना चाहिए अन्यथा उसमें त्रुटि होने की संभावना रहती है। निर्देशक के अभाव में दोनों नथुनों द्वारा गहरी श्वास लेने और धीरे-धीरे निकालने का अभ्यास किया जा सकता है, जिसे अंग्रेजी में 'डीप ब्रीदिंग' (Deep Breathing) कहते हैं। इससे श्वास की गति और उसकी दिशा पर पूरा-पूरा अधिकार होगा; अन्यथा प्रायः श्वास-ग्रसनिका (Pharynx) में वायु जमा हो जाती है और कुछ ध्वनि खो जाती है।

११. आवाज़ निकालते समय उसकी गति तालु के ऊपरी भाग (Hard Palate) की ओर होनी चाहिए और गले पर अनावश्यक दबाव कभी नहीं डालना चाहिए अन्यथा श्वास के स्वच्छंद आवागमन में बाधा पड़ती है और स्वरतार या स्वररज्जु (Vocal chords) पूरी तरह अपना काम नहीं कर पाती। फूल सूँघने में जो सन्तुलित और स्वाभाविक वायु, नासिका द्वारा ग्रहण की जाती है, उसका सदैव स्मरण रखना चाहिए।

१२. जिन व्यक्तियों के गले में प्रायः कफ़ बना रहता है या जुकाम बना रहता है, उन्हें नित्य-प्रति प्रातःकाल आधा गिलास जल नासिका द्वारा पीने का अभ्यास करना चाहिए। कुछ ही काल में वे कफ़ और सर्दी के रोग से मुक्त हो जाएँगे।

१३. स्वर-साधक के लिए मन और शरीर दोनों का पूर्ण स्वस्थ रहना आवश्यक है, इसलिए अधिक शीतल और अधिक गर्म चीज़ों से बचना चाहिए; साथ ही तेज़ मिर्च मसाले और खटाई का सदैव परहेज़ रखना चाहिए।

१४. स्वर-साधक को बाँसुरी या शहनाई-जैसे किसी भी प्रकार के फूँक से बजने-वाले सुषिर-वाद्य कभी नहीं बजाने चाहिए, अन्यथा कंठ-स्वर को बहुत हानि पहुँचती है।

१५. स्वर-शक्ति से समन्वित सुरीले नाद को कंठ का आभूषण समझना चाहिए अतः अभ्यास के साथ-साथ कंठ की सुरक्षा का भी पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। नाद की शोभा कंठ से है और कंठ की नाद से।

साधक को चाहिए कि उपर्युक्त बातों का ध्यान रखकर कंठस्वर के गुणों में अभिवृद्धि करे ताकि मन्द्र, मध्य और तार तीनों सप्तकों की आवाज़ में मधुरता



और उसका वजन कायम रहे। गायक के गुण और अवगुणों की जो चर्चा पिछले अध्यायों में की जा चुकी है, उनका सदैव ध्यान रखें और जब आवाज़ संस्कारयुक्त हो जाए तो भविष्य में संयम द्वारा उस स्वर-संपत्ति को सुरक्षित रखें। अनर्गल या उच्छृंखल व्यवहार से आवाज़ में विकृति न आने दें। साधक तैयारी के पीछे पड़कर मधुर स्वरों को बेसुरा होने से बचाए, मधुर संगीत का श्रवण करे, आवाज़ को बहुत बलपूर्वक न निकाले और उसे स्वाभाविक स्थिति में रहने दे, क्योंकि आजकल गायन प्रायः माइक्रोफोन के जरिए ही प्रसारित किया जाता है। अतिमंद्र सप्तक या अतितार सप्तक में स्वरों को खींचकर व्यर्थ का चमत्कार दिखाने की चेष्टा न करे। तानपूरे की जवारी बन्द करके अभ्यास करे ताकि आवाज़ की स्वाभाविकता नष्ट न हो। जवारी खोलकर अभ्यास करने से स्वर की मधुरता नष्ट हो जाती है और अबतक शास्त्रीय गायकों के साथ प्रायः यही हुआ है। इसी लिए आज किसी भी शास्त्रीय संगीतकार से कोई गीत गवाने के लिए तैयार नहीं होता, जबकि अन्य पार्श्वगायक एक-एक गीत गाने के लिए पचास हजार रुपए तक पारिश्रमिक ले-लेते हैं।

स्वर अंतस्तल के भावों को प्रकट करते हैं, अतः प्रत्येक गायन गीत के भाव के अनुरूप होना चाहिए और काकु-भेद के ज्ञान द्वारा उसे अधिक-से-अधिक मार्मिक प्रभावशाली और ओजस्वी बनाना चाहिए।

अलग-अलग घरानों में आवाज़ की साधना के लिए अलग-अलग प्रकार के अभ्यास और तान-पलटे बताए जाते हैं। परन्तु इन सबका लक्ष्य आवाज़ की दमदारी, तैयारी और चमत्कार तक सीमित रहता है, जबकि उसका प्रधान उद्देश्य कंठ के माधुर्यगुण का विकास होना चाहिए। इसी के फलस्वरूप इस काल में सुगम संगीत और फ़िल्म-संगीत की लोकप्रियता बढ़ी है और शास्त्रीय संगीत का हास हुआ है।

### पार्श्व-गायन

पहले ज़माने में गायन-वादन बड़े-बड़े खुले सभा मंडपों में हुआ करता था और गायक-वादकों को शक्तिशाली प्रदर्शन में ध्यान अधिक लगाना पड़ता था, ताकि उनकी अभिव्यक्ति दूर बैठे व्यक्ति तक पहुँच सके। इसके लिए नर्तकों को अस्वाभाविक अंग-चेष्टाएँ करनी पड़ती थीं, गायकों को बहुत बल लगाकर स्वर प्रसारित करना पड़ता था और वादकों को गहरे आघातों द्वारा वाद्ययंत्रों की ध्वनियाँ निकालनी पड़ती थीं। इससे उनका प्रदर्शन अंतिम दर्शक या श्रोता तक तो पहुँच जाता था, परन्तु संगीत का स्वाभाविक सौंदर्य नष्ट हो जाता था। आज विज्ञान का युग है, कैमरे ने नर्तक को मंच के इतना निकट ला दिया है कि उसके पलक के बालों का संचालन भी दिखाई देता है। गायक की आवाज़ तो अलग रही, उसकी साँस की ध्वनि को भी माइक्रोन पकड़ लेता है। इसी प्रकार वादक के दोष भी प्रकट हो जाते हैं। विज्ञान के द्वारा कला-प्रस्तुतीकरण की इतनी सूक्ष्म अभिव्यक्ति हो सकेगी, इसकी कल्पना किसी को नहीं थी। ऐसी स्थिति में पुराने साधक नए साधकों का सामना कैसे करें यह एक बड़ी समस्या है? सभागृह और रिकार्डिंग कक्ष अब ऐसे बनने लगे हैं जहाँ



जेब का रूमाल गिरने से भी उसकी ध्वनि सुनाई पड़ जाती है। इस वैज्ञानिक प्रगति के कारण ही कला के अनेक नए क्षितिज खुले हैं, जिनमें से एक पार्श्व-गायन भी है।

पार्श्व-गायन अर्थात् पर्दे के पीछे से गाना। गायक कोई और होगा और होंठ चलानेवाला कोई दूसरा। फ़िल्म में पर्दे पर हीरो गाता हुआ दिखाई पड़ता है, लेकिन आवाज़ वास्तव में किसी पार्श्व-गायक की होती है। सरल, मधुर और लोक-रंजक होने के कारण पार्श्व-गायन की कला का विकास अद्भुत रूप से हुआ है। पार्श्व-गायन के क्षेत्र में सौ उच्चकोटि के संगीतकार एक पार्श्व-गायक या गायिका के साथ मिलकर तीन मिनट का ऐसा संगीत प्रस्तुत करते हैं जो करोड़ों संगीत-प्रेमियों का दिल जीत लेता है। इसके विपरीत शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में इन्ने-गिने तीन संगीतकार तीन घंटे तक अपने संगीत युद्ध का प्रदर्शन करके इसे इतना अप्रिय बना देते हैं कि साधारण व्यक्ति शास्त्रीय संगीत नाम से ही घृणा करने लगता है। पार्श्व-गायन और मंच-गायन के बीच यह एक बड़ा अन्तराल है, जिसे आसानी से नहीं पाटा जा सकता।

जब पार्श्व-गायक (Playback-Singer) किसी रचना को प्रस्तुत करता है तो रिकार्डिस्ट सदैव यह ध्यान रखता है कि गायक के स्वरों में गांभीर्य (बेस) और शब्दों का उच्चारण स्पष्ट रहे तथा गायक की आवाज़ के दोष, गूँज पैदा करनेवाले एको-यंत्र (Echo'iser) से इस प्रहार ढक दिया जाये कि वे गुण-रूप में परिवर्तित हो जाएँ। प्रत्येक वाद्य को अलग-अलग सुनकर रिकार्डिस्ट उनकी उपादेयता की दृष्टि से संगीतकारों के बैठने की स्थिति को ठीक करके तथा वॉल्यूम को कन्ट्रोल करके रिकार्डिंग पर नियंत्रण रखता है। इसके लिए रिकार्डिंग मशीन में अलग-अलग 'चैनल' की व्यवस्था रहती है, ताकि गाना रिकार्ड होने के बाद यदि कोई ध्वनि या वाद्य घटाना-बढ़ाना हो तो वह भी आसानी से हो सके। इस प्रकार पूरा गीत सम्पूर्ण वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से रिकार्ड कर लिया जाता है। बाद में इस गीत को बार-बार बजाकर फ़िल्म के अभिनेता से उसपर केवल होंठ चलवाए जाते हैं और कैमरे द्वारा आवश्यक दृश्य की शूटिंग पूरी करली जाती है। प्ले-बैक या पार्श्व-गायन इसी प्रथा या कला का नाम है, जो संगीत के क्षेत्र में आज की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है।<sup>१</sup> पार्श्व-गायन के क्षेत्र में इस शताब्दी में जिन पार्श्व-गायकों ने विशेष यश अर्जित किया है, उनके नाम हैं—नूरजहाँ, शमशाद बेगम, सुरैया, सहगल, लता मंगेशकर, आशा भोंसले, गीता दत्त, मोहम्मद रफ़ी, मुकेश, मन्नाडे, यशुदास, सुरेश वाडकर तथा अनुराधा पौडवाल इत्यादि। इन कलाकारों के उत्थान का श्रेय उन समस्त संगीत-निर्देशकों को है, जिनकी संगीत-रचनाएँ इनके द्वारा गाई गई हैं। वास्तव में फ़िल्म-क्षेत्र एक ऐसा वृन्दगान है, जहाँ किसी प्रगति के लिए कोई एक व्यक्ति ज़िम्मेदार नहीं। सम्पूर्ण कार्य क्षेत्र एक टीमवर्क है, अतः किसी भी उत्कर्ष या सफलता का श्रेय पूरी टीम को ही दिया जाता है।

१. 'पार्श्व-गायन' या आवाज़ मधुर बनाने की विस्तृत और प्रामाणिक जानकारी के लिए डॉ० लक्ष्मीनारायण गंग द्वारा लिखित पुस्तक 'आवाज़ सुरीली कैसे करें' का अध्ययन किया जा सकता है जो संगीत कार्यालय, हायरस (उ० प्र०) द्वारा प्रकाशित हुई है।



## राग-निर्माण और स्वर-रचना के सिद्धांत

भारतीय संगीत में राग शब्द अँग्रेजी के 'मैलाडी' के पर्याय के रूप में प्रयोग होता है। स्वर और वर्णों से विभूषित उस ध्वनि-विशेष को 'राग' कहते हैं जो मन या चित्त का रंजन करे।

मंद्र, मध्य और तार-स्थान में जब बारह-बारह स्वरों की स्थिति ईरानियों के मुक़ाम-सिद्धांत के प्रभाव से मान ली गई, तब ठाठ अथवा उसके कुछ स्वरों को लौटकर नए रागों के निर्माण का नियम भारतीय संगीत में आया। उसी कारण मध्यकालीन ग्रन्थों में अनेक रागों की स्वरावलि उन रागों की प्रचलित स्वरावलि से भिन्न मिलती है। कोमल ऋषभ, कोमल धैवत व तीव्र-मध्यम-जैसी स्वर-संज्ञाओं का जन्म मंद्र, मध्य और तार-स्थान में बारह-बारह स्वर मानने के परिणाम-स्वरूप हुआ है।

मतंग ने रागों का वर्गीकरण मुख्य रूप से ग्राम राग, भाषा राग और देशी राग के अन्तर्गत किया है। शाङ्गदेव ने देशी रागों का विभाजन चार विभागों में किया; यथा—रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग। बाद के आचार्यों ने राग-रागिनी और मेल-पद्धति नाम से दो वर्गीकरण-पद्धतियाँ स्वीकार कीं, जिनमें से राग-रागिनी वर्गीकरणवाली पद्धति का लोक में अधिक प्रचार हुआ। मेल-पद्धति का मुख्य कार्य-क्षेत्र दक्षिण-भारत रहा।

ग्राम रागों के लक्षणों में आलाप, करण या वर्तनी तथा आक्षिप्तिका को क्रम से बताया गया है। इसके अतिरिक्त १४ लक्षण भी गिनाए हैं; यथा—आश्रय भूत जाति, ग्राम-विशेष-ग्रह-अंश-न्यास-अपन्यास, संपूर्ण-षाडवादि, स्थायी, आदि-वर्ण, प्रसन्नादि एवं अन्य अलंकार, मूर्च्छना, विशेष स्वरों का निर्देश, स्वरों का अल्पत्वादि, रस, ऋतु, समय, नाटक की संधि अथवा परिस्थिति-विशेष और देवता।

राग-निर्माण के लिए वर्ण, अंश, ग्रह और न्यास की जानकारी बहुत आवश्यक है। इन्हीं के आधार पर स्वरों, श्रुतियों तथा संवाद-सिद्धांत का ध्यान रखते हुए नए रागों का निर्माण संभव होता है। किस स्वरावलि को स्थान दिया जाए, सप्तक में विचरण करने से धुन की पूर्णता कैसे कायम रहे, मन के अन्दर एक विशिष्ट प्रकार के रस का कैसे संचार हो, इच्छित भावों का प्रकाशन करने में



स्वर-विशेषों का लगाव किस प्रकार किया जाए, गीत के पद के साथ सम्मिलित होकर स्वर प्रभावशाली कैसे बने, इन सब बातों का ध्यान नए रागों का निर्माण करते समय रखा जाता है ।

राग की रचना के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए :-

१. ठाठ के स्वरों को ज्यों-का-त्यों रखते हुए उनकी गति में परिवर्तन करना और विश्रान्ति के स्वरों को बदल देना, जैसे कि—सोहनी, पूरिया और मारवा राग हैं ।
२. ठाठ लौटा जाय और विश्रान्ति स्वर भी बदले जाएँ, जैसे कि मालकौंस और हिंडोल हैं ।
३. राग के स्वरूप और ठाठ को ज्यों-का-त्यों रखते हुए उसमें एक स्वर की वृद्धि कर दी जाए, जैसे कि—राग पूरिया से मालीगौरा बनाने के लिए उसमें पंचम का समावेश किया गया है ।
४. किसी राग का एक स्वर कम कर दिया जाए और उसकी गति को उन्मुख कर दिया जाए तब भी राग के स्वरूप में भिन्नता आ जाएगी ।
५. दो अलग-अलग ठाठों से एक जैसे स्वर-समुदाय लेकर आरोह में एक ठाठ और अवरोह में दूसरा ठाठ रखकर नए राग की सृष्टि की जा सकती है ।
६. दो अथवा अधिक रागों के मिश्रण से भी नए राग का निर्माण किया जाता है और ध्यान रखा जाता है कि निर्मित राग का व्यक्तित्व स्वतंत्र प्रतीत हो ।
७. एक ठाठ के पूर्वार्ध और दूसरे ठाठ के उत्तरार्ध को लेकर नए राग का निर्माण किया जाता है । जिसे शुद्ध पीलू कहते हैं, उसके पूर्वार्ध में भैरवी और उत्तरार्ध में भैरव ठाठ के स्वर स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं ।

शास्त्र किसी भी रुचिकर और सन्तुलित परिवर्तन का विरोध नहीं करता, परन्तु आवश्यकता इसी बात की होती है कि मनुष्य को आनन्द प्रदान करनेवाले तत्त्व विशृंखल न हों । जिस प्रकार मुँह के कौर में एक छोटी सी कंकड़ी पूरे स्वाद को समाप्त कर देती है, उसी प्रकार स्वरों से निर्मित विशिष्ट रस-प्रक्रिया में ऐसे स्वर या स्वर-संगतियों को कभी स्थान नहीं दिया जाना चाहिए जो श्रोता का रस भंग कर दें । मूर्च्छना-पद्धति से दूर हो जाने के कारण आज का संगीतकार राग और रस से दूर हट गया है इसीलिए वह चमत्कार-प्रधान अभ्यास से श्रोताओं को चकित करने में तो समर्थ है, परन्तु किसी सहृदय को रसमग्न करने में असहाय है । चित्त का रंजन करनेवाला राग आज आनन्द की नहीं, भय की वस्तु बन गया है । तान, अलंकार और पलटों के बोझ से दबकर मधुर बंदिशें भी मृतप्राय हो गई हैं ।

उपर्युक्त समस्त तथ्यों का ध्यान रखकर नए रागों का निर्माण किया जाना चाहिए । स्वर (राग), पद (भाषा), ताल (छंद) और गति (लय) का समन्वित रूप ही भावप्रधान गीत की संज्ञा से सुशोभित होता है ।



## स्वर-रचना के सिद्धान्त

संवाद-सिद्धान्त के आधार पर 'हारमनी' अवलंबित है, जिसका प्रयोग पाश्चात्य देशों में बहुतायत से होता है। वहाँ की समस्त रचनाएँ विशिष्ट भाव-बोधन का ध्यान रखकर निर्मित की जाती हैं। भारतीय संगीत के रागों में जो रचनाएँ निबद्ध की जाती हैं, उनमें यह ध्यान रखना होता है कि ध्रुवपद-धमार, झ्याल, तराना, टप्पा, ठुमरी, दादरा, सामान्य गीत, भाव गीत, ग़ज़ल, क़व्वाली, लोकगीत तथा फ़िल्मी गीत इत्यादि में किसके लिए बंदिश तैयार की जा रही है। इनमें से किसी के लिए जब भी कोई नया कम्पोज़ीशन (बंदिश) बनाना होता है तो उसका रचयिता देश, काल, स्थिति, पात्र, कंठ और शैली सभी का ध्यान रखता है, अन्यथा वह सफल नहीं रह सकता। कभी-कभी स्वर स्वयं शब्दों को आमन्त्रित करते हैं और कभी-कभी शब्द अनुकूल स्वरों को प्रतिध्वनित करते हैं। इसीलिए कोई कविता सुनते समय उसके अनुकूल धुन तुरन्त तैयार हो जाती है और कभी-कभी केवल स्वर मस्तिष्क में गूँजने लगते हैं, जिससे तत्काल किसी नई धुन का जन्म हो जाता है और फिर उस धुन पर शब्द गढ़ लिए जाते हैं। यही कारण है कि कोई धुन शब्दों की दृष्टि से प्रमुख होती है और कोई स्वरों की दृष्टि से।

स्वर रचना में सिद्धान्त रूप से निम्नलिखित बातों का पालन करना चाहिए :—

१. अनुपात (Proportion) : राग या धुन में उसके स्वरूप को क्षति पहुँचने वाले स्वर सन्दर्भों का प्रयोग नहीं होना चाहिए और स्वरूप को उभारनेवाले स्वरों का प्रयोग वादी तथा संवादी स्वरों का ध्यान रखते हुए अनुपात में किया जाना चाहिए। इसी प्रकार आलाप व तान के अनुपात का भी ध्यान रखना चाहिए, अन्यथा बंदिश के सौंदर्य को हानि पहुँचती है।

२. संयोजन या समता (Symmetry) : सप्तक के पूर्वांग में वादी या प्रमुख स्वर हो तो उत्तरांग में संवादी स्वर होना चाहिए। पूर्वांग में दोनों गांधार लगते हों तो उत्तरांग में दोनों निषाद लगाए जा सकते हैं। पूर्वांग में ऋषभ दुर्बल हो तो उत्तरांग में धैवत दुर्बल रहना चाहिए। कोमल तथा तीव्र स्वरों में समता रहनी चाहिए ताकि राग और थाट का सम्बन्ध विच्छेद न हो। बंदिश के उठान या उसकी प्रकृति के अनुरूप ताल योजना होनी चाहिए।

३. संगति या ऐक्य (Harmony) : अनेक स्वर-संगतियों के होने पर भी रचना की प्रकृति व स्वरूप को हानि नहीं पहुँचनी चाहिए। अलग-अलग कलाकारों के द्वारा गाई जाने पर रागात्मक ऐक्य, एवं विभिन्न रागों या लय-कारियों का मिश्रण होने पर रचनात्मक ऐक्य सुरक्षित रहना चाहिए अन्यथा रचना से प्रकट होनेवाले भाव और रस को क्षति पहुँचती है।

४. संतुलन (Balance) : मन्द्र-सप्तक, मध्य-सप्तक और तार-सप्तक में विचरण करते समय संतुलन रहना चाहिए। कोई-कोई कलाकार मन्द्र-सप्तक या



तार-सप्तक में अटक जाते हैं और स्वयं की सुविधा का ध्यान रखकर रचना का संतुलन खो बैठते हैं। इससे मूल रचना सौंदर्यविहीन लगने लगती है। इसी प्रकार भालाप, तान, लयकारी, तिहाइयाँ आदि के संतुलन पर ध्यान रखना आवश्यक है।

५. **विविधता (Variety) :** एक ही रचना को विभिन्न कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किए जाने पर कंठगत, परम्परागत एवं कल्पनागत परंतु मर्यादित प्रयोगों के द्वारा उसमें नवीनता या विविधता की सृष्टि की जा सकती है तभी उसका सौंदर्य भी स्थायी रह सकेगा। प्रस्तुतीकरण की विविधता ही रचना का नया जन्म है।

६. **स्थायित्व (Stability) :** राग या स्वर रचना में एक स्थायित्व होता है जिसके कारण उसमें कोई परिवर्तन करना सहज संभव नहीं होता। इस स्थायित्व के कारण काल, प्रस्तुति, माध्यम अथवा शैलीगत विभिन्नता का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वह अमर बनी रहती है।

७. **जटिलता (Intricacy) :** सरलता हृदय को छूती है तो जटिलता मस्तिष्क या बुद्धि को संतुष्ट करती है। रचना की विचित्रता जटिलता पर आधारित होती है, जिसके समुचित प्रयोग की क्षमता कलाकार पर निर्भर होती है। रचना में इसका अवकाश दिया जाना चाहिए। जटिलता का संतुलित प्रयोग कलात्मक क्षमता का परिचायक है।

**८. भावात्मक महत्त्व (Emotional Value) :** रचना की भित्ति, स्वर और शब्दों से निःसृत भाव एवं रस पर आधारित होती है। उसमें उपयुक्त स्वर, स्वरों के उपयुक्त शब्द और शब्दों के उपयुक्त ताल व लय का समायोजन होना चाहिए तभी वह श्रोता को निमग्न करने में समर्थ सिद्ध होती है। भाव और रस-निष्पत्ति किसी राग या स्वर रचना का मूल अभिप्राय या धर्म है इसीलिए भावात्मक सौंदर्य रचना का प्राण कहलाता है।

संगीत का प्रयोजन रस परिपाक है और यही उसका लक्ष्य है। इसी लिए कहा है—‘रंजयति इति रागः’ अर्थात्—जो (चित्त का) रंजन करे, वही राग है। जिस प्रकार राग-रचना में राग के धर्मों का पालन करना चाहिए, उसी प्रकार संगीत-रचना में रंजक तत्वों के प्रयोग का ध्यान रखना चाहिए और गीत-रचना में गीत के शब्द, छंद, लय, उपमा-अलंकार, प्रारंभ एवं अंत, स्वर एवं भाव के साथ उसके सामंजस्य, प्रकृतिगत विशेषताएँ तथा मौलिकता का ध्यान रखना चाहिए।



## संगीत निर्देशन और उसकी कला

### संगीत निर्देशन

संगीत के क्षेत्र में जितनी भी विधाएँ प्रचलित हैं वे योग्य निर्देशक के बिना परिष्कृत रूप में प्रस्तुत नहीं की जा सकतीं इसीलिए संगीत निर्देशन की जरूरत महसूस की गई। कुशल निर्देशन या नेतृत्व में जब कलाकार अपनी कला प्रस्तुत करते हैं तभी उससे अनुकूल भाव और रस की सृष्टि होती है। असल में कलाकार तो रथ के घोड़े की तरह होता है जिसे दिशा देने वाला सारथी निर्देशक कहलाता है।

नाट्य, नृत्य, कोरस, ऑर्केस्ट्रा तथा फ़िल्म और वीडियो से सम्बन्धित सभी प्रकार के संगीत की संरचना और उसे नियंत्रित करने में संगीत निर्देशक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जब से मंचीय कलाओं का जन्म हुआ तभी से संगीत निर्देशन (म्यूजिक डाइरेक्शन) की कला का विकास हुआ। इसीलिए भरत के 'नाट्यशास्त्र' में गायक, वादक, नर्तक और नाट्य सम्बन्धी कलाकारों के साथ वागीश्वर के गुणों की चर्चा भी की गई है जो सभी कलाओं का मर्मज्ञ होता है।

### संगीत निर्देशक

संगीत संबंधी रचनाओं को बनाने वाला 'संगीत रचयिता' कहलाता है और रचयिता की रचना को कलाकारों द्वारा शुद्ध रूप में प्रस्तुत कराने वाला व्यक्ति 'संगीत निर्देशक' कहलाता है जिन्हें अंग्रेजी भाषा में क्रमशः 'कम्पोज़र' (Composer) और 'म्यूजिक डाइरेक्टर' (Music Director) कहते हैं। जो व्यक्ति म्यूजिक डाइरेक्टर के अधीन रहकर गीत के मध्य के संगीत तथा वाद्यवादकों का नियोजन और संचालन करता है उसे अरेन्जर (Arranger) या कंडक्टर (Conductor) कहते हैं। भारत में संगीत की रचना और निर्देशन प्रायः एक ही व्यक्ति करता है इसलिए यहाँ एक संगीत निर्देशक को संगीत रचयिता और अरेन्जर के गुणों से पूर्ण मान लिया जाता है। आर्थिक कठिनाई एवं सृजनात्मक क्षमता के कारण भारत का



संगीत निर्देशक कभी-कभी चार-पाँच व्यक्तियों का कार्य अकेला भी कर लेता है अर्थात् वह कविता बनाता है, उसकी धुन तैयार करता है, स्वयं गाता है और संगीत योजना करते हुए स्वयं ही सम्पूर्ण कार्यप्रणाली को नियंत्रित करता है। इससे संगीतकार या संगीत निर्देशक की प्रखर प्रतिभा का पता तो चलता है लेकिन संगीत रचना की विविधता और उसकी कलात्मक विशेषता को क्षति भी पहुँचती है क्योंकि विभिन्न प्रतिभाओं द्वारा प्रदत्त लाभ से वह वंचित रहती है।

### संगीत निर्देशक के गुण

एक अच्छे संगीत निर्देशक में निम्नांकित गुण होने चाहिए :—

१. शास्त्रीय संगीत के प्रकारों और लोकसंगीत की शैलियों का ज्ञान ।
२. साहित्य, कला और संस्कृति का ज्ञान ।
३. गीत, वाद्य और नृत्य की विधाओं व परम्पराओं की जानकारी ।
४. स्वर, ताल, लय, छन्द, भाव और रसविनियोग की सम्यक् लाभकारी ।
५. भाषा एवं शब्द के अर्थ और उसके प्रभाव का ज्ञान ।
६. लोकरुचि, धर्म एवं सांस्कृतिक मूल्यों का ज्ञान ।
७. काव्य रचना, संगीत रचना, वाद्यवादन, निर्देशन, संयोजन, प्रस्तुतीकरण तथा सम्पादन कला का ज्ञान ।
८. इतिहास, विज्ञान, भूगोल, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का सामान्य ज्ञान ।
९. विभिन्न वाद्ययन्त्रों की तकनीक और उनकी प्रायोगिक विद्या का ज्ञान ।
१०. स्वरांकन प्रणाली (स्वरलिपि) और संगीत के गुण-दोषों का ज्ञान ।
११. देश, काल एवं मर्यादा का ज्ञान तथा व्यक्तिगत गुणसम्पन्नता ।
१२. शिक्षण कला एवं व्यावहारिक सम्बन्ध में निपुणता ।
१३. एकाकी तथा सामूहिक वृन्द के उचित प्रयोग की जानकारी ।
१४. ध्वनिविज्ञान तथा रिकार्डिंग पद्धति की समझ और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया की आवश्यक जानकारी ।
१५. कल्पना शक्ति एवं स्मरण शक्ति की प्रखरता और प्रत्युत्पन्नमति का होना ।
१६. मैलॉडी (स्वरमाधुर्य) और हारमनी (स्वरसंवाद) का समुचित ज्ञान ।
१७. गीत के आरम्भ, मध्य, अन्त और विश्राम का ज्ञान ।

उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न व्यक्ति महान् संगीतकार कहलाता है। एक अच्छा शास्त्रीय संगीतज्ञ प्रायः सफल संगीत निर्देशक या संगीत रचयिता नहीं बन पाता क्योंकि वर्षों की संगीत साधना (अभ्यास) उसे एक घेरे में जकड़ लेती है। उस घेरे से बाहर निकलने में उसकी कल्पना शक्ति असमर्थ हो जाती है, ठीक उसी तरह जैसे



घर के पालतू पशु-पक्षी बाहर निकलने में घबराते हैं। वे बंधनमुक्त पिंजड़े के आदी हो जाते हैं। घास चरने के बाद पालतू गाय सीधी अपने घर लौट आती है, जंगल की सुषमा का आनन्द नहीं ले पाती। इसीलिए संगीत निर्देशन के क्षेत्र में प्रायः वही लोग सफलता प्राप्त करते हैं जो संगीत की किसी विधा, परम्परा और प्रणाली से बंधे नहीं होते। वे स्वरमाधुर्य और झुमाने वाली लय-ताल से प्रभावित रहते हैं। उनकी दृष्टि विशाल हो जाती है और चतुर्मुखी चिन्तन उनके रचनात्मक विकास में सहायता करता है। आकाश के स्वच्छंद पक्षी की तरह वे असीम में विचरण करते हैं। ऐसे कलाकारों को संगीतज्ञ न कह कर संगीत-निर्माता कहना ठीक होगा। वे धिसे-पिटे राग व ताल की सीमा से बाहर निकलकर प्रकृति और सम्पूर्ण लोक से संगीत सृजन की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। उनमें कोई पूर्वाग्रह नहीं होता। वे संगीत की किसी एक ही विधा में दक्ष नहीं होते। उन्हें किसी घराने से लगाव नहीं होता और न वे रूढ़िवादी होते हैं। राग-द्वेष तथा जाति और धर्म के बंधन से निकलकर मनुष्य जिस तरह साधु-जीवन व्यतीत करता हुआ महात्मा कहलाता है उसी तरह संगीत के बंधनों से मुक्त हो कर एक सामान्य सा संगीत प्रेमी व्यक्ति संसार को संगीत का वास्तविक अमृत बाँटता है और सच्चे अर्थों में संगीत सृष्टा कहलाता है।

### संगीत निर्देशन की कार्य प्रणाली

संगीत योजनाओं का क्षेत्र काफी विस्तृत है जिसमें निम्नांकित विधाओं के लिए एक प्रमुख और एक उप संगीत निर्देशक की आवश्यकता पड़ती है, जैसे—

१. नाटक (ड्रामा)
२. गीत नाट्य (ऑपेरा)
३. नृत्य नाट्य (बैले)
४. बृन्दगान (कोरस)
५. वाद्यवृन्द (ऑर्केस्ट्रा)
६. दूरदर्शन (टीवी)
७. चित्रपट (फ़िल्म)

**नाटक (ड्रामा) :** यह मंच की कला है जिसमें सब कुछ प्रत्यक्ष रहता है और किसी घटित भूल को सुधारना संभव नहीं होता। जो हो गया सो हो गया। संगीत निर्देशक को नाट्य प्रस्तुति से पूर्व अच्छी प्रकार रिहर्सल कर लेना चाहिए ताकि गायक, वादक और नर्तक अपनी कला को सम्यक् रूप से प्रस्तुत कर सकें। यदि फिर भी कोई भूल हो जाए, जैसे गायक बेसुरा या बेताला हो जाए या गीत की पंक्ति भूल जाए तो संगीत निर्देशक एवं वादकों को चाहिए कि वे उसके दोष को युक्तिपूर्वक छिपाने की चेष्टा करें। नाटक की भाषा, शैली और उसकी गति के अनुसार आवश्यक संगीत की योजना करनी चाहिए।



**गीतनाट्य (ऑपेरा) :** इसमें संगीत-निर्देशक भिन्न-भिन्न शास्त्रीय या लोक शैली की तर्जों का इस्तेमाल करता है और लोकरुचि के अनुरूप ताल व लय में काव्यात्मक कथा को शब्द प्रधान संगीत शैली में रचता है। इसमें गीत व नाट्य की प्रधानता रहती है, संगीत गौण रहता है।

**नृत्यनाट्य (बॉले) :** इसमें गीतनाट्य की तरह संगीत रचा जाता है, लेकिन नृत्य की प्रधानता का ध्यान रखना होता है। इसलिए नृत्य प्रस्तुतीकरण की संभावनाओं और आवश्यकताओं के अनुरूप संगीत की रचना करनी पड़ती है। पात्रों की मनोदशा एवं कथा की एकरूपता व गति का ध्यान रखते हुए नृत्यप्रधान संगीत की रचना की जाती है।

**वृन्दगान (कोरस) :** इसमें गायक-गायिकाओं की स्वर और कंठगुण के आधार पर उनका वर्गीकरण किया जाता है और उपलब्ध समूह की शक्ति के अनुरूप संगीत तैयार किया जाता है। कहीं-कहीं कंठध्वनि से वाद्य का प्रभाव पैदा कर और कहीं-कहीं वाद्यों से कंठध्वनि का मेल कराते हुए, रचना तैयार करनी पड़ती है। रचना की ओजस्विता बनाए रखने के लिए वृन्द के सभी गायक-वादक संगीत निर्देशक के इशारे पर अनुकूल प्रस्तुति का ध्यान रखते हैं। सम्पूर्ण रचना के उतार-चढ़ाव और प्रयोग की स्मृति संगीत निर्देशक को रखनी पड़ती है। यदि संगीत रचयिता कोई अन्य है और संगीत निर्देशक कोई दूसरा, तो रचना के मूल गुण-धर्म विकृत न हो जाएँ, इसका पूरा ध्यान रखना होता है।

**वाद्यवृन्द (ऑर्केस्ट्रा) :** इसमें केवल वादकों का समूह होता है। अतः उपलब्ध वाद्यों की प्रकृति और तकनीक को ध्यान में रखकर रचना बनाई जाती है। वाद्यवृन्द के द्वारा जिस कथा या भावना को प्रदर्शित करना होता है उसी के अनुरूप स्वर, ताल और लय का प्रयोग किया जाता है। समर्थ और असमर्थ वादकों की पंक्तियाँ निर्मित करनी होती हैं। इसमें केवल स्वर, ताल और लय के प्रभाव से दृश्य को साकार रूप देने वाला संगीत निर्देशक ही श्रेष्ठ माना जाता है। वादकों का समूह संगीत निर्देशक के संकेतों पर स्मृति या स्वरलिपि के आधार पर वादन करता है।

**दूरदर्शन (टीवी) :** इस विधा में दर्शक या श्रोता के समक्ष मंच नहीं होता और यह छोटे पर्दे की कला कहलाती है। अतः संगीत निर्देशक को अनुकूल प्रभाव पैदा करने के लिए संगीतकारों के बड़े समूह की विशेष जरूरत नहीं होती। किसी एक सिन्थेसाइजर या इलैक्ट्रॉनिक की-बोर्ड वाले वाद्ययंत्र की सहायता से ही विविध प्रभाव पैदा किए जा सकते हैं जिन्हें पहले से रिकॉर्ड करके दृश्य के साथ जोड़ दिया जाता है। कार्यक्रम के निर्माण-व्यय की क्षमता को देखते हुए योग्य संगीत निर्देशक अपनी रचना को सीमित साधनों के द्वारा भी प्रभावशाली बना सकता है।

**चित्रपट (फ़िल्म) :** जब तक बोलती फ़िल्मों का आविष्कार नहीं हुआ था तब तक पर्दे के नीचे या कहीं एक ओर बैठ कर एक व्यक्ति साक्षात् रूप से कथा को



बताता रहता था और संगीतकार दृश्य देखकर उसके अनुरूप अपनी समझ से हारमोनियम, तबला व बाँसुरी जैसे वाद्यों से वादन करते थे। लेकिन जब सवाक् फ़िल्मों की शुरुआत हुई तो दृश्य में अभिनय करने वाले गायक या नर्तक के साथ पास की झाड़ी में छिपकर संगीतकारों को वादन करना पड़ता था। बाद में जब सवाक् फ़िल्में बनने लगीं तो 'प्लेबैक' सिंगिंग (पार्श्वगायन) की कला ने जन्म लिया अर्थात् गायन किसी का और उस पर होंठ चलाकर प्रस्तुत करने वाला कोई दूसरा।

विज्ञान की कृपा से आज फ़िल्म का संगीत एक सशक्त कला के रूप में हमारे सामने आया है जिसमें टीम-वर्क अर्थात् सामूहिक सहयोग की प्रधानता रहती है। इस विधा की अन्तरंग झाँकी इस प्रकार है :—

सर्वप्रथम फ़िल्म में प्रयुक्त गीतों की संख्या इस प्रकार तय की जाती है कि सभी गीतों के रिकॉर्ड बन सकें। यदि फ़िल्म कथानक-प्रधान या प्रयोगवादी किस्म की है तब रिकॉर्ड बनाने की चिन्ता नहीं होती। गीतों की संख्या निश्चित होने पर प्रत्येक गीत की स्थिति (सिचुएशन) संगीत निर्देशक ध्यान से समझता है और उनके अनुसार धुन तैयार करता है। धुन के छंद के अनुसार गीतकार या कवि अनुकूल भावों को प्रदर्शित करने वाले गीत या काव्य की रचना करता है। उसे ध्यान रखना होता है कि गीत शब्दप्रधान कम संगीत या स्वरप्रधान अधिक हो। किसी कवि सम्मेलन के मंच पर उसका गीत नहीं पढ़ा जायगा बल्कि फ़िल्म के नायक या नायिकाओं द्वारा प्रस्तुत किया जाएगा जिसमें वे घूमेंगे, झूमेंगे, नाचेंगे, उछलेंगे कभी ज़मीन पर तो कभी नाव पर और कभी ऊँट पर तो कभी रेलगाड़ी में गायेंगे। यह पूरी प्रक्रिया संगीत प्रधान अधिक होगी, अतः संगीत को प्रभावशाली बनाने वाले सरल काव्य की रचना की जाती है। तुकबंदी, छंद और लय का ज्ञान रखने वाले साधारण गीतकार इस कार्य को आसानी से कर लेते हैं। दिग्गज कविगण शब्द, अर्थ और भाव में अटक कर स्तरीय रचना करने की कोशिश करते हैं अतः कम सफल हो पाते हैं। फ़िल्म में गीतकार सदैव संगीत निर्देशक के अधीन रहकर कार्य करता है। ऐसा बहुत कम होता है जब किसी बने बनाए अच्छे साहित्यिक गीत पर संगीत निर्देशक को ऐसी धुन सूझ जाए जो दृश्य या पात्रों की हलचल के अनुकूल सिद्ध हो। इसीलिए फ़िल्मी गीतों का साहित्यिक मूल्यांकन कम होता है, सांगीतिक मूल्यांकन अधिक। क्योंकि छोटे बच्चे या अशिक्षितजन भी उसे बोलते कम हैं, गुनगुनाते अधिक हैं। गीत की पहली पंक्ति (मुखड़ा) प्रभावशाली और जुवान पर जल्दी चढ़ने वाली होनी चाहिए।

शास्त्रीय गीत की रचना करते समय राग की शुद्धता का ध्यान रखने में व्यर्थ समय नष्ट नहीं करना चाहिए बल्कि धुन के मनोरंजक तत्वों को ही समाविष्ट करने की चेष्टा करनी चाहिए। स्वर और वर्ण से सजी हुई धुन ही 'राग' कहलाती है अतः ऐसी प्रत्येक धुन एक नया राग स्वतः बन जाती है। जब संगीतकार धुन की रचना करता है तो स्वरों का समूह स्वयं एक अदृश्य स्वरूप बना लेता है। इस स्वरूप में



अप्रिय या अवांछनीय स्वर और शब्द स्वयं फिट नहीं हो पाते। यह ऐसी ही बात है जैसे किसी रक्त में प्रत्येक रक्त को नहीं मिलाया जा सकता है। पहला रक्त जिस श्रेणी के रक्त को स्वीकार करता है वही उसमें मिलाया जा सकता है। इसलिए धुन के निर्माता को किसी पूर्व प्रचलित राग के प्रति आग्रह न रखते हुए उसके आधार पर नए राग-चिन्तन को उत्पन्न होने देना चाहिए। रामलाल का बेटा रामलाल की शक्ल और अक्ल से हू-ब-हू मिले, यह जरूरी नहीं। उसका नाम रामलाल हो, यह भी आवश्यक नहीं। परम्परा निभाने के लिए उसका नाम श्यामलाल या प्यारेलाल आदि कुछ भी रखा जा सकता है। भिन्न होते हुए भी रामलाल के कुछ संस्कार (गुण-दोष) उसके पुत्र में स्वयं आ जाएंगे। इसी आधार पर वह रामलाल की याद दिलाता रहेगा। इसी प्रकार नई धुन सम्बन्धित राग ढाँचे (थाट या स्केल) का स्मरण दिलाती रहती है।

उपर्युक्त आधार पर ही शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में नए-नए रागों का निर्माण हुआ है। वे सब चिन्तन और व्यक्तिगत संस्कारों का परिणाम हैं। पूर्व परिचित लोक संगीत की धारा से भी वे प्रभावित रहते हैं। शास्त्र के नियम उसकी निश्चित आकृति और प्रस्तुति को व्यवस्था देते हैं। जिस तरह किसी नदी का जल पर्वत से निकल कर अनुकूल ढलानों से बहता हुआ स्वयं एक नदी की शक्ल अस्तित्व कर लेता है, किसी नियम में नहीं बँधता उसी तरह स्वरों या शब्दों का स्रोत राग और काव्य बन जाता है और कुशल कलाकार उन्हें सजा-सँवार कर पेश कर देते हैं। ठीक वैसे ही जैसे कि किसी बाग में खिले फूल को काट-तराश कर गुलदस्ते में लगा दिया जाता है।

धुन और गीत तैयार होने के बाद गायक और वादकों को प्रशिक्षित करना पड़ता है। गीत की पंक्तियों में निरंतरता बनाए रखने और विश्रान्तिदायक स्थलों के आकर्षक भराव के लिए कुछ बीच का संगीत भी तैयार करना पड़ता है जो केवल वादकगणों को बताया जाता है। कहीं वाँसुरी, कहीं सितार, कहीं जैलोफोन आदि वाद्यों के ऐसे पीस (टुकड़े) गीत को गति और सौंदर्य प्रदान करते हैं। संगीत निर्देशक को प्रायः गीत की धुन बनाने का ही अभ्यास होता है। इसलिए गीत के बीच के संगीत को उसका सहयोगी जिसे सहनिर्देशक (अरेंजर) कहते हैं, तैयार करता है जो इसी काम में माहिर होता है। वह वाद्यों की प्रकृति, उनके संयोजन, स्वरांकन-पद्धति और वादन-तकनीक में दक्ष होता है।

सब कुछ तैयार होने पर गायक, वादकों को उनसे सम्बन्धित गीत व संगीत नोट करा दिया जाता है और अच्छी तरह रिहर्सल कराने के बाद सम्पूर्ण गीत की रिकार्डिंग की जाती है। मेट्रोनोम (तालयंत्र) के द्वारा लय तथा स्टॉप वाच (कालसूचक घड़ी) के द्वारा समय पर नियंत्रण रखा जाता है। रिकार्डिंग या ध्वन्यांकन के समय संगीत निर्देशक गायक गायिकाओं की प्रस्तुति पर ध्यान रखता है। गीतकार शब्दों के शुद्ध उच्चारण पर ध्यान देता है, अरेंजर सभी वाद्यवादकों के वादन को



कंट्रोल करता है और रिकार्डिस्ट ध्वनि विज्ञान की दृष्टि से स्वच्छ और स्पष्ट रिकार्डिंग पर ध्यान देता है। इस अवसर पर प्रायः फ़िल्म का निर्देशक भी उपस्थित रहता है जो संबंधित दृश्य के अनुकूल भाव और रस की दृष्टि से गीत की समग्र प्रस्तुति पर ध्यान रखता है। सभी चाहते हैं कि गीत सफ़न (हिट) हो।

रिकार्डिंग के पश्चात् गीत का फ़िल्मांकन किया जाता है अर्थात् कहानी के अनुसार नायक या नायिका उस पर अपने होंठ चलाते हुए शूटिंग के कार्य को पूरा करते हैं और जब पूरी फ़िल्म की शूटिंग समाप्त हो जाती है तो पार्श्व संगीत या निष्पत्ति संगीत जिसे अंग्रेजी में 'बैकग्राउण्ड म्यूज़िक' कहते हैं, की तैयारी की जाती है। जिस रिकार्डिंग स्टूडियो में इसकी व्यवस्था होती है वहाँ पर्दे के ऊपर फ़िल्म के प्रारम्भ से लेकर अंत तक के सभी दृश्यों को प्राजेक्टर द्वारा दिखाया जाता है। प्रत्येक दृश्य-खंड को कई बार देखकर संगीत निर्देशक अपने सहकर्मियों के साथ मिलकर चिन्तन करते हुए अनुकूल रस निष्पत्ति के लिए तत्काल पार्श्व संगीत बनाता है और तदनुसार उपस्थित वाद्य वादकों से प्रयोग कराता हुआ क्रमशः रिकार्डिंग कराता रहता है। टाइटिल म्यूज़िक अर्थात् फ़िल्म की नामावली के साथ चलने वाले प्रारंभिक पार्श्व संगीत को ज़रा भारी भरकम रूप में कम्पोज़ किया जाता है ताकि दर्शक श्रोताओं पर हॉल में फ़िल्म शुरू होते ही जोरदार असर पड़े और उनका मानस फ़िल्म देखने के प्रति उत्साह के साथ जागरूक हो जाए। इसी प्रकार संवेदनशील प्रसंगों के लिए कोमल भाव प्रधान और युद्ध आदि दृश्यों के लिए संघर्षपूर्ण द्रुत लय में निबद्ध संगीत रचना की जाती है। यह पार्श्व संगीत ही फ़िल्म की आधी जान होता है जिसका अहसास दर्शक-श्रोताओं को नहीं होता क्योंकि उसका प्रभाव अव्यक्त रूप में केवल उनकी चेतना का स्पर्श करता है।

पार्श्व संगीत काफ़ी खर्चीला होता है अतः छोटे बजट की फ़िल्मों के लिए उसकी रिकार्डिंग करना संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में पार्श्व संगीत की रिकार्डिंग के अंश बेचने का धंधा करने वाले व्यक्तियों की शरण में जाना होता है जो बहुत कम मूल्य पर प्री-रिकॉर्डेड संगीत के साउंड ट्रैक दे देते हैं। वे अपनी मशीन (मूविओला) पर निर्माता की फ़िल्म के दृश्य देख-देख कर अपनी साउंड लाइब्रेरी से तरह-तरह के संगीत के साउंड ट्रैक निकालकर संगीत निर्देशक को सुनवाते हैं। दृश्य के साथ मैच करने वाले साउंड ट्रैकों पर दृश्य की लम्बाई के अनुसार मार्किंग कर लिया जाता है और उन्हें फ़िल्म की मिक्सिंग (रि रिकॉर्डिंग) के वक्त रिकॉर्डिंग सम्पन्न करा कर अपने ट्रैक वापस ले जाते हैं। भारत वर्ष में स्वर या धुन की नक़ल पर कोई पाबन्दी (कॉपीराइट) नहीं है, केवल गीतों या कथा पर है। इसलिए यह प्रथा चली आ रही है और फ़िल्म देखने वालों पर उसका कोई असर नहीं पड़ता। बड़े-बड़े बजट की फ़िल्मों में रिकार्डिंग किया हुआ खर्चीला पार्श्व संगीत इस पद्धति से कौड़ियों में मिल जाता है और किसी का कोई नुक़सान नहीं होता। इसी प्रकार मोटर या रेल की आवाज़, दरवाज़ा खुलने या थाली गिरने की आवाज़, चिड़ियों की चहचहाहट,



समुद्र व मेघों का गर्जन इन सबके साउण्ड इफैक्ट्स भी बिकते हैं जिन्हें यथोचित दृश्यों के साथ फिट (सिंक्रोनाइज़) करके फ़िल्म के लिए खरीद लिया जाता है। अब तो सैकड़ों प्रकार के साउण्ड इफैक्ट्स ऑडियो कैसेटों पर आ गए हैं जिन्हें वास्तविक जीवन में आसानी से रिकॉर्ड करना मुमकिन नहीं होता। ट्रिप फोटोग्राफी की तरह साउण्ड इफैक्ट्स भी विभिन्न वाद्ययन्त्रों व प्राकृतिक स्रोतों की सहायता से सहज में ही तैयार कर लिए जाते हैं जो रिकार्ड होने के बाद असली ध्वनियों का भ्रम पैदा करने में पूर्ण समर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ किसी टोन के टुकड़े से बादलों को गड़गड़ाहट और 'वाश-बेसिन' में नल खोल देने से वर्षा की आवाज़।

सभी कार्य पूरे होने के बाद सम्पादन (एडिटिंग) तथा मिक्सिंग की प्रक्रिया द्वारा श्रव्य और दृश्य को मिलाकर एक सूत्र में पिरो दिया जाता है जिसे फ़िल्म के एडीटर, रि-रिकॉडिस्ट और निर्देशक मिल कर करते हैं। कभी-कभी जब मुख्य गायक या गायिका किसी कारणवश रिकॉर्डिंग की निश्चित तिथि पर रिकॉर्डिंग स्टूडियो नहीं पहुँच पाते तो डुप्लीकेट गायक या गायिका द्वारा रिकॉर्डिंग पूरी करा ली जाती है और बाद में मुख्य गायक या गायिका के उपलब्ध होने पर उसकी आवाज़ को रिकार्ड करके डुप्लीकेट की पूर्व-रिकॉर्डिंग के स्थान पर जोड़ कर काम पूरा कर लिया जाता है। इस प्रक्रिया को 'डबिंग' कहा जाता है। रिकॉडिस्ट अलग-अलग 'ट्रैक' पर रिकॉर्डिंग करके 'डबिंग' का काम आसानी से कर लेते हैं। आवाज़ में गूँज, प्रतिध्वनि या अन्य प्रभाव पैदा करने में आज की रिकॉर्डिंग प्रणाली पूर्ण सक्षम है और वैज्ञानिक उत्कर्ष के कारण उनमें नित नई विशेषताएँ या सम्भावनाएँ जुड़ती चली जा रही हैं।

### आवश्यक दिशा-निर्देश

संगीत सम्बन्धी सभी विधाओं के संगीत निर्देशकों को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए ताकि अपने क्षेत्र में उन्हें सफलता मिले।

कलाकारों, गीतकारों और तकनीशियनों के सुझावों का सदैव सम्मान करना चाहिए। यदि उनसे मतभेद हो तो विनम्रता और स्नेह के साथ विचार विमर्श करना चाहिए तथा उचित सुझावों को मानकर अपनी कृति को समृद्ध करते हुए उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए।

अन्य संगीत निर्देशकों के नए प्रयोगों का अध्ययन करके अपनी कृति को अधिक प्रभावशाली बनाने पर ध्यान देना चाहिए और नकल करने की प्रवृत्ति को रोकना चाहिए ताकि अपने क्षेत्र में उसकी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित हो सके।

अपनी योग्यता का स्वयं मूल्यांकन करना चाहिए और अहंकार से बचना चाहिए जो व्यक्ति के पतन का कारण बनता है।

संगीत की शास्त्रीय तथा क्रियात्मक कला का अध्ययन करते हुए व्यावहारिक कुशलता को बढ़ाना चाहिए। अज्ञान, हठवादिता और अशिक्षा, मनुष्य की उन्नति नहीं होने देती।



काव्य रचना, संगीत रचना, संगीत निर्देशन, पार्श्व गायन, पार्श्व संगीत, रिकॉर्डिंग, सम्पादन आदि सभी विधाएँ स्वतंत्र और अपने में पूर्ण हैं। संगीत निर्देशक को इनका ज्ञान होना अच्छी बात है, लेकिन अनाधिकार चेष्टा करके हर विधा में व्यर्थ दखलंदाजी नहीं करनी चाहिए।

सिने म्यूजीशियन्स असोसिएशन, डान्सर्स असोसिएशन तथा राइटर्स असोसिएशन आदि की तरह संगीत निर्देशकों का संगठन 'म्यूज़िक डाइरेक्टर्स' असोसिएशन कहलाता है। सभी संगठन अपने-अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करते हैं अतः उनका सदस्य बनना लाभप्रद रहता है। परफॉर्मिंग राइटर्स सोसाइटी भी गीतकारों तथा संगीत निर्देशकों के हितों की रक्षा में सजग रहती है।

रिकॉर्डिंग के लिए अच्छी कम्पनी के असली व नए मैग्नेटिक टेप और कंसेट्स तथा साउण्ड निगेटिव का इस्तेमाल करना चाहिए। रिकॉर्डिंग की क्वालिटी और सस्ते या अक्षम गायक-वादकों के साथ कभी समझौता नहीं करना चाहिए अन्यथा कालान्तर में अपयश ही हाथ लगता है।

गायक कलाकारों की आवाज़ में तालमेल न बैठे तो आधार स्वर (की नोट) को कुछ ऊँचा-नीचा करके इस दिक्कत से बचा जा सकता है। आवाज़ के अवगुण को ढकने के लिए या माधुर्य बढ़ाने के लिए रिकॉर्डिंग में प्रायः 'एको' (प्रतिध्वनि उत्पादक तकनीक) का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग बहुत सन्तुलित रूप में करना चाहिए अन्यथा गीत के शब्द अस्पष्ट होने लगते हैं और पूरा गीत संगीत प्रभावहीन हो जाता है। इसी प्रकार स्टीरियोफोनिक प्रभाव, बेस, कम्पन, तीव्रता (शार्पनेस), कंठ तथा वाद्य ध्वनियों की समरूपता इत्यादि के बारे में जब तक अच्छा ज्ञान न हो तब तक उनकी रिकॉर्डिंग में सावधानी बरतनी चाहिए और योग्य व्यक्तियों से दिशा-निर्देश ग्रहण करना चाहिए।

□ □ □



## फिल्म संगीत की ऐतिहासिक परम्परा और उसके घराने

भारतीय फ़िल्म-संगीत का युग आज से तिरपन वर्ष पूर्व, सन् १९३१ में सव-प्रथम सवाक् फ़िल्म 'आलमआरा' से आरम्भ हुआ। उससे पूर्व देश में आंचलिक लोक-संगीत, शास्त्रीय-संगीत, रवीन्द्र-संगीत, सुगम-संगीत, नाट्य-संगीत, भाव-गीत, ग़ज़ल, क़व्वाली तथा टप्पा-ठुमरी आदि विधाओं का प्रचलन था।

वैसे तो मूक चित्रपट बंगाल, महाराष्ट्र, पंजाब तथा मद्रास में सन् १९१२-१३ से ही निर्मित होने लगे थे, किन्तु टॉकी-युग के आरम्भ होने से एक नई शैली के संगीत की शुरुआत हुई, जिसे 'फ़िल्म-संगीत' कहा जाने लगा।

आरम्भ में शास्त्रीय संगीतकार ही फ़िल्म-संगीत की रचना करते थे और प्रत्येक फ़िल्मी संगीतकार किसी-न-किसी सांगीतिक घराने का शिष्य हुआ करता था।

दक्षिण की फ़िल्मों में त्यागराज की परम्परा में संगीत-सृजन होता था। बंगाल की बनी फ़िल्मों में बादल खाँ, गिरिजाबाबू एवं गुरदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की संगीत-परम्परा में आर०सी० बड़ाल और पंकज मल्लिक तथा बाबा अलाउद्दीन खाँ के शिष्य तिमिरबरन संगीत देते थे।

महाराष्ट्र में अल्लादिया खाँ, पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर, वज्रेंद्रुआ, अमानअली खाँ, अब्दुलक़रीम खाँ इत्यादि के घरानों से सीखे हुए आद्य फ़िल्म-संगीत-निर्देशक थे—गोविन्द राव टेंबे, प्रो० बी० आर० देवधर, कृष्णराव फुलॉन्त्रिकर केशवराव भोले, सुरेश माने, मा० लहानू इत्यादि।

पंजाब में पटियाला-घराने के वहीद खाँ प्रभृति की परम्परा के शिष्य हुए—उ० झंडे खाँ, पं० अमरनाथ आदि। इन आद्य फ़िल्मी संगीतकारों के साथ ही दूसरे संगीतकार भी आए। पंजाब में पं० गोविंदराम, श्यामसुन्दर, गुलाम हैदर आदि तथा बंगाल में ज्ञानदत्त, कमलदास गुप्ता, अनुपम घटक, भीष्मदेव चटर्जी आदि।



महाराष्ट्र में वसंत देसाई, अनिल विश्वास, रफीक गज़नवी, हरिश्चन्द्र बाली, जून्बी, मीर साहब, सरस्वतीदेवी, मास्टर माधोलाल इत्यादि। आगे फिर यहीं हुए श्यामबाबू पाठक, गंगाप्रसाद, गणपतराव मोहिते, डी० पी० कोरगांवकर, एस० एन० त्रिपाठी, खेमचन्द्रप्रकाश इत्यादि। बाद में चमके नौशाद, सी० रामचन्द्र, हुस्नलाल-भगतराम, धनीराम, एस० डी० बर्मन तथा शंकर-जयकिशन।

सन् १९५० के करीब रोशन, मदन मोहन, हेमन्तकुमार, सलिल चौधरी, अविनाश व्यास, जमालसेन, खैयाम, श्यामजी घनश्यामजी, सुधीर फड़के, रामलाल, पं० शिवराम और बाद में रवि आदि आए।

इन सभी संगीत-निर्देशकों की रचनाएँ शास्त्रीय संगीत पर ही आधारित होती थीं। सन् १९३१ से १९४१ तक इसी प्रकार विविध रंगों में घरानेदार फ़िल्म-संगीत के प्रयोग होते रहे। न्यू थिएटरस में रवीन्द्र-संगीत छाया हुआ था। बॉम्बे-टाँकीज से सरस्वतीदेवी व एस० एन० त्रिपाठी शुद्ध रागों की बंदिशें देते थे, तो प्रभात से मराठी नाट्य-संगीत प्रस्तुत होता था। बंबईया फ़िल्मों में गज़ल, कव्वाली, ठुमरी एवं पारसी रंगमंच की धुनों की बहुतायत थी। सन् १९४१ में लाहौर के पंचोली-स्टूडियो से 'खजांची' फ़िल्म में गुलाम हैदर ने फ़िल्म-संगीत को एक नया मोड़ दिया। तबले की जगह ढोलक और घड़े का प्रयोग तथा क्लारनेट, हारमोनियम की जगह ट्रंपेट और हवाईन-गिटार का प्रयोग होने लगा। धुनों में पंजाबी रंग उभरा। गुलाम हैदर के इस नए संगीत के मोड़ से प्रभावित होकर खेमचन्द्रप्रकाश राजस्थानी लोक-धुनों पर आधारित रचनाएँ करने लगे तो उधर पंजाब में पंजाबी लोक-गीत हीर, जूटा आदि पर आधारित फ़िल्म-संगीत दिया जाने लगा तो इधर नौशाद ने उत्तर-प्रदेश की लोक-धुनों को अपने फ़िल्म-संगीत का आधार बनाया।

इस प्रकार की लहर चल ही रही थी कि सी० रामचन्द्र सन्तोषी जी के साथ 'खिड़की', 'शहनाई' आदि फ़िल्मों में पश्चिमी धुनों की सहायता से दूसरी बार एक और नया मोड़ ले आए।

बाद में शंकर-जयकिशन, हुस्नलाल-भगतराम, रोशन, मदनमोहन और एस० डी० बर्मन का युग आया, जो नौशाद के साथ-साथ लगभग बीस वर्षों तक छाया रहा। ओ० पी० नैयर ने तो फ़िल्मों में पूरा पंजाब-अंग भर दिया। सन् १९५७ में कल्याण जी-आनन्द जी का उदय हुआ, वे पुराने और नए मधुर मिश्रण से शीघ्र ही बहुचर्चित हो गए। उन्हीं के सहायक लक्ष्मीकान्त-प्यारेलाल सन् १९६५ में संगीत-निर्देशक बने। कुछ ही दिनों बाद युग आया आर० डी० बर्मन, यूपी लाहिड़ी और राजेश-रोशन का। इन संगीत-निर्देशकों ने श्रोताओं को पश्चिमी संगीत के रंग में रँग दिया। उषा खन्ना ने आसानी से किसी भी रंग में रँग जाने की क्षमता पैदा करली।

इसी प्रकार फ़िल्मों में नृत्य-कला का भी बही हाल रहा। शुरू में लखनऊ-घराने के लच्छू महाराज, जयपुर-घराने के सुन्दरप्रसाद, जयलाल, हजारीप्रसाद, भुर्रे



खाँ (आशिक हुसेन), बनारस-घराने की तारा, सितारा, अलकनंदा, गोपीकृष्ण; जयपुर-घराने के दाक्षिणात्य नृत्यकार सोहनलाल, हीरालाल; अजूरी के शिष्य कृष्णकुमार (टोनी) और रॉबर्ट हुए। फिर बाद में कमल, राज, माधव, सुरेश, नायडू आदि, प्राचीन नृत्य-परंपरा से लेकर आज की डिस्को-शैली तक में पारंगत, नृत्य-निर्देशक आए।

अब रही फ़िल्मी गायक कलाकारों की बात। शुरू-शुरू में तो फ़िल्मी कलाकार स्वयं ही अपने गीत गाते थे, जैसे सहगल, पंकज मल्लिक, गोविन्दराव टेंबे, विनायकराव पटवर्धन, मारुतिराव पहलवान, अशोककुमार, सुरेन्द्र, श्याम, खुर्शीद, नूरजहाँ, काननबाला, उमाशशि, पहाड़ी सान्याल आदि।

बाद में पार्श्वगायकों का ज़माना आ गया, जिनमें खान मस्ताना, जी० एम० दुरानी, उमादेवी (टुनटुन), राजकुमारी, जोहरा, शमशाद, अमीरबाई, ललिता देउलकर, सरस्वती राने इत्यादि अग्रगण्य रहे।

सन् १९४२-४३ से मुहम्मद रफ़ी व मुकेश को छोड़कर नए पार्श्व-गायकों का ज़माना आया, जो आज तक क्रायम है। इनमें अग्रगण्य हुए लता मंगेशकर, मन्नाडे, मुकेश, मुहम्मद रफ़ी, सी० एच० आत्मा, मोनाकपूर, शारदा, जी० एम० दुरानी, हेमन्तकुमार, तलत महमूद, किशोरकुमार, आशा भोसले, उषा, मंगेशकर, सुमन कल्याणपुर कर तथा महेन्द्र कपूर इत्यादि।

शुरू-शुरू में सवाक् चित्रों में काम करनेवाले अभिनेता-अभिनेत्रियों का चयन उनकी गायन-कला की योग्यता पर ही होता था, इसलिए उस समय अच्छा गा सकने वाले कलाकार ही फ़िल्मों में अधिक सफल हुए।

प्रथम सवाक् फ़िल्म 'आलमआरा' के एक गायक-कलाकार थे—डब्ल्यू० एम० खान, जिन्होंने गाया था—'दे दे खुदा के नाम पे प्यारे, देने की गर हिम्मत है।' प्रभात की पहली टॉकी फ़िल्म 'अयोध्या का राजा' में अल्लादिया खाँ के शिष्य गोविंदराव टेंबे ने अपने संगीत-निर्देशन में स्वयं और दुर्गा खोटे ने गाया था। मोतीलाल ने अपनी पहली फ़िल्म 'शहर का जादू' (ल्योर ऑफ़ दि सिटी) में अपने गीत स्वयं गाए थे। संगीत-निर्देशक थे—अनुपम घटक और ज्ञान घोष। पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर के प्रमुख शिष्य विनायकराव पटवर्धन ने सुलोचना (रूबी मायर्स) के साथ हीरो के रोल में फ़िल्म 'माधुरी' में शास्त्रीय संगीत के गीत गाए थे। उनमें से एक था बहार राग में—'सरिता सुगंध, सोहे वसंत जियरा रास खेले रे'। यह गीत पं० विष्णुदिगंबर की परंपरा के बहार राग की बंदिश 'फुलवाले कंत, मैका बसंत' पर लिखवाया गया था। संगीत-निर्देशक थे—मास्टर लहानू। अशोककुमार ने बॉम्बे टॉकीज की अपनी प्रथम फ़िल्म 'जीवन नैया' (१९३५ ई०) में अपना गीत स्वयं गाया था। तबसे लेकर 'अछूत कन्या', 'सावित्री', 'वचन', 'कंगन', 'झूला' आदि फ़िल्मों के गाने हीरो की भूमिका में उन्होंने स्वयं ही गाए थे।



बॉम्बे टॉकीज की संगीत-निर्देशिका थीं—पारसी कन्या मिस खुर्शीद होमजी, जिनका फ़िल्मी नाम था—सरस्वती देवी। इन्होंने बम्बई में पं० विष्णुनारायण भातखंडे से प्रत्यक्ष कंठ-संगीत की शिक्षा ली थी। फिर बाद में वे 'लखनऊ मैरिस म्यूज़िक कालेज' में संगीत सिखाती थीं। बॉम्बे टॉकीज के मालिक श्री हिमांशुराय उन्हें संगीत-निर्देशक बनाकर लखनऊ से बम्बई ले आए और पं० विष्णुदिगम्बर के शिष्य प्रो० बी० आर देवधर के स्थान पर उन्हें अनुबन्धित किया। सरस्वतीदेवी के साथ 'मैरिस म्यूज़िक कालेज' के स्नातक, वॉयलिन-वादक एस० एन० त्रिपाठी सहायक संगीत-निर्देशक होकर आए। फ़िल्मी दुनिया में सरस्वतीदेवी प्रथम फ़िल्म-संगीत-निर्देशिका थीं। बाद में उसी वर्ष दूसरी प्रख्यात महिला गायिका जद्दनबाई (अभिनेत्री नर्गिस की माता) अपने संगीत-मूवीटोन में स्वयं संगीत-निर्देशिका, निर्माता, दिग्दर्शिका एवं नायिका बनकर आईं। उनके नायक होते थे—उनके पुत्र अख्तर हुसैन। प्रसिद्ध गायक-अभिनेता सुरेन्द्र बी० ए० ने अपनी पहली फ़िल्म सागर की 'मनमोहन' या 'जागीरदार' में गायिका-अभिनेत्री बिंबो के साथ अनिल विस्वास के संगीत-निर्देशन में अपना पहला गीत भीमपलासी राग पर आधारित 'तुम्हीं ने मुझको प्रेम सिखाया' गाया था।

अन्ध-गायक के० सी० डे (कृष्णचन्द्र डे) ने न्यू थिएटर्स, कलकत्ता में बनी देवकी बोस की फ़िल्म 'पूरन भगत' में गाया था—'जाओ-जाओ हे मेरे साधू, रहो गुरु के संग'। उसके बाद उन्होंने दर्जनों फ़िल्मों में अभिनय करके बीसियों गीत गाए, जो सभी उस युग के हिट गीत हुए। वह युग के० सी० डे युग कहा जाता था। उन्हीं के भतीजे मन्ना डे, सन् १९४२ में विजय भट्ट की 'रामराज्य' फ़िल्म के गीत गाकर पार्श्वगायक बने।

के० सी० डे के समकालीन पंकज मलिक ने, जो कि गायक, संगीत-निर्देशक एवं सफल अभिनेता थे, ऐसे-ऐसे हिट गीत दिए, जिनके रिकार्ड्स आज तक बिकते हैं। उनमें से कुछ गाने हैं—'ये कौन आज आया सवेरे-सवेरे', 'पिया-पियन को जाना', 'आई बहार, आज आई बहार', 'याद आये कि न आये तुम्हारी' आदि। अभिनेत्री खुर्शीद के बीसियों गीतों में से कुछ गीत हैं—'घटा घन घोर-घोर', 'मोरे बालापन के साथी छैला भूल जइयो ना', 'मधुर-मधुर गा रे मनवा' आदि।

कुन्दनलाल सहगल और खुर्शीद की अपने ज़माने की मशहूर जोड़ी थी। अपूर्व शैली के गायक सहगल का युग टॉकी के प्रारम्भ (सन् १९३१) से उनकी मृत्यु-पर्यन्त (१९४९ ई०) अठारह वर्ष तक रहा। एक प्रकार से उन्होंने अपनी विशिष्ट आवाज़ से एकच्छत्र राज्य किया। भारतीय शास्त्रीय संगीत, रवीन्द्र-संगीत तथा ग़ज़लों द्वारा उन्होंने फ़िल्म-संगीत का स्तर निरन्तर ऊँचा उठाये रखा। सहगल ने आगरा-घराने के उ० फ़ैयाज़ खाँ से गंडा बँधवाया था।

सुप्रसिद्ध गायिका-अभिनेत्री सुरैया ने सर्वप्रथम प्रकाश की फ़िल्म 'स्टेशन-मास्टर' में नौशाद के संगीत-निर्देशन में गाया और अभिनय किया। फिर कारदार



की फ़िल्म 'शारदा' में अभिनेत्री मेहताब के लिए पार्श्व-गीत गाया—'पंछी जा, पीछे रहा है बचपन मेरा उसको जा के ला'। उसके बाद फिर तो सुरैया गायिका-अभिनेत्री के रूप में बरसों तक फ़िल्म-जगत में छाई रहीं। इनके सैकड़ों हिट फ़िल्मी-गीत हैं, जो आज भी आकाशवाणी से प्रसारित होते रहते हैं—'चुप-चुप खड़े हो ज़रूर कोई बात है, पहली मुलाकात है जी पहली मुलाकात है'—जैसे इनके गाए अनगिनत लोकप्रिय गीत हैं।

गायिका-अभिनेत्री काननबाला बंगाल की बुलबुल कही जाती थीं। 'विद्यापति', 'जवाब', 'धरती माता', स्ट्रीट-सिंगर', 'अधिकार' आदि फ़िल्मों में अभिनय के साथ उन्होंने गीत गाए हैं। 'ए चाँद छुप न जाना', 'जब तक मैं गीत गाऊँ', 'दुनिया ये दुनिया तूफ़ानमेल' इत्यादि गीत अक्सर आकाशवाणी से प्रसारित होते रहते हैं। उमाशशि का 'चंडीदास' फ़िल्म का गीत—'मरूँगी-मरूँगी मैं निश्चय ही मरूँगी' और वही बँगला में 'मोरिबो-मोरिबो सोखी निश्चोई मोरिबो' कभी भुलाया नहीं जा सकता।

उस युग के सुन्दर अभिनेता एवं सुन्दर नायक पहाड़ी सान्याल का नाम था—नगेन्द्रनाथ सान्याल। वे मैरिस म्यूज़िक कालेज के स्नातक थे। बढबन खाँ से ठुमरी गाने की तालीम ली थी। 'धरती माता', राजरानी मीरा', 'विद्यापति' आदि फ़िल्मों में उनके गाए हुए गीत अमर होकर रह गए हैं।

इसी तरह शांता आपटे, राम मराठे, शाहू मोदक, फ़ीरोज़ दस्तूर इत्यादि अनेक घरानेदार गायक फ़िल्मी कलाकार हुए हैं।

जब पार्श्वगायक-गायिकाओं के युग ने जोर पकड़ा, तो फिर मधुर कंठवाले गायक-कलाकार होते हुए भी अभिनेता-अभिनेत्रियाँ अपने गीत पार्श्वगायकों से ही गवाने लगे; अन्यथा नूतन, माला सिन्हा, वैजयंतीमाला, नलिनी जयवंत, दिलीप-कुमार (मुसाफ़िर), राजकपूर (दिल की रानी), मीनाकुमारी (बचपन), जयंत, सुलक्षणा पंडित, विजयेता पंडित, पद्मिनी कोल्हापुरे, सलमा आग्रा, हेमामालिनी स्वयं अपने गीत गाने की परम्परा को आसानी से कायम रख सकते थे। अमज़द, अमिताभ, नूतन, सलमा आग्रा जैसे कुछ नायक नायिकाओं ने केवल शौकिया तौर पर ही कुछ गीत गाए।

यह बात सही है कि जब गीत उसी कलाकार की आवाज़ में हो, जो अभिनय कर रहा है तो वह अधिक स्वाभाविक लगता है; किन्तु एक बार पार्श्वगायकों की परम्परा चल निकली, तो फिर मुकेश, तलत और किशोर—जैसे गायक अभिनेता भी हताश होकर केवल पार्श्वगायक बने रहने में ही अपनी भलाई समझने लगे।

हर पार्श्वगायक किसी-न-किसी जाने माने घराने का शागिर्द रहा है। खान मस्ताना मुहम्मद हुसेन के भाई थे। जी० एम० दुर्गानी पटियाला-घराने के शागिर्द थे। राजकुमारी और निर्मलादेवी बनारस की ठुमरी-गायिका थीं। मन्नाडे के ० सी० डे के घराने के, पंकज मल्लिक रवीन्द्र-संगीत-परम्परा के, मुहम्मद रफ़ी पटियाला-घराने के



उ० वाहिद खाँ और छोटे गुलामअली खाँ के शागिर्द थे। बम्बई जाकर प्रायः सभी पार्श्वगायकों ने अमानअली, अमानतअली, पं० जगन्नाथ, पं० लक्ष्मणप्रसाद और उनके पुत्र गोविन्दप्रसाद जयपुर वाले, पं० प्रतापनारायण, पं० जसराज, मधुरानी, युनुसहुसैन तथा उ० गुलाम मुस्तफ़ा खाँ आदि से तालीम ली।

लोकप्रिय फ़िल्मी गायक-गायिकाओं के साथ-साथ शास्त्रीय-संगीत के अनेक प्रसिद्ध गायक-गायिकाओं को भी फ़िल्मी गीतों के माध्यम से जनता के समक्ष प्रस्तुत किया गया, जिनमें कुछ प्रमुख नाम हैं—पं० विनायकराव पटवर्धन, उ० अमीर खाँ, बड़े गुलामअली खाँ, स्व० डी० वी० पलुस्कर, गुलाममुस्तफ़ा, श्रीमती लक्ष्मीशंकर, परवीन सुलताना, किशोरी अमोणकर, कृष्णराव चोणकर, सरस्वती राने, शोभागुट्ट, हीराबाई बड़ोदकर आदि।

शास्त्रीय-संगीत के वादकों ने भी फ़िल्म संगीत को अपना सहयोग दिया है, जैसे—बिस्मिल्लाह खाँ शहनाईनवाज़ (गूँज उठी शहनाई), ज़रीन दारूवाला (शर्मा) सरोद वादक, रईस खाँ और अब्दुल हलीम खाँ जाफ़र जैसे सितार वादक, सामताप्रसाद तबलावादक, शिवकुमार शर्मा सन्तूरवादक, पन्नालाल घोष और हरिप्रसाद चौरसिया बाँसुरी-वादक आदि।

सन् १९४५ से १९६५ तक दो दशकों में जिन संगीतकारों ने फ़िल्म के माध्यम से शास्त्रीय-संगीत दिया है, उनमें नौशाद, रोशन, वसन्त देसाई, सी० रामचन्द्र, एस० डी० बर्मन, शंकर-जयकिशन, एस० एन० त्रिपाठी, ओ० पी० नैयर और मदनमोहन के नाम उल्लेखनीय हैं। आज फ़िल्मों में जो भी शास्त्रीय-संगीत की गंध है, वह इन्हीं संगीतकारों के कारण है। इन्होंने अपनी धुनें या तो विशुद्ध रागों पर अथवा उनके आधार पर बनाई हैं या फिर लोक-संगीत का सहारा लिया है। इसलिए वे आज भी नई और ताज़ा लगती हैं।

सन् १९६० के बाद रोशनी में आनेवाले संगीतकारों में हैं—कल्याणजी-आनन्दजी, लक्ष्मीकान्त-प्यारेलाल, आर० डी० बर्मन, राजेश-रोशन, रवीन्द्र जैन, उषा खन्ना, सोनिक ओमी, बप्पी लहरी आदि, जिन्होंने अपने अल्ट्रामॉडर्न संगीत के साथ-साथ शास्त्रीय-संगीत की सुन्दर बंदिशें भी दी हैं, जो टिकाऊ और हमेशा रहनेवाली हैं।

कुछ प्रमुख निर्देशक-निर्माताओं में ऐसे भी हैं जो फ़िल्म-संगीत के क्षेत्र में गाने-बजाने, नाचने या संगीत-निर्देशक बनने की इच्छा से संगीत, नृत्य एवं वादन-कला सीखकर आए थे, किन्तु बन गए कुछ और। राज खोसला, शक्ति सामन्त, मोहन सहगल, जे० ओमप्रकाश, बी० एम० व्यास, भरत व्यास, आनन्द बरुशी फ़िल्मों में संगीत के लिए आए थे, किन्तु बने उच्च कोटि के प्रोड्यूसर, डाइरेक्टर, एक्टर या गीत-लेखक। सत्यजित रॉय तो मूलतः संगीतकार व चित्रकार थे।



हृषिकेश मुखर्जी सितार बजाते थे, फिर फ़िल्म-एडिटर बने और बाद में एक उत्कृष्ट डाइरेक्टर-प्रोड्यूसर बने। मोहन सहगल, गुरुदत्त और सरदार मल्लिक ने उदयशंकर के ग्रुप में अल्मोड़ा में नृत्य की शिक्षा ली थी। वे फ़िल्मों में आकर नृत्य-कार एवं नृत्य-निर्देशक बनना चाहते थे, किन्तु गुरुदत्त बन गए हीरो, डाइरेक्टर, प्रोड्यूसर; मोहनलाल सहगल बने प्रोड्यूसर-डाइरेक्टर और सरदार मल्लिक बने संगीत-निर्देशक।

इन उदाहरणों का सारांश यह है कि फ़िल्मों में टॉकी-युग के आरंभ होते ही नृत्य संगीत एवं गाने की शिक्षा लेकर ही कलाकार फ़िल्म-क्षेत्र में आते थे और प्रत्येक कलाकार किसी-न-किसी घराने के उस्ताद या शागिर्द होते थे।

मनरंग-घराने के उ० मुराद खाँ के शिष्य कृष्णराव कोल्हापुरे लता मंगेशकर के मामा थे। उनके पुत्र पंढरीनाथ कोल्हापुरे की पुत्री हैं—पद्मिनी कोल्हापुरे, जिन्होंने पहले फ़िल्मों में गाया, फिर अभिनेत्री बनीं।

मेवाती घराने के मणिराम की भतीजियाँ और प्रतापनारायण की पुत्रियाँ हैं—सुलक्षणा और विजयेता पंडित। दोनों ही अभिनेत्रियाँ घरानेदार संगीत में दक्ष हैं।

मौजुद्दीन खाँ साहब ठुमरी-गायकी के बादशाह माने जाते थे। उनके घराने की परंपरा में गौहरजान, मलिकाजान, जानकीबाई (इलाहाबाद), ज़ोहराबाई, बनारस की बड़ी मोतीबाई, रसूलनबाई, काशीबाई, विद्याधरी आदि थीं। नरगिस की माँ जह्ननबाई भी उसी घराने की प्रख्यात गायिका थीं, जो बाद की फ़िल्मों में संगीत-निर्देशक और अभिनेत्री बनीं। उनके साथ हारमोनियम-वादक थे मोर साहब, जो सोहराब मोदी की 'पुकार' फ़िल्म के संगीत-निर्देशक बने।

जह्नन बाई के ग्वालियर के भैया गणपत राव से हारमोनियम की तालीम ली थी। इन्हीं गणपत भैया से प्रभावित होकर गोविंदराव टेंबे एक उच्च कोटि के हारमोनियम-वादक हुए। टेंबे भास्कर बुवा बखले एवं अल्लादिया खाँ के शिष्य थे। इन्होंने कई फ़िल्मों का संगीत-निर्देशन किया और गायक की भूमिका में गाया भी।

मल्लिकार्जुन मंसूर जो 'चन्द्रहास' फ़िल्म के म्यूज़िक-डाइरेक्टर थे, उन्होंने अल्लादिया खाँ के पुत्र मंजी खाँ और भुर्जी खाँ से तालीम पाई थी।

भास्कर बुवा और फ़ैयाज़ खाँ से तालीम पाए हुए दिलीपचन्द्र वेदी भी फ़िल्म-संगीत-निर्देशक हुए। ये गायिका माणिक वर्मा और हुस्नलाल-भगताराम (संगीत निर्देशक द्वय) के उस्ताद थे, जिन्होंने सन् १९४५ से १९६० तक फ़िल्मी संगीत द्वारा भारत में तहलका मचा दिया था।

मौलाबख्श के शागिर्द गणपत राव-गोपाल राव बर्वे थे, जिनके पुत्र मास्टर मनहर बर्वे ने सात साल की उम्र से ही वाद्य-संगीत द्वारा दुनिया-भर में नाम कमाया।



हैदर खाँ के घराने के बदल खाँ के शिष्य थे—अंध-गायक तथा संगीत-निर्देशक के० सी० डे एवं संगीत-निर्देशक-गायक भीष्मदेव चटर्जी ।

‘चित्रलेखा’ फ़िल्म के संगीत-निर्देशक थे—उ० झंडे खाँ, जिनके पिता नत्थे खाँ बहराम खाँ के शागिर्द थे । झंडे खाँ गीत, वाद्य और नृत्य, तीनों में ही माहिर थे ।

प्रसिद्ध संगीत-निर्देशक व अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के तबला-वादक अल्लारखा लाहौर के क़ादिरवरुण पखावजी के शिष्य हैं । सेनिया घराने के बरकतउल्ला के शिष्य हुए बनारस के आंशिक अली, जिनके पुत्र मुश्ताक अली प्रख्यात सितार-वादक थे और संगीत-निर्देशक भी रहे । इन्हीं आंशिक अली के शिष्य राम गंगोली थे, जिन्होंने राजकपूर की पहली फ़िल्म ‘आग’ में संगीत-निर्देशन किया था ।

विख्यात फ़िल्म संगीत-निर्देशक अनिल बिस्वास और रामचन्द्रपाल पं० रामकृष्ण मिश्र के शागिर्द थे, जो वल्लभ-सम्प्रदाय के शिष्य थे ।

बाँसुरी-वादक व संगीत-निर्देशक पन्नालाल घोष, गिरिजाशंकर चक्रवर्ती और बाद में अलाउद्दीन खाँ के शिष्य हुए । ये अनिल विश्वास की पार्श्व-गायिका बहिन पारुल घोष के पति थे ।

किराना-घराने के उ० अब्दुल करीम खाँ के शिष्य सवाई गंधर्व से भीमसेन जोशी एवं फ़ीरोज दस्तूर ने तालीम ली । भीमसेन जोशी ने फ़िल्मों में दर्जनों शास्त्रीय रागों के गीत गाए । फ़ीरोज दस्तूर अभिनेता, गायक तथा संगीत-निर्देशक रहे और पारसियों में प्रमुख शास्त्रीय संगीतकार गिने जाते रहे ।

प्रसिद्ध प्राचीन खयालिये हस्सू-हद्दू खाँ के शागिर्द थे—देवजी धारवाले, जिनके शिष्य बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर हुए । उनके शिष्य प्रख्यात गायक व संगीत-प्रचारक पं० विष्णुदिगंबर पलुस्कर हुए, जिनके अनेक शिष्य हुए, जो फ़िल्मों के संगीतकार एवं गायक हुए । विष्णुदिगंबर जी के पुत्र पं० डी० वी० पलुस्कर की अमीर खाँ साहब के साथ गाई हुई ‘बैजू-बावरा’ फ़िल्म की जुगलबंदी ‘आज गावत मन मेरो झूम के’ अजर-अमर है । पं० विष्णुदिगंबर जी के शिष्य प्रो० बी० आर० देवधर टाँकी के आरम्भ में ही फ़िल्मों के संगीत-निर्देशक हो गए थे । इनके शिष्य कुमार गंधर्व ने बहुत यश प्राप्त किया । प्रसिद्ध संगीत-निर्देशक केशवराव भोले की पत्नी श्रीमती ज्योत्सना भोले गोआ की गायिकाओं के घराने की हैं । इन्होंने सर्वप्रथम सितारा देवी के पिता सुखदेव महाराज से नृत्य सीखा था, बाद में गायिका बनीं ।

किराना-घराने के अब्दुल करीम खाँ की शिष्या मोघूबाई कुर्डीकर की पुत्री प्रसिद्ध गायिका किशोरी अमोणकर तथा वाणी जयराम ने कितनी ही फ़िल्मों में शास्त्रीय-संगीत की बंदिशें गाई हैं । उ० अब्दुल करीम खाँ और पं० ओंकारनाथ ठाकुर की गायकी भूगंधर्व रहमत खाँ से ही प्रभावित थी, जो हद्दू खाँ के पुत्र थे ।

डागर रहीमउद्दीन खाँ ध्रुपदिए अलाबन्दे खाँ के पुत्र थे । इनके छोटे भाई नसीरउद्दीन खाँ ध्रुपदिए (इन्दौर वाले) के पुत्र डागरबन्धु मुईनुद्दीन और उनके भाई प्रसिद्ध ध्रुपद-गायक तथा फ़िल्मी-संगीतकार भी रहे ।



बाबा अलाउद्दीन खाँ के पुत्र अलीअकबर खाँ सरोदिए विश्वविख्यात संगीत-कार हैं। ये फ़िल्मों में संगीत-निर्देशक भी रहे। 'आँधियाँ' फ़िल्म का इनका गीत— 'है कहीं पे शादमानी और कहीं नाशादियाँ' आज तक हिट है।

बनारस के प्रसिद्ध सारंगी-वादक सुरसहाय के पुत्र थे—गोपाल मिश्र, जिन्होंने 'झनक-झनक पायल बाजे' फ़िल्म में गोपीकृष्ण व चौबे महाराज के नृत्य एवं सामताप्रसाद के तबले के साथ सभी बंदिशों में सारंगी से सहयोग दिया था।

आद्य फ़िल्म-संगीत-निर्देशक रायचन्द्र बड़ाल के दादा नवीनचन्द्र बड़ाल थे और पिता लालचन्द्र बड़ाल सितारिए थे। इनका धनाढ्य घराना भारत के प्रख्यात संगीतकारों का अड्डा था। आज भी कलकत्ता में इनकी विशाल कोठी का दीवानखाना बड़े-बड़े संगीतकारों के चित्रों से सजा हुआ है।

प्रसिद्ध फ़िल्म-संगीत-निर्देशक शंकरराव व्यास ('रामराज्य'—प्रसिद्ध) पं० नारायणराव व्यास के बड़े भाई और पं० विष्णुदिगम्बर जी के प्रमुख शिष्यों में थे।

सेनिया घराने के बरकतउल्ला खाँ के शिष्य हुए बनारस के नामी सितारिए आशिकअली खाँ, जिनके पुत्र मुश्ताकअली और शिष्य राम गंगोली सितारिए हुए। दोनों ही फ़िल्म-संगीतकार हुए। राम गंगोली पहले साधना बोस के नृत्य-ग्रुप में थे, बाद में पृथ्वी थिएटर्स में आए, फिर राजकपूर की पहली फ़िल्म 'आग' से संगीत-निर्देशक बने।

मेहरवाले बाबा अलाउद्दीन खाँ (जिनके अनेक शिष्य फ़िल्म-संगीतकार हुए) वज़ीर खाँ (रामपुर) के शिष्य थे और प्रसिद्ध सरोद-वादक हाफ़िजअली (ग्वालियर) भी वज़ीर खाँ के ही शिष्य थे। हाफ़िजअली के पुत्र अमज़दअली ने भी अच्छा नाम कमाया है।

विलायत खाँ सितारिए (कलकत्ता) के दादा थे—इमदाद खाँ और पिता थे—इनायत खाँ। ये भी फ़िल्म-संगीतकार रहे हैं।

पुणे के नारायणराव राजहंस को लोकमान्य तिलक ने 'बालगंधर्व' की पदवी दी थी। तबसे ये गायक और रंगमंच-अभिनेता इसी नाम से प्रचलित हुए। इन बालगंधर्व की नाट्य-संगीत-परम्परा के अनेक शिष्य महाराष्ट्र में हुए। रंगमंच पर स्त्री-भूमिका द्वारा शास्त्रीय संगीत की बंदिशों एवं गायकी का प्रचार जितना बालगंधर्व ने किया, वह अलौकिक कहा जायेगा। बालगंधर्व के गुरु थे—फ़ैज़मुहम्मद के शिष्य भास्कर बुवा बखले, जो अल्लादिया खाँ के भी शिष्य थे। इन भास्कर बुवा ने रंगमंच संगीत-निर्देशक की हैसियत से शास्त्रीय रागदारी बंदिशों पर नाट्य-गीतों को बाँधकर खानदानी संगीत को महाराष्ट्र के घर-घर में प्रचलित किया। गोविन्दराव टेंबे, कृष्णराव फुलंब्रीकर, भोले और वसंत देसाई सभी भास्कर बुवा की परम्परा के शिष्य थे, जिन्होंने फ़िल्मों में संगीत-निर्देशन किया। निसारहुसैन के शिष्य रामकृष्ण बुवावझे ने कलादर्शन वाले महान् नाट्य संगीत-गायक बाबूराव पेंढारकर को तालीम दी थी।



उसी ज़माने में एक अद्भुत नाट्य-गायक कलाकार हो गए हैं श्री दीनानाथ मंगेशकर, जिनके पुत्र-पुत्रियों ने फ़िल्म-संगीत में इतना नाम कमाया है, जिसका कोई जोड़ नहीं। दीनानाथ जी की पुत्रियाँ हैं—लता मंगेशकर, उषा मंगेशकर, मीना मंगेशकर, आशा भोंसले और पुत्र हैं—हृदयनाथ मंगेशकर। यहाँ इनका परिचय देना या प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखाना होगा। इनकी ख्याति सारे विश्व में सर्वविदित है।

फ़िल्म के नृत्यकारों और नृत्य-निर्देशकों में उदयशंकर का नाम सर्वोत्कृष्ट रहेगा, क्योंकि मुख्यतः उन्हीं की नृत्य-शैली पर फ़िल्म के नृत्यों की रचना होती रही है। वैसे, कथकलि, भरतनाट्यम्, कथक, मणिपुरी, कुचिपुड़ी आदि नृत्य-शैलियों के साथ-साथ भारत के सभी प्रान्तों में लोक-नृत्यों का समावेश फ़िल्मों में होता रहा है। आज दो दशकों से पश्चिमी नृत्य-शैली की भरमार है, क्योंकि यही जन-रुचि हो गई है।

उदयशंकर फ़िल्म के टॉकी-युग से पहले ही जगत्-विख्यात हो चुके थे। उन्होंने अपनी नृत्य-फ़िल्म 'कल्पना' बनाई थी। मैडम अन्नापावलोवा से इन्होंने नृत्य की शिक्षा ली, फिर ऑरिएण्टल डान्स सहित भारत की सभी प्रमुख नृत्य-शैलियों को बड़े-बड़े गुरुओं-उस्तादों से सीखा। फ्रेंच महिला मैडम सिमकी इनके साथ थीं। बाद में इन्होंने बंगाल की नर्तकी अमलानंदी से विवाह किया। इनकी पुत्री ममताशंकर फ़िल्मों में अभिनय तथा पुत्र आनन्द शंकर आधुनिकता से ओत-प्रोत वाद्यवृन्द-निर्देशन करते हैं।

उदयशंकर की ही परम्परा में रामगोपाल, नटराज वंशी, मेनका, अजूरी, शीरी वज़ीफ़दार, बेलाबोस तथा झवेरी सिस्टर्स आदि नृत्य-सर्जक हुए, परन्तु इन सभी के गुरु-घराने भिन्न-भिन्न थे।

कालका जी (लखनऊ-घराने के कालका-विदादीन) के पुत्र लच्छू महाराज ने फ़िल्मों में नृत्य-निर्देशन किया और कई तारिकाओं को कथक सिखाया। सुखदेव महाराज के शिष्य तारा, सितारा, अलकनंदा, चौबे महाराज और गोपीकृष्ण हुए। वैजयन्ती माला, वहीदा रहमान, हेमामालिनी, सुधाचंद्रन, जयाप्रदा, श्रीदेवी, रंजन, कमल हासन, रेखा, आशा पारीख, पद्मिनी व रागिनी, ललिता, मीनाक्षी शेषाद्रि जैसे नायक-नायिकाएँ अभिनय के अलावा भरतनाट्यम् के दक्ष कलाकार रहे हैं।

दक्षिण-भारत की भरतनाट्यम्-नृत्यांगना वैजयन्तीमाला एवं हेमामालिनी का फ़िल्मी कला में कितना महत्त्वपूर्ण योगदान है, यह सर्वविदित है। दक्षिण की महान् गायिका सुब्बलक्ष्मी ने 'मीराबाई' चित्र का निर्माण करके स्वयं मीरा की भूमिका में उस चित्र में दस भजन गाए थे, जो आज भी प्रायः नित्य आकाशवाणी से सुने जाते हैं।



सन् १९४०-५० के नामांकित संगीत-निर्देशक रामचन्द्र पाल कलकत्ते के ध्रुपदिए ज्ञान गोस्वामी के शिष्य थे। महान् बाँसुरी-वादक पन्नालाल घोष भी एक नामांकित फ़िल्म-संगीत-निर्देशक हुए, जो बाबा अलाउद्दीन खाँ के शागिर्द थे। इन्हीं खाँ साहब के शागिर्द पं० रविशंकर ने अपने सितार द्वारा भारतीय संगीत को संसार-भर में सार्वभौम कर दिया। पं० रविशंकर ने बहुत-सी फ़िल्मों में संगीत दिया। गुलज़ार की फ़िल्म 'मीरा' में संगीत देने के बाद 'गांधी' फ़िल्म में संगीत दिया। सत्यजीत राय की प्रथम फ़िल्म 'पाथेर पांचाली' में भी रविशंकर ने ही संगीत दिया था। पं० रविशंकर नृत्य-सम्राट् स्व० उदयशंकर के सबसे छोटे भाई हैं। उदयशंकर ने रशिया की मैडम पावलोवा के साथ भ्रमण करके फ्रेंच नृत्यांगना सिमकी के साथ जोड़ी बनाकर भारतीय संगीत एवं नृत्य-कला का दुनिया-भर में प्रचार किया। बाद में अल्मोड़ा में एक विशाल नृत्याश्रम खोला, जहाँ विश्व के कोने-कोने से कलाशिक्षार्थी आते थे। उदयशंकर ने सन् १९४७ में एक फ़िल्म का निर्माण किया था, जिसका नाम था—'कल्पना'। यह चित्र भारतीय नृत्यों से ओत-प्रोत होकर एक नया प्रयोग था।

उदयशंकर की पत्नी अमलाशंकर स्वयं एक उत्तम नृत्यांगना रही हैं, जिनकी पुत्री ममताशंकर ने बंगाली फ़िल्मों में नायिका का अभिनय करके नाम कमाया और पुत्र आनन्द शंकर ने देश-विदेश में वाद्यवृन्द के आधुनिक भारतीय स्वरूप को प्रतिष्ठित करके अपना अलग स्थान बनाया।

बनारस के सितारिया खाँ साहब माशूकअली के शागिर्द राम गांगुली पहले नृत्यांगना साधना बोस के गुरु में थे, फिर पृथ्वी थिएटर्स में आ गए और फिर राजकपूर की पहली फ़िल्म 'आग' में संगीत देकर संगीत-निर्देशक बने। बहुचर्चित संगीत-निर्देशक श्री हुसैनलाल-भगताराम प्रसिद्ध संगीतकार पं० अमरनाथ के छोटे भाई थे और पटियाला-घराने के श्री दिलीपचन्द्र वेदी के शिष्य थे। फ़िल्मों की आद्य नृत्यांगना मैडम अजूरी (अनेट गैलजर, जर्मन पिता एवं कोचीन की माता) जयपुर-घराने के भूरे खाँ (आशिक हुसैन) की शागिर्द थीं। मैडम मेनका जयपुर-घराने की कथक-नर्तकी थीं। जयपुर घराने के प्रसिद्ध नृत्यकार सुन्दरप्रसाद के भाई गौरीशंकर भी मेनका के ही गुरु में थे।

नर्तक रामगोपाल ने कथकलि नृत्य कुंजकुरूप से तथा भरतनाट्यम् आचार्य मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै से सीखा। यत्नपां मुदैज़ियर भी भरतनाट्यम् के गुरु थे।

अड्यार में कला-क्षेत्र की स्थापिका श्रीमती रुक्मिणी अरुण्डेल भी मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै की शिष्या थीं।

फ़िल्म-दिग्दर्शक मधु बोस की पत्नी साधना बोस मणिपुरी नृत्य में पारंगत थीं तथा 'कुमकुम दण्डासर' और 'राजनर्तकी' जैसी फ़िल्मों की अभिनेत्री थीं।

मृणालिनी साराभाई कथकलि नृत्य-शैली में प्रवीण हुईं, जिनकी पुत्री मल्लिका हीरोइन बनी।



नटराज वशी का गुजरात के नर्तकों में विशिष्ट स्थान रहा। जयपुर-घराने के पं० सुन्दरप्रसाद की शिष्या दमयन्ती जोश ने नृत्य में अच्छा नाम कमाया।

गुरु पिल्लै के शिष्य पार्वतीकुमार के शिष्य-वर्ग में से बहुत-से नर्तक फ़िल्म-नृत्य-निर्देशक बने।

पखावजी नाना साहब पानसे (इंदौर) के घराने के मृदंगाचार्य आलकुटकर के शिष्य पी० एल० राज सर्वोत्तम फ़िल्म नृत्य निर्देशक सिद्ध हुए।

फ़िल्म-नर्तकी अजूरी भूरे खाँ (आशिक हुसैन) की शिष्या थीं। वजीफ़दार-सिस्टर्स तथा झवेरी सिस्टर्स क्रमशः कथक एवं मणिपुरी-शैली की कला में बहु-चर्चित हुईं। कुक्कू, शोला बाज़, साई तथा सुब्बलक्ष्मी, हेलन, जयश्री टी०, कुमकुम, शोरी वजीफ़दार, बेलाबोस, मीनू मुमताज़ तथा नए लोगों में गोविन्दा, माधुरी दीक्षित, मिथुन चक्रवर्ती प्रसिद्ध हुए।

जो श्रोता-प्रेक्षक आज का फ़िल्म-संगीत सुनकर पागल हो उठते हैं, यह बात जानकर आश्चर्य करेंगे कि सन् १९३१ से आज तक के कुल संगीतकारों की वही रचनाएँ अब तक सर्वमान्य और सर्वोत्कृष्ट रही हैं, जो शास्त्रीय संगीत पर आधारित थीं (पूर्व के दस वर्ष छोड़कर १९४१ ई० से)। वैसे तो ऐसी रचनाओं की संख्या हजारों में है, परन्तु जानकारी के लिए हम कुछ प्रमुख और प्रचलित रचनाओं का विवरण दे रहे हैं :—

**नोशादअली**—यूसुफ़ उस्ताद, बब्बन खाँ लखनऊवाले तथा पटियाला वाले उ० झण्डे खाँ के शिष्य।

१. 'बैजूबावरा' फ़िल्म में लता मंगेशकर से गवाया गया गीत—'मोहे भूल गए साँवरिया' जो 'राग भैरव' पर आधारित था।

२. 'मुग़ले-आज़म' फ़िल्म में लता मंगेशकर से गवाया गया गीत—'मोहे पनघट पे नन्दलाल' जो 'जंगला' और 'गारा' राग पर आधारित था।

३. 'बैजूबावरा' फ़िल्म में रफ़ी से गवाया गया गीत—'ओ दुनिया के रखवाले' जो राग 'दरबारी' पर आधारित था।

४. 'बैजूबावरा' फ़िल्म में 'भैरवी' में 'तू गंगा की मौज, मैं जमुना का धारा'।

५. 'कोहिनूर' में—'मधुवन में राधिका नाचे रे' राग 'हमीर' पर आधारित गीत मुहम्मद रफ़ी ने गाया था।

६. 'मुग़ले-आज़म' में 'सोहनी' में—'प्रेम जोगन बनके' गीत बड़े गुलामअली खाँ से गवाया गया था।

७. 'शबाब' में राग बसंत-बहार में—'मन की बीन मतवारी'।



**रोशन**—पं० भातखण्डे-परम्परा के मैरिस म्यूजिक कालेज के स्नातक ।

१. 'ए री मैं तो प्रेम दिवानी' फ़िल्म 'नौबहार' में लता द्वारा गाई हुई राग 'भीमपलासी' पर आधारित बंदिश ।

२. 'बरसात की रात' फ़िल्म में—'गरजत बरसत सावन आयो रे' 'गोड़-मल्लार' राग पर आधारित सुमन कल्याणपुर और कमल वारोत की आवाज़ों में ।

३. 'चित्रलेखा' फ़िल्म में 'काहे तरसाए जियरा' उषा मंगेशकर और आशा भोसले की आवाज़ों में राग 'कलावती' पर आधारित ।

**नोट**—सन् १९४० में बनी पहली 'चित्रलेखा' के संगीत निर्देशक थे—उ० झंडे खाँ, जिन्होंने इस फ़िल्म के सातों गीतों को 'भैरवी' राग में ही बाँधा था और प्रत्येक बंदिश एक-दूसरे से अलग थी । अलग रंग, अलग ढँग, अलग भाव व रस । 'नीलकमल मुस्काए, भँवरा झूठी कसमें खाए' ।

४. फ़िल्म 'ममता' में लता की आवाज़ में 'बहार, 'जोगिया' और 'पीलू' के मिश्रण की बंदिश का गीत, जिसे 'खमाज-बहार' कहते हैं—'सकल बन गगन पवन चलत' ।

५. 'चित्रलेखा' में 'कामोद' राग की बंदिश 'ए री जाने न दूंगी' ।

६. 'चित्र लेखा' में 'मन रे, तू काहे न धीर धरे'—राग 'कल्याण' ।

**शंकरराव व्यास**—पंडित विष्णुदिगंबर के शिष्य । 'रामराज्य' फ़िल्म में 'भीमपलासी' राग पर आधारित सरस्वती माने की आवाज़ में गाया हुआ गीत—'बीना मधुर-मधुर कछु बोल' ।

**आर० सी० बोडाल**—सहगल द्वारा गवाया गीत, 'यमन' राग की बंदिश—'दो नैना मतवारे तिहारे, हम पर जुलम करें' ।

**खेमचन्द्रप्रकाश**—'तानसेन' फ़िल्म में 'मेघमल्हार', 'दीपक', 'सारंग' इत्यादि की सात बंदिशें—'बरसो रे', 'दिया जलाओ', 'डगमग-डगमग चाल तिहारी', 'घटा घन घोर-घोर, मोर मचावे शोर', 'मोरे बालापन के साथी छैला', 'राजा भए मोरे बालम वो दिन भूल गए' तथा 'सप्त सुरन तीन ग्राम' (राग 'कल्याण') सहगल और खुर्शीद की आवाज़ों में ।

**रविशंकर**—'अनुराधा' फ़िल्म में लता की आवाज़ में राग 'भैरवी' पर आधारित 'साँवरे जाओ-जाओ रे' ।

इसी फ़िल्म में 'कलावती' राग—'हाय रे वो दिन क्यूँ' और 'झिझोटी'—'कैसे दिन बीते' ।

**हृदयनाथ मंगेशकर**—'हरिश्चन्द्र-तारामती' फ़िल्म में—'ओ रिमिमि झिमिमवा, सुनो रे बलमवा'—राग 'भैरवी' से शुरू होकर यह 'बंदिश राग मालकोश' में बदल जाती है ।



सलिल चौधरी—१. फ़िल्म 'आनन्द' में राग 'मालगुंजी' पर आधारित लता की आवाज़ में—'ना, जिया लागे ना' ।

२. 'छाया' फ़िल्म में राग 'बसन्तबहार' में—'छम-छम नाचत' ।

एस० डी० बर्मन—बादल खाँ-घराने के गिरिजा चक्रवर्ती से तालीम पाई ।  
मूलतः रवीन्द्र-संगीत-परम्परा के अनुयायी ।

१. 'मेरी सूरत तेरी आँखें' फ़िल्म में—'पूछो न कैसे मैंने रैन बिताई' ।  
मन्ना डे की आवाज़ में राग 'अहीर भैरव' ।

२. 'बुजदिल' में लता की आवाज़ में—'झन-झन-झन-झन पायल बाजे'  
राग 'नट-बिहाग' ।

३. 'शर्मीली' में—मेघा छाए आधी रात' राग 'भीमपलासी' ।

४. 'मुनीम जी' में—'घायल हिरनियाँ' लता की आवाज़ में राग 'शहाना' ।

५. डॉ० 'विद्या' में—'पवन दिवानी' लता की आवाज़ में राग 'बहार' ।

६. 'गाइड' में—'पिया तोसे नैना लागे' लता की आवाज़ में राग 'तिलंग' ।

७. 'अनुराग' में—सुन री पवन' लता की आवाज़ में राग 'भैरव' ।

शंकर-जयकिशन—हैदराबाद में बाबा नसीर खाँ से तालीम पाई ।

१. 'मनमोहना बड़े झूठे', लता-राग 'जयजयवंती' ।

२. 'चोरी-चोरी' में 'रसिक बलमा', लता-राग 'भूपकल्याण' ।

३. 'बसन्त-बहार'—'जा-जा रे बालमवा',-राग 'झिझोटी'

४. 'बसन्त-बहार' में 'केतकी-गुलाब-जुही' भीमसेन व मन्ना डे-  
राग 'बसन्त-बहार' ।

५. 'साँझ और सवेरे' में 'अजहूँ न आए बालमा', रफ़ी व सुमन-सिध-भैरवी'

६. 'लाल पत्थर' में 'रे मन, सुर में गा', मन्ना डे व आशा-राग यमन' ।

७. 'छम-छम बाजे रे पायलिया' में मन्ना डे—रागसागर है जिसमें  
'अडाणा', 'काफ़ी', 'चंद्रकौंस', 'जयजयवंती' आदि अनेक रागों का मिश्रण है ।

सी० रामचन्द्र—महाराष्ट्र की नाट्य-संगीत-परंपरा के शिष्य ।

१. 'देवता' में 'कैसे जाऊँ जमुना के तीर', लता-राग 'भैरवी' ।

२. 'स्त्री' में 'ओ निर्दयी प्रीतम', लता-राग 'भीमपलासी' ।

३. 'आज़ाद' में 'राधा न बोले', लता-राग 'बागेश्री' ।

४. 'अनारकली' में 'जाग दर्दे-इश्क जाग', हेमन्तकुमार-राग 'बागेश्री' ।

शिवराम—जयपुर-घराने के, फिर गुलाम हैदर के सहायक ।

'सती नारी' में 'तुम नाचो रस बरसे', महेन्द्रकपूर-राग 'यमनकल्याण' ।



गुलाम मुहम्मद—‘पाकीजा’ में ‘ठाड़े रहियो’ (लता-‘मांड’) ।

सतीश भट्ट—‘बूंद जो बन गई मोती’ में ‘अँखियाँ तरसन लागीं’ (सुमन-‘गोड़मल्हार’ और ‘मेघ’) ।

लच्छोराम—‘मैं सुहागन हूँ’ में ‘गोरी तोरे नैनवा’ (रफ़ी व आशा-‘देश’) ।

सुधीर फड़के-पं० विष्णुदिगंबर-परंपरा के वामनरावपाध्ये (वर्धा) के शिष्य ।

१. ‘भाभी की चूड़ियाँ’ में ‘ज्योति-कलश छलके’ (‘देशकार’) ।

२. ‘तुमसे ही घर-घर कहलाया’ (‘दरबारी’) ।

ओ० पी० नैयर—पटियाला-घराने के ।

१. ‘कल्पना’ में ‘तू है मेरा प्रेम-देवता’ (आशा-‘ललित’) ।

२. ‘कभी आर, कभी पार’ शमशाद (‘भैरवी’) ।

चित्रगुप्त—एस० एन० त्रिपाठी के शिष्य ।

१. ‘गंगा मैया, हे गंगा मैया तोहे’ (लता-‘पीलू’) ।

२. ‘शिव-भक्त’ में ‘दीम तदीम’ (लता-‘जौनपुरी’) ।

तिमिरबरन—अलाउद्दीन खाँ के शिष्य । ‘देवदास’ में ‘दुःख के अब दिन बीतत नाहीं’ (‘देस’), ‘बालम आय बसो मोरे मन में’ (‘काफ़ी’) ।

आदित्यनारायण—दाक्षिणात्य त्यागराग-परंपरा के । ‘स्वर्ण सुंदरी’ में ‘कुहू-कुहू’ (लता व रफ़ी-‘सोहनी और अन्य राग’)

रवि—१. ‘नरसी भगत’ में ‘दरसन दो घनश्याम’ (‘केदार’) ।

२. ‘चौदवीं का चाँद हो’ (‘पहाड़ी’) ।

कल्याणजी-आनंदजी—१. ‘उपकार’ में ‘मेरे देश की धरती’ (महेन्द्रकपूर-‘भैरवी’) ।

२. हरियाली और रास्ता’ में ‘ये हरियाली और रास्ता’ (‘भैरवी’) ।

३. ‘सरस्वती चंद्र’ में ‘चन्दन-सा बदन’ (लता-‘यमन’) ।

४. ‘ब्लफ़ मास्टर’ में ‘ऐ दिल भव कहीं न जा’ (‘भैरवी’) ।

वसंत देसाई—मराठी नाट्य-संगीत के आचार्यों का घराना ।

१. ‘गूँज उठे तेरे सुर’ (लता-‘बिहाग’) ।

२. ‘गुड्डी’ में ‘बोल रे पपीहरा’ (वाणी जयराम-‘मियाँमल्हार’) ।

३. ‘झनक-झनक पायल बाजे’ में ‘जो तुम तौड़ो पिया’ (लता-‘भैरवी’) ।

४. ‘दिल का खिलौना हाय’ (लता-‘भैरवी’) ।

५. ‘झनक-झनक पायल बाजे’ (अमीर खाँ-‘अडाणा’) ।



६. 'नैना तोरे नैना' ('मालगुंजी') ।

ज्ञानदत्त—'सूरदास' में 'पंछी बावरा' (खुशीद-केदार) ।

रामलाल—'गीत गाया पत्थरों ने' (किशोरी अमोनकर-दुर्गा) ।

आर० डी० बर्मन—१. 'हंगामा' में 'वाह री किस्मत' (मन्नाडे व आशा-मधुवंती) ।

२. 'परिचय' में 'बीती न बिताई' (लता-भूपेन्द्र-यमन-कल्याण व कलावती) 'मतवा' (यमनकल्याण व श्यामकेदार) ।

३. 'अमर प्रेम' में 'रैना बीती जाए' (लता-तोड़ी) ।

मदनमोहन—मैरिस म्यूजिक कालेज, लखनऊ में शिक्षा पाई ।

१. 'दस्तक' में 'माई री' (लता-बागेश्वरी, 'भिन्न-पड्ज' आदि) ।

२. 'दुल्हन एक रात की' में 'मैंने रँग ली' (लता-पीलू) ।

३. 'बावर्ची' में 'मोरे नैना बहाएँ' (लता-गौड़मल्हार' व 'नटभैरव') ।

४. 'बावर्ची' में 'तुम बिन जीवन' (मन्नाडे-भिन्नपड्ज' व 'कोशिकध्वनि') ।

५. 'परवाना' में 'पिया की गजी' (आशा व परवीन सुलताना-गौड़मल्हार' और 'कान्हड़ा') ।

६. 'मेरा साया' में 'नयनों में बदरा छाए' (लता-भीमपलासी) ।

७. 'अनपढ़' में 'जिया ले गयो री मोरा' (लता-यमन) ।

८. 'मदहोश' में 'मेरी याद में तुम न' (शमशाद-आसावरी) ।

९. 'आँखें' में 'आप से कह गई दिल की बातें' ('जयजयवंती' 'दरबारी') ।

अनिल विश्वास—'दिल जलता है तो' (मुकेश-दरबारी) ।

लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल—१. 'सौ साल बाद' में 'एक ऋतु आए' (लता-मन्नाडे 'रागसागर', 'धन्यधैवत', 'आभोगी', 'मेघ' व 'बसंत-बहार') ।

२. 'सावित्री' में 'तुम गगन के' (लता व मन्नाडे-यमनकल्याण) ।

३. 'सावित्री' में 'सखी री पी को नाम' (लता-बिहाग' व 'बिहागड़ा') ।

४. 'सावित्री' में 'कभी तो मिलोगे' (लता-कलावती) ।

५. 'जल बिन कजरा लगाके' (लता-कुकुभ) ।

६. 'बरखा-बहार' में 'छम-छम सुन' (लता-चारुकेशी) ।

७. 'सन्त ज्ञानेश्वर' में 'जोत से जोत' (लता-भैरवी) ।

एस० एन० त्रिपाठी—पं० भातखंडे की परम्परा के, लखनऊ मैरिस म्यूजिक कालेज के स्तानक (संगीत-विशारद), पं० श्री कृष्णनारायण रातंजनकर के शिष्य ।

१. 'लाल किला' में 'लगता नहीं है दिल मेरा' (रफ़ी-यमनकल्याण) ।



२. 'संगीत-सम्राट् तानसेन' में 'सप्त सुर तीन ग्राम', मन्नाडे-  
राग 'यमनकल्याण'
३. 'रानी रूपमती' में 'उड़ जा भँवर', मन्नाडे-राग 'दरवारीकान्हड़ा'।
४. 'पिया मिलन की आस' में 'पिया मिलन', लता-राग 'शिवरंजनी'।
५. 'जनम-जनम के फेरे' में 'जरा सामने तो आओ छलिए', लता व रफ़ी-  
'राग शिवरंजनी'।
६. 'लाल किला' में 'न किसी की आँख', रफ़ी-राग 'शिवरंजनी'।
७. 'संगीत-सम्राट् तानसेन' में 'झूमती चली हवा', मुकेश-राग 'सोहनी'।
८. 'संगीत-सम्राट् तानसेन' में छह मूल रागों की रागमाला, लक्षण गीत-  
हिंडोल, मालकोश, भैरव, श्री, मेघ व दीपक।
९. 'नादिरशाह' में 'मुहम्मदशाह' लता व रफ़ी-राग 'मियाँमल्हार'।
१०. 'रानी रूपमती' में 'आ, लौटके आ जा', मुकेश-राग 'मेघ'।
११. 'संगीत सम्राट् तानसेन' में 'बाट चज़त', कृष्णराव चोणकर व रफ़ी-  
राग 'भैरवी'।

रवीन्द्र जैन, हेमंतकुमार, सोनिक ओमी, जयदेव, सी. रामचन्द्र, खय्याम, इक़्बाल कुरैशी, जी० एस० कोहली, पं० शिवराम, उषा खन्ना, दत्ताराम, एन० दत्ता, सुधीर फड़के, अजीत मर्चेन्ट, जे० पी० कौशिक, सुरेन्द्र कोहली आदि ने भी शास्त्रीय रागों पर अच्छी बंदिशें दीं और नए लोगों में शारदा, राजेश-रोशन, गणेश, हेमंत भोसले, रत्नदीप-हेमराज, सपन-जगमोहन, ब्रजभूषण, रघुनाथ सेठ, विजयराघव राव, मानस मुखर्जी, जीतू-तपन, श्यामल मित्रा, मनोहारी सिंह नेपाली, धीरज-बबलू, वनराज भाटिया, अन्नूमलिक, मुरलीमनोहर स्वरूप, सी० अर्जुन, दुलालसेन, कमलकांत, गोविंद-नरेश, आनंद-मिलिन्द, नदीम-श्रवण, शिव-हरि, राजकमल तथा राम-लक्ष्मण आदि संगीत-निर्देशकों के नाम भी उल्लेखनीय हैं जिन्होंने भारतीय संगीत पर आधारित लोकप्रिय संगीत का निर्माण किया।

इसी प्रकार नए पार्श्वगायक-गायिकाओं में दिलराज कौर, अनुराधा-पौडवाल, अमितकुमार, कविता कृष्णमूर्ति, पीनाज मसानी, चित्रा, उत्तरा, जगजीतसिंह, भूपेन्द्रसिंह, मीनाक्षी, लक्ष्मीशंकर, सुमित्रा लाहिड़ी, निर्मला अरुण, सुलक्षणा पंडित, गुलाम मुस्तफ़ा, शैलेन्द्रसिंह, सुरेश वाडकर, अलका, मनहर, नरेन्द्र चंचल, अनवर, मीनू पुरुषोत्तम, प्रीतिसागर, हेमलता, श्यामा चित्तर, आरती मुखर्जी, अनूप जलोटा, साधना सरगम, सोनाली वाजपेई, हरिहरन, उदितनारायण, नितिन मुकेश, कुमारशानू, धेशुदास, कृष्णा कल्ले, वाणी जयराम, पूर्णिमा, अभिजीत, मौहम्मद अजीज़ (मुन्ना), बी० आर० बाल सुब्रह्मण्यम्, शम्बीरकुमार, बिपिन हाँडा, विनोद राठौर, सोनू निगम, इला अरुण, पार्वती खान, चंद्राणी मुखर्जी, उषा तिमोथी, सविता सुमन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। फ़िल्म संगीत के इतिहास में इन सभी का योगदान अपने-अपने ढंग का रहा है।



## नृत्य-उत्पत्ति-कथा

‘विष्णु धर्मोत्तर’ पुराण में मार्कण्डेय और वज्र संवाद के अन्तर्गत नृत्तसूत्र में नृत्य की उत्पत्ति के विषय में जब वज्र ने मार्कण्डेय से पूछा कि नृत्य किसके द्वारा उत्पादित है—ऋषि द्वारा या देवता द्वारा ? तो इस संशय को निवृत्त करने के लिये मार्कण्डेय ने कहा—

एक बार प्राचीन काल में समस्त लोक जब सागर में नष्ट हो गए तो शेषशैया पर शयनरत मधुसूदन विष्णु की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ। उस कमल से जहाँ चर्तुमुख ब्रह्मा व अन्य देवता सशरीर उत्पन्न हुए, वहीं पद्मोदबिन्दु से रात्रि के अंधकार के समान भयानक मधु-कैटभ दानव भी उत्पन्न हुए और उन्होंने ब्रह्मा से वेदों को छीन लिया।

ब्रह्मा ने विष्णु को प्रसन्न किया और कहा कि वेद मेरे परम नेत्र हैं और मेरा परम बल हैं। हे शत्रुहन्ता ! दानवों द्वारा वेद हर लेने से मैं अन्धा हो गया हूँ। ब्रह्मा के ऐसा कहने पर पुरुषोत्तम विष्णु उस जल में से उठकर जलाशय में घूमने लगे।

सुललित अंगहारों तथा पद परिक्रमा से घूमते हुए अतीव ललित आयत-लोचन उन देव को देखकर लक्ष्मी में विशेष रूप से राग उत्पन्न हुआ। देव भी क्षण भर में ही अश्वशिर होकर पाताल तल में चले गए। वे दैत्य उन्हें देखकर वेदों को त्यागकर उस अश्वशिर के शरीर को पकड़ने के लिए लपके। उन दोनों महाकाय दानवों अर्थात् मधु-कैटभ को मारकर देवाधिदेव विष्णु वेदों सहित ब्रह्मा के पास आये और उन्हें वेद प्रदान करते हुए कहा—“पितामह सृष्टि कीजिए।” तब ब्रह्मा ने वेद के प्रमाण से सृष्टि-रचना की।

उधर, शेष के अंक में गए हुए विष्णु से लक्ष्मी ने पूछा—“हे देवाधिदेव ! हे जगन्नाथ ! हे शंख, चक्र, गदाधर ! हे प्रभो ! जल में परिक्रमा करते हुए मैंने आपके सुललित, अतीव रमणीय अंगों को देखा है। वह क्या है यह बताइए। भगवान् विष्णु



ने लक्ष्मी से कहा, हे पद्म निभेक्षण ! यह मेरे द्वारा अंगहार, करण व परिक्रमण से युक्त नृत्त उत्पादित किया गया है। हे शुभे ! भक्तिमंत नृत्त से मेरी आराधना करेंगे। हे देवि ! इस नृत्त में तीनों लोकों का अनुकरण प्रतिष्ठित है।

इतना कहकर भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा से कहा—‘हे धर्मज्ञ ! इस लक्ष्य एवं लक्षणों से युक्त नृत्त को ग्रहण करिए।’ इसके बाद केशव अर्थात् भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा को नृत्य ग्रहण कराया। ब्रह्मा ने नृत्य ग्रहण करके उसे विधाता रुद्र (भगवान् शंकर) को दे दिया और रुद्र ने उसे ग्रहण करके उस नृत्त से देवेश भक्त वत्सल केशव को सतत प्रसन्न किया।

इस प्रकार पहले एक बार स्थावर-जंगम सहित समस्त लोक के सागर में नष्ट हो जाने पर, यह नृत्त वासुदेव (भगवान् कृष्ण) द्वारा उत्पादित हुआ। तबसे अनेक देवताओं सहित मनुष्यों का कल्याण करने वाले भगवान् शंकर नृत्त से ही चक्र-गदाधर भगवान् विष्णु का आराधन करते हैं। जिन्होंने मधुसूदन को प्रसन्न कर नृत्तेश्वरत्त्व प्राप्त किया वे भगवान् शंकर भी नृत्त द्वारा सम्यक् रूप से आराधित होने पर प्रसन्न होते हैं। अन्य देवता भी नृत्त द्वारा प्रसन्न किए जाने पर सन्तुष्ट होते हैं। इससे ही स्वर्ग में सतत देवत्व और दिव्यता है। पुष्प-नैवेद्य इत्यादि के दान से बढ़कर नृत्त-दान है।

जो स्वयं नृत्त से देवादिदेव भगवान् विष्णु का पूजन करता है उससे केशव विशेष प्रसन्न होते हैं। नृत्त, गीत और वाद्य भगवान् विष्णु को समर्पित कर समस्त कामनाओं की सिद्धि देने वाले यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं। जो नृत्त से वृत्ति (पेशा) करते हैं वह प्रयत्नपूर्वक मना किया जाना चाहिए। कुशीलव (कथक) आदि जो ऐसा करते हैं, वे नृत्त का विक्रय करने वाले हैं। जो नृत्त से देवताओं की आराधना करता है, वह सभी इच्छित वस्तुओं को प्राप्त करके मोक्ष के उपाय को खोज लेता है। यह धन, यश, आयुष्य तथा स्वर्गलोक को देने वाला, देवताओं का विलास व दुःखीजनों का दुःख नाश करने वाला है। यह मूर्खों को उपदेश देने वाला, स्त्रियों का सौभाग्यवर्धक, शान्ति प्रदायक, पौष्टिक, काम्य और वासुदेव निर्मित है।

यह नृत्त-शास्त्र लोक-कल्याण के लिए संक्षेप में बताया गया है। दोनों लोकों को जीतने की इच्छा रखने वाले पुरुष नृत्त द्वारा यत्न करें।

□ □ □



## नटराज-उपाधि का रहस्य

एक पौराणिक आख्यान के अनुसार किसी समय प्रदोषकाल में देवगण रजतगिरि कैलाश पर 'नटराज' शिव के ताण्डव में सम्मिलित हुए और जगज्जननी आद्या श्री गौरी जी रत्नसिंहासन पर बैठकर अपनी अध्यक्षता में ताण्डव कराने को तैयार हुईं। ठीक उसी समय, वहाँ श्री नारद जी महाराज भी पहुँच गए और अपनी वीणा के साथ ताण्डव में सम्मिलित हुए। तदनन्तर श्री शिव जी ताण्डव नृत्य करने लगे, श्री सरस्वती जी वीणा बजाने लगीं, इन्द्र महाराज वंशी बजाने लगे, ब्रह्माजी हाथ से ताल देने लगे और लक्ष्मी जी आगे-आगे गाने लगीं, विष्णु भगवान् मृदंग बजाने लगे और बचे हुए देवगण तथा गन्धर्व, यक्ष, पन्नग, उरग, सिद्ध, विद्याधर, अप्सराएँ चारों ओर स्तुति में लीन हो गए। बड़े ही आनन्द के साथ ताण्डव सम्पन्न हुआ। उस समय श्री आद्या भगवती (महाकाली) पार्वती जी परम प्रसन्न हुईं और उन्होंने श्री शिव जी (महाकाल) से पूछा कि आप क्या चाहते हैं? आज बड़ा ही आनन्द हुआ। फिर सब देवों से, विशेषकर नारद जी से प्रेरित होकर उन्होंने यह वर माँगा कि 'हे देवि! इस आनन्द को केवल हम लोग ही लेते हैं, किन्तु पृथ्वीतल में एक ही नहीं, हजारों भक्त इस आनन्द से तथा नृत्य-दर्शन से वंचित रहते हैं, अतएव मृत्युलोक में भी जिस प्रकार मनुष्य इस आनन्द को प्राप्त कर सकें ऐसा कीजिए, किन्तु मैं अपने 'ताण्डव' को समाप्त करूँगा और 'लास्य' करूँगा।' इस बात को सुनकर श्री आद्या भुवनेश्वरी महाकाली ने 'एवमस्तु' कहा और देवगणों से मनुष्य-अवतार लेने को कहा तथा स्वयं श्यामा (आद्या महाकाली) श्यामसुन्दर का अवतार लेकर श्री वृन्दावन धाम में आयीं और श्री शिव जी (महाकाल) ने राधा जी का अवतार लेकर ब्रजमें जन्म लिया एवं देवदुर्लभ 'रासमण्डल' की आयोजना की और वहीं पर 'नटराज' की उपाधि श्यामसुन्दर को दी गयी।

□ □ □



## तांडव और लास्य की उपति

भारतीय परम्परा में भगवान् शंकर को नृत्य का आदि प्रवर्तक माना गया है। वे नित्य प्रति संध्या काल में मस्ती में घूमते हुए नृत्य करते हैं। इस आनन्द-नर्तन में सभी सम्मिलित होते हैं। उसकी विराटता में ब्रह्मा ताल देते हैं, विष्णु मृदंग वादन करते हैं, सरस्वती अपनी वीणा झंकृत करती हैं, सूर्य और चन्द्र वंश (बाँसुरी) वादन करते हैं, अप्सराएँ व किन्नरियाँ श्रुतियों का ध्यान रखती हैं, नन्दी और भृंगी डमरू तथा मादल बजाते हैं। इसके साथ नारद स्वर मिलाते हैं।

शिवजी के पदाघातों से पृथ्वी और हस्त संचालन से नक्षत्र-मण्डल गतिमान होता है। इसीलिए कहा गया है कि 'नृत्यमयं जगत्' अर्थात् यह समस्त संसार ही नृत्यमय है।

शिवजी ने इस प्रकार नृत्य करते हुए जिन मुद्राओं का आविष्कार किया उन्हें तण्डु (नन्दीश्वर) एक-एक करके संकलित करते गए और लय-ताल में बैठकर अभ्यास करने लगे। जब ब्रह्मा जी की आज्ञा से भरत मुनि ने अपनी मण्डली के साथ कैलास पर्वत पर जाकर शिवजी के समक्ष 'त्रिपुरदाह' नाम का नाटक प्रस्तुत किया तो भगवान् शंकर ने इस नाट्य प्रयोग में नृत्य की योजना करने का सुझाव दिया और अपने प्रिय शिष्य तण्डु को आदेश दिया कि वे भरत मुनि को शिक्षा प्रदान करें। इस प्रकार तण्डु के द्वारा सिखाए जाने के कारण ही भगवान् शंकर का प्रसिद्ध नृत्य 'ताण्डव' कहलाया। भरत मुनि ने इसकी शिक्षा अपने पुत्रों को दी जिनसे यह नृत्य लोक में प्रचलित हो गया।

शिवजी को नृत्य करते देखकर भगवती पार्वती ने भी सुकोमल अंगहारों से युक्त एक नृत्य की रचना की जो 'लास्य' कहलाया। इस नृत्य की शिक्षा उन्होंने बाणासुर की पुत्री उषा को दी। उषा का विवाह भगवान् कृष्ण के प्रपौत्र अनिरुद्ध से हुआ। द्वारिका आने पर उषा ने वह नृत्य वहाँ की स्त्रियों को सिखाया। इस प्रकार पार्वती जी द्वारा निर्मित लास्य नृत्य पृथ्वी पर अवतरित हुआ। वीर, वीभत्स, रोद्र और अद्भुत आदि रसों से युक्त उद्धत नृत्य 'ताण्डव' तथा शृंगार प्रधान वृत्तियों से आवेष्टित नृत्य 'लास्य' समस्त सृष्टि में प्रचलित हुए। इन दोनों विधाओं से नृत्त व नृत्य के अनेक भेद व उपभेद लोक में प्रचलित हुए।



## नृत्य निर्देशन (Choreography) की कला

नृत्य निर्देशन एक स्वतन्त्र कला है, जिसके बारे में शास्त्र में कोई अलग से विधान नहीं मिलता लेकिन नृत्याचार्य, कलाकार और पात्रों के गुण तथा रंगविधान और अभिनय प्रयोग के आधार पर उसका सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है जो नृत्य निर्देशकों के लिए मननीय है। आज इस कला की आवश्यकता बढ़ गयी है इसलिए इस सम्बन्ध में आधुनिक काल के अनुसार उसका ज्ञान प्राप्त करना जरूरी हो गया है।

कोई भी नर्तक कॉरियोग्राफर ( नृत्य निर्देशक या नृत्य रचयिता ) हो, यह आवश्यक नहीं और न यह आवश्यक है कि प्रत्येक नृत्य निर्देशक एक अच्छा नर्तक हो। नृत्य के बारे में जानना, विभिन्न नृत्य पद्धतियों से परिचित होना, विभिन्न प्रकार के वस्त्रालंकारों की समझ रखना, चित्रकला का ज्ञान, लोक संगीत का ज्ञान, भाषा, साहित्य एवं संस्कृति का ज्ञान, कल्पनाशीलता, संगीत के विविध अंगों का ज्ञान और रंग मंचीय विधाओं की सम्यक् जानकारी रखना एक नृत्य निर्देशक के लिए आवश्यक है।

किसी सोलो नृत्य की शिक्षा देना अलग बात है और कथानक के अनुसार विभिन्न प्रकार की अंग भंगिमाओं या शैलियों के माध्यम से, नृत्य संयोजन करके उसका उचित निर्देशन करना, अलग गुण है। इस गुण को तभी बढ़ाया जा सकता है जब नृत्य कला का बारीकी से अध्ययन किया जाये। इस अध्ययन में अभ्यास की अपेक्षा ध्यान देना अधिक महत्वपूर्ण है।

नृत्य निर्देशक को यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि वह जो कुछ प्रस्तुत करेगा उससे साधारण व्यक्तियों को आनन्द मिलना चाहिए। अधिकतर दर्शक, नृत्य के शास्त्रीय पक्ष को कम समझते हैं और उसके सौंदर्य तत्त्व से ही प्रभावित होते हैं। अनुकूल भाव की सृष्टि करने में नर्तक की भाव भंगिमाएँ सफल सिद्ध हो रही हैं



अथवा नहीं साथ ही नृत्य की मुद्राओं से उन्हें ऐसी आकृतियाँ देखने को मिल रही हैं या नहीं, जो उन्हें आल्हादित कर सकें। इस ओर दर्शकों का विशेष ध्यान रहता है। शास्त्रीय या तकनीकी पक्ष से केवल चन्द्र दर्शकों को ही सन्तोष मिलता है। जिस तरह कोई रंगीन कपड़ा खरीदते समय उसका विश्लेषण नहीं किया जाता, केवल मन पर पड़ने वाले प्रभाव से ही हम उसे स्वीकार या अस्वीकार कर देते हैं, उसी तरह नृत्य एक ऐसी कला है जिसकी छटा देखकर बच्चे से लेकर वृद्ध तक सभी, आनन्दित हो जाते हैं। एक नृत्य-निर्देशक को सोचना चाहिए कि कथक या भरत-नाट्यम जैसे नृत्य अधिक समय तक मनोरंजन करने में सफल सिद्ध नहीं होते, लेकिन किसी लोकनृत्य को आदमी रात भर देखता रहता है। इसलिए लोक रंजक तत्वों का ध्यान रखकर नृत्य रचना की जानी चाहिए और भाव प्रधान, अलंकार प्रधान एवं चमत्कार प्रधान तत्वों का सन्तुलित समावेश किया जाना चाहिए, ताकि साधारण जन एवं विशिष्ट जन दोनों समान रूप से सन्तुष्ट हो सकें।

फ़िल्म के क्षेत्र में उपर्युक्त बातों का ध्यान रखकर ही नृत्य निर्देशक नये-नये नृत्यों का सृजन करते हैं, तभी वे नृत्य दर्शकों का मनोरंजन करने में सफल सिद्ध हो पाते हैं। यद्यपि फ़िल्म की कला और मंच की कला में कोई तालमेल नहीं फिर भी दोनों कलाएँ एक दूसरे के गुणों को ग्रहण कर सकती हैं। आज बड़े से बड़े नृत्य के गुरु फ़िल्म नृत्य-निर्देशन के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। संगीत, शब्द, भाव, समय, स्थिति, पात्र, आवश्यकता, भाषा, कथा, दृश्य, कैमरा, सम्पादन इत्यादि में दक्ष होने पर ही वे फ़िल्म के क्षेत्र में सफल हो पाते हैं।

## मंच का नृत्य

मंच के नृत्यों में अवधि के अनुसार एक निरंतरता बनाए रखनी पड़ती है ताकि कथा और कलात्मक अभिव्यक्ति का क्रम बना रहे। गायक, वादक और नर्तक सभी इस क्रम एवं उसकी तारतम्यता का ध्यान रखते हैं। क्रम में अवरोध होने पर प्रस्तुति को धक्का लगता है। जब तक प्रदर्शन चलता है तब तक कोई विश्रान्ति नहीं होती। नृत्य की सम्पूर्ण प्रस्तुति के लिए नृत्य के समस्त अंगों का ध्यान रखते हुए उनकी रचना करना 'कोरियोग्राफी' का प्रमुख लक्ष्य होता है। इसके लिए निम्नांकित बातें आवश्यक होती हैं—

१. बंधे-बंधाये तोड़ा, टुकड़ा, कवित्त, गत आदि की अवधि का निश्चय करना।
२. लोकरुचि के अनुसार भावाभिनय के लिए नायक-नायिकाओं को अभ्यास कराना।
३. संगीतकारों के साथ संगति बैठाने का पूर्वाभ्यास।
४. ठुमरी या कवित्त गायक के शब्द और उनकी प्रस्तुति की अवधि का निश्चय करना।
५. चमत्कार प्रधान तत्वों के प्रदर्शन में दिए जाने वाले समय का निर्धारण करना।



६. ध्वनि और प्रकाश व्यवस्था का आवश्यकतानुसार पूर्ववलोकन ।
७. मंचसज्जा, रूपसज्जा तथा उचित वस्त्राभूषणों का चुनाव ।
८. दर्शकों की श्रेणी अर्थात् योग्यता का अनुमान लगाकर नृत्य और नृत्त का सन्तुलित संयोजन ।
९. एकाकी (सोलो) नृत्य और समूह-नृत्य के अनुसार पात्र-विचार और नृत्य-संयोजन ।

## फ़िल्म का नृत्य

फ़िल्म के नृत्य में निर्माता या निर्देशक से जानना होता है कि कुल कितने व किस प्रकार के नृत्यों की नृत्यरचना (कोरियोग्राफी) करनी है। इसके बाद पहले से रिकॉर्ड किए हुए गीत या संगीत की प्रतिलिपि लेकर उसके संगीत को रिकॉर्डर पर बार-बार सुनकर मन में उसकी रूपरेखा बनाई जाती है। अवधि तो निश्चित है अतः पात्रों की संख्या का निर्धारण करके उनके स्वरूप, शूटिंग-स्थल, संगीत तथा कथा की प्रकृति के अनुकूल नृत्य की रचना की जाती है।

फ़िल्म के नृत्य में विविधता रखनी पड़ती है ताकि दर्शक ऊर्बें नहीं। इसलिए एक नृत्य को कई-कई स्थलों पर भिन्न-भिन्न साज सज्जाओं में फ़िल्माया जाता है और उसमें नीचे लिखी बातों का ध्यान रखा जाता है—

१. हीरो या हीरोइन का लय-ज्ञान और नृत्य-ज्ञान कैसा है ?
२. शूटिंगस्थल और वस्त्रालंकारों की विविधता के लिए निर्माता द्वारा धन के व्यय की सीमा क्या है ?
३. गीत के शब्द और भावों के अनुरूप नृत्यविधा का चुनाव उचित है या नहीं ?

इसके पश्चात् नृत्य निर्देशक को गीत व संगीत को टुकड़ों में विभाजित करना पड़ता है जिसे शॉट डिवीज़न (Shot Division) कहते हैं। जहाँ-जहाँ गीत के शब्द होते हैं वहाँ लय के अनुसार मात्राएँ गिनकर उन्हें गीत की पंक्ति के सामने लिख लिया जाता है। इसी प्रकार गीत के शब्द या बोलों के बाद जो वाद्य संगीत रहता है उसकी मात्राओं को भी नोट कर लिया जाता है। वाद्ययंत्रों में भी प्रमुख वाद्यों के वादन की अवधि को मात्राओं के (Beats) अनुसार लिख लिया जाता है। इसी को 'शॉट डिवीज़न' या 'दृश्य विभाजन' कहते हैं।

'शॉट डिवीज़न' के पश्चात् प्रत्येक शॉट की शूटिंग की जाती है और अन्त में फ़िल्म का एडिटिंग या सम्पादन करते समय विविध दृश्यों को एक सूत्र में पिरोने का काम किया जाता है। समझने की दृष्टि से यहाँ एक नमूना पेश किया जा रहा है।



## फ़िल्म के नृत्य का शॉट डिवीज़न

गीत को पंक्ति : 'मोहे पनघट पै नन्दलाल छेड़ गयो री'

मात्राओं की गणना : पन घट पै नं दला ऽल छे ड़ ग यो री ऽमो ऽहे

इस प्रकार १२ मात्राएँ हुईं जिन्हें इच्छानुसार दुगुन आदि लय में भी गिन सकते हैं।

शहनाई वादन की मात्रा-गणना : १८

अन्य वाद्यों के वादन की मात्रा-गणना : १०

तबले के टुकड़े या तिहाई की मात्रा-गणना : ४

पात्रों की संख्या + समय + लोकेशन + वस्त्राभूषण : आवश्यकतानुसार नोट करते हैं।

यह कल्पित शॉट डिवीज़न है। अब शूटिंग के समय गीत के बोलों अर्थात् १२ मात्राओं के अन्दर हम किसी भी चीज़ की शूटिंग कर सकते हैं। जैसे-सिर पर घड़ा रखे हुए नर्तकी का नाचना, सीढ़ियों से नीचे उतरती नर्तकी या नायिका इत्यादि। कथा की ज़रूरत, दृश्य की माँग, अवधि की गुंजाइश, निर्माता की इच्छा, नृत्य की इच्छा, नृत्य निर्देशक की काल्पनिक उड़ान सभी का ध्यान रखकर किसी भी गीत के बोलों को अनन्त प्रकार से शूट (दृश्यांकित) किया जा सकता है।

गीत के बोलों की समाप्ति पर जब वाद्यसंगीत बजता है तो उसमें भी टुकड़ों की शूटिंग इसी प्रकार की जाती है अर्थात् शहनाई के समय नायक का चलना, सहायक नर्तकियों का झूमना, खेत-खलियान, फूल, नदी, तालाब, भौंरा आदि कुछ भी दिखा सकते हैं जो गीत को गति और शक्ति प्रदान करता हुआ नायिका के व्यक्तित्व को उजागर करे। दूसरे वाद्य पर अन्य दृश्य दिखा सकते हैं। इसी तरह गीत जैसे-जैसे आगे बढ़ता है उसकी शूटिंग नृत्य निर्देशक के शॉट डिवीज़न के आधार पर चलती है। कहीं कोई बंदिश नहीं होती इसलिए सब का ध्यान सुन्दर कॉरियो-ग्राफ़ी, सुन्दर फोटोग्राफ़ी (फ़िल्मांकन), सुन्दर लोकेशन (स्थल) और सुन्दर प्रस्तुति पर केन्द्रित रहता है। नृत्य निर्देशक के शॉट डिवीज़न पर जब कैमरामैन विचार करता है तो वह एक अपना शॉट डिवीज़न अलग से तैयार करता है, जिसमें नर्तक के शॉट्स को अधिक सुन्दर बनाने के लिए पात्र तथा दृश्यों के 'क्लोज़ अप', 'मीडियम शॉट' तथा 'लॉग शॉट' रहते हैं। इनमें भी 'ज़ूम लेंस' के द्वारा कैमरामैन अन्य चमत्कार पैदा करता है जैसे नायक या नायिका की आँख का तारा दिखाना, नायक की आँख में नायिका या नायिका की आँख में नायक को दिखाना, भँवरे का फूल पर बैठकर रस पीना, शीशों में नृत्य करती हुई छवियाँ आदि।

इस प्रकार फ़िल्म के एक गीत की कॉरियोग्राफ़ी (नृत्य संरचना) का कार्य पूर्ण होता है जिसकी शूटिंग में तीन से सात दिन तक लग सकते हैं। सभी कलाकार प्रायः निपुण होते हैं अतः शूटिंग के समय ही उन्हें उनके 'मूवमेन्ट्स' (अंग-संचालन) बता दिए जाते हैं।



## फ़िल्म के नृत्य पर उदयशंकर के विचार

भारतीय नर्तक स्व० उदयशंकर ने सन् १९५५ में एक फ़िल्म सेमिनार में कोरियोग्राफी कला के सम्बन्ध में जो महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किए थे वे इस प्रकार हैं—

“फ़िल्म निर्माण की दृष्टि से भारत विश्व का दूसरा देश है जहाँ नई प्रतिभाओं और तकनीशियनों की कमी नहीं है। फ़िल्मों पर अच्छा धन खर्च होता है। निर्माता, निर्देशक और नृत्य निर्देशक को आपस में अच्छा सामंजस्य रखना चाहिए ताकि जनता के समक्ष स्तरीय चीज़ रखी जा सके।

सर्वप्रथम कहानी की जरूरत के मुताबिक नृत्य का चुनाव करना चाहिए न कि उसे कहानी का हिस्सा समझा जाए। कथा के साथ पात्रों के तालमेल और वातावरण पर नज़र रखनी चाहिए तभी नृत्य-रचना (कॉरियोग्राफी) का पूरा लाभ मिल सकेगा। इन कार्यों के लिए एक केन्द्रीय इन्स्टीट्यूशन होना चाहिए जहाँ नृत्य, नाट्य और संगीत की सम्मिलित ट्रेनिंग और व्यवस्थित निर्माण कार्य के बारे में विचारविमर्श किया जा सके।

केवल नृत्य सीख लेना ही पर्याप्त नहीं है। नृत्यकारों को चाहिए कि वे जनसमाज के साथ जुड़कर उनकी भावनाओं को समझते हुए नृत्य प्रस्तुत करें ताकि वे उस नृत्य को अपने जीवन का एक हिस्सा समझ सकें। देवी-देवताओं से सम्बन्धित नृत्यों की मुद्राएँ, दृष्टि, अवतरण और भावभंगिमाएँ मानवीय नृत्यों से भिन्न दैवीय-गुण-सम्पन्न होनी चाहिए। राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम राजा की चाल क्या होगी, वे कैसे खड़े होंगे, कैसे संचालन करेंगे और धनुषधारण करके उनका व्यक्तित्व कैसा लगना चाहिए, यह सब अध्ययन और ट्रेनिंग का विषय है। इसी तरह बन्दरों की भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं और यह सब हमें नृत्य के द्वारा दिखाना है। जो कलाकार जटायु का अभिनय कर रहा हो, उसे कुछ दिनों तक आसमान में उड़ते पक्षियों को निहारना होगा।

मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि नृत्य के प्रशिक्षण में उन सभी क्रियाकलापों का गहन अध्ययन आवश्यक है जो कि अभिनीत किए जाने हैं; तभी प्रतिभा-सम्पन्न कलाकारों का ठीक-ठीक उपयोग हो पाएगा। नृत्य सम्पदा के रूप में भारत जितना धनी है उतना कोई अन्य देश नहीं है।”

## फ़िल्मों में लोकनृत्य

लोकनृत्य और शास्त्रीय नृत्यों का प्रयोग करते समय इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि वे फ़िल्मों के लिए या आज के दर्शकों के लिए नहीं रचे गए। उनकी प्रकृति और उन्हें देखने वाले अलग हैं। उनका सबसे अच्छा उपयोग वृत्तचित्रों (डॉक्यूमेंट्री फ़िल्म्स) में किया जा सकता है। यदि उनमें भी प्रस्तुति ठीक न हो सकी तो उनकी प्रामाणिकता सदैव संदिग्ध बनी रहेगी।



प्राचीन और आधुनिक परिस्थितियों एवं मानवीय संवेदनाओं की खाड़ी बहुत चौड़ी है जिसे केवल श्रद्धा और स्नेह से पाटा जा सकता है। जिस को हम प्राचीन या बुरा कहते हैं वह वास्तव में हमारे लिए गर्व की वस्तु है। आधुनिक समाज में उसका अभाव है। उन्हें प्रस्तुत करते समय हमें कभी लज्जा का अनुभव नहीं करना चाहिए।

लोकनृत्यों की समृद्ध परम्परा होते हुए भी हम उनके कुछ ही प्रकारों को फ़िल्मों में दिखा पाते हैं जो खेद का विषय है। इतने पर भी उनकी वेशभूषा और प्रस्तुति के साथ हम न्याय नहीं कर पाते। फ़िल्म का एक नृत्य दूसरे नृत्य के साथ कोई सामंजस्य भी स्थापित नहीं कर पाता। लोक नृत्य विशेष दिनों या विशेष अवसर पर विशेष भावना के साथ प्रस्तुत किए जाते हैं, तब कहीं उनके द्वारा हृदय का वास्तविक उल्लास प्रकट होता है। यह सब कैमरे के सामने, तेज़ रोशनीयों के बीच किसी शूटिंग स्पॉट या फ़्लोर पर कैसे संभव हो सकता है? फिर भी मैं कहूँगा कि यह संभव है और हम इसे कर सकते हैं। यदि कलाकारों को अनुकूल वातावरण प्रदान करके लगन के साथ उन्हें सही प्रशिक्षण दिया जाए तो वे निश्चय ही इसको कार्यरूप में परिणित कर सकेंगे।

### फ़िल्मों में शास्त्रीय नृत्य

शास्त्रीय नृत्यों के बारे में जब मैं सोचता हूँ तो मुझे बड़ा दुःख होता है क्योंकि फ़िल्मों में उनका अस्तित्व क्षीण होता जा रहा है जो हमारी विरासत को अल्प अवधि में ही ग्रसता जा रहा है। फ़िल्म में प्रयुक्त शास्त्रीय नृत्य को मैं उस नृत्यविशेष का प्रतिनिधि न कहकर फ़िल्मी शास्त्रीय नृत्य कहना अधिक पसन्द करूँगा। उदाहरण के लिए दक्षिण में नर्तक को भरतनाट्यम् की वेशभूषा पहनाने का बहुत प्रचलन है। परन्तु नृत्य वास्तविक भरतनाट्यम् से कहीं अलग होता है। यही बात मणिपुरी नृत्य के साथ है, जिसे रोकना चाहिए और भारत के शास्त्रीय नृत्यों की छवि को विकृत होने से बचाना चाहिए।

निर्देशकों को चाहिए कि वे शास्त्रीय नृत्यों की प्रारम्भिक जानकारी से अवगत हों और केवल सुयोग्य नृत्यनिर्देशकों का चयन करें। इसी प्रकार फ़िल्म के निर्माता को कम से कम अपने देश की संस्कृति की रक्षार्थ अपने स्वार्थ और लालच का बलिदान कर देना चाहिए। कामुक नृत्यों की सस्ती प्रस्तुति का मोह त्यागकर उन्हें स्वयं में अपनी सांस्कृतिक विरासत पर गर्व करने की भावना उत्पन्न करनी होगी।

भारतीय फ़िल्मों में धार्मिक कथानक बहुत लोकप्रिय सिद्ध होते हैं क्योंकि हम उस राष्ट्र के हैं जो ईश्वर से डरता है। धर्म के नाम पर हम फ़िल्म के परदे पर देवी-देवताओं के कैसे भी क्रियाकलाप और नृत्य को बर्दाश्त कर लेते हैं जबकि मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि हम अपने समाज, देश और धर्म की व्याख्या, नृत्य के माध्यम से बड़े मशक्त रूप में कर सकते हैं जो साहित्य या अन्य किसी विधा द्वारा सम्भव नहीं। मेरी इच्छा रही है कि नृत्य के द्वारा प्रत्येक काल का सजीव चित्रण करके



उसकी प्रस्तुति करूँ। यह कहने में भी मुझे बिल्कुल हिचक नहीं कि किसी भी नृत्य-विधा या गीत को विशुद्ध भारतीय वाद्ययन्त्रों द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। इस कार्य में वाँयलिन, चेलो, हारमोनियम या प्यानो जैसे किसी भी विदेशी वाद्ययन्त्र की आवश्यकता नहीं और न उनसे भारतीय धुनों के साथ न्याय हो सकेगा। हमें संस्कृति के साथ धीरे-धीरे कदम मिलाकर चलना होगा, नए दृष्टि-कोणों को अपनाना होगा और एक नया नज़रिया रखना पड़ेगा। तभी हमारा राष्ट्र और समाज लाभान्वित हो सकेगा।

### आधुनिक भारतीय कॉरियोग्राफी

मैं कह चुका हूँ कि कोई भी कथा नृत्य के माध्यम से कही जा सकती है। फ़िल्मों में नृत्य की खामियों का संकेत भी मैं कर चुका हूँ। इस सबका एकमात्र कारण उचित प्रशिक्षण का अभाव है। अंत में क्षमा प्रार्थना के साथ मैं यही कहना चाहूँगा कि जब तक हम न्यायपूर्ण रवैया नहीं अपनाते तबतक ऐसे नृत्यों को फ़िल्मों से निकाल दिया जाय तो अच्छी बात होगी, क्योंकि इससे हमारी नृत्यकला बढनाम होती है। कलासाधकों तथा बुद्धिजीवी दर्शकों से भी मैं निवेदन करूँगा कि वे संगठित होकर इसके लिए प्रयासरत हों। हमें यह सिद्ध कर देना चाहिए कि भारत, फ़िल्म और नृत्यों के माध्यम से मानवता की सेवार्थ विशुद्ध और शिष्ट कला प्रदान कर सकता है।

आज फ़िल्मों के नृत्य अपनी भारतीय सभ्यता और संस्कृति को त्यागकर विदेशी अंधानुकरण करने में लगे हैं और इसका दोष जनता के माथे मढ़ते हैं लेकिन यह असत्य है। सच तो यह है कि हमारे निर्माता जानबूझकर धन के लोभ से जनता को परोस रहे हैं, मनुष्य की कामुकवृत्ति को उकसाकर अपनी भावी पीढ़ी को पतन के रास्ते की ओर धकेल रहे हैं। यदि समय रहते, इस पर अंकुश नहीं लगाया गया तो भारतीय संगीत के कलापक्ष का नाश हो जाएगा और एक भ्रष्ट उन्मुक्त समाज का निर्माण होगा।

□ □ □



## सरल एवं शास्त्रीय संगीत की तुलना

शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत प्राचीन काल में जाति, प्रबन्ध, रूपक आदि गाये जाते थे। इनके बाद ध्रुपद-गायन का प्रचलन हुआ, पर आज खयाल-गायन प्रचार में है। कुछ लोग इसे पक्का गाना यानि 'क्लासीकल म्यूज़िक' भी कहते हैं।

शास्त्रीय संगीत के सरलीकरण की दृष्टि से ठुमरी, टप्पा, दादरा, गज़ल, भजन-प्रभृति गायन शैलियों को वर्तमान में अर्द्धशास्त्रीय, उपशास्त्रीय संगीत की संज्ञा दी जाती है। ये चोजें राग-रागिनियों में निबद्ध होते हुए भी कुछ अंगों में सरल संगीत का आनन्द देती हैं। आजकल फ़िल्मी गीतों को भी लोग सरल संगीत कहने लगे हैं, लेकिन सरल संगीत की यह परिभाषा देने से विषय की पूर्ति नहीं होती। वास्तव में सरल संगीत उसे कहना चाहिए, जिसे सुनकर संगीत-कला से अनभिज्ञ श्रोता भी आनन्दमग्न हो जाये। सरल संगीत की परिधि में ऐसी प्रत्येक धुन चाहे वह कण्ठ के द्वारा निःसृत हुई हो अथवा किसी साज़ से उद्भूत हुई हो, आती है जिसे सुनकर अनजान व्यक्ति भी आनन्दित हो उठे।

शास्त्रीय संगीत से केवल वे लोग ही आनन्द ले सकते हैं, जिन्होंने आंशिक ही सही—संगीत की शिक्षा प्राप्त की हो। बसन्त-बहार, बहादुरी तोड़ी और हमीर-जैसे रागों की गहराई का आनन्द वही व्यक्ति ले सकता है, जिसने संगीत की तालीम हासिल की हो। इसी प्रकार तबला, सितार, वायलिन, सरोद, वीणा आदि के वादन का आनन्द वे ही प्राप्त कर सकते हैं, जिन्हें स्वर की बारीकियों, उतार-चढ़ाव, मीड़-मुर्की, ज़मज़मा, क़तन, सूत, घसीट आदि का ज्ञान हो। इसके विपरीत कहरवा की लगी-लड़ी एवं गायन या वादन द्वारा प्रस्तुत कोई भी सरल धुन सुनकर साधारण श्रोता भी संगीत का आनन्द ले सकते हैं।

शास्त्रीय एवं सरल संगीत, दोनों विधायें अपनी-अपनी जगह पर प्रभावशाली हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि शास्त्रीय संगीत अधिकांशतः उन्हीं लोगों को प्रभावित करने में सक्षम है, जिन्हें संगीत के व्याकरण—सुर-ताल, लय आदि का भली-भाँति ज्ञान होता है; परन्तु सुगम संगीत यदि किसी मधुर सुरावली में प्रस्तुत किया जा रहा है, चाहे वे स्वर किसी कंठ से अथवा वाद्य से निकले हों, तो वह सभी प्रकार के श्रोताओं को आनन्द प्रदान करने में सक्षम होता है। यदि शास्त्रीय संगीत मस्तिष्क है, तो सरल संगीत एक हृदय। दोनों अपने-अपने श्रोताओं को रिझाने में समर्थ होते हैं।

□ □ □



## संगीत का मनोविज्ञान

मस्तिष्क से सम्बन्धित प्राकृतिक ज्ञान और उसकी क्रिया-प्रणाली तथा अनुभूति, मनोविज्ञान के अन्तर्गत आती है। संगीत से सम्बन्ध होने पर उसे संगीत का मनोविज्ञान कहा जाता है। मनोविज्ञान का कार्य शारीरिक उत्तेजना और चेतना के प्रवाह के सम्बन्ध को स्थापित करना है। कोई भी नाद हमारी कर्णन्द्रिय को किस प्रकार प्रभावित करता है, यह सब संगीत के मनोविज्ञान की श्रेणी में आता है।

कोई भी ध्वनि एक विशिष्ट आंदोलन-संख्या की होने पर कर्णप्रिय लगती है और आंदोलन-संख्या के घट-बढ़ जाने पर कर्णकटु भी हो जाती है। पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि भिन्न-भिन्न ध्वनियाँ जब कानों में पहुँचती हैं तो उन्हें समझने के लिए समय के अलग-अलग अंतरालों की जरूरत होती है। सीशोर (Seashore) के मतानुसार १२८ आंदोलन-संख्यावाली ध्वनि को .०८ सैकिड, २५६ आंदोलन-संख्या वाली ध्वनि को .०७ सैकिड, ३८४ आंदोलन-संख्यावाली ध्वनि को, .०४ सैकिड और ५१२ आंदोलन-संख्यावाली ध्वनि को भी लगभग इतना ही समय आवश्यक है।

ध्वनि में जब ऊँचा-नीचापन होता है तो उसे स्वरों की आंदोलन-संख्या या संवाद-सम्बन्ध के आधार पर परखा जाता है। संवाद-सम्बन्ध में जो नाद कानों को प्रिय लगते हैं, उनके आधार पर संगीत की रचनाएँ की जाती हैं। अप्रिय स्वर भारतीय संगीत में अनिष्टता के सूचक समझे जाते हैं, यही कारण है कि किसी मोटर के हॉर्न को सुनकर हम सड़क से हट जाते हैं, जबकि सुरीला हॉर्न उतना भय पैदा नहीं करता। कोयल की कूक और शेर की दहाड़ से भी यह उदाहरण दिया जा सकता है।

नाद का छोटा-बड़ापन तीव्रता पर आधारित होता है। इसका प्रभाव मस्तिष्क और हृदय पर जब पड़ता है तो पहले रक्त-क्रिया प्रभावित होती है और उसके बाद



मानसिक अनुभूति के रूप में उसका रूपांतर होता है। नाद की तीव्रता नापने के लिए डैसिमल पद्धति को अपनाते हैं। इसे फ़ॉन (Phan) नाम से भी जाना जाता है, जिसके आधार पर साधारण बातचीत की ध्वनि का क्षेत्र ६० से ७० फ़ॉन के मध्य में रहता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि एक बाँसुरी से उत्पन्न नाद का ध्वनि-स्तर ४० फ़ॉन है तो दो बाँसुरियों के सम्मिलित नाद का स्तर ८० फ़ॉन न होकर केवल ४३ फ़ॉन के लगभग ही होगा और १० बाँसुरियों का नाद-स्तर ५० फ़ॉन के लगभग होगा; क्योंकि नाद की तीव्रता में अंतर आता है, न कि उसके ऊँचे-नीचेपन में।

नाद की जाति (Timbre) के आधार पर नाद के पृथक् अस्तित्व का अनुभव होता है, भले ही नाद का ऊँचा-नीचापन या छोटा-बड़ापन कितना भी हो। किसी भी सम्मिलित वादन में सितार, सरोद या शहनाई को नाद की जाति के कारण आसानी से पहचाना जा सकता है।

नाद का काल (Duration), नाद की विपुलता (Volume), नाद की स्पष्टता या उज्ज्वलता (Tonal Quality), नाद की दिशा, नाद का प्रकार, नाद की गति व कम्पन (Vibration) और तारता (Pitch) इत्यादि सभी का प्रभाव प्राणी मात्र पर पड़ता है। मनुष्य का चिन्तन, कल्पना और उसकी प्रेरणा संगीत के इन्हीं वैज्ञानिक तत्त्वों से प्रभावित होती रहती है।

मनुष्य के द्वारा संगीत की सृष्टि दो प्रकार से होती है—एक प्रेरणा के आधार पर और दूसरी, उसके संचित ज्ञान के आधार पर। प्रेरणा के आधार पर प्रस्तुत संगीत, श्रोता को जल्दी आकर्षित करता है और संचित ज्ञान के आधार पर प्रस्तुत संगीत 'मिकेनिकल' होने से मधुर तो लग सकता है, परन्तु अंतस्तल को झकझोर नहीं सकता। यही कारण है कि जब हम किसी लोक-गीत की धुन को सुनते हैं तो उसके सीधे-सादे से चंद स्वरों की धुन हमें छू जाती है, हम उसे अनेक बार सुनते रहें तब भी तृप्त नहीं होते, बल्कि रात-रातभर जागकर उसका आनन्द लेते हैं, जबकि नियमों की परिधि में जकड़ी शास्त्रीय संगीत की बंदिशें सुनकर वाह-वाह तो कर देते हैं, परन्तु उसकी एक ही स्थायी को रातभर नहीं सुन सकते, चन्द मिनटों में ही जमुहाई लेने लगते हैं।

संवेग (Emotion), संवेदन (Sensation) और सिद्धांत (Technic) का ज्ञान रखने वाला कलाकार सदैव सफल रहता है, क्योंकि उसका संगीत श्रोता को तन्मय करने की क्षमता रखता है। 'रंजको जन चित्तानाम् स रागः कथितो बुधैः' अर्थात् विद्वानों ने उसी को राग कहा है, जो प्राणी के चित्त का रंजन करे। संगीत से रंजन होने पर ही चित्त शांत होता है। इसी को योगशास्त्र में समाधि सुख कहा गया है—'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः तदाद्रष्टुः स्वरूपेवस्थानम्', अर्थात् चित्त की वृत्तियों का जब निरोध हो जाता है, तब द्रष्टा (अनुभव करने वाला अहम्) अपने स्वरूप में लीन (एकाकार) हो जाता है।



संगीत के मनोविज्ञान पर विचार करते समय संगीत या संगीतकार पर ही विचार करना पर्याप्त नहीं, बल्कि संगीत का रस ग्रहण करने वाला श्रोता हमारा प्रधान पात्र (Object) है। जिस प्रकार एक कलाकार में भाव-पक्ष और कला-पक्ष का सम्मिश्रण होता है, उसी प्रकार एक श्रोता की मनःस्थिति (Mood), उसकी शिक्षा, पात्रता, अनुभव, भावुकता, प्रतिभा, कलाजन्य आनन्द को ग्रहण करने की क्षमता, मर्मज्ञता और उसकी सामाजिक स्थिति पर ही यह निर्भर करता है कि वह कला का आस्वादन करने में कितना समर्थ है। जबतक संगीत के द्वारा श्रोता के हृदय में सोए भाव जाग्रत न हों तबतक उसके ऊपर संगीत का कोई प्रभाव न होगा, अतः यह जरूरी है कि श्रोता सहृदय हो। समस्त रस-साहित्य में कलाजन्य आनन्द का अनुभव करने के लिए श्रोता का सहृदय होना आवश्यक बताया गया है। ऐसा होने पर ही श्रोता और संगीतकार नादब्रह्म में अवगाहन कर सकते हैं।

संगीत के मनोविज्ञान का लक्ष्य निराकार स्वर के साकार होने की प्रक्रिया और हृदय पर उसकी प्रतिक्रिया के परिणाम पर विचार करना है।

□ □ □



# वृन्दगान, वाद्यवृन्द गीत-नाट्य और नृत्य-नाट्य

## वृन्दगान (कोरस)

भारत में प्राचीन काल से वृन्दगान या समूह गान की प्रथा रही है, जिसे अंग्रेजी में 'कोरस' और 'क्वायर' कहा कहा जाता है। ब्राह्मणों द्वारा मन्त्रों का सामूहिक उच्चारण, देवालय में सामूहिक प्रार्थना, कीर्तन-भजन अथवा लोक में विभिन्न अवसरों पर गाए जानेवाले लोक-गीत इत्यादि समूह-गान या समवेत गान के अन्तर्गत आते हैं। सभी वृन्दगानों का विषय प्रायः राष्ट्रीय, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक होता है। पारस्परिक एकता, राष्ट्र के प्रति प्रेम और समाज की गौरवशाली परम्पराओं का उद्घोष वृन्दगान के द्वारा ही सिद्ध होता है।



गायक और वादकों के द्वारा सामूहिक रूप से जो संगीत प्रस्तुत किया जाता है, उसे 'वृन्दगान' कहते हैं। भरत के 'नाट्यशास्त्र' में तीन प्रकार के 'वृन्द' बताए गए हैं :—

**उत्तमवृन्द** : इसमें चार मुख्य गायक, आठ सहगायक (सम गायक या कोरस गानेवाले), बारह गायिकाएँ, चार वंशीवादक और मृदंगवादक होते हैं।

**मध्यमवृन्द** : इसमें दो मुख्यगायक, चार सहगायक, छह गायिकाएँ, दो वंशीवादक और दो मृदंगवादक होते हैं।

**कनिष्ठवृन्द** : इसमें एक मुख्य गायक, दो सहगायक, तीन गायिकाएँ, एक वंशीवादक और एक मृदंगवादक होता है।



गायिकाओं के उत्तमवृन्द में दो मुख्य गायिकाएँ, दस सहगायिकाएँ, दो वंशीवादक और दो मृदंगवादक होते हैं। इनके मध्यमवृन्द में एक मुख्य गायिका, चार सहगायिकाएँ, एक वंशीवादक और एक मृदंगवादक बताया गया है। यदि सहगायिकाओं अथवा वादकों की संख्या और कम हो तो उसे गायिकाओं का 'कनिष्ठवृन्द' कहते हैं।

यदि 'वृन्द' में उत्तमवृन्द की अपेक्षा भी कलाकारों की संख्या अधिक हो तो उस 'वृन्द' को 'कोलाहल' कहा जाता है।

प्रत्येक 'वृन्द' में गान की एकरूपता आवश्यक होती है और सभी कलाकार एक-दूसरे को वृन्दगान की प्रकृति और रचना के अनुसार सहारा देते हुए भव्य संगीत की सृष्टि करते हैं। वृन्दगान की स्वर-रचना और कलाकारों का चयन उत्सव की प्रकृति तथा अवसर की उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए किया जाता है, जिससे उत्सव खिल उठे।

वृन्दगान-रचना के मुख्य तत्त्व इस प्रकार निर्धारित किए जा सकते हैं :—

### साहित्यिक तत्त्व

संगीत में साहित्य के समावेश से उसकी शक्ति बढ़ जाती है और फिर उसका प्रभाव भी दीर्घकाल तक बना रहता है। वृन्दगान-रचना का सम्बन्ध जिस रस से होता है, उसी का ध्यान रखते हुए उससे सम्बन्धित काव्य के शब्दों का चयन करना पड़ता है। इन शब्दों के आधार पर ही अनुकूल रस-भाव इत्यादि का संकेत मिलता है जिससे उसकी सांगीतिक बंदिश बनाने में मदद मिलती है। सरस, सरल, अर्थ एवं भावपूर्ण शब्द ही वृन्दगान रचना के साहित्यिक तत्त्व कहलाते हैं। स्वर और लय की दृष्टि से अनुपयोगी, बोलने में असुविधा जनक एवं निरर्थक या क्लिष्ट शब्द सदैव हानि पहुँचाने वाले होते हैं। 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' जैसी वृन्दगान रचनाओं की लोकप्रियता का कारण उनकी सरल सुबोध शब्दावली ही है।

### सांगीतिक तत्त्व

किसी भी गीत या काव्य के शब्दों को अधिक प्रभावशाली बनाने में संगीत की अहम भूमिका होती है। संगीत स्वर, लय और ताल पर आधारित होता है, इसलिए वृन्दगान रचना में माधुर्य और तेजस्विता का गुण होना जरूरी है। भिन्न-भिन्न राग, ताल एवं वाद्यों के प्रयोग से रचना को आकर्षक बनाया जा सकता है। जितनी सरलता किसी लोकगीत में होती है, उसी स्तर की रचना वृन्दगान के लिए तैयार की जाती है। आलापचारी, खाली स्थलों के भराव के लिए लोक जीवन में प्रयुक्त होने वाले प्रान्तीय शब्द या स्वर, 'मैलौडी' एवं 'हारमनी' के उचित प्रयोग, गूँज के लिए समवेत् रूप से शब्दालाप या स्वरालाप, यह सब वृन्दगान को बहुत प्रभावशाली बना देते हैं।



यदि वृन्द (समूह) बड़ा हो तो अलग-अलग पंक्तियों द्वारा पाश्चात्य संगीत-जैसे हारमनी प्रयोग को आसानी से किया जा सकता है, जिनमें 'की नोट' को बदल कर, स्वर-संवाद के आधार पर नए-नए 'कार्ड्स' बनाकर वृन्दगान के संगीत को सजाया जाता है। इससे रचना में भराव, रंजकता, विचित्रता एवं मार्मिकता उत्पन्न होती है। इसी प्रकार छोटी-छोटी सरल तालों का यथास्थान प्रयोग करने से रचना विभिन्न लयकारियों से युक्त होकर श्रोताओं की बड़ी भीड़ को आकर्षित करने में सफल सिद्ध होती है। तबला, ढोलक, नाल, मृदंग, झाँझ, गिटार, सरोद, सितार, संतूर, शहनाई, बाँसुरी एवं ड्रम का उपयोग आधुनिक भारतीय 'वाद्यवृन्द' में बहुतायत से किया जाता है। स्थायी गाने के बाद अन्तरा शुरू करने से पहले अथवा दो पंक्तियों के बीच किसी भी बड़े रिक्त स्थान को भरने के लिए विभिन्न वाद्य-यन्त्र बहुत सहायता करते हैं।

### श्रेणी विभाजन (ग्रुपिंग)

किसी भी वृन्दगान की उत्तमता उसके गायकों के श्रेणी-विभाजन पर सबसे ज्यादा निर्भर करती है। इसलिए प्रमुख गायकों और सह गायकों का चुनाव करके उनकी यथोचित नियुक्ति करनी चाहिए, ताकि नीची (मन्द्र सप्तकीय) आवाज़ वाले, ऊँची (तार सप्तकीय) आवाज़ वाले, एकसी आवाज़ वाले, बुलन्द (भारी) आवाज़ वाले तथा कमज़ोर आवाज़ वाले एवं अधिक सुरीले गायकों का ठीक-ठीक उपयोग हो सके। इस वर्गीकरण के आधार पर ही 'वृन्दगान' का प्रभाव निर्भर करता है और श्रोताओं के मन में अनुकूल भाव तथा रस का संचार होता है।

### संचालन (निर्देशन)

वृन्दगान-रचना के संचालक में जिन गुणों का होना आवश्यक है, वे इस प्रकार हैं:—

शब्द-ज्ञान, भाषा-ज्ञान, स्वर-ज्ञान, राग-ज्ञान, नाट्य-ज्ञान, ताल-ज्ञान एवं समूह के प्रत्येक सदस्य की सामर्थ्य के अनुसार उसका सही नियोजन करना। प्रत्येक कलाकार की दृष्टि संचालक के संकेतों पर लगी रहती है अतः संचालक का भी कर्तव्य हो जाता है कि वह प्रत्येक गायक और वादक को यथासमय उचित निर्देश देकर 'वृन्दगान' को अधिक-से-अधिक प्रभावोत्पादक बनाए।

'वृन्द-गान' के विकास में वर्तमानकालीन जिन कलाकारों का उल्लेखनीय योगदान रहा है, उनके नाम हैं—विक्टर प्रान्जोति, एम० बी० श्रीनिवासन, विनयचंद्र मौद्गल्य, सतीश भाटिया, वसंत देसाई, जितेन्द्र अभिषेकी और पं० शिवप्रसाद।

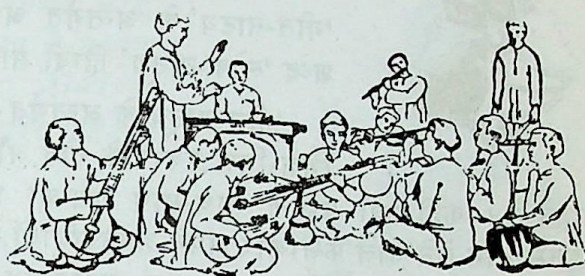
### वाद्यवृन्द (ऑर्केस्ट्रा)

'वाद्यवृन्द' को ही 'वृन्दवादन' और अंग्रेजी में 'ऑर्केस्ट्रा' कहते हैं। दक्षिण में इसे 'वाद्य-कचहरी' कहा जाता है। ईश्वर आराधना के समय मन्दिरों में ढोल,



शंख, घंटा, घंटी, डमरू, थाली, मँजीरा, झाँझ, कांस्यघंटिका, वीणा, मृदंग, मुरज, नगाड़ा, शहनाई, घड़ियाल आदि अनेक वाद्यों को लय में बजाने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। इसे देवालय-संगीत कहा जा सकता है। बाद में नाट्य और नृत्य-नाटिकाओं द्वारा वाद्यवृन्द को पूर्ण प्रश्रय मिला।

‘नाट्यशास्त्र’ के आतोद्य प्रकरण में भरत ने वृन्द विशेष को ‘कुतप’ की संज्ञा दी है और कहा है कि किसी उत्सव, शोभायात्रा, मंगल अवसर और युद्ध के समय सभी वाद्यों का समवेत या एकाकी वादन किया जाता है। वाद्यवृन्द के निर्देशक को ‘कुशीलव’ कहा जाता है, जिसे अनेक वाद्यों के वादन तथा वादन प्रयोग का ज्ञान होता है।



पाणिनी-काल में वाद्यवृन्द के लिए ‘तूर्य’ शब्द का प्रयोग किया जाता था और उसमें भाग लेनेवाले वादक ‘तूर्याङ्ग’ कहलाते थे। विभिन्न अवसरों और विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति के लिए अलग-अलग वाद्यों का प्रयोग किया जाता था, जिन्हें भरत ने ‘ततकुतप’, ‘अवनद्धकुतप’ और ‘नाट्याश्रयकुतप’ इन तीन भागों में वर्गीकृत किया है। वाद्यवृन्द को मुगलकाल में ‘नौबत’ और बाद में ‘वाद्यभांड’ कहा जाने लगा।

वाद्यवृन्द में शास्त्रीय, अर्द्धशास्त्रीय तथा लोकधुनों पर आधारित रचनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं और कथात्मक भावनाप्रधान रचनाएँ भी समय एवं आवश्यकता के अनुसार प्रयोग में लाई जाती हैं। आधुनिक वाद्यवृन्द की शुरुआत १८-वीं सदी के अन्त से मानी जाती है। विदेशों में ऑर्केस्ट्रा शब्द का प्रयोग १७-वीं शताब्दी से शुरू हुआ जिसका विकास होने पर उसके बृहद स्वरूप को सिम्फनी (Symphony) नाम दिया गया। इसमें सैकड़ों वादक मिलकर रचना को प्रस्तुत करते हैं जिसके द्वारा भिन्न-भिन्न भावों की सृष्टि की जाती है। सिम्फनी के प्रस्तुतीकरण में ऐसा लगता है, मानो वाद्यों के द्वारा कोई गाथा प्रस्तुत की जा रही है।

वर्तमानकाल में वाद्यवृन्द के विकास में उस्ताद अलाउद्दीन खाँ (‘स्ट्रिंग’ नामक प्रथम भारतीय ‘मैहर-बैंड’ के संस्थापक), विष्णुदास शिराली, पं० रविशंकर, लालमणि मिश्र, जुबीन मेहता, तिमिरबरन, अनिल बिस्वास, पन्नालाल घोष, टी० के० जैराम अय्यर, ऐमनी शंकर शास्त्री, विजयराघव राव और आनन्दशंकर ने बहुत योगदान दिया है। वाद्यवृन्द या ऑर्केस्ट्रा वाद्यों की ऐसी भाषा है जो एकता और सामाजिक भावना का सन्देश देती है।





भारतीय समाज में 'गीत-नाट्य' या 'संगीतिका' सामाजिक उत्सवों का प्राण है, जो अति प्राचीन काल से चली आ रही है। रामलीला, रासलीला, नौटंकी, माच, जात्रा और तमाशा इत्यादि अनेक विधाएँ जो लोक में प्रचलित हैं, वे सभी 'गीत-नाट्य' के अन्तर्गत आती हैं। इन सभी के लिए एक शब्द 'लोक-नाट्य' हिन्दी साहित्य में पुकारा जाता है।

'गीत-नाट्य' के अन्तर्गत छंदोबद्ध काव्य तो रहता ही है, भिन्न-भिन्न प्रकार के गीत और नृत्य भी उसमें सम्मिलित रहते हैं। कहीं-कहीं पद्य के साथ-साथ गद्य का प्रयोग भी कर लिया जाता है। इनमें भाग लेने वाले कलाकार अपने-अपने संवादों से सम्बन्धित गीत गाकर अपना अभिनय प्रकट करते हैं। सरल एवं परम्परागत होने के कारण श्रोताओं और दर्शकों का इससे भरपूर मनोरंजन होता है।

गीत-नाट्य के अनेक प्रकार हो सकते हैं; जैसे, केवल ऋतुओं का चित्रण करना हो, तो कालिदास के 'ऋतु-संहार' को लेकर अलग-अलग रागों में भिन्न-भिन्न ऋतुओं के अनुरूप स्वरों को प्रकट करते हुए अनुकूल वाद्ययंत्र और शास्त्रीय अथवा सरल लोक-नृत्यों के द्वारा उसका प्रदर्शन किया जाएगा। इसी प्रकार होली, दीपावली, नववर्ष, क्रिसमस, दशहरा, पोंगल, लोड़ी, स्वतन्त्रता-दिवस इत्यादि से सम्बन्धित उल्लासपूर्ण भावना की अभिव्यक्ति के लिए गीत-नाट्य को चुना जा सकता है। आवश्यकता के अनुसार गायक, गायिकाएँ और नर्तकों की योजना कर ली जाती है। जब लोकनाट्य गीत-प्रधान होता है तो उसे 'गीतनाट्य' कहते हैं और जब वह नृत्य-प्रधान होता है तो उसी को 'नृत्य-नाट्य' या 'नृत्य-नाटिका' कहते हैं। 'गीत-नाट्य' में जो काम कंठ और शब्द मिलकर करते हैं, वही काम 'नृत्य-नाट्य' में नर्तक की मुद्राओं तथा उसके हाव-भाव द्वारा प्रकट किया जाता है।

गीत नाट्यों के आधुनिक रूप का जन्म इस शताब्दी में ही हुआ है। इसके पूर्व यूरोपीय देशों के सामन्ती समाज में इसकी धूम रही। 'गीतनाट्य' के अंग हैं— १. प्रस्तावना, २. कथा, ३. संवाद-अभिनय, ४. गीत और ५. नर्तन। सम्पूर्ण कथा गीतों के माध्यम से प्रस्तुत की जाती है, जिसकी दो शैलियाँ हैं—प्रथम, मूक अभिनयात्मक और दूसरी, संवादात्मक। प्रथम में एक दल विशेष वाद्ययंत्रों की सहायता से भावपूर्ण एवं संवादात्मक गीत गाता है और दूसरा दल उन गीतों के अनुरूप भूमिका में गीत के भावानुसार अभिनय करता है। भारत में इस प्रकार के गीतनाट्यों का प्रचार महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने शान्तिनिकेतन में किया था। उनका 'चाण्डालिका' नामक 'गीतनाट्य' रंग-मंच पर बहुत सफलता प्राप्त कर चुका है। दूसरी शैली के 'गीतनाट्य' वे हैं, जिनमें केवल पद्य-संवाद मात्र रहते हैं। संवाद के अतिरिक्त कथा भाग को गीत द्वारा या नृत्य द्वारा प्रस्तुत करना पड़ता है।



## नृत्य-नाट्य (बैले)

किसी कथा को आंशिक या सम्पूर्ण रूप में जब नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है तो उसी को 'नृत्य-नाट्य', 'नाट्य-नृत्य', 'नृत्य-नाटिका' या अंग्रेजी में 'बैले' (Ballet) कहते हैं। प्राचीन काल के अधिकांश नाटक इसी स्वरूप में प्रस्तुत किए जाते थे जिनकी परम्परा में—रास-लीला, कथकलि, कुचिपुड़ी और यक्षगान आज भी प्रचलित हैं।



प्राचीन ग्रन्थकार विप्रदास के मत से 'नृत्य-नाट्य' की परिभाषा इस प्रकार है—“जब नृत्य में भावों को विसर्जित कर रस ही प्रधान रूप से प्रकाशित होता है तो उसे 'नाट्य-नृत्य' कहते हैं।” ‘संगीत-रत्नाकर’ ग्रन्थ में शाङ्गदेव ने कहा है कि नृत्य के अंगहार, चारी और मंडलों का प्रयोग मैंने बताया। अब इनके आधार पर 'नृत्य-नाट्य' की रचना करके उनका प्रयोग करना चाहिए, जैसे कि 'गंगावतरण'।

पाश्चात्य देशों में 'बैले' की शुरुआत १५-वीं शताब्दी से हुई। बैले और भारतीय 'नृत्य-नाट्य' में एक मूलभूत अन्तर है। बैले में रस निष्पत्ति का आधार वाद्य संगीत और नृत्य की लयात्मक गति होती है, जबकि भारतीय नृत्य-नाट्य का आधार कलाकार की भाव-भंगिमाएँ होती हैं। इसके अतिरिक्त नृत्य-नाट्य में क्वचित् संवाद एवं गीत-संगीत का प्रयोग भी किया जाता है।

सर्वप्रथम उदयशंकर ने 'नृत्य-नाट्य' की महत्ता को समझकर देश-विदेशों में उसके भारतीय स्वरूप का प्रचार किया। तत्पश्चात् मेनका, अमला शंकर, रामगोपाल, गोपीनाथ, शान्ति वर्द्धन, गुलबर्द्धन, सचिनशंकर, मृणालिनी साराभाई, मायाराव, कुमुदनी लखिया, गोपीकृष्ण, सितारा, वैजयन्तीमाला, योगेन्द्र देसाई, आशा पारीख, हेमामालिनी, आनन्दशंकर तथा बिरजू महाराज ने उसका कालोचित परिवर्द्धन और प्रस्तुतीकरण किया। आज अनेक सांस्कृतिक संस्थाएँ नृत्य-नाट्य का सशक्त प्रदर्शन कर रही हैं।

'बृन्दगान', 'वाद्यवृन्द', 'गीत-नाट्य' और नृत्य-नाट्य की विधाओं में कलाकारों का एक बड़ा समूह कार्यरत रहता है। मंच के अतिरिक्त फ़िल्म, रेडियो तथा वीडियो के माध्यम से इन सब कलाओं का आनन्द जनसाधारण के लिए आज सुलभ है, यह विज्ञान की कृपा है।

□ □ □



## गाथागान, नृत्यगीत और गीतकाव्य

### गाथागान

‘कथा’ या ‘गाथा’ लोक-साहित्य का ऐसा प्रकार है जिसमें गेयता के साथ कथानक की प्रधानता रहती है। क्रीटिज ने ‘गाथा’ की परिभाषा बताते हुए लिखा है कि ‘गाथा’ वह लोक-गीत है, जिसमें किसी कथा का वर्णन हो अथवा यह वह ‘कथा’ है जो गीतों में कही गई हो। वैसे ‘गाथा’ शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ‘ऋग्वेद’ में पाया जाता है। उस समय यज्ञ के अवसर पर ‘गाथा’ गाने की प्रथा थी। ‘गाथा’ गाने वाले को ‘गाथिन’ कहा जाता था (‘ऋग्वेद’ ३.६.१ तथा ७.१.१)। जातकों में श्लोकबद्ध रचना को ‘गाथा’ नाम दिया गया। प्राकृत भाषा में लिखी गई वर्तमान समय की गाथा-सप्तशती एक सुप्रसिद्ध रचना है जिससे सभी परिचित हैं। अंग्रेजी ‘बैलेड’ के लिए लोक-साहित्य में अब ‘गाथा’ शब्द का प्रयोग होने लगा है।

लोक गाथा और लोक-गीत में स्वरूपगत और विषयगत भेद उपलब्ध होता है जिनमें प्रेम कथात्मक, वीर कथात्मक एवं रहस्य-रोमांच कथात्मक इत्यादि भेद प्रसिद्ध हैं। लोक गाथाओं के संगीत की बार-बार आवृत्ति की जाती है ताकि उनका रस क्षीण न हो। लोक गाथा का प्रवाह एक पहाड़ी नदी की तरह गतिशील होता है। उत्तर-प्रदेश के ‘आल्हा’ का प्रवाह किसी से छिपा नहीं। ‘गाथागान’ पद्यात्मक तो होता है परन्तु उसमें साहित्य के अलंकार या उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव रहता है। कथानक के भाव के अनुसार ‘गाथा’ का संगीत एक व्यक्ति गाता है और अन्य व्यक्ति या समाज उसका अनुसरण करता है। प्रत्येक पंक्ति ‘गाथा’ के दृश्य सहित मानस पटल पर ऐसे अंकित होती जाती है जैसे कि आदमी पूरी स्थिति को स्वयं देख रहा है। गाथा-गान को ग्राम-गीत, नृत्य-गीत, आख्यान-गीत या वीरकाव्य नामों से भी पुकारा जाता है। ‘बैलेड’ उस काव्य रूप का नाम है जिसमें सीधे छंदों में कोई सीधी व सरल ‘कथा’ कही गई हो। अंग्रेज विद्वान् डब्ल्यू० पी० केरके के मतानुसार, ‘बैलेड’ वह कथात्मक गेय काव्य है जो या तो लोककण्ठ में ही उत्पन्न और विकसित होता है



मथवा लोकगाथा के सामान्य रूप विधान को लेकर किसी विशेष कवि द्वारा रचा जाता है, जिसमें गीतात्मकता (लिरिकल क्वालिटी) और कथात्मकता दोनों होती हैं और जिसका प्रचार जनसाधारण में मौखिक रूप द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है। संगीत के क्षेत्र में जब 'बैलेड' शब्द का प्रयोग होता है तो उसे एकाकी वाद्य सहित या संवेग रूप में नृत्य के साथ गाई जाने वाली विधा के रूप में जानना चाहिए। पाश्चात्य देशों में 'बैलेड' शब्द का प्रयोग विविध अर्थों में होता है क्योंकि वहाँ पियानो और वाद्यवृन्द पर गाने के लिए ही 'बैलेड' लिखे जाते हैं।

संक्षेप में 'गाथा-गान' को लोक-गीतों का ऐसा प्रकार कह सकते हैं जो परम्परागत रूप से समाज को इतिहास का ज्ञान कराने के लिए मानव कण्ठ में सुरक्षित रखा जाता रहा है।

### नृत्य गीत

अलग होते हुए भी यह नृत्य-संगीत का ही एक हिस्सा है। गायन की तरह नृत्य का भी काव्य से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। 'गाथा-गान' में 'गाथा' की प्रधानता रहती है एवं संगीत गौण होता है। इसी प्रकार नृत्य गीत में नृत्य की प्रधानता रहती है और काव्य या गीत गौण होता है। वास्तव में सामूहिक नृत्य-गीत से ही नृत्य, संगीत और छन्द का विकास हुआ है। धीरे-धीरे जब चेतना का विकास हुआ तो सार्थक शब्दों का प्रयोग बढ़ गया। इस प्रकार एक गीत में किसी एक भावना, प्रार्थना, घटना या कथा का वर्णन किया जाने लगा। बाद में यह भावना परक गीत ही गीति (लिरिक), प्रार्थनापरक गीत (स्तोत्र-हिम्न) और घटना या कथा सम्बन्धी आख्यान गीत या लोक गाथा (बैलेड) के रूप में विकसित हुए। लेकिन विकास की पूर्ण अवस्था में ये काव्य रूप सामूहिक नृत्य गीत से पूर्णतः स्वतन्त्र हो गए, हालांकि नृत्य या गान से उनका सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप में बना रहा और आज भी बना हुआ है।

अंग्रेजी के 'बैलेड' नामक काव्य रूप और 'बैलेड' शब्द का विकास 'बेलारे' (समवेत नृत्य गीत) से हुआ है। यूरोप के कुछ देशों में नृत्य गीत को 'कैरोल' और 'बेलारे' कहा जाता था। उसी से 'बैले' (एक नृत्य प्रकार) शब्द प्रचार में आया। 'लोकगाथा' या 'बैलेड' से 'नृत्य-गीत' सर्वथा भिन्न है, जिसे इनका आदि रूप कहा जा सकता है। भारत के अनेक प्रदेशों में 'नृत्य गीतों' का प्रचार है। जैसे—जौनपुर में चौरसिया नृत्य, मिर्जापुर में करमा नृत्य इत्यादि।

### गीति काव्य

गेयकाव्य को ही गीत 'गीतिकाव्य' कहते हैं जिसका विकास आधुनिक काल में सबसे अधिक हुआ है। इसमें गीत की प्रधानता रहती है और संगीत गौण रहता है। पश्चिम में इसे 'लिरिक' कहा गया है। 'गीतिकाव्य' में संगीत और काव्य का संतुलन



रखना पड़ता है ताकि दोनों एक-दूसरे से ढक न जाएँ। भावुकता मुक्त विचारधारा अथवा निष्कर्षोपलब्धि के भार से मुक्त भाव-धारा गीतिकाव्य के प्रकृत विषय हैं। एक प्रकार से कवि की व्यक्तिगत भाव-धारा और अनुभूति को उनके अनुरूप लयात्मक अभिव्यक्ति देने के विधान को 'गीतिकाव्य' कहते हैं। 'गीतिकाव्य' का सबसे पहला लक्षण उसकी संगीतात्मकता है। कवि की अभिव्यक्ति जब गेयरूप धारण कर लेती है तभी 'गीतिकाव्य' का जन्म हो जाता है, जिसमें गीतकार की दृष्टि अत्यन्त वैयक्तिक, सीमित और आत्मनिष्ठ होती है। अन्तर्निहित संगीतात्मकता और तीव्र आन्तरिक अनुभूति, ये दो ही 'गीतिकाव्य' के तात्त्विक लक्षण हैं, जिन्हें उसकी आत्मा कह सकते हैं। एक प्रकार से इसे 'ध्वनि काव्य' भी कह सकते हैं, जो सामूहिक न होकर वैयक्तिक कला के रूप में ही प्रसिद्ध हुई है। संस्कृत में 'गीतगोविन्द' जैसे 'गीति काव्य' (प्रबन्ध-गान) और विद्यापति की हिन्दी पदावली में 'गीतिकाव्य' की स्वतन्त्र परम्परा का प्रवर्तन हुआ है जिनमें शब्द और स्वर अपने-अपने क्षेत्रों में एक व्यापक प्रभाव लिए हुए हैं। वैष्णव भक्त कवियों के कृष्ण काव्य और राम काव्य में 'गीतिकाव्य' का सबसे उत्कृष्ट नैसर्गिक रूप प्राप्त होता है। आधुनिक काल में कवि निराला, दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि ने गीति या 'गीतिकाव्य' की दिशा में महत्वपूर्ण साहित्य रचा, जिसमें भाषा, भाव और संगीत तीनों के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

□ □ □



## भारतीय नृत्य-कला

प्राणी-मात्र के हृदय में सोए भाव जब जाग्रत होते हैं तो वे वाणी या चेष्टाओं (क्रियाओं) के द्वारा अभिव्यक्ति पाते हैं और जिस माध्यम से वे अभिव्यक्ति होते हैं, उस माध्यम को ही कला की संज्ञा दी गई है।

गाना, बजाना और नाचना प्रफुल्लित मन की स्वाभाविक क्रियाएँ हैं जो पशु-पक्षी, कीट-पतंग, देव-दानव और मनुष्य सभी में पाई जाती हैं। इन स्वाभाविक क्रियाओं को जब कोई व्यवस्था दी जाती है तो उसे कला कहते हैं। प्रकृति भी इस व्यवस्था का पालन करती है, जैसे खिले हुए पुष्पों का एक निश्चित आकार, निश्चित रंग और निश्चित गंध होती है। यह कभी संभव नहीं कि चमेली के खिले हुए फूलों से गेंदा या गुलाब की गंध आ जाए या पपोंते के वृक्ष पर आम या केले उग आएँ। इन सबके पीछे स्पंदन की एक ऐसी शक्ति कार्य करती है जो अपनी लय और स्वरूप में कोई व्यतिक्रम नहीं होने देती; क्योंकि क्रम ही जीवन है और व्यतिक्रम प्रलय। इसी दिव्य शक्ति से प्रभावित होकर पूरी सृष्टि संतुलित हो रही है।

मन में उठी सुख और दुःख की अनुभूतियाँ जब गीत बनकर गूँजने लगती हैं तो उन्हीं को विभिन्न नामों से पुकार कर किसी राग का नाम दे दिया जाता है। ठीक इसी प्रकार जब चेष्टाओं द्वारा हृदय की अनुभूतियाँ व्यक्त होती हैं तो उन्हें विविध मुद्राओं और अंगहारों का नाम दे दिया जाता है। गीत और नृत्य की सृष्टि इसी प्रकार हुई है।

भारतीय नृत्यकला अत्यन्त पुरानी कला है, जिसका विस्तार नाट्य-वेद में हुआ है। उसी के आधार पर भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में नृत्यकला को विस्तार से समझाया है। भारत के अलग-अलग प्रांतों में शास्त्रीय आधार पर जिन तत्त्वों को ग्रहण किया गया, उनमें शास्त्रीयता के साथ-साथ लोक तत्त्वों के मिश्रण से कुछ नई शैलियों का जन्म हुआ; जैसे—भरतनाट्यम्, बोडिसी, मोहिनीअट्टम्, कथकलि, मणिपुरी और कथक आदि। भारत की इन शास्त्रीय नृत्य विधाओं का परिचय यहाँ दिया जा रहा है—



## भरतनाट्यम्

इसमें नृत्य और अभिनय की प्रधानता रहती है। दक्षिण-भारतीय मंदिरों में देवाराधन के लिए प्रस्तुत किए जानेवाले इस नृत्य को शास्त्रीय क्रम के अनुसार प्रयोग में लाया जाता है, जिसमें उसकी गति के अनुसार जतिस्वरम्, शब्दम्, वर्णम् और तिल्लाना इत्यादि का प्रयोग होता है। संगीत के समस्त अंगों और उपांगों का प्रयोग इसमें विधिवत किया जाता है। प्रारंभ में 'भरतनाट्यम्' तमिलनाडु प्रान्त में केवल देवदासियों द्वारा मन्दिर की चार-दीवारी के अंदर तक सीमित था और उसे 'देव-दासीअट्टम्' कहा जाता था। अब वह पुरुष और स्त्रियों द्वारा संवत् प्रचार में है, जिसमें 'नाट्य-शास्त्र' के आधार पर करण, चारी, अंगहार और मंडलों का उत्कृष्ट प्रयोग देखने को मिलता है।



'भरतनाट्यम्' के कलाकारों में—ई० कृष्ण अय्यर, बालसरस्वती, रामगोपाल, रुक्मणिदेवी अरुण्डेल, यामिनी कृष्णमूर्ति, वैजयन्तोमाला, कमला, मृणालिनी साराभाई, कुप्पैया व गोविन्दराज पिल्लै, महालिंगम् पिल्लै, कल्याणसुन्दरम्, सोनल मानसिंह, कविता श्रीधरानी, पद्मा सुब्रमण्यम्, मल्लिका साराभाई, मालविका सरुकाई, लीला सेमसन, कोमला, वरदन, सुधारानी रघुपति, सुजाता, श्रीनिवासन, एस० कनका, अलारमल वेली, वी० पी० धनञ्जयं व शान्ता धनञ्जयं आदि के नाम प्रसिद्ध हैं।

## कथकलि

यह दक्षिण भारत के केरल प्रदेश का मुख्य नृत्य है। 'कथा' का अर्थ है कहानी और 'कली' का अर्थ है खेल। किसी कथा को, पात्रों के बड़े-बड़े मुखोटे लगाकर, संगीतमय अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत करने को 'कथकलि' नाम से पुकारा जाता है इसमें कलाकार अपनी भावभंगिमा और मुद्राओं द्वारा किसी पौराणिक कथा का दिग्दर्शन ताण्डव-प्रधान लोक-नृत्य-शैली के माध्यम से कराते हैं।

सत्रहवीं शताब्दी में दक्षिण के नर्तक केरलवर्मा ने कथकलि के वर्तमान स्वरूप को जन्म दिया। इसमें प्राचीन





पौराणिक कथाओं की प्रधानता होती है। मूक अभिनय से युक्त कथकलि एक प्रकार का व्याख्यात्मक संगीत-नाट्य है, जिसके जीर्णोद्धार का श्रेय इस सदी के महाकवि वल्लथोल को है। कथकलि के कलाकारों में—शंकरन् नम्बूद्रीपाद, गोपीनाथ, कुंजुकरुप, राघवन् नायर, कनक रेले तथा कृष्णन कुट्टी के नाम प्रसिद्ध हैं।

### मणिपुरी

मणिपुरी नृत्य भारत के पूर्वी छोर पर असम में प्रचलित है। इसमें धार्मिक और पौराणिक गाथाओं का प्रदर्शन होता है। 'रासलीला' मणिपुरी नृत्य की एक विशेषता है, जिसका प्रदर्शन प्रायः सभी उत्सवों पर किया जाता है। इस नृत्य में कोमलता और सुकुमारता के दर्शन होते हैं। मन्द-मन्द कम्पन और गति तथा पदाघातों से नृत्य का आरम्भ होता है जो धीरे-धीरे चरम विकास की ओर बढ़ता है। वेशभूषा बहुत आकर्षक होती है। मणिपुर के प्रत्येक गाँव में कृष्ण-राधा, कृष्ण-वलराम तथा कृष्ण-चैतन्य के मंदिर होते हैं और एक रंगशाला भी रहती है, जहाँ प्रायः लास्य-प्रधान मणिपुरी नृत्य प्रस्तुत किए जाते हैं, जिनमें राधा-कृष्ण सम्बन्धी उपाख्यानों की प्रधानता रहती है।



है। 'रासलीला' की तरह 'लाई हरोबा' भी मणिपुर का प्रमुख नृत्य है, जिसमें समस्त ग्रामवासी भाग लेते हैं। मणिपुरी के कलाकारों में अमुवीसिंह, शांतिवर्द्धन, सविता बहिन (मेहता दीदी) विपिनसिंह, तोम्बीदेवी, झवेरी बहिन, सिंहजीतसिंह और चारुसिंह, प्रीति पटेल और श्रुति वनर्जी के नाम प्रसिद्ध हैं।

### कथक

उत्तर भारत का प्रमुख नृत्य कथक है। विदेशी आक्रमणों के कारण यहाँ की संस्कृति में अनेक मिश्रण हुए। इसीलिए अनेक प्रकार की वेश-भूषा, विविध प्रकार के व्यंजन और विविध प्रकार की कलाओं ने यहाँ जन्म लिया। कथा का गायन करने-वाले 'कथक' कहलाए जिन्होंने 'नट-वरी नृत्य' नाम से एक ऐसी शैली को जन्म दिया, जिसमें भावप्रधान और चमत्कार-प्रधान तत्त्वों का समावेश था। शास्त्रीय आधार पर कथक में





गत, तोड़े, नायक-नायिका-भेद और ततकार इत्यादि तथा लोकरंजन की दृष्टि से एक या अनेक घुँघरुओं की आवाज़, ताल-वादक के साथ प्रतिस्पर्धा और व्रज की रासलीला के कुछ तत्त्वों का समावेश मिलता है।

कथक के क्षेत्र में जयपुर, लखनऊ और बनारस के घराने प्रसिद्ध हैं तथा कलाकारों में अच्छन महाराज, लच्छू महाराज, शंभू महाराज, दुर्गाप्रसाद, सुन्दर-प्रसाद, गौरीशंकर, बिरजू महाराज, सितारा, रोजनकुमारी, गोपीकृष्ण, हजारी-प्रसाद, प्रेरणा श्रीमाली, वेरोनिक अज्ञान, मालविका मिश्रा, नलिनी व कमलिनी, सास्वतीसेन, उर्मिला नागर, भास्वती मिश्रा, रानीकृष्णी, रोहिणी भाटे, दमयन्ती जोशी, कुमुदिनी लखिया, राममोहन तथा दुर्गालाल के नाम उल्लेखनीय हैं।

## कुचिपुड़ी

आंध्र प्रदेश की कुचिपुड़ी नृत्य शैली का विकास कृष्णदेव आर्य के युग (१५१०-१५३०) में हुआ। आंध्र के कुचिपुड़ी नामक गाँव में भागवतार ब्राह्मणों द्वारा कुचिपुड़ी नृत्य का पोषण हुआ, जिसके उद्गम का समय ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी था।



यह आन्ध्र प्रदेश का एक परम्परागत नृत्य-नाट्य है जो वंष्णव भक्ति-भावना से ओत-प्रोत होता है। कुचिपुड़ी नामक गाँव में रामायण की कथा को गीत, नृत्य व अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत करनेवाले 'कुशीलव' (प्राचीन नट-समुदाय) करते हैं। इस नृत्य में स्त्री तथा पुरुष की भूमिकाओं को अधिकतर पुरुष पात्र ही अभिनीत करते हैं, जिनमें गीत, नृत्य, संवाद एवं मूक अभिनय भी रहता है। यह नृत्य भरत-नाट्यम् और ओड़िसी नृत्य-शैली की विशेषताओं को भी अपने में संजोए हुए है।

हिन्दू कथाओं और धर्म को जीवित रखने की दृष्टि से इस शैली को भागवतारों ने ही जीवित रखा और भागवत् की कथाओं का प्रस्तुतीकरण ही इस शैली में लोकप्रिय रहा। मन्दिर और दरबार दोनों में समान रूप से प्रचलित रहकर कुचिपुड़ी ने लोक-जीवन के मांगलिक उत्सवों में भी अपना लोकप्रिय स्थान बना लिया है। कुचिपुड़ी शैली को अकेला नर्तक भी प्रस्तुत कर सकता है। इसमें 'शब्दम्' की प्रधानता रहती है और भरतनाट्यम् की तरह तिल्लाना को भी प्रस्तुत किया जाता है एवं अन्त में नर्तक थाली पर नृत्य प्रस्तुत करता है। कुचिपुड़ी नृत्य स्वतन्त्र और लचकदार रहता है जिसमें लास्य और तांडव दोनों का सम्मिश्रण पाया जाता है। इस पद्धति को रंग-मंच पर लाने का श्रेय सितेन्द्र योगी को दिया जाता है, जिनके सतत प्रयास से इसे शास्त्रीय नृत्यों के अन्तर्गत प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। इसके गुरुओं में—वेम्पतिचिन्ना सत्यम् और सी० रामाचारियोलु प्रमुख हैं। वेदान्तम् सत्यनारायण, यामिनी कृष्णमूर्ति, शोभा नायडू, वैजयन्तीमाला, नरसिंहाचारी, बसंतचारी, रीतादेवी, कामदेव, स्वप्नसुन्दरी, राजा-राधा रेड्डी तथा मल्लिका साराभाई,



मुधा नायर, कला कृष्ण, अलखया पुंजाला, जया रामा तथा वनश्रीराव इत्यादि इसके प्रसिद्ध कलाकारों में गिने जाते हैं।

## ओड़िसी

‘ओड़िसी’ या ‘उड़ीसी’ नृत्य की परम्परा भरतनाट्यम् नृत्य की तरह ही प्राचीन है। बुद्धकालीन सहजयान और वज्रयान शाखाओं की सौन्दर्य-प्रधान साधना से ‘उड़ीसी’ नृत्य का जन्म हुआ। सातवीं शताब्दी में भगवान् को समर्पित महरी परम्परा ने ईश्वर-आराधना के लिए योग-तन्त्र से सम्बन्धित अंग-मुद्राओं का समावेश करके लास्य प्रधान नृत्य-शैली का सूत्रपात किया जो सन् १८५० से विशेष प्रकाश में आई।



‘नाट्यशास्त्र’ में चार नृत्य-शैलियों का उल्लेख मिलता है— अवन्ति, दाक्षिणात्य, पांचाली और औड्रमागधी। ईश्वर को समर्पित भाव-भंगिमाएँ इस नृत्य-शैली का आधार हैं, जिनमें प्रधान भाग लास्य और अल्प भाग तांडव का मिश्रित है। इसीलिए ‘ओड़िसी नृत्य’ में भरतनाट्यम् और कथक का मिला-जुला स्वरूप दिखाई देता है। बौद्ध, शैव, वैष्णव, ब्राह्मण और शाक्त संस्कारों से मण्डित होकर यह नृत्य अत्यन्त मनोहारी एवं श्रृंगार-रस-प्रधान नृत्य शैलियों में अपना प्रमुख स्थान रखता है। इसमें कवि जयदेव की अष्टपदी का गायन प्रमुखता से किया जाता है। इस नृत्य का सैद्धांतिक और क्रियात्मक पक्ष तथा संगीत भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है।

‘ओड़िसी’ नृत्य में तांडव-प्रधान तत्त्वों का मिश्रण होने से वह लास्य-तांडव के रूप में बहुत आकर्षक बन गया है। इसके नृत्य गुरुओं में—श्रीमोहन महापात्र और उनके प्रख्यात शिष्य केलुचरण महापात्र, पंकज चरणदास, महाराणा, हरे कृष्ण बेहरा, मायाधर राउत, रमणिरंजन, सुरेन्द्रनाथ जिन एवं प्रख्यात कलाकारों में संयुक्ता पाणिग्रही, शुभा मुद्गल, सोनल मानसिंह, प्रोतिमाबेदी, कुमकुम लाल माधवी मुद्गल, कुमकुम दास, अपाली अपराजिता, आलोका पनिकर, रीतादेवी, किरण सहगल, नन्दिता पटनायक, अरुणा मोहन्ती, सुतपादत्त गुप्ता, सुजाता मिश्र, आलोका कानूनगो आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। १३-वीं शताब्दी में निर्मित भुवनेश्वर के कोणार्क मन्दिर का नट मण्डप और पुरी का जगन्नाथ मन्दिर ओड़िसी नृत्य की प्रमुख आधार-भूमि रहे हैं।

## मोहिनीअट्टम्

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ट्रावनकोर के महाराजा स्वाति तिरुनाल के द्वारा मोहिनीअट्टम् नृत्य-विधा विशेष प्रकाश में आई। केरल प्रदेश के इस नृत्य में दरबारी गीत-संगीत की प्रधानता रहती है, जिसमें भरतनाट्यम् और कथकलि नृत्य शैलियों का सम्मिश्रण है। यदि भरतनाट्यम् और उड़ीसी नृत्य शैलियाँ भक्ति प्रधान हैं तो

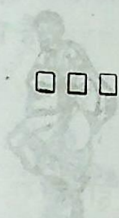




मोहिनीअट्टम् शृंगार प्रधान । भगवान् विष्णु के मोहिनी रूप के प्रतीक स्वरूप मोहिनीअट्टम् मलियाली कला को जीवित रखने वाली नृत्य-शैली है ।

कथकलि की भाँति मोहिनीअट्टम् का उद्धार भी महाकवि वल्लथोल नारायण मेनन के प्रयत्नों से हुआ । दरबारी परम्परा समाप्त हो जाने से इस शैली का प्रभाव भी कम हो गया । मोहिनीअट्टम् के गुरुओं में श्रीकृष्ण पणिकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है । बाद में गुरु गोपीनाथ, कल्याणी कुट्टीअम्मा, गुरु कुंजन पणिकर, कोचकुंजी अम्मा, शान्ताराव, भारती शिवाजी, राघवन् नायर तथा उनकी शिष्या कनक रेले ने अच्छे प्रदर्शन करने के साथ-साथ अच्छे शिष्य तैयार करने में भी बहुत योग दिया है ।

□□□





## नृत्याचार्य, नर्तक तथा नर्तकी के गुण

‘नाट्यशास्त्र’ एवं अन्य प्राचीन नृत्य-ग्रन्थों के अनुसार नृत्ताचार्य, नर्तक एवं नर्तकी की परिभाषाएँ इस प्रकार हैं :—

### नृत्ताचार्य

अच्छे कुल का हो, अनेक शिल्पों का प्रयोग जानता हो, उज्ज्वल हो, रूपवान हो, चारों ऽकार का अभिनय जानता हो, वाद्य-वादन में कुशल हो, सम्प्रदाय का ज्ञाता हो, लय-ताल का मर्मज्ञ हो, नृत्त भेदों को जानता हो, गृह-मोक्ष में कुशल हो, नृत्यकार के हृदय की बात जाननेवाला हो, सभापति को रिझानेवाला हो, सदा प्रसन्न रहनेवाला हो, राग-वाद्य-प्रबन्ध एवं पाटाक्षर का ज्ञाता हो तथा भाव बताने में समर्थ हो ।

### नर्तक

शरीर मनोहर हो, रूप श्रेष्ठ हो, नेत्र और कान विशाल हों, अधरों पर अरुणिमा हो, दाँत एक समान हों, कंठ शंख-जैसी आकृति का हो, भुजाएँ बेल के आकार की हों, नितम्ब पुष्ट और उठे हुए हों, संगीत में प्रवीण हो, कोमल वाणी-वाला, धैर्यवान्, सात्त्विक वृत्तिवाला तथा उदारमना पुरुष हो ।

### नर्तकी

नाट्य में कुशल हो, न अधिक स्थूल और न अधिक लम्बी हो, रूपवती हो, लावण्य और यौवन के बोझ से दबी-सी हो, वाणी मधुर हो, भुजाएँ वल्लरी के समान हों; लय, ताल और कला की ज्ञाता हो; रंस और भाव में कुशल हो, अच्छे कुल की योग्य एवं कर्तव्यवान् हो, सात्त्विक अभिनय और हेलाभाव की विशेषज्ञा हो, आतोद्य में कुशल हो, परिश्रमी हो, नृत्तगीत में पारंगत हो, उदार एवं धैर्यवती हो, चित्रकला में निपुण हो ।

□ □ □



# वैणिक (वीणावादक), वांशिक (बाँसुरीवादक), कविताकार, नर्तक, नर्तकी के गुण-दोष एवं कलाकारों के भेद

## वैणिक [वीणावादक] के गुण

जितेन्द्रियता, प्रगल्भता, आसन और परिग्रह ( सहायकों ) की स्थिरता, शारीरिक सौष्ठव, हाथों का थकना, सावधानता, निर्भयता, राग और रागांग के तत्त्व का ज्ञान, गीत-वादन में दक्षता श्रेष्ठ वैणिक के गुण हैं ।

## वैणिक [वीणावादक] के दोष

तीनों वृत्तियों से अपरिचय, व्यग्रता, अलंकार-स्वरों का अज्ञान, विकलांगता, राग एवं गीत के स्वरों के बजाने में असमर्थ इत्यादि वैणिकों के दोष हैं ।

## वांशिक [बाँसुरीवादक] के गुण

वंश के छिद्र के आधा खोलने, न खोलने और पूरा खोलने से वंश में स्वर-सारणा होती है, इसमें तथा सातों गमकों में निपुणता, स्थानों पर अधिकार, सुरागता, गीत-वादन में दक्षता, क्रियांग, भाषांग तथा विभाषा रागों तथा रागांगों में निपुणता, स्वरस्थान तथा अवस्थान ( बेजगह ) में भी रागनिर्माण का नेपुण्य, गवयों को जगह दिखाना तथा उनके दोषों को ढकना इत्यादि गुणों से युक्त श्रेष्ठ वांशिक माना गया है ।

## वांशिक [बाँसुरीवादक] के दोष

फूंक में फिसलना, कम फूंक होना, एक फूंक में दो-दो स्वर निकालना, सिर हिलाना, काँपना, तारस्थान की अप्राप्ति, मिथ्या प्रयोग (संकल्प का पूरा न होना) की बहुलता, गीतावादन में अज्ञान ये वांशिक के दोष हैं ।

वैणिक हो या वांशिक इन दोनों का कार्य शुष्कवादन ( स्वतन्त्र-वादन या सोलो-वादन ) ही नहीं, गायक की संगति करना भी है । यदि आज किसी बीनकार से या वंशीवादक से संगति करने के लिए कहा जाए, तो वह इसे गाली समझेगा । अशिक्षा, कुशिक्षा, अनभ्यास और अयोग्यता को अपनी हेकड़ी से छिपानेवाले जन्मजात 'उस्तादों' की कमी आज नहीं है ।

## कविताकार के गुण-दोष

अवनद्ध वाद्यों में बजनेवाली तथा नृत्त के लिए उपयुक्त 'बंदिशों' की रचना करने वाले पार्श्वदेव के शब्दों में 'कविताकार' हैं ।



विद्वान्, कुलीन, बुद्धिमान, नीरोग, रूपवान्, शुद्ध, मार्ग और काल के भेदों को समझनेवाला, यति और ग्रह में निपुण, आवाप इत्यादि क्रियाओं तथा ध्रुवक इत्यादि मात्राओं को जाननेवाला, वाद्याक्षरों को पढ़ने में निपुण, कुलक वाद्यों का निर्माता, ताल वाद्य के विधान का वेत्ता, अक्षरों के अनुसार रचना में निपुण, विराम का पूरक, चतुरस्र इत्यादि तालों में बंध वाद्य की रचना में कुशल, वाद्याक्षरों के सम्बन्ध में अर्थोत्पादन में निपुण ( वाद्याक्षरों के आधार पर सार्थक बोलों की रचना में कुशल ) व्यक्ति प्रशंसनीय 'कविताकार' है। इन गुणों का अभाव ही दोष है।

### नर्तक के गुण

समस्त प्रयोगों में कुशलता, नाक-नक्श का अच्छा होना, अन्तर्मुखता (विचारमग्नता) बुद्धिमत्ता, कला और ताल की मर्मज्ञता, विभिन्न नर्तक-शैलियों पर अधिकार, यति, ताल की अभिज्ञता जितेन्द्रियता, पात्र में शिक्षा का संक्रमण करने (शिक्षा देने) में कुशलता, स्वयं भी अच्छा नाचना, शिक्षा के अनुसार प्रयोगों के मुख्य नृत्त को जानना, शिष्य-निष्पादन की योग्यता, न्यूनता एवं अधिकता का ज्ञान, मत्सरहीनता, चारियों और अंगहारों में कुशलता, खंड मंडन में पांडित्य, विभिन्न देशों के देशी नृत्त्य से परिचय, गीत और आतोद्य (वाद्य) में निपुणता श्रेष्ठ नर्तक के गुण हैं।

### नर्तकके दोष

वाद्य, ताल और यति के मान में न्यूनता या अधिकता, स्वयं न नाच सकना, रस और भाव से अपरिचय, विरूपता, विकलांगता, प्रयोगों में अकौशल, देशी और मार्ग के भेद का ज्ञान न होना, नृत्त-शिक्षाओं में अनिपुणता आदि नर्तक के दोष हैं।

### नर्तकी के गुण

वाक्चातुर्य, सौष्ठव, रूप, यौवन, नाक-नक्श अच्छे होना, सफाई, अंग-प्रत्यंग पर अधिकार, गीत और वाद्य का अनुवर्तन, मन का शुद्ध होना, नीरोगिता, मुस्कराते हुए बात करना, अधिक लम्बा, ठिगना, मोटा या दुबला न होना, शरीर में लचक और घुमाव, ग्रह एवं मोक्ष में दक्षता, यति, ताल और लय का ज्ञान, सलोनापन, गौरता, एकाग्रता, बुद्धिमत्ता, नेत्र बड़े होना, चरणन्यास में चतुरता, मलप इत्यादि प्रबन्धों में कुशलता, पाटाक्षरों का ज्ञान, रंग-शोभा (स्टेज-व्यूटी), विभिन्न देशी नृत्त्यों के प्रदर्शन का सामर्थ्य इत्यादि श्रेष्ठ नर्तकी के गुण हैं।

### कलाकारों के भेद

पाश्वर्देव ने कलाकारों के तीन भेद उत्तम, मध्यम और जघन्य किए हैं और पुनः एक-एक में तीन-तीन भेद किए हैं, अतः कुल भेद ( उत्तमोत्तम, उत्तममध्यम, उत्तमाधम-मध्यमोत्तम, मध्यममध्यम, मध्यमाधम-जघन्योत्तम, जघन्यमध्यम और जगन्याधम ) नौ हो जाते हैं।

□ □ □



## रवीन्द्र संगीत

‘वह सुर ही तो है जो भोर के निःशब्द पंछी के आगमन की सूचना देता है।’ ये शब्द हैं कविरत्न रवीन्द्रनाथ ठाकुर के, जिन्होंने संगीत की एक नई विधा को जन्म दिया। उसी विधा का नाम है ‘रवीन्द्र संगीत’, जिसका प्रभाव समूचे पूर्वी भारत पर तो है ही, अन्यत्र भी उसे गाया-वजाया जाता है। सन् १८२५ ई० को रवीन्द्र संगीत शब्द सर्वप्रथम प्रयुक्त किया गया।

रवीन्द्रनाथ ने जिस घर में जन्म लिया, वहाँ ईसाई धर्म से सम्बन्धित वातावरण अधिक था। उन्होंने धर्म का मर्म समझा और प्रकृति से उन गहराइयों को जाना जो संगीत, काव्य, शिल्प और नृत्य आदि कलाओं को जन्म देती हैं। इसी लिए रवीन्द्रनाथ प्रकृति की गोद में विचरण करते हुए मानव की संवेदना और जगन्नियन्ता की आराधना करते रहे। उनकी वाणी से जो भी शब्द निकलते, वे संगीत की लय बन जाते और रवीन्द्रनाथ उसमें अवगाहन करते हुए संसार को सुख, शान्ति और करुणा का सन्देश देते।

रवीन्द्रनाथ टैगोर बंगाल के ख्याति प्राप्त विष्णुपुर घराने से प्रभावित हुए, जिसकी स्थापना तानसेन के वंशज बहादुर खाँ ने की थी। वे खयाल गायन की अपेक्षा ध्रुपद गायन से अधिक प्रभावित थे। टैगोर की संगीत-शिक्षा बड़ी छितरी हुई रही। उनके पहले संगीत शिक्षक विष्णु चक्रवर्ती थे जिन्होंने लगभग पूरे परिवार को संगीत की शिक्षा दी। विष्णुपुर के प्रख्यात संगीतज्ञ जदु भट्ट ने भी टैगोर को संगीत सिखाया लेकिन वे उन्हें उनकी निजी विचारधारा से विचलित न कर सके। टैगोर के भाई संगीत कला के प्रति बड़े समर्पित थे, जिन्होंने टैगोर के विकास और संगीत के प्रति उन्हें प्रेरित करने के लिए बहुत योगदान दिया।



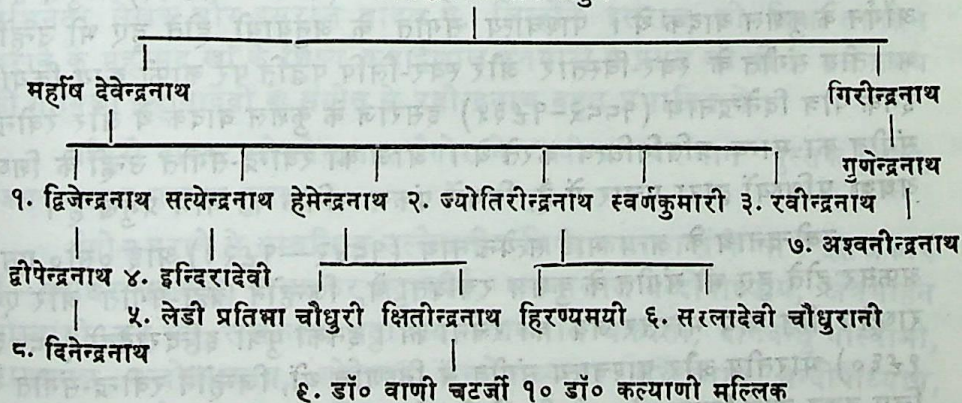


रवीन्द्रनाथ के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर (१८१७-१९०५) संगीत-कला के बड़े संरक्षक थे। भारत के सभी भागों से बड़े-बड़े संगीतकार आकर उनके घर में ठहरते और कला प्रदर्शन करते थे तथा परिवार को संगीत विद्या सिखाते थे। इनमें विष्णु चक्रवर्ती (ध्रुपद-गायक), जदु भट्ट, सुरेन्द्रनाथ वंदोपाध्याय, रामप्रसाद मिश्र (सितार), जगतचन्द्र गोस्वामी (पखावज), राधिकाप्रसाद गोस्वामी और श्यामसुन्दर मिश्र (इसराज) के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार बचपन से ही रवीन्द्रनाथ को बड़े-बड़े संगीतकारों को सुनने का सौभाग्य मिला।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने जो संगीत रचनाएँ तैयार कीं, उनमें सरलता तथा काव्य और संगीत के सन्तुलन पर विशेष ध्यान दिया। व्यर्थ की तानबाजी और ध्रुपद के क्लिष्ट लय-बाँट को उन्होंने कभी महत्त्व नहीं दिया। वे कहते थे कि इनसे संगीत रचना और उसमें निहित भाव को गंभीर हानि पहुँचती है। उन्होंने पूजा-संगीत, ऋतु-संगीत-जैसी अनेक विधाओं को प्रचलित किया, जिसकी प्रेरणा उन्हें विष्णुपुर घराने से मिली थी। इसी प्रकार वे प्राकृतिक मधुर आवाज के पक्षपाती थे, न कि नकली आवाज बनाकर गाने के। उनका मानना था कि भाव की हत्या करके न गीत को ज़िदा रखा जा सकता है और न संगीत को। वास्तव में आज ध्रुपद-गायन के मृत होने का यही कारण है और जटिल तानों के बोझ से दबे ख़याल गायन का भी। टैगोर का कहना था कि शास्त्रीय संगीत सीखने के लिए गले के प्राकृतिक गुण-धर्म नष्ट करके इतनी बड़ी कीमत नहीं चुकाई जानी चाहिए। आवाज सदैव मिठास से युक्त और भाव से ओत-प्रोत होनी चाहिए और यही नियम वाद्यों के वादन में भी लागू होता है।

## कविगुरु रवीन्द्रनाथ की वंशावली

प्रिस द्वारिकानाथ ठाकुर



१. द्विजेन्द्रनाथ बांसुरी बजाते और स्वर-विस्तार-गवेषणा करते थे तथा आकार मात्रिक स्वर-लिपि के उद्भावक थे।



२. ज्योतिरीन्द्रनाथ ने आकार मात्रिक स्वरलिपि के परिणत रूप का प्रचार किया। राग-संगीत में उनका अच्छा ज्ञान था। वे 'संगीत प्रकाशिका' के संस्थापक (सन् १९०१) और संपादक थे।

३. रवीन्द्रनाथ ने विष्णुचन्द्र चक्रवर्ती एवं श्रीकंठ सिंह से संगीत की शिक्षा पाई थी। इसके अलावा यदु भट्ट का संगीत सुनकर उसे आत्मसात् किया और ज्योतिरीन्द्र से उन्होंने सुर-रचना की शिक्षा एवं प्रेरणा पाई।

४. इन्दिरादेवी शास्त्रीय संगीत में पारदर्शी थीं और उस युग में स्वरलिपिकार के रूप में उन्होंने प्रसिद्धि पाई। लेडी प्रतिभा चौधुरी के सहयोग से वे 'आनन्द संगीत' पत्रिका की संयुक्त संपादिका हुईं। विदेशी संगीत में भी वह शिक्षित थीं।

५. लेडी प्रतिभा चौधुरी शास्त्रीय कंठ्य एवं वाद्य संगीत, दोनों में प्रवीण थीं। समाज में संगीत के प्रचार के लिए उन्होंने 'संगीत संघ' नामक संगीत विद्यालय की स्थापना (१०-८-१९११) की और इन्दिरा देवी के सहयोग से 'आनन्द संगीत' नामक पत्रिका की १९१३ में स्थापना एवं सम्पादन किया।

६. सरला देवी ने भारतीय एवं यूरोपीय संगीत की शिक्षा पाई थी।

७. अवनीन्द्र इसराज-वादक थे एवं कनाईनाल टेंगरी के शिष्य थे।

८. दिनेन्द्रनाथ रवीन्द्र-संगीत में सुयोग्य स्वरलिपिकार एवं इसराज-वादक थे।

९. डॉ० वाणी चटर्जी ने यूरोपीय संगीत में अनुसंधान के लिए डॉक्टरेट प्राप्त की।

१०. डॉ० कल्याणी ने इमदाद हुसैन और उनके पुत्र इनायत हुसैन खाँ से सितार की शिक्षा पाई।

रवीन्द्रनाथ के सबसे बड़े भाई द्विजेन्द्रनाथ (१८४०—१९२६) बाँसुरी तथा ऑर्गन के कुशल वादक थे। पाश्चात्य संगीत के अनुयायी होते हुए भी उन्होंने भारतीय संगीत के स्वर-विस्तार और स्वर-लिपि पद्धति पर काफ़ी कार्य किया। इनके पौत्र दिनेन्द्रनाथ (१८८२—१९३५) इसराज के कुशल वादक थे और रवीन्द्र-संगीत का मान्य प्रतिनिधित्व करते थे। आज का रवीन्द्र-संगीत उन्हीं के शिष्य अथवा प्रशिष्यों द्वारा प्रचार में है, जिनमें पंकज मलिक का नाम प्रमुख है।

रवीन्द्रनाथ के अन्य भाई सत्येन्द्रनाथ (१८४२—१९२३) आई०सी० एस० अफ़सर होते हुए भी संगीत के कुशल रचयिता थे, जिन्होंने 'ब्रह्म-संगीत' और एक राष्ट्रीय गीत 'जय भारतेर जय' की रचना की। इनकी पुत्री इन्दिरादेवी (१८७३-१९६०) भारतीय और पाश्चात्य संगीत में निष्णात थीं, जिन्होंने रवीन्द्र-संगीत के लिए बहुत कार्य किया और अपनी चचेरी बहिन प्रतिभा देवी (१८६५-१९२२ सुपुत्री हेमेन्द्रनाथ) के साथ 'आनन्द संगीत' पत्रिका का सम्पादन किया। सन् १९११ में उन्होंने 'संगीत-संघ' नाम से एक संगीत विद्यालय की स्थापना भी की थी।



रवीन्द्रनाथ के अन्य भ्राता हेमेन्द्रनाथ (१८४४-१८८४) के विषय में रवीन्द्रनाथ ने कहा है कि मेरे भाई सुबह से शाम तक संगीत का अभ्यास करते हैं। हेमेन्द्रनाथ के ऊपर परिवार के समस्त बच्चों की शिक्षा का भार था।

उस समय हारमोनियम अधिक प्रचार में नहीं था, अतः रवीन्द्रनाथ सदैव तंबूरा पर अपने गीतों का अभ्यास करते थे और कहते थे कि मैं की-बोर्ड (हारमोनियम के परदे) की गुलामी नहीं कर सकता।

हेमेन्द्रनाथ की पौत्री डॉ० वाणी चटर्जी ने यूरोपीय संगीत पर अनुसंधान करके डॉक्टरेट की डिग्री प्राप्त की थी।

रवीन्द्रनाथ की बड़ी बहिन सौदामिनी (१८४७-१९२०) की शादी शारदा प्रसाद गांगुली से हुई थी जो कि एक अच्छे ध्रुपद-गायक और सितार वादक थे। सितार की शिक्षा उन्होंने श्री ज्वालाप्रसाद से ग्रहण की थी।

रवीन्द्रनाथ के अन्य बड़े भ्राता ज्योतिरिन्द्रनाथ (१८४९-१९२५) भी रवीन्द्रनाथ की अपेक्षा कम प्रतिभाशाली नहीं थे। वे पियानोवादन में कुशल थे और रवीन्द्रनाथ को संगीत के लिए बड़ी स्वच्छंदता के साथ शिक्षण देते हुए प्रेरित करते रहते थे। उन्होंने सितार की शिक्षा प्राप्त की थी और बंगाली स्वर-लिपि-पद्धति को विकसित करने में योगदान दिया था जो अब तक प्रचार में है। वे 'संगीत प्रकाशिका' (सन् १९०१) नामक पत्रिका के संस्थापक व सम्पादक भी रहे।

रवीन्द्रनाथ की अन्य बहिन स्वर्णकुमारी (१८५६-१९३२) की पुत्री सरला देवी (१८७२-१९४५) भारतीय तथा यूरोपीय संगीत में दक्ष थीं। स्वर्णकुमारी की पौत्री और हिरण्यमयी की पुत्री डॉ० कल्याणी मलिक ने इम्दाद हुसैन खाँ और इनायत हुसैन खाँ से सितार की तालीम ली।

रवीन्द्रनाथ के चचेरे भाई के पुत्र अवनीन्द्रनाथ (१८७१-१९५१) एक प्रसिद्ध अभिनेता, लेखक और इसराज वादक थे, जिन्होंने इसराज की शिक्षा तानसेन घराने के मुहम्मद खाँ के शिष्य कनाईलाल टेंगरी से प्राप्त की थी। उस समय की गायिका सहानादेवी के संगीत से रवीन्द्रनाथ बहुत प्रभावित थे।

बाँसुरी वादक सोमयेन्द्रनाथ टैगोर ने 'रवीन्द्रनाथेर गान' पुस्तक लिखी, जिसका बहुत सत्कार हुआ।

टैगोर घराने से सम्बन्धित उल्लेखनीय शिष्य कलाकारों के नाम इस प्रकार हैं—गदाधर चक्रवर्ती, रामशंकर भट्टाचार्य, अनन्तलाल बन्दोपाध्याय, क्षेत्रमोहन गोस्वामी, जदु भट्ट, रामकेशव भट्टाचार्य, केशवलाल चक्रवर्ती, दीनबन्धु गोस्वामी, रामप्रसन्न बन्दोपाध्याय, गोपेश्वर बन्दोपाध्याय, सुरेन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय, रामकृष्ण बन्दोपाध्याय, राधिकाप्रसाद गोस्वामी, काशीप्रसन्न बन्दोपाध्याय, महेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, सर एस० एम० टैगोर, हरिचरन कर्माकर, गोकुलचन्द्र नाग, गिरिजाशंकर चक्रवर्ती, ज्ञानेन्द्रप्रसाद गोस्वामी और महेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय।



## रवीन्द्र-संगीत का विश्लेषण

१. रवीन्द्र संगीत का मूलधार ध्रुपद पद्धति है।

२. इसमें टप्पा का समावेश भी किया गया, लेकिन तानें सरल ग्रहण की गईं।

३. संगत के लिए पखावज, तानपूरा और ऑर्गन टाइप के हारमोनियम का प्रयोग किया गया। हारमोनियम से गायन की श्रुति व्यवस्था को हानि न पहुँचे सका पूरा ध्यान रखा गया।

४. अधिकांश रचनाएँ तोड़ी, भैरवी, आसावरी, पूर्वी, ईमन, मल्लार और केदार में की गईं। मालकौंस और बागेश्वरी का प्रयोग भी किया गया, लेकिन अधिक नहीं। भैरवी राग में लगभग १५०, मल्लार में ४० और पूर्वी में ३० रचनाएँ की गईं।

५. भैरवी में आसावरी और तोड़ी के संयोग से रचनाएँ की गईं और बाद में बाउल तथा कीर्तन की धुनें भी उसमें सम्मिलित करली गईं जो बहुत कर्णप्रिय सिद्ध हुईं। ईमन में पूर्वी के मिश्रण से ईमन-पूर्वी, केदार और हमीर के मिश्रण से केदार-हमीर, इसी प्रकार तोड़ी, आसावरी और देसी तथा बिलासखानी के मिश्र रूप तैयार किए गए। राग मल्लार के अनेक प्रकारों को टैगोर ने अपनाया।

६. तालों में सरलता का ध्यान रखा गया जिससे गीत को कोई आघात न पहुँचे और काव्य के शब्द तथा छन्द के साथ वह घुल-मिल जाए, जैसा कि बिना बाँट तथा बोल तान के ध्रुपद में होता है।

७. गीतों को ध्रुपद की तरह स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग चार भागों में रचा गया।

८. ताल के लगभग ८ सरल प्रकारों को उपयोग में लाया गया।

९. अधिकांश रचनाओं को अवसरों के अनुकूल तैयार किया गया जैसे— प्रार्थना, विरह, हर्ष, सृष्टि, आत्मबोध, वैराग्य, अनुशासन, प्यार, विभिन्न ऋतुओं का चित्रण और राष्ट्रीय।

१०. संक्षिप्त मीड़, छोटी तानें, आसान कण और चुने हुए अलंकार तथा भाव प्रधान गमकों का प्रयोग किया गया।

शान्तिदेव घोष द्वारा लिखित 'रवीन्द्र संगीत' में टैगोर की अनेक रचनाओं से सम्बन्धित राग और तालों का उल्लेख मिलता है और 'गीत-वितान' नामक बंगला पुस्तक में टैगोर के गीतों का स्वरलिपि सहित विस्तृत संग्रह प्राप्त होता है जिसके अनेक भाग हैं। इसे 'स्वर वितान' के नाम से जाना जाता है।

अनेक शास्त्रीय रागों को रवीन्द्रनाथ ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया। भारतीय संगीत के आराधना-परक संगीत से वे प्रभावित थे, परंतु ध्रुपद, धमार और खयाल आदि विधाओं में जो शब्दों की हत्या कर दी जाती है, उसके वे घोर विरोधी थे। इसी लिए उन्होंने शास्त्रीय संगीत और लोक-संगीत के बीच की ऐसी धारा प्रवाहित



की, जिसे सम्पूर्ण लोक ने सराहा। रवीन्द्र संगीत को छोटे बच्चे भी सरलता से गाते हैं और बड़े भी। उसकी सबसे बड़ी विशेषता है भाव का अभिव्यक्तीकरण। इसी कारण रवीन्द्र संगीत के प्रत्येक पद में एक स्थिरता और ठहराव दिखाई पड़ता है। चंचल वृत्तियों को स्थिर करके परम आनन्द में लीन होना, यह तो मनुष्य का कर्तव्य है। रवीन्द्रनाथ कहते थे कि कला की दृष्टि से संसार भगवान् की लीला का मूर्तरूप है। इसके तत्त्व को जानने की चेष्टा करना अपने-आपको धोखा देना है। इसके द्वारा भीतरी रहस्य को जान पाना संभव नहीं तथा कला, माया का रूप है, इत्यादि। वे कला के जरिए स्वर, शब्द और भावों को माध्यम बनाकर अनन्त की गहराइयों में खो जाना चाहते थे, जहाँ परमशान्ति अथवा केवल आनन्द-ही-आनन्द है।

वैष्णव-पद, ईसाई प्रार्थनाएँ, समूहगान, उत्तर-भारतीय संगीत का ध्रुवपद-गान, कीर्तन, पाश्चात्य ऑपेरा सभी को रवीन्द्रनाथ ने हृदयंगम करके रवीन्द्र संगीत को ढाला था, लेकिन उसका आधार उसकी लोकमान्य सरस शैली थी, जो बिना किसी क्लिष्टता, बिना किसी शास्त्रीय गान और बिना किसी बन्धन के मानव-मन द्वारा निःसृत हो उठती है। उसे सीखने की आवश्यकता कम और अनुभव करने की अधिक है। कोई बच्चा माँ का स्तनपान करना नहीं सीखता, कोई भौंरा मधुपान या गन्ध प्राप्त करने की प्रक्रिया का शिक्षण नहीं लेता, फूल किसी से पूछकर नहीं खिलता। सब-कुछ किसी बागडोर से बँधा हुआ-सा अनवरत रूप से चल रहा है। यही रवीन्द्र के मानस की धारा थी।

## रवीन्द्र संगीत का आधार

रवीन्द्र संगीत पर उत्तर भारत में प्रचलित तत्कालीन ध्रुवपद-धमार, खयाल, टप्पा, ठुमरी, भजन, पाश्चात्य ओरल गीत, बंगला लोक धुनें एवं मन को आकर्षित करने वाली सरल तालों की विविध शैलियों का प्रभाव पड़ा। रवीन्द्रनाथ ने २००० के लगभग गीत लिखे, जिनमें हिन्दी गीतों के आधार पर रचित गीतों की संख्या २१५ है। बंगला भाषा में ये गीत 'भाँगा-गान' के नाम से प्रसिद्ध हुए, जिन्हें, पूजा-गीत या 'ब्रह्म-संगीत' के रूप में गाया जाता है।

## रवीन्द्र संगीत का हिन्दी रूपान्तरण

रवीन्द्रनाथ के २१५ गीत ऐसे हैं जिन्हें उन्होंने हिन्दुस्तानी संगीत में से रूपान्तरित किया था और जिनके बारे में उन्होंने बड़े गर्व से स्वीकार किया कि मेरे बंगला गीतों के पन्द्रह स्वर हिन्दुस्तानी राग संगीत से जुड़े हुए हैं। उनका एक गीत प्रथम आदि तव शक्ति आदि 'परमोज्ज्वल' उनके प्रथम कोटि के गीतों में गिना जाता है जो एक हिन्दी ध्रुपद से लिया गया था। दूसरा प्रसिद्ध गीत खयाल गायकी के आधार पर रचा गया था, जिसका शीर्षक है 'आई सावन की बेला' यह वर्षा-कालीन ऋतु गीत है जो राग देश एवं दादरा ताल में निबद्ध है। बाउल गीत के आधार पर 'यदि तोर डाक शुने केउ ना आसे तवे एकला चलो रे' गी गान्धी जी



को भी प्रिय था। महात्मा गाँधी ने ही रवीन्द्रनाथ के नाम के साथ 'गुरुदेव' और 'कविगुरु' शब्द जोड़े थे और रवीन्द्रनाथ ने उन्हें 'बापूजी' नाम दिया था।

## रवीन्द्र संगीत के प्रकार

रवीन्द्रनाथ ने जिन श्रेणियों में गीतों की रचना की उनके नाम इस प्रकार हैं—देश प्रेम, मानव प्रेम, अनुष्ठान गीत, करुण गीत, लोक संगीत पर आधारित गीत, टप्पा गीत, आध्यात्मिक गीत, ऋतु गीत, शास्त्रीय संगीत पर आधारित गीत, गीत नाट्य और नृत्य सम्बन्धी। रवीन्द्र संगीत के गीत प्रधानतः ६ भागों में विभाजित हैं—(१) पूजा (२) स्वदेश (३) प्रेम (४) प्रकृति (५) नृत्य नाटक (६) विविध गीत।

**१. पूजा के गीत :** इनके अंतर्गत रवीन्द्रनाथ के 'नैवेद्य' (रचना काल १९०१), 'खैया' (रचनाकाल १९०६) और 'गीताञ्जली' (रचनाकाल १९०९) के गीत आते हैं जिनमें ध्वनिमय व्यंजना और भागवत व्याकुलता के स्पष्ट दर्शन होते हैं। विरह, आत्मबोध और मिलन की आतुरता एवं आध्यात्मिक रहस्यमय भावसम्पन्न रचनाओं की प्रधानता इनमें निहित है। उदाहरणार्थ—'आजि जतो तारा सब आकाशे, सबे मोर प्राण भरि प्रकाशे।' अर्थात्—'आज जितने तारे तेरे आकाश में हैं, सब में मेरे प्राण भरकर प्रकाशित करदे।' फकीरों की रिद्धि-सिद्धि को उन्होंने कोई स्थान नहीं दिया। वे बुद्धि की अपेक्षा हृदय को अधिक महत्व देते थे और ज्ञान पिपासा की अपेक्षा रस में डूबकर अधिक आनन्द लेना चाहते थे। उनका मानना था कि 'विश्व वैराग्य में मुक्ति नहीं है, विश्व अनुराग में मुक्ति है।'।

**२. स्वदेश गीत :** रवीन्द्रनाथ के देश-भक्ति गीतों में साम्प्रदायिकता की तनिक भी गंध नहीं है। वे सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं। भारत को कवि ने हर स्थान पर 'सर्वजातीय मिलन तीर्थ' बताया है। कहा जाता है कि उन्होंने देश-भक्ति के गीत तीन काल में लिखे। १. बंग भंग पूर्व, २. बंग भंग कालीन और ३. बंग भंग पश्चात्। धरती को उन्होंने माता, पिता, देवता और कहीं प्रभु या मित्र के रूप में देखा। इसलिए उनके काव्य और गीतों में 'भाग्य-विधाता', 'महा-मानव', 'देवता' और 'पिता' इत्यादि शब्दों का आधिक्य दिखाई देता है। 'ओ आमार देशेर माटी तोमार पाये छो आई माथा' तथा 'देवता जेने दूरे रई दांणाए, आपन जेने आदर करिने' इत्यादि स्वदेशी गीतों में काव्य के उत्कर्ष की पराकाष्ठा दिखाई देती है। एक प्रकार से देखा जाय तो रवीन्द्रनाथ काव्य के आसन पर बिराजे एक महान् राजनैतिक नेता के पद पर आसीन दिखाई पड़ते हैं। यही उनके स्वदेश-गीतों का चमत्कार है।

**३. रवीन्द्र गीतों में प्रेम :** रवीन्द्रनाथ के प्रेम काव्य को वैष्णव धर्म की प्रेम भावना ने बहुत प्रभावित किया था। 'आमि चिनि गो चनि तोमार ओगो विदेशिनी' में कवि ने कहा है 'यह विदेशिनी ब्रह्माण्ड की विश्व मोहिनी है न कि कोई देह धारिणी विदेशिनी।' उनके प्रेम गीतों में उनके जीवन में आए कुछ नागी चरित्रों



का भी हाथ था जिसके परिणामस्वरूप 'विचित्र खेला', 'स्वप्न' तथा 'छवि' इत्यादि गीतों की रचना हुई। 'नयन समुखे तुमि नाई, नयनेर माझिखाने नि एछो जे ठाई' तथा 'तुमि कि केवलई छवि शुधु पटे लेखा, ओईजे सुदूर निहारिका' जैसे गीतों में हृदयवेदना का उमड़ाव स्पष्ट दिखाई देता है।

बंगाल में प्रेम काव्य के महान् रचनाकार निधु बाबू, मधुकान और बिहारी लाल का रवीन्द्र संगीत के गीतों पर गहरा प्रभाव था। भौतिक प्रेम प्रसंगों को रवीन्द्र ने आध्यात्मिक चेतना की ओर मोड़कर छायावाद और रहस्यवाद की प्रेरणा से ओत-प्रोत कर दिया था जिसका प्रभाव उत्तर कालीन हिन्दी कवियों पर भी बड़ी गहराई से पड़ा। हिन्दी में अनुवादित उनके एक गीत की पंक्ति है— 'धूँघट ओढ़े रैन का, कौन हो कौन तुम, मेरे आँगन में खड़ी हो अकेली। आज सघन रात रे मेघ मगन तारे'। 'चित्रांगदा, चंडालिका, श्यामा, कालमृगया, मायार खेला तथा वाल्मीकि प्रतिभा' इत्यादि गीत तथा नृत्य-नाट्यों में रवीन्द्र के देहाती प्रेम का ही दर्शन होता है।

**४. प्रकृति गीत :** रवीन्द्रनाथ के प्रकृति सम्बन्धी गीतों में दृश्य और अदृश्य दोनों के रूप-सौंदर्य का वर्णन मिलता है। जड़ और चेतन दोनों के प्रति कवि की वाणी मुखर है, इसके साथ ही मानव स्वभाव और प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। उपवन, नदियाँ, सागर और पर्वत का सौंदर्य और उन्हें देखकर मानव-मन की अवस्थाओं का चित्रण रवीन्द्रनाथ को महाकवि की श्रेणी में बैठा देता है। जब नारियाँ पानी भरते समय वर्षा से भीग रही हैं या किसी वट वृक्ष की नंगी डालियाँ तूफान के झोंके से काँप रही हैं तो रवीन्द्रनाथ के प्रकृति गीत मुखर हो उठते हैं। प्रकृति पर्व में उनका पहला गीत 'विश्व वीणा रव मोहे विश्व जन' से प्रारम्भ हुआ है। नृत्य, गीत और रूप एवं रस से भरे इस विश्व मंच पर, नाट्योत्सव, उनकी ऋतु रंगशाला है। ऋतुओं के भौगोलिक गुण-दोषों का वर्णन एवं मानव स्वभाव को उनमें प्रतिबिम्बित करते हुए उन्होंने उनमें मानव प्राण का संचार किया है।

**५. नृत्य-नाटक :** कथाओं को प्रदर्शित करने के लिए रवीन्द्रनाथ ने नृत्य-नाट्य (बैले) और गीति-नाट्य (ऑपेरा) की रचना की तथा कथावस्तु में गीतों को ऐसे ढंग से पिरोया जो कथा के उत्कर्ष में सहायक होते हैं और दर्शक को कथावस्तु की गहराई का बोध कराते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि उनके नाटक, गीति-नाट्य या नृत्य-नाट्य को साधारण या अशिक्षित व्यक्ति भी उसी स्तर से समझकर ग्रहण करता है जिस गहराई से कोई शिक्षित या दार्शनिक समझ पाता है। चित्रांगदा, चण्डालिका आज भी जनमानस को हिलाने की क्षमता रखते हैं।

**६. विविध गीत :** रवीन्द्रनाथ ने कुछ ऐसे भी गीत लिखे हैं जिन्हें अनुष्ठान-गीत या विचित्र गीत कहा जा सकता है। सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक मांगलिक पर्वों के लिए गृह-प्रवेश, हल-कर्षण एवं वृक्षारोपण तथा जन्म एवं मृत्यु दिवस से सम्बन्धित सभी विधाओं पर उन्होंने लिखा है। इन गीतों से लोक कथाएँ



और लोकाचारों का ज्ञान भी सरलता से हो जाता है। कहीं-कहीं वेद या उपनिषद् के मंत्रों को स्वर देकर उनका बंगला अनुवाद भी उन्होंने किया है। इन्हें 'ब्राह्म संगीत' या 'उपासना संगीत' जैसे ग्रन्थों में सम्मिलित किया गया है।

इस प्रकार रवीन्द्र साहित्य और संगीत में भौतिक और आदि भौतिक विषय के प्रत्येक चित्रण को रवीन्द्रनाथ ने उतारा है। शायद ही ऐसा कोई भाव, रस या स्थिति होगी जिसका वर्णन रवीन्द्र के गीतों में उपलब्ध न हो। रवीन्द्र ने अपने गीतों की रचना में कुल ६० राग-रागिनियों को स्थान दिया है, जिनमें भैरवी और भूपाली उन्हें अधिक प्रिय थे। रवीन्द्र संगीत ऐसा सम्पूर्ण संगीत है जिसमें संगीत के मूल गुणों का समावेश है और जो अपने निरालापन के कारण भारतीय संगीत जगत् की सहज निर्मल धारा के रूप में सतत प्रवहमान है। रवीन्द्रनाथ रचित लगभग २००० गीत उनके 'गीत-वितान' नामक संगीत ग्रन्थ में संकलित हैं जिसके तीन खण्ड हैं।

कविवर रवीन्द्रनाथ भातखण्डे जो और उनकी स्वरलिपि पद्धति से प्रभावित थे, परन्तु उन्हें लगा कि रवीन्द्र संगीत की गहराई को प्रकट करने में वह समर्थ नहीं हो सकेगी इसलिए बंगाल में प्रचलित आकार मात्रिक स्वरलिपि पद्धति को उन्होंने उपयुक्त माना।

## रवीन्द्र संगीत में ताल या छन्द

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कहना था कि शब्द के भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए स्वर के साथ ताल पक्ष को भी थोड़ी-बहुत छूट देना आवश्यक है। प्रत्येक सम पर आघात देकर जो गायक ताल में बल प्रयोग करके शब्द के भाव और काव्य के सौंदर्य की हत्या कर देते हैं, रवीन्द्रनाथ उनके सख्त खिलाफ़ थे। वे अलंकारों के बोध से राग के रूप और सौंदर्य को दबा देने में विश्वास नहीं रखते थे, उसी प्रकार वे छंद को तालों की जटिलता से मुक्त रखना चाहते थे। यही कारण है कि अपने गीतों में कहीं-कहीं सम और खाली का बन्धन भी उन्हें स्वीकार नहीं हुआ है। स्वरों के ऊपर कंठ के सहज संचरण की चिन्ता में रवीन्द्रनाथ ने कभी-कभी चार मात्राओं की ताल को तोड़कर दो-दो मात्राओं में और कहीं ८ मात्राओं की ताल को चार-चार मात्राओं में खण्डित कर लिया है। गीत की आवश्यकता के अनुसार कुछ नई तालों की सृष्टि भी उन्होंने की है। जैसे—झम्पक ताल—धिन धिन ना। (सम)

धिन ना। ५ मात्राओं वाली इस ताल का प्रयोग मध्य और द्रुत लय के गीतों के साथ होता है, जिसमें २ विभाग और २ ताली हैं, खाली नहीं है।

**नव पंच-ताल :** धा गे । धा गे दें ता । कत तागे दें ता । तेटे धा (सम)

दे ता । तेटे कत गदि धेन । १८ मात्राओं को इस ताल में ५ ताली हैं। रवीन्द्र-



संगीत का केवल एक ही गीत 'जननी तोमार करुण चरण खानि' इसमें निबद्ध है। ध्रुपद और धमार की रचनाएँ उसमें अच्छी प्रतीत होती हैं।

**शष्टि ताल :** धा तेटे । धागे तेटे धि ना । छह मात्रा की इस ताल में (सम) — — — — —

दो ताली हैं, खाली नहीं है। इसका दूसरा प्रकार 'उल्टी शष्टि' ताल कहलाता है जिसमें मात्राओं को ४ और २ क्रम से उलटकर बजाया जाता है। दक्षिण भारत की 'पत्रि ताल' इससे मिलती-जुलती है।

**रूपकड़ा ताल :** धा तेन ता । तेटे कत । धेने तेटे धेने । आठ मात्राओं (सम) — — — — —

की इस ताल में तीन विभाग हैं, खाली नहीं है। गीत के अनुसार इस ताल को तबला, खोल या मृदंग पर बजा लिया जाता है। दक्षिण-भारत की 'सार-ताल' इसके समकक्ष है। मृदंग पर बजने में इसके बोलों का क्रम इस प्रकार रहता है— धिन धिन धागे । तिन तागे । धिन धिन तेटे । इस ताल में भजन, गीत, कीर्तन तथा गज़ल बहुत सुन्दर प्रतीत होते हैं।

**नव ताल :** धा तें ता । तेटे कत । गदि धेने । धागे तेटे । नौ (सम) — — — — —

मात्रा की इस ताल में चार विभाग हैं, जिसके अन्तर्गत ध्रुपद अंग के गीतों का प्रयोग अधिक होता है। कुछ लोग इसके विभागों में परिवर्तन भी कर लेते हैं। तराना, छोटा खयाल और नृत्य इस ताल के साथ बहुत सुन्दर प्रतीत होता है। दक्षिण में इसके समकक्ष 'वस्तु-ताल' है।

**एकादशी ताल :** धा तें ता । तेटे कत । गदि धेने । धागे तेटे (सम) — — — — —

तागे तेटे । ग्यारह मात्राओं के इस ताल में ४ विभाग और ४ तालियाँ हैं। ध्रुपद पर आधारित रचनाएँ इसमें सुन्दर प्रतीत होती हैं।

रवीन्द्रनाथ द्वारा रचित ये तालें भारतीय संगीत के लिए एक महत्त्वपूर्ण देन है। रवीन्द्रनाथ का कहना था कि ताल एक हिसाबी पक्ष है, जिसका प्रायोजन तो है परन्तु जब वह नियम या कानून में जकड़ जाता है तो सब कुछ बर्बाद हो जाता है। ताल भी तो भाव-प्रकाशन का ही एक अंग है, अतः भाव बदलते ही ताल बदलने की आवश्यकता भी समझी जानी चाहिए। काव्य-सृष्टि के निकट ताल का आत्म-समर्पण आवश्यक है। वे कल्पना किया करते थे कि शायद संगीत कभी-न-कभी बन्धनहीन गद्य का रूप लेगा। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है कि 'भाषा अब बालिश हो चुकी है, उसे इस उम्र में छन्द की गोद पर चढ़कर घूमना शोभा नहीं देगा।'

रवीन्द्रनाथ कहते थे—'आज का मनुष्य गीतों की वाणी पर सुर को खड़ा कर देना चाहता है, पर मैं चाहता हूँ, सुर पर वाणी को सजाना। वह सुर को व्यक्त



करने के लिए वाणी को माला पिरोते हैं, पर मैं वाणी को बाहर लाने के लिए सुर की माला पिरोता हूँ। साधारण कविता पढ़ने के लिए होती है, पर गीत-काव्य केवल सुनने की चीज़ है। किसी भी सम्मिश्रण से नवीन का सृजन होता है। संगीत के महापंडितों से मेरा आन्तरिक निवेदन है कि वे राग के वादी, संवादी पर अनुसंधान करनेवाली कक्षा खोलने के बजाय, किन स्वरों में और किन शब्दों में क्या भाव हैं, उन्हें खोज निकालने की कक्षा लगाएँ। यह कहने के बजाय कि अहा! स्वर क्या सुन्दर हैं, उन्हें यह कहना होगा कि अहा! भाव कितने सुन्दर हैं?

रवीन्द्रनाथ का कहना था कि यदि बंगाल के लोग मेरा सम्पूर्ण साहित्य भुला भी देंगे, तब भी मेरे गीतों को वे अवश्य याद रखेंगे। उन्हें मेरे गीत गाने ही पड़ेंगे! उन्होंने अपील के रूप में कहा—‘सभी गीत मेरे गीतों के निकट हैं।’ क्या हम रवीन्द्र-संगीत को सुरक्षित रखने में सक्षम होंगे और इस अमूल्य धरोहर तथा राष्ट्रीय सम्पत्ति की सुरक्षा कर सकेंगे? भविष्य की पीढ़ी से मेरी यही प्रार्थना है कि मनुष्य को आनन्द देनेवाले संगीत को हमेशा सुरक्षित रखा जाय और यही हमारा कर्तव्य भी है।

## रवीन्द्र-संगीत की विशेषताएँ

१. रवीन्द्र-संगीत में भावों के आधार पर स्वरों की रचना होती है, स्वरों के आधार पर शब्दों की रचना होती है, शब्दों के अनुरूप छन्द का निर्माण होता है, तत्पश्चात् किसी राग के आधार पर लोक-धुन की शैली में उसे गाया जाता है।
२. रवीन्द्र-संगीत में रागों का चलन बड़े धैर्य और गम्भीरता से होता है और लय में एक स्थिरता अथवा ऐसा ठहराव होता है, जो मानव की संवेदना को समग्र-रूप में अभिव्यक्त करता है।
३. रवीन्द्र-संगीत में ईश्वर की अदृष्ट सत्ता अथवा प्रकृति का चित्रण होता है, जिन्हें अनुकूल राग और ताल में निबद्ध किया जाता है।
४. रवीन्द्र-संगीत का प्रभाव फ़िल्म-संगीत पर भी पड़ा और वह अधिक लोकप्रिय हुआ। सचिनदेव बर्मन, आर० सी० बोडाल, हेमन्तकुमार, पंकज मलिक, पहाड़ी सान्याल, के० सी० डे, जूथिका राय, सलिल चौधरी, अनिल विश्वास और अनेक कितने ही संगीतकारों की लोकप्रिय रचनाएँ इसका ज्वलन्त उदाहरण हैं।
५. रवीन्द्र-संगीत का एक स्वतन्त्र अस्तित्व है, क्योंकि न उसे शास्त्रीय संगीत कहा जा सकता है और न लोक-संगीत, बल्कि गंगा-जमुना के बीच मिलनेवाली तीसरी सरस्वती-धारा का नाम उसे दिया जा सकता है।



६. रवीन्द्र-संगीत के काव्य में असीम के प्रति अनुराग और छलनी माया के प्रति वैराग्य स्पष्ट दिखाई देता है। मनुष्य की सभी सहज संवेदनाएँ उसमें अभिव्यक्ति होती हैं।
७. रवीन्द्र-संगीत शब्द और स्वर के बीच एक ऐसा सेतु है, जिसपर मनुष्य के हृदय में सोए हुए भाव तैरते-उभरते रहते हैं। मंथर गति हो उसका प्राण है। टेंगोर द्वारा लिखित लगभग चार हजार गेय-गीत रवीन्द्र-संगीत में उपलब्ध होते हैं।
८. रवीन्द्र-संगीत में भैरवी, तोड़ी, खमाज, बिहाग, मल्हार तथा केदार इत्यादि रागों के अनेक मिश्रित और नए रूपों की रचना मिलती है।
९. रवीन्द्र-संगीत में जटिल तानों का व्यर्थ प्रयोग नहीं किया जाता, बल्कि आलाप और स्वरों के भावविभोर करनेवाले लगाव उसमें निहित रहते हैं।
१०. राग पूर्वी के तीस प्रकार, मल्हार के चालीस प्रकार और भैरवी के डेढ़ सौ प्रकार रवीन्द्र-संगीत में गाए जाते हैं। हमीर और केदार तथा आसावरी और तोड़ी के मिश्ररूप से रवीन्द्र-संगीत में रवीन्द्रनाथ ने अनेक कीर्तन तथा बाउल-गान की रचना की।
११. रवीन्द्र-संगीत का विधिबत् जन्म सन् १८७८ ई० में हुआ, जबकि रवीन्द्रनाथ ने अपने गीतों को स्वरबद्ध करना प्रारम्भ किया था। अपने कुछ नाटकों में उन्होंने भावप्रधान पाश्चात्य संगीत का भी प्रयोग किया।
१२. बहती हुई नदिया की धारा के बीच बहती हुई नाव के चपुओं की ताल पर माँझी की पुकार, पनिहारिनों के गीत, खेत की जोतते हुए किसान का उल्लास, गोद में झूलते शिशु की माँ का प्यार-भरा लोरी गीत और स्वछंद विहार करते पक्षियों को देखनेवाले कवि का मन तथा उससे उत्पन्न कल्पना-प्रसून-भरे गीत रवीन्द्र-संगीत की आत्मा हैं। इसी प्रकार बदलती ऋतुओं का शृंगार, विरह की पीड़ा, प्रणय और क्रन्दन, राग-विराग तथा राष्ट्रीय चेतना के दर्शन भी उसमें उतनी ही गहराई से होते हैं।
१३. रवीन्द्र-संगीत के मूल स्वरूप में किसी भी प्रकार के परिवर्तन या परिवर्द्धन करने पर पूर्ण प्रतिबन्ध है।

रवीन्द्रनाथ ने लगभग दो हजार गीतों की रचना की। जिन परम्परागत रागों को उन्होंने अपनी धुनों में स्थान दिया। उन राग और गीतों की सूची इस प्रकार है :—

|               |                          |
|---------------|--------------------------|
| १. यमन कल्याण | : सुन्दर बहे आनन्द       |
| २. पूर्वी     | : अश्रु नदीर-सुदूर पाड़े |
| ३. भैरव       | : मन जागो मंगलालोक       |
| ४. खमाज       | : तुमारी गे हे पालीछो    |



५. आसावरी : तुमार सुर सुनाये  
 ६. गुर्जरी तोड़ी : प्रभाते विमल आनन्दे  
 ७. नट मल्हार : मोर बारे-बारे  
 ८. दरबारी कानड़ा : एबार-नीरव कोरे दाओ हे  
 ९. बिहाग : महाराज एकी साजे  
 १०. मालकौंस : आनन्दधारा वहिछे भुवने  
 ११. बागेश्वी : ये राते मोर दुआर गली  
 १२. बहार : आजी कमल मुकुल दल  
 १३. अडाना : मन्दिरे मम के आशिले  
 १४. भैरवी : आई ये तारी दिलो खुले  
 १५. छायानट : हे सखा, ममो हृदये रहो  
 १६. देश मल्हार : एशो स्यामल सुन्दर

रवीन्द्र-संगीत में गाए जाने वाले कुछ लोकप्रिय गीत इस प्रकार हैं :

- (क) झर-झर-झर-झरे रंगेर झरना : राग बहार-अडाना मिश्र ( इसमें वसंत ऋतु में प्रमुदित मानव का उल्लास है )  
 (ख) हिंसाय उन्मत्त पृथ्वी : राग मिश्र भैरवी ( इसमें हिंसा से उन्मत्त पृथ्वी का कलंक दूर करने के लिए ईश्वर का आह्वान है )  
 (ग) बादल धारा हलो सारा : राग मिश्र पीलू ( इसमें वर्षा के पश्चात् की उदास प्रकृति का चित्रण है )  
 (घ) मन मोर मेघेर संगी : राग मिश्र मल्हार ( इसमें वर्षा काल की प्रकृति के चिरपरिचित रूप का दर्शन है )  
 (ङ) ओरे गृहवासी खोल द्वार : राग कल्याण का एक प्रकार ( फाग के रंग में डूबी प्रकृति के वर्णन से ओतप्रोत यह गीत शान्तिनिकेतन में प्रतिवर्ष होली के दिन गाया जाता है )  
 (च) बादल बाउल बाजाय रे : राग बिहाग खमाज ( इसमें वर्षाकाल की अनुभूति का सजीव चित्रण है )  
 (छ) प्रकार तपन तापे : भीमपलासी, मुलतानी और भैरवी पर आधारित ( इसमें ग्रीष्म-काल के तप्त-उदास वातावरण का चित्रण है )  
 (ज) आमार मिलन लागि : बागेश्वी-बहार पर आधारित ( इसमें भक्त-हृदय का करुण क्रन्दन है )  
 (झ) मोर वीणा उठे कौन सुरे बाजि : राग मिश्र-भैरव में निबद्ध ( इस गीत में बसन्त के आगमन का पूर्वाभास है )  
 (ञ) अयि भुवन मनमोहिनी : राग मिश्र भैरवी ( इस गीत में भारत-माता के प्रति स्तुतिगान है )



संगीत के प्रति टैगोर की स्थापनाएँ संक्षेप में इस प्रकार हैं :—

१. रागों में वादी-संवादी या परम्परा का दुराग्रह महत्वपूर्ण नहीं बल्कि किसी राग का उसमें निहित भाव के अनुसार ही विश्लेषण किया जा सकता है।
२. वाद्य संगीत या शब्द विहीन संगीत ही भारतीय संगीत का विशुद्ध रूप है जिसमें उसका सार निहित रहता है।
३. भारतीय संगीत में कल्पना शीलता और उसे विस्तार देने की क्षमता का विकास वहीं तक सीमित रहना चाहिए जहाँ तक संगीत की मूल आत्मा को कोई हानि न पहुँचे।
४. पाश्चात्य संगीत में हारमोनी की प्रधानता है। जबकि भारतीय संगीत मैलोडी प्रधान है। इसीलिए पाश्चात्य संगीतकार की अपेक्षा भारतीय संगीतकार-संगीत रचयिता (कम्पोज़र) और प्रस्तोता (परफ़ॉर्मर) है।
५. भारतीय संगीत की आन्तरिक शक्ति चेतना का प्रधान तत्व या विश्वरस है।
६. देशी गीतों की संगीत रचना ऐसे ढँग से की जानी चाहिए कि परम्परा से स्वीकृत स्वरावलि को उससे कोई हानि न पहुँचे।
७. भारतीय संगीत राष्ट्रीय परिधि को लाँघकर बाहर जाने की शक्ति रखता है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है—“जैसे भारतीय समाज में पति पर निर्भर रहते हुए भी पत्नी उसपर अपना शासन करती है, उसी प्रकार संगीत पर निर्भर रहता हुआ गायक भी गीत पर शासन करता है। धुन के आधार पर ही हम उसके सर्जक को पहचान पाते हैं, जो रहस्य-भरे सागर के दूसरी ओर है।” उनका कहना है, “हमारे अलंकार शास्त्र में नौ रसों का उल्लेख है, परन्तु लोरियों में जो रस प्राप्त होता है वह किसी के अन्तर्गत नहीं आता। अभी-अभी जोती हुई ज़मीन से जो गंध निकलती है या शिशु की नवनीत जैसी कोमल देह से जो स्नेह उद्दीप्त करनेवाली सुवास निकलती है, उसे किसी भी फूल या चन्दन, इत्र की गंध के समकक्ष नहीं रखा जा सकता। इसी रस से आकृष्ट होकर मैं साहित्य और संगीत की सर्जना में लगा। यही तो हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति है।”

रवीन्द्र संगीत के अध्ययन के आधार पर एक बात और स्पष्ट होती है कि बाल्यावस्था में रवीन्द्रनाथ द्रुत लय की रचनाओं के पक्ष में नहीं थे। अतः उस समय उन्होंने अपनी रचनाओं में विलम्बित गति की धीर-गम्भीर तालों का प्रयोग किया है। जीवन के मध्यकाल में रवीन्द्रनाथ छन्दप्रधान तालों के प्रति आकर्षित हुए थे परन्तु छन्द की गति को वे ताल की नियमबद्धता में जकड़कर नहीं रखना चाहते थे। ‘संगीत की मुक्ति’ नामक अपने निबन्ध में रवीन्द्रनाथ ने लिखा है, ‘कविता में जो छन्द है संगीत में वही ताल है और दोनों में लय अर्थात् गति साम्य की रक्षा आवश्यक है। अतएव काव्य, संगीत दोनों में लय को यदि हम मानकर



चलें तो ताल सम्बन्धी विवाद होने पर भी भय का कोई कारण नहीं रह जाता। अपने गीतों में ताल क्रिया के निश्चित नियमों में विभिन्न लयात्मक प्रदर्शन उन्हें प्रिय नहीं था। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है, 'ताल का उपयोग संगीत में सांख्यिकी विभागों के लिए अत्यावश्यक है, यह मैं मानता हूँ किन्तु उसमें उतने सूक्ष्म प्रतिबन्ध भी वांछनीय नहीं जिनके फलस्वरूप संगीत की वास्तविक आवश्यकता ही नष्ट हो जाए।'।

१८ वीं और १९ वीं सदी में बंगला धुनें कीर्तन और शास्त्रीय संगीत के प्रभाव से रँग गई थीं, जिन्हें रवीन्द्र संगीत ने एक नया आयाम दिया जो लोक के आनन्द की मार्मिक अनुभूति बनकर रह गया। कविवर टैगोर की आवाज़ में एक सिद्ध गायक के कंठ-जैसी मधुरिमा निहित थी इसीलिए वे छन्द की गत्यात्मक तरंग में कवि और गायक का हृदय लेकर एक सम्राट की भाँति विचरण किया करते थे। नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक मूल्यों के उच्च शिखर पर आसीन रवीन्द्र-संगीत आज सम्पूर्ण विश्व में प्रतिष्ठित है।

रवीन्द्र-संगीत के परम्परागत कलाकारों में प्रतिभा देवी, सरला देवी, इन्दिरादेवी चौधुरानी, श्रीमती अमिया टैगोर, अपर्णादेवी, अमलादास, जुथिकारॉय और वीणापाणि इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

□ □ □



# नज़रुल संगीत



काजी नज़रुल इस्लाम

(जन्म : २४ मई १८८८ मृत्यु : २८ अगस्त १९७६)

मुगल सम्राट शाह आलम के काल में एक मुसलमान परिवार बंगाल प्रदेश के हाजीपुर को छोड़कर वर्धमान के चुरुलिया गाँव में आकर बस गया था। जिसके किसी वंशज को काजी ( विचारक ) का पद प्राप्त हुआ था। इसके बाद इस वंश के लोग अपने नाम के आगे काजी जोड़ने लग गये थे। इसी वंश में काजी फ़कीर अहमद और ज़ाहिदा खातून के पुत्र काजी नज़रुल इस्लाम का जन्म २४ मई सन् १८८८ में हुआ था। फ़कीर अहमद की दो पुत्रियाँ थीं। जिनसे कुल नौ बच्चे, सात पुत्र और दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। इनमें नज़रुल तीन भाई और एक बहिन थे। नज़रुल के पिता फ़कीराना प्रकृति के थे जो एक मज़ार तथा मस्जिद की देखभाल करते थे। घर में दरिद्रता थी। नज़रुल की आयु जब ८ वर्ष थी तभी नज़रुल के पिता का निधन हो गया। दरिद्रता के कारण नज़रुल को बचपन में लोग “दुखू मियाँ” कहकर पुकारते थे। दस वर्ष की उम्र में इन्होंने मख़तब की परीक्षा पास की और फिर अरबी-फ़ारसी पढ़ने लगे। धन्धे की खोज में जब इधर-उधर फिरने लगे तो कुछ व्यक्ति इन्हें ‘नज़र अली’ कहकर पुकारने लगे। इनके घर के दक्षिण में पीर नामक तालाब के सामने मस्जिद में स्थित हाजी पहलवान के मज़ार में काफ़ी समय तक काम किया।

नज़रुल क़ुरान शरीफ़, रामायण, महाभारत, पुराण तथा भागवत् इत्यादि पढ़ना शुरू कर दिया और अपना अधिकांश समय गंगा किनारे या काली की शरण में बिताने लगे। उस समय कुछ लोग इन्हें ‘ताराखिया’ (काली-भक्त) कहकर पुकारते थे। बाउल फ़कीरों के साथ घूमना, एकेश्वरवाद, धर्मसमन्वय और सम्प्रदायों के विच्छेद की बात करने का कारण उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व निखरने लगा।



उन दिनों एक व्यंग्यात्मक नौटंकी दल 'लेटो' का काफ़ी प्रचलन था। जिसमें ब्रज प्रदेश के रसिया और खयाल की तरह काव्यमय प्रतिस्पर्धा होती थी जिसके कलाकारों को "कवियाल" कहते थे। नज़रुल लेटो दल में भर्ती हो गये। और नौटंकी वाले कलाकारों के लिए सवाल-जवाब रचने लगे। ११ वर्ष की उम्र में वे इस दल के उस्ताद बन गये तथा हारमोनियम, तबला और बाँसुरी बजाने में भी सिद्धहस्त हो गये। साहित्य और संगीत की इन विशेषताओं से वे जन समूह को मन्त्र-मुग्ध कर देते थे।

### नज़रुल के नाटक

काज़ी नज़रुल इस्लाम ने नौटंकी में कार्य करते हुए कुछ ऐतिहासिक और धार्मिक नाटकों की रचना की जिनमें प्रमुख हैं—'दाता कर्ण', 'कवि कालीदास', 'शकुनी वध' और 'मेघनाद वध'। किशोरावस्था में ही नज़रुल को लगने लगा कि हिन्दू और मुस्लिम कितने भी अलग हों लेकिन मूलतः वे एक हैं। दोनों ही मिट्टी से जुड़े हुए हैं तो साहित्य, संगीत और कला के माध्यम से वे क्यों नहीं जुड़ सकते। इस प्रकार उन्होंने अनेक रूपक और गीतों की रचना की।

### नज़रुल की प्रतिभा

धीरे-धीरे नज़रुल की प्रतिभा बढ़ने लगी। कविता, नाटक, संगीत की विधाओं में उनके नाम की ख्याति फैलने लगी। इसी बीच उन्हें एक अच्छे गुरु 'कुमुद रंजन मलिक' मिल गये। जिन्होंने उन्हें शिक्षा की ओर मोड़ दिया और स्कूल जाने लगे। लेकिन उनकी यायावर वृत्ति ने उन्हें कभी भी स्थिर नहीं रहने दिया और वे घूमते-घामते आसनसोल में आकर बस गये जहाँ एक बेकरी में एक रुपये मासिक वेतन पर उन्हें डबल रोटी बनाने का कार्य मिल गया। सन् १९१४ में आसनसोल के एक पुलिस सब-इन्स्पेक्टर रफीक उल्लाह खान की नज़र उन पर पड़ गई जिन्होंने मैमन सिंह ज़िले के काज़ी शिमला ग्राम नामक स्थान पर ले जाकर स्कूल में भर्ती करा दिया ताकि वह पढ़ सकें। लेकिन नज़रुल यहाँ से भी भाग लिए। उनकी मेधा शक्ति को देखकर सियारसोल के महाराज बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने उन्हें सात रुपये महावार की छात्रवृत्ति देना शुरू कर दिया तथा छात्रावास और भोजन मुफ्त। नज़रुल ने वहाँ तीन साल व्यतीत किए। तभी हाफ़िज़ नूर नवी चचा ने नज़रुल से आग्रह किया कि वे संस्कृत पढ़ना छोड़कर अरबी-फ़ारसी पढ़ें।

इन्हीं दिनों नज़रुल का परिचय शास्त्रीय संगीत के मर्मज्ञ श्री सतीश चन्द्र काँजीलाल से हुआ, और उन्हें संगीत का विशाल सागर दिखाई दिया।

नज़रुल जब दसवीं कक्षा में थे, तभी चारों ओर प्रथम विश्व युद्ध की आग भड़क उठी। नज़रुल एक रेजीमेन्ट में भर्ती हो गये और हवलदार के पद तक पहुँच गए। अपने एक साथी नित्यानन्द डे के सहयोग से उन्होंने पियानो तथा



ऑर्गन बजाने का अभ्यास कर लिया और ऑर्केस्ट्रा का संचालन करने की योग्यता प्राप्त कर ली। मुक्ति नामक पत्रिका में नज़रूल की सबसे पहली कविता 'बाउडुलेर' (आवारा की) आत्म कहानी छपी और कराँची रेजीमेन्ट में उन्हें 'नज़रूल हवलदार कवि' के नाम से जाना जाने लगा। इसके बाद 'सौगात' पत्रिकाओं में 'समाधि', 'स्वामिहारा' इत्यादि काव्य तथा 'हेना' एवं व्यथारदान कविताएँ प्रकाशित हुईं। सेना के कर्म जीवन में उन्होंने 'रिक्तेर वेदना' (जिसके पास कुछ नहीं है उसका दुःख) नामक कथा लिखी, और 'बाँधनहारा' नाम से एक लघु उपन्यास की रचना की।

इनके मन में हमेशा यही रहता था कि अँग्रेजों को भारत से कैसे भगाया जाए। इसी संकल्प के साथ उन्होंने सितम्बर १९१६ से १९१८ में उनचास नम्बर की बंगाली पलटन में कार्य किया। इसके बाद इन्हें कराची भेजा गया। जहाँ नज़रूल ने देश की स्वाधीनता के लिए निष्ठापूर्वक कार्य किया। इसी समय इनका परिचय एक कवि के रूप में उभरा। अँग्रेज सरकार ने इन्हें सब-रजिस्ट्रार के पद का नियुक्ति पत्र दिया लेकिन नज़रूल ने उसका बहिष्कार कर दिया और 'धूमकेतू' पत्रिका के प्रकाशन से जुड़ गए। जिसके माध्यम से अँग्रेजी शासन के प्रति उन्होंने आग में घी-डालने का कार्य किया। इसके परिणाम स्वरूप उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और १९२३ में उन्हें एक वर्ष का सश्रम कारावास भोगना पड़ा। जेल से निकलने के बाद यह हुगली में रहे और सन् १९२५ में कृष्णनगर नामक स्थान पर चले गए।

### जनवादी कवि

सन् १९२० के मार्च माह तक प्रथम विश्व युद्ध के समाप्त होने की घोषणा हो चुकी थी अतः बंगाली रेजीमेन्ट भी समाप्त हो गया था। नज़रूल के लिए यह सौभाग्य की घड़ी थी क्योंकि इसके बाद इन्हें साहित्य और संगीत के साथ जुड़ने का सुनहरा अवसर मिल गया था। अब वे पूरी तौर पर साहित्य और संगीत से जुड़ गए। उनकी रचनाओं में जनजीवन के सुख-दुःख, अधिकार, इच्छाएँ और मानसिक विद्रोह स्पष्ट रूप से अंकित होते रहे। नज़रूल के समकालीन प्रसिद्ध कवि श्री 'मोहितलाल मजूमदार' नज़रूल की रचनाओं से इतने प्रभावित हुए कि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उसका स्तुतिवाचन करने लगे। जल्दी ही नज़रूल काव्य तथा संगीत जगत् में एक विशिष्ट विभूति के रूप में पहचाने जाने लगे। उनकी जनवादी मानसिकता देशभक्ति, मानव प्रेम और अँग्रेज शासकों के प्रति विद्रोह की भावना जैसे-जैसे लोकप्रिय होती गई तो शासक दल बाँखला उठा और यहीं से नज़रूल पर अत्याचारों का सिलसिला शुरू हो गया। उन्होंने जेल की यन्त्रणा भोगी, अनशन किए और अनेक पद छोड़े लेकिन अपनी देशभक्ति की कविताओं से समाज में जोश भर दिया। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने भी एक बार जेल में कहा—“हम जैसे मनुष्य जो संगीत से दूर भागते हैं, उनके अन्दर भी एक प्रबल



उत्साह जाग रहा है कि हम भी नज़रूल जैसे गीत गाने लग जाएँ। अब हम लोग मार्चपास्ट के समय ऐसे ही गीत गाया करेंगे। नज़रूल के गीतों को सुनने व गाने से कारावास, कारावास नहीं लगता।” नज़रूल ने ‘मैगाफ़ोन’ नामक रिकार्ड बनाने वाली एक कम्पनी में संगीत निर्देशक के पद पर भी कार्य किया लेकिन अध्यात्म में विशेष रुचि होने के कारण सन् १९३६ में इन्होंने नौकरी छोड़कर माँ काली की कठिन आराधना आरम्भ कर दी। फिर भी संगीत की चर्चा को इन्होंने अपने से अलग नहीं किया। सन् १९४२ में फ़ज़रूलहक़ साहिब द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित दैनिक पत्रिका ‘नवयुग’ के लिए इन्हें सम्पादक चुना गया।

जनवादी नज़रूल ने ही साम्यवादी नज़रूल इस्लाम को जन्म दिया। उन्होंने अँग्रेजों के प्रति घोर विद्रोह की घोषणा की अतः वे ‘विद्रोही कवि’ कहलाने लगे। लेकिन यथार्थ में वे ऐसे जनकवि थे जिनके हृदय में मानव और समाज के प्रति प्रेम की भावना रहती थी। कविता में सबसे पहले साम्यवाद का श्रीगणेश उन्होंने ही किया था। उनकी साम्यवादी भावना की पराकाष्ठा उनके काव्य-ग्रन्थ ‘साम्यवादी’ तथा ‘सर्वहारा’ में देखने को मिलती है। ‘युवागोष्ठी के गीत’ ‘धीवर के गीत’, ‘सम्प्रदाय सम्प्रीत के संगीत’, ‘जाति जागरण संगीत’, ‘मार्चपास्ट संगीत’ और ‘स्वदेश संगीत’ इत्यादि में जनता की मानसिकता को उन्होंने पर्याप्त रूप से उजागर किया है। ऐसी सभी संगीत सम्बन्धी पुस्तकें अँग्रेजों ने ज़ब्त कर ली थीं, लेकिन नज़रूल ने अपनी चेतना में कोई कमी नहीं आने दी, वे बड़े विचित्र स्वभाव वाले बहुआयामी प्रतिभा से सम्पन्न घुमक्कड़ प्रकृति के एक बहुदिशागामी लेखक थे। जीवन के अन्तिम ३५ वर्ष उन्होंने कष्टपूर्वक बिताये। नज़रूल इस्लाम को एक असाध्य, स्नायविक (पिग्सडिजीज़) रोग हो गया और पत्नी लकवा से पीड़ित थीं। २९ अगस्त सन् १९७६ की प्रातः १० बजकर १० मिनट पर नज़रूल इस्लाम का देहान्त हो गया। पूर्ण राजकीय मर्यादा के साथ ढाका (पूर्वी पाकिस्तान बांग्लादेश) में विश्वविद्यालय के प्रांगण में स्थित मस्जिद की बगल में उन्हें दफ़नाया गया। जीवन का अन्तिम व्याख्यान उन्होंने ५ अप्रैल सन् १९५१ में कलकत्ता मुस्लिम इंस्टीट्यूट हाल में दिया था, जिसके अन्त में उन्होंने कहा था— “यदि बंसी और न बजे तो आप हमें क्षमा करियेगा और सोचियेगा कि पूर्णत्व भी तृष्णा लेकर एक अशान्त तरुण के रूप में इस धरती पर आया था।”

## प्रेमी जीवन

कलकत्ता में क़ाज़ी नज़रूल इस्लाम प्रायः अपने मित्र नलिनीकान्त सरकार के घर में रहते थे। अदभ्य साहस, फ़कीराना मस्ती, तेजस्विता, सम्बेदनशीलता और प्रेम से भरा हुआ व्यक्तित्व लेकर वे जिस किसी से बात करते तो वह उन्हें अपना ही समझने लगता था। स्त्रियाँ उनके व्यक्तित्व पर मर मिटती थीं।



## नज़रुल के गीतों के प्रकार

बहुमुखी प्रतिभा के धनी क़ाज़ी नज़रुल इस्लाम ने लगभग सभी विधाओं पर गीतों की रचना की। इनके गीतों को निम्नांकित रूप में बाँटा जा सकता है—

१. समाज-सुधार, २. जनजीवन, ३. जात-पात और सम्प्रदायवाद, ४. देशभक्ति, ५. कोरस गीत या मार्चिंग सोंग, ६. हिन्दी तथा उर्दू के गीत ७. इस्लामी सम्प्रदाय से सम्बन्धित गीत, ८. भक्ति परक गीत, ९. सामाजिक पर्व गीत, १०. ग़ज़ल, ११. क़व्वाली, १२. हास्य-व्यंग्य के गीत, १३. राग-प्रधान गीत, १४. लोकगीत, १५. विभिन्न जातियों से सम्बन्धित गीत, १६. पाश्चात्य स्वर आश्रित गीत और बंगला लक्षण गीत, १७. पौराणिक, ऐतिहासिक और निबन्ध सम्बन्धित गीत, १८. प्रेमगीत तथा ऋतु सम्बन्धित गीत।

## नज़रुल के गीतों की विशेषता

काव्य रचना में ओजस्विता और विचित्रता नज़रुल के गीतों की प्रधान विशेषता है। हिन्दू धर्म और सूफ़ी भक्ति इनकी रचनाओं में स्पष्ट झलकती है।

स्वनिर्मित नवीन रागों के आधार पर उन्होंने अनेक गीत रचे क्योंकि ढोलक, हारमोनियम या तबला स्वयं बजाते हुए वे गायन करते थे। काव्य की कथावस्तु के आधार पर ही वे तत्सम्बन्धी संगीत रचना करते थे और विभिन्न देशी-विदेशी संगीत पद्धतियों को आधार मानकर उसके अनुरूप गीतों की रचना करते थे। यदि यात्रियों के क़ाफ़िले पर उन्हें कुछ लिखना है तो वे उसका आधार अरबी संगीत को बनाते थे। 'छन्दसी' नामक गीत नाट्य में उन्होंने संस्कृत के दस छन्दों का प्रयोग किया है। लगभग पाँच सौ प्रेमगीत और ५०० गीत आकाशवाणी के लिए रचे। काव्य के साथ वे संगीत में इतने डूबे रहते थे कि उनके अन्तर में नये-नये रागों का आविर्भाव होता रहता था। उनकी ऐसी रचनाएँ नवराग मालिका के अन्तर्गत प्रसारित होती रहती थीं। वे जिस राग को बनाते थे, उसके नाम का उल्लेख उसकी बंदिश में भी मिलता है।

## नज़रुल द्वारा आविष्कृत राग

नज़रुल के नवनिर्मित रागों में कुछ नाम इस प्रकार हैं—१. उदासी भैरव, २. अरुण भैरव, ३. रूद्र भैरव, ४. आशा भैरवी, ५. शिवानी भैरवी, ६. अरुण-रंजनी, ७. योगिनी, ८. देवयानी, ९. दौलन चाँपा, १०. वेणुका, ११. सन्ध्या मालती, १२. वनकुन्तला, १३. शंकरा, १४. मीनाक्षी, १५. रूप मंजरी, १६. निर्झणी, १७. शिव सरस्वती, १८. रक्त हंस सारंग।

रागों की तरह नई तालों पर भी उन्होंने गीत रचना की थी। उनकी बनाई 'नवनन्दन' ताल बीस मात्रा की है जिसमें कोई खाली नहीं है और उसके पाँच विभाग हैं। 'प्रिया-छन्द' नामक ताल सात मात्रा की है।



## नज़रूल के पुरस्कार

कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा 'जगतारिणी पुरस्कार' (१९४५)। भारत सरकार द्वारा 'पद्म भूषण'; रवीन्द्र भारती द्वारा 'डी० लिट०' (१९६६); बंगला देश के ढाका विश्वविद्यालय द्वारा 'डी० लिट०' (१९७३); बंगला देश की नागरिकता (१९७२)।

२६ अगस्त १९७६ को ढाका में नज़रूल ने अपनी नश्वर देह को त्यागा और उनकी इच्छा के अनुसार मस्जिद के बगल में उनकी कब्र बनाई गई। यह पूरा कृत्य राष्ट्रीय मर्यादा के साथ सम्पन्न हुआ।

## रंगमंच और फ़िल्म

नज़रूल सन् १९२६ में ग्रामोफ़ोन के सम्पर्क में आये तथा १९३१ से फ़िल्मी रंग मंच पर पर्दापण किया जिसमें उन्होंने अभिनय किया, संगीत निर्देशन किया, गीत गायन और गीत लेखन किया। उनकी कुछ प्रसिद्ध फ़िल्मों के नाम हैं—आलेया, ध्रुव, विद्यापति, सापुड़े, महुआ, श्यामलीर स्वपन, चौरंगी, नन्दिनी और चट्टग्राम अस्त्रागार लुंठन।

## नज़रूल इस्लाम की पुस्तकें

काज़ी नज़रूल इस्लाम ने काफ़ी कथा, नाटक, उपन्यास तथा संगीत से सम्बन्धित विपुल साहित्य की रचना की। जिसमें से अनेक ग्रन्थ और अलिखित साहित्य आज उपलब्ध नहीं है। फिर भी कुछ साहित्य का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

## कविता ग्रन्थ

अग्निवीणा (१९२२), छायानट (अक्टू० १९२५), दोलन चाँपा (अक्टू० १९२३), विषेर बांसी (अग० १९२४), भांगार गान (१९२४), चित्तनामा (अग० १९२५), पूवेर हाओआ (अक्टू० १९२५), साम्यवादी (दिस० १९२५), सर्वहारा (अक्टू० १९२६), फणिमनसा (अग० १९२७), सिंधुहिंदोल (१९२८), जंजीर (अक्टू० १९२८), संचिता (अक्टू० १९२८), प्रलय शिखा (१९३० में सरकार द्वारा ज़ब्त), चक्रवाक (अग० १९२६), निर्झर (१९४५), नूतन चाँद (मार्च १९४५), मरु भास्कर (१९५७), हाउस झड़ (बड़ी आँधी १९६१), झिगे फूल (१९२६)।

अनुवाद ग्रन्थ—रूवाइयातइ हाफ़िज़ (१८३०), काव्य आमपारा (१९३३), रूवाइयातइ उमरखैयम (१९५६)।

प्रबन्ध—राजबदीरजवान बंदी (१९२३), रुद्रमंगल (१९२६), दुर्दिनेरयात्री (१९२६), धूमकेतु (जन० १८६२)।

सम्पादन पत्रिका—लांगल साप्ताहिक (१९२५), गणवाणी (१९२६)।

उपन्यास—बांधनहारा (१९२७), मृत्यु क्षुधा (१९३०), कुहेलिका (१९३१)।



कहानी—व्यथार दान (१९२२), रिक्तेर वेदना (१९२५), शिक्षा माला (१९३१) ।

स्कूल पाठ्य पुस्तक—मक्तब साहित्य (१९३५), पिले पटका पतुलेरविये (१९६३), धूम जगानो पाखी (१९६४), सात भाई चंपा और धूम पाड़ानी मासी पीसो (१९६५), फूले फसले (१९८२), मोरेर पाखी (१९८२), तरुणेर अभियान (१९८२) ।

बाल कवितायें—पुनः सात भाई चंपा (१९८२), मोटकू माइती (१९८२), जागो सुन्दर चिर किशोर (१९८२), नज़रुल किशोर समग्र (२६ मई, १९८२) ।

बाल नाटिकायें—पुतुलेर विये (अप्रैल, १९३३), युगवाणी (१९२२) ।

नाटक—झिलिमिलि (नव०, १९३०), आलेया (१९३१), मधुमाला (जन०, १९५९) ।

विविध ग्रन्थावली—देवी स्तुति (१९६८), सन्ध्या मालती (१९७०), श्रेष्ठ नज़रुल स्वरलिपि (१९८९), नज़रुल रचनावली (ढाका से प्रकाशित १९७७) ।

संगीत ग्रन्थावली—कुल ३००० गीतों के रचयिता ।

बुलबुल (अक्टू०, १९२८), चोखेर चातक (दिस०, १९२९), चन्द्रबिन्दु (१९३०), नज़रुल गीतिका (१९६०), नज़रुल स्वरलिपि (जुलाई, १९३१), सुर शाक्री (सित०, १९३२), जुलफ़िकार (सित०, १९३२), वनगाति (अक्टू०, १९३२), गुल बगीचा (जून, १९३३), गीति शतदल (अप्रैल, १९३४), सुरलिपि (सित०, १९३४), गानेर माला (अक्टू० १९३४), सुर मुकुट (अक्टू०, १९३४), रांगाजबा (१९६६), नज़रुल गीति ।

इस प्रकार नज़रुल ने जिन ग्रन्थों की रचना की वे साम्प्रदायिकता, जात-पात, साम्यवाद और मानवता की दृष्टि से बेजोड़ हैं । गीतकार और स्वरकार होने की दृष्टि से उनकी रचनाओं में साहित्य और संगीत दोनों की छटा दिखाई देती है । नज़रुल ने लगभग साढ़े तीन हजार गीतों की रचना की है । रवीन्द्र भारती सहित बंगाल के लगभग सभी विद्यालयों में नज़रुल गीत-शिक्षा का लाभ उठा रहे हैं । कलकत्ता में नज़रुल एवं रवीन्द्र जयन्ती बड़े उत्साह के साथ मनाई जाती है ।

रवीन्द्र संगीत की तरह नज़रुल ने विविध लोकप्रिय धुनों को अपने संगीत में ढाला और इस बात को परवाह नहीं की कि उनमें विशुद्ध भारतीयता बनी रहे । धुन अन्दर से उठने वाली एक ऐसी हूक है जिसका न कोई देश होता है न कोई जाति होती है । नज़रुल ने स्वयं अपनी परम्परा का निर्माण किया । वे शब्दों की तरह सुरों से भी यथार्थ का बोध कराना चाहते थे । ठुमरी गायक ज़मीरुद्दीन खाँ से नज़रुल ने अपने काम की कुछ चीज़ें सीखीं । मुर्शिदाबाद के मंजू साहब से हिन्दी और उर्दू के गीतों का एक भण्डार उन्हें प्राप्त हुआ । इस प्रकार विभिन्न



प्रकार के गीत, गज़ल, ठुमरी और दादरा इत्यादि का उन्होंने एक बड़ा संग्रह स्थापित कर लिया था।

टैगोर ने नये-नये रागों का निर्माण करके उन्हें अपनी व्याख्या दी है लेकिन नज़रुल ने एक संगीतकार की भाँति भारतीय रागों को ग्रहण किया है। उन्होंने उन्हीं रागों का इस्तेमाल किया जो बंगला भाषा में मिलकर समुचित प्रभाव पैदा कर सकते हैं। उन्होंने लोक संगीत, शास्त्रीय संगीत और विदेशी संगीत विशेषकर अरेबिक धुनों को उनकी ताल की जीवंतता के कारण ही अपनाया। झूमर, बाउल, कीर्तन और श्यामा संगीत के लिए नज़रुल ने धुनें तैयार कीं तो इस बात का सदैव ध्यान रखा कि काव्य भाव और शैली की आत्मा को कोई आघात न पहुँचे। नज़रुल ने छोटी सी कालावधि में हजारों गीत तथा उनके संगीत की रचना की। लेकिन उनकी शैली का विस्तार बहुत बड़े रूप में हुआ। १९३०-१९४० के बीच नज़रुल ने लगभग एक दर्जन गीतों की रचना प्रतिदिन की। बंगाल के लोकप्रिय आधुनिक संगीत के निर्माता नज़रुल को टैगोर की तरह अपने काव्य को परिष्कृत करने का अवसर नहीं मिला। उनके अनेक गीतों में आत्मा को झकझोरने की शक्ति है तो कुछ गीत कमजोर तथा असन्तुष्ट रखने वाले भी हैं।

नज़रुल गीत गाने वाले प्रसिद्ध कलाकारों में युथिका राय, पद्मा रानी चट्टोपाध्याय, माधुरी चट्टोपाध्याय, बन्धोपाध्याय, पूर्वीदत्ता, कृष्ण मजुमदार, कल्याणी क्राजी, हेमन्ती शुक्ल, इन्द्राणीसेन, सिद्धेश्वर मुकर्जी, धीरेन्द्र मुकर्जी, धीरेन्द्र चन्द्र मित्र, धीरेन्द्र बसु, सुकुमार मित्र, अनूप घोषाल और विमान मुकर्जी के नाम प्रमुख हैं जिनमें स्व० सुप्रभा सरकार और स्व० मानवेन्द्र मुकर्जी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

बंगलादेश की नज़रुल गायिका फ़िरोज़ाबेगम का नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है। जिन्होंने स्वयं नज़रुल से संगीत सीखा था। इनके अतिरिक्त उमापद भट्टाचार्य, कामाक्षा बन्दोपाध्याय, ज्ञानदत्त, धीरेन्द्र दास, ज्ञानेन्द्रप्रसाद गोस्वामी, इन्दूबाला, के० मल्लिक, अंगूर बाला, कमला क्षरिया, हरिमति देवी, सुप्रभा सरकार, कमल तथा सुधीरादास गुप्ता और फ़िल्म के प्रसिद्ध संगीत निर्देशक सचिनदेव वर्मन ने भी स्वयं नज़रुल इस्लाम से संगीत सीखा था।

### नज़रुल के कुछ मानवतावादी गीत

मानवता और परस्पर प्रेम की भावना से ओतप्रोत नज़रुल के कुछ गीत इस प्रकार हैं—

अंजलि ये मेरी (लोक गीत), कोन कुले भिड़लो तारी : भक्ति गीत ( किस तीर पर लगी है नाव ), अंतरे तुम आछो : भक्ति गीत ( अन्तर में तुम बसो ), आजो कांदे कानने कोयलिया : खयाल ( अबहुँ रोवे वन में कोयलिया ), आजि कुमकुम आबीर : होरी ( आज कुमकुम अबीर ), मने पड़े आज से : काव्य गीत (आई याद आज जनम पुराने), ओ रे नील यमुनार जल : भक्ति गीत (ओरे नील



यमुना जल), हे प्रिय तोमार आमार मांझे : काव्य गीत (ओ पिया तेरे मेरे बीच), कावा जिया राते : इस्लामो गीत (कावा जियन रात में), खेलछो ए विश्व लये : भजन (खेलता तू विश्व संग), गुलेर जलसाय : हिजाज (गुले महफिल में), गंगा सिंधु नर्मदा : स्वदेश गान (गंगा सिंधु नर्मदा नदी), चैताली चाँदनी राते : राग प्रधान (चैत की चाँदनी में), जय होक शांतिर : स्वदेश गान (जय हो शांति की), खेलछे जलदेवी : विचित्र, विदेशी सुर (जल की देवी खेले), आमि जार नुपुरेर छन्द : काव्य गीत (जिनकी मैं पायल रुनझुन), जय विवेकानन्द : भक्ति गीत (जय विवेकानन्द), जाओ न माँ : वंदना गीत (जाओ न माँ), जातेर नामे बज्जाति सब : साम्यवादी (जात के नाम), जय वाणी विद्या दायिनी : वंदना गीत (जय वाणी विद्यादायिनी), देशे देशे गेये बेड़ाई : भटियाली (देश-देश में गाता फिरू), गाँगे जोआर एलो : काव्य गीत (दरिया में ज्वार आया), नयन भरा जल गो : काव्य गीत (नैना नीर गागर तेरा), परदेशी मेघ : राग प्रधान (परदेशी मेघ); पियु पियु विरही : खयाल (पियू पियू विरही), प्रिय जाई जाई : कजरी, गारा मिश्र : पिया अलविदा), प्रभात वीणा तव बाजे हे : काव्य गीत (बजी री वीणा), बाँसी बाजाय : लोक गीत (बंसी कौन बजाये), ब्रज गोपी खेले होरी : होरी (ब्रज गोपी खेले होरी), बरषा ओई एलो : राग प्रधान (बरखा हो आई बरखा), परजनमे देखा : काव्य गीत (मिलेंगे पिया), मम मधुर विनती : राग प्रधान (मेरी मधुर विनती), आमि भाई खेपा : बाउल (मैं हूँ 'बाउल'), महुआ वने : प्रिया छन्द काव्य गीत (महुआ वन में), ये घोर श्रावण : कजरी (ये घने सावन), जागो योगमाया : आगमनी (योग माया जागो), रिमझिम रिमझिम : कजरी (रिमझिम-रिमझिम), आधो आधो बोल : गजल (रूकी-रूकी जुवां), आमि कुल छेड़े : भाटियाली (लाज कुल की), सपने देखि : काव्य गीत (सपना देखा), भरिया पराण : काव्य गीत (सुनूं मैं गीत), साओन आसिलो : कजरी (सावन लौट आया), शुकनो पातार : अरबी धुन (सूखे पत्तों पे), मो एकि बृत्तेर : साम्यवादी (हम एक शाख के), वंधु, तोमार : गजल (हाय हमदम), एबार नवीन मंत्र : आगमनी स्वदेश (हो अब, नये मंत्र), आमार गहिन : भाटियाली (हमरी गहरी), आलगा करो : गजल (हौले-हौले कस), चाँद हेरिछे : काव्य गीत (हेरत चन्दा)।

**हिन्दी गीत**—सुन्दर हो तुम मनमोहन, कृष्ण गोपाल श्री कृष्णगोपाल, चल नौजवान चल, लगी है बाजी : ( नाट्य गीत ), कृष्ण-कान्हा और राधा में आज, पकड़े गये दिल के चोर रे (नाट्य गीत), जय दुर्गा, दुर्गतिनाशिनी, तुम प्रेम के घनश्याम, अगर तुम राधा होते श्याम।

## समीक्षा

नज़रूल संगीत की समीक्षा निम्नलिखित रूप में की जा सकती है :

१. यथार्थ पर आधारित वास्तविक जीवन का स्पर्श।
२. सीधा, सच्चा और प्रेम की गंध से परिपूरित संगीत।



३. विविध देशों की धुनों का प्रयोग ।
४. भारतीय-शास्त्रीय संगीत परम्परा के प्रति आस्था रखते हुए रागों का निर्वाह ।
५. पराक्रम, उत्साह, पीड़ा की भावना की प्रधानता ।
६. जन सामान्य को प्रभावित करने वाले छंद और ताल का समावेश ।
७. परम्परागत और आधुनिक संगीत शैलियों से युक्त गीत ।
८. ओजस्वी और असामान्य धुनों का निर्माण ।
९. प्राचीन रागों में कोई परिवर्तन न करके उन्हें उनके परम्परागत स्वरूप में रखते हुए उनका बंगाली गीतों में प्रयोग ।
१०. संगीत की विभिन्न शैलियों में उनकी प्रकृति और अपनी समझ के अनुसार उनका अलंकरण ।
११. आज बंगाल के आधुनिक संगीत में जब हम उनके इस्लाम धर्म को देखते हैं तो वहाँ काज़ी नज़रूल इस्लाम के ही दर्शन होते हैं । भले ही उसमें अन्य संगीत-कारों या रचनाकारों का योगदान हो ।

□ □ □



## बंगाल का लोक संगीत

### भवइया, गंभीरा, बाउल, भटियाली, चटका और कीर्तन

बंगाल का लोक संगीत पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण भागों के कारण विविध प्रकार का है तथा बहुत समृद्ध है। पद्य-गान की प्रथा इतनी प्रमुख है कि कभी-कभी वृद्ध लोग कहानी सुनाते हुए भी बीच-बीच में गाते हुए चलते हैं। संख्या की दृष्टि में तो स्वर बहुत कम होते हैं लेकिन उतार चढ़ाव और ताल की गति के कारण उनमें बड़ी विविधता दिखाई देने लगती है। बंगाल, गाँव प्रधान रहा है इसलिए देहाती जीवन की संस्कृति का शहरीकरण वहाँ अधिक नहीं हो सका। 'जात्रा' और 'कीर्तन' में रागों की छाप स्पष्ट दिखाई देती है, लेकिन वे लोक गीतों की श्रेणी में नहीं आते। अकेले में गाए जाने वाले गीत और समूह में गाए जाने वाले गीत अलग-अलग प्रकार के होते हैं।

बंगाल के लोकगीतों में भवइया, गंभीरा, बाउल, भटियाली तथा चटका प्रमुख हैं, जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है। इनके अतिरिक्त सारी ( मजदूर तथा मल्लाहों का गीत ), जारी ( पूर्वी बंगाल के मुसलमानों का मसिया गीत ), झूमर (पश्चिमी बंगाल से लगे हुए संताल क्षेत्र से सम्बन्धित कठिन बंदिश वाला गीत), करम गीत, पटुआ गीत, गाजन गीत, पंचाली गीत, धुआ गान, गाजीर गीत, देह तत्व गीत, मनासा गीत, भासान गीत, आल्काप गीत, बोलान गीत, आगमनी गीत, वारामासी गीत प्रचलित हैं लेकिन ये विभिन्न जाति, व्यक्ति और सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं जिनकी झलक हमें बहुप्रचलित सामाजिक लोक गीतों में मिल जाती है।

#### भवइया

'भवइया' के साथ परम्परागत रूप से दो तारा वाद्य बजाया जाता है। 'भवइया' में प्रायः प्रतीक्षामूलक विरह-गीत अथवा भावनात्मक गीत मूल होते हैं इसका उद्गम कूच बिहार माना जाता है।



‘भवइया’ की उत्पत्ति भाव शब्द से हुई है। ‘भौआ’ शब्द पशुओं के चरागाह के लिए प्रयुक्त होता है। बाओ शब्द उम तेज हवा के लिए प्रयुक्त होता है जिसके माध्यम से संगीत की स्वरलहरियाँ दूर से पास तक आ जाती हैं। भवइया नारी प्रधान होता है, परन्तु पुरुष ही इसके रचयिता और गायक होते हैं। कुछ शास्त्रकारों का कहना है कि ‘भवइया’ गीत उदासीन या अनासक्त व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है। यर्थाथ पर आधारित होने के कारण इनके शब्द और स्वर हृदय को उद्वेलित कर लेते हैं।

अवरोहात्मक रीति से प्रस्तुत विरह गीत, आरोहात्मक रीति से दो-तारा वाद्य की टंकोर से मेल खाते हुए ताल-प्रधान गीत, एक ही साँस में लम्बी धुन वाले गीत, विलाप करती हुई स्त्री के गीत और भँस की पीठ पर सवार व्यक्ति द्वारा पशु संचालित पदचापों की ताल का प्रतिनिधित्व करने वाले गीत। इन दृष्टियों से श्री हरिश्चन्द्र पाल ने ‘भवइया’ गीतों को क्रमशः ‘सितान भवइया’, ‘शिरोल भवइया’, ‘दरिया-ओ-दिघल नासा भवइया’, ‘गड़ान भवइया’ तथा ‘मैइ सालि भवइया’ नामक प्रकारों में बाँटा है।

‘भवइया’ का संगीत खमाज ठाठ पर आधारित रहता है अर्थात् इसके गीतों में कोमल निषाद अवश्य पाया जाता है। इन गीतों का ढाँचा राग पहाड़ी-झिझोटी के आरोह-अवरोह जैसा होता है। ध्वनि में निरन्तरता न होकर कुछ टूटी हुई रहती है उच्चारण रुक रहता है और धुन अवरोहात्मक रीति से ऊँचे स्वरों से नीचे स्वरों तक धीरे से आकर मिल जाती है जैसा कि भटियाली और बाओल गीतों में भी पाया जाता है। केवल ताल से ही इनका स्वतन्त्र अस्तित्व कायम रहता है। ‘भवइया’ गीतों में चार मात्राओं वाली ताल की प्रधानता रहती है लेकिन तीन मात्राओं के विभाग वाले ताल का भी काफ़ी प्रचलन है। जिसमें खेमटा के विविध स्वरूप देखे जा सकते हैं। ‘भवइया’ में कुछ गीत, बिना ताल या अत्यन्त विलम्बित लय-प्रधान ताल के भी होते हैं जो गीत के विषय के अनुसार भावना को उभारने में सहायक होते हैं।

पूर्वी बंगाल में नदी में विचरण करने वाले मछुवाहों (मल्लाहों) का संगीत ‘भटियाली’ कहलाता है और समुद्री तट में रहने वाले लोग ‘भवइया’ गाते हैं। इसी प्रकार उत्तरी बंगाल (बंगाल और बिहार का सीमा क्षेत्र) के क्षेत्र में नदी-तट के मछुवाहों के लोग ‘भवइया’ गाते हैं जो नृत्य रहित गीत है।

## गंभीरा

बंगाल के उत्तरी भाग का एक लोकोत्सव ‘गंभीरा’ है जिसमें भगवान शिव की पूजना-अर्चना की जाती है। इसकी उत्पत्ति के बारे में अलग-अलग मान्यताएँ हैं। कोई इसे देशज संगीत कहते हैं तो कोई द्रविड़, तिब्बत अथवा चीन से इसकी उत्पत्ति मानते हैं। ‘गंभीरा’ एक वृक्ष का भी नाम है जिसकी पूजा होती आई है। गभस्थी



सूर्य या अग्नि की पत्नी स्वाहा के लिए प्रयुक्त होता है। यह वार्षिक रूप से मनाया जाने वाला एक धार्मिक अनुष्ठान है, जिसमें गायन व नृत्य की प्रधानता रहती है। उत्तरी तथा पश्चिमी बंगाल के लोक संगीत की परम्पराओं से 'गंभीरा' विल्कुल अलग प्रकार का है फिर भी यह लोक संगीत के अन्तर्गत ही आता है। 'गंभीरा' की रचनाओं में जीवन की समस्याओं का चित्रण रहता है। इससे सम्बन्धित यात्रा, पांचाली और कविगान में युगानुसार कुछ बदलाव अवश्य आया है। इसमें आधुनिक और लोकिक गीतों के बीच की चीजें रहती हैं।

'गंभीरा' संगीत-उत्सव मार्च-अप्रैल (चैत्र-संक्रान्ति) के अवसर पर मालदार क्षेत्र में विशेष रूप से मनाया जाता है इसमें विभिन्न प्रकार के नृत्यों का आयोजन होता है जिनमें लोकप्रिय वाद्य-यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। 'गंभीरा' की धुन अपने प्रकार की होती है, लेकिन शिव-स्तुति के कारण गायक स्वेच्छा से अपने इच्छित शब्द व धुन भी उसमें जोड़ देते हैं। इनमें लोकप्रिय धुन व विचारों का समावेश भी कर दिया जाता है। पहले केवल परम्परागत लोक गीत और लोक नृत्यों को ही स्थान दिया जाता था, जो 'गाजन' में परिवर्तित होकर बंगाल के दक्षिणी भाग तक फैल गए। 'गंभीरा' में शिव की स्तुति व्यंग्यात्मक रूप से की जाती है जैसा कि शिवरात्रि के समय उत्तर भारत के पश्चिमी भाग में प्रचलित लोक संगीत में देखा जाता है।

विभाजन से पूर्व पूर्वी बंगाल के लोग हर-गौरी नृत्य और कालिकाक समारोह किया करते थे जिसके नृत्य गीत 'गंभीरा' के ही प्रकार हैं। 'गंभीरा' को 'गाजन' की तरह ही उल्लिखित किया जाता है लेकिन संगीत की दृष्टि से 'गंभीरा' की प्रस्तुति और भाव अलग प्रकार के होते हैं। वास्तव में बंगाल के जीवन में गाजन एक महत्वपूर्ण धार्मिक उत्सव के रूप में मनाया जाता है। जबकि 'गंभीरा' की लोकप्रियता मालदा जिले तक ही सीमित है। चैत्र माह के अन्तिम दिन से कम से कम पाँच दिन पूर्व 'गंभीरा' के आयोजन शुरू हो जाते हैं। संगीतोत्सव के साथ अन्य धार्मिक उत्सव तथा जोकाचार भी चलते रहते हैं जिसमें छोटा तमाशा, बड़ा तमाशा तथा हनुमान का मुखौटा नृत्य प्रमुख होते हैं। नृत्य में ढाक नामक बड़ा ढोल और आँसद का प्रयोग किया जाता है। गीतों में शिव के गुण और अवगुणों की चर्चा से श्रोता बड़े प्रसन्न होते हैं क्योंकि शिव को गाँव के बड़े-बूढ़े के रूप में माना गया है अतः पाप और पुण्य का सब दोषारोपण उन्हीं पर किया जाता है।

'शिव गाजन' और 'धर्म गाजन' के नाम से 'गाजन' लोकोत्सव मनाया जाता है जो 'गंभीरा' का ही प्रतिरूप है। शिव की तरह धर्म या धर्मनिरंजन नामक देवता को पूजने की प्रथा थी। बुद्ध धर्म की मान्यताओं के अनुसार बुद्ध को आदि धर्म के रूप में माना जाता था। अन्य देवी-देवताओं से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था। एक प्रकार से 'गंभीरा' को 'छऊ नृत्य' का दूसरा रूप माना जा सकता है। धर्म का स्वरूप निराकार था जिसे उपासना के द्वारा ही पाया जा सकता था। धर्म से



भावा-शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। इसलिए 'गाजन' में धर्म और आद्या की उपासना की जाती है। आदि बुद्ध, सूर्यदेव तथा महादेव इन तीनों धाराओं में बहता हुआ 'गंभीरा' और 'गाजन' अब कुछ आधुनिक रूप लेता जा रहा है।

## बाउल

बंगाल में बीरभूम के 'बाउल' बहुत प्रसिद्ध हैं। बाउल-गीतों की प्रस्तुति लय, ताल और वाद्य सभी लोक शैलियों को प्रतिबिम्बित करती है। इन गीतों में आध्यात्मिक, सामाजिक तथा प्रतीकात्मक भावों के समावेश की प्रधानता रहती है। बाउल-गायक प्रत्युत्पन्नमति होते हैं और आशु कवि की तरह जनता द्वारा दिये गए किसी भी विषय या शब्द पर काव्य गढ़कर तुरन्त ही उसकी प्रस्तुति करने में सक्षम होते हैं।

संगीत के साथ-साथ कलाकारों की आकर्षक नृत्य मुद्राएँ सबका मन मोह लेती हैं। वैसे तो 'बाउल' संगीत समस्त बंगाल में एक अत्यन्त लोकप्रिय लोक-संगीत-विधा है और गाँव-गाँव में उसका प्रचार है, लेकिन बीरभूम के बाउल गीतों में कुछ अलग विशेषता दिखाई देती है। यह लोग खमक, गोपीयंत्र, घुंघरू, मंदिरा और बायाँ (तबला) इस्तेमाल करते हैं जिसमें दो तारा भी रहता है। बंगाल के उत्तरी और पूर्वी क्षेत्रों में प्रायः दो तारा वाद्य का इस्तेमाल किया जाता है।

'बाउल संगीत' नृत्य प्रधान नहीं होता बल्कि काव्य के माध्यम से ताल और लय के सहारे शारीरिक संचालन द्वारा गीत की अभिव्यक्ति मात्र इसका लक्ष्य रहता है। एक हाथ में गोपीयंत्र या खमक रहता है, कमर पर बायाँ बँधा रहता है और पैरों में घुंघरू रहते हैं। नृत्य में केवल ठुमका लगाया जाता है और कुछ गतियों का प्रदर्शन करता हुआ नर्तक अपनी प्राकृतिक आवाज़ के सहारे भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है। कहीं-कहीं भैरवी राग के स्वर भी स्पष्ट दिखाई देते हैं जोकि बंगाल के अन्य संगीत में प्रायः नहीं देखे जाते।

वैष्णव बाउल का सम्बन्ध बंगाल के मध्य भाग में अधिक है जहाँ अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के श्यामा संगीत कवि के कीर्तनों का प्रभाव उन पर दिखाई देता है। बीरभूम के बाउल-संगीत में सा गु म प धु प, म गु रे सा, ग म धु नि सां, नि धु प म रे गु सा स्वर रहते हैं। तार सप्तक के स्वरों द्वारा बाउल-संगीत का पूरा प्रभाव निखर उठता है। 'बाउल' एक के बाद एक अपना प्रदर्शन करते रहते हैं जिसमें विराम नहीं होता। यह कई-कई दिन तक रात-दिन चलता रहता है। 'बाउल' की वेशभूषा में रंगीन साफ़ा और साधुओं का ढीला अँगरखा जैसा होता है जो वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव है।

'बाउल' एक सम्प्रदाय है उसी के आधार पर बाउल लोगों द्वारा गाये गीतों का नाम भी 'बाउल' पड़ गया। बाउल लोग विष्णु या चैतन्य महाप्रभु अथवा योगियों के सहजीय-सम्प्रदाय के होते हैं फिर भी वैष्णव भक्ति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। बौद्ध प्रभाव के कारण आरम्भ में बाउल ईश्वरवादी नहीं थे। बौद्ध धर्म का अवसान होने के बाद सिद्ध योगियों का सहजीय-सम्प्रदाय प्रकाश में



आया, इसलिए 'बाउल' गीतों में आत्म सिद्धि की अवस्थाओं और क्रियाओं का वर्णन होता है जिसमें दो अर्थ निकलते हैं एक सामान्य और दूसरा आध्यात्मिक। बाउल लोग फ़कीर या सन्यासियों का वाना पहनकर जब एकतारा और घुँघरूओं पर नाचते हुए गाते हैं तो उनकी आँखें शून्य में गड़ी रहती हैं।

## भटियाली

'भटियाली' का अर्थ है भाटा, जो प्रायः समुद्र में देखा जाता है। नदी या समुद्र का जल जब बढ़ता है और बड़ी-बड़ी लहरें किनारे की ओर आने लगती हैं तो उसे ज्वार कहते हैं। और जब पानी उतरने लगता है तो लहरों का वेग जल के केन्द्र की ओर घटने लगता है। इस स्थिति को भाटा कहते हैं। सम्भवतः इसी से 'भटियाली' या भटियाली लोक धुन का जन्म हुआ है। यह नाविकों (मल्लाहों) की प्रधान धुन है जिसे वे नदियों को पार करते समय गाते हैं। इसे एक अकेला व्यक्ति ही गाता है। खेतों के किसान भी 'भटियाली' गाते हैं और लम्बी-लम्बी आवाज़ खींचते हैं। सन्ध्या के समय घर लौटते हुए चरवाहे भी इसका प्रयोग करते हैं, लेकिन भिन्न-भिन्न पशुओं के चराने वाले पशुओं के गीतों में भिन्नता होती है। 'भटियाली' के गीतों में कुछ हेर-फेर के साथ बंगाली टप्पे का मिश्रण भी रहता है।

'भटियाली' बंगाल के अनेक प्रकार के लोकगीतों का मूल है जो श्रम से अधिक सम्बन्ध रखता है। इसकी धुन ताल-प्रधान नहीं होती लेकिन स्वरों का दीर्घ लगाव मानव के अन्तरतम को झकझोर देता है। प्रारम्भ में तार सप्तक के स्वरों का प्रयोग होता है और धीरे-धीरे स्वर मन्द्र सप्तक तक उतर आते हैं।

'भटियाली' की उत्पत्ति पूर्वी बंगाल से हुई है जो धीरे-धीरे समस्त बंगाल में फैल गई। अलग-अलग शब्द समूहों से 'भटियाली' के भाव और प्रकार का अन्दाज़ सहज ही लग जाता है जैसे—ननऽ ओ ऽ ना, ए ऽ इ, ओ रे, आ रे, हाय रे, जे, से, लो और गो इत्यादि। यह पुरुष प्रधान लोक धुन है जो बिलावल थाट पर आधारित होती है। कोई-कोई धुन ख़माज थाट से सम्बन्ध रखती है। मध्य सप्तक और तार सप्तक में बिहाग, पहाड़ी और झिझोटी के स्वर भी दिखाई पड़ते हैं इसलिए इसका ढाँचा किसी एक राग में निबद्ध नहीं होता इसीलिए 'भटियाली' की धुन अपना अलग अस्तित्व रखती है। बाउल सम्प्रदाय के लोग भी आजकल विभिन्न भावनाओं को व्यक्त करने वाली धुनों का प्रयोग करने लगे हैं।

## चटका

यह 'भवइया' का ही एक प्रकार है जो उत्तरी बंगाल तथा आसाम के गोआल पर ज़िला में लोकप्रिय है। प्रेमी और प्रेमिका के बीच नायक-नायिका, गोप-गोपी



एवं सामाजिक कुप्रथाओं का भाव रखते हुए 'चटका' के व्यंग्यात्मक गीत गाये जाते हैं। शास्त्रीय संस्कृति में जिस तरह बड़े खयाल के बाद छोटा खयाल या ठुमरी गाई जाती है, उसी तरह एक भवइया गायक अपने गायन का अन्त 'चटका' से करता है जिसकी धुन द्रुत गति में होती है। वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव होने के कारण इसमें राधाकृष्ण की छेड़छाड़ का मनोरंजक वर्णन होता है। गीत गद्य-प्रधान भी रहता है जो क्रमपूर्वक प्रश्नोत्तर ढंग से दो पात्रों का प्रतिनिधित्व करता है। 'चटका' गीतों की अवधि निश्चित नहीं रहती। दो तारा वाद्य पर द्रुत प्रहार और द्रुत ताल के कारण 'चटका' के सम्वाद साधारण लोगों का बहुत मनोरंजन करते हैं। 'चटका' गीत अश्लील उच्चारणों के कारण सभ्य समाज में कभी लोकप्रिय नहीं हुए।

बंगाल के लोक संगीत ने कवि, संगीतकार और चित्रकार सभी को प्रेरणा दी है और फ़िल्मों के माध्यम से वह पूरे भारत में गूँजा है।

## कीर्त्तन

मध्यकाल में राधा-कृष्ण की भक्ति से सम्बन्धित जो गीत बंगाल में गाये जाने लगे, उन्हें लोग 'कीर्त्तन' के नाम से जानने लगे। भगवान की कीर्ति से सम्बन्धित गान ही 'कीर्त्तन' कहलाता है।

भजन अपने में एक पूर्ण पद होता है लेकिन 'कीर्त्तन' किसी एक शब्द या एक पंक्ति को बार-बार दुहराने से ही हो जाता है। इसमें नामोच्चारण की प्रधानता रहती है। इसलिए इसे 'नाम संकीर्त्तन' भी कहा जाता है। 'पदावली कीर्त्तन' और 'लीला कीर्त्तन' में काव्य की प्रधानता रहती है। बंगाल में 'कीर्त्तन' का सबसे अधिक प्रचार चैतन्य महाप्रभु के समय से हुआ। सोलहवीं शताब्दी में नरोत्तम गोस्वामी ने 'पदावली कीर्त्तन' का प्रचार किया। इसी को 'लीला कीर्त्तन' कहा जाने लगा और बाद में 'गड़ेरहाटि' या 'गरानहाटि कीर्त्तन' कहलाने लगा। 'कीर्त्तन' के कुछ नए रूप भी सामने आये, जैसे मनोहर साही कीर्त्तन, रेनेटी, मन्दारिनी, झारखंडी आदि। मनोहर साही कीर्त्तनकार भगवान का लीला गान लय में व आगे की अपेक्षा द्रुत व मध्य लय में करने लगे। इसके बाद कीर्त्तनकार अपनी इच्छा व गायन क्षमता के अनुसार भक्तिभाव से छन्द बदलते हुए गाने लगे और यहीं से 'कीर्त्तन' की कई अलग रीतियों का जन्म हुआ जैसे कथकतादल, कथारतान, अखर आदि।

लोकभाषा में ग्रामीण जनता के बीच स्तुतिमूलक 'कीर्त्तन' गान को नाम मिला 'ढप कीर्त्तन'। 'ढप कीर्त्तन' में ग्रामीण अंचल के विविध कर्मकारों ने मिलकर लोक धुनों की छाया में उसे काफ़ी पल्लवित किया। १६-वीं शताब्दी के मध्य में जब बंगाल में ब्राह्म-धर्म का प्रचार बढ़ा तो उसका प्रभाव 'कीर्त्तन' पर भी पड़ा और



राधा-कृष्ण की भक्ति के स्थान पर 'कीर्त्तन' में निराकार ब्रह्म की उपासना के बाद के भाव प्रमुख हो गए। कीर्त्तन का प्रभाव जब बढ़ता गया और नगर के स्थान-स्थान पर उसका आयोजन होने लगा तो उसका नाम 'नगर संकीर्त्तन' पड़ गया। कीर्त्तन में खोल, झाँझ, मँजीरा, कठताल इत्यादि वाद्यों का प्रयोग स्थान-स्थान की सुविधानुसार किया जाता है। इसकी प्रस्तुति विलम्बित लय से प्रारम्भ होकर अति द्रुत लय तक की जाती है। किसी भी राग या धुन का समावेश कीर्त्तन गायन में आसानी से प्रवेश पा जाता है और कीर्त्तनकारों की संख्या का भी कोई प्रति-बन्ध नहीं रहता।

□ □ □



## मंच-प्रदर्शन और संगीत-समारोह

एक ज़माना था जब भारत में कला, किलों में कैद थी। राजाओं के आमोद-प्रमोद के लिए दरबारों में कलाकारों के प्रदर्शन होते थे। साधारण जनता को अपनी उच्च परम्पराओं और समृद्ध संस्कृति के बारे में ज्ञान प्राप्त करने का कोई साधन उपलब्ध नहीं था। विभिन्न आक्रामकों के राज्य करने से भारतीय संगीत में तरह-तरह के मिश्रण हो गए थे जिससे उसका शुद्ध स्वरूप ढक गया था।

स्वतंत्रता प्राप्त होते ही जैसे आज़ादी के दीवाने जेलखानों से छूटे, वैसे ही कलाकार, राज्यों की सीमाएँ लाँघकर जनता के बीच आ गए और मंच प्रदर्शनों के माध्यम से अपनी कला का प्रदर्शन करने लगे।

गायकों में अब्दुलक़रीम खाँ, अमीर खाँ, ओम्कारनाथ ठाकुर, मोघूबाई कुर्डीकर, हीराबाई बड़ौदकर, केसरबाई केरकर, कृष्णराव शंकर पंडित, गंगूबाई हंगल, चाँद खाँ, सिद्धेश्वरीदेवी, गिरिजादेवी, नारायणराव व्यास, विनायकराव पटवर्धन, डी० वी० पलुस्कर, निसार हुसैन खाँ, बड़े गुलामअली खाँ, चन्दन चौबे, बड़े रामदास, महादेवप्रसाद, डागर ब्रदर्स, मुश्ताक हुसैन खाँ, राजाभैया पूछवाले और विलायत हुसैन खाँ जैसे घरानेदार कलाकारों के दर्शन जनता ने पहली बार किए और विभिन्न घरानों की विशेषताओं को जाना।

तंत्र-वादकों में जनता ने अलाउद्दीन खाँ, हाफ़िज़अली खाँ, अलीअकबर खाँ, रविशंकर, विलायतखाँ, अब्दुलहलीम जाफ़र खाँ, बुन्दू खाँ, रामनारायण, गोपाल मिश्र, दबीर खाँ, बिसमिल्लाह खाँ, पन्नालाल घोष, मुश्ताकअली खाँ, राधिकामोहन मोइत्र, वी० जी० जोग जैसे कलाकारों को देखा-सुना और सरोद, वीणा, सितार, शहनाई तथा वाँयलिन इत्यादि वाद्यों पर भारतीय संगीत का कितना प्रभावशाली प्रदर्शन किया जा सकता है, इसे जाना।

ताल-वाद्य के वादकों में गामे खाँ, अहमदजान थिरकवा, कंठे महाराज, करामत खाँ, किशन महाराज, सामताप्रसाद 'गुदईमहाराज', अनोखेलाल, चतुरलाल



गोविन्दराव बुरहानपुरकर, सखाराम, पर्वतसिंह, जहाँगीर खाँ, ज्ञानप्रकाश घोष, हवीबुद्दीन खाँ और अल्लारखा खाँ ने चमत्कृत कर दिया।

नृत्य के क्षेत्र में उदयशंकर ने पूरे विश्व में भारतीय नृत्यकला की पताका फहराई और अन्य नर्तकों में साधना बोस, बालासरस्वती, रुक्मिणीदेवी, अरुण्डेल, गोपीनाथ, कनक रेले, कमला, ट्रावनकोर-सिस्टर्स, दमयन्ती जोशी, मृणालिनी साराभाई, यामिनी कृष्णमूर्ति, शंभू महाराज, दुर्गाप्रसाद, रोशनकुमारी, सितारा, गोपीकृष्ण तथा शान्तिवर्द्धन आदि ने तहलका मचाया।

इन कलाकारों ने भारतीय संगीत के ऐसे प्रदर्शन किए कि लोग हैरत में आ गए और स्व० विष्णुदिगम्बर तथा स्व० भातखंडे के स्वप्न पूरे हो गए। ऐसा लगा, जैसे 'भारत' ही नहीं, बल्कि 'भारतीय संगीत' आजाद हुआ है। कलकत्ता, बंबई, मद्रास, दिल्ली, वाराणसी इत्यादि नगरों में नियमित रूप से संगीत के अखिल भारतीय कार्यक्रम आयोजित होने लगे। प्राचीन संगीत-शास्त्रों का प्रकाशन हुआ और संगीत का शिक्षण देनेवाले स्कूलों में हजारों विद्यार्थी प्रवेश लेने लगे।

मंचप्रदर्शन से समाज और श्रोताओं में जागरूकता आई तथा शास्त्रीय संगीत को भारतीय संस्कृति का गौरव समझा जाने लगा। इस बीच किसी का ध्यान इस बात पर नहीं गया कि दरबारों से निकली संगीतकला असली संगीतकला नहीं है। वह तो कभी की मर चुकी थी। आमोद के लिए आदेश पर अवलम्बित रहने वाली संगीत-कला का ढाँचा मात्रा रह गया है, जिसमें चमत्कार और क्लिष्टता अधिक है, रस और भाव कम। इस अभाव ने सुगम संगीत और चित्रपट संगीत को जन्म दिया और फिर शास्त्रीय संगीत पुनः तिरोहित होने लगा। कलाकार विदेश भागने लगे, कुछ स्कूलों में लगे, कुछ सरकारी तंत्र से चिपक गए, कुछ ने फिल्म-जगत् की शरण ली और कुछ काल-कवलित हो गए। आयोजकों ने शास्त्रीय संगीत-समारोह में प्रवेश निःशुल्क कर दिया, परन्तु जनता तो उन निरीह भेड़ों की तरह होती है जो एक बार बाड़े से निकल गई तो हरी-हरी घास से तृप्त होकर ही शाम को घर लौटती है।

आज मंच पर गज़ल, भजन, लोकसंगीत, क़व्वाली और 'डिस्को' का साम्राज्य है। जो शास्त्रीय संगीतकार बचे हैं, वे किसी-न-किसी अन्य व्यवसाय से पेट भर रहे हैं। मंच पर उन्हें किसी एन्टिक वस्तु (प्राचीन कलाकृति) के रूप में देखने के लिए संगीत-शून्य फैशनपरस्त नर-नारी ही अधिक जाते हैं। जो कलाकार प्रताड़ित या पीड़ित हो चुके हैं, वे श्रोताओं को आकर्षित करने के लिए राग और साज़ की ब्याख्या पहले करते हैं। श्रोतागण शास्त्रीय संगीत के समारोह में भाग लेकर गौरव का अनुभव तो करते हैं, लेकिन घर आकर कलाकार के मुखमंडल, चमकते वाद्य, हाल के 'लाइट एण्ड साउण्ड-सिस्टम' तथा आइसक्रीम के गुण-दोषों की चर्चा



अधिक करते हैं और रेडियो पर कोई अँग्रेजी मूवी 'फ़िल्म' देखकर सो जाते हैं। कुछ श्रोता राग, ताल और प्रस्तुतीकरण की चर्चा भी करते हैं, लेकिन सुर की चोट खाए हुए ऐसे श्रोता तो इक्का-दुक्का ही होते हैं, जो मालकों या दरबारी के स्वरों से आहत होकर घर लौटते हैं।

मंच, जिसे शास्त्र में 'रंग' कहा गया है, श्रोता और कलाकार के बीच ऐसा पुल है, जो दोनों को आपस में मिलाता है। लेकिन यह तभी संभव होता है, जब कलाकार संगीत का रससिक्त प्रदर्शन करे और सहृदय श्रोता उसका श्रवण करे। यह नहीं भूलना चाहिए कि संगीत का रसास्वादन करने के लिए उसके शास्त्र से परिचित होना आवश्यक नहीं। संगीत यदि वास्तव में संगीत है तो वह मनुष्य ही नहीं, पशु को भी आकर्षित करने की क्षमता रखता है। अच्छे गायक, वादक और नर्तक का कर्तव्य है कि वह भारतीय संगीत के मर्म को समझकर श्रोताओं के हृदय में स्थित उन भावों को उभारे जो सोए पड़े रहते हैं। रसिक श्रोताओं को न जौनपुरी से मतलब है और न जैजैवंती से, न झपताल से और न आड़ा चौताल से। उन्हें तो दिल को छूनेवाली स्वर-लहरी और झुमाने वाली ताल चाहिए, जिसकी कभी व्याख्या नहीं की जाती और शास्त्र जिसे 'रंजको जनचित्तानाम्' कहता है।

देश, काल तथा सामाजिक स्थिति का ध्यान रखते हुए, परम्परा की रूढ़ियों का परित्याग कर नव-उत्कर्ष में से कुछ ग्रहण करते हुए, कलाकार मंच प्रदर्शन को सशक्त बना सकता है।

आज विज्ञान ने हमें एक नई दृष्टि प्रदान की है। चिल्लाकर गाने की अब ज़रूरत नहीं। अतिमंद्र सप्तक में चाय बेचने वालों की तरह आवाज़ निकालने की ज़रूरत भी नहीं और न घोड़ा-छाप हरटि की तानें चाहिए। इन सबसे शुद्ध संगीत की हत्या होती है। मंच पर सफलता प्राप्त करने के लिए तो कलाकार को अपने प्रदर्शन की तैयारी बड़ी समझ-बूझ के साथ करनी चाहिए। कितना समय किस प्रदर्शन के लिए पर्याप्त है, इसका ध्यान रखते हुए श्रोताओं के स्वभाव और उनकी आशा का ध्यान भी सदैव रखना चाहिए। गायक और गायन के गुण-दोषों का अध्ययन करके अपने संगीत को बहुत परिष्कार के साथ मंच पर प्रस्तुत करना चाहिए।

संगीत-समारोह आयोजित करने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। इसके लिए जिन प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है, वे इस प्रकार हैं :—

- ☐ बजट के अनुसार तथा श्रोताओं की रुचि का ध्यान रखते हुए कलाकार का ठीक चुनाव और उससे अनुबन्ध करना।
- ☐ समय से काफ़ी पहले हॉल बुक करना या पंडाल व्यवस्था का कॉन्ट्रैक्ट करना।
- ☐ शहर के उत्साही एवं कलाप्रेमी कार्यकर्ताओं की समितियाँ बनाकर उन्हें अलग-अलग कार्यों की ज़म्मेदारी सौंपना।



- मंच-व्यवस्था, लाउडस्पीकर-व्यवस्था, स्वागत-व्यवस्था, जलपान-व्यवस्था, आसनिक व्यवस्था ( सीटिंग-अरेन्जमेन्ट ), गेटकीपरी की नियुक्ति, आवश्यक प्रवेश-पत्र तथा कार्यकर्ताओं के लिए बैज (पहचान पदक) बनवाना ।
- टिकट-विक्रय के लिए केन्द्रों का चुनाव और मनोरंजन-कर सम्बन्धी औपचारिकताएँ ।
- शहर में पोस्टर या बैनर लगाने के लिए सम्बन्धित विभाग से अनुमति लेकर निर्धारित एवं स्वीकृति स्थानों पर उनकी व्यवस्था ।
- उच्च पदाधिकारी या कलाकार को मुख्य अतिथि के रूप में निमन्त्रित करने के लिए उनका स्वीकृति-पत्र प्राप्त करना ।
- समारोह के लिए पुलिस का आवश्यक बन्दोबस्त करने के लिए नगर के सम्बन्धित थाने में कुछ सप्ताह पहले आवेदन-पत्र भेजना ।
- फोटोग्राफ़र की व्यवस्था तथा समारोह की प्रेस-विज्ञप्ति एवं तत्संबन्धी विज्ञापन ।
- माइक्रोफ़ोन तथा लाउडस्पीकर देर रात तक चलाने के लिए पुलिस विभाग से स्वीकृति-पत्र लेना ।
- स्वागत-सत्कार के लिए आवश्यक सामग्री का संग्रह ।
- नगर के विशिष्ट व्यक्ति, कलाकार, राजकीय अधिकारी तथा पत्रकारों के लिए निमन्त्रण-पत्र भेजना एवं उनके बैठने से संबंधित आरक्षित स्थान की व्यवस्था ।
- सम्मेलन को सुचारु रूप से चलाने के लिए प्रसन्न-चित्त योग्य उद्घोषक का चुनाव और उसके लिए आवश्यक कार्यक्रम-सूची की तैयारी ।
- यदि कोई स्मारिका (सूवनीर) प्रकाशित करनी हो तो उसके छापने, विज्ञापन लेने तथा समारोह में उसके वितरण की व्यवस्था करना ।
- आकाशवाणी और दूरदर्शन द्वारा समारोह की रिपोर्टिंग (कवरेज) के लिए सम्बन्धित अधिकारियों से आवश्यक पत्र-व्यवहार ।
- संगीत समारोह की समाप्ति के बाद प्रयुक्त साज-सामान का उचित रखरखाव और अखबारों के लिए चित्र व समाचार भेजने की त्वरित कार्यवाही ।
- समारोह के पश्चात सम्मानित अतिथियों को धन्यवाद के पत्र ।

उपर्युक्त बातों का ध्यान रखने पर ही कोई आयोजन सफल होता है और मंच की प्रतिष्ठा बढ़ती है । मंच (रंग) पर प्रस्तुत की जाने वाली कला को भरत ने यज्ञ बताया है । 'नाट्यशास्त्र' में मंच-पूजन और मंच-प्रवेश का विस्तृत वर्णन दिया है और कहा है कि आँधी से प्रज्ज्वलित अग्नि भी इतनी शीघ्रता से भस्म नहीं करती जितनी तेज़ी से कला का अशुद्ध (दूषित) प्रयोग प्रयोक्ता को नष्ट कर डालता है ।

## आयोजक

आयोजक की पहली विशेषता है कला और कलाकार का सम्मान करना । मृदुभाषी आयोजक पहली मुलाकात में ही कलाकार का हृदय जीत लेते हैं । अतः अत्यधिक व्यस्त कलाकार भी ऐसे आयोजकों का निवेदित निमंत्रण अस्वीकार नहीं



कर पाते। आयोजक को संगीत-समारोह से सम्बन्धित समस्त कार्य-प्रणालियों का ज्ञान होना चाहिए, बात का धनी और समय का पाबन्द होना चाहिए। मंच की प्रतिष्ठा का ध्यान रखते हुए आयोजन की त्रुटियों पर सदैव ध्यान रखना चाहिए। केवल अर्थ को ही महत्त्व न देते हुए कला संरक्षक, सेवक और संवर्द्धक के रूप में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करनी चाहिए। गीत, वाद्य और नृत्य की विधाओं का अल्प ज्ञान होना भी आयोजक के लिए आवश्यक है। कला और कलाकार के प्रति श्रद्धावान एवं समर्पित आयोजक ही यशस्वी होता है।

## कलाकार

शास्त्र में कलाकार को 'रंग-कर्मि' कहा गया है। कलाकार को चाहिए कि वह संगीत-सम्मेलन के आयोजकों को सम्मान की दृष्टि से देखे। आयोजक यद्यपि संगीत के ज्ञाता नहीं होते, परन्तु कला रूपी नैया के केवट जरूर होते हैं। कलाकार को गुणों का भंडार होना चाहिए, क्योंकि वह सरस्वती-पुत्र कहलाता है। उग्र स्वभाव वाले कलाकार आयोजकों द्वारा पसन्द नहीं किए जाते। मनुष्य के क्रिया-कलाप और उसकी मनोवृत्ति का प्रभाव कला पर भी पड़ता है, अतः कलाकार को विनम्रता और शालीनता जैसे गुणों से सम्पन्न होना चाहिए। उसमें इतनी योग्यता होनी चाहिए कि वह श्रोताओं की आशा के अनुरूप अपनी कला का प्रदर्शन कर सके। प्रत्येक संगीत-सभा में विद्वान्, स्त्रियाँ, बच्चे, मूर्ख, कलाकार, रसज्ञ और असहृदय सभी प्रकार के श्रोता उपस्थित रहते हैं जिन्हें सन्तुष्ट करना आवश्यक होता है। कलाकार को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उसका संगीत यथोचित रस प्रदान करते हुए निश्चित अवधि में समाप्त हो जाए। आज समय का अभाव है और जीवन गतिशील है। मंच पर आने से पूर्व साजों को पहले ही मिलाकर तैयार रखना चाहिए और नर्तक को यह सावधानी बरतनी चाहिए कि उसकी वेश-भूषा इतनी ढीली न हो कि मंच पर परेशान करे। मेकअप भी ऐसा होना चाहिए जो पसीने से खराब न हो। इसी प्रकार घुँघरू खुलने या बिखरने नहीं चाहिए। सितार या सरोद के तार जब बार-बार उतरते हैं या बजाते-बजाते टूटते हैं तो इससे भी रस-भंग होता है। कोई-कोई गायक बहुत देर तक तानपूरा मिलाते रहते हैं या गला साफ़ करते रहते हैं, यह बुरा लगता है।

तात्पर्य यही है कि अरुचि उत्पन्न करने वाली या श्रोताओं को उबाने वाली हरकतों से कलाकार को बचना चाहिए। कार्यक्रम के प्रारम्भ और अन्त में प्रणतभाव से मंच-स्पर्श और श्रोताओं को प्रणाम करना भी कलाकार के लिए एक आवश्यक अंग बताया गया है।

## श्रोता

श्रोता से ही कला और कलाकार की शोभा है। किसी भी कला का रसास्वादन



करने के लिए श्रोता का रसज्ञ और सहृदय होना आवश्यक है। यदि वह इन गुणों से सम्पन्न नहीं होगा तो न गायन का आनन्द उठा सकेगा, न वादन का और न नृत्य का। यदि सहृदय होने के साथ श्रोता कला-पारखी भी हो तो वह 'उत्तम-श्रोता' कहलाएगा। ऐसे श्रोताओं को पाकर समारोह की गरिमा बढ़ती है।

श्रोता को चाहिए कि वह कला-प्रदर्शन के बीच मार्मिक स्थलों पर कलाकारों को समय-समय पर दाद देकर उन्हें प्रोत्साहित करता रहे ताकि उत्तम कला-प्रदर्शन के लिए उन्हें प्रेरणा मिलती रहे। गुणग्राही श्रोताओं को पाकर आयोजक भी समारोह को सार्थक और सफल मानता है। कभी-कभी श्रोता परस्पर इतना वार्तालाप करते हैं कि उससे अन्य श्रोताओं को व्यवधान होता है और कलाकार का ध्यान भी बँटता है। इस प्रकार के आचरण सम्बन्धी दोषों से श्रोता को मुक्त रहना चाहिए। कुछ श्रोता प्रशंसा करने में कृपण होते हैं अथवा प्रशंसा की अभिव्यक्ति करने में अपमान महसूस करते हैं। यह अहंकार का लक्षण है, जिसे त्याग देना चाहिए। कला की प्रशंसा भी एक प्रकार की उपासना है, जो कालान्तर में श्रोता को सुसंस्कृत बनाते हुए उसे संस्कार-मंडित करती है। कला और कलाकार के प्रति श्रद्धा, गुणानुरागी श्रोता का परिचायक है।

मंच को श्रेष्ठ आयोजक, आयोजक को श्रेष्ठ कलाकार और कलाकार को श्रेष्ठ श्रोता की अपेक्षा रहती है।

### आकाशवाणी और दूरदर्शन के कार्यक्रम

भारत में संगीतकारों को सबसे पहले आकाशवाणी ने ही मंच प्रदान किया। कलाकारों में शास्त्रीय-संगीत, सुगम-संगीत तथा लोक-संगीत के अनुसार वर्ग-विभाजन करके उनका ध्वनि-परीक्षण (Audition) किया गया और उनकी श्रेणियाँ निर्धारित करके कार्यक्रम देने के लिए आमंत्रित किया गया। इससे सरकार को अपनी नीतियाँ प्रचारित करने का लाभ तो मिला ही, जनता को मनोरंजन का एक बड़ा माध्यम प्राप्त हुआ और कलाकारों में कला के प्रति उत्साह जाग्रत हुआ। बाद में आकाशवाणी का विस्तार हुआ तो क्षेत्रीय कलाकारों के लिए भी कला-प्रदर्शन के द्वार खुल गए। इसके बाद अखिल भारतीय संगीत कार्यक्रम, वाद्यवृन्द, चित्रपट संगीत, गीत-नाट्य तथा ऑडियोटोरियम में श्रोताओं की उपस्थिति में आयोजित कार्यक्रमों के समावेश से आकाशवाणी की लोकप्रियता बढ़ती चली गई और संगीतकला को प्रोत्साहन मिलता रहा।

जनजीवन में सांस्कृतिक उत्थान की चेतना जाग्रत होने से संगीत, साहित्य तथा अन्य कलाओं का चतुर्दिक विकास हुआ। इसी समय दूरदर्शन (Television) का आविर्भाव हुआ। जो कलाकार केवल कानों से सुने जाते थे वे अब प्रत्यक्ष भी



दिखाई पड़ने लगे। गायन-वादन के अतिरिक्त नृत्यकला के कलाकार भी इससे जुड़ गए। संगीत-कार्यक्रमों के अलावा संगीत और नृत्य के पाठ, संगीत पत्रिका, संगीत-परिसम्वाद, संगीत-प्रतियोगिता, पाश्चात्य संगीत, राष्ट्रीय वाद्यवृन्द, वृन्दगान, चित्रपट-संगीत तथा प्रवासी भारतीयों के लिए विविधरंगी अनेक कार्यक्रम श्रोता और दर्शकों का मन मोहने लगे। दूरदर्शन पर महान् संगीतकारों से सम्बन्धित वृत्तचित्र और 'सीरियल्स' भी दिखाए जाने लगे।

आज आकाशवाणी के ६१ प्रसारण केन्द्र और दूरदर्शन के अनेक केन्द्र भारतीय जनजीवन को ऐसा मनोरंजन प्रदान कर रहे हैं जिसकी कल्पना भरत और शार्ङ्गदेव को भी शायद नहीं रही होगी। आवश्यकता इसी बात की है कि संगीतकार अपनी साधना को संकीर्णता और अपरिपक्वता की सीमा से निकलकर उसे एक रिझाने वाली कला का स्वरूप प्रदान करें ताकि भारतीय संस्कृति को संगीत के स्वर्ण-मुकुट से अलंकृत किया जा सके।

□ □ □



# चित्रपट-संगीत, नाट्य-संगीत

## और

## ऑडियो-विजुअल-विधा

### चित्रपट-संगीत या फ़िल्म-संगीत

चित्रपट-संगीत या फ़िल्म-संगीत का इतिहास सवाक् फ़िल्म 'आलमआरा' से शुरू होता है जो १४ मार्च, १९३१ ईसवी को प्रदर्शित हुई। इसके पहले मूक फ़िल्में बना करती थीं और भारत में लोक-संगीत, नाट्य संगीत और शास्त्रीय संगीत का अधिक प्रचार था। मूक फ़िल्मों में प्रदर्शन के समय एक व्यक्ति बोलकर समझाता रहता था कि दृश्य में अमुक चीज़ दिखाई जा रही है। एक हारमोनियम-वादक और एक तबला-वादक लोगों का मनोरंजन करने के लिए रहता था। वे दृश्य के भाव के अनुसार वादन करके पार्श्व-संगीत की कमी पूरी कर देते थे।

'आलमआरा' के बाद फ़िल्मों में नृत्य और गीत की परम्परा चलती रही, लेकिन सभी कलाकारों को खुद गाना पड़ता था। ऐसे नायक और नायिकाएँ चमकने लगे, जो अभिनय के साथ-साथ संगीत में भी कुशल होते थे; जैसे—अशोककुमार, देविकारानी, खुरशीद, नूरजहाँ, सुरैया, सहगल, पहाड़ी सान्याल, के० सी० डे, सुरेन्द्र, काननबाला, शान्ता आष्टे, राम मराठे, शाहू मोदक, फ़ीरोज़ दस्तूर, जद्दनवाई आदि। अभिनय और गायन में कुशल होने के कारण इन सब कलाकारों की जबरदस्त ख्याति हुई।

जब बोलती (सवाक्) फ़िल्में शुरू हुईं तो कथा, संवाद और संगीत तीनों शक्तिशाली होने लगे। लोक-संगीत और शास्त्रीय संगीत के विविध रूपों से फ़िल्मों में जान पड़ गई। एक-एक फ़िल्म में दस-दस गीत आने लगे। कोई फ़िल्म अच्छे



संगीत के कारण सफलता प्राप्त करती, तो कोई अच्छी कथा के कारण ! जिस फ़िल्म की कथा और संगीत दोनों सशक्त होते थे, उसकी सफलता का तो कहना ही क्या ?

संगीत का निर्माण करनेवाले संगीतकार भी बढ़ने लगे । अलग-अलग प्रांतों से जो संगीत-निर्देशक फ़िल्मों में आए, उन सबने अपने घराने और अपने प्रान्त के संगीत से फ़िल्मी धुनों को चटकीला बनाया । इससे फ़िल्म-संगीत इतना समृद्ध होता गया कि छोटे-छोटे बच्चे भी उसे गलियों में गाने लगे । एच० एम० वी०, टिव्न्, कोलम्बिया, हिन्दुस्तान और यंग-इण्डिया कम्पनी के डिस्क-रिकार्ड लाखों की संख्या में बिकने लगे । ध्रुवपद, धमार, तराना, क़वाली, ग़ज़ल, दादरा, भजन और लोकगीत फ़िल्मी दायरे में आकर ऐसे सज उठे कि लोग उन्हें सुनकर झूम उठे ।

गायकों के साथ-साथ संगीत-निर्देशकों की दुनिया भी बढ़ने लगी । झंडे खाँ, सरस्वतीदेवी, गुलाम मुहम्मद, एस० एन० त्रिपाठी, कृष्णराव चोणकर, आर० सी० बड़ाल, शंकरराव व्यास, नौशाद अली, रोशन, खेमचन्द प्रकाश, एस० डी० बर्मन, मदनमोहन, सलिल चौधरी, सी० रामचन्द्र, हुस्नलाल-भगताराम, शिवराम, ओ० पी० नय्यर, तिमिर बरन, शंकर-जयकिशन, बसन्त देसाई, जमालसेन, कल्याणजी-आनन्दजी, रवि, लक्ष्मीकान्त-प्यारेलाल, आर० डी० बर्मन, अनिल विश्वास, सुरेन्द्र कोहली, उषा खन्ना, जी० एस० कोहली, दत्ताराम, एन० दत्ता, अजीत मर्चेन्ट, हृदयनाथ मंगेशकर, हेमन्तकुमार, लच्छीराम, सतीश भट्ट, आदित्य नारायण, रामलाल, रवीन्द्र जैन, सोनिक-ओमी, जयदेव, खैयाम, इकबाल कुरेशी, जे० पी० कौशिक, रघुनाथ सेठ, विजयराघव राव इत्यादि संगीत-निर्देशकों का नाम भी खूब हुआ । अनेक गीत उनकी विविध संगीत शैलियों और रचनाओं के कारण लोकप्रिय हुए ।

जब फ़िल्मों में साउण्ड ट्रैक जुड़ गया, तो अभिनेता-अभिनेत्री के बजाय, अच्छे गायक-गायिकाओं से गीत गवाए जाने लगे और पार्श्व-गायन की एक नई विधा ने जन्म लिया । फिर तो अमीर बाई कर्नाटकी, जोहरा बाई, दुरािनी, जूथिका राय, शमशाद बेगम, लता मंगेशकर, गीता दत्त, आशा भोंसले, मुहम्मद रफ़ी, मुकेश, मन्नाडे, सुमन कल्याणपुर, सुरैया, मुबारक बेगम तलत महमूद, सी० एच० आत्मा, हेमन्तकुमार, महेन्द्रकपूर, उषा मंगेशकर, सुलक्षणा पंडित, सुरेश वाडकर तथा येशुदास जैसे प्राचीन और अर्वाचीन गायक-गायिकाओं के योग से फ़िल्म का संगीत अत्यन्त कर्णप्रिय और प्रभावशाली हो गया । गायकों के कंठ-गुण के आधार पर संगीत-रचनाएँ निर्मित होने लगीं ।

अभिनेता-अभिनेत्रियों का चुनाव संगीत की कोई अड़चन न होने के कारण अब उच्च स्तर पर होने लगा । फलस्वरूप अभिनय और गायन दोनों का स्वतन्त्र रूप से अपूर्व विकास हुआ ।



नृत्य के क्षेत्र में अजूरी, सितारा, कुम्हू, शीलाबाज, हेलन, मीनू, मुमताज और गोपीकृष्ण-जैसे नर्तकों के आ जाने से पार्श्व-गायन की तरह फ़िल्मी नृत्यों का भी अद्भुत विकास हुआ। ललिता, पद्मिनी, रागिनी, वैजयंतीमाला, वहीदा रहमान, आशा पारीख, हेमामालिनी, जयाप्रदा, मीनाक्षी शेषाद्रि और श्रीदेवी-जैसी भरतनाट्यम में दक्ष नृत्यांगनाएँ उत्तर भारतीय फ़िल्म-क्षेत्र में जगमगाने लगीं। जैसे-जैसे विज्ञान की प्रगति होती गई, वैमे-वैसे उत्तर तथा दक्षिण का फ़िल्म-संगीत समृद्ध होता गया।

भीमसेन जोशी, किशोरी अमोणकर, बड़े गुलाम अली खाँ, चित्ता-जगजीतसिंह, लक्ष्मीशंकर, निर्मला अरुण, गुलाम मुस्तफा खाँ, वाणी जयराम, डी० वी० पलुस्कर, अमीर खाँ, मल्लिकार्जुन, बाल गंधर्व, गोविन्दराव टेंबे, दिलीप चंद्र वेदी, मनहर बर्वे, विष्णुदेव चटर्जी, पं० लक्ष्मणप्रसाद, मुश्ताक अली खाँ, अमरनाथ, विनायकराव पटवर्धन, सरस्वती रानी, हीराबाई बडौदकर जैसे गायक; रविशंकर, अली अकबर खाँ, पन्नालाल घोष, हरिप्रसाद चौरसिया, विलायत खाँ, रईस खाँ, रामनारायण, अब्दुल हलीम जाफर खाँ, शिवकुमार शर्मा, ब्रजनारायण, जरीन दासवाला (शर्मा), अल्लारखा खाँ, करोम खाँ, ब्रिस्मिल्लाह खाँ, सामताप्रसाद (गुदई महाराज) जैसे वादक और उदयशंकर, अमला शंकर, मैडम मेनका, लच्छू महाराज, गौरीशंकर, रामगोपाल, साधना बोस, रोशनकुमारी, झवेरी सिस्टर्स, गोपी कृष्ण, सितारा, रोशनकुमारी, मल्लिका साराभाई, ममता शंकर, नटराज बशीर, दमयंती जोशी, पी० एल० राज, वजीफदार बहनें, हेमामालिनी, जयाप्रदा, मीनाक्षी शेषाद्रि, आशा पारीख तथा द्रावनकोर सिस्टर्स (ललिता, पद्मिनी, रागिनी) जैसे शास्त्रीय नर्तकों के पदार्पण से फ़िल्म संगीत का क्षेत्र निरन्तर सशक्त होता गया और यही कारण है कि वह आज लोक में व्याप्त होकर जन-जन का मनोरंजन कर रहा है।

नृत्य और गीतों के साथ-साथ फ़िल्म के पार्श्व-संगीत का भी बड़ा विकास हुआ। पार्श्व-संगीत अभिनय और दृश्य को अधिक प्रभावशाली बनाने में सहायता करता है, उसे फ़िल्म का अभिन्न और आवश्यक अंग समझना चाहिए। फ़िल्म का एक-एक दृश्य देखकर उसके अनुरूप पार्श्व-संगीत का निर्माण किया जाता है और फिर उसे अलग साउण्ड ट्रैक पर रिकॉर्ड कर लिया जाता है। बाद में संवाद, गीत, पार्श्व-संगीत और ध्वनि के अलग-अलग प्रभावों वाले समस्त साउण्ड-ट्रैकों को मिलाकर एक ही पॉज़िटिव फ़िल्म-ट्रैक पर उतार लिया जाता है, जिसे फ़िल्म की भाषा में 'फाइनल-प्रिंट' कहते हैं।

पहली सवाक् फ़िल्म 'आलमआरा' से लेकर आज तक हजारों फ़िल्में बन चुकी हैं और लाखों गाने रिकॉर्ड हो चुके हैं, जिनमें सर्वाधिक संख्या अकेली लता मंगेशकर के गीतों की है, इसलिए फ़िल्म-संगीत की समृद्धि और लोक-प्रियता का प्रमुख श्रेय कोकिलकंठी लता मंगेशकर को ही जाता है।



संगीत की ऐसी कोई विधा नहीं, जिसका परिष्कृत और मधुरतम रूप फ़िल्म-संगीत में प्रयुक्त न हुआ हो। पाक़ीज़ा, बसंत बहार, तानसेन, बैजू बावरा, गूँज उठी शहनाई, झनक-झनक पायल बाजे, रानी रूपमती, नागिन, नवरंग, सरगम तथा नाचे मयूरी इत्यादि अनेक संगीत-प्रधान फ़िल्मों ने भारतीय संगीत-जगत् पर अपना एक अमिट प्रभाव छोड़ा है।

रूढ़िवादी धारणाओं के कारण फ़िल्म-संगीत अर्थात् चित्रपट संगीत के प्रति हमें संकुचित वृत्ति नहीं रखनी चाहिए। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें गुण और दोष न हों। शास्त्रीय संगीत जटिलता चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति की प्रधानता और भाव-प्रवणता की कमी के कारण विकृत हुआ तो फ़िल्म-संगीत असभ्य अभिव्यक्ति, अश्लील शब्दावली और पॉप म्यूज़िक तथा डिस्को-जैसे पाश्चात्य संगीत के बेमेल मिश्रण से निकृष्टतम स्वरूप को प्राप्त हुआ। इसका परिणाम स्पष्ट है—समाज अपने लोक-संगीत और शास्त्रीय संगीत के मूल स्वरूप और तत्त्वों से अनभिज्ञ होता जा रहा है। चाय और कॉफ़ी पीते-पीते वह असली दूध का स्वाद ही भूल गया है। परिवर्तन कोई पाप नहीं, प्रगति का परिचायक है, परन्तु बुद्धिमत्ता इसी में है कि नशा होते हुए भी हमें अपना घर और अपना देश याद रहे।

### नाट्य संगीत

फ़िल्मों से पहले समाज में नाटकों का प्रचार था। पारसी, गुजराती और बंगाली 'नाट्य' मंडलियों के साथ मराठी 'नाट्य' मंडलियों की धूम मची हुई थी। जिस प्रकार आज फ़िल्मों से मनोरंजन होता है, उसी प्रकार 'नाटक' दिनभर के थके-माँदे समाज को कलाजन्य आनन्द प्रदान करते थे। संगीत 'नाटक' का एक अभिन्न अंग था। केवल संगीत के लम्बे कार्यक्रम श्रोताओं को उबा देते थे और संगीतविहीन 'नाटक' बड़ा रूखा प्रतीत होता था। इसीलिए नाटकों के साथ संगीत और नृत्य घुलने-मिलने लगे। बंगाली नाटकों में रवीन्द्र संगीत ने प्रश्रय पाया, पारसी नाटकों में ग़ज़ल, उत्तर-भारतीय नाटकों में लोक-संगीत, क़व्वाली, दादरा और ग़ज़ल तथा मराठी नाटकों में भजन और भाव-गीतों ने स्थान बना लिया।

समाज की स्थितियों, परम्पराओं और संस्कारों के अनुसार नाटक में संगीत का अपना अलग स्थान बनता गया और तत्सम्बन्धी क्षेत्र के कलाकारों द्वारा उसका संवर्द्धन होने लगा।

महाराष्ट्र में 'नाट्य-संगीत' का अभ्युदय होता गया, क्योंकि उसे बड़े-बड़े शास्त्रीय गायक-वादकों का सहयोग मिलता रहा, जो उस काल में अधिकांशतः उसी प्रांत में थे। मराठी जनता में अध्यात्मपरक भावना का अधिक विकास था, इसीलिए लोग जितनी रुचि नाट्य में लेते थे, उतनी ही संगीत में भी। इसके फलस्वरूप बड़े-बड़े गायकों को संगीत के साथ अभिनय भी अपनाना पड़ा, जिनमें मास्टर दीनानाथ



मंगेशकर, बालगंधर्व, राम मराठे, सवाई गंधर्व, शान्ता आपटे, हीराबाई वडोदकर जैसे कलाकारों के नाम प्रमुख हैं। जो कलाकार अभिनय के अतिरिक्त केवल भाव-गीतों का गायन करते थे, उनका भी मराठी नाट्य-संगीत के मंच पर बहुत स्वागत हुआ। वसन्तराव देशपांडे, कुमार गंधर्व, कृष्णराव चोणकर, प्रभाकर काव्हेकर, जितेन्द्र अभिषेकी, सुधीर फडके, रामदास कामत, मास्टर कृष्णराव और भालचंद्र पेण्डारकर जैसे संगीतकारों को नाट्य-संगीत के कारण ही ख्याति प्राप्त हुई।

भाव-गीत और भक्ति-गीतों के नवसृजन से नाट्य-संगीत का मंच समृद्ध होने लगा, जिसका प्रभाव आज चित्रपट-संगीत के युग में भी कम नहीं हुआ है। उत्तर-भारत में मुस्लिम प्रभाव के कारण गज़ल, दादरा और ठुमरी का विकास हुआ तो महाराष्ट्र में अभंग, कीर्तन और भाव-संगीत विकसित हुए। महाराष्ट्र के बड़े-बड़े संगीताचार्य शास्त्रीय गायन के बाद नाट्य-संगीत का प्रदर्शन करने लगे। इस प्रकार मराठी नाट्य-संगीत भारतीय संगीत में गज़ल-ठुमरी की भाँति स्वतन्त्र अस्तित्व लेकर उभरा और इसी से नाट्य-संगीत की एक नई शैली का जन्म हुआ, जिसे सन्त परम्परा की देन माना जा सकता है।

नाट्य-संगीत शास्त्रीय-संगीत की समस्त विशेषताओं से अलंकृत है और भावप्रधान होने के कारण मानव मन को उत्कर्ष की ओर ले जाती है, इसीलिए संगीत-जगत् में उसने बहुत शीघ्र अपना सम्मानपूर्ण स्थान बना लिया।

### ऑडियो विज़ुअल-विधा

जो चीज़ सुनी जा सके, उसे 'ऑडियो' और जो देखने से सम्बन्ध रखती हो, उसे 'विज़ुअल' कहते हैं। जब देखना और सुनना एकसाथ हो तो उसे ऑडियो-विज़ुअल (Audio Visual) कहते हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धानों ने ध्वनि के प्रक्षेपण और ग्रहण करने की तकनीक को बहुत विकसित कर लिया है। ध्वनि शास्त्र वाले अध्याय में इसका विषय विवरण है।

कोई भी संगीत आज आकाशवाणी के माध्यम से हम घर बैठे सुन सकते हैं। इस सबके पीछे एक बड़ा विज्ञान है, जिसने हमारे लिए इसे सुलभ किया है। जिस प्रकार सर्जरी के क्षेत्र में मनुष्य के अंग-प्रत्यंगों की पूरी जानकारी एवं उनके रोपण-प्रत्यारोपण की विधि विकसित हुई है, उसी प्रकार ध्वनि और प्रकाश के एक-एक आन्दोलन और बिन्दुओं को पकड़कर उनका वैज्ञानिक परिष्कार कर लिया गया है। जब अनेक गायक या वादक अपने संगीत का प्रदर्शन कर रहे हों तो उनकी ध्वनियों को सन्तुलित करने का काम ऑडियोग्राफी के विशेषज्ञ (Recordist) द्वारा सम्पन्न होता है। वह ध्वनि के गुणों से परिचित होता है और यह भी जानता है कि मनुष्य के कान किस ध्वनि को किस रूप में सुनना चाहते हैं।



ऑडियो की तरह विजुअल के क्षेत्र में भी यही बात लागू होती है। अन्तर इतना ही है कि ऑडियो में कान और ध्वनि तथा विजुअल में आँख और दृश्य का सम्बन्ध रहता है। किसी भी दृश्य को विद्युत-तरंगों में परिवर्तित करके उसे फ़िल्म, डिस्क, वीडियो टेप, सी. डी. अथवा अन्य किसी भी चुम्बकीय (मैग्नेटिक) उपकरण पर अंकित कर लिया जाता है और उसका पुनर्प्रसारण सम्भव हो जाता है। विजुअल विधा में दक्ष तकनीशियन, कैमरे के माध्यम से दृश्य-कला को उसके परिमाजित एवं मूल रूप में सुरक्षित रख सकता है। रंगों का चुनाव, आकृतियों का संयोजन और प्रकाश का समुचित प्रयोग तकनीशियन की दक्षता पर निर्भर करता है। विस्तार से यह सब इलैक्ट्रॉनिक्स के अन्तर्गत पढ़ाया जाता है।

आज ऑडियो-विजुअल की विधा उत्कृष्ट और उच्चतम रूप में हमारे सामने है, तभी हम ऑडियो और वीडियो का आनन्द ले पाते हैं। घण्टों तक दिखाई देने वाले दृश्यों को ध्वनि सहित एक छोटी-सी वीडियो-टेप, चिप्स या सी० डी० (काम्पेक्ट डिस्क) पर रिकार्ड करके शताब्दियों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। ऑडियो-विजुअल को यदि मन या हृदय की संज्ञा दी जाय तो कम्प्यूटर-प्रणाली को उसका मस्तिष्क कहा जा सकता है जिसने देखने, सुनने और समझने के अनन्त द्वार खोल दिए हैं। भारतीय संगीत एवं अन्य कलाओं के विकास से ऑडियो-विजुअल का माध्यम नई प्रणाली और नई परम्परा को जन्म देगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

□ □ □



## नाट्य और संगीत

मानव में स्वभाव से हो अनुकरण करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। यही प्रवृत्ति बंदर इत्यादि कुछ पशुओं में भी पाई जाती है। इस वृत्ति का एकमात्र लक्ष्य आनन्द प्राप्त करना है।

अनुकरण करने की प्रवृत्ति के आधार पर ही नाट्य या नाटक की सृष्टि हुई जिसमें मानव तथा मानवेतर प्रकृति का अनुकरण किया जाता है। शास्त्र के अनुसार युद्ध से थके हुए देवताओं का मनोरंजन करने के लिए ब्रह्मा ने 'नाट्यवेद' की रचना की। ब्रह्मा ने महर्षि भरत को यह ज्ञान दिया और फिर भरत ने अपने सौ पुत्रों को नाट्य की शिक्षा दी ताकि सम्पूर्ण लोक में उसका प्रचार हो सके।

भरत ने नाट्य सम्बन्धी सूत्रों का एक ग्रंथ तैयार किया जिसे 'नाट्यशास्त्र' कहा जाता है। भरत के अनुसार ऐसा कोई ज्ञान ऐसी कोई विद्या या ऐसा कोई शिल्प नहीं जिसका समावेश 'नाट्य' में न किया जा सके। इसलिए 'नाट्य' या 'नाटक' ज्ञानियों को ज्ञान प्रदान करता है। मूर्खों को उपदेश देता है और साधारण जनों को आनंद प्रदान करता है। 'नाट्य' को 'पंचम वेद' की संज्ञा दी गई है और गीत को 'नाट्य' की शैया कहा गया है। अर्थात्, 'नाटक' की एकरूपता से थके हुए मन को विश्राम देने के लिए नाटक के बीच में गीत, वाद्य और नृत्य का आयोजन किया जाता है और जब तक यह संगीत चलता है उतने काल तक 'नाट्य' को भी विश्राम प्राप्त होता है।

'नाटक' के अनेक तत्त्व हैं जिनमें संवाद और अभिनय प्रमुख हैं। किसी भी कथा को प्रस्तुत करते समय संवाद और अभिनय की परिपक्वता ही नाट्य को सशक्त बनाती है। वेदों के पश्चात् महाभारत तथा रामायण-काल में नाटकों के प्रदर्शन का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। नाटक को प्रदर्शित करने वाला व्यक्ति भरत या नट कहलाता था और संगीत का प्रदर्शन करने वाले व्यक्तियों को गायक, वादक और नर्तक कहा जाता था। मनोरंजन और उपदेश प्रदान करने वाले अनेक 'नाटक' संस्कृत साहित्य में लिखे गए जिनका प्रचार अभी तक है। विभिन्न धर्मावलम्बियों के भारत में आने से अन्य देशों के नाट्य-प्रकारों का प्रचलन भी भारत में हुआ। इस प्रकार 'नाटक' की विधाओं में निरन्तर परिवर्द्धन और परिवर्तन होता गया।



कहा जाता है कि ब्रह्माजी ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर 'नाट्यवेद' की सृष्टि की। नाट्यवेद की व्याख्या में बताया गया है कि इसमें दैत्य तथा देवता दोनों के अच्छे-बुरे कार्यों, भावों और चेष्टाओं का समावेश है तथा तीनों लोकों के भावों का अनुकरण है। इसके द्वारा उत्तम, मध्यम और अधम सभी प्रकार के लोगों का चरित्र दिखाया जा सकता है। सातों द्वीपों के वासियों, देवताओं, ऋषियों, राजाओं और कुटुम्बियों के किए हुए कार्यों का अनुकरण इसके द्वारा किया जा सकता है। जब किसी प्रसिद्ध या कल्पित कथा के आधार पर नाट्यकार द्वारा रचित रचना के अनुसार नाट्यप्रयोक्ता द्वारा सिखाए हुए नट रंगपीठ पर अभिनय तथा संगीतादि के द्वारा रस उत्पन्न करके प्रेक्षकों का मनोरंजन करते हैं तथा उन्हें उपदेश और मन की शान्ति प्रदान करते हैं तब उस प्रयोग को 'नाटक' या 'रूपक' कहा जाता है।

'नाट्य' में रस साध्य है; अभिनय, संवाद तथा संगीत इत्यादि साधन हैं; दर्शक साधक हैं और कथा आधार है। इन सबका संयोग करने वाले हैं नाट्यकार और प्रयोक्ता। इनमें से नाट्यकार तो कथावस्तु, संवाद तथा गीत इत्यादि की रचना करके अभिनय-सम्बन्धी रंग-निर्देश देता है और नाट्यप्रयोक्ता उस रचना के आधार पर रंगपीठ की व्यवस्था करके नटों अर्थात् अभिनेताओं को शिक्षा देकर, उन्हें अभिनय और संगीत सिखाकर दर्शकों के सम्मुख 'नाटक' का प्रयोग कराता है।

### नृत्त, नृत्य और नाट्य

'नृत्त', 'नृत्य' और 'नाट्य' में 'नृत्त' ताल-लय के आश्रित होता है। 'नृत्य', भावाश्रित होता है लेकिन 'नाट्य' रसाश्रित होता है। संस्कृत-साहित्य में 'नाटक' को प्रधानतः 'काव्य' ही माना गया है। दोनों का उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति है।

अभिनय चार प्रकार का होता है—आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक। 'आंगिक अभिनय' के अन्तर्गत विभिन्न भाव-भंगिमा एवं मुद्रायुक्त भाषा होती है जिसके द्वारा रचना का पदार्थ प्रकाशित या व्यंजित होता है। नेत्र, मुख आदि द्वारा प्रस्तुत समस्त अभिनय इसके अन्तर्गत आते हैं। विभिन्न रसयुक्त वाक्य द्वारा मानसिक भावों के अनुकरण को 'वाचिक अभिनय' कहते हैं। वस्त्रालंकारों द्वारा प्रकृत मूर्ति (वास्तविक पात्र) के अनुकरण को 'आहार्य अभिनय' कहते हैं और सात्त्विक भावों को प्रदर्शित करने वाले अभिनय को 'सात्त्विक अभिनय' कहते हैं, जैसे—रोमांच, स्तम्भ, स्वेद आदि का चित्रण। इसके बाद नाटक के भेद, वृत्तियाँ, नायक-नायिका भेद तथा प्रस्तुति आदि पर नाट्य में विस्तार से विचार किया जाता है।

कुछ शास्त्रकारों के अनुसार नाट्यवेद के आविष्कर्ता भगवान् शंकर हैं। समस्त चराचर जगत् की सृष्टि के बाद विश्रान्ति-हेतु ब्रह्मा विष्णु के पास गए। विष्णु ने उन्हें शंकर के पास भेज दिया। शंकर ने स्वरचित नाट्यवेद की शिक्षा नन्दी



(नन्दिकेश्वर) को देकर उन्हें आज्ञा दी कि वे उस संपूर्ण 'नाट्यवेद' को ब्रह्मा को सिखाएँ। इस प्रकार नन्दिकेश्वर से ब्रह्मा को और ब्रह्मा से भरत को इसकी शिक्षा प्राप्त हुई। समस्त कलाओं का विनियोग 'नाट्य' में होने से लोक में यह एक महत्त्वपूर्ण कला मानी गई है जिसका पूरे विश्व में प्रचार है। सहृदय व्यक्तियों के मन में विभिन्न भावों को जगाकर रसलीन करना ही 'नाट्य' का प्रधान लक्ष्य है।

## भरत-नाट्यशास्त्र की विषय सूची

'नाट्यशास्त्र' में अभिनय, संगीत, काव्य और चित्र की कलाओं से सम्बन्धित विशद सामग्री दी गई है। महर्षि भरत ने इस ग्रंथ का निर्माण किया था और फिर अपने सौ पुत्रों को नाट्यवेद की शिक्षा देते हुए संपूर्ण लोक में उसके सिद्धान्तों को प्रचलित करने का आदेश दिया था। 'नाट्यशास्त्र' में क्या है, यह नीचे दी गई सूची से स्पष्ट हो जाएगा :—

नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में नाट्यवेद की उत्पत्ति और नाट्य शब्द का निर्वचन है।

दूसरे अध्याय में प्रेक्षागृह अर्थात् नाट्यशाला तथा नाट्यमण्डप का लक्षण और उसका निरूपण है।

तीसरे अध्याय में रंगस्थल के देवताओं की पूजा विधि तथा नायक के निवास स्थान की चर्चा है।

चौथे अध्याय में ताण्डव नृत्य का लक्षण, रंग प्रसादन विधि, बत्तीस अंगहार और १०८ करण दिए गए हैं।

पाँचवें अध्याय में प्रयोग को आरम्भ करने के लिए पूर्वरंग का विधान, लक्षण और उसके अंगों की चर्चा की गई है।

छठे अध्याय में रस का निरूपण तथा उसके भेदों का कथन है।

सातवें अध्याय में भावों के व्यञ्जकों का निरूपण किया गया है।

आठवें अध्याय में आंगिक अभिनयों का निरूपण, उनके प्रकार एवं शैली तथा भेदों के विषय में चर्चा की गई है।

नवें अध्याय में उपांगों का अभिनय बताया गया है जिसके अंतर्गत संयुत और असंयुत तथा नृत्त हस्त के लक्षण और उनका विनियोग; छाती, पेट, कटि, उरु, जंघा तथा पैरों के लक्षण भेद और विनियोग की चर्चा की गई है।

दसवें अध्याय में चारी का विधान तथा व्यायाम-विधि कहे गए हैं।

ग्यारहवें अध्याय में मण्डलों के भेद तथा उनकी प्रयोग-विधियाँ बताई हैं।



बारहवें अध्याय में गति प्रचार, पात्रों के रंग-प्रवेश की विधि, रसों के अनुकूल विविध पात्रों की गति और प्रयोग की चर्चा की गई है।

तेरहवें अध्याय में स्थान-विभाग का प्रदर्शन किया है तथा प्रवृत्ति के भेद से द्वार का भेद, लोकधर्मी एवं नाट्यधर्मी प्रयोग बताया है।

चौदहवें अध्याय में वाचिक अभिनय एवं छन्दों का विधान है।

पन्द्रहवें अध्याय में उदाहरण सहित वृत्तों का निरूपण है।

सोलहवें अध्याय में ३६ प्रकार के लक्षणों के नाम बताए गए हैं जिनमें विभूषण, उपमा, यमक, काव्य के दोष, अलंकार तथा भूषण इत्यादि की चर्चा की गई है।

सत्रहवें अध्याय में भाषा-लक्षण, उनके नियम तथा काकु-स्वरूप का कथन है।

अठारहवें अध्याय में दशरूपकों का लक्षण, उनकी मातृ वृत्तियाँ, नाटक और अंक का लक्षण बताया गया है।

उन्नीसवें अध्याय में इतिवृत्त के दो भेद तथा संधियों की चर्चा की गई है।

बीसवें अध्याय में वृत्तियाँ और उनका रस में प्रयोग बताया गया है।

इक्कीसवें अध्याय में आहार्य अभिनय का निर्देश किया गया है।

बाईसवें अध्याय में सामान्य अभिनय का निरूपण है।

तेईसवें अध्याय में वेश्याओं के निवास, वैशिक के गुण तथा विभिन्न स्त्रियों की प्रकृति और व्यवहार की चर्चा है।

चौबीसवें अध्याय में पुरुषों तथा नायकों एवं नायिकाओं का लक्षण बताया गया है।

पच्चीसवें अध्याय में चित्राभिनय के अंतर्गत विभिन्न वस्तुओं के नाट्यानुकूल प्रयोग की चर्चा है।

छब्बीसवें अध्याय में स्त्री-पुरुषों की विभिन्न भूमिकाएँ और आचार्य तथा शिष्य के गुण बताए गए हैं।

सत्ताईसवें अध्याय में सिद्धियों के अधीन प्रयोग, प्रेक्षकों का गुण, दर्शकों के लिए आसन-विधि, अभिनय भेद तथा पात्रगत नाट्य-विधियों की चर्चा है।

अठ्ठाईसवें अध्याय में वादन की विधि, लक्षण और उनके प्रयोग की शैलियाँ; तत एवं अवनद्ध वाद्यों में कुतप का विन्यास, गांधर्व का लक्षण, उत्पत्ति, प्रकार, स्वर,



ताल एवं पद के विषय में विधि और स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना तथा जातियों का वर्णन है ।

उत्तीसवें अध्याय में ततातोद्य विधान के अन्तर्गत षड्जादि स्वर जातियों का निरूपण, वाद्य-प्रयोग में विहित स्वर, वर्णालंकार लक्षण, गीतालंकारों की विधि, वर्णविहीन अलंकार, चार धातु, तीन वृत्तियाँ, बाँसुरी के तीन भेद एवं उनके प्रयोग, निर्गीत विधान और वीणा के भेद बताए गए हैं ।

तीसवें अध्याय में सुषिर वाद्यों का विधान और बाँसुरी के स्वर तथा वादन-विधियों की चर्चा है ।

इकतीसवें अध्याय में ताल-व्यंजन, कला, लय और उसके भेद, ताल और ताल के भेद, हाथ की उँगलियों के भेद, गीत के लक्षण एवं अंग, ध्रुवों का ताल-विधान, लास्य के लक्षण एवं इसके प्रयोग, तालों के अवधारण का प्रयोजन, उपोहन एवं कण्डिकाओं का प्रयोग बताया गया है ।

वत्तीसवें अध्याय में ध्रुवापद का विधान, उनके भेद और उनके लिए छन्द का निदर्शन; ध्रुवाविकल्प, पाँच प्रकार का गान; ध्रुवाओं का प्रयोग, भाण्डों के अधीन गृह; गायक और वादकों के गुण बताए हैं ।

तैंतीसवें अध्याय में गुण-दोष विचार के अन्तर्गत गायक-वादक के गुण-दोषों की चर्चा है ।

चौतीसवें अध्याय में वाद्याध्याय के अन्तर्गत अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति, उनके भेद और अंग-प्रत्यंगों की चर्चा के साथ वाद्यों तथा वादकों के लक्षण बताए हैं, साथ ही प्रकृति विचार के अन्तर्गत पुरुष और स्त्रियों की प्रकृतियों, विभाग और विश्लेषण की चर्चा है ।

पैंतीसवें अध्याय में भूमिका के विभाग से पात्रों में विकल्प; प्रकृतियों के भेद; आहार्य-गुण; सूत्रधार तथा विदूषक पात्रों के लक्षण बताए हैं ।

छत्तीसवें अध्याय में नाट्यावतार के विषय में प्रश्न करने वाले ऋषियों के नाम, उनके प्रश्न, पूजा की अधिकार प्राप्ति के लिए पूर्वरंग का विधान; मुनियों का शाप, पृथ्वी-तल पर नाट्य का संचार और नटवंश की उत्पत्ति बताई गई है ।

सैंतीसवें अन्तिम अध्याय में गुह्य तत्त्व कथन, नाट्यावतरण और नाट्यशास्त्र का माहात्म्य बताया गया है ।

इस प्रकार छह हजार श्लोकों वाले 'भरत नाट्यशास्त्र' के उपर्युक्त सैंतीस अध्यायों में सर्वांग-पूर्ण नाट्य-पदार्थ का निरूपण किया गया है जो संसार के अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता ।



‘नाट्यशास्त्र’ के पश्चात् तेरहवीं शताब्दी में भारतीय संगीत का अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ ‘संगीत रत्नाकर’ आचार्य शाङ्गदेव ने लिखा जिसमें ‘नाट्यशास्त्र’ इत्यादि अनेक ग्रन्थों के सिद्धान्तों को स्पष्ट करते हुए गायन, वादन और नृत्य की कलाओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसकी विषय-सूची इस प्रकार है—

### ‘संगीत रत्नाकर’ की विषय-सूची

पहला स्वरगताध्याय है। इसमें पहले पदार्थ संग्रह प्रकरण के अन्तर्गत वंश तथा ग्रन्थ परिचय; संगीत लक्षण; गीत और अध्याय परिचय; दूसरे पिण्डोत्पत्ति प्रकरण के अन्तर्गत नाद, ब्रह्मस्वरूप, जीवस्वरूप, सृष्टि क्रम, मनुष्य देह, भाव भेद, इन्द्रिय भेद, प्राण भेद, देह भेद, अंग-प्रत्यंग, चक्र तथा नाडियाँ; तीसरे नाद, स्थान, श्रुति, स्वर, जाति, कुल, देवता, ऋषि, छन्द तथा रस प्रकरण के अन्तर्गत तत्सम्बन्धी विवरण दिया गया है; चौथे ग्राम, मूर्च्छना क्रम, तान-प्रकरण के अन्तर्गत तत्सम्बन्धी विवरण दिया है। पाँचवें साधारण प्रकरण में साधारण के लक्षण बताया है। छठा वर्णलंकार प्रकरण है। सातवें जाति प्रकरण के अन्तर्गत जातियों में प्रयुक्त स्वर तथा जातियों के लक्षण एवं उनसे सम्बन्धित स्वर साधना, ग्रह, अंश, तार, मन्द्र, न्यास, अपन्यास, सन्यास, विन्यास, बहुत्व, अल्पत्व, लघन, अन्तर्मर्ग, पाडव, औडुव तथा जातियों के लक्षण और प्रस्तार बताया गए हैं। आठवें गीत प्रकरण के अन्तर्गत कपाल, कपाल बोधिनी, कम्बल, गीत और अन्त में सात स्वरों से बनने वाले ५०४० स्वर प्रस्तार दिए गए हैं।

दूसरा रागविवेकाध्याय है। इसके पहले प्रकरण में ग्राम रागादि विवेक के अन्तर्गत पंचगीत और विभिन्न रागों की चर्चा है। दूसरे रागांगादि निर्णय प्रकरण में पूर्वप्रसिद्ध तथा अधुना प्रसिद्ध रागांग, शुद्ध साधारित राग-लक्षण, रागालाप, रूपक, आक्षिप्तिका, पड्ज ग्राम, शुद्ध कैशिक, भिन्नकैशिक मध्यम इत्यादि अनेक रागों के लक्षण दिए हैं।

तीसरा प्रकीर्णाध्याय है। इसमें वाग्गेयकार, गांधर्व, स्वर तथा गायन लक्षण; गायन दोष परिगणन, शब्द भेद परिगणन, शब्दगुण-दोष, शारीर-लक्षण गुण-दोष, गमक-भेद लक्षण, स्थाय-भेद, आलप्ति-भेद और वृन्द-भेद की चर्चा की गई है।

चौथा प्रबन्धाध्याय है। इसमें गीत, गान तथा धातु के भेद और लक्षण, प्रबन्ध तथा उनके भेद, वर्ण और मात्रा-गण का निरूपण तथा विभिन्न प्रबन्धों और गीत के गुण-दोषों का निरूपण किया गया है।

पाँचवाँ तालाध्याय है। इसमें ताल शब्द की उत्पत्ति; मार्ग-ताल प्रकरण के अन्तर्गत ताल, मात्रा, मार्ग आदि की व्याख्या है। प्रकरणाख्य गीत प्रकरण के अन्तर्गत मद्रकादि गीत तथा उसके प्रकार; प्रकरी, ओवेणक, रोविन्दक, उत्तर, छंदकम् इत्यादि गीत-प्रकार तथा पाणिका, ऋचा, गाथा, साम तथा मार्ग-ताल इत्यादि की व्याख्या की गई



है; देशोताल प्रकरण के अन्तर्गत विभिन्न तालों के लक्षण, उद्देश्य, प्रस्तार, संख्या, नष्ट-उद्दिष्ट, पाताल, द्रुत मेरु, लघु मेरु, गुरु मेरु, प्लुत मेरु, संयोग मेरु के लक्षण; खण्ड प्रस्तार के लक्षण बताए गए हैं।

छठा वाद्याध्याय है। इसमें तत्त वाद्यों के अन्तर्गत उनके लक्षण, श्रुति-स्वर-वीणा-भेद, स्वर वीणा भेद, सुषिर, अवनद्ध तथा घन वाद्यों का उद्देश्य, शृङ्ग के भेद, एकतन्त्री लक्षण, सारणा भेद; वीणा वादन हस्त व्यापार, उसके विभाग; सकल निष्कल भेद से वाद्यों का निरूपण, विभिन्न वीणाओं के लक्षण, रूप करण, श्रावणा लक्षण, वादन विधि, आसारित लक्षण, वादन क्रम के अन्तर्गत, किन्नरी वादन क्रम के अन्तर्गत विभिन्न रागों का वादन, देशी राग, पिनाकी तथा निःशंक वीणा के लक्षण, वीणा वादन का फल निर्देश तथा वीणा वादक के गुण बताये हैं। सुषिर वाद्यों के अन्तर्गत वंश लक्षण और उसके भेद, स्वरोत्पत्ति प्रकार, वंश गति के विभाग और मतभेद प्रदर्शन, वीणा तथा वंश को धारण करने वालों के कर्तव्य और उपदेश, फूतकार गुण व दोष, वांशिक के गुण और वांशिकों का वृन्द तथा विभिन्न रागों के वादन की व्याख्या; आनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत विभाग पूर्वक, पटह लक्षण, उसके वर्ण, हस्तपाट के स्वरूप का निरूपण तथा अन्य आनद्ध वाद्यों के भेद लक्षण और हस्तपाटों का स्वरूप निरूपण बताया गया है। पटह, हौडुक्क वाद्यों के भेद व उद्देश्य तथा हस्त व्यापार और वादन वाद्य प्रबन्ध के अन्तर्गत यति, ओता, गजर, रिगोड़ी, कवित्त; पद, मेलापक, उपशम, उदग्राह, प्रहरण, अवत्सक, छन्दण, तुडका, मलप तथा उसके अंग और पाट, छेद, रूपक, अन्तर, अन्तरपाट, खोज, खण्ड यति, खण्डच्छेद, अवयति, खण्डक, खण्डहुल्ल, जम, पाट, ध्रुवक, अंग, अंगरूपक, ताल, विताल, खलक, समुदाय, जोडडी उडव, तलपाट, पट्टवणि, तुण्डक, अंगपाट, पैसार, वाद्य प्रबन्ध का उपसंहार तथा मर्दल लक्षण दिए गए हैं। मार्दलिक भेद के अन्तर्गत वादन-प्रकार वादक, मुखरी, प्रतिमुखरी, गीतानुग, मार्दलिक गुण-दोष, मार्दलिक वृन्द, हुडक्का लक्षण, करटा, घट लक्षण, घडस, ढवस, ढक्का, कुडुक्का, कुडुवा, रूज्जा, डमरुक, डक्का, मण्डिडक्का, डक्कुली, सेल्लुका, झल्लरी, भाँड़, त्रिवली, दुन्दुभि, भेरी, निःसाँड़, तुम्बकी; अवनद्ध वाद्यों की प्रकृति के अनुसार लकड़ी और उसके गुण-लक्षण, काष्ठ दोष, चर्म के गुण तथा दोष दिए गए हैं। घन वाद्यों के अन्तर्गत ताल लक्षण, कांस्य ताल, घण्टा, क्षुद्रघण्टा, जयघण्टा, कम्प्रा, शुक्तिवाद्य, पट्टवाद्य, घनवाद्यों का उपसंहार, वाद्य गुण दोष, वादक गुण-दोष और हस्त-गुण की व्याख्या की गई है।

सातवाँ नर्तनाध्याय है। इसमें नाट्य की उत्पत्ति, स्वरूप, अभिनय-भेद, कर्तव्य, नृत्य लक्षण, नृत्त लक्षण, इनके भेद, आंगिक अभिनय और उसके भेद, नृत्याध्याय के अन्तर्गत पदार्थ संग्रह; अंग भेद; शिर के भेद; हस्त भेद; हस्तप्रकरण के अन्तर्गत संयुत तथा असंयुत हाथों की मुद्राएँ; नृत्त हस्त तथा उनके प्रकार; मतांतरोक्त हस्त; वक्ष-भेद; पार्श्व-भेद; कटि-भेद; चरण-भेद; स्कंध-भेद; प्रत्यंग-भेद; ग्रीवा-भेद;



बाहु प्रकरण के अन्तर्गत बाहु भेद, उनकी गति; वर्तना; चालक के लक्षण; पृष्ठोदर लक्षण, जठर-भेद; उरु प्रकरण के अन्तर्गत उरु भेद; जंघा प्रकरण के अन्तर्गत जंघा भेद; मणिबन्ध प्रकरण; जानु प्रकरण; उपांग भेद; दृश्य प्रकरण के अन्तर्गत दृष्टि भेद; रस दृष्टि और उनके प्रकार; स्थायी भाव दृष्टि के भेद, व्यभिचारी दृष्टि के भेद; भ्रू प्रकरण के अन्तर्गत भ्रुकुटियों के प्रकार और संचालन; पुट प्रकरण के अन्तर्गत पुतलियों के भेद और उनका संचालन; तारक प्रकरण के अन्तर्गत उनके भेद और संचालन; कपोल प्रकरण के अन्तर्गत गालों के भेद और उनकी गति; नासा प्रकरण के अन्तर्गत नासिका-भेद; अनिल प्रकरण के अन्तर्गत श्वास-प्रश्वास के भेद; अधर प्रकरण के अन्तर्गत अधर भेद; दन्त कर्म प्रकरण के अन्तर्गत दन्तकर्म भेद; जिह्वा प्रकरण के अन्तर्गत जिह्वा भेद; चिबुक प्रकरण के अन्तर्गत चिबुक भेद; वदन प्रकरण के अन्तर्गत वदन भेद; एड़ी, पंजे और हाथ पैरों की उँगलियों के भेद; चरण तल-भेद; मुखराग प्रकरण के अन्तर्गत मुखराग के लक्षण और उसके भेद; हस्त प्रचार भेद; हस्त करणों के सामान्य लक्षण; हाथों के कर्म और क्षेत्र; नृत्य करण प्रकरण के अन्तर्गत उनके लक्षण और उद्देश्य तथा भेद; उत्प्लुति करण; अंगहार; भौम्य आकाशिक्य देशी चारी, उसके उद्देश्य और प्रकार; पुरुष स्थानक, स्त्री स्थानक, देशी स्थानक, उपविष्ट स्थानक, सुप्त स्थानक, भौम मण्डल, आकाशिक मण्डल; लास्य और उसके अंग; वर्धर भेद; नवरस लक्षण के अन्तर्गत रस, स्थायी, संचारी, व्यभिचारी और सात्त्विक भाव तथा नाटक इत्यादि के निर्माण के नियम दिए गए हैं।

इस प्रकार 'संगीत रत्नाकर' में सात अध्यायों के अन्तर्गत चार हजार सात सौ छत्तीस श्लोकों में भारतीय संगीत की विपुल सामग्री दी गई है। नाट्य तथा अन्य कलाओं की चर्चा इन्होंने नहीं की है।

□ □ □



## शोध प्रबन्ध और उनकी रूपरेखा

**शोध प्रबन्ध क्या :** डॉ० नगेन्द्र के अनुसार “सामान्यतः शोध प्रबन्ध वह प्रबन्ध है जिसमें मौलिक अनुसन्धान के निष्कर्षों का आख्यान किया गया हो। विशेष रूप से वही कृति ‘शोध प्रबन्ध’ कहलाती है जिसमें किसी विशिष्ट दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया हो और जो किसी उपाधि की प्राप्ति के लिए प्रस्तुत (और स्वीकृत भी) की गई हो।” श्री देवकी नन्दन श्रीवास्तव के अनुसार ‘अनुसंधान मूलतः एक विशिष्ट दृष्टिकोण से किसी विषय-सामग्री का चयन करके उसकी सूक्ष्म छानबीन के उपरान्त उपलब्ध निष्कर्षों के सहारे सत्य की तथ्यपरक स्थापना है।’ डॉ० सुरेश चन्द्र गुप्ता के अनुसार ‘ज्ञान की किसी विशिष्ट शाखा में जिज्ञासा रखते हुए—उस दिशा में खोज द्वारा उपलब्ध होने वाली सामग्री का क्रमशः परीक्षण और समीक्षा ही अनुसंधान है।’ जबकि श्री ओ० पी० वर्मा का कहना है कि ‘सत्य की खोज के लिए अथवा प्राप्त ज्ञान की परीक्षा करने के उद्देश्य से किया जाने वाला व्यवस्थित प्रयत्न ही अनुसंधान है।’ संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ‘किसी व्यवस्थित क्रम से ज्ञान प्राप्त करके, उपलब्ध तथ्यों के आधार पर, किसी नवीन दृष्टिकोण की स्थापना करते हुए, किसी विश्वविद्यालय द्वारा उच्चतर उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया लेखन-कार्य ‘शोध-प्रबन्ध’ है।’

**शोध प्रबन्ध क्यों :** भौतिक सुख-सुविधाओं की कामना और आवश्यकता ने भी मानव को शोधोन्मुख किया है। जहाँ ज्ञान के विस्तार अथवा अज्ञान के उद्घाटन की आकांक्षा है, वहीं अनुसंधान का बीज निहित है। अनुसंधान कार्य का आजीविका से जुड़ जाना तथा शिक्षा जगत् में उच्च पद की प्राप्ति हेतु इसका अनिवार्य किया जाना भी एक अनिवार्यता बन गई है। अतः अब एक ओर जहाँ ‘बैठे से बेगार भली’ वाली भावना जुड़ी हुई है, वहीं दूसरी ओर एक विवशताभरी आवश्यकता भी सामने खड़ी हो गई है।

**शोध प्रबन्ध कैसे :** सबसे पहले शोध के लिए कोई अनुसंधान परक एवं उपयोगी विषय चुनना होता है। फिर उसका कोई शीर्षक देकर उसकी एक रूप-रेखा



(स्नॉपसिस) बनानो पड़ती है। इसके उपरान्त उसे उस विषय से सम्बन्धित सामग्री का संकलन करना पड़ता है और अन्त में प्राप्त सामग्री के आधार पर अपना निर्णय देना होता है। तो आइए, अब प्रत्येक पर थोड़ा-थोड़ा विचार करें।

**विषय का चुनाव कैसे करें :** विषय, जहाँ तक हो सके सीमित और संकुचित हो, परन्तु उसका क्षेत्र इतना अवश्य होना चाहिए कि हमें उस पर काम करने के लिए और उसमें कोई नई बात प्रस्तुत करने के लिए पूर्ण अवकाश प्राप्त हो। इसका चुनाव इस दृष्टि से होना चाहिए कि भले ही विषय छोटा हो, लेकिन उसे हम परिपूर्णता के साथ प्रस्तुत कर सकें। मौलिकता, एक शोध-प्रबन्ध की प्रथम आवश्यकता है। परन्तु यह गुण अत्यन्त अल्प मात्रा में ही पाया जाता है। अधिकांश शोध-प्रबन्धों में विषयों की पुनरावृत्ति, उद्धरणों की भरमार, पिष्ट-प्रेषण की प्रवृत्ति और एकांगी, अधूरे निष्कर्ष आज सामान्य लक्षण बन चुके हैं। आज का शोध-विद्यार्थी शोध के विषय को चुनता नहीं, वरन् माँगता है। उसका तर्क होता है 'कुछ भी बता दीजिए, मैं कर लूँगा या करने की कोशिश करूँगा।' ऐसे भ्रम में पड़े व्यक्ति कुछ भी नहीं कर पाते। उन्हें चाहिए कि वे अपनी रुचि और सामर्थ्य के अनुसार एक विषय का ही नहीं वरन् अनेक विषयों का निर्वाचन करें और फिर अपने निर्देशक की सलाह पर उनमें से सर्वोत्तम विषय पर टिकें।

इसलिए एक शोध-कर्त्ता को सबसे पहले अपनी रुचि के विषयों की सूची बना लेनी चाहिए। फिर रुचि प्राधान्य के अनुसार उसका क्रम निर्धारित कर लेना चाहिए। इसके पश्चात् यह देखना चाहिए कि अपनी रुचि के अनुकूल विषयों में से ऐसा कौन सा विषय है, जिसपर पहले अनुसंधान नहीं हुआ है और यदि हुआ भी है, तो किस रूप में हुआ है।

**रूप-रेखा (स्नॉपसिस) तैयार करना :** विषय को निर्धारित करने के उपरान्त यदि शोध-प्रबन्ध की सीमाओं को भी निर्धारित कर लिया जाए तो कार्य सुगम हो जाता है और शोध-कर्त्ता अपनी समस्या को अधिक स्पष्टता के साथ प्रस्तुत सकता है। वह समझ लेता है कि उसे तत्सम्बन्धी विषय पर क्या नई बात कहनी है। उसकी पुष्टि के लिए वह कौनसा मार्ग अपनाएगा और उसे किस प्रकार से अभिव्यक्त करेगा। पर्याप्त सावधानी बरतने पर भी विषय की पुनरावृत्ति संभव हो सकती है अतः उसे अपने विषय से सम्बन्धित एक छोटा सा सांकेतिक स्वरूप-बोधक और स्पष्ट 'शीर्षक' बना लेना चाहिए।

जब शीर्षक बना लिया जाए तो फिर शोध-प्रबन्ध की रूप-रेखा बनानी चाहिए। इसमें अनुसन्धानकर्त्ता को यह ध्यान रखना चाहिए कि उससे लोगों को शोधकर्त्ता के लक्ष्य का पूर्ण ज्ञान हो जाए। अर्थात् 'वह किस तथ्य को किस दृष्टि-कोण से प्रकाश में लाना चाहता है' का स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए। जहाँ तक हो सके यह बताने का प्रयत्न भी करना चाहिए कि उसके इस अनुसन्धान का कारण और उद्देश्य क्या है? अस्पष्ट रूप-रेखा से शोध-कर्त्ता की अक्षमता और



तैयारी की कमी का बोध होता है। यह, शोध विषय को संक्षिप्त प्रस्तावना के रूप में भी हो सकता है। इसमें शोध विषयक प्रत्येक पक्ष को स्पष्ट, क्रमबद्ध तथा यथा-सम्भव विस्तार से प्रस्तुत करना चाहिए। इसे विविध अध्यायों में विभक्त करके या सम्पूर्ण प्रारूप को कुछ खण्डों में विभाजित करके, चाहे जैसे किया जा सकता है।

**शोध-प्रबन्ध के लिए सामग्री के स्रोत :** जब शोध-प्रबन्ध की रूप-रेखा तैयार हो जाए तब उससे सम्बन्धित सामग्री को एकत्रित करना चाहिए। यह सामग्री प्रायः प्रकाशित हस्तलिखित ग्रंथों से और संगीत सम्बन्धी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त शोध-संस्थानों द्वारा समय-समय पर प्रकाशित बुलेटिनों से प्राप्त की जा सकती है। यदि विषय चित्रों से अथवा मूर्तियों से सम्बन्धित है (जैसे 'राग-रागिनियाँ और उनके चित्र' या 'संगीत और मूर्तिकला का सम्बन्ध' या 'भारत के पत्थरों में 'संगीत' आदि) तो भारत के भिन्न राज्यों में दीवारों पर बने राग-रागिनियों के चित्र अथवा विभिन्न स्थानों पर बनी संगीत से सम्बन्धित उन पत्थर की मूर्तियों का है, अध्ययन करना होगा। इसके अतिरिक्त विद्वानों के अपने व्यक्तिगत पुस्तकालय, सरकारी और गैर सरकारी रिपोर्ट्स भी अत्यन्त सहायक होगी। साथ ही विभिन्न संगीत संस्थाओं द्वारा आयोजित किए जाने वाली गोष्ठियों के कार्यक्रमों में दिए जाने वाले भाषण और उच्चकोटि के संगीत अध्यापक एवं विद्वज्जनों से किए गए वार्तालाप एवं उनके द्वारा दिए गए सुझाव भी पूर्ण उपयोगी सिद्ध होते हैं। सामग्री का संकलन रिकार्डिंग, पत्र-व्यवहार और प्रश्नावली के द्वारा आसानी से किया जा सकता है।

**सामग्री कैसे एकत्रित करें :** सबसे पहले उन पुस्तकालयों की एक सूची तैयार करनी चाहिए जहाँ आपके शोध-विषय से सम्बन्धित पुस्तकें प्राप्त हो सकें। फिर उपलब्ध ग्रंथों की सूची बना लेनी चाहिए ताकि सामग्री-संकलन में सुविधा हो जाए। इसी प्रकार साक्षात्कार आदि के लिए भी सम्बन्धित व्यक्तियों के पते आदि लिख लेने चाहिए। अब शोध-प्रबन्ध में आप जिस सामग्री का संकलन करेंगे उसके प्रमाण के लिए संकलन-स्रोत का स्पष्ट, प्रामाणिक और विश्वसनीय उल्लेख आवश्यक है। आपने जिन ग्रंथों से तथ्यों को संकलित किया है उनके लेखक का नाम, पुस्तक का नाम, प्रकाशक का नाम, प्रकाशन तिथि, सम्पादक या अनुवादक का नाम, संस्करण या खण्ड-संख्या का उल्लेख करना आवश्यक है।

**शोध-प्रबन्ध का लेखन और भाषा :** जब सामग्री एकत्रित हो जाए तो उसे रखने के लिए स्वेच्छा और कल्पना से दूर होकर तर्कसंगत रूप ध्यान में रहना चाहिए। शोध-लक्ष्य की पूर्ति के लिए तथ्य-प्रयोग से लेकर निष्कर्ष तक पहुँचने की प्रक्रिया तर्कसंगत होनी चाहिए। शोध-सामग्री का व्यवस्थापन जितना अधिक तर्कसंगत होगा उमका निर्णय भी उतना ही स्पष्ट, युक्तियुक्त, तथ्यात्मक और सुसम्बद्ध होगा।

कुछ लोगों की धारणा है कि विषय का जितने विस्तार से प्रतिपादन किया

जाएगा, उतना कार्य उतना ही अच्छा होगा। अतः अनेक शोध-प्रबन्ध ५००-६००



पृष्ठों तक के विशालकाय ग्रन्थ बन जाते हैं। उनमें अधिकांश उद्धरणों की भरमार होती है या फिर वह विभिन्न विद्वानों के मतों को एकत्रित करना ही शोध-कार्य समझ लेते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि शोध-कर्ता को अपने मत के समर्थन, किसी मान्यता, विचार, निष्कर्ष अथवा निर्णय के समर्थन, पुष्टि, संशोधन अथवा विरोध आदि के लिए इन प्रमाणों का उद्धरण देना आवश्यक है। किन्तु उद्धरण उतना ही होना चाहिए जितने से कि आपका उद्देश्य पूर्ण होता हो।

शोध-प्रबन्ध की भाषा के विषय में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भाषा सरल, स्पष्ट और सुबोध हो। दुरुह, जटिल, आलंकारिक तथा पाण्डित्य प्रधान भाषा अनुसंधान का दोष ही मानी जाएगी। यह सीधी-सादी उलझन रहित होनी चाहिए। उसमें जो कुछ लिखा जाए, न तो अनावश्यक हो और न व्यर्थ। उसमें यदि अन्य भाषाओं के उद्धरण दिए जाएँ तो उनका मूल और हिन्दी अनुवाद, दोनों देने आवश्यक हैं। संक्षेप में शोध-प्रबन्ध की शैली तर्कपूर्ण, तथ्यपरक, निर्दोष, परिमार्जित, व्याकरण-सम्मत, रोचक, स्पष्ट और गतिशील तथा सुबोध होनी चाहिए।

अन्त में जिन पुस्तकों से सामग्री संचित की गई है उन ग्रंथों की सूची भी देनी आवश्यक है।

एक शोध-कर्ता के लिए सबसे आवश्यक बात यह है कि अपना कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व जहाँ तक हो सके उसे अलग-अलग लोगों के कुछ शोध प्रबन्धों को अवश्य पढ़ लेना चाहिए।

□ □ □



## कर्नाटिक संगीत की स्वरलिपि पद्धति

**शुद्ध और विकृत स्वर :** कर्नाटिक संगीत की स्वरलिपि में, प्रत्येक रचना या कृति की स्वरलिपि से पहले राग का नाम, आरोह, अवरोह, उसके जनक मेलकर्ता का नाम या नम्बर, प्रयुक्त ताल का नाम और रचयिता का नाम दिया होता है। चूँकि प्रत्येक जन्य राग में उससे सम्बन्धित मेलकर्ता के ही स्वर होते हैं, अतः उसके स्वरों को मेलकर्ता में प्रयुक्त होने वाले स्वरों के आधार से तुरन्त जाना जा सकता है। उसकी क्रम संख्या से, मेलकर्ता के स्वर भी बड़ी आसानी से जाने जा सकते हैं। इसलिए कर्नाटिक संगीत में स्वरों के कोमल या तीव्र जैसे भेदों को देने या स्वरलिपि में लिखने की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु जब किसी राग में कोई स्वर ऐसा प्रयुक्त हो रहा हो जो कि उस मेलकर्ता में आने वाले स्वरों से भिन्न हो तो ऐसी परिस्थिति में इस अन्य स्वर को एक पुष्प-चिह्न '★' द्वारा दर्शाया जाता है। उदाहरण के लिए कर्नाटिक 'भैरवी' राग के आरोह में धैवत को चतुःश्रुति लेते हैं जो इसके मेलकर्ता नटभैरवी में नहीं है। कारण कि नटभैरवी मेलकर्ता के स्वरों में धैवत शुद्ध लगता है। अतः जब भी भैरवी राग में धैवत के बाद निषाद स्वर पर या ऊपर की ओर जाएँगे तो चतुःश्रुति धैवत लगेगा। इस स्वर को दर्शाने के लिए अब धैवत स्वर के ऊपर एक पुष्प चिह्न लगाना होगा। परन्तु इसी राग के अवरोह में शुद्ध धैवत लगता है। अतएव जब कभी धैवत के बाद पंचम की ओर जाएँगे तब पुष्प-चिह्न नहीं लगेगा। इसका अर्थ यह होगा कि अब चतुःश्रुति धैवत के स्थान पर शुद्ध धैवत प्रयुक्त हो रहा है। यह बताने के लिए कि इस राग में चतुःश्रुति धैवत (जो इस मेलकर्ता से बाहर का स्वर है) भी प्रयुक्त हो रहा है। इसलिए राग के प्रारम्भ में जहाँ आरोह-अवरोह दिया जा रहा है, वहाँ आरोह के धैवत के ऊपर पुष्प चिह्न लगा होगा या स्वरलिपि को प्रारम्भ करने से पूर्व पुष्प चिह्न लगा कर उसके आगे चतुःश्रुति धैवत लिख देंगे। ऐसा करने पर उस स्वरलिपि में जहाँ भी पुष्पांकित धैवत होगा वह 'शुद्ध धैवत' न होकर 'चतुःश्रुति धैवत' होगा।

**सप्तक के लिए चिह्न :** मध्य सप्तक के स्वरों के लिए कोई चिह्न नहीं होता। मन्द्र सप्तक के लिए स्वर के नीचे एक बिन्दु होता है, जैसे नि ध प। यदि मन्द्र सप्तक से भी नीचे के स्वर प्रयोग में लाने हों, तो उसे 'अनुमन्द्र सप्तक' कहते हैं



और तब एक के स्थान पर दो बिन्दु लगा दिए जाते हैं, जैसे—नि ध प । इसी प्रकार तार सप्तक के स्वरों को लिखने के लिए स्वर के ऊपर एक बिन्दु लगा दिया जाता है, जैसे—सां रें गं । यदि अतितार सप्तक के स्वरों का गायन करना हो तो एक के स्थान पर दो बिन्दु लगा दिए जाते हैं, जैसे—सां रें गं ।

कर्नाटिक संगीत में कृतियों की स्वर लिपि प्रायः मन्द्र-पञ्चम से तार-पञ्चम तक ही होती है । परन्तु यदि कलाकार चाहे तो अपनी सामर्थ्यानुसार अधिक सप्तकों का प्रयोग भी कर सकता है ।

**योजक चिन्ह :** (—) जो चिह्न शब्दों या शब्द-खण्डों के बीच में प्रयुक्त होता है उसे योजक चिन्ह कहते हैं । जो स्वर समूह '—' के बीच में लिखे जाते हैं, उन सब को एक साथ मिला कर गाया जाता है । जैसे पमगरिसन्ति—समगरिसन्ति—सगरिनि—सगा—गामपध—पमगम—प—.....आदि यहाँ पमगरिसन्ति स्वर समूह को लगातार गाना चाहिए । अर्थात् पमगरिसन्ति के बीच में कहीं भी विश्राम नहीं लेना चाहिए । इसी प्रकार समगरिसन्ति के बीच में भी विश्राम-स्थल नहीं है । परन्तु दोनों स्वर-समूहों के बीच में जहाँ योजक-चिन्ह (—) है, वहाँ कुछ विश्राम लिया जा सकता है ।

**स्वरों का काल :** कर्नाटिक संगीत में ह्रस्व स्वर का काल एक अक्षर काल का माना जाता है । जैसे स रि ग म प ध नि सं इत्यादि । ये सब एक-एक अक्षर काल के स्वर हैं । अब एक-एक अक्षर काल में निम्न गीत की पंक्ति को देखिये—

नि सा रि म | रि रि सा सा | ध्रु ध्रु नि नि | सा सा सा सा  
गि र ध र | बृ ज ध र | मु र लि अ ध र ध र

प्रत्येक ह्रस्व स्वर के लिए साहित्य (गीत) में भी ह्रस्व अक्षर ही काम में लाया जाता है । परन्तु यदि गीत में दीर्घ अक्षर हैं तो उसके लिए स्वर भी दीर्घ लिया जाता है । दीर्घ स्वर को दर्शाने के लिए सा, री, गा, मा, पा, धा, नी, सां स्वर लिखे जाते हैं । जैसे—

**पा नी नी सां**

वी णा पा णी में प्रत्येक स्वर दो-दो अक्षर काल का है । किन्तु कभी-कभी इसके विपरीत भी हो जाता है, अर्थात् ह्रस्व-स्वर के लिए गीत (या साहित्य) में दीर्घ-अक्षर और दीर्घ-स्वर के लिए गीत में ह्रस्व-अक्षर भी प्रयोग में आ जाते हैं ।

यदि किसी स्वर को 'दो अक्षर काल' से अधिक काल तक गाना होता है तो उसके आगे एक विराम चिन्ह ( , ) लगा देते हैं । ऐसा होने पर अब यह स्वर 'तीन अक्षर काल' का हो जाएगा । 'चार-अक्षर काल' के लिए अर्ध-विसर्ग अर्थात् ( ; ) इस चिन्ह का प्रयोग करते हैं । उदाहरण के लिए सा, का 'अक्षर काल' बराबर है  $2+1=3$  अथवा सा; , का अक्षर काल  $2+2+1=5$  होगा । इसी प्रकार



‘सात अक्षर काल’ के स्वर के लिये सा ; ; , ( $=2+2+2+9=7$ ) और ‘नौ अक्षर काल’ के लिए सा ; ; ; , ( $=2+2+2+2+9$ ) लिखा जाएगा। इस प्रकार साधारणतया ‘स’ एक अक्षर काल के लिये और ‘सा’ दो अक्षर काल के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

**पहला, दूसरा तथा तीसरा काल :** ‘एक अक्षर काल’ की अवधि में जब एक ही स्वर गाया जाए तो उसे ‘पहला काल’, दो स्वर गाए जाएँ तो उसे ‘दूसरा काल’ और चार स्वरों के गाने पर ‘तीसरा काल’ कहा जाता है। उदाहरण के लिए तिस्र-त्रिपुट ताल के एक आवर्तन में ‘सात अक्षर काल’ होते हैं। जैसे—

१ ३ ०० में १ २ ३ | ४ ५ | ६ ७

× १ २ | × खा | × खा (यहाँ मात्राओं को गिनते समय एक की गिनती पर ताली लगायेंगे। दो और तीन की गिनतियों को क्रमशः तर्जनी और मध्यमा उँगलियों से गिनेंगे। चौथी पर पुनः ताली लगायेंगे। पाँचवीं पर खाली दिखाने के लिए, हाथ से हवा में एक झटका सा देंगे और अन्त में छठी पर पुनः ताली लगा कर सातवीं पर भी खाली दिखायेंगे)। अब निम्नांकित स्वरों को गाते समय जहाँ ताली लगायेंगे वहाँ ‘×’ तथा जहाँ खाली दिखानी होगी वहाँ ‘०’ और जहाँ पहली तथा दूसरी उँगलियों से गिनना है, वहाँ १, २ लिखेंगे। इस आधार पर तिस्र-त्रिपुट ताल को निम्नांकित प्रकार से लिखेंगे—

× १ २ × ० × ०

सं सं सं नि ध नि सं चूँकि यहाँ एक अक्षर काल में एक ही स्वर गाया जा रहा है, अतएव यह ‘पहला काल’ कहलायेगा।

‘दूसरे काल’ में प्रत्येक अक्षर काल की अवधि में एक के स्थान पर दो-दो स्वर गाने होंगे। अर्थात् अब स्वरोच्चारण का समय दुगुने वेग का होगा (इसे आप दुगुन की तान जैसा भी समझ सकते हैं)। इस प्रकार अब इन ऊपर बताए गए सात स्वरों के स्थान पर चौदह स्वर गाने होंगे, परन्तु कुल स्वरों का काल-मान ‘सात अक्षर काल’ का ही होगा। ‘दूसरे काल’ को स्पष्ट करने के लिए स्वरों के नीचे एक रेखा खींच दी जाती है। कभी-कभी यह रेखा स्वरों के ऊपर भी खींच देते हैं। निम्नांकित स्वर-समुदाय तिस्र-त्रिपुट के ‘द्वितीय काल’ में लिखे जा रहे हैं—

× १ २ × ० × ०  
सं सं सं नि ध नि सं नि ध प ध प म प

(इसे आप भातखंडे स्वरलिपि पद्धति में

× १ २ × ० × ०  
ससं संनि धनि संनि धप धप मप की भाँति

भी समझ सकते हैं)।



‘तीसरे काल’ में एक-एक अक्षर काल की अवधि में चार-चार स्वर हो जाते हैं (अर्थात् यह भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति में चौगुन की तानें लिखना जैसा होता है)। ‘तीसरे काल’ के स्वरों को लिखने के लिए स्वरों के नीचे एक स्थान पर दो रेखाएँ खींच देते हैं। निम्नांकित स्वर-समुदाय ‘तृतीय काल’ में लिखा जा रहा है। ताल वही तिस्र-जाति की त्रिपुट है। देखिये—

×                      १                      २                      ×                      ०  
सं सं सं    नि ध नि सं नि ध प ध प    म प ग म    प प ध ध

×                      ०  
नि ध प म    प ग रि सा (इसे भातखण्डे स्वरलिपि-पद्धति में इस प्रकार

समझिए—

×                      १                      २                      ×                      ०                      ×                      ०  
सां सां सां नि    धनि सांनि    धपधप    मपगम    पपधध    निधपम    पगरेसा

अब उदाहरण के लिए एक रचना ‘सोलह अक्षर काल’ के स्वरों को दे रहे हैं—

‘पा,,    पमपनिपा, नि निपाम    मापममग;    रीगम’

यहाँ पा,, स्वर ‘प्रथम काल’ में है इसलिए पा — — — जैसे इसके चार अक्षर हुए। पम पनिपा, नि के नीचे एक रेखा है अतः ये स्वर ‘दूसरे काल’ में हुए। इनका रूप भातखण्डे स्वरलिपि-पद्धति में पम पनि प— नि जैसा हुआ। अब निपाम पुनः

दूसरे काल में है। अतः इसका रूप निप —म दो अक्षर काल का हुआ। मापममग;

स्वर-समुदाय ‘तीसरे काल’ में है, अतः इसका रूप भातखण्डे स्वरलिपि-पद्धति में म—पम मग— अर्थात् ‘दो अक्षर काल’ का हुआ। अन्त में ‘रीगम’ पुनः ‘प्रथम

काल’ में है, अतः इसका रूप भातखण्डे स्वरलिपि-पद्धति में ‘रे — ग म’ जैसा ‘चार अक्षर काल’ का हुआ। इस प्रकार यह कुल रचना ४ + ४ + २ + २ + ४ को जोड़कर ‘सोलह अक्षरकाल’ की हुई।

**सप्तक के चिन्ह :** कर्नाटिक संगीत में भी भातखण्डे स्वरलिपि-पद्धति की तरह मन्द्र सप्तक के लिए स्वरों के नीचे बिन्दु और तार सप्तक के स्वरों के ऊपर बिन्दु लगाया जाता है। मध्य सप्तक के स्वर बिना किसी बिन्दु के होते हैं।

अब हम एक रचना ‘मालकोष’ राग की (जिसे कर्नाटिक संगीत में ‘हिन्दोलम्’ कहते हैं) रूपक ताल (अर्थात् कर्नाटिक संगीत-पद्धति की छह मात्राओं) में दे रहे हैं। यहाँ प्रत्येक विभाग में ‘छह-छह अक्षरकाल’ (या मात्राएँ) हैं। देखिये :—

मा ग सा, । म ग सा नि ध नि । सा, नि ध नि । सा, म ग म ।



मा, म ग म । ग म ध नि ध म । ग म ध नि सं नि । सां ; ; ।

धनि सं नि धनि ध मा । गम गा सा , । ध नि स मा, । ग म ध नि सं नि ।

ध म ग सा , ।

**गीतों के बोलों को लम्बा करना :** जब गीत के बोलों को लम्बा करना होता है तो जितने 'अक्षरकाल' तक लम्बा करना है, उतने स्वरों के नीचे बिन्दु '.....' लगा दिए जाते हैं। जैसे—नीचे दिए जा रहे 'कामोद' राग में जो गीत का बोल बढ़ाना है उसके आगे बिन्दुओं का प्रयोग किया गया है। गीत के बोल हैं 'अज हूँ न आए पिया'। इसे भातखण्डे स्वरलिपि-पद्धति में देखिए—

प प प म | प म ध प | ग म रे म | स रे स रे  
या . . अ | ज हूँ . न | आ . . . | ये . . पि

**मींड का चिन्ह :** जिन स्वरों के मध्य में मींड से जाना हो, चाहे वह मींड अनुलोम हो या विलोम, उनके बीच में '/' चिन्ह लगा दिया जाता है, जैसे—'प / सां' अथवा 'सां / ध'। इस प्रकार मींड से गाने में पहले स्वर की काल-गणना नहीं की जाती।

**गमक का चिन्ह :** जब किसी स्वर के ऊपर या नीचे एक लहरदार रेखा लगी हो तो उस स्वर को हिलाते हुए गाना चाहिए। जैसे—'पसांनि' में 'नि' स्वर के नीचे लहर का चिन्ह है। इसका अर्थ यह हुआ कि यहाँ 'नि' स्वर षड्ज और निषाद के बीच में झूलता हुआ सा गाया या बजाया जायगा।

**गमक :** कर्नाटिक संगीत में प्रायः दस प्रकार की 'गमक' का प्रयोग किया जाता है, जो नीचे दी जा रही हैं :

| संख्या | 'गमक' का नाम | विवरण                                                | उदाहरण              |
|--------|--------------|------------------------------------------------------|---------------------|
| १.     | आरोहणम्      | स्वरों का क्रम से ऊपर चढ़ना                          | स रि ग म प ध नि सं  |
| २.     | अवरोहणम्     | स्वरों का क्रम से नीचे आना                           | सं नि ध प म ग रि सा |
| ३.     | डालु         | एक स्वर से दूसरे स्वर को लांघना                      | सगा, सम, सप, सध     |
| ४.     | स्फुरितम्    | द्रुत लय में प्रत्येक स्वर को दो-दो बार गाना         | सस, रिरि, गग, मम    |
| ५.     | शिवपुच्छम्   | द्रुत लय में प्रत्येक स्वर को तीन-तीन बार गाना       | ससस, रिरिरि, गगग    |
| ६.     | आहतम्        | दो स्वरों को आरोह क्रम में श्रृंखला रूप से गाते जाना | सरि, रिग, गम, मप    |



|                |                                                                          |                                         |
|----------------|--------------------------------------------------------------------------|-----------------------------------------|
| ७. प्रत्याहतम् | दो स्वरों को अवरोह क्रम में शृंखला रूप से गाते जाना                      | संनि, निध, धप, पम,                      |
| ८. कम्पितम्    | एक ही स्वर को कम्पित करके गाना                                           | प प प प                                 |
| ९. आन्दोलितम्  | स्वरों को ऊपर तथा नीचे झुला कर गाना                                      | सारिसापप, सारिसामम, सारिसागग,           |
| १०. मूर्च्छना  | आरोह-अवरोह को ही इस प्रकार से गाना कि राग-स्वरूप भली भाँति स्पष्ट हो जाए | स रि ग म प ध नि स<br>सं नि ध प म ग रि स |

**पुनः गाना :** जब किसी स्वर-समूह और गीत को पुनः पहली प्रकार से ही गाया जाए तो उसके लिए समस्त स्वरलिपि एवं गीत को दुबारा नहीं लिखते बल्कि उसके स्थान पर पूर्वोक्त जैसा चिह्न ( ' ' ) लगा देते हैं ।

उदाहरण के लिए आदि ताल में स्वाति तिरुनाल की राग 'नीलाम्बरी', में एक रचना 'विमल कमल दल लसित रुचिर नयन' है । इसकी स्वरलिपि नीचे दी जा रही है—

|         |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                  |       |       |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
|---------|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-------|-------|---|---|------|--------|------|------|-----|-------|-------|-------|---|---|---|---|------|------|---|---|---------|-----|-----|-----|------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|---|---|--------|-------|------|-------|---|---|------|--------|------|------|-------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|---|---|------|------|------|-----|---|---|------|--------|------|------|
| (१)     | <table> <tr> <td>×</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td></tr> <tr> <td>सासा</td><td>सानिसा</td><td>समगा</td><td>मगमा</td></tr> <tr> <td>विम</td><td>ल . क</td><td>म . ल</td><td>द . ल</td></tr> <tr> <td>×</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td></tr> <tr> <td>गामप</td><td>मा ;</td><td>;</td><td>;</td></tr> <tr> <td>न . . .</td><td>. .</td><td>. .</td><td>. .</td></tr> </table> | ×     | १     | २ | ३ | सासा | सानिसा | समगा | मगमा | विम | ल . क | म . ल | द . ल | × | १ | २ | ३ | गामप | मा ; | ; | ; | न . . . | . . | . . | . . | <table> <tr> <td>×</td><td>०</td></tr> <tr> <td>, , गम</td><td>, पपा</td></tr> <tr> <td>.. ल</td><td>सितरु</td></tr> <tr> <td>×</td><td>०</td></tr> <tr> <td>रीगा</td><td>रिंगमा</td></tr> <tr> <td>....</td><td>....</td></tr> </table> | × | ० | , , गम | , पपा | .. ल | सितरु | × | ० | रीगा | रिंगमा | .... | .... | <table> <tr> <td>×</td><td>०</td></tr> <tr> <td>ममगा</td><td>रोरी</td></tr> <tr> <td>चि.र</td><td>न य</td></tr> <tr> <td>×</td><td>०</td></tr> <tr> <td>मगगा</td><td>सा , ,</td></tr> <tr> <td>....</td><td>....</td></tr> </table> | × | ० | ममगा | रोरी | चि.र | न य | × | ० | मगगा | सा , , | .... | .... |
| ×       | १                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                | २     | ३     |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| सासा    | सानिसा                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                           | समगा  | मगमा  |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| विम     | ल . क                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                            | म . ल | द . ल |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| ×       | १                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                | २     | ३     |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| गामप    | मा ;                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                             | ;     | ;     |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| न . . . | . .                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                              | . .   | . .   |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| ×       | ०                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                |       |       |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| , , गम  | , पपा                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                            |       |       |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| .. ल    | सितरु                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                            |       |       |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| ×       | ०                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                |       |       |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| रीगा    | रिंगमा                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                           |       |       |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| ....    | ....                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                             |       |       |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| ×       | ०                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                |       |       |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| ममगा    | रोरी                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                             |       |       |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| चि.र    | न य                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                              |       |       |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| ×       | ०                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                |       |       |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| मगगा    | सा , ,                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                           |       |       |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |
| ....    | ....                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                             |       |       |   |   |      |        |      |      |     |       |       |       |   |   |   |   |      |      |   |   |         |     |     |     |                                                                                                                                                                                                                                          |   |   |        |       |      |       |   |   |      |        |      |      |                                                                                                                                                                                                                                     |   |   |      |      |      |     |   |   |      |        |      |      |

|     |                                                                                                                                                                                       |   |   |   |   |   |   |   |   |   |   |   |   |                          |                    |
|-----|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|--------------------------|--------------------|
| (२) | <table border="1"> <tr> <td>×</td> <td>१</td> <td>२</td> <td>३</td> <td>×</td> <td>०</td> </tr> <tr> <td>"</td> <td>"</td> <td>"</td> <td>"</td> <td>"</td> <td>"</td> </tr> </table> | × | १ | २ | ३ | × | ० | " | " | " | " | " | " | मगगा गरिरिप<br>चि.र न.य. | यहाँ नम्बर २ में । |
| ×   | १                                                                                                                                                                                     | २ | ३ | × | ० |   |   |   |   |   |   |   |   |                          |                    |
| "   | "                                                                                                                                                                                     | " | " | " | " |   |   |   |   |   |   |   |   |                          |                    |

'विमल कमल दल लसित तरु' तक तो ऊपर की भाँति ही गाया जाएगा परन्तु 'चिर' और 'नय' में थोड़ा परिवर्तन है । इसी रचना को भातखंडे स्वरलिपि-पद्धति में निम्नांकित प्रकार से समझा जा सकता है—

|         |           |           |           |       |       |       |        |
|---------|-----------|-----------|-----------|-------|-------|-------|--------|
| ×       | १         | २         | ३         | ×     | ०     | ×     | १      |
| स-स-    | सनि-स-    | समग-      | मगम-      | --    | गम    | -प प- | ममग-   |
| वि-म    | ल-क       | म-ल       | द-ल       | ..    | ल .   | सितरु | चि-र   |
| ×       | १         | २         | ३         | ×     | ०     | ×     | ०      |
| ग-म प   | म----     | -----     | -----     | रे-ग- | रेगम- | मगग-  | स----- |
| न . . . | . . . . . | . . . . . | . . . . . | ....  | ....  | ....  | ....   |



**राग चामर :** (षण्मुखप्रियः) ५६ वाँ मेल [आरोही—स रि ग म प ध नि सं । अवरोह—सं नि ध प म ग रि स । ( हिन्दुस्तानी स्वर स; शुद्ध रे (चतुःश्रुति रे), कोमल गा (साधारण गा), प्रति मध्यम (तीव्र मध्यम), प, कोमल धैवत (शुद्ध धैवत), कोमल निषाद (कैशिक निषाद)] ताल रूपक (१ कला)  $O_2/4$  अक्षराणि ।

### पल्लवि (स्थाई)

महासुरं केतुमहं भजामि छायाग्रहवरम्

### अनुपल्लवि (अन्तरा)

महा विचित्र मकुट धरं मङ्गलवस्त्रादिधरम्

### मध्यम काल साहित्य

नर पीठ स्थितं सुखं नवग्रह युतसखं

### चरणम्

केतुं कृण्वन् मन्त्रिणं क्रोधनिधि - जैमिनं  
कुलुत्थादि भक्षणं कोणध्वज पताकिनम्

### मध्यम काल साहित्य

गुरू गुह चामर भरणं गुण दोष चिदा भरणं  
ग्रहणादिकार्यकारणं ग्रहापसव्यञ्चारिणम् ।

### पल्लवि

१. पा प म गा री सा ; | गा री गा मा पा ; |  
म हा - - सुरं | के - तु म ह |  
पध निध प म पा धा नी | सं ; ; सं नी ध प मा |  
भ--जा - - मि च्छा - | या ग्र ह व रं - |
२. प म ध प म ग री सा ; | प म ग रि गा मा पा ; |  
म - हा - - - सुरं - | के - - - तु म हं |  
पध निध प म पा धा नी | नि सं रि सां सं नी ध प मा |  
भ- - जा - - मि च्छा - | या - - - ग्र ह व र म् |  
(महासुरम्)

### अनुपल्लवि

पा नि ध प म पा धा नी | ध नी सां नी सां ;  
म हा - - - वि चि त्र | म कु ट ध रं  
; गां , रि गां गं रीं नि | सां ; नी रि सं नि ध प म  
• सं - ग ल ब - - | स्त्रा. वि ध - - रम् - -



## मध्यकाल साहित्य

नि ध प म गा प मा नि धा | नि सं गं रि नि सां, सां धा |  
न र पो - ठ स्थितं सु खं | न व ग्र ह यु त स खं |  
(महासुरम्)

### चरणम्

पा, प म रि गा, री, | नी स नी रो स ; ; | गा री गा गा पा मा |  
के तुं - - कृ ण् व न | म न् - त्रि णं | क्रो - - ध नि धि |  
प ध रि सं नि ध प ध नि ध प म | पा, ध रि सं नी, ध प ध |  
जै - - मि - नं - | कु लु . . त्था दि - - |  
ध नि सां नी सां ; ; | गां, रि गां सां, रीं, |  
भ . . क्ष णं | को ण - ध्व ज |  
नि सं रीं गं रें सं नि रि सं नि ध प म |  
प . ता कि . . नम् . . |

## मध्यकाल साहित्य

नि ध प म प म ग रि ग म पा | प म धा रि सं धा नि नि सं नि  
गु रु गु ह चा . म र भ र णं | गु ण दो ष वि दा भ र णं ग्र  
सं रीं गं गं रि सं धा नि सं रि | सां नि ध प म नि ध प म ग म  
ह णा दि का - यं का र ण ग्र | हा प स . व्य सं . चा . रि णं  
(महासुरम्)

(‘मुत्तु स्वामी दीक्षित’)

**राग :** कुछ रागों के नाम दोनों पद्धतियों में एक समान मिलते हैं, परन्तु उनके स्वरों में भेद हैं। जैसे—कर्नाटिक संगीत का ‘हनुमत तोड़ी’ राग उत्तरी संगीत पद्धति का ‘भैरवी’ राग है।

कुछ रागों के नामों में अन्तर है, परन्तु स्वर समान हैं; जैसे—हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के ‘जोगिया’, ‘मालकोष’, ‘भूपाली’ और मध्यमाद सारंग के स्वरों पर गाये जाने वाले रागों को कर्नाटिक संगीत पद्धति में क्रमशः ‘सावेरी’, ‘हिन्दोलम्’, ‘मोहनम्’ और ‘मध्यमानति’ कहते हैं।

कुछ रागों के नाम दोनों पद्धतियों में समान हैं। जैसे ‘श्री’, ‘केदार’, ‘हिन्दोल’ और ‘सोहनी’, परन्तु इनके स्वरों में भेद है। कुछ राग दोनों पद्धतियों में ऐसे हैं जिनके नामों में समानता तो है परन्तु स्वरों में थोड़ा-थोड़ा भेद है जैसे—‘अड़ाना’, ‘धनाश्री’, ‘श्रीरंजनी’ आदि। कुछ राग जैसे—‘हंसध्वनि’, ‘सिंहेन्द्रमध्यम’, ‘कीरवाणी’ इत्यादि दोनों पद्धतियों में समान हैं।



कर्नाटिक संगीत में सुर पर ठहराव कम रहता है इसीलिए इसमें हिन्दुस्तानी संगीत जैसी विलम्बित लय भी नहीं के बराबर होती है। संगीत रचनाएं अधिकांशतः मध्य या द्रुत लय में गाई जाती हैं। जिस लय में रचना प्रारम्भ कर दी जाती है, उसी लय को अन्त तक स्थिर रखा जाता है। गायक कलाकार के साथ प्रायः वाँयलिन और मृदंगम् से संगति की जाती है। मृदंगम् के साथ-साथ कभी-कभी घटम् (घड़ा) भी ले लिया जाता है। संगति करने वाले कलाकार केवल संगति ही नहीं करते वरन् बीच-बीच में उनका एकाकी वादन भी होता रहता है। रागम्, तानम् और पल्लवि के अलावा पाँच-दस मिनट की छोटी-छोटी चीजें चलती रहती हैं। इस प्रकार कर्नाटिक संगीत की सभाओं में गानों की संख्या अधिक रहती है। संगीत सभा का प्रारम्भ प्रायः वर्णम् से किया जाता है। जब गायक द्रुत लय में 'वर्ण' गाते जाते हैं और वाँयलिन तथा मृदंग वादक बड़े उत्साह के साथ उनकी संगति करते हैं तो सारी सभा में उमंग-भरा वातावरण हो जाता है और श्रोताओं को इस बात का निश्चय हो जाता है कि कार्यक्रम अच्छा जम गया है जो पूर्णरूपेण सफल होगा। अनेक कलाकार 'वाद्यापि गणपतिम्' कीर्तन से कार्यक्रम आरम्भ करते हैं। संगीत सभा का मुख्यांग रागम्-तानम्-पल्लवि होता है और उसके बाद पदम्, जावलि, तराना गाये जाते हैं। अन्त में 'मध्यमावती' राग गाकर जाने-अनजाने में रह गई वृट्टियों के लिए क्षमा याचना की जाती है।

□ □ □



## पाश्चात्य देशों में अवनद्ध वाद्यों का विकास

जिस समय भारतवासियों ने वैदिक काल में भूमिदुन्दभी का प्रयोग करना सीख लिया था, उसके कुछ काल बाद लोगों ने यह अनुभव कर लिया था कि किसी खोखली चीज़ पर खाल को मढ़ कर बजाने से गूँज उत्पन्न होती है। इसीलिए लकड़ी के लट्ठों को खोखला करके ढोल बनाए गए। इन्हें दोनों ओर से खुला रखा गया। एक ओर का मुँह बड़ा कर दिया गया और दूसरी ओर का छोटा। इनमें नीची ध्वनि उत्पन्न करने वाले अंग को 'नर' और ऊँची ध्वनि उत्पन्न करने वाले अंग को 'मादा' कहा गया। इस प्रकार एक ही वाद्य से नर तथा मादा आवाजों को निकालना आरम्भ हो गया।

इतिहास बताता है कि इजिप्ट, असीरिया, भारत और परशिया में ढोल बहुत पहले ही प्रचार में आ चुका था। फिर भी खाल से मढ़े वाद्यों का जन्म कब हुआ, यह कहना कठिन है। परन्तु यह सत्य है कि इसका जन्म या तो अनुभव के आधार पर ही हुआ या किसी अनजाने संयोग से। इसका एक प्राचीन रूप बन्दू (अफ्रीका) के 'इन्कौन्गो' के रूप में मिलता है। इसमें एक बैल की खाल को लट्ठों पर सुखा देते हैं और फिर किसी लकड़ी से बजाते हैं। लकड़ी या मिट्टी के खोखले भाग को खाल से मढ़ देने का चरण अगला है। मैसापोटामिया की कला में एक ३००० ई० पू० के ढोल का रूप प्राप्त होता है। जर्मनी और मोराविया में पाए गए ढोल यह बताते हैं कि उनका अस्तित्व ३००० ई० पू० था।

प्रारम्भ में इन वाद्यों पर पानी में रहने वाले जानवरों जैसे मछली, गोह (छिपकली जैसा बड़ा जन्तु) और साँप आदि की खाल मढ़ी जाया करती थी। वाद्यों को बनाने के लिए पेड़ के तने को, उस काल के औजारों से खोखला करके या जला कर खाली कर लेते थे। पुरातत्त्व विज्ञान की खोज बताती है कि पहले इन्हें हाथों से ही बजाया जाता होगा और बाद में लकड़ी से बजाने का प्रचार हुआ। प्राचीन अवनद्ध वाद्यों को किसी स्वर में मिलाने की भी प्रथा नहीं थी। मिट्टी से वाद्यों का धड़ बनाने का क्रम भी मिट्टी के बर्तन बनाने की कला जानने के उपरांत ही हुआ होगा।

मध्य अफ्रीका के सुदूर (एकान्त) भागों में विभिन्न ढोलों से ध्वनि के संकेत दिए जाते थे। स्टैनले ने सन् १८७५-७७ ई० में कोंगो नदी के किनारे रहने वाले लोगों के विषय में कहा है कि 'यहाँ के लोगों ने अभी तक विद्युत द्वारा संकेत भेजने के



क्रम को नहीं अपनाया है किन्तु इसके लिए एक अन्य प्रभावशाली ढंग अपना रखा है। उनके बड़े-बड़े ढोलों को जब भिन्न-भिन्न स्थानों से बजाया जाता है तो वे इतना ही स्पष्ट संकेत देते हैं जितना कि वाणी द्वारा कहे गए वाक्य। कुछ ढोल तो केवल संकेत भेजने के लिए ही काम में आते हैं। शीघ्र सूचना भेजने के लिए इन ढोलों को किसी पहाड़ी की चोटी के ऊपर रख कर या जल में तैरने वाली नावों में रख कर बजाया जाता है। इन ढोलों की ध्वनि रात्रि में ७ से १० किलोमीटर की दूरी तक चली जाती थी। उनका कहना है कि यदि इन ढोलों को ढंग से बजाया जाए तो इनकी ध्वनि तीस किलोमीटर तक भी चली जाती है।

यहाँ के कुछ रोचक ढोल ब्रिटिश-म्यूज़ियम में देखे जा सकते हैं। सबसे बड़े ढोल का नमूना पूर्वी-सूडान के ढोल का है। यह नौ-फ़ीट (लगभग २ मीटर ७५ सें० मो०) लम्बा व तीन फ़ीट (लगभग ८० सें० मी०) ऊँचा है। इस पर एक जानवर का सिर, पूँछ और चार पैर बने हैं। इसके विषय में लिखा है कि 'पूर्वी-सूडान का एक चिरा हुआ गौंग जो कि ख़लीफ़ाओं के युद्ध में सन् १८८८ ई० में ख़ारतोम के युद्ध में युद्ध के ढोल की भाँति प्रयोग किया गया था, जिसे सम्राट जॉर्ज षष्ठम ने दिया था।' इसमें 'गौंग' शब्द पर कुछ लोगों को आपत्ति है क्योंकि 'एनसाइक्लोपीडिया' में पीतल के बने वाद्य को 'गौंग' कहा गया है, किन्तु अनेक यात्रियों द्वारा लिखे गए इतिहास और कुछ मानव-विज्ञानियों के आधार पर चिरे हुए ढोलों को 'गौंग' कहा है।

मैक्सीको के टैपोन्ज़ली नामक ढोल का एक ऐसा प्राचीनतम रूप प्राप्त होता है जिसका आकार अँग्रेजी के अक्षर एच (H) जैसा है। इसकी मोटाई भिन्न होने से दो प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। इसकी गूँज बढ़ाने के लिए इसे प्रायः तिपाई पर रख कर बजाया जाता है। मैक्सीको में कुछ अवसरों पर इसे अब भी बजाते हैं। इस पर विभिन्न जानवरों या फूलों जैसी खुदाई भी होती है। इसी का एक अन्य रूप, ऊपर की लकड़ी को घिस कर चिकना बनाकर मैलैन्सिया (जो न्यू-आयरलैण्ड में है) में 'लिविका' नाम से पाया जाता है। एक ऐसा ही ढोल ब्रिटिश म्यूज़ियम में पन्द्रह इंच (अड़तीस सें० मी०) लम्बा है। हमें बताया जाता है कि लिविका को पैरों के बीच में मजबूती से पकड़ कर और हाथों पर बैरोज़ा (या राल) जैसी चीज़ को लगाकर उस पर रगड़ते हुए, हाथों को खींचा जाता है। इसका आकार एक चिड़िया के आकार जैसा होता है। इसे कुछ विशेष अवसरों पर, एक विशेष प्रकार की झोंपड़ी के अन्दर बैठकर, छिपकर बजाया जाता है। लोगों की ऐसी धारणा है कि स्त्रियों को यह वाद्य कभी नहीं देखना चाहिए क्योंकि इसकी ध्वनि को प्रेतात्माओं द्वारा उत्पन्न किया जाता है।

जी० डब्लु० स्टॉ ने अपनी पुस्तक 'दी रेसैज़ ऑफ़ साउथ अफ्रीका' के पृष्ठ



११० पर लिखा है कि 'कुछ लोग कछुए की पीठ को खोखला करके उसके ऊपर खाल मढ़ देते हैं। यह सम्भवतः सबसे प्राचीन ढंग था। किन्तु जब ऐसे कछुओं का मिलना कठिन हो गया तो उन्होंने मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। वे लोग नाच या अन्य उल्लास के अवसरों के समय इनका प्रयोग करने लगे। एक अन्य विद्वान् 'श्रेयर जे' ने (अपनी पुस्तक न्यू ऑश्ट इण्डियनिशे रिशेशसरी बंग, लिपजिग, जो बाद में सन् १८३१ ई० में हाग-स्विटजरलैण्ड में छपी, के पृष्ठ ३१ पर) लिखा है कि 'अफ्रीका के लोग एक बर्तन लेकर उसके ऊपर एक खाल मढ़ देते हैं। इस बर्तन को स्त्रियाँ अपने हाथों और उँगलियों से बजाती हैं। इस प्रकार उनके समस्त अवनद्ध वाद्यों की पूर्ति हो जाती है।'

लगभग ४०० वर्ष पुरानी पुर्तगाल की पुस्तकों (दक्षिण अफ्रीका की पब्लिक लाइब्रेरी केपटाउन में स्थित) में ढोलों के विषय में एक विवरण निम्नांकित प्रकार से दिया गया है :—

'कि बादशाह (मोनोमोटोपा) के यहाँ काफ़िरों (अफ्रीका के मूल-पिछड़े निवासियों) का भी एक वर्ग था जिन्हें मोरम्बे कहा जाता था। (मोरम्बे का अर्थ एक प्रकार से हँसी-दिल्लगी करने वाले लोगों से भी है)। ये लोग राजा के निवास स्थान के चारों ओर राजा की प्रशंसा के गीत और भाषण, बड़ी तीखी आवाज़ में पुकारते हुए चक्कर लगाते रहते थे। जब राजा बाहर जाता तो ये मोरम्बे उसे चारों ओर से घेर कर, राजा की प्रशंसा के गीत बड़ी तेज़ और तीखी आवाज़ में छोटे-छोटे ढोल, घण्टियों और लोहे की पट्टियों को बजाकर बड़ा हो-हल्ला किया करते थे।' (यह विवरण 'रिकॉर्ड्स ऑफ़ साउथ ईस्टर्न अफ्रीका', केपटाउन, १८०१ ई० भाग सात के पृष्ठ २०२ से लिया गया है)।

धीरे-धीरे ये ढोल एक ओर से खुले और दोनों ओर से बन्द करके मढ़े जाने लगे। खाल के अभाव में इनका आकार भी छोटा होने लगा। उत्तरीय ट्रान्सवाल के वेण्डा में बड़े और छोटे आकार वाले ड्रम को 'नागोमा' तथा 'मुरम्बू' कहा जाता है। इनमें मुरम्बू छोटा होता है। इन्हें मिलाकर बजाने से अनेक प्रकार की लयकारियाँ बन जाती हैं अतः दोनों को साथ-साथ बजाते हैं। इनके वादन को लिपिबद्ध करने के लिए ऊँचे स्वर के लिए बिन्दु और नीचे स्वर के वाद्य के लिए रेखा (डैश) का प्रयोग किया गया है। लकड़ियों से बजाए जाने वाले ढोलों की लकड़ियों पर रबर का गोला लगा लिया जाता है। डॉ० ओल्गा वेन जो टरवुरेन-बेलजियम में भूगोल शास्त्र के विद्वान् हैं और सैन्ट्रल अफ्रीका की रॉयल-संगीत समिति से सम्बन्धित हैं, अपने ग्रन्थ ला टैमरडू कौंगो वेलजे, टरवुरेन १८५१ ई० में लिखते हैं कि 'अफ्रीका में लगभग ५८५ प्रकार के अवनद्ध वाद्य हैं।'

प्रो० किरबी के अनुसार दक्षिणी अफ्रीका का 'इन्तम्बुले' नामक वाद्य पुर्तगाल



के 'टम्बूर' से मिलता है। इसके लिए एक मिट्टी का बना शराब (बीयर) का बर्तन ले लेते हैं। उसके ऊपर एक बकरी के चमड़े को बिना व्यवस्थित किए हुए गोलाई में अस्थायी रूप में तान देते थे। खाल के बालों को पहले ही हटा दिया जाता था और खाल को भिगो लेते थे। वादक इसे अपने सामने रखकर बजाता था और उसका एक सहायक खाल को मजबूती से खींचकर कसा हुआ रखता था। तब वादक एक छड़ या बेंत के द्वारा सीधे हाथ से इसे बजाता था। यदि इसे अकेले ही, बिना सहायक की सहायता के बजाना हो तो वादक खाल की टाँगों को अपनी ओर पृथ्वी पर रखकर, उसके नीचे कूंडी (वह बर्तन जिस पर खाल को तानना है) को रख देता है। फिर झुककर बाएँ हाथ से खाल को कस कर पकड़ लेता है। खाल को इसी स्थिति में रखकर वह सीधे हाथ द्वारा डंडी से पीटकर इसे बजाता है।

इससे अगले चरण में यह आवश्यकता अनुभव की गई कि वाद्य पर तानने के लिए जो चमड़ा है, उसे स्थायी रूप से कसा हुआ और तना हुआ कैसे रखा जाए? इसके लिए कूंडी के मुँह पर एक गोल घेरे को लगाने का विचार आया। इसकी गुँज बढ़ाने के लिए और खाल में खिंचाव पैदा करने के लिए खूंटियाँ या बटन (गट्टे) लगाने का विचार आया होगा। इस बात की पुष्टि जर्मनी में पाए गए लगभग ३०००-२५०० ई० पू० के मिट्टी के बर्तनों, जो क्रिपुले और ब्रोझनी (वोहेमियाँ) के हैं और प्राग के राष्ट्रीय संग्रहालय में रखे हैं, से होती है। इसी प्रकार के उभरे कैटिल ड्रम (ढोल) का नमूना जो धातु का बना है, १५ वीं शताब्दी के मिश्र (इजिप्ट) के स्टॉकहोम के लिवरसकामरेन में देखा जा सकता है।

मेके मरसेड्स ने अपने ग्रन्थ 'दी ट्रेडीशनल म्यूजिकल इन्स्ट्रूमेंट्स ऑफ नाइजीरिया' के पृष्ठ ११४ पर लिखा है कि 'होसाओ के द्वारा पानी पीने के कदुओं को पृथ्वी पर उल्टा रखकर और उसके मुँह पर गोल घेरा लगाकर उँगलियों से बजाते थे। जब इसकी खाल पर अँगूठे या उँगली को भिगोकर रगड़ा करते थे तो इसकी फिसलन से एक नई प्रकार की ध्वनि उत्पन्न हुआ करती थी। यदि बैठकर या पालथी मारकर इसे एड़ी से घिसा जाए तब भी ऐसी ही ध्वनि उत्पन्न होती थी। बड़े-बड़े ढोलों में शेर की दहाड़ जैसी ध्वनि उत्पन्न होती थी। इस प्रकार रगड़ से बजाए जाने वाले भी अनेक प्रकार के ढोल बनाए गए। अफ्रीका में जन्मे ऐसे ढोलों का प्रचार अनेक देशों में हुआ।

मध्यकालीन योरूप में टंबूर नामक एक अवनद्ध वाद्य था। इसके छोटे बड़े अनेक प्रकार होते थे। इस ढोल में दो सिर होते थे जिसमें नीचे की ओर भी एक डोरी लगी रहती थी। इसके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है क्योंकि इसके जो चित्र पाए गए हैं उनसे इसका ठीक विवरण प्राप्त नहीं होता। हाँ, उस काल में इतना ज्ञान अवश्य हो गया था कि भेड़िये की खाल के ढोल के सामने बकरी की खाल का ढोल नहीं बज सकता।



इन ढोलों के अनेक रूप थे। किन्तु उनमें से अनेक ऐसे भी थे जिनकी गहराई भी इतनी थी जितना कि उनका मुख। वैसे 'आरव्यू' ने एक ऐसे ड्रम का भी उल्लेख किया है जो दो फीट लम्बे और एक फीट व्यास के थे। बटी हुई रस्सियों से इन्हें कसा जाया करता था। 'गॉलपिन' के अनुसार यह स्पेन से इंग्लैण्ड में आया। 'गॉलपिन' ने इसे बारहवीं सदी के एक लेख के आधार पर बताया है। १३ वीं सदी में यह छोटा और हल्का बन गया।

सन् १३०६ ई० में एडवर्ड तृतीय की एक दावत में वैस्ट मिनिस्टर टैबूर बजाने वाले थे। इसका एक वादक उनके घरेलू बैण्ड में भी था। सन् १३३२ ई० से टैबूर वादकों का न केवल स्विट्ज़रलैण्ड में वरन् समस्त योरुप में सम्मान होने लगा था। सन् १४८२ ई० में इंग्लैण्ड के हेनरी सप्तक के प्रीवी-पर्स के व्यय में दो पौण्ड टैबूर-वादकों को दिए जाने का उल्लेख है। फ्रांस के पन्द्रहवीं शताब्दी के बने एक चित्र में हमें एक ऐसे बड़े टैबूर का चित्र प्राप्त होता है जिसे एक व्यक्ति ने पकड़ रखा है और दूसरा उसे बजा रहा है। कालान्तर में इसका रूप छोटा होता चला गया और इसे लोक नृत्यों के साथ प्रयोग में लाया जाने लगा। बड़ा ढोल अब फ्रौज के काम में आने लगा। आजकल इंग्लैण्ड में इसका नाम टेबर या टबरैट से बदल कर ड्रोम, ड्रोम्म, ड्रम आदि रख दिया है।

आधुनिक युग में पाश्चात्य संगीत में जो ड्रम प्रचलित हैं उनमें स्नेअर-ड्रम, बेस-ड्रम और टिम्पैनी अधिक प्रसिद्ध हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

**स्नेअर ड्रम :** इसे 'साइड-ड्रम' भी कहते हैं। यह आकार में सबसे छोटा होता है और इसकी ध्वनि भी ऊँची होती है। यह धातु के बने एक घेरे का होता है जो दोनों ओर से मढ़ा रहता है। इसके दोनों सिरों की दूरी चार इंच से दस इंच तक की होती है। कभी-कभी आवश्यकता होने पर यह बारह इंच तक हो जाती है। इसका व्यास लगभग पन्द्रह इंच का होता है। इस पर जिधर से आघात किया जाता है उस ओर के मुँह को 'वाटर-हैड' कहते हैं। नीचे वाले मुँह को 'स्नेअर-हैड' कहते हैं। कुछ लोग 'वाटर-सिरे' (अर्थात् बजाये जाने वाले सिरे) पर बछड़े का चमड़ा और 'स्नेअर-सिरे' (अर्थात् नीचे वाले सिरे) पर प्लास्टिक की झिल्ली लगाना पसन्द करते हैं। वैसे, नीचे वाला भाग (अर्थात् स्नेअर-हैड), जिस पर कि 'स्नेअर' लगी रहती है, ऊपर वाले सिरे के मुकाबले में (जिसे बजाया जाता है) कुछ पतला और तना हुआ रहता है।

आज कल इस वाद्य में अन्दर एक ऐसा यन्त्र लगा रहता है जो बजने वाले सिरे की गूँज को नियन्त्रित रखता है। 'स्नेअर्स' (इन्हें जाल या फन्दों की भाँति समझिये) की संख्या आठ या अधिक होती है। ये तांत, नाईलॉन, तार या सिल्क से लिपटे हुए तार के (वादक की इच्छानुसार) बनाये जाते हैं। इन फन्दों



(स्नेअर्स) को एक लोवर (प्रभाव उत्पन्न करने का साधन) द्वारा ढीला किया जा सकता है। यह क्रिया फन्दों को उपयुक्त या इच्छित स्थिति में रखने वाले एक व्यवस्थित यंत्र जिसे 'स्नेअर रिलीज' कहते हैं, के द्वारा की जाती है।

'स्नेअर ड्रम' का उपयोग सैकड़ों वर्षों से सेना में बिगुल के साथ किया जाता रहा है। लगभग समस्त संसार के सैनिकों को कुछ सूचना देने के लिये, अथवा सैनिकों के चलने की गति में एक लय बनाए रखने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

तारों के फन्दे (स्नेअर्स) जो नीचे वाले सिरे पर लगे रहते हैं, के कारण ही इसका नाम 'स्नेअर-ड्रम' पड़ा है। जब इसके ऊपर वाले भाग पर आघात किया जाता है तो एक विशेष प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है। इसे दो लकड़ियों की डंडियों से बजाया जाता है। इसकी ध्वनि कुछ बिखरी-बिखरी सी 'र र र ट्टा टट् टट्, र र र ट्टा टट् टट्' जैसी होती है।

अब इस वाद्य को लकड़ी, धातु या प्लास्टिक से बनाया जाता है। इसे मढ़ने के लिए भी खाल के स्थान पर प्लास्टिक की पतली झिल्ली को काम में लाते हैं। वादक की बजाने की डंडियों के सिरो पर किसी मुलायम चीज की गेंद-सो बना देते हैं। यह मुलायम वस्तु फ़्लैट या भेड़ की ऊन आदि की होती है।

**बेस ड्रम :** यह 'स्नेअर ड्रम' से बहुत बड़ा होता है। इसकी दीवारें लगभग बीस इंच ऊँची (चौड़ाई) होती हैं। इसके मुँह का व्यास लगभग चालीस इंच का होता है। इसके दो मुँह होते हैं और छड़ों द्वारा इसमें बजने वाली खाल में तनाव या ढीलापन कर लिया जाता है। इसे भी बछड़े के चमड़े या प्लास्टिक की झिल्ली से मढ़ा जाता है। इसे कई फ़ीट लम्बी चादर से बनाया जाता है। फिर इसे एक फ्रेम में इस ढँग से लटका दिया जाता है कि इच्छा होने पर इसे किसी भी दिशा में सरलता से घुमाया जा सके। 'बेस-ड्रमों' को यदि किसी गतिमान (चलने वाली) टोली के साथ ले जाना हो तो इसे किसी ठेले या गाड़ी पर रख कर ले जाते हैं। वादक उस गाड़ी के समीप चलता हुआ इसे बजाकर 'रिदम' देता रहता है।

दो सिरे वाले 'बेस-ड्रमों' में सीधा हाथ तो आघात देता रहता है और इसी हाथ की उँगलियाँ उसके आन्दोलनों को कम करती रहती हैं। यह क्रिया उसी प्रकार से की जाती है जैसे कि 'टिम्पनी' (जिसका वर्णन आगे है) में करते हैं। लगातार धीमी ध्वनि उत्पन्न करने के लिए या गूँज को कम करने के लिए इसे बीच से बजाया जाता है। पाश्चात्य स्वरलिपि में 'बेस-ड्रम' के लिए नीचे का स्थान रखा जाता है। इसके वादक के पास इसे बजाने के लिए कई छोटी-बड़ी डंडियाँ होती हैं जिनके सिरो पर ऊन के छोटे-बड़े गोले लगे रहते हैं। इनकी सहायता से वादक हल्की-भारी जैसी ध्वनि उत्पन्न करना चाहे कर सकता है। इसकी ध्वनि 'धाय' जैसी तेज़ व गूँजदार होती है।



**टिम्पैनी :** इसे 'कैटिल ड्रम' भी कहा जाता है। कारण कि अँग्रेज़ो भाषा में 'कैटिल' का अर्थ पत्तीली या देगची है। दूसरे शब्दों में इस वाद्य-यन्त्र का वह भाग जिस पर खाल मढ़ी जाती है, धातु का बना होता है। अतः धातु की कूड़ी वाले अवनद्ध वाद्यों को पाश्चात्य संगीतज्ञ 'कैटिल ड्रम' कहते हैं। टिम्पैनी एक प्रकार से ताँबे का बना बहुत बड़ा नक्कारा जैसा वाद्य है। इसका आकार बड़े कटोरे जैसा होता है जो ऊपर से मढ़ा रहता है। इसे एक तिपाई पर रख दिया जाता है। इसके अन्दर एक ऐसा यन्त्र लगा रहता है जो कि बाहर, इसकी टाँगों के पास लगे पैर से संचालित एक पैडिल से सम्बन्धित होता है। बाहर से पैर के द्वारा इस पैडिल को दबाए जाने पर ध्वनि को ऊँचा-नीचा किया जा सकता है। चूँकि 'टिम्पैनी' को चार या पाँच ही भिन्न स्वरों में मिलाया जा सकता है अतः इसका प्रयोग सैट्स (समूह) में किया जाता है। एक 'टिम्पैनी' का वादक भिन्न-भिन्न आकार के पाँच 'टिम्पैनी' के समूह को भी बजा लेता है।

साधारणतया एक सामान्य 'टिम्पैनी' के दोनों मुखों का व्यास २५ और २८ इंच होता है। यदि तीन 'टिम्पैनी' का समूह हो तो उसका व्यास २४, २६ और २८½ इंच होता है। बड़े ढोलों का व्यास ३० और ३२ इंच भी होता है। छोटी 'टिम्पैनी' ( जिसे पिकोलो-टिम्पैनी कहते हैं ) का व्यास १४ इंच से २३ इंच तक होता है। बनाने वाले की कारीगरी के कारण यह वाद्य आकार में कुछ घट-बढ़ भी जाता है। इसे बजाने वाली लकड़ी की डंडियों की लम्बाई १३ से १४½ इंच तक होती है। इसकी मोटाई लगभग ३/८ इंच से आधे इंच तक की होती है। इन डंडियों पर बजाने के लिए जो गोले लगे रहते हैं उनका व्यास सवा इंच से दो इंच तक का होता है। आघात करने के तुरन्त बाद इसके डंडे को उठा लिया जाता है। इस पर जल्दी-जल्दी दो-दो आघात भी किए जा सकते हैं।

**टेनर ड्रम :** 'टेनर ड्रम' में फन्दे या स्नेअर्स, जो इसकी तारता में परिवर्तन कर सकें नहीं होते। इसके मुँह का व्यास भी गहराई के अनुपात में कुछ बड़ा होता है। जो १४ इंच से १८ इंच तक का होता है। ध्वनि में यह बिना फन्दे के ड्रम और बेस ड्रम के मध्य का होता है। इसे सख्त या मुलायम चाहे जैसी डंडियों से बजाया जा सकता है। जब इसे मकानों के अन्दर बजाते हैं तो इसकी ध्वनि अजीब सी प्रभावशाली, धुंधली और पुराने वाद्यों जैसी होती है। इसे प्रायः कमरों में होने वाले संगीत समारोहों में बजाना चाहिए, ऐसा एक विद्वान का मत है। पाश्चात्य संगीत की स्वरलिपि में इसे प्रायः 'बेस क्लैफ' के दूसरे खाली स्थान पर (अर्थात् नीचे से पहली और दूसरी रेखाओं के मध्य के स्थान पर) रखा जाता है।

□ □ □





## पंजाब का गुरमति संगीत



ईश्वर का स्मरण करने और भौतिक संसार से ऊपर उठने के लिए संगीत की वही विधाएँ अधिक स्थाई एवं लोकप्रिय सिद्ध हुई हैं जिनमें राग-द्वेष छोड़कर सामाजिक प्रेम, सद्भाव और एकता का सन्देश हो।

प्रत्येक धर्म में ईश्वर को प्राप्त करने अथवा ईश्वर की कृपा उपलब्ध करने के लिए गद्य और पद्य में प्रार्थनाएँ मिलती हैं। ईश्वर की विशेष शक्ति से सम्पन्न होकर जो जीवात्मायें पृथ्वी पर अवतरित हुईं उन सभी ने ईश्वर-भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया है।

### पंजाब के सन्त-कवि-गायक

पंजाब की धरती पर जिन सन्तों ने जन्म लिया, उनमें से कुछ प्रसिद्ध नाम इस प्रकार हैं—बाबा फ़रीद, भक्त त्रिलोचन, नामदेव, सधना, गुरु तेगबहादुर, सैन भक्त, पीपा, धन्ना, गुरु नानकदेव, भाई चाँद, भाई मोती, भाई अरुडा, भाई लाल-अमृतसरी, गुरु अंगददेव, गुरु अमरदास, गुरु हरिगोविन्द, गुरु रामदास जी, गुरु अर्जुनदेव जी, गुरु हरिराय जी, गुरु गोविन्द सिंह, महाराज रणजीतसिंह आदि। इन सभी ने शब्द और कीर्तन के महत्त्व से समाज को परिचित कराया। नाद से शब्द और शब्द से नाद की प्राप्ति ओंकार से प्रकाश अथवा प्रकाश से ओंकार की उपलब्धि है। नाद-श्रवण और साधना के द्वारा इस सहज योग को समझा जा सकता है। साकार का बन्धन मिटाकर निराकार में स्थित होने का यही एकमात्र सरल ज़रिया है। गुरु नानक देव ने समाज को यही दिव्य सन्देश दिया और आज उनकी यही वाणी 'गुरमति संगीत' के रूप में जानी जाती है।

जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' का पद गायन भगवान की लीलाओं के माध्यम से एकत्व की शिक्षा देता है तो उसी परम्परा में गुरु नानक देव की वाणी परब्रह्म परमात्मा तक पहुँचाने की ऐसी सीढ़ी प्रस्तुत करती है जो शब्द कीर्तन द्वारा मानव को पाशविक वृत्तियों से ऊपर उठाकर परमात्मा के दिव्य आलोक में प्रविष्ट कराती है। एक भक्ति सम्प्रदाय है तो दूसरा योग सम्प्रदाय है। दोनों का लक्ष्य एक है।



## नानक पंथ और सिक्ख धर्म

‘गुरुमति संगीत’ की व्यावहारिक परम्परा का आरम्भ श्री गुरुनानक देव और उनके साथी रवाबी भाई मरदाना से ही माना जाता है। नानक पंथ को आज दो नामों से जाना जाता है—नानक पंथ और सिक्ख धर्म। सिक्ख, शिष्य का ही अपभ्रंश है। इस पंथ के सभी शिष्य कालान्तर में सिख नाम से प्रख्यात हुए और सिक्ख शब्द एक धार्मिक विचारधारा का वाहक बन गया। इस पंथ में समाज सेवा, चरित्र निर्माण, साधना, सत्यवादिता, आत्म रक्षा एवं व्यवहार कुशलता की भावना को सबसे अधिक महत्व दिया गया है। ज्योति से ज्योति जगाने की परम्परा इस पंथ की विशेषता है।

श्री गुरु नानकदेव ने जिस प्रकार भारतीय धर्मदर्शन के क्षेत्र में एक नवीन पथ की सर्जना की, उसी तरह उन्होंने अपने धर्म के प्रचार और विकास के लिए नवीन संचार युक्तियों का इस्तेमाल भी किया। आपने वाणी की प्रस्तुति के लिए सुनिश्चित विधिपूर्वक प्रबन्ध की सर्जना की। इस विधान को ‘गुरुमति संगीत प्रबन्ध’ कहा जाता है।

### गुरुमति संगीत में प्रयुक्त राग एवं कीर्तनिए

श्री गुरु नानकदेव जी ने जिन रागों का प्रयोग किया, वे इस प्रकार हैं—  
मुख्य राग : श्री, माझ, गऊड़ी, आसा, गूजरी, देव गंधारी, बिहागड़ा, बडहंस, सोरठि, धनाश्री, तिलंग, सूही, बिलावल, रामकली, मारू, तुखारी, भैरऊ, बसन्त, सारंग, मल्हार, प्रभाती। मिश्रित राग: गऊड़ी, गुआरेरी, गउड़ी चेती, गउड़ी बैरागणि, गउड़ी दीपकी, गउड़ी पूरबी-दीपकी, गउड़ी पूरबी, आसा काफ़ी, सूही काफ़ी, मारू काफ़ी, बसन्त, हिण्डोल, प्रभाती विभास। दक्षिणी राग : गऊड़ी दक्षिणी, बडहंस दक्षिणी, बिलावल दक्षिणी, रामकली दक्षिणी, मारू दक्षिणी तथा प्रभाती दक्षिणी।

पंजाब के प्रसिद्ध कीर्तनियों में क्रमशः भाई शहजादा, भाई बलवंड, भाई सत्ता, भाई सादू, भाई बादू, भाई बाबक, भाई अब्दुल्ला और भाई नत्था आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसके साथ ही जत्थेदार, जस्सासिंह आहलूवालिया, बाबा शामसिंह, भाई मनशासिंह, भाई हीरासिंह, भाई सन्तासिंह, भाई समुन्दसिंह और रवाबी घरानों के प्रसिद्ध कीर्तनिये भी इस परम्परा के गौरव हैं।

जब जैन, बौद्ध, शैव, शाक्त तथा वैष्णव इत्यादि संप्रदायों में योग सम्बन्धो गृह्य साधना का महत्त्व बढ़ता गया तो बिना गुरु की साधना का कोई अर्थ ही नहीं रहा इसलिए इन साधनाओं तथा उनके रहस्यों को पद्य-बद्ध करके भजन और कीर्तन की प्रणालियों से सुरक्षित रखा गया। अनधिकारियों से बचाने के लिए उनमें कवच रूपी प्रतीकात्मक शब्दों को प्रस्तुत किया गया ताकि वे शुद्ध अन्तःकरण वाले वास्तविक शिष्य के समक्ष ही स्पष्ट हो सकें।



## सांगीतिक परम्परा

‘गुरमति संगीत’ में विधाता की आज्ञा को वाणी के रूप में गायन करने और उस ‘खसम की वाणी’ के आध्यात्मिक ज्ञान को समस्त लोक में प्रसारित करने की विशाल सांगीतिक परम्परा है। इस संगीत परम्परा का सृजन शब्द और संगीत के संयोग से हुआ है जिसका प्रस्तुति-विधान ‘श्री गुरुग्रंथ साहिब’ के रूप में प्रकट हुआ। ‘श्री गुरुग्रंथ साहिब’ का रागात्मक संपादन उसमें उल्लिखित विभिन्न राग प्रकार, भिन्न-भिन्न सांगीतिक शीर्षक तथा शास्त्रीय और लोक गायन-रूप गुरमति संगीत-विधान के अभिन्न अंग हैं। यही विभिन्न तत्त्व और अंग संयुक्त रूप में वाणी द्वारा अनुशासित होकर जब कार्य-रूप में परिणित होते हैं तो ‘गुरमति संगीत’ का सैद्धान्तिक आधार सहज ही प्रकट हो जाता है। इसी सैद्धान्तिक आधार पर अन्य गुरु साहिबान एवं सिक्ख धर्म के अनुयायियों ने श्री गुरु नानक देव जी द्वारा प्रसूत सांगीतिक परम्परा का व्यावहारिक (क्रियात्मक) रूप में प्रचलन किया। सिक्ख धर्म में प्रचलित परम्परा, विभिन्न कीर्तन-चौकियाँ तथा जन्म से जीवन के अन्त समय तक प्रतिदिन, प्रतिपल, प्रत्येक अवसर पर प्रस्तुत होने वाला कीर्तन इसी व्यावहारिक रूप का साक्षी है। काल प्रभाव के कारण इस परम्परा में कुछ बदलाव दृष्टिगोचर होता है, फिर भी इसका मूल सैद्धान्तिक स्वरूप और व्यावहारिक प्रचलन ‘गुरमति संगीत’ की विशिष्ट परंपरा को हमारे समक्ष उजागर करता है।

### गुरमति संगीत के चिन्ह

गुरु रूप वाणी और सिक्ख परम्परा से प्रकट होने वाले ‘गुरमति संगीत’ के चिन्ह गुरु-कृपा द्वारा साक्षात् रूप में अब भी प्रकट हो रहे हैं। यह हमारी लापरवाही का ही परिणाम है कि हम इस विशिष्ट विधा को सही प्रसंग एवं सही रूप में नहीं देख पाए फलतः इस संगीत-परम्परा को भारतीय संगीत की एक साधारण गायन-शैली समझ कर उसकी अवहेलना करते रहे। आश्चर्य की बात यह है कि भारतीय संगीत के उपलब्ध ग्रंथों में गुरमति संगीत अथवा सिक्ख धर्म में प्रचलित संगीत को अधिक स्थान नहीं दिया गया जबकि इस परम्परा के लिखित ग्रंथों में ३०५ राग (श्री गुरु ग्रंथ साहिब में ३५ मुख्य राग, २६ प्रकार और श्री सरब लोह ग्रंथ में २४३ राग, दशम ग्रंथ के अलग) तथा १५००० बंदिशें सीना-ब-सीना प्रचलित हैं। इनमें से १०,००० के करीब बंदिशें स्वरलिपि बद्ध हैं, जिनके १३ संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इस परम्परा में भिन्न-भिन्न गायन रूप, मौलिक और विलक्षण अनुशासन तथा विशिष्ट गायन जैसी सामग्री भी उपलब्ध है, जो इसकी विशेषता को उजागर करती है।

‘गुरमति संगीत’ में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त हर अवसर के लिए कीर्तन की विशेष रागमय गायन मर्यादा है। इसके बिना भिन्न-भिन्न रागों के गान-समयानुसार विभिन्न कीर्तन चौकियों की सम्पादना का प्रचलन इस परम्परा की विशेषता है

संगीत-विशाल



जिनमें प्रातःकाल आसा की वार की चौकी, आरती की चौकी, कानड़ेयाँ कलियानु की चौकी, पिछली रात 'तीन पहर रात' की चौकी, आनन्द की चौकी, चरनकँवल की चौकी, विलावल की चौकी, सौदरू को चौकी तथा कीर्त्तन सोहिले की चौकी ।

‘गुरमति संगीत’ एक ही समय में धर्म और कला से संयुक्त विषय है । किसी धर्म में कला और कलात्मकता को पहचानना, उसकी स्थापना करना और कला में धर्म एवं धार्मिकता का साधन निर्धारित करना कठिन तथा सूक्ष्म कार्य है ।

गुरमति संगीत का समय-सिद्धान्त और क्रियात्मक स्वरूप तथा इनसे उत्पन्न होने वाली गुणात्मक अभिनव उपज आज की उपलब्धि नहीं है, अपितु इसके वर्तमान स्थापित स्वरूप के निर्माण में पाँच शताब्दियों का समय लगा है जिसके अन्तर्गत दस गुरु साहिबान, मध्यकालीन आध्यात्मिक चेतना के प्रतिनिधि सन्त-भक्त, महान् कीर्त्तनकार एवं सिक्ख संगतों का विशेष योगदान रहा है ।

## ऐतिहासिक विकास

‘गुरमति संगीत’ के ऐतिहासिक विकास पर दृष्टिपात करना आवश्यक है जिसे तीन भागों में विभाजित किया गया है :—

१—पूर्व काल (आदि ग्रन्थ से) १२ वीं से १५ वीं शताब्दी ।

२—आदि ग्रन्थ रचना काल (१६ वीं से १८ वीं शताब्दी) ।

३—दशम ग्रन्थ एवं आधुनिक काल (१८ वीं से २१ वीं शताब्दी) ।

आदि ग्रन्थ के पूर्व काल में—जयदेव, बाबा फरीद, भक्त कबीर, त्रिलोचन, नामदेव, रामानन्द, सधना, सैन, रविदास एवं भक्त पीपा की वह वाणी जो आदि ग्रन्थ में संकलित है, वह ‘गुरमति संगीत’ के अन्तर्गत गाई जाती है । आदि ग्रन्थ का रचना काल गुरु नानक देव जी से आरम्भ होकर, नौवें गुरु तेग बहादुर जी तक माना जाता है; जिसमें पाँचवें गुरु अर्जुनदेव जी का विशेष महत्त्व है क्योंकि उन्होंने ही आदि ग्रन्थ का सम्पादन-प्रबन्ध अपने हाथों में लेकर भाई गुरुदास से लिखवाकर एक ग्रन्थ के रूप में इसे स्थापित किया ।

‘गुरमति संगीत’ शब्द कीर्त्तन परम्परा है, जिसका बुनियादी लक्ष्य ‘शब्द’ का प्रकाश है । ‘शब्द’ ही इसकी केन्द्रीय इकाई है । शब्द रूप ‘गुरु’ श्री गुरुग्रन्थ साहिब की वाणी का संकलन एवं सम्पादन भी संचार की दृष्टि से ही किया गया । गुरमति संगीत की कुछ प्रमुख कीर्त्तन टकसालों के नाम इस प्रकार हैं, जिनमें गुरमति संगीत तथा कीर्त्तन सेवा विधि की शिक्षा दी जाती है—दमदमो टकसाल (गुरु काशी), दमदमो टकसाल (अमृतसर), दोहधर टकसाल, चमकौर साहिब टकसाल, तरन तारन टकसाल, बूढाजोड़ टकसाल, दुमेली टकसाल (फगवाड़ा, होशियारपुर रोड), यतीमखाना अमृतसर, सूरमासिंह आश्रम (यतीमखाने की ब्रांच), सिक्ख मिशनरी कॉलेज अमृतसर, मस्तूआणा टकसाल संगरूर, सिंघा वाला टकसाल, कलेराँ वाला टकसाल (नानकसर), रक्ताबगंज टकसाल (दिल्ली) सेवापंथी टकसाल (गोनियाणा), जवदी कलाँ टकसाल ।



मुगल बादशाह औरंगज़ब द्वारा संगीत पर प्रतिबन्ध लगाना बेशक दुर्भाग्यपूर्ण कहा जा सकता है, किन्तु उसका वास्तविक लक्ष्य मुगल साम्राज्य को राग-रंग एवं विलासिता के चंगुल से मुक्त कराना था। वह इसे मुगल साम्राज्य के पतन का कारण मानता था। यह विड्वान ही है कि तलवार के जोर पर स्थापित मुगल साम्राज्य राग-रंग और विलासिता के कारण ही नष्ट हुआ और संगीत अर्थात् 'गुरमति संगीत' गुरु नानक की इलाही (ईश्वर) वाणी तथा रबाब की मधुर जंकार के रूप में अमरत्व को प्राप्त हुआ। सिक्ख धर्म के दशम् पातिशाह की तलवार तक का सफ़र इसी संगीत के माध्यम से तय होता हुआ 'ख़ालसा' के जन्म का कारण बना, जिसने जोर-जुल्म के विनाश तथा सत्य के प्रकाश का स्वर्णिम इतिहास लिखा। ख़ालसा को भस्म करने की बार-बार कोशिश की गई, किन्तु उसकी भस्म, भस्म न होकर गुलज़ार बन गई, जिसका विकसित रूप आज प्रत्यक्ष है।

गुरमति संगीत का इतिहास मुगल दरबार के दरबारी संगीत के समानांतर और समकालीन रूप में उजागर होता है। संगीत-जगत् में 'बाबर' और 'बाबे' के दो प्रमुख वरानों की धाराएँ प्रवाहित रही हैं। गुरु बाबे (नानक के दरबारी रबाबिए) रागी मुगल बादशाह के दरबारी संगीतज्ञों से स्वयं को सदैव उच्चासीन मानते रहे हैं। इस मान्यता की स्थापना संपूर्ण परम्परा के तौर पर हुई, जिसमें सिक्ख इतिहास के प्रत्येक पल और उसके योगदान का जिक्र है।

### गुरमति संगीत में प्रयुक्त वाद्य

'गुरमति संगीत' के अन्तर्गत वाद्यों के पाँच प्रकारों का प्रयोग किया जाता है—

१. **ततवाद्य**—जैसे रबाब, सितार और सारिन्दा।
२. **बित्त**—चर्म के साथ मढ़े हुए वाद्यों को बित्त ( बितत ) कहा गया है; जैसे—मृदंग और तबला।
३. **घन**—पीतल के तालों की 'घन' संज्ञा है।
४. **मुखर**—पोलिआं पौण भरे वाद्यों पर हाथ से बजाकर शब्द उत्पन्न करने वाले वाद्यों को 'मुखर' कहते हैं, जैसे—घड़ा।
५. **सुखर**—बाँस आदि नर्म लकड़ियों या धातु के पोले साज, जो मुँह के श्वास या बाहर की वायु द्वारा बजाए जाएँ, उन्हें 'सुषिर' कहा गया है, जैसे—बाँसुरी इत्यादि।

कुछ अन्य वाद्यों के नाम इस प्रकार हैं—रबाब, पखावज, मन्दरू, मन्दल, नौबत (नगाड़ा), ढोलक, डऊरू, ढोल, मदीरे, भेरी (नगाड़ा), शहनाई, वीणा, बेणु, सिझी, वेण (एक प्रकार का तंत्री वाद्य), किगुरी (एकतारा)।



‘गुरुमति संगीत’ के आधार-ग्रंथ ‘श्री गुरुग्रंथ साहिब’ में दर्ज वाणी के संचार के लिए ‘गुरु साहिबान’ के जिन अलग-अलग काव्य या गायन-रूपों को प्रयोग में लिया गया, उनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

### सनातन (शास्त्रीय) अंग के गायन रूप

यह वह गायन रूप है जो मूल रूप में भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रचलित है। इसको निम्नलिखित भागों में विभक्त किया गया है :—

**अष्टपदी**—अष्टपदी ‘श्री गुरुग्रंथ साहिब’ का महत्वपूर्ण काव्यरूप है। इसका काव्यात्मक और सांगीतिक रूप सनातनी उच्चता का धारणी है। गुरुवाणी के अन्तर्गत अष्टपदी में मानव-जीवन के साधारण विषयों को मूर्तिमान किया गया है। आठ पदों की रचना को ‘अष्टपदी’ कहते हैं किन्तु गुरुवाणी में ‘अष्टपदी’ के अधीन पदों की गिनती आठ से बढ़कर नौ, दस, ग्यारह और कुछ कम अर्थात् सात तक भी मिलती है।

**पद**—पद, काव्य का पुरातन और प्रचलित रूप है, जिसका गायन करने की अपनी ही परम्परा है। पद को राग पद, राग प्रकाशक पद और स्वर शब्द भी कहा जाता है। गुरुवाणी में बन्द या तुकों की संख्या के आधार पर ही पदों के नाम शीर्षक रूप में अंकित हैं। दो बन्दों को दुपदे, तीन बन्द के पद को तिपदे, चार बन्द के पद को चौपदे, इसी तरह पंचपदे और छहपदे आदि कहते हैं।

**होली**—गुरुवाणी में होली से सम्बन्धित शब्दों को भारतीय संगीत में प्रचलित ‘धमार’ अंग से गायन करने की परम्परा है। धमार शैली श्रृंगार रस प्रधान है। ‘श्री गुरुग्रंथ साहिब’ में दर्ज होली के शब्दों में ‘रहाओ’ का प्रयोग स्थायी और अन्तरा में विभाजित किया गया है।

**पड़ताल**—पड़ताल शैली की रचना पड़ + ताल शब्दों के मेल से हुई है। इसके शाब्दिक अर्थों को देखने पर ‘ताल के आधार पर शब्द का पाठ’ बनता है। पड़ताल को पट ताल, परत ताल, पंच ताल, पड़त ताल आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। पड़ताल एक कठिन गायन शैली है। पड़ताल के गायन के लिए गायक को जहाँ रियाज की जरूरत है; वहाँ ध्रुपद, धमार और बाक्की गायन शैलियों का पूर्ण ज्ञान भी आवश्यक है।

### लोक (देशी) अंग के गायन रूप

यह गायन रूप वे हैं जो पंजाब के अलग-अलग इलाकों, जातियों तथा प्रान्तों के लोक-जीवन में निजी सामूहिक भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त होते हैं।

**छंत (छंद)**—‘छंत’ पंजाबी काव्य का अंग है। लोगों में इसका प्रयोग उन गीतों के लिए किया जाता है जो विवाह के अवसर पर लाड़ा अपनी सालियों को सुनाता है। ‘विवाह-शादी’ के मौके पर गाए जाने वाले गीतों को ‘छंत’ कहा जाता है। इनका गायन अधिकतर ‘पीलू’ तथा ‘खमाज’ जैसे रागों में किया जाता है।



**अलाहुणी**—‘अलाहुणी’ शब्द ‘अलाहण’ से बना है, जिसका अर्थ है गाना। ‘अलाहुणी’ का शाब्दिक अर्थ है प्रशंसा या स्तुति की कविता यानी वह गीत जिसमें किसी के गुण गाए जाएँ। दिवंगत प्राणी के गुण कर्म कहकर जो गीत गाया जाता है उसे ‘अलाहुणी’ कहते हैं।

**मुन्दावणी**—‘मुन्दावणी’ का अर्थ है बुझारत अड़ाउणी, जिसमें भाव या अर्थ गुप्त रूप में बन्द करके या छिपा के रखा हो। ऐसी बात जो जल्दी से किसी की समझ में न आ सकती हो वही ‘मुन्दावणी’ की रीत है। इसके अनुसार जब बराती खाना खाने बैठते हैं तो लड़कियाँ बुझारत गाकर थाली बाँध देती हैं, वह बूझली जाए तो बराती खाना खाते हैं, इसी को ‘मुन्दावणी’ कहा जाता है। इसका गायन बिना साज के सामूहिक रूप में किया जाता है।

**घोड़ीयाँ**—‘घोड़ीयाँ’ पंजाब का लोकप्रिय काव्य-रूप है। विवाह के मौके पर लाड़ा (वर) के घोड़ी चढ़ते समय वह अपने वीर (भाई) का शकुन बनाने के लिए जिस प्रकार का गीत गाती हैं, उसे ‘घोड़ी’ लोक काव्य रूप के अन्तर्गत जाना जाता है। गुरुवाणी के अधीन ‘घोड़ीयों’ में परमात्मा का नाम स्मरण करके प्रभु के मिलाप के साधनों का वर्णन मिलता है।

**अंजली**—पाणी की चुली ( जलांजलि ) देवता या पितरों को अर्पित करने की रीति से सम्बन्धित काव्य रूप है। लोक-विश्वास के अनुसार यह पानी मरे हुए प्राणी को आगे वाले लोक में प्राप्त होता है। गुरुवाणी के अन्तर्गत रूपकार की दृष्टि से ‘अंजली’ में आठ-आठ बंद हैं और प्रत्येक बंद की पहली दो तुकें छोटी और तीसरी तुक लम्बी होती है।

**वार**—‘वार’ पंजाब के लोक संगीत का अभिन्न अंग है, जिसमें बहादुर वीरों की लड़ाई तथा शूरवीरता को संगीतमय प्रस्तुति द्वारा पेश किया गया है। इसके गायक को ‘ढाढ़ी’ कहा जाता है। ‘वार’ वीर रस से ओतप्रोत होने के कारण इसका गायन बुलन्द आवाज़ और ज्यादातर तार सप्तक में किया जाता है। इसके गायन के लिए ढड और सारंगी का प्रयोग किया जाता है।

### गुरुमति संगीत के प्रामाणिक ग्रन्थ

‘गुरुमति संगीत’ के प्रामाणिक ग्रंथ हैं—दशमू ग्रंथ, भाई गुरुदास की वारें और आदि ग्रंथ (श्री गुरु ग्रंथ साहिब)।

**दशमू ग्रन्थ**—यह ग्रन्थ गुरु गोविन्द सिंह जी का संग्रह है। यह कुल १० ग्रन्थों का संग्रह है। ये ग्रन्थ, फ़ारसी, हिन्दी, ब्रज और पंजाबी भाषाओं में हैं।

**भाई गुरुदास की वारें**—गुरु अर्जुनदेव जी द्वारा सम्पादित ‘आदि ग्रन्थ’ के हस्त लेखन का महान् कार्य भाई गुरुदास ने किया जिन्होंने ‘वार’ शैली को अपनाया।

संगीत-विशारद



आदि ग्रन्थ (आदि-बीड़)—सन् १६०४ ई० में गुरु अर्जुनदेव जी ने इसे पवित्र एवं पूजनीय ग्रन्थ को हरिमंदर साहिब, अमृतसर में स्थापित किया। सिख गुरुजनों के अलावा इसमें अनेकों पूर्वकालीन एवं पश्चात्वर्ती हिन्दू भक्तों, सन्तों, मुस्लिम सूफियों तथा भट्टों इत्यादि की रचनाएँ शामिल हैं।

## पंजाब की संगीत परम्परा

पंजाब की विविध सांगीतिक धाराओं ने भारतीय शास्त्रीय संगीत को सम्पन्न बनाया है जिसमें पंजाब के लोकगीत, सूढ़ी संगीत और गुरमति संगीत का विशेष योगदान रहा है। इसका प्रमाण आसा, पहाड़ी, मुलतानी, काफ़ी, मांड, माझ, तुखारी, बड़हंस, मारु, तिलक, जोगिया तथा सिन्ध भैरवी जैसे अनेक रागों के भारतीय संगीत में समाविष्ट होने से भी मिलता है। इसी प्रकार खयाल, पड़ताल, टप्पा, काफ़ी और पंजाब अंग की ठुमरी आदि शैलियों के नाम भी लिए जा सकते हैं। पंजाब अंग की गायकी और ताल सम्बन्धी विविध ठेकों ने भारतीय संगीत में जो रंजकता प्रदान की है वह भी किसी से छिपी नहीं है। रबाब, तबला (दुक्कड़), संतूर और सतारी (सितार) के अतिरिक्त कुछ लोकवाद्यों ने भी शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में अपना एक अलग स्थान बनाया है जिसका श्रेय पंजाब की धरती को ही जाता है।

श्री गुरुवाणी में प्रयुक्त पद रचनाएँ, अष्टपदी तथा कीर्तन और सूफियाना संगीत में प्रबन्ध गायन, ध्रुपद, पड़ताल एवं खयाल ने भारतीय संगीत को शास्त्रीयता का जो श्रेय दिलाया वह सभी जानते हैं। ईरानी मुक़ाम पद्धति और दक्षिण भारत की मेल-पद्धति से वर्तमान में जिस ठाठ-प्रणाली का प्रचलन हुआ उसका सम्मिश्रण भी पंजाब में हुआ।

पंजाब की पाँच नदियों ने जिस तरह भारत के एक बड़े भू-भाग को उर्वर बनाया; उसी तरह पंजाब के धार्मिक, सामाजिक तथा लोक संगीत ने भारतीय संगीत को समृद्ध करने में जो योगदान दिया है वह स्तुत्य है एवं विशद अनुसंधान की अपेक्षा रखता है।

□ □ □



## संगीत-वाद्यों में ध्वनि तरंगें

**तरंग :** गरमी, सरदी, प्रकाश, बिजली, चुम्बक और ध्वनि आदि सबकी ऊर्जा, लहरों या तरंगों द्वारा ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाती है। अतः लहरों के गतिमान होने के सिद्धान्त को जान लेना आवश्यक है। तरंग या लहर को स्पष्ट समझने के लिए आप एक ऐसे तालाब की कल्पना कीजिए जिसमें पानी शान्त हो। पानी के ऊपर बीच में कहीं कुछ पत्ते डाल दीजिए। फिर एक छोटी सी कंकड़ी पानी में कहीं डाल दीजिए। आप देखेंगे कि कंकड़ी पड़ने के स्थान से लहरों का उठना शुरू हो जायेगा और सभी लहरें तालाब के किनारे पर जाकर टकराती रहेंगी। आप यह भी देखेंगे कि पत्ते जहाँ हैं वहीं लहरों के साथ ऊपर-नीचे हो रहे हैं। यदि लहरों के साथ पानी भी चलता होता तो पत्ते भी बह कर किनारे पर आ जाते, जो नहीं आए। इसका अर्थ यह हुआ कि लहर ही पानी के माध्यम द्वारा अपने उद्गम स्थान से किनारे की ओर जा रही है परन्तु माध्यम स्थिर है।

**प्रगामी तरंग-धारा :** यदि हम किसी माध्यम में लगातार तरंगें उत्पन्न करते रहें तो माध्यम के कण भी लगातार कम्पन करते रहते हैं। इस अवस्था में माध्यम में उत्पन्न हुई हलचल को 'प्रगामी तरंग-धारा' कहते हैं। ऊपर के उदाहरण में जो हमने कुछ पत्ते तालाब में डाले हैं, उन सबको यदि एक साथ देखें तो पाएँगे कि वे उस क्षण अपने-अपने कम्पनों की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में होंगे। कोई अपनी सामान्य स्थिति में होगा, कोई इस स्थिति से ऊपर और कोई इससे नीचा। दूसरे शब्दों में भिन्न पत्ते भिन्न-भिन्न कलाओं (दशाओं) में होंगे। अतः अब यह भी कहा जा सकता है कि 'जब किसी माध्यम में प्रगामी तरंग-धारा संचरित होती है तो किसी भी क्षण माध्यम के सभी कण एक ही प्रकार से कम्पन करते रहते हैं परन्तु कम्पन की कला (स्थिति) एक कण से दूसरे कण पर बदल जाती है।' इन कणों के कम्पन की दिशा के अनुसार तरंगें दो प्रकार की होती हैं, जिन्हें नीचे समझा रहे हैं।

(१) **अनुप्रस्थ तरंग :** इसमें माध्यम के कण, तरंग के चलने की दिशा के लम्बवत् (अर्थात्  $90^\circ$  का कोण बनाते हुए) कम्पन करते हैं। उदाहरण के लिए आप एक



रस्सी में किसी स्थान पर स्याही से एक निशान लगा दीजिए। अब इस रस्सी का एक सिरा किसी हुक में बाँध दीजिए। दूसरे हिस्से को हाथ से पकड़ कर ऊपर-नीचे हिलाते रहिए। आप देखेंगे कि रस्सी में उसकी लम्बाई की दिशा में तरंग संचालित होने लगी। ध्यान से देखने पर स्याही का निशान रस्सी की लम्बाई के लम्बवत् कम्पन करता दिखाई देगा अतः हम कहेंगे कि रस्सी में 'अनुप्रस्थ तरंग है'।

**शृंग और गर्त** : अनुप्रस्थ तरंग में जितनी अधिकतम ऊँचाई तक तरंग जाती है उस ऊँचाई की स्थिति को 'शृंग' और नीचे की ओर जितनी अधिकतम नीचाई तक तरंग जाती है, उस स्थिति को 'गर्त' कहते हैं। ये तरंगें केवल ठोस पदार्थों में ही उत्पन्न होती हैं।

**(२) अनुदैर्घ्य तरंग** : इसमें माध्यम के कण तरंग के चलने की दिशा के समानान्तर कम्पन करते हैं। उदाहरण के लिए आप एक तार की स्प्रिंग के एक सिरे को दीवार में बाँध दीजिए। दूसरे सिरे को हाथ से पकड़ कर आगे-पीछे करिए। आप देखेंगे कि स्प्रिंग का प्रत्येक चक्कर स्प्रिंग की लम्बाई के समानान्तर कम्पन करने लगता है। यदि हम किसी क्षण पूरे स्प्रिंग को देखें तो पाएँगे कि स्प्रिंग के चक्कर कुछ स्थानों पर तो वे सामान्य अवस्था में न होकर पास-पास हैं और कुछ स्थानों पर दूर-दूर। जिन स्थानों पर ये स्प्रिंग के चक्कर पास-पास हैं, वे स्थान 'संडीपन' की दशा में कहे जाते हैं और जिन स्थानों पर चक्कर दूर-दूर हैं, वे स्थान 'विरलन' की दशा में कहे जाते हैं।

**ध्वनि का संचरण** : जब एक द्विभुज को बजाया जाता है तो उसकी भुजाएँ दाएँ-बाएँ हिलती हैं। जब वे दायीं ओर आती हैं तो हवा में संडीपन की स्थिति हो जाती है और जब उसकी भुजाएँ बायीं ओर जाती हैं तो विरलन की स्थिति हो जाती है। इस प्रकार ये तरंगें हमारे कान द्वारा मस्तिष्क में पहुँच कर ध्वनि को ग्रहण करने वाली अस्थियों और नाड़ियों को आन्दोलित कर देती हैं। फलस्वरूप हम ध्वनि को सुनते हैं।

**अप्रगामी तरंगें** : जब सभी प्रकार से समान, दो प्रगामी तरंगें किसी बद्ध माध्यम में एक ही चाल से, किन्तु विपरीत दिशाओं में चलती हैं तो उनके अध्यारोपण (एक का दूसरी से मिल जाना) से एक नई प्रकार की तरंग उत्पन्न हो जाती है। यह तरंग किसी भी दिशा में बढ़ती प्रतीत नहीं होती। इस प्रकार की तरंग को 'अप्रगामी तरंग' कहते हैं। ये तरंगें अनुप्रस्थ और अनुदैर्घ्य दोनों प्रकार की तरंगों से उत्पन्न की जा सकती हैं।

## संगीत वाद्यों में तरंगें

भारतीय संगीतज्ञों ने अपने वाद्यों को मुख्य रूप से चार वर्गों में बाँट रखा है। ये (१) तार के वाद्य (इनमें ताँत वाले भी शामिल हैं), (२) फूँक के वाद्य, (३) खाल से मढ़े वाद्य और (४) परस्पर चोट दे कर बजाए जाने वाले वाद्य हैं।



**तार के वाद्य :** इस वर्ग में दो प्रकार के वाद्यों को रखा गया है जिन्हें 'तत्' और 'वितत्' वाद्य कहते हैं। 'तत्' वाद्य वे कहलाते हैं जिनमें स्वर को मिज़राब, जवा या स्ट्राइकर से उत्पन्न किया जाता है। जैसे—वीणा, सितार, सरोद, गिटार, मॅन्डोलिन, वैंजो आदि। जब कि 'वितत्' वाद्य वे हैं जिनमें स्वरोत्पत्ति गज़ (कमानी) की रगड़ से की जाती है। जैसे—सारंगी, इसराज, वाँयलिन, सरिदा और तार शहनाई आदि।

**सुषिर वाद्य :** फूँक अर्थात् हवा से बजने वाले वाद्यों को 'सुषिर' वाद्य कहते हैं। इन वाद्यों के भी दो भेद कर दिए गए हैं। एक वर्ग में वे वाद्य आते हैं जिनमें ध्वनि की उत्पत्ति बिना किसी स्वर-कम्पिता (पत्ती या रीड) से होती है; जैसे—बाँसुरी, शंख, सपेरों की बीन आदि। दूसरे वर्ग में वे वाद्य आते हैं जिनमें ध्वनि उत्पादक स्वर-कम्पिता लगी होती है; जैसे—शहनाई, क्लैरीनेट, माउथ-ऑर्गन तथा हारमोनियम आदि।

**खाल से मढ़े वाद्य :** इस वर्ग के वाद्यों को 'अवनद्ध' वाद्य कहा जाता है। इन वाद्यों में भी दो भेद हैं। एक वर्ग में वे वाद्य आते हैं जिनमें स्वरों को ऊँचा-नीचा किया जा सकता है; जैसे—मृदंग, पखावज, तबला, नाल, डमरू आदि। दूसरे वर्ग में वे वाद्य आते हैं जिनमें स्वर को ऊँचा-नीचा नहीं किया जा सकता, जैसे—ढप, खंजरी, चंग आदि।

प्रहार या चोट दे कर बजाए जाने वाले वाद्यों को 'घन वाद्य' कहा जाता है। इस वर्ग के वाद्य झाँझ, मँजीरा, करताल, चीमटा आदि हैं।

**तार वाद्यों में तरंगें :** तार के वाद्यों में सदैव अनुप्रस्थ-अप्रगामी तरंगें ही बनती हैं। मिज़राब, जवा या स्ट्राइकर से जब तार को ध्वनित किया जाता है तो इनके ध्वनि होते समय प्रायः दो मोटे सिद्धान्त होते हैं—(१) ध्वनित होने वाला तार अपनी मूल अर्थात् शान्त स्थिति पर आना चाहता है। (२) गज़ या मिज़राब उसे पुनः गति दे देते हैं। इस प्रकार से दो प्रमुख प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती हैं। एक तो वे जो बजाए जाने वाले स्थान से चलती हैं और तार के किनारों से परावर्तित होती हैं अर्थात् लौटती हैं। दूसरे प्रकार की वे हैं जो तब उत्पन्न होती हैं जब कि तार पर तनाव और आन्दोलनों की गति काफ़ी अधिक होती है। अर्थात्, गज़ या मिज़राब के संचालन के कारण तरंग पुनः बन्द सिरों की ओर (अर्थात् अटी की ओर) जाती है। इस प्रकार इस जाने और लौटने वाली तरंगों के अध्यारोपण (मेल) से तारों में अनुप्रस्थ-अप्रगामी तरंगें बन जाती हैं।

इन अप्रगामी तरंगों की यह विशेषता है कि इनमें माध्यम (तार) के कुछ बिन्दु सदैव स्थिर रहते हैं (अर्थात् तार के आन्दोलित होते समय जो दोनों किनारे



होते हैं) उन्हें 'स्थिर बिन्दु' कहते हैं। ये स्थिर-बिन्दु 'निस्पन्द' कहलाते हैं। इसके विपरीत जहाँ बीच में तार सबसे अधिक ऊपर-नीचे जाता है उसे 'प्रस्पन्द' कहते हैं।

**सुषिर वाद्यों में तरंगें :** आप जानते हैं कि जब हम किसी शीशी के मुँह पर फूँक मारते हैं तो ध्वनि उत्पन्न होती है। यहाँ शीशी के खुले सिरे से अनुदैर्घ्य तरंग बन्द सिरे की ओर चलती है। किन्तु शीशी का बन्द सिरा काफ़ी दृढ़ है अतः यह तरंग वहाँ से टकरा कर पुनः पहले सिरे की ओर वापिस आती है। इसके अध्यारोपण से अनुदैर्घ्य-अप्रगामी तरंग बन जाती है। इसमें जो क्रम नलिका के वायु-स्तम्भ में ऊपर से नीचे की ओर चलता था, अब वही क्रम नीचे से ऊपर की ओर चलने लगता है। जो नली एक ओर से बन्द हो और दूसरी ओर से खुली (जैसे सीटी आदि) तो उसे बन्द सिरे की नलिका कहते हैं।

इन नलिकाओं में बन्द सिरे के निकट वाली वायु को कम्पन करने की स्वतन्त्रता कम से कम रहती है, इसलिए इस स्थान पर सदैव 'स्थिर बिन्दु' या 'निस्पन्द' होता है। इसके विपरीत नलिका के खुले सिरे के पास वाली हवा कम्पन करने को पूर्णतः स्वतन्त्र रहती है अतः खुले सिरे पर सदैव 'प्रस्पन्द' होता है।

**दोनों सिरों पर खुली नलिका :** जब हम दोनों सिरों पर खुली नलिका (माइप) के एक सिरे पर फूँक मारते हैं तो अनुदैर्घ्य तरंग एक सिरे से दूसरे सिरे की ओर चलती है। दूसरा सिरा भी खुला हुआ है अतः वहाँ भी वायु-कणों को कम्पन करने की स्वतन्त्रता रहती है इसलिए यह तरंग वहाँ से लौटकर (अर्थात् परावर्तित होकर) पहले सिरे की ओर आती है। पहला सिरा इस तरंग को पुनः दूसरे सिरे की ओर भेजता है और यह तरंग दूसरे सिरे से पुनः लौटकर पहले सिरे की ओर आती है, तथा यही क्रम चलता रहता है। इस प्रकार नलिका में अनुदैर्घ्य तरंगें विपरीत दिशाओं में चलने लगती हैं। चूँकि नलिका दोनों सिरों पर खुली हुई है अतः दोनों सिरों पर सदैव प्रस्पन्द ही होते हैं। यदि इनमें जोर फूँक मारी जाए तो नलिका के सिरों के बीच में एक से अधिक निस्पन्द बन जाते हैं। फलस्वरूप अधिक स्वर उत्पन्न हो जाते हैं। इस खुले सिरे की नलिका दो, तीन, चार अथवा और अधिक निस्पन्द उत्पन्न होने के कारण सभी सम और विषम आवर्तक-स्वर उत्पन्न हो सकते हैं।

**वंशी :** 'वंशी' या 'वाँसुरी' को खुली नलिका वाले वाद्यों के वर्ग में रखते हैं। कारण कि इस वाद्य में नीचे का सिरा तो खुला होता ही है, साथ में जहाँ से फूँक मारी जाती है, उसके समीप ही एक छेद और होता है। इस वाद्य में कई छेद होते हैं। जब सारे छेदों को बन्द करके फूँक लगाते हैं तो सबसे नीचे ध्वनि उत्पन्न होती है। इस स्थिति में दोनों किनारों पर प्रस्पन्द होते हैं और बीच में निस्पन्द। छेदों को बन्द करने और खोलने से भिन्न तारता के स्वर उत्पन्न किए



जाते हैं। जैसे-जैसे बन्द छेदों की उँगलियों को हटाकर खोला जाता है, खुले तथा बन्द सिरों के बीच में प्रस्पन्दों की संख्या बढ़ जाती है एवं स्वर ऊँचा होता जाता है। ये छेद इस अनुपात में बनाए जाते हैं कि इनके द्वारा उत्पन्न ध्वनि प्रायः शुद्ध स्वरों की ही होती है। यदि छेद छोटे-छोटे होते हैं तो सरलता से दब जाते हैं परन्तु ध्वनि निर्बल होती है। इसलिए छेदों को कुछ बड़ा बनाया जाता है। परन्तु छेदों के अधिक बड़े हो जाने पर नाद भी ऊँचा हो जाता है। इसलिए बाँसुरी की ध्वनि, नलिका और छेद दोनों के आकार पर निर्भर करती है।

**शहनाई या क्लैरीनेट :** इन वाद्यों में फूँक मारने के स्थान पर एक बेंत की स्वर कम्पिता (रीड या पत्ती-सी) लगी रहती है। दूसरे किनारे पर बाहर की ओर चौड़ाई लेता हुआ एक घण्टा-सा बना रहता है। पत्ती के खुले भाग में होकर इसमें फूँक पहुँचती है और इसमें निस्पन्द उत्पन्न हो जाता है जो कि खुले सिरे की ओर चलता है। वहाँ से फूँक प्रस्पन्द के रूप में लौटती है। चूँकि इसमें पत्ती के पास निस्पन्द होता है इसलिए इन वाद्यों को बन्द सिरे वाली नलिका के वर्ग में रखते हैं। इन वाद्यों में तरंग को अपने आन्दोलन पूर्ण करने के लिए चार गुना चलना होता है। अर्थात् उसकी तरंग-लम्बाय, उसकी लम्बाई से चौगुनी होती है। फलस्वरूप यदि खुले सिरे वाली नलिका (बाँसुरी) और क्लैरीनेट या शहनाई की नलिकाओं की लम्बाई समान हो तो इन वाद्यों का स्वर, खुले सिरे वाली नलिकाओं के वाद्यों से एक सप्तक नीचा होता है।

**अवनद्ध वाद्य :** इस वर्ग में वे वाद्य आते हैं जो खाल से मढ़े होते हैं, जैसे—तबला, नगाड़ा, ताशा, ढोल, ढोलक आदि। इन वाद्यों में किसी गोल खोखली वस्तु पर खाल मढ़ दी जाती है, जो किनारों से कसी जा सकती है। इस प्रकार इसमें मढ़ी हुई खाल का क्षेत्रफल निश्चित हो जाता है। बजाने पर यह खाल ऊपर-नीचे हिलती है और इसमें बड़े उलझे हुए कम्पन उत्पन्न होते हैं। ये कम्पन किसी नियम के अनुसार नहीं चलते। इनके कम्पनों की तारता उनके रूप, आकार, खिचाव, मोटाई और पदार्थ के घनत्व पर निर्भर करती है। परन्तु तबले में उसकी खाल के बीच में लोहे का बुरादा और सरेस या आटे की पूलिका लगा देते हैं जिसके फलस्वरूप कम्पन एक सुरीले ढँग से उत्पन्न होने लगते हैं। इसी कारण इस वाद्य में इतना मिठास उत्पन्न हो जाता है कि इसे भारतीय संगीत वाद्यों में स्थान मिल गया है। इन वाद्यों में किनारों के कसे रहने के कारण वहाँ निस्पन्द होता है और बीच में प्रस्पन्द। फिर भी यहाँ यही समझना चाहिए कि तबले के आन्दोलनों के विषय में जो कुछ ऊपर कहा गया है वह एक प्रकार से स्थूल रूप-रेखा ही है।

**घन-वाद्य :** झाँझ इत्यादि वाद्यों में आन्दोलित होने वाली धातु की चद्दर, तबले आदि वाद्यों की खाल से भिन्न होती है। इस बनावट के भिन्न होने पर भी



इन दोनों से उत्पन्न होने वाली तरंगों में काफी समानता है। किन्तु यहाँ इस समानता को समझना बड़ा कठिन है। इस वर्ग के सबसे प्रसिद्ध वाद्य झाँझ और मँजीरा आदि हैं। इन वाद्यों में परिधि स्वतन्त्र रहने के कारण वहाँ प्रस्पन्द उत्पन्न होता है। मध्य में, जहाँ से इन्हें पकड़ा जाता है, वहाँ निस्पन्द होता है। इनसे उत्पन्न ध्वनि की तारता इतनी अनिश्चित होती है और इनकी ध्वनि का गुण भी इतना उलझा हुआ होता है कि उस ध्वनि को एक प्रकार का रव (कोलाहल या शोर) कहा जाता है। घण्टा, घड़ियाल, घण्टी, जल तरंग, मुकुर तरंग (काँच तरंग), तथा त्रिकोण (ट्राइएंगल) आदि इसी वर्ग के वाद्य हैं। मुकुर तरंग आदि में उनके किनारे वाले भागों पर कम्पन नहीं होते। बल्कि उनके बीच के भाग में सबसे अधिक कम्पन होते हैं। इनमें अनेक प्रकार की बेसुरी ध्वनियाँ भी उत्पन्न होती हैं। इसीलिए इनसे निश्चित तारता का स्वर उत्पन्न नहीं होता।

ध्वनि तरंगों को याद करने के लिए निम्नलिखित कवित्त को कंठस्थ कर लेना चाहिए ताकि आवश्यकता के समय तरंग का नाम और उससे सम्बन्धित विवरण ध्यान में आ जाए।

तंतु, सुषिर, अवनद्ध, घन, वाद्य-कोटि हैं चार।

ध्वनि तरंग प्रगटें तहाँ, नौ-प्रकार उच्चार ॥

नौ-प्रकार उच्चार, याद कर इनको धारे।

‘शृंग’, ‘गर्त’, ‘संडोपन’, ‘विरलन’, गुनी उचारे ॥

‘अप्रगामी’, ‘अनुप्रस्थ’ और ‘अनुदेर्ध्य’ कहावें।

विद्वज्जन ‘निस्पन्द’ और ‘प्रस्पन्द’ बतावें ॥

□ □ □



## ध्वनि विज्ञान से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्य

मि० सैंडले टेलर द्वारा लंदन की रॉयल अकादेमी आफ् म्यूजिक में दिए गए दो भाषणों के ये मुख्य बिन्दु स्मृति में काफी सहायक हो सकते हैं—

१. ध्वनि ठोस, द्रव तथा गैस से निर्मित पदार्थों से गुजर सकती है किन्तु शून्य से नहीं।

२. तरंगों में विकासशील गति होती है, जो कि उन पदार्थों की नहीं होती जिनसे कि किसी समय उनका निर्माण होता है।

३. तरंग, जिस कण अथवा लघुतम पदार्थ से गुजरती है तो उसमें क्रमशः कम्पन की गतियाँ उत्पन्न करती है।

४. जितने समय में किसी एक कण में कम्पन होता है, तरंगों का समूह एक पूरी तरंगों की लम्बाई से गुजर जाता है।

५. ध्वनि-तरंगें माध्यम के कणों में होने वाले समानांतर कंपनों (अनुदैर्घ्य तरंगों) के ही कारण अग्रसारित होती हैं।

६. प्रत्येक ध्वनि-तरंग में सघनता और विरलता, दोनों ही तत्त्व होते हैं।

७. ध्वनि-तरंगों के अग्रसर होने का यांत्रिक कारण माध्यम के लोच पर निर्भर होता है।

८. लगातार, शीघ्र और समान कम्पनों के कारण संगीत-ध्वनि उत्पन्न होती है।

९. संगीत-ध्वनियाँ तीव्रता, तारता (Pitch) और गुणवत्ता में परस्पर भिन्न हो सकती हैं।

१०. ध्वनि की तीव्रता, कम्पन के आकार पर निर्भर करती है।

११. तारता (Pitch) कम्पन की गति पर निर्भर करती है।

१२. सायरेन (Siren) नामक यंत्र की सहायता से हम प्रति सैकिण्ड कंपनों की संख्या निर्धारित कर सकते हैं, जो कि किसी निश्चित तारता (Pitch) की एक ध्वनि के समकक्ष होती है।

१३. यह संख्या सम्बन्धित स्वर की कम्पन-संख्या कहलाती है।



१४. किन्हीं दो स्वरों का अन्तराल उनकी क्रमशः कम्पन-संख्याओं के अनुपात से नापा जाता है।

१५. जब एक ध्वनि-यंत्र किसी दूसरे ध्वनि-यंत्र में ध्वनि उत्पन्न करता है तो इसे 'अनुनाद' कहते हैं।

१६. बड़ी संख्या में ध्वनि-तरंगों के सामूहिक प्रभाव से 'अनुनाद' की उत्पत्ति होती है।

१७. किसी निर्धारित आकार और स्वरूप का वायु-विवर किसी तारता (Pitch) की तीव्रता या तेज़ी से अनुनादित हो उठता है।

१८. किसी एक ही समय में अनेक प्रकार की ध्वनियों में से 'अनुनाद' किसी एक प्रमुख ध्वनि को अलग करने में सहायता करता है।

१९. किसी संगीत वाद्य से निकली प्रत्येक ध्वनि केवल मात्र एक संगीत-स्वर नहीं होती, बल्कि उसमें तारता (Pitch) और तीव्रता में काफ़ी भिन्नता लिए हुए अनेक स्वर होते हैं।

२०. ये स्वर 'संयुक्त स्वर' के 'आंशिक स्वर' कहलाते हैं। इनका एक निर्धारित क्रम होता है। इनकी कम्पन संख्या, नीचे से ऊपर की ओर चलती है, और १, २, ३, ४, ५ आदि संख्याओं की आनुपातिक होती है।

२१. किसी संगीत-ध्वनि की गुणवत्ता कर्ण द्वारा इन आंशिक-स्वरों की संख्या, क्रम और सापेक्षिक तीव्रता से निर्धारित होती है।

२२. किसी सीमा तक अलग गुणवत्ता की ध्वनियों को भी, सरल स्वरों को स्वतन्त्र रूप से उत्पन्न करके, अनुकृत किया जा सकता है।

२३. समान तरंगों के दो समूह यदि एक ही दिशा में एक ही माध्यम से गुज़र रहे हों, तो कुछ परिस्थितियों में, वे एक दूसरे को पूर्णतः विनष्ट कर सकते हैं।

२४. इस घटना का उदाहरण तब उपस्थित होता है जब कि दो ध्वनियाँ निस्पन्दता या खामोशी उत्पन्न करती हैं।

२५. जब दो सरल स्वरों को लगभग (पूर्णतः नहीं) एक साथ उत्पन्न किया जाता है तो समय के समान अन्तराल पर उनमें तीव्रता और तारता (Pitch) का बारी-बारी से मन्द अनुश्रवण होता है।

२६. इन परिवर्तनों (Alternations) को 'बीट्स' (Beats) कहते हैं।

२७. दो 'बीट्स-स्वरों' की कम्पन-संख्याओं में जो अन्तर होता है, वही उनकी प्रति सैकिण्ड 'बीटों' में अन्तर होता है।

२८. जब 'बीट्स' इतनी तीव्र हो जाती हैं कि उनको अलग-अलग नहीं पहचाना जा सकता, तो उस दशा में वे विवादित्य या कर्कशता (Dissonance) का प्रभाव उत्पन्न करती हैं।



२६. दो सरल स्वरों के डोल (Beats) से उत्पन्न कर्कशता (Dissonance) उस समय सबसे उग्र होती है जब कि दो स्वरों में अन्तराल आधे स्वर के बराबर हो, यह उग्रता या कर्कशता काफ़ी कम होगी जब कि दो स्वरों में एक स्वर का अन्तराल होगा, और यह कर्कशता उस समय तो बिल्कुल ही नगण्य होगी जब कि दो स्वरों में अन्तराल डेढ़ स्वर के बराबर होगा।

३०. अन्तिम उल्लेखित अन्तराल को सुविधा के लिए दो सरल स्वरों का 'डोल-अन्तराल' (Beating Distance) कह सकते हैं।

३१. जब दो संयुक्त ध्वनियाँ एक साथ सुनाई पड़ती हैं, तो परस्पर सुनाई पड़ने वाले आंशिक स्वरों के प्रत्येक विषम जोड़े से विवादित्व या कर्कशता (Dissonance) की स्थिति उत्पन्न होती है।

३२. इस विस्वरता (बिसुरापन) का कुल योग इस प्रकार उत्पन्न अलग-अलग विषमताओं के कुल योग के बराबर होगा।

३३. दो संयुक्त स्वरों में पूर्ण समन्वय तब कहा जायेगा, जबकि उनके कोई भी आंशिक-स्वर परस्पर विषमता न उत्पन्न करते हों। इससे विपरीत दशा में, बजने वाले आंशिक-स्वरों की संख्या, तीव्रता और स्थिति के अनुसार समन्वय का अभाव, या गतिरोध निर्धारित किया जायेगा। (हेल्महोल्ज की पुस्तक 'थ्योरी ऑफ़ हारमनी')

३४. 'सम स्वभाव' की व्यवस्था के अन्तर्गत वाद्य-यन्त्रों को निश्चित ध्वनियों पर मिलाया (Tuned) जाता है जिससे कि समीपस्थ विषम स्वरों से उनको अलग करके 'ट्यूनिंग' में समरसता लाई जा सके।

□□□



# विभिन्न माध्यमों में ध्वनि का वेग तथा प्रसारण

## 0°C पर गैसों में ध्वनि का वेग

| गैस                            | ध्वनि     |
|--------------------------------|-----------|
| एअर (वायु)                     | १,०६२ फुट |
| ऑक्सीजन (ओषजन)                 | १,०४०     |
| हाइड्रोजन (उद्जन)              | ४,१६४     |
| कार्बोनिक एसिड                 | ८५८       |
| कार्बोनिक ऑक्साइड              | १,१०७     |
| नाइट्रोजन का प्रोटोक्साइड      | ८५६       |
| ओलेफियेन्ट गैस (ज्वलनशील वाति) | १,०३०     |

## द्रवों द्वारा ध्वनि का प्रसारण

| द्रव-नाम                                 | तापक्रम | वेग   |
|------------------------------------------|---------|-------|
| नदी का जल                                | १५°C    | ४,७१४ |
| "                                        | ३०°C    | ५,०१३ |
| "                                        | ६०°C    | ५,६५७ |
| समुद्री जल (कृत्रिम)                     | २०°C    | ४,७६८ |
| साधारण नमक का घोल                        | १८°C    | ५,१३२ |
| सोडा के शुल्बेयन (सल्फाइट) का घोल        | २०°C    | ५,१६४ |
| सोडा के प्रांगार (कार्बोनेट) का घोल      | २२°C    | ५,२३० |
| सोडा के भूयीय (नाइट्रेट) का घोल          | २१°C    | ५,४७७ |
| चूना के नीरेय (क्लोराइट) का घोल          | २३°C    | ६,४६३ |
| साधारण मद्य-सार (कॉमन अल्कोहल)           | २०°C    | ४,२१८ |
| मिश्रित मद्य-सार (अन्सोल्यूट अल्कोहल)    | २३°C    | ३,८०४ |
| तारपीन का सार (स्पिरिट्स ऑफ टर्पेन्टाइन) | २४°C    | ३,६७६ |
| गंधक का सार (सल्फ्यूरिक ईथर)             | ०°C     | ३,८०१ |



## लकड़ी में ध्वनि का वेग

| लकड़ी का नाम                  | फाइबर्स-संयुक्त | वलय-बाह्य | वलय में-संयुक्त |
|-------------------------------|-----------------|-----------|-----------------|
| ववूल (एकेशिया-Acacia)         | १५,४६७          | ४,८४०     | ४,४३६           |
| देवदार (फर-Fir)               | १५,२१८          | ४,३८२     | २,५७२           |
| जंगली (बीच-Beech)             | १०,६६५          | ६,०२८     | ४,६४३           |
| सिन्दूर (ओक-Oak)              | १२,६२२          | ५,०३६     | ४,२२६           |
| चीड़ (पाइन-Pine)              | १०,६००          | ४,६११     | २,६०५           |
| जंगली चिराबेल (ऐल्म-Elm)      | १३,५१६          | ४,६६१     | ३,३२४           |
| अंजीर (साइकामोर-Sycamore)     | १४,६३६          | ४,६१६     | ३,७२८           |
| अंगू (ऐश-Ash)                 | १५,३१४          | ४,५६७     | ४,१४२           |
| भिदुर (ऑल्डर-Alder)           | १५,३०६          | ४,४६१     | ३,४२३           |
| कंपित पत्तीदार (ऐस्पैन-Aspen) | १६,६७७          | ५,२६७     | २,६८७           |
| <b>वृक्ष विशेष</b>            |                 |           |                 |
| द्विफल (मैपिल-Maple)          | १३,४७२          | ५,०४७     | ३,४०१           |
| चिनार (पॉपलर-Poplar)          | १४,०५०          | ४,६००     | ३,४४४           |

## धातुओं के द्वारा ध्वनि का वेग

| धातुओं के नाम                           | २०°C   | १००°C  | २००°C  |
|-----------------------------------------|--------|--------|--------|
| सीसा (लैड-Lead)                         | ४,०३०  | ३,६५१  | —      |
| सोना (गोल्ड-Gold)                       | ५,७१७  | ५,६४०  | ५,६१६  |
| चाँदी (सिल्वर-Silver)                   | ८,५५३  | ८,६५८  | ८,१२७  |
| ताँबा (कॉपर-Copper)                     | ११,६६६ | १०,८०२ | ९,६६०  |
| महातु (प्लैटिनम-Platinum)               | ८,८१५  | ८,४३७  | ८,०७६  |
| लोहा (आयरन-Iron)                        | १६,८२२ | १७,३८३ | १५,४८३ |
| साधारण लोहे का तार (Iron Wire)          | १६,१३० | १६,७२८ | —      |
| रूपान्तरित लोह (कास्ट स्टील Cast Steel) | १६,३५७ | १६,१५३ | १५,७०६ |
| स्टील का तार (Steel Wire, English)      | १५,४७० | १७,२०१ | १६,३६४ |
| स्टील का तार (Steel Wire)               | १६,०२३ | १६,४४३ | —      |

□ □ □



# पाश्चात्य संगीत के कुछ शब्दों का स्पष्टीकरण

निम्नलिखित शब्द इटेलियन अर्थात् इटली की भाषा के हैं, जो पाश्चात्य संगीतज्ञों द्वारा प्रयोग में लाये जाते हैं।

## गति सम्बन्धी शब्द (SPEED)

- A Tempo (ए-टेम्पो) : उपयुक्त लय में (In time)  
 Adagio, Lento (आडाजीओ, लेन्टो) : धीरे (Slow)  
 Allegretto Moderato (ऐलेग्रेट्टो) : साधारण गति से (At a moderate speed)  
 Allegro (ऐलेग्रो) : शीघ्रता से (Fast)  
 Andante (ऐन्डैन्टो) : अधिक धीरे (Rather slow)  
 Andantino (ऐन्डैन्टीनो) : थोड़ा-सा द्रुत (Slightly faster)  
 Largo (लार्गो) : बहुत धीरे (Very slow)  
 Molto Assai (मोट्टो अस्साइ) : बहुत अधिक धीरे (Very much slow)  
 Poco (पोको) : थोड़ा-सा तेज (Little fast)  
 Poco Allegro (पोको ऐलेग्रो) : कुछ और तेज (Rather fast)  
 Presto (प्रेस्टो) : अतिशीघ्रता से गाना-बजाना (Very fast)  
 Rit (Ritardando) (रीटार्डेंडो) : क्रमशः धीरे होना (Gradually becoming slower)  
 String (Stringendo) Accel (accelerando) (स्ट्रिंगेन्डो) (ऐकेलैरेन्डो) :  
 क्रम से द्रुतलय करना (Gradually becoming faster)

## बजाने के ढंग (STYLES)

- Conbrio (कॉन्ब्रिओ) : उत्साह के साथ (With energy)  
 Confuoco (कॉन्फुओको) : अग्नि के समान (With fire)  
 Giusto (जूस्टो) : लय के साथ (In Strict time)  
 Grazioso (ग्रेत्ज़िओज़ो) : शान के साथ (Gracefully)  
 Legato (लिगेटो) : आनन्द सहित (Smoothly)  
 Maestoso (मेस्टोसो) : शान से (Gracefully)  
 Non-troppo (नॉन-ट्रोप्पो) : बहुत अधिक नहीं (Not too much)  
 Pomposo (पोम्पोसो) : मस्ती से (Pompously)  
 Staccato (स्टैकैटो) : छोटा (Short)  
 Vivace (वीवैचे) : उत्तम ढंग से (Lively)

## कुछ अन्य शब्द

Sf या Fz (Sforzando) (फॉरज़ेन्डो) : यदि रचयिता समस्त रचना में किसी एक स्वर का नाद शेष स्वरों से अधिक बड़ा करना चाहता है तो उस स्वर-



विशेष के नीचे Sf या Fz लिख देता है। यदि थोड़ा ही बड़ा करना हो तो - या > चिन्ह को लगा देता है।

Pizz (Pizzicato) (पिस्सीकैटो) : अर्थात् मिज़राब से बजाइये।

Col-arco कॉलार्को : अर्थात् गज़ से बजाइये (यह Pizz की समाप्ति बताता है)।

Con-Sord (Con Sordino) (कॉन्सोर्डिनो) : अर्थात् 'म्यूट' (Mute) लगाकर बजाइये (लकड़ी से बने एक विशेष प्रकार के टुकड़े को 'म्यूट' कहते हैं। इसे जब बाँयलिन के ब्रिज पर लगा देते हैं तो ध्वनि कुछ दबी-दबी-सी निकलती है)।

Fine (Finnay) (फ़िने) : इसका अर्थ है 'समाप्त' (End)

**अंग्रेज़ी शब्दों के हिन्दी-पर्याय**

Accented Beat (एक्सेन्टेड बीट) : भारी ताल

Acoustico (अकॉस्टिको) : नाद-शास्त्र, ध्वनि विज्ञान

Amplitude of Vibration (एम्प्लीट्यूड ऑफ़ वाइब्रेशन) : कम्प-विस्तार

Ascending (एसैन्डिंग) : आरोह

Back Ground Music (बैक-ग्राउण्ड म्यूज़िक) : पार्श्व-संगीत

Band (बैन्ड) : बृन्द

Bar (बार) : विभाग, खंड

Bass Clef (बेस-क्लेफ़) : मन्द्र सप्तक

Beat (बीट) : विष्णुन्दन, डोल

Bow (बो) : गज़ या कमान

Bowed Instruments (बोड इन्स्ट्रूमेन्ट्स) : वितत-वाद्य

Bowing (बोइंग) : गज़ चलाना

Bridge (ब्रिज) : घुड़च, घोड़ी

Change of key (चेन्ज ऑफ़ की) : षड्ज-संक्रमण या षड्ज-चालन

Chevalet (शेवलेट) : घुड़च (गज़ से बजने वाले वाद्य की)

Chord (कॉर्ड) : स्वर-संघात

Chord-Major (कॉर्ड-मेजर) : गुरु स्वर-संघात

Chord-Minor (कॉर्ड-माइनर) : लघु स्वर-संघात

Concord (कॉन्कॉर्ड) : सुस्वरता

Consonance (कॉन्सोनेन्स) : स्वर-सम्बाद

Discord (डिस्कॉर्ड) : विस्वरता

Dissonance (डिस्सोनेन्स) : स्वर-विरोध, विवादित

Dissonant (डिस्सोयोनेन्ट) : विवादी

Dominant (5th) (डोमिनेन्ट फ़िफ़्थ) : पञ्चम-भाव, संवादी

Duet (ड्युएट) : जुगलबन्दी



Enharmonic (एन्हार्मोनिक) : श्रुतिमूलक  
 Equally tempered scale (ईक्वली टेम्पर्ड स्केल) : समान्तरालीय विकृत ग्राम  
 Finger Board (फिंगर बोर्ड) : डांड  
 Flat note (फ्लैट नोट) : कोमल स्वर  
 Frequencies (फ्रीक्वेंसीज) : कम्पन  
 Fret (फ्रेट) : सारिका, पर्दा  
 Gamut (गैम्यूट) : ग्राम, स्वर-सप्तक  
 Grace note (ग्रेस नोट) : कण-स्वर  
 Harmonic (हार्मोनिक) : सम्वादी  
 Harmonic Traid (हार्मोनिक ट्रेड) : स्वरत्रयी  
 Harmony (हारमोनी) : सहस्वरता  
 Heptatonic (हेप्टाटॉनिक) : सम्पूर्ण  
 Hexatonic (हेक्सटॉनिक) : षाडव  
 Homophone (होमोफोन) : जोड़े के तार  
 Humming tone (हर्मिंग-टोन) : जवारी युक्त स्वर  
 Improvization (इम्प्रोवाइजेशन) : आलाप  
 Intensity of sound (इन्टेन्सिटी ऑफ़ साउण्ड) : ध्वनि की तीव्रता  
 Interval (इन्टरवल) : स्वरान्तर, अन्तराल  
 Key (की) : हारमोनियम का पर्दा या चाबी  
 Key-note (की-नोट) : प्रारम्भिक स्वर  
 Leading tone (लीडिंग टोन) : प्रवेशक स्वर  
 Major tone (मेजर टोन) : गुरु स्वर  
 Mediant (3rd) (मीडिएन्ट-थर्ड) : अनुवादी  
 Minor tone (माइनर टोन) : लघु स्वर  
 Mode (मोड) : राग  
 Modified note (मोडीफ़ाईड नोट) : विकृत स्वर  
 Musical quality (म्यूज़िकल क्वालिटी) : काकु  
 Music concert (म्यूज़िक कन्सर्ट) : संगीत-गोष्ठी  
 Natural scale (नेचुरल स्केल) : शुद्ध थाट  
 Note (नोट) : स्वर  
 Octave (ऑक्टैव) : सप्तक  
 Orchestra (ऑरचेस्ट्रा) : वाद्यवृन्द  
 Ostinato (ऑस्टिनेटो) : टेक  
 Overtone (ओवरटोन) : उपस्वर  
 Pegs (पेग्स) : खूंटियाँ  
 Peutatonic (प्यूटाटॉनिक) : ओडव



Percussion Instruments (पर्कशन इन्स्ट्रूमेन्ट्स) : धन-वाद्य  
 Pianissimo (पिआनिसिमो) : अति मन्द  
 Pique (पीक) : गज से बजने वाले वाद्य  
 Pitch (पिच) : तारता  
 Play-back music (प्लेबैक-म्यूज़िक) : पार्श्व-संगीत  
 Plucked Instruments (प्लक्ड इन्स्ट्रूमेन्ट्स) : कोण से बजने वाले वाद्य  
 Plucktrum (प्लंकट्रम) : कोण या मिज़राब का एक प्रकार  
 Reed Instrument (रीड इन्स्ट्रूमेन्ट) : पत्ते के वाद्य (जैसे शहनाई)  
 Rhythm (रिदम) : लय  
 Scale (स्केल) : थाट  
 Score (स्कोर) : स्वरलिपि-पद्धति  
 Semitone-Halftone (सेमीटोन-हाफ्टोन) : अर्द्ध टोन  
 Sharp (शार्प) : तीव्र  
 Silent beat (साइलेन्ट बीट) : ताल में खाली का स्थान  
 Solo (सोलो) : स्वतन्त्र वादन  
 Stringed Instruments (of guts) (स्ट्रिंग्ड इन्स्ट्रूमेन्ट्स, ऑफ गट्स) तान-वाद्य  
 Stringed Instruments (of wire) (स्ट्रिंग्ड इन्स्ट्रूमेन्ट्स, ऑफ वायर) तार-वाद्य  
 Sub-dominant (4th) (सब-डोमिनेन्थ) : मध्यम-भाव-संवादी  
 Tape recorder (टेप रिकॉर्डर) : फीता-अभिलेखी  
 Timber (टिम्बर) : काकु  
 Tone (टोन) : स्वर  
 Treble clef (ट्रेबिल क्लेफ़) : मध्य सप्तक  
 Tune (N) (ट्यून-एन) : धुन  
 Tuning Fork (ट्यूनिंग फ़ॉर्क) : द्विध्रुज  
 Vibration (वाइब्रेशन) : आंदोलन  
 Vocal-chord (वोकल कॉर्ड) : वाक् तन्तु  
 Vocalist (वोकलिस्ट) : गायक  
 Whole-tone (होल-टोन) : पूर्ण स्वर  
 Wind Instruments (विन्ड इन्स्ट्रूमेन्ट्स) : सुषिर वाद्य  
 Wire recording (वायर रिकॉर्डिंग) : तार अभिलेखन

□ □ □



# तानों का प्रस्तार तथा

## नष्ट-उद्दिष्ट क्रम

**प्रस्तार :** प्रस्तार का अर्थ है—'भिन्न प्रकार से रखना ।' उदाहरण के लिए आपके पास तीन स्वर स, रे, ग हैं । आप देखेंगे कि हम इनके भिन्न प्रकार के मेल केवल छह बना सकते हैं । ये मेल होंगे 'सारेग, सागरे, रेसाग, रेगसा, गसारे और गरेसा' । इन तीन स्वरों के इससे अधिक मेल नहीं बन सकते । इस प्रकार स्वरों को भिन्न प्रकार से मिला कर प्रस्तारित करने की क्रिया को 'प्रस्तार' करना कहते हैं ।

यह 'प्रस्तार' एक स्वर का  $1 \times 1 = 1$  होगा । अर्थात् एक स्वर का 'प्रस्तार' केवल एक होगा । दो स्वरों के 'प्रस्तार'  $1 \times 2 = 2$  होंगे । जैसे—'सारे' और 'रेसा' । तीन स्वरों के 'प्रस्तार'  $1 \times 2 \times 3 = 6$  होंगे । इसका उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है । चार स्वरों के 'प्रस्तार'  $1 \times 2 \times 3 \times 4 = 24$  होंगे ।

ये निम्नांकित होंगे :—

|               |                |                |                |
|---------------|----------------|----------------|----------------|
| (१) सा रे ग म | (७) रे सा ग म  | (१३) ग सा रे म | (१९) म सा रे ग |
| (२) सा रे म ग | (८) रे सा म ग  | (१४) ग सा म रे | (२०) म सा ग रे |
| (३) सा ग रे म | (९) रे ग सा म  | (१५) ग रे सा म | (२१) म रे सा ग |
| (४) सा ग म रे | (१०) रे ग म सा | (१६) ग रे म सा | (२२) म रे ग सा |
| (५) सा म रे ग | (११) रे म सा ग | (१७) ग म सा रे | (२३) म ग सा रे |
| (६) सा म ग रे | (१२) रे म ग सा | (१८) ग म रे सा | (२४) म ग रे सा |

इसी प्रकार पाँच स्वरों की तानों के प्रस्तार की संख्या  $1 \times 2 \times 3 \times 4 \times 5 = 120$ ; छह स्वरों की तानों के प्रस्तार की संख्या  $1 \times 2 \times 3 \times 4 \times 5 \times 6 = 720$  और सात स्वरों की तानों की प्रस्तार-संख्या  $1 \times 2 \times 3 \times 4 \times 5 \times 6 \times 7 = 5040$  होगी ।

यह 'प्रस्तार' किस प्रकार से किया जाता है ? इसका एक सिद्धान्त है, जिसे 'प्रस्तार का सिद्धान्त' कहते हैं । अब यदि हमसे यह कहा जाए कि 'सा रे ग म प ध नि' स्वरों के विस्तार में ४३६७-वाँ (यह कोई भी गिनती हो सकती है) जो 'प्रस्तार' है, उसका क्या स्वरूप होगा ? तो इसको ज्ञात करने के सिद्धान्त को 'नष्ट' की क्रिया कहते हैं । इसके विपरीत यदि यह कह दिया जाए कि 'धम पग सारे' की क्रम-संख्या पहचानिए, तो इसके ज्ञात करने की क्रिया को 'उद्दिष्ट' कहते हैं । यह 'प्रस्तार का सिद्धान्त' तथा 'नष्ट और 'उद्दिष्ट' की क्रियाएँ क्या हैं ? इसको आगे समझाते हैं ।



**प्रस्तार का सिद्धान्त :** (i) सबसे पहले उस स्वर-समूह को लिख देते हैं, जिसका प्रस्तार करना हो। उदाहरण के लिए हम पाँच स्वरों का प्रस्तार करना चाहते हैं, तो ये पाँच स्वर 'सा रे ग म प' या 'सा रे ग म ध' अथवा 'सा रे ग म नि' या 'सा रे ग प ध' अथवा 'सा ग म प नि' जैसे कुछ भी हो सकते हैं।

(ii) अब, सबसे पहले स्वर के नीचे उससे कम तारता का स्वर रख देते हैं। परन्तु इसमें यह शर्त है कि यह स्वर उस स्वर से सीधी ओर नहीं होना चाहिए। यदि यह स्वर उससे सीधी ओर मौजूद है तो उससे भी पूर्व का स्वर रखेंगे।

(iii) यदि उससे पूर्व का स्वर नहीं है तो उस स्वर के नीचे एक बिन्दु रख देंगे।

(iv) इस प्रकार जब हम किसी एक स्वर को स्थापित कर लेंगे तो सीधी ओर के ऊपर वाले स्वरों को ज्यों-का-त्यों और बाईं ओर के स्वरों को मूल क्रम से रख देंगे। यह एक उदाहरण से अधिक स्पष्ट हो जाएगा।

मान लीजिए कि हम 'सा रे ग म प' जैसे पाँच स्वरों के 'प्रस्तार' का प्रस्तार-क्रम जानना चाहते हैं, तो यहाँ सबसे पहला 'प्रस्तार' होगा—'सा रे ग म प'। अब इन स्वरों में सबसे पहला स्वर 'सा' है। परन्तु 'स' से नीचे तारता (पिच) का स्वर इसमें है ही नहीं अतः 'सा' के नीचे एक बिन्दु रख देंगे। तब इसका स्वरूप 'सा रे ग म प' हो जाएगा। अब 'सा' से अगला स्वर 'रे' है। 'रे' से कम तारता का स्वर 'सा' है। साथ ही यह 'रे' के सीधी ओर भी नहीं है, अतः इसे 'रे' के नीचे रख देंगे। अब इसका रूप निम्नांकित होगा :—

सा रे ग म प  
\* सा \* \* \*

प्रस्तार नं० (१)

अब 'सा' से आगे के जो स्वर हैं उन्हें ज्यों-का-त्यों उतार देंगे तो इसका रूप '\* सा ग म प' हो जाएगा। अब बिन्दु की जगह बचा हुआ स्वर 'रे' रख देंगे तो दूसरा प्रस्तार 'रे सा ग म प' होगा।

अब तीसरे प्रस्तार के लिए 'रे सा ग म प' में 'रे' के नीचे बिन्दु रखेंगे। क्योंकि 'रे' से कम तारता का स्वर 'सा' है जो सीधी ओर मौजूद है। अतः इसका रूप 'रे सा ग म प' हो जाएगा। अब 'रे' से अगला स्वर 'सा' है। परन्तु 'सा' से नीची ध्वनि या तारता का कोई स्वर नहीं है, अतः इसके नीचे भी बिन्दु रख देंगे। इस प्रकार अब इसका रूप 'रे सा ग म प' हो जाएगा। अब तीसरे स्वर 'ग' को लेंगे। इससे कम तारता का स्वर 'रे' है जो सीधी ओर नहीं है। अतः इसका रूप ऐसा होगा—

रे सा ग म प  
\* \* रे \* \*

(प्रस्तार नं० २)

अब 'रे' से आगे के स्वर 'म, प' को ज्यों-का-त्यों उतार लेंगे और बाईं ओर के स्वरों को क्रम से अर्थात् 'स, ग' की भाँति रख लेंगे, तो इस प्रस्तार का रूप 'स ग रे म प' हो जाएगा।



अब इससे अगले प्रस्तार के लिए 'सा' के नीचे बिन्दु रखेंगे क्योंकि 'सा' से नीची तारता का कोई स्वर नहीं है, तो इसका रूप 'स ग रे म प' हो जाएगा। अब 'सा' से अगला स्वर 'ग' है। 'ग' से नीची तारता का स्वर 'रे' होता है, जो 'ग' से सीधी ओर है, अतः रे को भी नहीं रखा जा सकता। परन्तु 'रे' से कम तारता का स्वर 'सा' भी है जो 'ग' के सीधी ओर नहीं है अतः इसे 'ग' के नीचे रखा जा सकता है। इसका रूप ऐसा होगा—

सा ग रे म प

\* स \* \* \*

(प्रस्तार नं० ३)

अब रे म प को ज्यों-का-त्यों उतार लिया और 'स' के नीचे बचे हुए स्वर 'ग' को रख दिया। इस प्रकार इसका अगला प्रस्तार 'ग स रे म प' होगा।

अब इससे अगले प्रस्तार के लिए 'ग' के नीचे बिन्दु रखना होगा, कारण कि उससे नीची तारता के स्वर 'स' व 'रे' उसके सीधी ओर हैं। तो इसका रूप 'ग स रे म प' हो जाएगा। अब 'ग' से अगला स्वर 'सा' है परन्तु 'सा' से नीची तारता का स्वर होता नहीं है, अतः इसके नीचे भी बिन्दु रखना होगा। इस प्रकार इसका रूप 'ग स रे म प' जैसा हो जाएगा। अब 'सा' से अगला स्वर 'रे' है। 'रे' से नीची तारता का स्वर 'सा' होता है जो सीधी ओर नहीं है, अतः इसे 'रे' के नीचे रखा जा सकता है। तब इसका रूप ऐसा होगा :—

ग सा रे म प

\* \* स \* \*

(प्रस्तार नं० ४)

अब 'म' व 'प' को ज्यों-का-त्यों उतार लिया और शेष बचे स्वरों को क्रम से अर्थात् 'रे ग' की भाँति रख लिया, तो इस ५वें प्रस्तार का स्वरूप 'रे ग स म प' हो जाएगा। इस प्रकार करते रहने से इन पाँच स्वरों के कुल १२० प्रस्तार बनेंगे।

आशा है कि इतने उदाहरणों से आप प्रस्तार करने के ढंग को समझ गए होंगे। इस प्रकार से तानों की रचना करने के ढंग से जो तानें बनती हैं, उन्हीं को 'कूट तान' कहा जाता है।

**नष्ट :** अब हम 'नष्ट' की क्रिया को समझाते हैं। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि यदि आपको किसी प्रस्तार को क्रम-संख्या बता दी जाए तो जिस प्रक्रिया के द्वारा आप उस प्रस्तार के स्वरों को पहचान सकेंगे, उस प्रक्रिया को 'नष्ट' कहते हैं। 'नष्ट' के सिद्धान्त को समझने के लिए पहले निम्न बातों को ध्यान से पढ़ लीजिए।

(i) सबसे पहली बात यह है कि हम  $1 \times 1$  को  $\angle 1$ ;  $1 \times 2$  को  $\angle 2$ ;  $1 \times 2 \times 3$  को  $\angle 3$ ;  $1 \times 2 \times 3 \times 4$  को  $\angle 4$ ;  $1 \times 2 \times 3 \times 4 \times 5$  को  $\angle 5$ ;  $1 \times 2 \times 3 \times 4 \times 5 \times 6$  को  $\angle 6$  तथा  $1 \times 2 \times 3 \times 4 \times 5 \times 6 \times 7$  को  $\angle 7$  की भाँति लिखेंगे। अब हम इनके क्रम-गुणित को इनके नीचे लिखकर दिखाते हैं—

|            |            |            |            |            |            |            |
|------------|------------|------------|------------|------------|------------|------------|
| $\angle 1$ | $\angle 2$ | $\angle 3$ | $\angle 4$ | $\angle 5$ | $\angle 6$ | $\angle 7$ |
| १          | २          | ६          | २४         | १२०        | ७२०        | ५०४०       |

(जो संख्याएँ नीचे दी गयी हैं, उन्हें क्रम-गुणित कहते हैं।)



(ii) जिस संख्या के प्रस्तार का रूप पूछा गया है, उस संख्या में से १ घटा देंगे। उदाहरण के लिए आपसे पूछा जाए कि पाँच स्वरों के प्रस्तार में ७४वें प्रस्तार का क्या स्वरूप होगा ? तो सबसे पहले ७४ में से 'एक' कम करना होगा, अर्थात्  $74 - 1 = 73$  करना होगा।

(iii) अब जितने स्वरों की संख्या का प्रस्तार है उसमें से एक कम करके (जैसे—छह स्वरों के प्रस्तार के रूप का स्वरूप पूछा गया है तो  $< ५, < ४, < ३, < २$  और  $< १$  के क्रम गुणित का, यदि चार स्वरों की रचना में से रूप को पूछा गया है तो  $< ३, < २$  और  $< १$  के) क्रम गुणित का उपयोग करेंगे। (आगे के उदाहरणों में यह क्रिया अधिक स्पष्ट हो जाएगी)।

(iv) अब उस संख्या में क्रम से  $< ५, < ४, < ३, < २$  और  $< १$  के क्रम गुणित से शेष को भाग देते रहेंगे। जो भागफल आएगा, उसे अलग रखते चलेंगे। जब तक 'शेष' शून्य न हो जाए, यही क्रिया करते रहेंगे।

(v) अब जो भी भागफल प्राप्त होंगे, उन सबमें एक-एक जोड़ देंगे।

(vi) इसके उपरान्त जितने स्वरों के प्रस्तार को पूछा गया है, उन स्वरों को एक क्रम से अलग लिख लेंगे।

(vii) अब १-१ जोड़ने पर जो संख्याएँ क्रम से प्राप्त हुई हैं, उन्हीं के क्रमानुसार स्वरों को रखते चलेंगे। वस यही हमारा उस क्रम-संख्या के प्रस्तार का रूप होगा। पढ़ने में यह क्रिया बड़ी जटिल दिखाई देती है, परन्तु है नहीं। यह आपको आगे के उदाहरणों से प्रकट हो जाएगा। उदाहरण के लिए यदि हम यह मालूम करना चाहें कि स रे ग म प ध स्वरों में २६७ वें प्रस्तार का क्या स्वरूप होगा ? तो सबसे पहले २६७ में से १ कम करना होगा। अर्थात् यह  $267 - 1 = 266$  हो जाएगा।

अब स रे ग म प ध में स्वरों की संख्या छह है अतः केवल  $< ५, < ४, < ३, < २$  और  $< १$  के क्रम गुणितों का प्रयोग करेंगे।

अब सबसे पहले २६६ को  $< ५$  से या क्रम गुणित १२० से भाग देंगे। जो निम्न प्रकार होगा :—

$$120 \times 2 = 240 \text{ (भागफल)}$$

$$266$$

२६ शेष

अब २६ को  $< ४$  अर्थात् २४ से भाग देंगे यह निम्न प्रकार होगा।

$$24 \times 1 = 24 \text{ (भागफल)}$$

$$26$$

२ शेष

अब २ को  $< ३$  अर्थात् ६ से भाग देंगे तो भागफल १ और शेष २ ही मिलेगा।



अब शेष २ को  $\angle २$  से भाग देने पर भागफल १ और शेष शून्य ही बचेगा ।  
अन्त में शून्य को १ से भाग देने पर भागफल भी और शेष भी शून्य प्राप्त होंगे ।

अब समस्त भागफलों को एक स्थान पर लिख लेंगे । ये क्रम से २, २, १, १, और ० होंगे : इसके उपरान्त प्रत्येक भागफल में १-१ जोड़ देंगे । तब ये ३, ३, २, २, और १ हो जाएँगे ।

अब स रे ग म प ध को एक स्थान पर लिखकर यह देखेंगे कि तीसरे नम्बर पर क्या स्वर है । देखने पर मालूम होगा कि 'ग' है । तो पूछी गई क्रम संख्या के स्वरूप में पहला स्वर 'ग' होगा । अब हमारे पास स रे म प ध स्वर बचे ।

अब हमारी अगली संख्या पुनः ३ है । तो स रे म प ध में तीसरा स्वर 'म' है । अतः 'ग' से अगला स्वर 'म' होगा । अब हमारे पास स रे प ध चार स्वर बचे । हमारी अगली संख्या २ है । तो यहाँ दूसरा स्वर 'रे' है । इस आधार पर 'गमरे' तीन स्वर प्राप्त हो गए, अब हमारे पास केवल 'सपध' तीन स्वर बचे हैं । जबकि अगली संख्या भी दो ही है । तो सपध में 'प' दूसरा स्वर है । अतः हमारी तान का रूप अब तक गमरेप हो गया । अब हमारे पास 'सध' दो स्वर बचे हैं । हमारी संख्या में अन्तिम गिनती '१' है और हमारी तान का पहला स्वर 'सा' है । तो यहाँ तक की तान का रूप ग म रे प स हो गया । अब अन्त में बचा 'ध' तो उसे ज्यों-का-त्यों रख दीजिए । इस आधार से सरेगमपध स्वरों में २६७ वीं क्रम संख्या का स्वरूप गमरेपसध होगा ।

एक अन्य उदाहरण से इसे और अधिक स्पष्ट करते हैं । इसमें यदि हमसे पूछा जाए कि 'सा रे ग म प ध नि' सात स्वरों के क्रम में ४७६४-वीं तान का क्या स्वरूप होगा ? तो इसमें से पहले एक कम करके  $< ६$  तक के क्रम-गुणित से भाग देंगे । यह कुल क्रिया निम्न प्रकार से होगी—

$$४७६४ - १ = ४७६३$$

$$\begin{array}{cccccc} < १ & < २ & < ३ & < ४ & < ५ & < ६ \\ १ & २ & ६ & २४ & १२० & ७२० \end{array}$$

अब पहले ७२०) ४७६३ (६ भागफल

$$\underline{४३२०}$$

४७३ शेष

फिर १२०) ४७३ (३ भागफल

$$\underline{३६०}$$

११३ शेष



फिर, २४)११३(४ भागफल

$$\frac{६६}{१७} \text{ शेष}$$

फिर, ६)१७(२ भागफल

$$\frac{१२}{५} \text{ शेष}$$

फिर, २)५(२ भागफल

$$\frac{४}{१} \text{ शेष}$$

फिर, १)१(१ भागफल

$$\frac{१}{०} \text{ शेष}$$

अब प्रत्येक भागफल में १-१ जोड़ने पर ७, ४, ५, ३, ३ और २ संख्याएँ प्राप्त हुईं।

‘सा रे ग म प ध नि’ में सातवाँ स्वर ‘नि’ है। अतः इस ‘कूट तान’ का पहला स्वर ‘नि’ हुआ। अब हमारे पास छह स्वर ‘सा रे ग म प ध’ बचे। इनमें चौथा स्वर ‘म’ है। अतः इस ‘कूट तान’ का अगला रूप ‘नि म’ हुआ। अब हमारे पास ‘सा रे ग प ध’ स्वर बचे। हमारे पास अगली गिनती ५ है। यहाँ ‘ध’ पाँचवाँ स्वर है, तो हमारी तान के स्वर ‘नि म ध’ हो गए। अब हमारे पास ‘सा रे ग ण’ चार स्वर बचे। हमारी अगली संख्या ३ है। यहाँ ‘ग’ तीसरा स्वर है, तो इस आधार पर हमारी तान ‘नि म ध ग’ हो गई। अब हमारे पास ‘सा रे प’ तीन स्वर बचे। हमारी अगली गिनती भी तीन है। यहाँ ‘प’ तीसरा स्वर है, तो अब तक इस तान के स्वर ‘नि म ध ग प’ हुए। अब हमारे पास ‘सा रे’ दो स्वर बचे। साथ ही अन्तिम गिनती भी दो है, तो दूसरा स्वर ‘रे’ है। अब ‘नि म ध ग प रे’ तान बन गई। शेष स्वर बचा ‘सा’, इसे सबसे अन्त में रखकर ‘सा रे ग म प ध नि’ के स्वरों में ४७-६४ की क्रम-संख्या का रूप ‘नि म ध ग प रे सा’ होगा।

इस प्रकार किसी भी क्रम-संख्या के स्वरूप को ज्ञात किया जा सकता है।

**उद्दिष्ट :** यह क्रिया ‘नष्ट’ की उलटी है। अर्थात्, जब यह पूछा जाए कि ‘तान’ की क्रम संख्या क्या है तो उसके रूप को देखकर उसकी क्रमसंख्या निकालने को ही ‘उद्दिष्ट’ की प्रक्रिया कहते हैं। इसे ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखेंगे—

(१) उस ‘तान’ में स्वरों की संख्या कितनी है ?

(२) जितने स्वर होंगे, उससे एक कम तक के क्रम-गुणित का प्रयोग करेंगे।



(३) अब यह देखेंगे कि तान के प्रारम्भिक स्वर से आगे उससे कम तारता वाले कितने स्वर हैं।

(४) यह संख्या जितनी होगी, उसे उससे सम्बन्धित क्रम-गुणित से गुणा कर देंगे।

(५) अब जो भी संख्याएँ आएँगी उन सबको जोड़कर, उनमें एक की संख्या और जोड़ देंगे। बस, यही हमारी उस तान की क्रम-संख्या होगी। नीचे के उदाहरण इस क्रिया को अधिक स्पष्ट कर देंगे।

मान लीजिए कि हमें 'रे नि ध प म ग सा' की प्रस्तार-संख्या ज्ञात करनी है।

यहाँ सात स्वर हैं। अतः  $\angle ६$  या क्रम-गुणित ७२० तक का उपयोग करेंगे, तो पहले स्वर 'रे' के अर्थ हुए क्रम-गुणित ७२० से। आगे इस स्वर से नीची तारता का केवल एक स्वर 'सा' हैं, अतः 'रे' के लिए  $७२० \times १ = ७२०$  संख्या आई। अब तान में छह स्वर 'नि ध प म ग स' रह गए, तो 'नि' के लिए  $\angle ५$  या क्रम-गुणित १२० में ५ का गुणा करेंगे, क्योंकि इस स्वर से नीची तारता के स्वरों की संख्या पाँच (ध प म ग सा) है। अतः 'नि' का मान  $१२० \times ५ = ६००$  हुआ।

अब हमारे पास 'ध प म ग सा' पाँच स्वर रह गए और 'ध' से आगे (प म ग सा) चार स्वर नीची तारता के हैं, अतः 'ध' की क्रमिक संख्या होगी— $\angle ४$  या  $२४ \times ४ = ९६$ । अब हमारे पास 'प म ग सा' चार स्वर हैं। साथ ही 'प' से आगे कम तारता के स्वरों की संख्या तीन (म ग सा) है। अतः 'प' का मान होगा— $\angle ३$  या  $६ \times ३ = १८$ । अब हमारे पास केवल तीन स्वर हैं। अतः 'म' के मान के लिए अब  $\angle २$  या क्रम-गुणित २ का प्रयोग करेंगे। 'म' से आगे नीची तारता के स्वर दो हैं। अतः 'म' का मान होगा— $२ \times २ = ४$ । अब हमारे पास केवल दो स्वर 'ग सा' हैं। अतः 'ग' के लिए— $\angle १$  या क्रम-गुणित १ का प्रयोग करेंगे। 'ग' से कम तारता का स्वर आगे केवल एक है, अतः इसका मान होगा— $१ \times १ = १$ । अब केवल 'सा' बचा, तो  $\angle ० = ०$  को शून्य से ही गुणा करेंगे, क्योंकि 'सा' से कम तारता का स्वर आगे है ही नहीं, अतः इसका मान ० अर्थात् शून्य होगा।

अब सबको एक स्थान पर जोड़ते हैं—

रे नि ध प म ग सा

$७२० + ६०० + ९६ + १८ + ४ + १ + ० = १४३९$ । अब इसमें एक की संख्या और जोड़ दी, तो यह संख्या १४४० हुई। इसका अर्थ यह हुआ कि 'रे नि ध प म ग सा' की प्रस्तार संख्या १४४० है।

एक और उदाहरण देकर इस प्रक्रिया को कुछ अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। इस बार हम छह स्वरों की तान 'ध म प ग सा रे' की क्रम-संख्या का पता लगाएँगे। चूँकि इस तान में स्वरों की संख्या छह है, अतः  $\angle ५$  या १२०



क्रम-गुणित का ही प्रयोग करेंगे। अतः पहले स्वर 'ध' के लिए १२० को ५ से ही गुणा करेंगे, क्योंकि 'ध' से आगे नीची तारता के स्वर 'म प ग सा रे' पाँच हैं। अतः 'ध' का मान होगा— $१२० \times ५ = ६००$ । अब 'म' के लिए ८४ या क्रम-गुणित २४ को तीन से गुणा करेंगे, क्योंकि 'म' से आगे कम तारता के स्वर केवल तीन 'ग सा रे' हैं। अतः इसका मान होगा— $२४ \times ३ = ७२$ । अब 'प' के लिए ८३ या क्रम-गुणित ६ को तीन से गुणा करेंगे, क्योंकि 'प' से आगे भी 'ग सा रे' यह तीन स्वर कम तारता के हैं। अतः 'प' का मान  $६ \times ३ = १८$  होगा। अब 'ग सा रे' में 'ग' की गणना के लिए ८२ या क्रम-गुणित २ को २ से ही गुणा करेंगे, क्योंकि 'ग' से आगे 'सा रे' दो स्वर ही कम तारता के हैं। अतः 'ग' का मान होगा— $२ \times २ = ४$ । अब 'सा' के लिए ८१ या क्रम-गुणित १ को शून्य से गुणा करेंगे, क्योंकि उससे आगे कम तारता का स्वर है ही नहीं। अतः 'सा' का मान होगा— $१ \times ० = ०$ । अब अन्तिम स्वर 'रे' को  $८० = ०$  को शून्य से पुनः गुणा करेंगे, कारण कि उससे आगे कम तारता का स्वर है ही नहीं। अतः 'रे' का मान भी '०' हुआ। जब इन सब संख्याओं को जोड़ेंगे, तो ये निम्न भाँति होगी—

ध म प ग सा रे

$६०० + ७२ + १८ + ४ + ० + ० = ६९४$  अब इसमें एक की संख्या और जोड़ देने पर यह संख्या ६९५ हो जायेगी। इसका अर्थ यह हुआ कि 'ध म प ग सा रे' विस्तार की क्रम-संख्या ६९५ है।

यहाँ एक बात और समझ लेनी चाहिए कि हमने ऊपर यह बताया है, जितने स्वर की तान हो उसका विस्तार, स्वरों की संख्या के क्रम-गुणित के अनुसार होगा। अर्थात् यदि एक तान में सासासा रेरेगम पधध जैसे दस स्वर हैं, तो इसकी विस्तार संख्या  $१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५ \times ६ \times ७ \times ८ \times ९ \times १०$  के क्रम-गुणित जैसी होनी चाहिए। परन्तु यहाँ 'सा' तीन बार आया, अतः  $१ \times २ \times ३$  से तथा 'रे' के दो बार होने के कारण  $१ \times २$  से तथा 'ध' के दो बार होने के कारण  $१ \times २$  से भाग दे देंगे। इस प्रकार इन दस स्वरों के प्रस्तार निम्न प्रकार से होंगे—

$$\frac{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५ \times ६ \times ७ \times ८ \times ९ \times १०}{(१ \times २ \times ३) \times (१ \times २) \times (१ \times २)} = ५ \times ६ \times ७ \times ८ \times ९ \times १०$$

$$= १,५१,२००$$

इसी प्रकार 'गगम पपप धधनि' की प्रस्तार-संख्या निम्न होगी—

$$\frac{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५ \times ६ \times ७ \times ८ \times ९}{(१ \times २) \times (१ \times २ \times ३) \times (१ \times २)} = १५,१२०$$

इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि स्वरों की पुनरावृत्ति होने पर प्रस्तार-संख्या काफी कम हो जाती है।

□ □ □



# संगीतलिपि चिह्न-परिचय

- प जिन स्वरों के ऊपर-नीचे कोई चिह्न नहीं है, वे मध्य(बीच की) सप्तक के शुद्ध स्वर हैं।
- ध जिन स्वरों के नीचे पड़ी रेखा या लकीर है, वे कोमल स्वर हैं; किन्तु कोमल मध्यम पर कोई चिह्न नहीं होता, क्योंकि कोमल मध्यम को शुद्ध मध्यम भी कहते हैं।
- म मध्यम के ऊपर खड़ी रेखा हो, तो वह तीव्रमध्यम कहलाता है।
- प/ध. नीचे एक बिंदी वाले स्वर मंद्र-सप्तक के तथा दो बिंदी वाले स्वर अतिमंद्र-सप्तक के हैं।
- सं/पं ऊपर एक बिंदी वाले स्वर तार-सप्तक के तथा दो बिंदी वाले स्वर अतितार-सप्तक के हैं।
- प- जिस स्वर के आगे जितनी रेखाएँ (-) हैं, उसे उतनी ही मात्राओं तक और बजाइए।
- राऽ जिस अक्षर के आगे जितने अवग्रह (ऽ) के चिह्न हैं, उसे उतनी ही मात्राओं तक और गाइए।
- मध्यम इस प्रकार जितने भी स्वर मिले हुए (सटे हुए) हों, उन-सबको एक मात्रा में बजाइए।
- जिन स्वरों के नीचे इस प्रकार का कोष्ठक (ब्रैकिट) हो तो उन स्वरों को एक मात्रा-काल में बजाया जाएगा।
- × ० २ '×' सम का, '०' खाली का तथा २, ३ या ४ आदि तालियों के चिह्न होते हैं।
- , 'सरे, स' इस प्रकार एक ही मात्रा के (सभी आपस में सटे हुए) स्वरों के बीच में लगा हुआ कौमा एक मात्रा को आधी-आधी मात्रा के दो खंडों में विभाजित करता है।
- जहाँ ऐसे फूल दिए हों, वहाँ उतनी ही मात्रा तक चुप रहना चाहिए।
- यह चिह्न स्वरों के ऊपर मीढ़ देने के लिए होता है।
- ग इस प्रकार किसी स्वर के ऊपर कोई स्वर हो, तो ऊपर वाले स्वर को जरा-सा छूते हुए नीचे
- प के स्वर को बजाइए। ऊपर वाला स्वर 'कण-स्वर' कहलाता है।
- (म) इस प्रकार कोई स्वर कोष्ठक में बंद हो, तो उसके आगे का स्वर, वह स्वर, उससे पहले का स्वर तथा फिर वही स्वर लेकर एक मात्रा में ही बजाइए; जैसे (पमगम)।
- ~ यह चिह्न स्वरों के ऊपर 'जमजमा' (कम्पन) देने के लिए होता है; अर्थात् जिन स्वरों के ऊपर यह चिह्न है, उन स्वरों को मधुर व संतुलित ढंग से हिलाते हुए प्रयोग में लाइए।



# अभिनयदर्पण और गीतगोविन्द

हिन्दी अनुवाद : डॉ० लक्ष्मीनारायण गर्ग

उपयुक्त दोनों ग्रंथ संगीत और साहित्य के क्षेत्र की अमर कृतियाँ हैं। इनका मूलसहित सरल-सुबोध हिन्दी अनुवाद एक ही जिल्द में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है :—

‘अभिनय दर्पण’ के प्रारम्भ में भारतीय नृत्य-नाट्य से संबद्ध कुछ आवश्यक जानकारी दी गई है, जैसे—नृत्य का इतिहास; अभिनय के प्रकार; भारत के शास्त्रीय नृत्य; दशावतार; नृत्योपयोगी कथाएँ; रस और भाव; नायक-नायिका भेद; नृत्य उत्पत्ति कथा; नर्तक-नर्तकी तथा नृत्ताचार्य के गुण; रास नृत्य; नाट्य मण्डप या नाट्यशाला; कर्नाटिक ताल पद्धति; संगीत पक्ष की जानकारी; नृत्य में गणित का स्थान और ताल के दस प्राण। इसके बाद ग्रंथ के मूल श्लोक हिन्दी भाषान्तर के साथ दिए गए हैं। इनमें नमस्कृत्या, नाट्योत्पत्ति, नाट्य प्रशंसा, नटन भेद, नटन प्रयोग काल; नाट्य, नृत्त, सभापति लक्षण, मन्त्रि लक्षण, सभा लक्षण, सभा रचना, पात्र लक्षण, वर्जनीय पात्र, पात्र-प्राण, किङ्किणी लक्षण, प्रार्थना, रङ्गाधिदेवता स्तुति, पुष्पाञ्जलि, नाट्यक्रम, अभिनय, आङ्गिकाभिनय, वाचिकाभिनय, आहार्याभिनय, सात्विकाभिनय, आङ्गिकाभिनय साधन; अङ्ग, प्रत्यङ्ग, उपाङ्ग; शिरोभेद, दृष्टिभेद, ग्रीवाभेद, हस्तभेद, असंयुतहस्त, संयुतहस्त, देवहस्त, दशावतार हस्त, तत्तज्जातीय हस्त, बांधवहस्त, नृत्तहस्त, गति नृत्तहस्त, नवग्रह हस्त, कुछ अन्य हस्तमुद्राएँ, पादभेद, मण्डलभेद, स्थानकभेद, उत्प्लवनभेद, भ्रमरी-लक्षण, चारिभेद, गतिभेद जैसी महत्त्वपूर्ण सामग्री है। इसके साथ ही ‘शिवताण्डव स्त्रोत्र’ तथा ‘पार्वती लास्यम्’ जैसे उत्कृष्ट संस्कृत काव्य को हिन्दी अनुवाद सहित दिया गया है।

‘गीत-गोविन्द’ में जयदेव कृत मूल अष्टपदियों को सुगम हिन्दी भाषा के माध्यम से मुखरित किया गया है। इसमें राधा-माधव (प्रकृति-पुरुष) की लालित्य-पूर्ण श्रृंगारिक लीला का नृत्योपयोगी वर्णन है।

भरतनाट्यम्, ओडिसी, कथक और कथकलि के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी।

आकषक जिल्द, आकार 18" × 22" अठपेजी, पृष्ठ-संख्या 304, मूल्य 125/-

प्राप्ति-स्थान : संगीत कार्यालय, हाथरस-204 101 (उ.प्र.)

फ़ोन : (05722) 33701, 31111, 30123 □ फ़ैक्स : 05722-33701



## निबंध संगीत [संकलक : डॉ० लक्ष्मीनारायण गर्ग]

बी० ए०, एम० ए० तथा शोध-कर्त्ताओं के लिए मुख्य रूप से सहायक ग्रन्थ 'निबंध संगीत' में संगीत-कला के सभी पक्षों पर विद्वान् संगीत-मनीषियों के खोजपूर्ण और सारगर्भित 76 लेख दिए गए हैं, जिनके शीर्षक इस प्रकार हैं :—

ठुमरी में सनातन सांगीतिक तत्त्व, ठुमरी और स्वर्गीय भातखण्डे; मुसलमान, ग़ज़ल, क़व्वाली और ख़याल; ख़याल का विकास, ख़याल और उसका विकास, ध्रुपद-शैली—एक विचार, घमार-गायकी—एक रंगारंग परम्परा, लोक-संगीत तथा शास्त्रीय संगीत का पारस्परिक संबंध; भारतीय संदर्भ में लोक-संगीत, फागुन के लोक-छंद, शास्त्रीय एवं लोक-संगीत पर एक तुलनात्मक दृष्टि, लोक-भजनों की पृष्ठभूमि, लोक-संगीत की एक सुहावनी विधा—कजली, शास्त्रीय तालों और लोकसांगीतिक लयों का तुलनात्मक अध्ययन, शास्त्रीय संगीत और फ़िल्म-संगीत, सुगम संगीत—अभिशाप या वरदान ?, सदियों वर्ष पूर्व जब धरती पर संगीत लहराता था, संगीत और परंपरा, संगीत-घरानों का विवाद, उत्तर और दक्षिण-भारत का संगीत, संगीत-वाद्यों की उत्पत्ति तथा विकास, सरोद की उत्पत्ति, स्वतंत्र वादन की परम्परा का विकास, भारतीय संगीत और वृंदावन, भारतीय संगीत में लय, भारतीय संगीत की प्राचीन परम्परा, प्राचीन भारत में संगीत, नृत्य और नाट्य; प्रागैतिहासिक संगीत में कलात्मकता का उद्भव और विकास; संगीत में सौंदर्य बोध, संगीत में गुण-दोष-विचार, राग शब्द-व्युत्पत्ति और परिभाषा, राग-लक्षण अथवा राग के आवश्यक तत्त्व, रस-सृष्टि में आलाप और तान की भूमिका, राग का सौंदर्य-आधार 'आलाप', राग और समय, राग-रचना के सिद्धान्त और उनकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि, संगीत-कला और सौंदर्य, संगीत-साधना का आध्यात्मिक पक्ष, भारतीय संगीत-शास्त्र में दर्शन के तत्त्व; गांधर्व, नाट्य और संगीत; संगीत द्वारा अभिव्यंजना का स्वरूप, उत्तर-भारतीय संगीत में सौंदर्य-आदर्श; मूल ठाठ, राग-रागिनियाँ और रस; भारतीय संगीत में रागों के साथ देवताओं की कल्पना, भारतीय चित्रकला का राग-चित्रण; राग-रागिनियों का चित्राभिव्यंजन; भारतीय संगीत के वर्षाकालीन राग, रागों का समय मनगढ़ंत या मनोवैज्ञानिक ?, राग-रागिनियों के चित्र, 'रागमाला' के छत्तीस दोहे, दीपक राग—एक वैज्ञानिक दृष्टि, राजस्थानी चित्रकला में रागों का स्वरूप, संगीत में वृत्ति एवं गीति, तीनताल में राग-रागिनियों का नृत्य, कथक नृत्य में शृंगार-रस का स्थान, कथक नृत्य में शृंगार-नायिकाएँ, मोहिनीअट्टम्, बेल्ले नृत्य, नृत्य में रस का महत्त्व, रामायणकालीन संगीत, हवेली संगीत की परंपरा, वाल्मीकि और संगीत, तुलसीदास के गीति-काव्य में संगीत-योजना, नर्तकी आम्रपाली, भक्ति और संगीत, सूर की भक्ति और संगीत; भारतीय संगीत को मीराबाई की देन, अमीर खुसरो, स्वामी हरिदास और तानसेन, बैजू बावरा, महान् गायक रवीन्द्रनाथ, भारतीय संगीत को रवीन्द्रनाथ ठाकुर की देन, रवीन्द्र-संगीत, पाश्चात्य 'म्यूज़िकॉलॉजी' और भारतीय संगीत-शास्त्र, संगीत की आवश्यकता और वास्तविकता, शास्त्रीय संगीत लोकप्रिय कैसे हो ?

आकार 18"×22" अठपेजी, पृष्ठ-संख्या 650, मूल्य 250/-, डाक-व्यय पृथक् ।

प्राप्ति-स्थान : संगीत कार्यालय, हाथरस 204 101 (उ.प्र.)

फ़ोन : (05722) 33701, 31111, 30123 □ फ़ैक्स : 05722-33701



लेखक : डॉ० लक्ष्मीनारायण गर्ग



भूमिका-लेखक : शम्भू महाराज

‘कथक नृत्य’ के इस संशोधित, परिवर्द्धित नवीन संस्करण में प्राथमिक परीक्षाओं से लेकर स्नातकोत्तर तक की परीक्षाओं का संपूर्ण कोर्स दिया गया है। शिक्षण क्षेत्र के साथ-साथ कलाकारों के लिए भी इस विशाल ग्रंथ का विशेष महत्त्व है।

इसमें प्रकाशित सामग्री की संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार है—रंगमंच का इतिहास, कथक नृत्य का इतिहास, अभिनय, कथक नृत्य के प्राचीन कलाकार, कथक नृत्य की विशेषताएँ, भारतीय संगीत में नृत्य का स्थान (नौ महत्त्वपूर्ण लेख), नर्तकों के भेद, भारत के शास्त्रीय नृत्य (सभी प्रचलित नृत्य शैलियाँ), कथक और भरतनाट्यम् का तुलनात्मक अध्ययन, पाश्चात्य नृत्यकला, आधुनिक नृत्य, आधुनिक नृत्य की विशेषताएँ, आवश्यकताएँ और समाज में उनका स्थान, लोकनृत्यों की विशेषताएँ, लोकनृत्य और कथक नृत्य का तुलनात्मक अध्ययन, कथक नृत्य में प्रयुज्य कथानक, कथक नृत्य के प्रसिद्ध कथानक (35 कथानक), रस और भाव, नृत्य के कुछ प्राचीन अंग, गत (28 गतें), हाव-भाव, फेरी (पाद विवरण सहित), नायक-नायिका-भेद, कथक नृत्य के कवित्त और ठुमरी (चेष्टाएँ), राधा-कृष्ण नृत्य(रास) के कवित्त, वेशभूषा, रूप-सौंदर्य, सौंदर्य अभ्यास, ध्वनि एवं प्रकाश व्यवस्था, घुंघरू तथा पद संचालन, अंगहार, पाद विक्षेप (चारी), नेत्र और भृकुटी, गर्दन तथा छाती, पीठ, पेट और कमर; जंघा और पादांगुलि (संचालन), अंगक्रिया, शारीरिक अंग और उपांग, 24 हस्तविन्यास (चित्र), नृत्य निर्देशन या कॉरियोग्राफी की कला, लखनऊ व जयपुर घराने की नृत्य प्रस्तुति का तुलनात्मक अध्ययन, नृत्य उत्पत्ति कथा, तांडव और लास्य की उत्पत्ति तथा नटराज उपाधि का रहस्य, मुखबोलों का अभ्यास, नृत्यांकन (प्रसिद्ध घरानों की बंदिशें), विभिन्न तालों के नृत्यांकन, तालांगी, नृत्यांगी, कवितांगी व मिश्रांगी तोड़े, कुदऊँसिह घराने की बंदिशें, लखनऊ और बनारस घराने की बंदिशें, नृत्य सम्बन्धी विविध बोल परनें, नृत्य-लहरे, नृत्य-रहस्य, नर्तक, नर्तकी तथा नृत्ताचार्य के गुण, प्राचीनकाल के नृत्य, रास-नृत्य, नाट्य मण्डप या नाट्यशाला, कर्नाटक ताल पद्धति, हिंदुस्तानी एवं कर्नाटकी ताल पद्धतियों का तुलनात्मक विवेचन, राग-जाति, गत और परन के प्रकार, कथक में प्रयुक्त कुछ तालों के ठेके, संगीत पक्ष की जानकारी, भारत की मुख्य संगीत पद्धतियाँ, ध्वनि अथवा नाद, नाद स्थान एवं स्वरों की आंदोलन संख्या, नृत्य के शास्त्रीय राग और ताल, स्तुतियाँ और लहरे, संगति के लिए सत्तर लहरे, नृत्य में गणित का स्थान और ताल के दस प्राण, भातखण्डे, तथा विष्णुदिगम्बर ताल-लिपियाँ, कथक में प्रयुक्त गीत शैलियाँ, कथक नृत्य के प्रसिद्ध कलाकार (51), कथक के अन्य कलाकार (80), कथक नृत्य की संभावनाएँ, नृत्य व नाट्य-सम्बन्धी (लगभग 400) पारिभाषिक शब्द तथा प्रथम वर्ष से अष्टम वर्ष तक का कथक पाठ्यक्रम (सिलेबस)। आकार 18"×22" अठपेजी, पृष्ठ-संख्या 800, मूल्य 300/-, डाक-व्यय पृथक्।

प्राप्ति-स्थान : संगीत कार्यालय, हाथरस 204 101 (उ. प्र.)

फ़ोन : (05722) 33701, 31111, 30123 □ फ़ैक्स : 05722-33701



# संगीत कार्यालय के प्रकाशन

1081 [ मंहगाई के अनुसार समय-समय पर मूल्यों में वृद्धि होती रहती है । ]

## ■ कंठ-संगीत (Vocal Music)

बालसंगीत शिक्षा (3 भागों में) —कक्षा 6, 7 व 8

के लिए; मूल्य क्रमशः 20/-, 25/- व 30/-

संगीत किशोर —कक्षा 9 व 10 के लिए 30/-

गांधर्व संगीत प्रवेशिका — 50/-

कम्पिक पुस्तक मालिका (भाग 1 से 6 तक,

पाठ्यक्रमानुसार) —मूल्य क्रमशः 25/-, 175/-,

250/-, 275/-, 175/-, 225/-

Kramik Pustak, Part-I (English) 50/-

स्वरमालिका —भातखंडे जी द्वारा संकलित

62 रागों में 123 सरगमों 75/-

कम्पिक तान आलाप —भाग I 15/-,

II 50/-, III 150/-, IV 150/-

राग विशारद, भाग 1 —(एम.ए. तक) 200/-

राग विशारद भाग-2 (एम.ए. तक क्रि. प्रेस में)

अप्रकाशित राग (भाग 1) —73 बंदिशों 50/-

मधुर चीजें —111 मधुर राग-बंदिशों 50/-

सूर संगीत —सूरदास के स्वरबद्ध पद (प्रेस में)

बंदना संगीत —50 स्वरबद्ध प्रार्थनाएं 40/-

ठुमरी गायकी —45 स्वरबद्ध ठुमरियाँ 50/-

मारवा ठाठ अंक —88 राग-रचनाएं 150/-

अप्रचलित राग ताल अंक शोधपूर्ण सामग्री 150/-

प्रार्थना संगीत —विभिन्न धर्मों की

मूल प्रार्थनाएं स्वरलिपि सहित 65/-

भक्ति संगीत अंक —102 स्वरबद्ध पद 150/-

मीरा संगीत अंक —11 महत्वपूर्ण लेख

व मीराबाई के 138 स्वरबद्ध पद 150/-

गज़ल अंक —स्वरलिपि-सहित गज़लें 150/-

शामे-गज़ल —50 स्वरबद्ध गज़लें 200/-

भजन-संध्या —45 स्वरबद्ध भजन 200/-

लोक संगीत अंक —लेख व स्वरलिपि 150/-

फिल्मी गज़ल अंक (भाग 1 व 2) —

फिल्मों की स्वरबद्ध 35 गज़लें प्रत्येक 150/-

फिल्मी शास्त्रीय गीत अंक (भाग 1) —

फिल्मों के 52 स्वरबद्ध शास्त्रीय गीत 200/-

फिल्मी शास्त्रीय गीत अंक-II

५० स्वरबद्ध शास्त्रीय गीत-प्रेस में

फिल्मी प्रेम गीत अंक (भाग 1) —

फिल्मों के 40 स्वरबद्ध प्रेम धरे गीत 150/-

फिल्मी उल्लास गीत अंक —

फिल्मों के 35 स्वरबद्ध उल्लासपूर्ण गीत 150/-

फिल्मी युगल गान अंक (भाग 1) —

फिल्मों के 35 स्वरबद्ध युगल-गीत 150/-

फिल्मी भजन अंक (भाग 1) —

फिल्मों के 35 स्वरबद्ध भक्ति-गीत 150/-

फिल्मी सांस्कृतिक गीत अंक (भाग 1) —

फिल्मों के 35 स्वरबद्ध गीत 150/-

फिल्मी विविध गीत अंक (भाग 1-11) —

फिल्मों के 35 स्वरबद्ध लोकप्रिय गीत

प्रत्येक 150/-

फिल्मी विरह गीत अंक (भाग 1) —

फिल्मों के 35 स्वरबद्ध दर्द भरे गीत 150/-

संगीत 'दिनय पत्रिका' —संत तुलसीदास

के 70 स्वरबद्ध पद 150/-

## ■ शास्त्र व इतिहास (Theory & History)

हाईस्कूल संगीत शास्त्र-पूरा कोर्स 50/-

संगीत शास्त्र — कक्षा 12 तक 50/-

भारतीय संगीत का इतिहास — 50/-

संगीत विशारद-एम०ए० तक का कोर्स 200/-

राग कोष —1438 रागों का विवरण 75/-

भातखंडे संगीत शास्त्र (भाग 3) — 200/-

संगीत-पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन-

प्राचीन 10 संगीत ग्रन्थों का सार 60/-

संगीत निबंधावली —26 निबंध 50/-

निबंध संगीत —76 शोधपूर्ण निबंध 250/-

संगीत चिंतामणि —आचार्य बृहस्पति के

उच्चस्तरीय 31 विस्तृत शोध-निबंध 250/-

संगीत मकरंदः (नारद-कृत) —संस्कृत 40/-

(म.उ.) 101 805 17743, 17743, 17743 : कक्षाक

22102, 11112, 10762, 10762 : मणि



राष्ट्रीय संगीत—लेख व स्वरलिपि 150/-  
 महिला संगीत अंक—लेख व स्वर० 150/-  
 मुहम्मद रफी अंक—जीवनी व स्वररंजन 150/-  
 संगीत:सूफी इनायतख़ाँ—वैज्ञानिक लेख 125/-  
 संगीत संस्मरण अंक—रोचक किस्से 150/-  
 'संगीत' रजत जयंती अंक—20 निबंध  
 तथा 2000 संगीत-ग्रंथों की सूची 150/-  
 विश्व संगीत अंक—35 निबंध 150/-  
 संगीत परीक्षा अंक—परीक्षोपयोगी 150/-  
 संगीत शिक्षा अंक—संगीत शिक्षा 150/-  
 संगीत संस्था अंक—संगीत संस्थाओं  
 एवं कलाकारों के पते व परिचय 150/-  
 संगीत शोध अंक—रिसर्च की दिशाएँ 150/-  
 संगीत कथा अंक—सांगीतिक कथाएँ 150/-  
 संगीत शोध लेख अंक—शोधपूर्ण लेख 150/-  
 काका हाथरसी स्मृति अंक— 150/-  
 गुरमति संगीत अंक—पंजाबी संगीत 150/-  
 आवाज़ सुरीली कैसे करें—स्वर की  
 मधुरता के लिए उपाय व औषधियाँ 85/-  
 पाश्चात्य संगीत-शिक्षा—विदेशी स्टाफ़  
 नोटेशन की विधिवत् सचित्र शिक्षा 75/-  
 A Guide to Indian Music In Eng. 85/-  
 ब्रज के देवालयों में संगीत परम्परा—60/-  
**■ वाद्य संगीत (Instrumental Music)**  
 वाद्यवादन अंक—विभिन्न वाद्यों की शिक्षा 150/-  
 जलतरंग अंक—जलतरंग शिक्षा 150/-  
 सं० ताल परिचय—1 (हाईस्कूल तक) 25/-  
 सं० ताल परिचय—2 (चतुर्थ वर्ष तक) 30/-  
 तबला अंक—शोधपूर्ण सचित्र लेख 150/-  
 ताल अंक—सचित्र तबला-शिक्षा 150/-  
 ताल प्रकाश—एम०ए० तक पूरा कोर्स 125/-  
 ताल मार्तण्ड—एम० म्यूज० तक 75/-  
 तबले पर दिल्ली और पुरब—एम०  
 म्यूज० तक का शास्त्र व क्रियात्मक 85/-  
 कायदा और पेशकार—क्रियात्मक 35/-  
 अप्रचलित कायदे और गतें—तबले  
 पर उच्चस्तरीय क्रियात्मक सामग्री 40/-

मृदंग अंक—शोधनिबंध व सचित्र शिक्षा 150/-  
 सितार शिक्षा—सचित्र शिक्षा व गत-तोड़े 150/-  
 सितार मालिका—वर्ष 1 से 8 तक 125/-  
 बेला विज्ञान—सचित्र वायलिन-शिक्षा 200/-  
 बेंजो मास्टर—सचित्र शिक्षा व धुनें 50/-  
 गिटार मास्टर—सचित्र शिक्षा व धुनें 50/-  
 म्यूज़िक मास्टर—हारमोनियम, तबला  
 और बांसुरी शिक्षा की सरल पुस्तक 50/-  
 बांसुरी शिक्षा—प्योरी व प्रैक्टिकल 200/-

## ■ नृत्य (Dance)

अभिनय दर्पण और गीतगोविन्द—  
 नृत्य-शास्त्र एवं अष्टपदी 125/-  
 नृत्य भारती—प्रारंभिक नृत्य शिक्षा 75/-  
 कथक नृत्य—प्रथम से अष्टम वर्ष तक  
 नृत्य का पूरा कोर्स 300/-

## ■ 'संगीत' मासिक पत्र

वार्षिक शुल्क वर्ष 2000  
 (भारत के लिए)— 205/-  
 विदेशों के लिए—UK 35/- या US \$ 65/-  
 आजीवन सदस्यता शुल्क (भारत) 1500/-  
 (विदेशों के लिए)—UK £ 150/- या US \$ 300/  
 साधारण अंक (भारत के लिए)— 17/-  
 (विदेशों के लिए)—UK £ 3/- या US \$ 5/-

'संगीत' मासिकपत्र की महत्त्वपूर्ण फाइलें  
 1979, 82, 84, 90, 93, 94 से 97  
 उपलब्ध हैं—मूल्य, प्रति फाइल रु० 250/-

## ● ऑडियो कैसेट्स

क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग I  
 (हिंदी या अंग्रेजी में दो कैसेट्स का सेट  
 मिस्री बुक सहित) 80/-

● मातखंडे व पलुस्कर के रंगीन चित्र  
 साइज़ 11"×18" (प्रति चित्र) 20/-  
 साइज़ 18"×22" (प्रति चित्र) 30/-

उपर्युक्त सभी सामग्री पर पैकिंग व डाक-व्यय आदि मूल्य के अलावा लगेगा।

**प्रकाशक : संगीत कार्यालय, हाथरस 204 101 (उ. प्र.)**

**फोन : 05722) 33701, 31111, 30123**



# HINDI BOOKS ON INDIAN MUSIC

## VOCAL MUSIC

|                                               |                   |
|-----------------------------------------------|-------------------|
| Baal Sangeet Shikshaa                         |                   |
| Vol. I 20/-, II 25/-, III 30/-                |                   |
| Sangeet Kishore                               | 30/-              |
| Gandharv Sangeet Praveshika, Part I           | 50/-              |
| Kramik Pustak Maalikaa Vol. I 25/-, II 175/-, |                   |
| III 250/-, IV 275/-, V 175/-, VI 225/-        |                   |
| Bhatkhande Kramik Pustak Vol. I               | (In English) 50/- |
| Swar Maalikaa                                 | 75/-              |
| Kramik Taan Aalaap, I 15/-, II 50/-,          |                   |
| III 150/-, IV 150/-                           |                   |
| Raag Vishaarad (Part I and Each)              | 200/-             |
| Aprakaashit Raag (Part I)                     | 50/-              |
| Madhur Cheezen                                | 50/-              |
| Soor Sangeet                                  | (Press) 40/-      |
| Vandanaa Sangeet                              | 50/-              |
| Thumree Gaayakee                              | 50/-              |
| Maarwaa Thaata Ank                            | 150/-             |
| Aprachalit Raag Taal Ank                      | 150/-             |
| Praarthanaa Sangeet                           | 65/-              |
| Bhakti Sangeet Ank                            | 150/-             |
| Meeraa Sangeet Ank                            | 150/-             |
| Ghazal Ank                                    | 150/-             |
| Shaame-Ghazal                                 | 200/-             |
| Bhajan-Sandhya                                | 200/-             |
| Lok Sangeet Ank                               | 150/-             |
| Filmee Ghazal Ank (Part I and II) Each        | 150/-             |
| Filmee Shaastreeya Geet Ank                   | 200/-             |
| Filmee Prem Geet Ank                          | 150/-             |
| Filmee Ullaas Geet Ank                        | 150/-             |
| Filmee Yugal Gaan Ank                         | 150/-             |
| Filmee Bhajan Ank                             | 150/-             |
| Filmee Saanskritik Geet Ank                   | 150/-             |
| Filmee Vividh Geet Ank                        |                   |
| Vol. I to XI each                             | 150/-             |
| Filmee Virah Geet Ank                         | 150/-             |
| Sangeet Vinay Patrika                         | 150/-             |

## THEORY AND HISTORY

|                                        |       |
|----------------------------------------|-------|
| High School Sangeet Shastra            | 50/-  |
| Sangeet Shastra                        | 50/-  |
| Bhaaratiya Sangeet-ka-Itihaas          | 50/-  |
| Sangeet Vishaarad                      | 200/- |
| Raag Kosh                              | 75/-  |
| Bhatkhande Sangeet-Shaashtra, Part III | 200/- |
| Sangeet Paddhatiyon-Ka-Tulanaatmak     |       |
| Adhyayan                               | 60/-  |
| Sangeet Nibandhaavalee                 | 50/-  |
| Nibandh Sangeet                        | 250/- |
| Sangeet Chintamani                     | 250/- |
| Sangeet Makarand                       | 40/-  |
| Rashtreeya Sangeet                     | 150/- |
| Mahilaa Sangeet Ank                    | 150/- |
| Mohammad Rafee Ank                     | 150/- |
| Sangeet : Soofee Inayat Khan           | 125/- |
| Sangeet Sansmaran Ank                  | 150/- |
| 'Sangeet' Rajat Jayantee Ank           | 150/- |
| Vishwa Sangeet Ank                     | 150/- |
| Sangeet Pareekshaa Ank                 | 150/- |
| Sangeet Shikshaa Ank                   | 150/- |

|                                      |       |
|--------------------------------------|-------|
| Sangeet Sansthaa Ank                 | 150/- |
| Sangeet Shodh Ank                    | 150/- |
| Sangeet Kathaa Ank                   | 150/- |
| Sangeet Shodh Lekh Ank               | 150/- |
| Kaka Hathraasi Smriti Ank            | 150/- |
| Gurmati Sangeet Ank                  | 150/- |
| Aawaaz Sureelee Kaise Karen          | 85/-  |
| Paashchaatya Sangeet Shikshaa        | 75/-  |
| A Guide to Indian Music (In English) | 85/-  |
| Braj-ke-Devaalayan mein              |       |
| Sangeet Paramparaa                   | 60/-  |

## INSTRUMENTAL MUSIC

|                                |       |
|--------------------------------|-------|
| Vaadya Vaadan Ank              | 150/- |
| Jalatarang Ank                 | 150/- |
| Sangeet Taal Parichaya-I       | 25/-  |
| Sangeet Taal Parichaya-II      | 30/-  |
| Tabla Ank                      | 150/- |
| Taal Ank                       | 150/- |
| Taal Prakaash                  | 125/- |
| Taal Maartand                  | 75/-  |
| Table Par Dehi aur Poorab      | 85/-  |
| Kaayadaa Aur Peshkaar          | 35/-  |
| Aprachalit Kaayda Aur Gaten    | 40/-  |
| Mridang Ank                    | 150/- |
| Sitaar Shikshaa                | 150/- |
| Sitaar Maalikaa                | 125/- |
| Belaa Vigyaan (Violin gulde)   | 200/- |
| Benjo Master                   | 50/-  |
| Guitar Master                  | 50/-  |
| Music Master (Harmonium gulde) | 50/-  |
| Baansuree Shikshaa             | 200/- |

## LITERATURE ON DANCE

|                                 |       |
|---------------------------------|-------|
| Abhinaya Darpan-Aur-Geet Govind | 125/- |
| Nritya Bhaarattee               | 75/-  |
| Kathak Nritya                   | 300/- |

## JOURNAL ON MUSIC

|                                                                           |       |
|---------------------------------------------------------------------------|-------|
| 'SANGEET' monthly magazine on Music & Dance. Yearly subscription for 1999 | 190/- |
| Foreign : Air Mail : UK £ 35-00, US \$ 65-00                              |       |
| Sea Mail : UK £ 25-00, US \$ 30-00                                        |       |
| Life Membership                                                           |       |
| Rs. 1500/-, £ 150/- or US \$ 300/-                                        |       |

## AUDIO CASSETTES

|                                                                           |      |
|---------------------------------------------------------------------------|------|
| Kramik Pustak, Vol. 1 (Basic Music-lessons with 30 compositions) Twin set |      |
| Hindi/English with mini Book                                              | 80/- |

## COLOUR PICTURES

|                        |      |
|------------------------|------|
| Bhatkhande or Paluskar |      |
| Size 11" x 18" each    | 20/- |
| Size 18" x 22" each    | 30/- |

[ Prices are Subject to increase from time to time. ]

**SANGEET KARYALAYA, HATHRAS-204 101 (India),**

Phones : (05722) 33701, 31111, 30123



संगीत कार्यालय द्वारा निर्मित

## ऑडियो कैसेट्स

क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग 1 के

ऑडियो कैसेट्स का जोड़ा बिन्नी के लिए तैयार है।

इनके द्वारा स्वरलिपि समझने की कठिनाई से छुटकारा मिल गया है। कैसेट्स चलाइए और पं० विष्णुनारायण भातखण्डे द्वारा लिखित हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति 'क्रमिक पुस्तक मालिका' भाग-1 में दिए हुए स्वराभ्यास के पाठ सीखिए। इसके साथ ही कल्याण, बिलावल, खमाज, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफ़ी, आसावरी, भैरवी और तोड़ी, इन दस ठाठों के जन्य रागों में छपी हुई तीस मधुर बंदिशों को सुनकर बिना किसी सहायता के अपने आप गाइए, परीक्षा में प्रयत्न आइए।

मिनी बुक सहित हिन्दी या अंग्रेजी के दोनों कैसेट्स, मूल्य 80/-

पैकिंग तथा डाकव्यय इत्यादि मूल्य से पृथक् हैं।

## भातखण्डे व पलुस्कर के रंगीन चित्र

भारतीय संगीत के महान् उद्धारक पं० विष्णुनारायण भातखण्डे तथा पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर के रंगीन चित्र ऑफ़सेट पद्धति से छपकर तैयार हैं। संगीत की संस्थाएँ, शिक्षक एवं संगीत-प्रेमी लेमीनेशन किए हुए इन आकर्षक चित्रों को लगाकर अपने संगीत-कक्ष को सुसज्जित कर सकते हैं।

आकार 11"×18", प्रति चित्र मूल्य 20/-

आकार 18"×22", प्रति चित्र मूल्य 30/-

पोस्टेज तथा पैकिंग व्यय अलग लगेगा। कैसेट्स तथा चित्रों के लिए पूरा धन अग्रिम आना आवश्यक है, ताकि डाक-व्यय की वी० पी० द्वारा भाल भेजा जा सके।

पता : संगीत कार्यालय, हाथरस-204 101 (उ० प्र०)

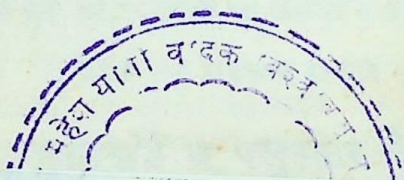
फ़ोन : (05722) 33701, 31111, 30123



1018







MMYVV, Karoundi



\* 2 1 0 1 \*







